श्री

कूर्मपुराणम्

(हिन्दीभाषानुवादसहितम्)



सर्वभारतीयकाशिराजन्यासः
दुर्ग, रामनगर, वाराणसी
सं. वि. २०२९, शाक. १८९४
१९७२ ई०

शिक्षा-मन्त्रालय, भारत सरकार की आर्थिक सहायता से मुद्रित

मूल्य ~~५०~~ रुपया

कूर्म पुराण हिन्दी अनुवाद
परिवर्तित मूल्य १००/-

श्री रमेशचन्द्र देव, जेनरल सेक्रेटरी, सर्व भारतीय काशिराज न्यास, दुर्ग रामनगर, वाराणसी (भारत)
द्वारा प्रकाशित एवं श्री रमाशंकर, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी द्वारा मुद्रित

श्री

कूर्मपुराण

हिन्दी अनुवाद सहित

अनुवादक

श्री चौधरी श्रीनारायण सिंह, एम. ए.

सम्पादक

आनन्दस्वरूप गुप्त, एम. ए., शास्त्री

उपनिदेशक, पुराणविभाग काशिराजन्यास



कूर्म पुराण हिन्दी अनुवाद

परिवर्तित मूल्य १०./-

सर्वभारतीय काशिराजन्यास

दुर्ग रामनगर, वाराणसी

१९७२ ई०

प्राक्कथन

भारत के अन्तिम विदेशी आधिपत्य से मुक्त होकर सर्वसत्तासम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य बनने पर भारत सरकार तथा हमारे राष्ट्रीय नायकों ने राष्ट्रीय एकता तथा हमारे राष्ट्रीय जीवन के समस्त क्षेत्रों में सार्वत्रिक विकास का कार्य प्रारम्भ किया। समय की आवश्यकता तथा भारत-भूमि के हित को ध्यान में रखकर नरेशों ने भी राष्ट्रीय एकता के कार्य में अपने को संलग्न किया तथा राष्ट्रनिर्माण के पवित्र कार्य में अपने लघु प्रयास को लगाया; और स्वयं मैंने अपने परिवार की चिर-स्थापित परम्परा का अनुसरण करते हुए संस्कृत-शिक्षा तथा संस्कृति के विकास का कार्य प्रारम्भ किया। भारत सरकार ने, संस्कृत-शिक्षा के विकास तथा संस्कृत-शास्त्रों—श्रुतियों, स्मृतियों एवं पुराणों-में वर्णित प्राचीन संस्कृति के विकास के निश्चित उद्देश्य के निमित्त सर्वभारतीय काशिराज न्यास की स्थापना में मेरी सहायता की। मैं तत्कालीन गृहमन्त्री स्वर्गीय सरदार पटेल और तत्कालीन विधिमन्त्री स्वर्गीय श्री के. एम. मुन्शी का उनके सहयोग और मार्ग-दर्शन के लिए आभारी हूँ।

विद्वानों के साथ लम्बे विमर्श और चिन्तन के अनन्तर मैंने पुराणों के अध्ययन और गवेषणा का कार्य हाथ में लिया, क्योंकि समस्त संस्कृत-वाङ्मय में अपने विस्तार और विषयों के वैविध्य—क्योंकि मानव-कल्याण के समस्त विषयों का उनमें समावेश है—के कारण उनका अप्रतिम स्थान है। भारत के प्राक्कालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन के निमित्त उनका महत्त्व समस्त विश्व के विद्वानों ने भलीभाँति स्वीकार किया है।

पुराणों के प्रचलित संस्करण अपर्याप्त हस्तलेखों पर आधृत हैं तथा पाठसमीक्षा के किसी सुस्थ सिद्धान्त के आधार पर उनका निर्माण नहीं हुआ है। अतः ये संस्करण पुराणों के वैज्ञानिक अध्ययन में सहायक नहीं है। इसी कारण, सर्वभारतीय काशिराज न्यास ने महापुराणों के पाठसमीक्षात्मक संस्करणों के प्रकाशन का दुर्वह दायित्व अङ्गीकार किया। यद्यपि यह योजना दीर्घकालिक तथा बहुव्ययसाध्य है तथापि हमलोगों ने चिर उपेक्षित पुराणों के उत्कर्ष के निमित्त यह साहस किया है। प्राच्यविद्याविदों की अन्तरराष्ट्रीय महासभा ने अपने मिशिगन (अमेरिका) सम्मेलन में तथा सर्वभारतीयप्राच्यविद्या महासभा ने अपने वाराणसी सम्मेलन में हमारी पुराण-योजना का अनुमोदन किया है।

पुराणों में सर्वप्रथम वामनपुराण का पाठसमीक्षात्मक संस्करण हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद के साथ पृथक्-पृथक् तीन भागों में सर्वभारतीय काशिराज न्यास द्वारा १९६७ ई० में प्रकाशित किया गया है। वामन-पुराण का पाठ-समीक्षात्मक संस्करण प्राच्यविद्याविदों की अन्तरराष्ट्रीय महासभा के मिशिगन (अमेरिका) में होने वाले २७ वें अधिवेशन में उपस्थित किया गया तथा अधिवेशन ने अधोनिर्दिष्ट प्रस्ताव पारित किया :—

"यह महासभा केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भारत सरकार तथा भारतीय विद्या में अभिरुचि रखने वाले समस्त विद्वानों से सर्वभारतीय काशिराज न्यास द्वारा तत्र भवान् काशिराज के निर्देशन में पुराणों के पाठ-समीक्षात्मक संस्करण के प्रकाशन के हो रहे परम उपयोगी कार्य की प्रशस्ति करती है। इस ग्रन्थमाला का वामनपुराण जो

श्री आनन्दस्वरूप गुप्त द्वारा योग्यतापूर्वक संपादित है आज न्यासधारी डा० सूनीतिकुमार चाटुर्ज्या द्वारा उपस्थापित किया जा रहा है जिसे न्यास के सदस्य डा० राय गोविन्दचन्द्र वाराणसी से लाये हैं।"

प्राच्यविद्याविदों की अन्तरराष्ट्रीय महासभा तथा सर्वभारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन के हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमारी योजना तथा पुराण-संस्करणों की स्नेहपूर्ण प्रशंसा की है तथा उन वैदेशिक एवं भारतीय पत्रिकाओं के भी हम कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इन संस्करणों की समीक्षा प्रकाशित की है।

दूसरा पुराण जिसे पाठ-समीक्षात्मक संस्करण के लिए स्वीकृत किया गया कूर्मपुराण है। कूर्मपुराण का पाठ-समीक्षात्मक संस्करण तथा दो अनुवाद (हिन्दी-अंग्रेजी) खण्ड उसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित किए जा रहे हैं। आशा है इन खण्डों में उपन्यस्त परिशिष्ट विद्वानों को उनके पुराणों के अध्ययन तथा सामान्यतः सांस्कृतिक अध्ययन में सहायक होंगे।

वामन तथा कूर्म इन दो पुराणों के पाठ-समीक्षात्मक संस्करण तथा अनुवाद खण्ड भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय के आर्थिक साहाय्य से प्रकाशित हुए हैं। एतन्निमित्त हम निर्व्याज रूप से कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

आशा है वामन-पुराण के संस्करणों की ही भाँति ये संस्करण भी विद्वानों तथा सामान्य पाठकों से समान रूप से अभिनन्दित होंगे।

दुर्ग, रामनगर
वाराणसी
२४ दिसम्बर १९७१

विभूतिनारायण सिंह
(काशिराज)
अध्यक्ष, सर्वभारतीय काशिराजन्यास

भूमिका

(क) 'कूर्मपुराण' शीर्षक

कूर्म, वामन, वराह और मत्स्य—इन चार महापुराणों का नामकरण विष्णु के अवतारों के नाम पर हुआ है। जैसा कि मत्स्यपुराण के बारे में कहा गया है कि जलप्लावन के समय मत्स्यावतारधारी विष्णु के द्वारा वैवस्वत मनु को इसका कथन किया गया तथा वराहपुराण का कथन भी प्रलय के समय वराहावतारधारी विष्णु के द्वारा पृथ्वी को किया गया; उसी भाँति कूर्मरूपधारी विष्णु द्वारा कूर्मपुराण का प्रथमतः कथन इन्द्रद्युम्न को उसके प्रथम जन्म में जब वह राजा था किया गया और पुनः ब्राह्मण रूप में उत्पन्न होकर समाधि के द्वारा मोक्ष की कामना से जब उसने विष्णु की आराधना की तब इसका कथन हुआ। पुनः इसी कूर्मपुराण का कथन नारद आदि महर्षियों तथा इन्द्र-सहित देवताओं को उनकी प्रार्थना पर उस समय किया गया जब क्षीरसमुद्र मन्थन के समय विष्णु कूर्म रूप में मन्थन-दण्ड के रूप में प्रयुक्त मन्दर पर्वत के आधार बने हुए थे। क्योंकि इस पुराण का कथन सर्वप्रथम कूर्म द्वारा इन्द्रद्युम्न को हुआ और तदनन्तर उसी पूर्वकथा का कूर्म द्वारा नारदादि महर्षियों एवं इन्द्रादि देवों से कथन हुआ अतः इसे कूर्मपुराण कहते हैं। (कूर्म० १. १. २७-४७, ११९-१२३)।

मत्स्यपुराण (५३.४६-४७) में कूर्मपुराण का अधोनिर्दिष्ट प्रकार से वर्णन है—

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः॥
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसन्निधौ।
अष्टादशसहस्राणि[1] लक्ष्मीकल्पानुगं शिवम्॥

नारदीयपुराण (१.१०६.२-३) में भी प्रायेण ऐसा ही वचन है। इस प्रकार इन दोनों पुराणों के अनुसार कूर्मपुराण का प्रवचन कूर्मरूपधारी विष्णु ने रसातल में इन्द्र के समीप ऋषियों को किया। यह कथा इन्द्रद्युम्न के माध्यम से कही गयी। इन दोनों पुराणों के मन्तव्यों की पुष्टि स्वयं कूर्मपुराण के द्वारा भी होती है :

ऋषय ऊचुः

देवदेव हृषीकेश नाथ नारायणामल। तद्वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा॥
इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्मादिगोचरम्। शुश्रूषुश्चाप्ययं शक्रः सखा तव जगन्मय॥
ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी जनार्दनः। रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः॥
पृष्टः प्रोवाच सकलं पुराणं कौर्ममुत्तमम्। सन्निधौ देवराजस्य तद्वक्ष्ये भवतामहम्॥
—(कूर्मपु० १. १.१२०-१२३)

क्योंकि इन्द्रद्युम्न तथा भगवान् कूर्म की कथा जिसे प्रथमतः कूर्म ने इन्द्रद्युम्न से कही तथा तदनन्तर कूर्म ने समुद्र-मन्थन के समय इन्द्र तथा ऋषियों से कही अतः कूर्मपुराण का वह अंश जो कूर्म तथा ऋषियों के संवाद रूप में है तथा जिसे रोमहर्षण सूत ने नैमिषारण्यवासी ऋषियों से कहा था मौलिक या प्राचीन प्रतीत होता है। अन्य अंश यथा युगधर्म तथा तीर्थों से सम्बद्ध अध्याय अपेक्षाकृत पीछे जोड़े गये हो सकते हैं।

---

१. मत्स्यपुराण की मुद्रित प्रतियों में 'अष्टादशसहस्राणि' पाठ है। परन्तु बल्लालसेन के दानसागर तथा हेमाद्रि के चतुर्वर्गचिन्तामणि जैसे निबन्ध-ग्रन्थों में जहाँ कि मत्स्यपुराण के वचन उद्धृत हैं 'सप्तदशसहस्राणि' पाठ है। विल्सन ने भी अपने विष्णु-पुराण के अनुवाद की भूमिका में इन श्लोकों के पाठ में 'सप्तदशसहस्राणि' पाठ दिया है।

(ख) कूर्मपुराण—एक महापुराण

कूर्म (या कौर्म) पुराण की गणना महापुराणों की सूची तथा कुछ स्थलों पर उपपुराणों की सूची में की गई है। अन्य कई महापुराण महापुराणों की कुछ सूचियों में अनुपलब्ध[2] हैं, इसके विपरीत कूर्मपुराण, पुराणों में वर्णित सभी सूचियों में महापुराणों में परिगणित[3] है तथा 'अलबरूनीज इण्डिया' (सचाऊ कृत अंग्रेजी अनुवाद भाग १ पृ० १३१ इत्या०) नामक पुस्तक तथा कवीन्द्राचार्यकृत सूचीपत्रम् (गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज सं० १७, १२१) में भी यह पुराण महापुराणों में परिगणित है।

नारदीयपुराण (१.१०६) में कूर्मपुराण की विषयसूची दी हुई है जिसमें कूर्मपुराण की ब्राह्मीसंहिता की विषय-सूची वर्तमान कूर्मपुराण की विषय-सूची के साथ प्रायेण पूर्णतः मिलती है। नारदीयपुराण में जिस कूर्मपुराण की विषयानुक्रमणी दी गई है वह पुराण वहाँ महापुराणों[4] में परिगणित है। अतः इस वर्तमान कूर्मपुराण को महापुराण समझना चाहिए। अथ च, निबन्ध ग्रन्थों में कूर्मपुराण के नाम से पाये जाने वाले अधिकांश उद्धरण वर्तमान कूर्मपुराण में उपलब्ध होते हैं। अतः कूर्ममहापुराण वर्तमान कूर्मपुराण ही है।

पुराणों में पुराणों के पाँच लक्षण या वैशिष्टय दर्शाये गये हैं यथा सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय तथा पुनः सृष्टि), वंश (राजाओं, ऋषियों एवं देवों की वंशावलियाँ), मन्वन्तर (प्रत्येक मनुओं के ७१ महायुगों के

---

२. उदाहरणार्थ भविष्यपुराण की सूची (३.३.२८.१०-१४) में नारदीयपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण नहीं हैं; गरुड-पुराण की सूची (१.२१५.१५-१६) में वामनपुराण अनुल्लिखित है; वायुपुराण (वें० सं. २.४२.१-११) में आग्नेय और लिङ्ग का उल्लेख नहीं है; एकाम्रपुराण (१.२०-२३) में गरुड और नारदीय नहीं है; अलबेरुनी की द्वितीय सूची में छः महापुराणों का उल्लेख नहीं है तथा कवीन्द्राचार्य अपने सूचीपत्रम् में विष्णुभागवत तथा नारदीय का उल्लेख नहीं करते। इन सूचियों में इन अनुल्लिखित महापुराणों के स्थान पर उन उपपुराणों का उल्लेख है जो उस समय प्रसिद्ध हो चुके थे और इस प्रकार इन सूचियों में समानरूप से महापुराणों की संख्या १८ रखी गयी हैं। विस्तृत जानकारी के लिए द्रष्टव्य वामनपुराण के अंग्रेजी अनुवाद वाले संस्करण में मेरी भूमिका पृ० २९-३०।

३. अधोनिर्दिष्ट पुराणों में महापुराणों की सूचियाँ दी गई है :

१. विष्णुपुराण (३.६ २१-२४) तथा मार्कण्डेयपुराण (वें. सं. १३४.८-१५), वराहपुराण (विब्लि. इण्डिका सं. ११२.६९-७२), भविष्यपु. (१ ब्रह्मपर्व १.६१-६४), पद्मपु. (आनन्दा. सं. १ आदिखण्ड ६२.२-७), ब्रह्मवैवर्तपु. (४.१३३.११-२१), भागवतपु. (१२.१३.४-८), मत्स्यपु. (५३.१२-५६), नारदीयपु. (१.१९.२१-२८), स्कन्दपु. (वें. ७ प्रभासखण्ड २.२८-७७), अग्निपुराण (२७२.१-२३)—ये सभी सूचियाँ विष्णुपुराण में प्रदत्त नामों के क्रम का ही अनुगमन करती हैं।

२. कूर्मपुराण (१.१.१३-१५) और पद्मपुराण (आनन्दा. सं. ६ उत्तर खं. २.१९.२५-२७), स्कन्दपु. (७.२.५-७), सौरपुराण (९.६-१२)—ये सूचियाँ कूर्मपुराण के क्रम का अनुसरण करती है।

३. लिङ्गपुराण (१.३९.६१-६४) और शिवपुराण (वें. सं. ५ उमासंहिता ४४.१२०-१२२) ये दोनों एक ही क्रम को मानते हैं।

४. पद्मपु. (आनन्दा सं. ४, पाताल खं. १११.९०-९४७), पद्मपु. (आनन्दा. सं. ६.२६३. ७-८१), भागवतपु. (१२.७.२३-२४), देवीभा. (१२.२.२-१२), वायुपु. (वें. सं. २.४२.१-११; आनन्दा. सं. १०४.२-१०)—इनमें प्रत्येक परस्पर भी तथा उपर्युक्त १, २, ३ वर्गों के नामों के क्रम से भिन्न है।

विष्णुपुराण में प्रदत्त क्रम आदर्श माना जाता है। इस क्रम में किसी पुराण की जो क्रम संख्या दी गयी है प्रायेण स्वयं तत्तत् पुराणों में उस पुराण की बतायी गयी संख्या उसका अनुमोदन करती है (द. मेरा लेख 'पुराणाज एण्ड देयर रेफरेन्सिग' पुराणम् ७.२ जुलाई १९६५ पृ० ३४०)।

४. यहाँ यह उल्लेख्य है कि पुराणों की इन. सूचियों में 'पुराण' शब्द सामान्यतः महापुराण के लिये प्रयुक्त हुआ है। 'महापुराण' शब्द भागवत में 'महत्' [पुराणम्] (१२.७.१०) तथा 'महान्ति' [पुराणानि] (१२.७.२२), ब्रह्मवैवर्तपुराण (४.१३३.७) में 'महतां पुराणानाम्' और वायुपुराण (१.४२.११) में 'बृहन्ति पुराणानि' के रूप में प्रयुक्त हुआ है; विष्णुपुराण दोनों शब्दों को एक ही साथ प्रयुक्त करता है—'अष्टादशपुराणानि' और 'महापुराणान्येतानि' (३.६.२०)। अन्य पुराण अपनी सूचियों में महापुराणों को 'पुराण' शब्द से ही निर्दिष्ट करते हैं।

विस्तार वाले समय) तथा वंशानुचरित (वंशावलियों में कथित राजाओं, ऋषियों एवं देवों के व्यक्तिगत चरितों का वर्णन)[५]। विष्णुपुराण के कथनानुसार (६.८.१३) विष्णुपुराण में इन पाँचों विषयों का सम्यक् वर्णन है।

विष्णुपुराण को महापुराण माना गया है और जो उपपुराणों की सूचियाँ प्राप्त होती हैं उनमें वह कहीं भी उपपुराण नहीं बताया गया है। कूर्मपुराण में भी विष्णुपुराण की ही भाँति इसके विषयों में पाँच मुख्य लक्षणों का निर्देश है :

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः। माहात्म्यमखिलं ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वरः ।।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं दिव्याः पुण्याः प्रासङ्गिकीः कथाः ।।
(१.१.२४-२५)

अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जो कूर्मपुराण संप्रति उपलब्ध है वह महापुराण है उपपुराण नहीं[६]। उपपुराण की दो सूचियों अर्थात् स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड (५.३.१.४६-५२) तथा वायुपुराण के रेवामाहात्म्य (आफ्रेख्त, वोडलि. कैटलाग, पृ० ६५) में प्राप्त तथा कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्रम् (सं० १३६५ के अधीन) में प्राप्त कूर्म उपपुराण वर्तमान कूर्मपुराण नहीं हो सकता और न तो संभवतः यह किसी निबन्धकार तथा स्मृति-टीकाकार द्वारा ही उपपुराण रूप में उद्धृत है।

(ग) कूर्मपुराण—पन्द्रहवाँ महापुराण

विष्णुपुराण में प्राप्त (३.६.२१-२४) महापुराणों की सूची में कूर्मपुराण पन्द्रहवाँ महापुराण बताया गया है। विष्णुपुराण की यह सूची सामान्य रूप से पुराणों की प्रामाणिक सूची मानी जाती है क्योंकि[७] इस सूची में प्रदत्त क्रम बहुतेरे पुराणों द्वारा पुष्ट होता है। अथ च, विष्णुपुराण की सूची में प्रदत्त महापुराणों का क्रम दश अन्य पुराणों में प्रदत्त सूचियों में भी स्वीकृत हुआ है (तु० पाद टिप्पणी ३ में तृतीय वर्ग) कूर्मपुराण तथा इस वर्ग में प्रदत्त सूची में कूर्मपुराण का पन्द्रहवाँ स्थान है।

यही नहीं स्वयं कूर्मपुराण भी अपने को पन्द्रहवाँ पुराण बताता है :—

इदं तु पञ्चदशमं पुराणं कौर्ममुत्तमम् (१.१.२१ab)

(घ) राजस या तामस पुराण

पुराणों को वैष्णव दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया गया है—सात्त्विक, राजस और तामस। पद्मपुराण (आनन्दा० ६.२६३.८१-८५) में प्रदत्त वर्गीकरण भविष्यपुराण (३.३.२८.१०-१५) के वर्गीकरण से भिन्न है। पद्मपुराण, जो स्वतः मुख्यतया वैष्णवपुराण है, कूर्मपुराण को नरकप्रद तामसपुराण मानता है, परन्तु भविष्यपुराण इसे धार्मिक कर्मकाण्डपरक राजसपुराण मानता है :—

मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च। आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे।
सात्त्विका मोक्षदा प्रोक्ता राजसाः स्वर्गदाः शुभाः। तथैव तामसा देवि निरयप्राप्तिहेतवः ।।
(पद्मपुराण)

मत्स्यः कूर्मो नृसिंहश्च वामनः शिव एव च। वायुरेतत्पुराणानि व्यासेन रचितानि वै ।।
राजसाः षट् स्मृता वीर कर्मकाण्डमया भुवि।
(भविष्यपुराण)

---

५. तुलना कीजिये—सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।। सौरपु. ६.४। पुराणों के ये पञ्चलक्षण बहुप्रचलित हैं और अमरकोश में भी इनका उल्लेख है। पुराणों में इनका उल्लेख अग्नि १.१४, देवीभाग० १.२.१८, भविष्य १.२.४-५, ब्रह्माण्ड १.१.३७-८, ब्रह्मवै० ४.१३३.६ गरुड १.२१५.१४, कूर्म १.१.१२, मत्स्य ५३.३५, वराह २.४, विष्णु ३.६.२५, शिव ५.१.३७, स्कन्द ७.२.८४ और सौर ६.४ में है।

६. एक कौर्म या महाकौर्म आनन्दतीर्थ के भागवततात्पर्य निर्णय में उद्धृत है। देखिये डा० राघवन् द्वारा सम्पादित 'न्यू कैटालागस कैटालोगोरूम' भाग ५ पृ० १११। यह पुराण है या कोई अन्य ग्रन्थ यह निश्चित नहीं है।

७. पादटिप्पणी ३ के अन्त में प्रदत्त मन्तव्य देखिये।

मत्स्यपुराण (५३. ६९) के अनुसार तामसपुराण में अग्नि तथा शिव की महत्ता प्रतिपादित रहती है।[८] स्कन्दपुराण की शंकरसंहिता के शिवरहस्यखण्ड में (अ० २) कूर्मपुराण शिव की प्रशस्ति करने वाले दश पुराणों (अर्थात् शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लैङ्ग, वाराह, स्कन्द, मात्स्य, कौर्म, वामन तथा ब्रह्माण्ड) में समाविष्ट है।[९]

अत: यदि पद्मपुराण के अनुसार कूर्मपुराण तामस वर्ग में आता है तो, जैसा कि शिवरहस्य खण्ड में निर्दिष्ट है, यह शिव का महत्त्व प्रति-पादक माना जाना चाहिये, पद्मपुराण के अनुसार नरकप्रद नहीं। क्योंकि पद्मपुराण का यह कथन साम्प्रदायिक पक्षपात के कारण हो सकता है। पर भविष्यपुराण के मन्तव्यानुसार यदि यह राजसवर्ग में परिगणित किया जाय तो यह कर्मकाण्ड अर्थात् कर्मयोग या वर्णाश्रमाचार का प्रतिपादक माना जाना चाहिये जैसा कि कूर्म-पुराण में वर्णित है, यथा द्र० कूर्मपु० १.१.५९-६०, ९५, ११८, २.६०, ९७;३.२४, २७ इत्यादि।

(ङ) हरि के पृष्ठरूप में मान्य

पद्मपुराण (आनन्द० १ (आदिखण्ड) ६२.२-७) में विभिन्न पुराण भगवान् हरि या विष्णु के विभिन्न अङ्ग कहे गये हैं और इसीलिये यहाँ हरि **पुराणावयव** कहे गये हैं। पद्मपुराण के इस वर्णन में कूर्मपुराण **हरि का पृष्ठ** कहा गया है—कौर्म पृष्ठं समाख्यातम्। कूर्मपुराण को हरि का पृष्ठ बताये जाने की धारणा यह सिद्ध करती है जिस समय विष्णु को **पुराणावयव** कहा गया उस समय कूर्मपुराण को पर्याप्त महत्ता प्राप्त हो चुकी थी।

कूर्मपुराण का विभाग तथा विस्तार

(अ) विभाग

नारदीयपुराण (वेंक० सं० १.१०६) के अनुसार कूर्मपुराण दो भागों में विभक्त था, जिन्हें पूर्व तथा उत्तर विभाग कहा जाता था। सौरपुराण (९.११) भी कूर्मपुराण को दो भागों में विभक्त बताता है—"**कौर्मं भागद्वय-विराजितम्**"। स्कन्दपुराण (५.३.१.४२) भी इस विषय में सौरपुराण का ही अनुगामी है। इसके अतिरिक्त नारदीयपुराण (१.१०६) यह भी कहता है कि समस्त कूर्मपुराण चार संहिताओं में विभक्त है (सुचतु:संहितं शुभम्) और उनके नाम हैं—(१) ब्राह्मी संहिता, (२) भागवती-संहिता जिसे कि पाँच पादों में विभक्त होने से **पञ्चपदी** भी कहा जाता है, (३) छ: भागों में विभक्त (षोढ़ा) सौर संहिता तथा (४) वैष्णवी संहिता-जिसे चार पादों में विभक्त होने से **चतुष्पदी** भी कहते हैं।

अत: नारदीयपुराण (१.१०६) के अनुसार कूर्मपुराण के अधोनिर्दिष्ट विभाग हैं:

विभाग	संहिता	विस्तार
१. पूर्वविभाग		
२. उत्तर विभाग		
जिसमें ये प्रकरण हैं:—		
१. ईश्वरगीता	(१) ब्रह्मीसंहिता	६००० श्लोक
२. व्यासगीता		
३. तीर्थमहात्म्य		
४. प्रतिसर्गकथन		

---

८. तुलनाकीजिये—सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरे:।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदु:॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्या: पितॄणां च निगद्यते॥ (मत्स्य ५३.६८-६९)

९. द्र. जे. इगेलिङ्ग 'डिसक्रिप्टिक कैटलाग आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन द लाइब्रेरी आफ इण्डिया आफिस, ११. संख्या ३६.७१-७२ (हाजरा द्वारा 'स्टडीज इन दि जेनुइन आग्नेयपुराण' नामक निबन्ध, 'अवर हेरिटेज' पत्रिका, भाग १, १९५३ में ४ संख्या की पाद टिप्पणी)।

उत्तर-विभाग (अवशिष्ट)	(२) भागवतीसंहिता (पञ्चपदी)	४००० श्लोक
	(३) सौरीसंहिता (पोढा)	२००० श्लोक
	(४) वैष्णवीसंहिता (चतुष्पदी)	५००० श्लोक

स्वयं कूर्मपुराण भी अपनी इन चारों संहिताओं का उल्लेख इस प्रकार करता है—

इदं तु पञ्चदशमं पुराणं कौर्ममुत्तमम्। चतुर्द्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः ॥
ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिताः। चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः ॥

(१.१.२१-२२)

किन्तु इन चार संहिताओं के नाम निर्देश के अतिरिक्त कूर्मपुराण में अन्य कोई उल्लेख नहीं है। तथापि, ब्राह्मी-संहिता के विषय में सूत कहते हैं कि उनके द्वारा संप्रति वर्णन की जाने वाली संहिता ब्राह्मीसंहिता है और छः सहस्र श्लोकों वाली है :

इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता। भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया ॥ (१. १. २३)

जैसा कि कूर्मपुराण स्वयं बताता है, इसे ब्राह्मीसंहिता इसलिये कहते हैं कि इसमें परब्रह्म का स्वरूप यथार्थ रूप से बताया गया है :—

ब्राह्मी पौराणिको चेयं संहिता पापनाशिनी। अत्र तत् परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः ॥ (२.४४.१३२)

प्रतीत यह होता है कि जिस समय रोमहर्षण सूत ने नैमिषारण्य में ऋषियों से कूर्मपुराण का कथन किया उस समय में वर्तमान कूर्मपुराण ब्राह्मीसंहिता मात्र हो था। क्योंकि वहाँ कहा गया है—

एतद्वः कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम्। कौर्मं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः ॥ (२.४४.६७)

तथा—

एतत् पुराणं परमं भाषितं कूर्मरूपिणा। साक्षाद् देवादिदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना। (२.४४.१२२)

('परमं' पाठ के स्थान पर दो *प्राचीनतम हस्तलेखों* दे८.६ *तथा* दे१.१० में भी 'सकलं' पाठ है।)

(आ) विस्तार

दो भागों तथा चार संहिताओं वाला कूर्मपुराण सत्रह सहस्र श्लोकों का था। (तत् सप्तदशसाहस्रं सुचतुःसंहितं शुभम्—नारदीयपु० १०६.३) और ये चारों संहितायें, जैसा पहले दर्शाया गया है, क्रमशः ६०००, ४०००, २००० और ५००० श्लोकों की थीं (ताः क्रमात् षट्चतुर्द्विपुसाहस्राः प्रकीर्तिताः—श्लोक २२)।

कूर्मपुराण (और संभवतः चार संहिताओं वाले कूर्मपुराण) की श्लोक संख्या कुछ अन्य पुराणों में भी १७००० बतायी गयी हैं। (यथा भागवत पु० १२.१३.८; मत्स्य पु० ५३.४७)[१०]। परन्तु अग्निपुराण के अनुसार कूर्मपुराण ८००० श्लोकों का था (कूर्मं चाष्टसहस्रं च २७२.१९)। यदि अग्निपुराण का यह पाठ अग्नि-पुराण के अन्य हस्तलेखों से भी समर्थित हो तो यह अनुमिति हो सकती है कि वह कूर्मपुराण के किसी संक्षिप्त रूप का, और संभवतः केवल ब्राह्मीसंहिता वाले *अंश का, उल्लेख कर रहा है*, जो *उस समय संभवतः उपलब्ध था*।[११]

कूर्मपुराण की रचना तथा तिथि

डा० आर० सी० हाजरा ने अपने ग्रन्थ 'स्टडीज इन दी पुराणिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स' (पृ० ५७ तथा आगे) में कूर्मपुराण के विषयों के विश्लेषण के आधार पर यह बताया है कि मौलिक कूर्मपुराण वैष्णव था तथा विष्णुपुराण, भागवत एवं हरिवंश की ही भाँति पाञ्चरात्र सम्प्रदाय का ग्रन्थ था पर

१०. द्र. पादटिप्पणी १ भी।

११. पुराणम्' पत्रिका १४.२ (जुलाई १९७२) में मेरा 'द प्राब्लम आफ द इक्सटेन्ट आफ द कूर्मपुराण' शीर्षक निबन्ध भी देखिये जिसमें चार संहिताओं वाले कूर्मपुराण के सिद्धान्त की आलोचना तथा परिष्कार किया गया है और कूर्मपुराण के विस्तार का पुनः संशोधित रूप में विचार किया गया है।

उन तीन पुराणों से इसमें अन्तर यह था कि इन तीन पुराणों में शाक्त-तत्त्व नहीं थे, परन्तु यह पुराण वैष्णव होते हुए भी शक्ति-सम्प्रदाय से प्रभावित था।

इस पुराण में श्री को विष्णु की शक्ति, जगत् का मूल तथा समस्त लोक को मोहित करने वाली विष्णु की माया कहा गया है। ब्रह्मा, ईशान तथा अन्य देवतागण विष्णु की इसी शक्ति के अंश से शक्तिमान् हैं। श्री अथवा विष्णु की शक्ति श्रीकल्प में विष्णु द्वारा उत्पन्न की गयी था और देव, पितर, मनुष्य और वसुओं सहित कोई भी प्राणी इस माया को पार नहीं कर सकता—

इयं सा परमा शक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी। माया मम प्रियाऽनन्ता ययेदं मोहितं जगत् ॥३४॥
अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् द्विजाः। ब्रह्मेशानादयो देवाः सर्वशक्तिरियं मम ॥३७॥
सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका। प्रागेव मत्तः संजाता श्रीकल्पे पद्मवासिनी ॥३८॥
नालं देवा न पितरो मानवा वसवोऽपि च। मायामेतां समुत्तर्तुं ये चान्ये भुवि देहिनः ॥४०॥

(कूर्म पु० १.१)

पाञ्चरात्रों की जयाख्य संहिता शाक्त तत्त्वों से मुक्त है यद्यपि इसमें तान्त्रिक क्रियायें पर्याप्त हैं। "जयाख्यसंहिता की अपनी भूमिका में (पृ० २६-३४) श्री बी० भट्टाचार्य ने इसे लगभग ४५० ई० की कृति माना है" (हाजरा)। अतः मूल या वैष्णव कूर्मपुराण की तिथि डा० हाजरा के अनुसार जयाख्यसंहिता के काल के अनन्तर होगी। कूर्मपुराण पर शाक्त प्रभाव पड़ने का समय १०० वर्ष मानकर डा० हाजरा ने कूर्मपुराण का समय ५५० ई० माना है।

डा० हाजरा के अनुसार मूलतः वैष्णव कूर्मपुराण में बाद में शैवपाशुपतों के सिद्धान्तों का समावेश हो गया और जो कूर्मपुराण पहले पाञ्चरात्र सिद्धान्तों से युक्त था वह शैवपाशुपतों के सिद्धान्तों का परिचायक हो गया। पाशुपतों ने बहुत से विष्णु-परक अध्यायों को बदल डाला और अपने पाशुपत विचार के समर्थक बहुत से आख्यान जोड़ डाले यथा श्रीकृष्ण भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के निमित्त तपस्या करने उपमन्यु के आश्रम में गये और वहाँ महर्षि उपमन्यु ने उन्हें पाशुपतव्रत की दीक्षा दी (कू० पु० १.२४.४८)। कूर्मपुराण (१.२.१०० इत्यादि) में पाशुपत शैवों के साम्प्रदायिक चिह्न त्रिपुण्ड्र का विधान है। ईश्वरगीता (अ० २.१-११) जो मूलतः अवश्यमेव वैष्णव रही होगी हाजरा के अनुसार संपूर्ण रूप से पाशुपतों के द्वारा संशोधित तथा परिवर्तित कर दी गई। स्वयं ईश्वरगीता के ही प्रारम्भ में ऐसा संकेत है कि यह मूलतः विष्णु-कूर्म द्वारा ऋषियों को उपदिष्ट हुई थी—यथा

ततश्च सूतः स्वगुरुं प्रणम्याह महामुनिम्। ज्ञानं तद् ब्रह्मविषयं मुनीनां वक्तुमर्हसि ॥
ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं यन्मे साक्षात् त्वयोदितम्। मुनीनां व्याहृतं पूर्वं विष्णुना कूर्मरूपिणा ॥

—कूर्म पु. २.१.११; १३

किन्तु व्यास ईश्वरगीता को शिव द्वारा सनत्कुमार तथा अन्य ऋषियों को उपदिष्ट बताते हैं—

वक्ष्ये देवो महादेवः पृष्टो योगीश्वरैः पुरा। सनत्कुमारप्रमुखैः स स्वयं समभाषत ॥[१२] (२.१.१५)

१२. इस श्लोक (२.१.१५) के अनुसार ईश्वरगीता का उपदेश महादेव या ईश्वर (शिव) ने सनत्कुमार आदि ऋषियों को दिया और इसी का कथन व्यास ने नैमिषारण्य के ऋषियों को किया। पर २.१.११ तथा १३ श्लोकों के अनुसार इसका उपदेश कूर्म द्वारा नारद आदि ऋषियों को हुआ और व्यास ने सूत को इसे बताया। अतः डा० हाजरा का विचार है कि कूर्म या विष्णु द्वारा प्रोक्त मूल ईश्वरगीता पाशुपतों द्वारा पूर्णतः परिष्कृत या परिवर्तित कर दी गई। पर, प्रश्न यह है कि ११वाँ तथा १३वां श्लोक कैसे पाशुपतों की दृष्टि से उतर गया और उन्होंने इन दोनों श्लोकों को क्यों ज्यों का त्यों छोड़ दिया? हमारे विचार से इस विसंगति को इस प्रकार दूर किया जा सकता है कि कूर्म ने उसी ईश्वरगीता को नारद आदि ऋषियों को बताया जिसे पूर्व में महादेव ने सनत्कुमार तथा अन्य ऋषियों को बताया था और इसे ही व्यास ने अपने शिष्य सूत रोमहर्षण को बताया और बाद में सूत की प्रार्थना पर व्यास ने उसी ईश्वरगीता को नैमिषीय ऋषियों को ईश्वर तथा ऋषियों के संवाद रूप में सुनाया। और तब हम मान सकते हैं कि ईश्वरगीता कूर्मपुराण की मूल रचना में था। इस प्रकार ईश्वरगीता की वक्तृ-श्रोतृ-परम्परा में चार क्रम हैं (i) ईश्वर तथा सनत्कुमार आदि ऋषि, (ii) कूर्म तथा नारद आदि ऋषि (iii) व्यास तथा रोमहर्षण सूत और (iv) व्यास तथा नैमिषारण्यवासी ऋषिगण। डा० हरप्रसाद शास्त्री का भी विचार था कि किसी पुराण में कम से कम तीन-तीन वक्ता श्रोता होना चाहिये (द्र. उनका 'डिस्क्रिप्टिव कैटलाग, भाग ५ भूमिका)। संपूर्ण कूर्मपुराण में भी तीन वक्ता-श्रोता है—(१) कूर्म तथा इन्द्रद्युम्न (२) कूर्म तथा ऋषि और (३) रोमहर्षण सूत तथा नैमिषारण्य के ऋषिगण।

इसीप्रकार मूल कूर्मपुराण के वहुत से अध्याय परिवर्तित कर डाले गये और वहुत से नये अध्याय (यथा कूर्मपुराण के उपरिविभाग में शिव-प्रशस्ति से पूर्ण सम्पूर्ण तीर्थ-वर्णन वाले अध्याय) जोड़ दिये गये। इस प्रकार कूर्मपुराण का अन्तिम स्वरूप पूर्णतः पाशुपत वन गया।

पाशुपतों द्वारा संस्कृत, संग्रहीत, सम्पादित कूर्मपुराण में शाक्तों का केवल 'वाम' नामक वर्ग का ही उल्लेख है। किन्तु याज्ञवल्क्य-स्मृति के टीकाकार अपरार्क, वाम और दक्षिण दोनों भेदों से सुपरिचित है। कूर्मपुराण आगमों से परिचित प्रतीत नहीं होता। आगमों का प्रचार लगभग ८०० ई० में हुआ (हाजरा, तत्रैव पृ० ७०)। अतः पाशुपत कूर्मपुराण ८०० ई० से परवर्ती नहीं हो सकता। डा० हाजरा के अनुसार मूल वैष्णव कूर्मपुराण तथा इसका संशोधित पाशुपत रूप क्रमशः ५५०-६५० ई० के मध्य तथा ७००-८०० ई० के मध्य के काल में वने।

तथापि यह उल्लेख्य है कि जयाख्य-संहिता में शाक्त प्रभाव का अभाव तथा कूर्मपुराण में पाशुपतों के दक्षिण वर्ग के उल्लेख का अभाव केवल निषेधात्मक हेतु ही हैं। अतः उन्हें इस पुराण के समय के विषय में निश्चित तथा वैध (या स्वीकारात्मक) साक्ष्य नहीं माना जाना चाहिये।

डा० हाजरा ने कूर्मपुराण के स्मृति-अध्यायों के, जो कि उनके विशेष विवेच्य विषय थे, काल-क्रम का भी विवेचन किया है। उनके विचार से ईश्वरगीता (२.१-११) तथा अध्याय ४३ के वीच में अन्य अध्याय नहीं थे। अतः व्यासगीता (२.१२-३३) तथा तीर्थों के माहात्म्यख्यापक तदुत्तरवर्ती अध्याय कूर्मपुराण के पुनः संस्करण के समय पाशुपतों द्वारा प्रक्षिप्त किये गये। इस विचार की पुष्टि में वे २.४३ के निम्नलिखित प्रारम्भिक श्लोकों को उद्धृत करते हैं :—

कथितो भवता धर्मो मोक्षज्ञानं सविस्तरम्। लोकानां सर्गविस्तारो वंशो मन्वन्तराणिच ।।
इदानीं देवदेवेश प्रलयं वक्तुमर्हसि। भूतानां भूतभव्येश यथा पूर्वं त्वयेरितम् ।।
—(२.४३.२-३)

उनके विचार से ऊपर निर्दिष्ट प्रथम श्लोक में आया धर्म शब्द व्यासगीता का निर्देश न कर वहुत पहले ही आये (अर्थात् कूर्म. १.२.३) तथा मूल वैष्णव कूर्मपुराण से संवद्ध स्मृति-भाग को निर्दिष्ट करता है। किन्तु, आचार, अशौच, दान, वर्णाश्रम धर्म तथा प्रायश्चित्त (२.१२-३३) तथा तीर्थ (२.३४-४२) जैसे शुद्ध धर्म-शास्त्रीय विषयों से पूर्ण व्यासगीता को धर्म के क्षेत्र से पृथक् करने का कोई हेतु नहीं है। अतः यह सम्भव है कि ये अध्याय (व्यासगीता तथा तीर्थमाहात्म्य वाले अध्याय) भी मूल कूर्मपुराण के थे तथा वाद में पाशुपतों द्वारा संशोधित किये गये। कूर्मपुराण के पूर्व भाग के प्रथम दो अध्यायों को डा० हाजरा ने मूल (वैष्णव) कूर्मपुराण का अंश माना है। प्रथम अध्याय में इन्द्रद्युम्न ने कूर्म से वर्णों तथा आश्रमों के आचार, भावनात्रय-आश्रित ज्ञान, सृष्टि तथा प्रलय की प्रक्रिया, सर्गों के प्रकार, वंश, मन्वन्तर तथा उनका कालमान, पावन-व्रतों, तीर्थों तथा भुवन-कोश वर्णन करने की प्रार्थना की है :

के ते वर्णाश्रमाचारा यैः समाराध्यते परः। ज्ञानं च कीदृशं दिव्यं भावनात्रयसंस्थितम् ।।
कथं सृष्टमिदं पूर्वं कथं संह्रियते पुनः। कियत्यः सृष्टयो लोके वंशा मन्वन्तराणि च ।।
कानि तेषां प्रमाणानि पावनानि व्रतानि च। तीर्थान्यर्कादिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरे ।।
कति द्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च नदीनदाः। ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्ष यथावदधुनाऽखिलम् ।।
—(१.१.९६-९८)

ये श्लोक साररूप से कूर्मपुराण के विषय का वर्णन करते हैं और इन श्लोकों में वर्णाश्रमाचार और तीर्थ भी कूर्मपुराण के विषय के रूप में वर्णित हैं। व्यासगीता में वर्णाश्रमाचार का विस्तृत विवेचन है। यद्यपि तीर्थों का वर्णन पूर्व भाग के २९-३९ अध्यायों में भी है, तथापि वह केवल वाराणसी और प्रयाग तथा उन दोनों स्थलों के अन्य तीर्थों के माहात्म्य का ही वर्णन है। अतः अवशिष्ट तीर्थ उत्तर भाग में व्यासगीता के अनन्तर वर्णित हुए हैं। अतः यह संभव है कि व्यासगीता तथा तदुत्तरवर्ती तीर्थ वर्णन वाले अध्याय भी मूल कूर्मपुराण में रहे हों।

किसी के साम्प्रदायिक विचार के प्रचार-प्रसार के लिये पुराण सर्वोत्तम साधन रहे हैं। अतः हमें पुराणों में कुछ साम्प्रदायिक चिह्न भी मिलते हैं। तथापि वर्तमान पुराण भी मुख्यरूप से साम्प्रदायिक नहीं हैं। वस्तुतः पुराणों में ऐसा विषय बहुत अधिक नहीं है जिसे शुद्ध साम्प्रदायिक कहा जा सके। पुराणों और विशेषतः मान्य महापुराणों पर दृष्टिपात करने पर उनमें साम्प्रदायिक पक्षपात विहीन त्रितत्त्व की भावना सरलता से प्राप्त हो सकती है। परं ब्रह्म, सर्वोच्च चेतन तत्त्व कभी विष्णु नाम से, कभी शिव नाम से और कभी ब्रह्मा नाम से अभिहित किया गया है। कभी-कभी ये त्रिदेव भी पृथक् रूप से परं ब्रह्म के साथ एक माने गये हैं और कभी-कभी प्रसङ्गानुकूल परस्पर भी एक माने गये हैं। परन्तु कभी-कभी एक देवता भी प्रसङ्गानुकूल, न कि पक्षपातवश, दूसरे देवता से श्रेष्ठ माना गया है। वस्तुतः पुराणों के अनुसार परं ब्रह्म तथा त्रिदेव रूप में उसकी अभिव्यक्ति तथा एक देव और दूसरे देव में कोई अन्तर नहीं है। कालिदास बड़े ही स्पष्ट शब्दों में इस तथ्य को कुमारसम्भव में उद्घाटित करते हैं :

एकैव मूर्तिर्विभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचित् वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ॥ (७.४४)

कूर्मपुराण के बहुत से स्थलों में भी इस व्यापक भावना के साथ साम्य है। कभी-कभी ये तीनों देवता परमेष्ठी, ईशान, महायोग आदि एक ही नाम या विशेषण से अभिहित किये गये हैं। उपमन्यु के आश्रम में कृष्ण की तपश्चर्या तथा पाशुपत-व्रत ग्रहण करने के आख्यान में श्रीकृष्ण कर्ता, रक्षक तथा विनाशक, रूपविहीन तथा रूपवान् बताये गये हैं—

अयमेवाव्ययः स्रष्टा संहर्त्ता चैव रक्षकः। अमूर्त्तो मूर्त्तिमान् भूत्वा मुनीन् द्रष्टमिहागतः॥
—(कूर्मपु० १.२४.१७)

जयध्वज के आख्यान (१.२१) में जयध्वज के चारों भाई जो शिव के दृढ़ भक्त थे, विदेह असुर के द्वारा पराजित हो गए किन्तु विष्णुभक्त जयध्वज ने विष्णु के चक्र की सहायता से विदेह असुर को मार डाला।

क्योंकि पुराण लोकप्रिय साहित्य थे अतः या तो उनकी रचना के समय या उनके परिष्कार के समय बिना किसी साम्प्रदायिक पक्षपात या पूर्वाग्रह के उनमें विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की लोकप्रिय धारणाएँ सम्मिलित हो गयीं। यह भी सम्भव है कि पुराणों में प्राप्त मतों के विविध प्रकार मूल ग्रन्थों के ही अंग रहे हों क्योंकि पुराण प्रायेण विविध सम्प्रदायों के विचारों में भेद नहीं मानते। वस्तुतः पुराणों ने उन धारणाओं को समन्वयात्मक रूप में उपस्थित किया है। जयध्वज के आख्यान में कूर्मपुराण की अधोनिर्दिष्ट उक्ति द्रष्टव्य है :

या यस्याभिमता पुंसः सा हि तस्यैव देवता। किन्तु कार्यविशेषेण पूजिता चेष्टदा नृणाम्॥ (१.२१.३९-४०)

कूर्मपुराण में ऐसे समन्वयात्मक वचन उन अंशों में भी पाये जाते हैं जो साम्प्रदायिक प्रक्षेप प्रतीत होते हैं। अतः यह असंभव नहीं है कि पाशुपत-सिद्धान्तों के प्रतिपादक बृहदंश या आख्यान भी मूल कूर्मपुराण के ही अंश रहे हों।

किन्तु कूर्मपुराण में यत्र-तत्र कुछ पंक्तियाँ ऐसी भी मिलती हैं जो सम्प्रदायिकों द्वारा बाद में जोड़ी गयी प्रतीत होती हैं। उपर्युक्त जयध्वज-आख्यान में कहा गया है कि विष्णु का एकनिष्ठ भक्त जयध्वज विष्णु को रुद्र का सर्वोच्च रूप मानकर उनकी उपासना करता था :—

जयध्वजोऽपि तं विष्णुं रुद्रस्य परमां तनुम्। इत्येव सर्वदा बुद्ध्वा यज्ञेनायजदच्युतम्॥ (पा० स० सं० *२२., पृ०२०१)

यह श्लोक बाद में किसी रुद्र-भक्त द्वारा प्रक्षिप्त प्रतीत होता है क्योंकि यह बहुत से हस्तलेखों में, और विशेषतः दाक्षिणात्य हस्तलेखों में अनुपलब्ध है। अतः यह तो नहीं कहा जा सकता कि कूर्मपुराण में प्रक्षिप्तांश नहीं हैं पर वे अधिक नहीं हैं—कुछ पंक्तियाँ ही इधर-उधर बिखरी हैं और वे सरलता से, प्रामाणिक पाठ-प्राप्ति के दो प्रमुख साधनों—हस्तलेखों और निबन्ध ग्रन्थों—की सहायता से पहचानी जा सकती हैं।

२. वर्तमान कूर्मपुराण

प्रचलित पाठ

(अ) मुद्रित संस्करण

कूर्मपुराण का प्रचलित पाठ अधोनिर्दिष्ट मुद्रित प्रतियों में उपलब्ध हैं :

१. मद्रास, १८७५ ई० । तेलगुलिपि-वर्तमान-तरङ्गिणी प्रेस मद्रास से मुद्रित ।

२. कलकत्ता, १८९० ई० । देवनागरीलिपि विब्लिओथिका इण्डिका सीरिज सं० १११ । नीलमणि मुखोपाध्याय द्वारा सम्पादित एशियाटिक सोसाइटी बंगाल द्वारा प्रकाशित ।

३. कलकत्ता, १९०५ । बंगलालिपि । बंगला-अनुवाद सहित । पञ्चानन तर्करत्न द्वारा संपादित, वङ्गवासी प्रेस द्वारा मुद्रित ।

४. बम्बई, १९०६ तथा १९२६ । देवनागरीलिपि । पत्रानुसारी । वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा मुद्रित ।

५. कलकत्ता, १९६२ । देवनागरीलिपि । गुरुमण्डल सीरिज सं० २२ (मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता—१)

६. *वाराणसी, १९६८ । देवनागरीलिपि । शब्दानुक्रमणी-सहित । डा० रामशंकर भट्टाचार्य द्वारा संपादित ।*

इन छः मुद्रित संस्करणों में सं ५ (गुरुमण्डल सीरिज संस्करण) सं ४ (वेङ्कटेश्वर प्रेस संस्करण) का अनुसरण करता है और सं० ६ (वाराणसी संस्करण) कलकत्ता के बंगवासी प्रेस संस्करण पर आधृत है। शेष चारों संस्करण परस्पर अध्यायों की संख्या और यत्र-तत्र पाठों में भी भेद रखते हैं। यहाँ इन चारों संस्करणों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है :—

१. तेलगु संस्करण (मद्रास १८७५ ई०)—इस संस्करण की एक प्रति इण्डिया आफिस लाइब्रेरी लन्दन में (सं० ९८७) सुरक्षित है। इसकी पृष्ठ संख्या [१], ६, ८, २७२, ४७ है। तथा आकार २५ × १७ से०मी० है। इस संस्करण की एक फोटो स्टेट प्रति वहीं से प्राप्त की गई है। रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन ने अपने टाड कैटलाग, सं० ३९ से उद्धृत करके दो भागों वाले इस संस्करण के अध्यायों को संख्या (५० + ४६) के बारे में और सूचनायें हमें भेजी हैं। इस तेलगु संस्करण के बारे में विस्तृत विवरण कूर्मपुराण के पाठ-समीक्षात्मक संस्करण के परिशिष्ट में दिया गया है।

२. विब्लिओथिका इण्डिका देवनागरी संस्करण (कलकत्ता १८९०)—यह संस्करण आठ हस्तलेखों जिनकी संख्या यहाँ ए से एच तक दी गई है—के आधार पर तैयार किया गया हैं। इन हस्तलेखों में बी संख्या वाला हस्तलेख बंगलालिपि में है और शेष सातों हस्तलेख देवनागरी में हैं। हस्तलेख डी० और एफ० अपूर्ण हैं तथा पूर्वार्ध के लगभग ५० अध्याय ही उनमें है। हस्तलेख संख्या जी० और एच० उस समय दकन कालेज पूना में संग्रहीत राजकीय संग्रह के थे। (परन्तु संप्रति भण्डारकर-प्राच्य-शोध-संस्थान में है और उन आठों हस्तलेखों में प्राचीनतम थे। ये कूर्मपुराण के पाठसमीक्षात्मक—संस्करण (भूमिका) में वर्णित दे 8 और दे 9 हस्तलेख हैं। यह संस्करण मुख्यतः इन्हीं दो जी० तथा एच०—हस्तलेखों पर आवृत है जो परस्पर सामान्यतः मिलते हैं यद्यपि कहीं-कहीं भिन्न भी हैं। इस संस्करण में श्लोकों की संख्या नहीं दी गई है। इसमें पृष्ठ ४७ [१], ८०० तथा आकार २३ × १५ सें०मी०।

३. बंगवासी प्रेस का बँगला संस्करण (कलकत्ता, १९०५)—

यह संस्करण सामान्यतः कुछ बंगाली हस्तलेखों पर आवृत है क्योंकि यह संस्करण सामान्यतः हमारे यहाँ पाठसमीक्षात्मक-संस्करण के लिये संवादित हस्तलेखों के पाठों से मिलता है। पर इस संस्करण में उन हस्तलेखों का उल्लेख नहीं है जिनपर इसका पाठ आधृत है। इसका आकार २२ × १४ से० मी० है तथा पृष्ठों की संख्या [३] २,४२२। संस्कृत मूल के साथ बंगला में अनुवाद भी दिया गया है।

४. वेङ्कटेश्वर प्रेस-देवनागरी संस्करण (बम्बई १९७६, १९२६)—

इसकी भूमिका से ज्ञात होता है कि यह संस्करण तीन हस्तलेखों—एक बम्बई तथा दो अमृतसर (पंजाब) से प्राप्त—पर आवृत है। १९०६ ई० के संस्करण में ३,१३५ पत्र हैं तथा १९२६ वाले संस्करण में २,१६३ पत्र

हैं। दोनों संस्करण पत्राकार हैं और लगभग २६×१८ से०मी० आकार के हैं। इसका पाठ प्रायः केवल उत्तरार्ध की अध्याय संख्या को छोड़कर बिब्लिओथिका इण्डिका संस्करण से मिलता है।

(आ) मुद्रित संस्करणों के अध्यायों की संक्षिप्त तुलना

इन सभी संस्करणों में कूर्मपुराण का पाठ दो भागों में विभक्त है—पूर्वविभाग और उत्तर (या उपरि) विभाग। उपरिनिर्दिष्ट चारों संस्करणों के अध्याय निम्नलिखित प्रकार से विभक्त हैं :

		पूर्वविभाग	उत्तरविभाग
१.	तेलगुसंस्करण	५०	४६
२.	बिब्लि. इण्डिका संस्करण	५३	४५
३.	वङ्गवासी संस्करण	५२	४४
४.	वेङ्कटेश्वर संस्करण	५३	४६

अन्तिम तीनों संस्करणों के अध्यायों का संक्षिप्त संवाद नीचे दिया जा रहा है :

पूर्वविभाग

बिब्लि. इण्डि. संस्करण	वङ्गवासी संस्करण	वेङ्कटे. सं०
१-२७	१-२७	१-२७
२८-२९	२८	२८-२९
३०-५३	२९-५२	३०-५३

उत्तरविभाग

१-३१	१-३१	१-३१
३२-३३	३२	३२-३३
३४-३७	३३-३६	३३-३७
३८	३७	३८-३९
३९-४५	३८-४४	४०-४६

(टिप्पणी—पाठसमीक्षात्मक सं० के अध्यायों और श्लोकों का वें० सं० के अध्यायों और श्लोकों के साथ विस्तृत संवाद पा० स० सं० की भूमिका में दिया गया है।

प्रचलित पाठ का परिमाण

वेङ्कटेश्वर संस्करण में श्लोकों की संख्या गणनासे ५८९७—पूर्वविभाग में ३१९५ तथा उपरिविभाग में २७०२—आती है। यद्यपि बिब्लि० इण्डि० सं० में श्लोकों पर संख्या नहीं दी है, पर उनकी भी संख्या यथासंभव वें० सं० के ही समान होगी। अन्य संस्करणों की श्लोक संख्या भी अधिक संभव रूप में लगभग इतनी ही होगी।

प्रचलित पाठ तथा पा० पं० सं० में दिया गया पाठ भी नारदीयपुराण (१.१०६.२२) तथा कूर्मपुराण (१.१.२३) में बताये गये ब्राह्मीसंहिता (६००० श्लोक) के पाठ के बराबर है।

कूर्मपुराण के विषयों का विश्लेषण

नारदीयपुराण (१.१०६) में दिये गये कूर्मपुराण के विषयों से वर्तमान कूर्मपुराण के विषय प्रायशः मिलते हैं। कूर्मपुराण के अन्त में दी हुई अनुक्रमणिका में भी कूर्मपुराण के विषयों का उल्लेख है। कूर्मपुराण के दो प्राचीनतम हस्तलेखों (हमारे पा० स० सं० के दे ८.९) में, जो कि भण्डारकर-प्राच्यशोधसंस्थान से मिले हैं, पुष्पिका के अनन्तर उनकी स्वयं की अनुक्रमणिका है, पर यह अनुक्रमणिका दोनों हस्तलेखों में अपूर्ण है और एक सी ही है।

गवर्नमेण्ट मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी मद्रास में पुराण-सूची, नामक हस्तलेख है, जिसकी सं० डी २३३४ है, उसकी प्रतिलिप डा० वें० राघवन् की सहायता से हमें मिली है, इसमें कूर्मपुराण के विषयों का भी संनिवेश है। इसमें भी कूर्मपुराण दो भागों में विभक्त है और प्रथमभाग को पूर्वभाग तथा द्वितीयभाग को उत्तरभाग कहा गया है। परन्तु दोनों भागों के अध्यायों की संख्या लगातार है। पूर्वभाग अ० ५० पर समाप्त होता है और उत्तरभाग अध्याय ९३ के बाद।

नारदीयपुराण (१.१०६.१) तथा मत्स्यपुराण (५३.४७) के अनुसार कूर्मपुराण लक्ष्मीकल्प के विवरणों का विवेचन करता है (लक्ष्मीकल्पानुचरितम्, ना. पु.; लक्ष्मीकल्पानुगं शिवम्, मत्स्य पु०)। पर वर्तमान कूर्मपुराण में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं है। तथापि कूर्मपुराण के प्रारंभ में यह उक्ति है कि श्री या लक्ष्मी पहले श्रीकल्प में भी उत्पन्न हुई थीं। (प्रागेव मत्तः संजाता श्रीकल्पे पद्मवासिनी १.१३८) और अन्तिम अध्याय में भी कहा गया है कि 'इस पुराण में लक्ष्मी की उत्पत्ति पहले कही गयी है (अस्मिन् पुराणे लक्ष्म्यास्तु संभवः कथितः पुरा, २.४४.८०) और वह कल्प जिसमें लक्ष्मी प्रादुर्भूत हुई कही गयी हैं लक्ष्मीकल्प कहा गया है।

नारदीयपुराण में जो प्रायः ९वीं या १०वीं सदी का माना जाता है, कूर्मपुराण के विषय निम्नलिखित प्रकार से निर्दिष्ट हैं—

।। ब्रह्मोवाच ।।

श्रृणु वत्स मरीचे त्वं पुराणं कूर्मसंज्ञकम्। लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत्र कूर्मवपुर्हरिः ।।१
धर्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यं च पृथक् पृथक्। इन्द्रद्युम्नप्रसंगेन प्राहर्षिभ्यो दयान्वितः ।।२
तत्सप्तदशसाहस्रं सुचतुःसंहितं शुभम्। यत्र ब्राह्माः पुरा प्रोक्ताः धर्मा नानाविधा मुने ।।३
नानाकथाप्रसंगेन नृणां सद्गतिदायकाः। तत्र पूर्वविभागे तु [1]पुराणोपक्रमः पुरा ।।४
[2]लक्ष्मीन्द्रद्युम्नसंवादः [3]कूर्मर्षिगणसंकथा। [4]वर्णाश्रमाचारकथा [5]जगदुत्पत्तिकीर्तनम् ।।५
[6]कालसंख्या समासेन [7]लयान्ते स्तवनं विभोः। ततः [8]संक्षेपतः सर्गः [9]शांकरं चरितं तथा ।।६
[10]सहस्रनाम पार्वत्या [11]योगस्य च निरूपणम्। [12]भृगुवंशसमाख्यानं ततः [13]स्वायम्भुवस्य च ।।७
[14]देवादीनां समुत्पत्ति[15]र्दक्षयज्ञाहतिस्ततः। [16]दक्षसृष्टिकथा पश्चात् [17]कश्यपान्वयकीर्तनम् ।।८
[18]आत्रेयवंशकथनं [19]कृष्णस्य चरितं शुभम्। [20]मार्त(र्क)ण्डकृष्णसंवादो [21]व्यासपाण्डवसंकथा ।।९
[22]युगधर्मानुकथनं [23]व्यासजैमिनिकीर्तनम्। [24]वाराणस्याश्च माहात्म्यं [25]प्रयागस्य ततः परम् ।।१०
[26]त्रैलोक्यवर्णनं चैव [27]वेदशाखानिरूपण। उत्तरेऽस्या विभागे तु पुरा [28]गीतैश्वरी ततः ।।११
[29]व्यासगीता ततः प्रोक्ता नानाधर्मप्रबोधिनी। [30]नानाविधानां तीर्थानां माहात्म्यं च पृथक् ततः ।।१२
[31]प्रतिसर्गप्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता। अतः परं भागवतीसंहितार्थनिरूपणम् ।।१३
कथिता यत्र वर्णानां पृथग् वृत्तिरुदाहृता। पादेऽस्याः प्रथमे प्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः ।।१४
सदाचारात्मिका वत्स भोगसौख्यादिवर्द्धनी। द्वितीये क्षत्रियाणां तु वृत्तिः सम्यक्प्रकीर्तिता ।।१५
यया त्वाश्रितया पापं विधूयेह व्रजेद्दिवम्। तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ।।१६
यया चरितया सम्यग् लभते गतिमुत्तमाम्। चतुर्थेऽस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता ।।१७
यया संतुष्यति श्रीशो नृणां श्रेयोविवर्द्धनः। पञ्चमेऽस्यास्ततः पादे वृत्तिः संकरजोदिता ।।१८
यया चरितयाप्नोति भाविनीं गतिमुत्तमाम्। इत्येषा पञ्चपद्युक्ता द्वितीया संहिता मुने ।।१९
तृतीयाऽत्रोदिता सौरी नृणां कार्यविधायिनी। षोढा षट्कर्मसिद्धिं बोधयन्ती च कामिनाम् ।।२०
चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीर्तिता। चतुष्पदी द्विजातीनां साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणी ।।२१
ताः क्रमात् षट्चतुर्द्वीपुसाहस्राःपरिकीर्तिताः ।।२२
एतत्कूर्मपुराणं तु चतुर्वर्गफलप्रदम्। पठतां श्रृण्वतां नृणां सर्वोत्कृष्टगतिप्रदम् ।।२३

नारदीयपुराण (१.१०६/४^{cd}-१३^{ab} ऊपर उद्धृत) में वर्णित कूर्मपुराण को ब्राह्मी-संहिता के विषयों का वर्तमान कूर्मपुराण के विषयों से संवाद यह प्रदर्शित करेगा कि वर्तमान कूर्मपुराण नारदीयपुराण में वर्णित कूर्मपुराण की ब्राह्मी-संहिता का ही प्रतिनिधित्व करता है।

पूर्वविभाग

नारदीयपुराण (वें. सं.)	कूर्मपुराण (पा. स. सं.)
१. पुराणोपक्रमः (पुराण का उपक्रम या आरंभ)	१.१.१-२६
२. कूर्मर्षिगणसंकथा (कूर्म तथा ऋषियों का संवाद-प्रारंभ)	१.१.१३१ आदि, ११६ आदि
३. लक्ष्मीन्द्रद्युम्नसंवादः (लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्न का संवाद)	१.१.५५-६४ [इन्द्रद्युम्न द्वारा विष्णुपूजा; विष्णु का प्राकट्य; इन्द्रद्युम्न द्वारा विष्णु की स्तुति; इन्द्रद्युम्न द्वारा विष्णु से अपने कर्त्तव्यों के प्रति जो कि जगत् हितकारी भी हैं जिज्ञासा]
४. वर्णाश्रमाचार-कथा (वर्णों तथा आश्रमों का एवं उनके कर्त्तव्यों का विवरण)	१.१.५-१००; २.११-२०; २९-१०८; ३. [इसमें परब्रह्म के स्वभाव, विष्णु, तीन भावनाओं तथा मोक्ष प्राप्ति के निमित्त ज्ञान, भक्तियोग एवं कर्मयोग द्वारा महेश्वर की आराधना का भी संक्षिप्त वर्णन है]
५. जगदुत्पत्तिकीर्त्तनम् (जगत् की उत्पत्ति का वर्णन)	१.२.३-१०, २१-२७; ४. [इसमें ब्रह्मा, रुद्र, तथा नारायणी, महामाया और मूलप्रकृति नामों से भी ख्यात श्री और नव ब्रह्मा नाम से ख्यात नव ऋषियों की सृष्टि, चारों वर्णों की उत्पत्ति एवं उनके धर्म, आश्रम तथा उनके धर्म का भी वर्णन है; तदनन्तर प्राकृतसर्ग अर्थात् मुख्यतः सांख्य-सिद्धान्तानुसार प्रकृति से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है]
६. कालसंख्या (काल का विभाग और उनका मान, युग, कल्प, मन्वन्तर इत्यादि)	१.५
७. लयान्ते स्तवनं विभोः (प्रलय के अन्त में वाराह नामक ब्रह्मा-नारायण तथा उनकी जन-लोक-निवासी सिद्धों द्वारा स्तुति)	१.६.११-२१ [१-१० जगत् की एकार्णव स्थिति; प्रलय-जल से पृथिव्युद्धारार्थ ब्रह्मा-नारायण द्वारा वराह-रूप-धारण; पृथिवी का उद्धार]
८. संक्षेपतः सर्गवर्णनम् (जगत् की सृष्टि का संक्षिप्त वर्णन)	१.७; १०.१२-३८, ७४-८८ [१०.१-११ ब्रह्मा की प्रार्थना से विष्णु द्वारा मधु और कैटभ नामक दो असुरों का वध, ब्रह्मा का नारायण में एकीभूत होने और प्रलय-जल में सोने का वर्णन; ३९-७१ शंकर क्यों स्थाणु हुए इसका विवरण, उनके १० स्थायी गुण, ब्रह्मा द्वारा उनकी स्तुति ।] [नव सर्गों की उत्पत्ति, ब्रह्मा के मानस पुत्रों की सृष्टि, ब्रह्मा के ललाट से रुद्र की उत्पत्ति, रुद्र और ब्रह्मा की सृष्टि, तथा स्वायंभुव दक्ष की त्रयोदश कन्याओं से धर्म की सन्तानों का वर्णन ।]

९. शांकरं चरितम् — १. ९; १०. २२-८४; ११. १-६
(शंकर-चरित्र) — [११.७ तथा आगे पार्वती-जन्म]

[१.९ में पद्मोद्भव-प्रादुर्भाव अर्थात् विष्णु की नाभि से निकले पद्म से ब्रह्मा का उद्भव, भी समाविष्ट है।]

१०. सहस्रनाम पार्वत्याः — १. ११. ७५-२१०
(पार्वती के सहस्रनाम) — [११.१ तथा आगे पार्वती माहात्म्य; ११.२०० तथा आगे हिमवान् द्वारा पार्वती की सर्वोच्च-शक्ति रूप में स्तुति, उनकी विभूतियों का वर्णन तथा स्तुति आदि]

११. योगस्य निरूपणम्
(पार्वती के द्वारा हिमवान् से ईश्वर-योग का वर्णन) — १. ११. २५८-३१३

१२. भृगुवंशसमाख्यानम्
(भृगु के वंश का वर्णन) — १. १२. १-३; १८. १७

[वस्तुतः यहां (अ. १२ में) कूर्मपुराण केवल दक्षकन्या-ख्याति से भृगु के वंश का ही विवरण नहीं देता है, अपितु अन्य सप्तर्षियों, मरीचि, पुलह, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, क्रतु तथा वसिष्ठ और वह्नि (अग्नि),तथा पितरों की स्वायंभुव दक्ष की कन्याओं से उत्पन्न वंश का भी विवरण देता है, जैसा कि पूर्व अध्याय का अंतिम श्लोक (११. ३३६) बताता है–"अतः परं प्रजासर्गं भृग्वादीनां निबोधत"। किन्तु नारदीयपुराण में अपूर्ण विषय 'भृगुवंशसमाख्यानं' का उल्लेख संभवतः इस श्लोक के "भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना" पर आधृत है जिससे कि यह अध्याय प्रारम्भ होता है। यह स्वायंभुव मन्वन्तर में ऋषियों के वंश का विवरण है जब कि अध्याय १८ में इन्हीं ऋषियों (या इसी नाम के ऋषियों) के वैवस्वत मन्वन्तर में उनकी अन्य स्त्रियों से वंशों का वर्णन है। तुलना कीo १८.१६—अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे।]

१३. स्वायंभुववंशकथनम् — १.१३ (तु० की० ८.८ इत्यादि भी)
(स्वायंभुव मनु के वंश का वर्णन)

[इस विवरण में पृथु-वेन का आख्यान, रोमहर्षण सूत की उत्पत्ति, पृथु के पौत्र सुशील का वर्णन तथा श्वेताश्वतर ऋषि द्वारा सुशील को पाशुपतशास्त्र की दीक्षा तथा शिव के शापवश प्राचेतस दक्ष की उत्पत्ति का वर्णन भी समाविष्ट है (तु० की० ५४-६३)]

१४. देवादीनां समुत्पत्तिः — १.१४.१; १५.८-१८
(देवों तथा असुर, नाग, गन्धर्व आदि अन्यों की उत्पत्ति)

[१५.८ इत्यादि-धर्म के द्वारा दक्ष की दस कन्याओं से विश्वेदेवों, साध्यों, मरुत्वतों, वसुओं आदि की उत्पत्ति; कश्यप द्वारा दक्ष की अदिति तथा दिति नामक कन्याओं से क्रमशः आदित्यों (देवों) एवं दैत्यों की उत्पत्ति। दैत्यों के विवरण में यहाँ हिरण्यकशिपु-नृसिंह, हिरण्याक्ष-वराह एवं प्रह्लाद तथा हरि का युद्ध; गौतम का ऋषियों को शाप तथा उनका नास्तिक रूप से जन्म एवं अन्धक तथा शिव के युद्ध के आख्यान समाविष्ट हैं। अ० १६—प्रह्लाद की सन्तानें तथा बलि-वामन-चरित।

अ० १७—वलि की सन्तानें तथा वाण-चरित एवं उसके पुर का शिव द्वारा दाह, दक्ष की अन्य कन्याओं से दानवों, गन्धर्वों, नागों, यक्षों, राक्षसों, ऋषियों, गरुड तथा अरुण एवं देवायुधों आदि की उत्पत्ति; अ० १८—कश्यप, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, अत्रि तथा अन्य ऋषियों की सन्तानें ।]

१५. दक्षयज्ञविध्वंसनम् १.१४.२-७९
(दक्ष के यज्ञ का शिव द्वारा विनाश)
[इस विवरण में दक्ष-यज्ञ में उपस्थित ऋषियों को दधीचि द्वारा शाप भी वर्णित है; श्लो० २५-३३]

१६. दक्षसृष्टिकथा १.१५.१-७
(दक्ष द्वारा की गई सृष्टि का वर्णन)
[इसमें दक्ष की मैथुनी सृष्टि का भी समावेश है—प्रजापति वीरण की कन्या से दक्ष के एक सहस्र पुत्र तथा साठ कन्यायें ।]

१७. कश्यपान्वयकीर्तनम् १. १९-२३. ८५; २६. १-४, २१-२२
(कश्यप और अदिति से उत्पन्न सूर्य तथा चन्द्र वंश का वर्णन)

१८. आत्रेयवंशकथनम् १. १२. ७-८; १८. १८ इ०
(अत्रि के वंश का वर्णन)
[१२. ७-८ में अत्रि और दक्षपुत्री अनसूया की सन्तानों का वर्णन है; जवकि १८. १८-१९ में अत्रि की अन्य पत्नियों से सन्तानों का वर्णन है । सं० १९.२६ab में पाठ है—'एतेऽत्रिवंशाः कथिता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनाम्' अतः यह पाठ स्पष्टतः भ्रष्ट है । नारदीय-पुराण में यहाँ आत्रेयवंश कथनं, वें० सं० के इसी भ्रष्ट पाठ पर आधृत प्रतीत होता है । परन्तु तु० की० पा० स० सं० का पाठ १. १८. २७]

१९. कृष्णस्य चरितं शुभम् १. २३. ८२-२६. १, ३-२०
(कृष्ण का मङ्गलमय चरित्र)
[इसमें पुत्रप्राप्त्यर्थ उपमन्यु के आश्रम में श्रीकृष्ण का शंकर को तुष्ट करने के लिये तपस्या का वर्णन है और उपमन्यु द्वारा श्रीकृष्ण की पाशुपत-व्रत में दीक्षा का वर्णन है । २७. ३-२० में कृष्ण द्वारा इस लोक का त्याग तथा विष्णुलोक गमन वर्णित है ।]

२०. मार्कण्डेयकृष्णसंवादः १. २६. ५१-१०७
(मार्कण्डेय कृष्ण संवाद जिसमें कृष्ण शिवलिङ्ग पूजा का माहात्म्य वताते हैं)
[अतः १. २६ को लिङ्गाध्याय कहते हैं । तु० की०—
य इमं श्रावयेन्नित्यं लिङ्गाध्यायमनुत्तमम् ।
शृणुयाद् वा पठेद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।]
२५. १११]

२१. व्यासपाण्डवसंकथा १.२७.१५-५७
[युगस्वभाव के विषय में व्यास और अर्जुन का संवाद प्रारम्भ]

२२. युगधर्मानुकथनम् — १.२७. १५-५७ (तीन युगों का वर्णन)
[व्यास द्वारा अर्जुन से युगों का स्वभाव वर्णन] — २८.१-४० (कलि-दोष-वर्णन २८.४१ तथा आगे कलियुग में शिवपूजा-माहात्म्य)

२३. व्यासजैमिनि कीर्त्तनम्
(व्यास तथा उनके शिष्य जैमिनि के बीच मोक्ष के सर्वोत्तम साधनों के विषय में संवाद)

[यहाँ व्यास, जैमिनि से वाराणसी या अविमुक्त के माहात्म्य के विषय में शिव-पार्वती संवाद को सुनाते हैं (१६ इ०)। व्यास जैमिनि से बताते हैं कि वाराणसी मोक्ष-प्राप्ति के निमित्त रहने या मरने योग्य स्थानों में सर्वोत्कृष्ट है।

२४. वाराणस्या माहात्म्यम् — २.२९-३४
(व्यास द्वारा उनके साथ वाराणसी में आये जैमिनि, पैल, सुमन्तु, आदि शिष्यों से वर्णित वाराणसी-माहात्म्य)

[जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट है (२९) व्यास, जैमिनि से वाराणसी--माहात्म्य के बारे में शिव-पार्वती के संवाद का उल्लेख; *अध्याय ३०-३३ में वाराणसी के प्रमुख लिङ्गों तथा तीर्थों का वर्णन* है। प्रमुख लिङ्ग, जिनका यहाँ वर्णन है, ये हैं--(१) ओङ्कारेश्वर लिङ्ग (जिसे यहाँ ब्रह्मा आदि पाँच देवों का निवास होने से पञ्चायतन लिङ्ग भी कहा गया है।) और (२) कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग जहाँ शिव ने गजासुर (हाथी वेश में एक दैत्य) को मारा था और उसके चर्म (कृत्ति) को वस्त्र बनाया था। (३०); (३) कपर्दीश्वर-लिङ्ग--यह पिशाचमोचन सरोवर के पास स्थित है तथा यहाँ शंकुकर्ण ऋषि ने उस सरोवर में स्नान कराकर एक पिशाचकी पिशाचयोनि छुड़ायी थी (३१) और (४) *मध्यमेश्वरलिङ्ग—यहाँ व्यास का उपदेश सुनकर* पाशुपतों ने मुक्ति पायी थी और यहाँ एक वर्ष निवास कर श्री कृष्ण ने *भी पाशुपत व्रत का पालन किया था* (३२)। *तदनन्तर व्यास ने अन्य* गुह्य तीर्थों और आयतनों की यात्रा की और अन्त में विश्वेश्वर के पास स्थायी निवास करने के लिए लौट आये पर देवी पार्वती के शाप से इन्हें वाराणसी छोड़नी पड़ी और उन्होंने उसके समीप में निवास बनाया (३३)

२५. प्रयागमाहात्म्यम् — १.३४-३७.१३
(*मार्कण्डेय द्वारा युधिष्ठिर से वर्णित प्रयागमाहात्म्य*)

[इसमें प्रयाग तथा वहां के विविध तीर्थों का माहात्म्य वर्णित है; संगम में स्नान, यहां निवास तथा अग्नि में, जल में या शरीर को काटकर पक्षियों को खिलाने आदि विधियों से शरीर-त्याग के माहात्म्य का वर्णन है। यहाँ गंगा (३५.२९ ई०) तथा यमुना (३७) का भी माहात्म्य वर्णित है। यहाँ महेश्वर माधव के साथ निवास करते हैं तथा यह तपोवन और सिद्ध-क्षेत्र नाम से ख्यात है।]

२६. त्रैलोक्यवर्णनम् — १.३८-४८
(त्रैलोक्य-वर्णन या भुवनविन्यास)

[सूत ने यह विषय नैमिषारण्य के ऋषियों से उसी प्रकार बताया जैसा पूर्व में कूर्म ने ऋषियों से कहा था—वक्ष्ये देवाधिदेवाय

विष्णवे प्रभविष्णवे। नमस्कृत्याप्रमेयाय यदुक्तं तेन धीमता ।। (३८.५)। इसके विषय नैमिषारण्यवासी ऋषियों के उन प्रश्नों में समाविष्ट है जो उन्होंने सूत से पूछा था—इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्रैलोक्यस्यास्य मण्डलम्। यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः ।। वनानि सरितः सूर्यो ग्रहाणां स्थितिरेव च। यदाधारमिदं सर्वं येषां पृथ्वी पुरा त्वियम्। नृपाणां तत्समासेन तत्तद्वक्तुमिहार्हसि ।। (३८.२-४)।

इस प्रकार अध्याय ३८ ४२-४८ में सप्तमहाद्वीपों, सप्तमहासागरों, वर्षों, पर्वतों, नदियों, वनों, लोकों, पातालों, पृथ्वी-धारणकर्ता शेष, देवादिकों की विविध पुरियों इत्यादि का वर्णन है; अध्याय ३८ में भरतवंशी राजाओं का भी नाम है, जिन्होंने पूर्व में पृथ्वी पर शासन किया था; अध्याय ३९-४१ में ज्योतिःसन्निवेश अर्थात् सूर्य तथा अन्य आकाशीय पिण्डों की स्थिति तथा संचार इत्यादि एवं उनका ध्रुव से सम्बन्ध वर्णित है।]

२७. वेदशाखानिरूपणम् १.५०

[अध्याय ४९ में प्रथम सप्त मन्वन्तरों, उनके देवों एवं ऋषियों तथा प्रत्येक मन्वन्तर में विष्णु के रूप या अवतार का वर्णन है। इस अध्याय के अन्त में व्यास हरि के अवतार वताये गये हैं। अध्याय ५० में वैवस्वत मन्वन्तर के २८ द्वापर युगों के २८ व्यासों का उल्लेख है, जिन्होंने अपने-अपने द्वापरों में वेदों का शाखा-विभाग किया। २८वें या अन्तिम द्वापर में कृष्णद्वैपायन व्यास थे जिन्होंने वेद को चार संहिताओं में विभक्त किया और प्रत्येक संहिता को एक-एक शिष्य को पढ़ाया—ऋग्वेद पैल को; यजुर्वेद वैशम्पायन को, सामवेद जैमिनि को और अथर्ववेद सुमन्तु को पढ़ाया। तदनन्तर उन्होंने प्रत्येक वेद को विविध शाखाओं में विभक्त किया। प्रत्येक वेद की शाखा ५०.१८-१९ में वर्णित है।]

उपरिविभाग

यहाँ नारदीय-पुराण पर आधृत तथा उससे तुलनात्मक कूर्मपुराण की ब्राह्मी-संहिता के पूर्वविभाग का विषय समाप्त हो गया। नारदीयपुराण में वर्णित उत्तर विभाग के विषयों की सूची अपेक्षाकृत संक्षिप्त है। नारदीय-पुराण के आधार पर इन विषयों का विवेचन नीचे दिया जा रहा है :

२८. गीतैश्वरी या ईश्वरगीता २.१-११

(ईश्वर या शिव द्वारा वर्णित ब्रह्म अथवा सर्वोत्कृष्ट तत्त्व का ज्ञान)

[कूर्मपुराण के उपरिविभाग के १ से ११ तक अध्याय प्रायः समस्त हस्तलेखों की पुष्पिका में ईश्वरगीता के अन्तर्गत कहे गये हैं (ईश्वरगीतासु अथवा ईश्वरगीतासूपनिषत्सु) कूर्मपुराण की अनुक्रमणिका में भी इन अध्यायों का इस प्रकार उल्लेख है। (गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्तिताः २.४४.११३) कूर्मपुराण की इस ईश्वरगीता का धार्मिक तथा दार्शनिक दृष्टि से वही महत्त्व है जो महाभारत की भगवद्गीता का। विज्ञानभिक्षु, यज्ञेश्वर-सूरि तथा भासुरानन्द जैसे विद्वानों ने इस पर टीकायें लिखी हैं।]

२९. व्यासगीता

(महर्षि व्यास द्वारा नैमिषारण्यवासी ऋषियों को धर्मोपदेश)

[उपरिविभाग अध्याय १२-३३ जो व्यासगीता के नाम से अभिहित हैं वर्णों एवं आश्रमों के धर्म का वर्णन करते हैं। इनके विषय स्मृतियों या धर्मशास्त्रों के विषय हैं। ये विषय अधोलिखित हैं :

१. ब्रह्मचारिधर्म (ब्रह्मचारियों के धर्म)—(अ० १२-१४)
२. स्नातक गृहस्थ धर्म (अ० १५-२६) इसमें निम्नलिखित समाविष्ट हैं :
   (क) सदाचार (अ० १५-१६)।
   (ख) भक्ष्याभक्ष्यनिर्णय (अ० १७)।
   (ग) आह्निक (दैनिककृत्य के नियम) (अ० १८)।
   (घ) भोजनविधि (अ० १९)।
   (ङ) श्राद्धकल्प (पितरों तथा संबन्धियों के निमित्त किया गया श्राद्ध) (अ० २०-२२)।
   (च) अशौचनिर्णय (संबन्धियों के जन्म या मृत्यु के कारण हुये अशौच का का निर्णय) (अ० २३)।
   (छ) अग्निहोत्रादिकृत्य (अ० २४)।
   (झ) दानधर्म (अ० २६)।
३. वानप्रस्थधर्म (अ० २७)।
४. यतिधर्म (अ० २८-२९)।
५. प्रायश्चित्त विधान (अ० ३०-३३)।

इन प्रायश्चित्त के अध्यायों में कपालमोचन का वृत्तान्त (अ. ३१) और (३३) पतिव्रता माहात्म्य, जिसकी पुष्टि में सीता का चरित्र वर्णित है, समाविष्ट हैं।

व्यासगीता में इन धार्मिक अध्यायों के समावेश के कारण ही नारदीय-पुराण में व्यासगीता को नानाधर्म-प्रबोधिनी कहा गया है।

तथापि कूर्मपुराण अपनी अनुक्रमणिका (२.४४) में व्यासगीता नाम का उल्लेख नहीं करता और इन विषयों का उल्लेख कर करता है : "वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः। कपालित्व च रुद्रस्य भिक्षाचरणमेव च। पतिव्रतानामाख्यानं···" (२.४४.११४ इत्यादि)। बहुत से हस्तलेख भी अपनी पुष्पिकाओं में इन अध्यायों को व्यासगीता नहीं कहते।]

३०. तीर्थमाहात्म्यम्

(तीर्थों का माहात्म्य)

[प्रयाग और वाराणसी को छोड़कर अन्य तीर्थों का माहात्म्य यहाँ वर्णित है क्योंकि वाराणसी और प्रयाग का माहात्म्य १.२९-३७ में वर्णित है। विविध तीर्थों के माहात्म्य (इनमें नर्मदा अत्यन्त प्रमुख है) के अतिरिक्त इन अध्यायों में विशिष्ट तीर्थों से संवद्ध प्रमुख घटनाओं का भी वर्णन है। कूर्मपुराण इन तीर्थों का इस प्रकार वर्णन करता है··· —तीर्थानां च विनिर्णयः। तथा मङ्कणकस्याथ निग्रहः कीर्तितो द्विजाः। वधश्च कथितो विप्राः कालस्य च समासतः। देवदारुवनं शंभोः प्रवेशं

माधवस्य च । दर्शनं षट्कुलीयानां देवदेवस्य धीमतः । वरदानं च देवस्य नन्दिने तु प्रकीर्तितम् ।

(१) मङ्कणक का आख्यान सप्तसारस्वततीर्थ के माहात्म्य सें संबद्ध है (२.३४.४५-७६); (२) शिव द्वारा काल के मारे जाने की कथा कालञ्जर तीर्थ से संबद्ध है (२.३६.११-३७); (३) विष्णु के साथ शिव का देवदारुवन में प्रवेश तथा शिव द्वारा देवदारुवन के मुनियों से शिवाराधन के साधन के रूप में ज्ञानयोग का वर्णन देवदारु वन के माहात्म्य के प्रसङ्ग में वर्णित है (२.३७); (४) शिव के षट्कुलीय ऋषियों के सम्मुख प्राकट्य का वर्णन नैमिष माहात्म्य के प्रसङ्ग में हुआ है (२.४१.२-१२); (५) शिलाद ऋषि के अयोनिज पुत्र नन्दी को शिव द्वारा वर प्रदान, जप्येश्वर तीर्थ के माहात्म्य के प्रसङ्ग में वर्णित है (२.४२.१६-४१)।

वस्तुतः इन अध्यायों (३४-४२) में तीर्थों का माहात्म्य वर्णन प्रायश्चित्त के प्रसङ्ग में हुआ है—प्रायश्चित्त-प्रसङ्गेन तीर्थ-माहात्म्यमीरितम् (४२.२४); तीर्थसेवा महापातकों तक के शोधन का उत्तम साधन बताया गया है (तु. २.३३.१०६-१०७, १४३-१४४]।

३१. प्रतिसर्गकथनम्-

(प्रलय का वर्णन)

[यहाँ चार प्रकार के प्रतिसर्गो का वर्णन है :

१. नित्य—मर्त्यों की नित्य होने वाली मृत्यु (४४-६)।
२. नैमित्तिक—निमित्त या ब्रह्मा को उनके दिन जिसे कल्प कहा जाता है, के अन्त में निद्रा के कारण होने वाला (४४.७, ११-४६)।
३. प्राकृत—जब महत् सहित सभी उद्भूत पदार्थ जगत् के मूल कारण प्रकृति में लीन हो जाते हैं (४४.१-२४)।
४. आत्यन्तिक—ब्रह्मज्ञान तथा आत्मानुभव करने वाले का ब्रह्मतत्त्व में अन्तिम विलय (४४.२५ ३८)।

[इसके अनन्तर (२६ इत्यादि श्लोकों में) सर्वोच्च तत्त्व (जिसे यहाँ परमात्मा, रुद्र और महेश्वर कहा गया है) और विविध रूपों में इसके प्रकटन के स्वरूप का कूर्मपुराण में वर्णन है। इस तत्त्व की अनुभूति के साधन (योग) का भी यहाँ इसीलिए वर्णन है। यह सभी आत्यन्तिक प्रलय या मोक्ष से संबद्ध कहा जा सकता है अतः यह संभव है कि नारदीय-पुराण ने कूर्मपुराण की अपनी विषय सूची में इसका वर्णन नहीं किया हो।]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नारदीयपुराण में वर्णित कूर्मपुराण की ब्राह्मी संहिता के सभी विषय वर्तमान कूर्मपुराण में उपलब्ध हैं। नारदीयपुराण की विषय-सूची विस्तृत नहीं प्रतीत होती जिस कारण, जैसा कि पहले प्रदर्शित किया गया है कूर्मपुराण में प्राप्त बहुत से विषयों का निर्देश नारदीयपुराण की सूची में नहीं है। तथापि, यह स्पष्ट है कि वर्तमान कूर्मपुराण वही है जिसको नारदीयपुराण ने कूर्मपुराण की ब्राह्मी संहिता कहा है।

वर्तमान कूर्मपुराण विषयानुक्रमणिका (२.४४.६९-११९) तथा फल श्रुति (२.४४.१२२ इत्यादि) से समाप्त होता है। इनका नारदीयपुराण में उल्लेख नहीं है। इस अनुल्लेख का कारण यह प्रतीत होता है कि ये विषय अन्य पुराणों में भी मिलते हैं अथवा वे बाद में जोड़े गये हों और परम्परानुसार कूर्मपुराण के अंश स्वीकृत हो गये हों।

वर्तमान कूर्मपुराण के वक्ता-श्रोता

वर्तमान वामनपुराण तथा भविष्य, ब्रह्म एवं लिङ्ग जैसे कुछ अन्य पुराणों के विपरीत जिन्होंने कि अपने मूल वक्ता-श्रोता को बदल डाला है, कूर्मपुराण उन महापुराणों में हैं जिन्होंने अपने मूल वक्ता-श्रोता को सुरक्षित रखा है और इस रूप में अपनी मूल प्रकृति को सुरक्षित रखा है। मत्स्य-पुराण (५३.४६-४७) में उपलब्ध सूचना के अनुसार (जो कि पहले उद्धृत है) कूर्मपुराण इन्द्रद्युम्न के आख्यान के माध्यम से कूर्म द्वारा नारदादि महर्षियों को सुनाया गया है। वर्तमान कूर्मपुराण में भी कूर्म तथा ऋषिगण प्रथम या मौलिक वक्ता-श्रोता माने गये हैं और प्रथम अध्याय में इन्द्रद्युम्न की कथा भी कही गयी है।

वर्तमान कूर्मपुराण में प्राप्त वक्ताओं और श्रोताओं के विभिन्न वर्गों को नीचे प्रदर्शित किया जा रहा है :—

१. कूर्म तथा (नारदादि) ऋषि (१. १. ३१ से अ० ११; २. ४३-४४. ६७) जैसा कि स्वयं कूर्मपुराण में बताया गया है कर्मपुराण के ये प्रथम वक्ता-श्रोता हैं :

एतद्वः कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम्। कौर्मं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः॥ (२.४४.६८)

कूर्म और ऋषियों का यह संवाद वर्तमान कूर्मपुराण के रूप में सूत ने नैमिषारण्य के ऋषियों को सुनाया। पर कूर्मपुराण के वे अंश जहाँ कूर्म और ऋषियों के स्पष्ट निर्देश हैं नीचे दिखाये जा रहे हैं :

१.१.३१ से अध्याय ११ तक (कर्मयोग तथा सर्गवर्णन एवं पार्वती का माहात्म्य) २. ४३-४४. ६७ (प्रतिसर्ग या ४ प्रकार का प्रलय)।

२. रोमहर्षण सूत तथा नैमिषीय ऋषि—(१.१.१-३०; १२-२६; २७.१-७; ३८-५१; २,३४-३७; ४१-४२; ४४.६८ इ०)।

यद्यपि रोमहर्षण सूत कूर्म तथा ऋषियों के संवाद को वर्णन करने वाले हैं पर उपर्युक्त अध्यायों में सूत वास्तविक वक्ता प्रतीत होते हैं केवल वर्णन करने वाले नहीं। इन अध्यायों के विषय अधोनिर्दिष्ट हैं :

१.१,१-३०—सूत कूर्मपुराण को प्रारम्भ करते हैं।

१.१२-२६ वंश तथा वंशानुचरित।

१.२७.१-७ सूत युग धर्म के विषय में व्यास तथा अर्जुन के संवाद को प्रारम्भ करते हैं।

१.३८-५१ भुवनकोश, ज्योतिःसन्निवेश, चतुर्दश मन्वन्तर, वेदव्यास तथा शिव के अवतार एवं वैदिक शाखाओं का वर्णन।

२.३४-३७ तीर्थवर्णन।

२.४१-४२ तीर्थवर्णन तथा तीर्थवर्णन का उपसंहार।

२.४४.६७ इत्यादि—कूर्मपुराण की अनुक्रमणिक तथा फलश्रुति।

वस्तुतः सूत द्वारा मुख्यरूप से ये ही विषय पुराणों में वर्णित होते हैं।

३. व्यास और अर्जुन (१.२७-२८)

व्यास यहाँ अर्जुन से युग-धर्मों और विशेषतः कलिधर्मो का वर्णन करते हैं और कलिदोषों से मुक्ति के निमित्त शिवभक्ति को साधन बताते हैं।

४. व्यास और जैमिनि (१.२९)

व्यास यहाँ अपने शिष्य जैमिनि से वाराणसी का माहात्म्य बताते हैं और इस सन्दर्भ में महादेव तथा देवी के बीच मेरुपर्वत पर हुये संवाद को सुनाते हैं।

५. व्यास तथा उनके सुमन्तु आदि शिष्य (१.३०-३३)

व्यास वाराणसी के शिवलिंगों और तीर्थों का दर्शन करते हैं तथा अपने शिष्यों से उनका माहात्म्य बताते हैं।

६. मार्कण्डेय और युधिष्ठिर (१.३४-३७; २.३८-४०)

२.३४-३७ महाभारत युद्ध में अपने संबन्धियों के वध से दुःखी हुये युधिष्ठिर से मार्कण्डेय, प्रयाग का माहात्म्य बताते हैं।

२.३८-४० मार्कण्डेय द्वारा युधिष्ठिर को नर्मदा का माहात्म्य वताया गया है।

७. ईश्वर (शिव) तथा सनत्कुमार आदि (२.१-११)

ये अध्याय कूर्मपुराणान्तर्गत ईश्वरगीता के हैं और शिव द्वारा वारह ऋषियों—सनत्कुमार सनक, सनन्दन, (सनातन), अङ्गिरा, रुद्र, भृगु, कणाद, कपिल, वामदेव, शुक्र और वसिष्ठ से कहे गये हैं। ईश्वरगीता का यह संवाद व्यास द्वारा शिष्य रोमहर्षण सूत के आग्रह पर शौनक आदि नैमिषारण्य के ऋषियों को सुनाया गया।

८. व्यास तथा (शौनकादि) नैमिषीय ऋषी—(उपरिविभाग ग्र० १२-३३)

ये अध्याय व्यासगीता के हैं। इन अध्यायों में व्यास कर्मयोग या धर्म-संग्रह का वर्णन करते हैं। नैमिषीय ऋषिगण व्यास से उस धर्मसंग्रह का वर्णन करने को प्रार्थना करते हैं जिसे कूर्म ने समुद्र-मन्थन के समय ऋषियों तथा इन्द्र से कहा था (तु. उपरिविभाग अ० ११ श्लोक १३९-१४२)। इस प्रकार यहाँ व्यास कूर्म तथा ऋषियों के धर्म विषयक संवाद को सुनाने वाले कहे गये हैं। तथापि, डा० हाजरा के अनुसार "कूर्मपुराण में उशनस्—संहिता को जोड़कर वही व्यासगीता वनी" (पुराणिक रिकार्ड्स, पृ० ७२)।

कूर्मपुराण के पाठसमीक्षात्मक संस्करण के अध्याय तथा उनका वेंकटेश्वर संस्करण से संवाद

कूर्मपुराण के इस पा. स. सं. के पूर्व विभाग में ५१ तथा उपरि या उत्तर विभाग में ४४ अध्याय हैं, जबकि वेंकटेश्वर संस्करण के दोनों विभागों में क्रमशः ५३ तथा ४६ अध्याय हैं। पा. स. सं. में संवादित तथा विचारित हस्तलेखों के आधार पर वेंकटेश्वर संस्करण के पूर्वविभाग के अध्याय ११-१२ तथा २८-२९ मिला दिये गये हैं और उपरिविभाग में ३२-३३ तथा ३८-३९ मिला दिये गये हैं। इसका विस्तृत विवरण पाठसमीक्षात्मकसंस्करण की भूमिका में दिया गया है।

इन दोनों संस्करणों के अध्यायों का संक्षिप्त संवाद इस प्रकार है :

पा. स. सं.	वें. सं.
पूर्वविभाग अ० १-१०	पू० वि० अ० १-१०
अ० ११ श्लोक १-१५	अ० ११
अ० ११ श्लोक १६-३३६	अ० १२
अ० १२-२६	अ० १३-२७
अ० २७ श्लोक १-७	अ० २८
अ० २७ श्लोक ८-५७	अ० २९
अ० २८-५१	अ० ३०-५३
उपरि वि० १-३१	उपरिविभाग अ० १-३१
अ० ३२ श्लोक १-२३	अ० ३२
अ० ३२ श्लोक २४-५९	अ० ३३
अ० ३३-३६	अ० ३४-३७
अ० ३७ श्लोक १-८५	अ० ३८
अ० ३७ श्लोक ८६—१६४	अ० ३९
अ० ३८-४४	अ० ४०-४६

इन दोनों संस्करणों के अध्यायों एवं श्लोकों का विस्तृत संवाद पा. स. सं. में दिया गया है।

कूर्मपुराण का महत्त्व

अष्टादश महापुराणों में कूर्मपुराण का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इस पुराण में महापुराणों के पाँच मुख्य विषयों—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, और वंशानुचरित—का पूर्ण विवेचन है।[13] इस पुराण में हिन्दू-धर्म के तीन

---

१३. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ (कू. पु. १.१.१२; तथा विष्णुपु० ३.६.२५; मत्स्यपु० ५३.६५; इत्यादि।

मुख्य सम्प्रदायों—वैष्णव, शैव और शाक्त—का वहुत ही प्रशस्त रूप में समन्वय किया गया है।[१४] धर्म, जिसे यहाँ वर्णाश्रम धर्म से एक माना गया है, का यहाँ विस्तृत विवेचन किया गया है।[१५] इसमें वेद के प्रति महती श्रद्धा ज्ञापित की गई है और उपर्युक्त तीन सम्प्रदायों के वैदिक संप्रदायों की प्रशंसा तथा पाञ्चरात्र, कापालिक, अवैदिक पाशुपत, यामल, वाम, आर्हत आदि अवैदिक संप्रदायों की निन्दा है[१६]। अथ च इस पुराण की ईश्वरगीता (उपरिविभाग के १—११ अध्याय) का वही धार्मिक तथा दार्शनिक महत्त्व है जो भगवद्गीता (महाभारत के भीष्म पर्व में उपलव्व) का है और इस पर विज्ञानभिक्षु, भासुरानन्द और यज्ञेश्वरसूरि जैसे विद्वानों ने टीकायें लिखी हैं।

कूर्मपुराण उन महापुराणों में से एक है जो कुछ महापुराणों एवं उपपुराणों तथा अलवरुनी द्वारा प्रदत्त सूची अर्थात् महापुराणों की सभी प्राचीन तथा नवीन सूचियों में समाविष्ट है। परन्तु कुछ महापुराण ऐसे भी हैं जो विष्णु-पुराण (३.६.२१-४), मत्स्यपुराण (५३.१२-५६), कूर्मपुराण (१.१.१३-१५), लिङ्ग-पुराण (१.३९.६१-६४) इत्यादि जैसे महापुराणों की प्राचीन सूचियों में ही निर्दिष्ट हैं[१७] और जो एक या अधिक परवर्ती सूचियों में नहीं है; उनके स्थान पर तत्काल में प्रचलित उपपुराण ही महापुराणों में गिन लिये गये हैं और इस प्रकार संख्या १८ ही वनी है। उदाहरणार्थ अग्नि (या आग्नेय) पुराण भविष्यपुराण (३.३.२८.१०-१४) तथा अलवरुनी की दूसरी सूची (अलवरुनीज इण्डिया, सचाऊकृत अनुवाद भाग १ पृ० १३१ इत्यादि) में नहीं है। भागवतपुराण अलवरुनी की दूसरी सूची में नहीं है। ब्रह्मवैवर्तपुराण भविष्य तथा अलवरुनी की दूसरी सूची में नहीं है। एकाम्रपुराण में (१.२०-२३) प्रदत्त सूची में गरुड़पुराण नहीं है। वायुपुराण (वें. स. २.४२.१-११) तथा अलवरुनी की सूची में लिङ्गपुराण, नहीं है। भविष्य-पुराण एकाम्रपुराण तथा अलवरुनी की सूची तथा कवीन्द्राचार्य की सूची में नारदीयपुराण नहीं है। पद्मपुराण अलवरुनी की सूची में नहीं है। गरुड़पुराण (१.२१५.१५-१६) तथा वृहद्धर्म [उप] पुराण (१.२५.२०-२२) में वामनपुराण का अनुल्लेख है। इन पुराणों के स्थानों पर वहुत से वे उपपुराण जोड़ दिये गये हैं जो उन सूचियों के निर्माण के समय प्रमुख हो गये थे।[१८] जो महापुराण इन सूचियों में नहीं हैं वे उन सूचियों के निर्माणकाल में महत्त्वहीन हो गये थे। परन्तु कूर्मपुराण ने कुछ अन्य महापुराणों के साथ ही कभी भी अपना महत्त्व नहीं खोया और इस कारण महापुराणों की समस्त सूचियों में विना किसी भेद के समाविष्ट है।

पुराणों के अनुवाद

अपनी लोकप्रियता, प्रतिष्ठा तथा धर्म और ज्ञान दोनों दृष्टियों से उनके अध्ययन के महत्त्व के कारण दोनों इतिहास-ग्रन्थों तथा अनेकों पुराणों के अनुवाद वहुत सी देशी-विदेशी भाषाओं में हुआ। इतिहास तथा पुराणों के स्वतन्त्र तथा शव्दानुवादों के अतिरिक्त उनमें की वहुत सी घटनाओं, आख्यानों और दार्शनिक अंशों का भारतीय एवं वैदेशिक भाषाओं में अनुवाद हुआ। सामान्यरूप से जिस ग्रन्थ का जितना शीघ्र और जितना व्यापक अनुवाद होता है वह उतना ही लोकप्रिय ग्रंथ माना जाता है।

(क) भारत में पौराणिक अनुवाद और संक्षेप की परम्परा

दोनों इतिहास ग्रन्थ तथा पुराण वचनों द्वारा धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यों के विषय में सर्वसाधारण की शिक्षा के साधन थे। अतः पौराणिकविद्वानों द्वारा व्यापक क्षेत्रों में पौराणिक शिक्षाओं

१४. कूर्मपुराण वार-वार पौराणिक त्रिदेवों के ऐक्य का प्रतिपादन करता है तथा वैष्णवों द्वारा शिव की एवं शैवों द्वारा विष्णु की उपासना की व्यवस्था देता है और इस प्रकार संकीर्ण सांप्रदायिकता से ऊपर है। यह शक्ति और शक्तिमान् में अभेद मानता है। तु. की. १.२.८१; ९.८५-८६; १०.७५,८८; ११.४३;१४.८६, ८९; २.११.१११, ११७; १८.६३, १०० इत्यादि।

१५. तु. की. १.१.८५; ११.२६५ तथा व्यासगीता के अध्याय (२.१२-३३)।

१६. तु. की. १.२.२६; ११.२६६, २६८; २.१४.८२; १.११.२७१, २७३; २.३७.१४६; इत्यादि।

१७. विस्तृत विवरण के लिये द्र. मेरा लेख 'पुराणाज एण्ड देयर रेफरेन्सिग' 'पुराणम्' पत्रिका ७.२ पृ० ३३७ इत्यादि।

१८. महापुराणों के स्थान पर इन सूचियों में जिन उपपुराणों का नाम जोड़ा गया है उसके लिये द्र. वामन पुराण के अनुवाद की भूमिका पृ० २९ इत्यादि।

के प्रचार के लिए क्षेत्रीय भाषाओं में पुराणों के अनुवाद की मांग स्वाभाविक थी। भारत में पुराणों और इतिहासों के अनुवाद की परम्परा इस धारणा पर आवृत है। पुराणों एवं इतिहासों पर लिखे गये संस्कृत-भाष्य तो विद्वज्जनों के उपयोग की वस्तु है। सर्वसाधारण जनता को तो सरल साहित्य चाहिये और वह भी स्थानीय भाषा में।

क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद

इस कारण पुराणों, उनकी मुख्य घटनाओं, आख्यानों, माहात्म्यों और व्रतों के वहुतेरे अनुवाद, संक्षेप तथा सारसंकलन समग्र भारत की प्रायेण समस्त क्षेत्रीय भाषाओं में हुये। ऐसे क्षेत्रीय अनुवादों तथा संक्षेपों की सतत धारा अद्यावधि प्रचलित है। पुराणों के ऐसे क्षेत्रीय अनुवादों तथा संक्षेपों की संख्या इतनी अधिक है कि इस सीमित स्थान पर उनका पूरा विवरण देना संभव नहीं है। पर यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि वंगवासी प्रेस से छपे प्रायेण सभी पुराणों में संस्कृत मूल के साथ वंगलाभाषा में अनुवाद भी है; इसी प्रकार मैसूर में 'जयचामरेन्द्र ग्रन्यमाला' के अन्तर्गत कन्नड अक्षरों में पुराणों के मूल के साथ कई पुराणों के कन्नड अनुवाद प्रकाशित हुये हैं। पुराणों के तमिल, तेलगु तथा कन्नड रूपों के लिये द्रष्टव्य 'पुराणम्' पत्रिका क्रमशः खण्ड २ (१९६०), ४.२ (जुलाई १९६२) और ६.१ (जनवरी १९६४)।

फारसी अनुवाद

भारत की हिन्दी, वँगला, उड़िया, गुजराती, मराठी, तेलगु, तमिल, मलयालम, कन्नड आदि क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवादों और संक्षेपों के अतिरिक्त भारत में दोनों इतिहास-ग्रन्थों[१९] और कुछ पुराणों के फारसी भाषा में भी अनुवाद हुये। पुराणों के कुछ फारसी अनुवाद निम्नलिखित हैं :—

हरिवंश—ब्रिटिश म्यूजियम (ओ. आर. ५७४७) में हरिवंश का एक फारसी रूपान्तर वर्तमान है। इस पर १६८० ई० समय दिया गया है।

मत्स्यपुराण—गोस्वामी आनन्दघन ने मत्स्यपुराण का ९ भागों में फारसी अनुवाद किया। इस अनुवाद का प्रारम्भ वि. सं. १८४८ (१७९२ ई०) में हुआ। इसका अनुवाद एक हस्तलेख के रूप में इटालियन इन्स्टीच्यूट, रोम में सुरक्षित है तथा इसके प्रथम भाग की माइक्रोफिल्म प्रति कुछ वर्षों पूर्व सर्व भारतीय काशिराजन्यास ने मँगायी थी। यह मूल संस्कृत भाषा में निवद्ध पुराण का स्वतन्त्र अनुवाद है तथा अन्य पुराणों से भी कुछ विवरण यहाँ समाविष्ट हैं।

भागवतपुराण—जहाँ तक मुझे स्मरण है मैंने अखिलभारतीय-प्राच्य-विद्या-सम्मेलन के अलीगढ़ अधिवेशन १९६६ के समय अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में भागवतपुराण (और हरिवंश ?) के फारसी अनुवाद के कुछ हस्तलेख देखे थे।

(ख) एशिया के अन्य देशों में इतिहास-ग्रन्थों तथा पुराणों के अनुवाद एवं संक्षेप

संस्कृत-भाषा के साथ-साथ शैव तथा वैष्णव ये दो हिन्दू धर्म भी भारत से वाहर तिव्वत, चीन, जापान, हिन्द-चीन और इण्डोनेशिया आदि देशों में पहुँचे जहाँ कि आज भी शैव एवं वैष्णव धार्मिक कृत्यों में संस्कृत-भाषा का प्रयोग होता है यथा वालिद्वीपसंमूह में सूर्य-सेवन तथा शिवरात्रि के अवसर पर धार्मिक कृत्यों में संस्कृत-भाषा प्रयुक्त होती है[२०]। इन देशों में रामायण तथा महाभारत एवं कुछ पुराण विशेषतः ब्रह्माण्डपुराण विशेष प्रचलित हुये। वालीद्वीप में ब्रह्माण्डपुराण शिव पूजकों का पवित्र ग्रंथ है।[२१] कुछ संस्कृत ग्रन्थों का प्राचीन जावाई भाषा में संक्षेप हिन्दू-सभ्यता की अंतिम शरणभूमि उस देश में सुरक्षित हैं। १८४७ ई० में आर० फ्रेडरिक ने सर्वप्रथम प्राचीन जावाई ब्रह्माण्डपुराण की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। डच विद्वान् डा० एच० वान डेर टुन्क ने इस पुराण के वहुत से हस्तलेखों का संकलन किया जो १८९४ में उनकी मृत्यु के अनन्तर

१९. दोनों इतिहास ग्रन्थों—रामायण तथा महाभारत—के फारसी अनुवादों के विस्तृत विवरण के लिये द्रष्टव्य वामनपुराण के अनुवाद की मेरी भूमिका। पृ० ११-१२

२०. तु० कीजिये—सी० हूयकाज, 'हिन्दूइज्म आफ वाली' अड्यार लाइब्रेरी, वुलेटिन भाग ३१-३२, सन् १९६७-६८ पृ० २७५।

२१. आर० फ्रेडरिक ने निर्देश किया है—जे आर ए एस, १८७६ पृ० १७१; तु० की० विण्टरनित्स 'हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर' भाग १ पृ० ५७८ पा० टि० २।

नीदरलैण्ड्स में भेज दिये गये। नीदरलैण्ड्स में इस प्राचीन जावाई ब्रह्माण्डपुराण का संपादन तथा प्रकाशन डा० जे० गोण्डा ने किया (उट्रेख्ट, नीदरलैण्ड्स)। जावाई ब्रह्माण्डपुराण मूल ब्रह्माण्डपुराण का जावा की भाषा में संक्षिप्त अनुवाद है अथवा किसी संक्षिप्त मूल संस्करण का अनुवाद है। इसमें रोचकता यह है कि इस जावाई भाषा के अनुवाद में बहुत से मूल श्लोक या अर्धालियाँ ज्यों की त्यों बिखरी पड़ी हैं। इनमें से अधिकांश का शब्दानुवाद भी दिया है या उनके शब्दों या मुहावरों की व्याख्या है।[२२]

रामायण तथा इसकी कथाओं के बहुत से विवरण तिब्बत, चीन, हिन्दचीन और इण्डोनेशिया में उपलब्ध थे। प्राचीन जावाई भाषा में रामायण तथा महाभारत के संक्षेप का निर्देश एम० घोष ने जे जी आइ एस, ३.१) एवं डा० सुकथानकर (प्रोलेगोमेना टू दि आदिपर्व) ने किया।

(ग) यूरोपीय भाषाओं में पुराणों के अनुवाद

(i) प्रस्तावना

भारतीय साहित्य ने यूरोपीय साहित्य पर जो सद्यः प्रभाव डाला वह अध्ययन योग्य है। यूरोप का कथा-साहित्य अधिकांशतः भारतीय आख्यायिका-साहित्य पर आवृत है। १९वीं सदी के प्रारम्भ से ही पाश्चात्य विचारसरणि, विशेषतः जर्मन साहित्य और दर्शन, मुख्यतः भारतीय विचारों से प्रभावित हुई है। भारतीय साहित्य का यूरोपीय विचारों पर प्रभाव मध्ययुग में भी ढूंढ़ा जा सकता है। कुछ भारतीय कृतियाँ अरबी और फारसी अनुवाद के माध्यम से यूरोप में पहुँची[२३]।

यूरोप में सर्वप्रथम संस्कृत का प्रवेश अँग्रेज विद्वान् अलेक्जण्डर हैमिल्टन के द्वारा हुआ जिन्होंने भारत में संस्कृत का अध्ययन किया और १८०२ ई० में फ्रान्स से होकर यूरोप लौटे। किन्तु फ्रान्स और हालैण्ड के बीच युद्ध आरम्भ हो जाने से उस समय वे पेरिस में ही रुक गये। उसी समय वहाँ जर्मन विद्वान् फेडरिक श्लेगल १८०७ तक रुकने के लिये आये थे। उन्होंने फेडरिक हैमिल्टन से परिचय किया और उनसे संस्कृत पढ़ी तथा जर्मनी में भारतीय भाषा-विज्ञान के संस्थापक बने। अब यूरोप में संस्कृत सीखने और पढ़ने का उत्साह बढ़ा और मूल संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन, सम्पादन तथा अनुवाद होने लगा। तथापि, यूरोप में संस्कृत-अध्ययन तथा अनुसंधान की मुख्य घटना थी १८५२-७५ में आटो बोहटलिङ्क तथा रुडोल्फ राथ द्वारा संकलित सात खण्डों वाली 'संस्कृत वार्टरबुच' (संस्कृत शब्दकोष) का प्रकाशन। यह ग्रन्थ सेण्ट पेटर्स बर्ग में अकादमी आफ आर्टस् एण्ड साइन्स द्वारा प्रकाशित हुआ था।

किन्तु दीर्घकाल तक संस्कृत का अध्ययन जर्मन विद्वान् फ्रैन्जबाप द्वारा १८१६ में प्रकाशित 'कनजुगेशन्स सिस्टम' के माध्यम से नवीन स्थापित भाषाशास्त्र के विज्ञान से संबद्ध था। क्लासिकल (या लौकिक) साहित्य—पञ्चतन्त्र, भगवद्गीता, मनुस्मृति, शकुन्तला इत्यादि—ने १८३० तक यूरोप के विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। तथापि, भारत का सबसे प्राचीन और पवित्र साहित्य वेद यूरोप में उस समय तक प्रायः पूर्णतः अज्ञात था।

वेदों का वास्तविक भाषाशास्त्रीय अनुसन्धान १८३८ में प्रारम्भ हुआ जब फ्रेडरिक रोजर ने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का अनुवाद लण्डन में प्रकाशित किया। मैक्समूलर ने १८४९-१८७० में सायणभाष्य के साथ संपूर्ण ऋग्वेद संहिता का प्रकाशन किया। तभी से बहुत से यूरोपीय विद्वानों ने वैदिक अध्ययन में अपने को लगाया और संपूर्ण वेद संहिताओं के कई अनुवाद, वैदिक साहित्य के अध्ययनपरक ग्रन्थ तथा वैदिक मन्त्रों के अनुवाद के साथ संकलन प्रकाशित हुये।[२४]

वैदिक अध्ययनों ने पौराणिक अध्ययनों के लिये पृष्ठभूमि का निर्माण किया। वेदों में आख्यान निर्माणावस्था में थे। वेदों में बहुत से पौराणिक आख्यानों के बीज हैं तथा पुराणों में वेदों के पुराकथा संबन्धी तथा सृष्टि संबन्धी वचनों का विस्तार है।

---

२२. तु० की० जे. गोण्डा 'ओल्ड जावानीज ब्रह्माण्डपुराण' 'पुराणम्' २ (जुलाई १९६०) पृ० २५२-२६७।

२३. विस्तृत विवरण के लिए वामनपुराण के अँग्रेजी अनुवाद की मेरी भूमिका पृ० १३ देखिये।

२४. वैदिक संहिताओं के महत्त्वपूर्ण अनुवादों तथा वैदिक साहित्य के अध्ययनों की विस्तृत जानकारी के लिए द्रष्टव्य पूर्वोक्त पादटिप्पणी में निर्दिष्ट मेरी भूमिका।

(ii) यूरोप में इतिहास तथा पुराण का अध्ययन

यूरोपीयन लोग सर्वप्रथम १७८८ में भागवतपुराण के तमिल संस्करण के पेरिस में हुये फ्रेन्च अनुवाद से पुराणों से परिचित हुये। इस फ्रेन्च अनुवाद से एक जर्मन अनुवाद भी हुआ जो १७९१ में ज्यूरिख में प्रकाशित हुआ। तदनन्तर बहुत से पुराणों तथा महाभारत का कई यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुए और इससे इतिहास और पुराणों के यूरोप में अध्ययन में और भी सहायता हुई। इससे प्राचीन भारत के सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक इतिहास के निर्माण में इतिहास और पुराणों के महत्त्व की अनुभूति हुई।

(iii) यूरोपीय भाषाओं में पुराणों के अनुवाद[२५]

लैटिन अनुवाद

मार्कण्डेयपुराण का **देवीमाहात्म्य** (अ० ८१-९३)—यह ग्रन्थ फ्रेजवाप के शिष्य जर्मन विद्वान लुडविग पोले द्वारा संपादित तथा टिप्पणियों सहित लैटिन भाषा में अनूदित हुआ और बर्लिन से प्रकाशित हुआ (१८३१ ई०)।

फ्रेन्च अनुवाद

भागवतपुराण—महान् फ्राँस देशीय (फ्रेञ्च) प्राच्यविद्याविद् यूगेने बर्नाउफ ने, जो कि वेद के अध्ययन के लिए विख्यात थे, तथा आर० राँथ एवं एफ० मैक्समूलर जैसे प्रख्यात् वैदिक विद्वानों के अध्यापक थे, पेरिस में सन् १८४०-४७ ई० में इस पुराण का फ्रेञ्च भाषा में अनुवाद किया था।

पूर्वनिर्देशानुसार, भागवतपुराण के एक तामिल-संस्करण का फ्रेञ्च अनुवाद उससे पूर्व ही १७८८ ई० में पेरिस में प्रकाशित हुआ।

भागवत-पुराण की कुछ कथायें भी फ्रेञ्च में ए० रस्सेल द्वारा अनूदित हुई हैं; पेरिस १९००

ब्रह्मपुराण—JAI १८२२ ई० में ए० एल० चेजो द्वारा कण्डु की कथा (अ० १७८) फ्रेञ्च में अनूदित हुई।

मार्कण्डेयपुराण—देवी माहात्म्य के सारांश का रूपान्तर फ्रेञ्च में बर्नाउफ द्वारा हुआ। (जे ए १८२४, पृ० २४ इ०)।

जर्मनअनुवाद

भागवतपुराण—भागवतपुराण के तमिल संस्करण के फ्रेञ्च अनुवाद का रूपान्तर जर्मन भाषा में हुआ, जूरिख, १७९१

फ्रेडरिक रुकर्ट ने भागवत का १७९१ का मूल पुराणानुवाद व्यवहृत किया तथा (उसके आधार पर उसका) पद्यानुवाद किया, जो उसकी मृत्यु के ४५ वर्ष बाद प्रकाशित हुआ। जो भारतीय देवतावाद और विश्व के पुराकथात्मक वीरों पर समान प्रकाश डालता है (विलफीड नोइल्ले)।

ब्रह्मपुराण—ए० डब्लू० वान स्केलेगेल द्वारा कण्डु की कथा (अ० १७८) जर्मन में अनूदित हुई (इन्डिस्चे बिब्लिओथिक १, १८२२)।

गरुड़पुराण—प्रेतकल्प (सारोद्धार) की विषयानुक्रमणी पर एक विस्तृत व्याख्या इ० एबेग द्वारा की गई है (Der Pret-kalpa des Garuḍ-Purāṇa) बर्लिन और लिपजिङ् १९२१, अध्याय १०-१२ अनूदित। इ० एबेग द्वारा अनूदित प्रेतकल्प का एक सुन्दर जर्मन अनुवाद भी उपलब्ध है।

लिङ्गपुराण—लिङ्ग सम्प्रदाय (शिव का देवदारुवन में प्रवेश आदि) की उत्पत्ति-कथा का जर्मन अनुवाद डब्लू जोन ने 'जेड डी एम जी, ६४, १९१५, पृ० ३९ इत्यादि में किया है।

मार्कण्डेयपुराण—हरिश्चन्द्र की कथा का जर्मन अनुवाद एफ० रुकर्ट ने 'जेड डी एम जी' १३,१८५४, पृ० १६३ आदि में किया है।

---

२५. दोनों इतिहास ग्रन्थों, उनकी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण दार्शनिक अंशों के बहुत-सी यूरोपीय भाषाओं (लैटिन, ग्रीक, इटालियन, फ्रेन्च इत्यादि) में किये गये अनुवादों के विस्तृत विवरण के लिये द्रष्टव्य वामनपुराण के अनुवाद ग्रन्थ की मेरी भूमिका पृ० २७ इत्यादि।

विष्णुपुराण—पुरूरवस् और उर्वशी की कथा का (पुस्तक ४ में) अनुवाद गेल्डनर द्वारा वेदिस्से स्टडीइन १ में किया गया है।

अंश ५ (कृष्ण के विस्तृत जीवन-चरित युक्त) ए पॉल द्वारा अनूदित, म्यूनिख १९१५।

हेनरिख जिम्मर की Der Iedische Mythos' ('The Indian Myths') का प्रकाशन स्टूटगार्ट में १९३६ में हुआ। द्वितीय संस्करण १९५२ में यूरिख में प्रकाशित हुआ।

कवियों द्वारा पुराणों की बहुत-सी कथाएँ अनुदित हुई हैं। ए० एफ० वान सैक ने पुराणों के असीम भण्डार से अपनी पुस्तक 'Stimmen von Ganges' ('Voicess from the Ganges) में (बहुत अंशों को अवतरित किया है। जिसका प्रकाशन वर्लिन में १८५७ में हुआ। बीस वर्ष पश्चात् उसकी पुस्तक का अत्यधिक सुगम संस्करण प्रकाशित हुआ। अब तक यह पुस्तक जर्मन में अनूदित भारतीय साहित्य का पूर्ण अंग मानी जाती है।

अंग्रेजी अनुवाद

अग्निपुराण—एम० एन० दत्त द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, कलकत्ता, १९०१।

भागवतपुराण—अंग्रेजी अनुवाद (१) एम० एन० दत्त द्वारा कलकत्ता १८९५, (२) स्वामी विज्ञानानन्द द्वारा इलाहाबाद, १९२१-२३; (३) एस० सुब्बाराव द्वारा, तिरुपति १९२८; (४) जे० एम० सान्याल द्वारा कलकत्ता १९३०-३४।

देवीभागवत-अंग्रेजी अनुवाद स्वामी विज्ञानानन्द द्वारा, १९२२, एस. बी. एच. सिरीज, इलाहाबाद।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—अंग्रेजी अनुवाद राजेन्द्रनाथ सेन द्वारा, २ भाग, एस. बी. एच. सिरीज (इलाहाबाद)।

गरुडपुराण—अंग्रेजी अनुवाद एम० एन० दत्त द्वारा, कलकत्ता, १९०८ (वेल्थ आफ इण्डिया वो० ३)।

प्रेतकल्प—प्रेतकल्प के सारोद्धार का अंग्रेजी अनुवाद ई० ऊड तथा एस० बी० सुब्रह्मण्यम् द्वारा एस. बी. एच. सिरीज भाग ९, १९११ में प्रकाशित।

मार्कण्डेय पुराण—एफ० ई० पार्जिटर द्वारा वनस्पति तथा जन्तुओं के नामों की सुन्दर टिप्पणी सहित अनूदित। बिब्लि. इण्डि. १८८८-१९०५।

—हरिश्चन्द्र का आख्यान—(१) जे. मूहर द्वारा 'ओरिजनल संस्कृत टेक्स्ट्स में तथा (२) बी. एच. वर्थम द्वारा जे. आर. एस. १८८१ में पृ० ३५३ इ० में अनूदित।

देवीमाहात्म्य (अ० ८१-९३) (१) सी. वेंकटराम स्वामी; पण्डित, कलकत्ता १८२३ तथा (२) डा० बी. एस. अग्रवाल द्वारा सर्वभारतीय काशीराजन्यास १९६३. अंग्रेजी में अनूदित।

मत्स्यपुराण—दो भागों में (भाग १, अ० १-१२८, भाग २ अ० १२९-२२१ परिशिष्टों सहित) से एस. बी. एच. में अंग्रेजी में अनूदित।

पद्मपुराण—'स्वर्गखण्ड' पञ्चानन तर्करत्न द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, कलकत्ता १९०५।

स्कन्दपुराण—सह्याद्रिखण्ड का ऋष्यशृंग आख्यान बी. एन. नरसिंह आयङ्गार द्वारा १८७३ अँग्रेजी में अनूदित।

—सह्याद्रिखण्ड का वेंकटमाहात्म्य जी. के. बेथम द्वारा अँग्रेजी में अनूदित १८९३

विष्णुपुराण—(१) श्री एच. एच. विल्सन लण्डन १८४०; पन्थी पुस्तक में डा० हाजरा की भूमिका सहित १९६१ में पुनर्मुद्रित तथा (२) एम. एन. दत्त. कलकत्ता १८९४ द्वारा अँग्रेजी में अनूदित।

कूर्मपुराण के अनुवाद

हिन्दी अनुवाद

(१) कूर्मपुराण हिन्दी टीका सहित—वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा मुद्रित (२) संस्कृत हिन्दी सहित—हस्तलेख संख्या ७७०३ रणवीर पुस्तकालय जम्मू में सुरक्षित (न्यू कैटालोग कैटालोगोरुम, भाग ४ में निर्दिष्ट) (३) संस्कृत हिन्दी—उपर्युक्त पुस्तकालय में हस्तलेख संख्या ७७४९ (उपर्युक्त, कैटलग में निर्दिष्ट)

वँगला अनुवाद—

(४) वंगाक्षर में संस्कृत मूल तथा वंगला अनुवाद-वंगवासी प्रेस कलकत्ता में प्रकाशित १९०५

तेलगु अनुवाद

(५) तेलुगाक्षर में मूल के साथ संक्षिप्त तेलगू भाषा में अनुवाद; मद्रास १८७५

तमिल अनुवाद

(६) अतिवीरराम पाण्ड्यन (१५६४-६६ ई०) द्वारा प्राचीन तमिल रूप आदि कलानिधि प्रेस मद्रास द्वारा १८९८ में तथा सरस्वतीमहल पुस्तकालय तन्जौर में १९६१ (पूर्वखण्डमात्र) प्रकाशित

कन्नड अनुवाद

(७) श्री जयचामरेन्द्र ग्रन्थरत्नमाला में ४ भागों में प्रकाशित मैसूर १९४६

अँग्रेजी अनुवाद

(८) विलसन कृत अंग्रेजी अनुवाद के लिये द्रष्टव्य आक्स० २,१२१३ (न्यू कैटलोगस कैटलोगोरूम भाग ४ पृ० २६७ के आधार पर)

ईश्वरगीता के अनुवाद

अँग्रेजी अनुवाद

(१) कन्नोमल कृत अंग्रेजी अनुवाद, लाहौर १९२४

फ्रेन्च अनुवाद

(२) अधिकांशतः विब्लि० इण्डि० के आधार पर रोमन अक्षर में मूल तथा टिप्पणी और परिशिष्ट सहित। पी० ई० डुमन्ट कृत, पेरिस १९३३।

पुराणों के अनुवाद की कुछ समस्याएँ

किसी भी अनुवाद के सम्बन्ध में यह सामान्य प्रश्न उपस्थित होता है कि वह अनुवाद मूल के भावों का कहां तक प्रतिनिधित्व करता है और साथ में अनुवाद की भाषा के सौष्ठव को भी कहां तक सुरक्षित रखता है। परन्तु पुराणों के अनुवाद के सम्बन्ध में इस बात के अतिरिक्त और भी अनेक समस्याएँ उपस्थित होती हैं जिनका दिग्दर्शन यहाँ नीचे कराया जा रहा हैं :—

(१) पुराणों में मानवोपयोगी सभी ज्ञान-क्षेत्रों का समावेश पाया जाता है जैसा कि पुराणों ने स्वयं दावा किया है—'पुराणमखिलं सर्वशास्त्रमयं ध्रुवम्' (स्कन्द पु०, ७.१.२.४)। इनमें धर्म, दर्शन, आचारनीति, व्यवहार-नीति, सृष्टिविद्या, भुवनकोश, राजवंशावली, वंशानुचरित, तीर्थ-माहात्म्य, व्रत, उपवास, अनेकविध आख्यान, देवों तथा असुरों इत्यादि का वर्णन तथा इसी प्रकार के अनेक विषय मिलते हैं। अतः पुराण के अनुवादक के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह पुराणों के इन सभी विषयों से भली-भाँति परिचित हों।

कूर्मपुराण का ईश्वर-गीता नामक अंश दार्शनिक तथा योगसाधन संबन्धी तत्त्वों से भरा हुआ है और उसमें पातञ्जलियोग-सूत्र तथा उपनिषदों के वचनों तथा सिद्धान्तों का सहारा स्थान-स्थान पर लिया गया है। भगवद्गीता से तो उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है ही, अतः इस अंश के सही अनुवाद के लिये इन सभी ग्रन्थों से तथा इनके सिद्धान्तों से परिचित होना अनुवाद में सहायक होगा। इसी प्रकार व्यासगीता जिसमें धर्मशास्त्र के विषय प्रतिपादित हैं और जिसका सम्बन्ध स्मृतियाँ से है, अपने अनुवाद के लिये स्मृतिज्ञान की अपेक्षा रखता है। धर्मशास्त्र के निवन्ध ग्रन्थों में कूर्मपुराण की व्यासगीता के अनेक वचनों को उद्धृत तथा स्पष्ट किया गया है। अनुवाद में उनकी भी सहायता ली जाय तो ऐसे अनुवाद की प्रामाणिकता वढ़ जाती है।

(२) पुराण भी अन्य विद्याओं के समान एक अलग विद्या है। याज्ञवल्क्य तथा विष्णुपुराण ने १४ विद्याओं में पुराण-विद्या का भी अन्तर्भाव किया है, इसका निर्देश पहले किया जा चुका है। सभी शास्त्रों के अपने-अपने विशेष

विषय भी होते हैं। पुराण के दो अपने विशेष विषय हैं—सृष्टिनिर्माणादि का विवेचन तथा पुराण-आख्यान (Mythology) । जिस प्रकार पुराणों के सृष्टिविषयक सिद्धान्तों को ठीक-ठीक समझने के लिए इस विषय के उन विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है जिनका प्रतिपादन षड्दर्शन-शास्त्रों में किया गया है। इसी प्रकार पुराणों के पुराणाख्यानों को समझने के लिए तुलनात्मक पुराणाख्यान-शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। पुराणों के अनेक आख्यानों का वीज वेदों में मिलता है; जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों के विविध आख्यानों से भी पुराणों के अनेक आख्यानों का साम्य है। यही नहीं, अपितु ग्रीस तथा रोम देश के विविध आख्यानों से भी पुराणों के अनेक आख्यानों का साम्य है इसका उल्लेख जोन्स विलियन ने भी किया है।[२६] अतः पुराण के अनुवादक को पौराणिक सृष्टि-विज्ञान तथा तुलनात्मक पुराणाख्यान-शास्त्र (Science of Comparative Mythology) के आधार पर पुराणों के आख्यानों का सही ज्ञान अपेक्षित है, अन्यथा अनुवाद में अनेक भूलों का हो जाना संभव है।

(३) पुराणों में हमें वहुधा संक्षिप्त तथा अस्पष्ट वचन भी मिलते हैं। अनुवादक का कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के संक्षिप्त तथा अस्पष्ट अंशों को स्पष्ट व्याख्या टिप्पणी के रूप में अथवा अनुवाद में ही करे। ऐसे अंशों को स्पष्ट करने के लिए उसे प्राचीन संस्कृत-टीकाओं एवं व्याख्याओं का सहारा आवश्यक है। यदि वही वचन अन्यत्र भी किसी पुराण में अथवा महाभारतादि में मिल सके तो उसका अन्वेषण करके तव अर्थ को स्पष्ट करना चाहिए। उदाहरणार्थ, वामनपुराण का निम्नलिखित श्लोक देखिये—

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तुभ्यं होत्रात्मने नमः॥
(वा०-पु०, सरो-माहात्म्य, ५.१)

यह श्लोक कश्यप द्वारा की हुई विष्णु-स्तुति का है। किन्तु इसका अर्थ अस्पष्ट है। यही श्लोक महाभारत-शान्तिपर्व के भीष्मस्तवराज में भी दिया हुआ है। (४७.४३)। नीलकण्ठ ने महाभारत की अपनी टीका में इसका अर्थ इस प्रकार किया है—

"चतुर्भिरिति। आश्रावयेति, चतुरक्षरम्। अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम्। यजेति द्व्यक्षरम्। ये यजामहे इति पञ्चाक्षरम्। द्व्यक्षरो वषट्कार इति सप्तदशभिरक्षरैर्योहूयते तस्मै होत्रात्मने नमः॥" इस व्याख्या से अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार कूर्मपुराण का १.२८.१२ श्लोक—"अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः। प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे" भी कुछ अस्पष्ट है, परन्तु इसी के समकक्ष श्लोक महाभा. ३.१८८.४२ है जिसका अर्थ नीलकण्ठ ने स्पष्ट किया है (कूर्मपुराण के पाठसमीक्षात्मक संस्करण में Critical Notes देखिये)।

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन से अर्थ को स्पष्ट करते हुये पुराणों का अनुवाद करना उचित है।

(४) सभी पुराण संस्कृत भाषा में रचित हैं, जिसके कारण पुराणों की भाषा की समस्या भी अनुवाद में आ खड़ी होती है। इस भाषा-समस्या के निम्नलिखित पक्ष यहाँ विचारणीय है :—

(क) संस्कृत अत्यन्त संहत या संश्लिष्ट भाषा है। संस्कृत का एक छोटा-सा वाक्य अनुवाद में अनेक वाक्यों की अपेक्षा रख सकता है और फिर भी मूल के भाव का चमत्कार एवं सौष्ठव अनुवाद में आ ही जाय यह भी निश्चित नहीं है। महाभारत के सावित्र्युपाख्यान के अनुवाद के संबन्ध में विंटरनिट्ज का कथन है कि "यह काव्य यूरोप की भाषाओं में अनूदित हुआ है, जर्मन में भी इसका अनुवाद हुआ है, परन्तु ये सभी अनुवाद अथवा रूपान्तर इस भारतीय काव्य के अनुपम चमत्कार की झाँकी मात्र दे सकते हैं।" (पृ० ३९९).

(ख) अन्य संस्कृत-काव्यों के समान पुराणों में भी हमें स्थल-स्थल पर स्थानों, दृश्यों इत्यादि के उच्चकोटि के काव्यात्मक वर्णन मिलते हैं जिनमें श्लेष तथा परिसंख्या आदि अलंकारों का भी खूब प्रयोग होता है। संस्कृत के श्लेष तथा परिसंख्या का अन्य भाषा में अनुवाद करते ही उनका चमत्कार तथा काव्य-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और उनका पूरा-पूरा भाव भी अनुवाद में लाना दुष्कर हो जाता है।

(ग) संस्कृत के कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके समानार्थक या पर्याय-शब्दों का अन्य भाषाओं में मिलना संभव नहीं है; उदाहरणार्थ, 'धर्म', 'यज्ञ', 'ब्रह्मचर्य' आदि ऐसे शब्द हैं, जिनका वह पूर्ण भाव जिनके साथ भारतीय मानस

---

२६. दे०—विण्टरनिट्ज, पूर्वोक्त ग्रन्थ, पृ० १२.

जुड़ा हुआ है अन्य भाषाओं के किन्हीं भी पर्याय शब्दों में आना संभव नहीं, उनको अधूरी व्याख्या अवश्य की जा सकती है, परन्तु उससे अनुवाद का प्रवाह बाधित हो जाता है। विंटरनिट्ज ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। वे कहते हैं—"यूरोप की किसी भी भाषा में ऐसा शब्द नहीं है जो संस्कृत-शब्द 'धर्म' का पर्यायवाचक कहा जा सके। (पृष्ठ ३५२, पादटिप्पणी २)। अतः ऐसे शब्दों का अनुवाद हो ही नहीं सकता।

(घ) पुराणों की संस्कृत-भाषा प्राकृत भाषा के प्रभाव के कारण अथवा छन्दोऽनुरोध के कारण बहुधा अपाणिनीय हो गई है। पुराणों के इस प्रकार के अपाणिनीय प्रयोगों से अनुवादक का परिचित होना आवश्यक है नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है, उदाहरणार्थ, प्राकृत के समान पुराणों में भी द्वितीया के स्थान में प्रथमा का प्रयोग मिलता है, जैसे—

रुद्रमौशनसः प्रादात् ततोऽन्ये मातरो ददुः।
(वामन-पु०, समीक्षात्मक संस्करण, ३१.९१)

इस श्लोकार्ध में 'मातरो' शब्द प्रथमा विभक्ति में होते हुए भी वस्तुतः कर्मकारक को द्वितीया में है परन्तु इस बात को न समझते हुए लेखकों ने इस पुराण की प्राचीन पाण्डुलिपियों में अनेक अशुद्ध पाठभेद कर दिये हैं। जैसे 'अन्ये' के स्थान में 'अन्यान्' आदि, जो प्रसंग के अनुसार ठीक नहीं बैठते।

(ङ) प्रायः कोई भी संपूर्ण पुराण किसी एक ही ग्रन्थकार का प्रणीत नहीं है। पुराण के पाठ की वृद्धि तथा उसमें परिवर्तन देशकाल के अनुसार सदा से होता आया है। अतः उनमें कुछ ऐसे भी शब्द आ गये हैं जो उस काल तथा देश में भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते थे और जिनका वह अर्थ संस्कृत-साहित्य में प्रचलित नहीं है। उदाहरणार्थ क्रिया-योगसार में जो पद्मपुराण का एक खण्ड माना जाता है और जिसका निर्माण पूर्वी बंगाल में ९वीं या १०वीं शताब्दी में हुआ, 'प्रस्ताव' शब्द (६.१२४) कथा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा 'कल्लोल' शब्द (१०.२१; २०.९०) 'कुल्ले' अर्थात् आचमन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार बृहद्धर्मपुराण में जिसका निर्माण भी बंगाल में ही १३वीं शताब्दी में हुआ, संस्कृत धातु 'वस्' का प्रयोग 'बैठने' के अर्थ में (२.१४.१६) तथा 'विलक्षण' शब्द का प्रयोग 'पर्याप्त' के अर्थ में (२.१४.५०) हुआ है।[२७]

(च) पुराणों के अस्थिर पाठ के कारण उनमें कुछ ऐसे श्लोक भी होने संभव हैं जिनका कोई सुनिश्चित तथा संतोषजनक अर्थ नहीं किया जा सकता ऐसे संदिग्धार्थात्मक श्लोकों का संभावित अर्थ करने के अतिरिक्त अनुवाद में उनका पृथक् निर्देश भी कर देना उचित है जिससे आगे विद्वानों को उन पर विचार करने का अवसर मिले।

पुराणों के अनुवाद की कतिपय समस्याओं का उल्लेख यहाँ किया गया है। इस प्रकार की अन्य समस्याएँ भी अनुवाद में उपस्थित हो सकती हैं जिनका समाधान विद्वान् तथा अनुभवी अनुवादक के लिए सर्वथा शक्य है।

कूर्मपुराण का प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद

कूर्मपुराण के पाठसमीक्षात्मक निर्धारित पाठ का यह हिन्दी अनुवाद चौ० श्रीनारायण सिंह जी, एम० ए० ने बड़ी योग्यता के साथ किया है। पुराण-विभाग के शोध-सहायक डा० गंगासागर राय ने इसका प्रूफ देखते समय इसमें यथोचित संशोधन, परिवर्धन इत्यादि भी किये हैं। अनुवाद के अन्त में कतिपय उपयोगी परिशिष्ट—नाम सूची आदि—तथा श्लोकार्ध सूची भी सम्मिलित कर दिये गये हैं जिससे यह अनुवाद जिज्ञासु पाठकों के लिये तथा शोध-छात्रों के लिये उपयोगी सिद्ध हो सके। साधारण पाठक के लिये भी इस अनुवाद की उपयोगिता तो है ही।

कृतज्ञता-प्रकाशन

अनुवादक महोदय ने कड़े परिश्रम से योग्यतापूर्वक इस अनुवाद-कार्य को समय के भीतर पूरा किया है, जिसके लिये हम सभी उनके कृतज्ञ हैं। परिशिष्टों के तथा श्लोकार्धसूची के तैयार करने में पुराण विभाग के सभी

२७. दे०—आर० सी० हाजरा, स्टडीज़ इन दि उपपुराणाज़, भाग १, पृ० २७५, एवं भाग २ पृ० ४४९-५०.

विद्वानों ने यथोचित सहयोग दिया है। इस कार्य में डा० गंगासागर राय, डा० रामचन्द्र पाण्डेय विद्या-वारिधि, पं० हीरामणि मिश्र (विशेषतः विषयसाम्यकार्य) चौ० विजयशंकर सिंह, श्री सुधाकर मालवीय एम० ए० साहित्याचार्य तथा श्री कृपासिन्धु शर्मा ने उल्लेखनीय सहायता दी जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

महाराज काशिनरेश डा० विभूतिनारायण सिंह जी, जिनके पथ-प्रदर्शन तथा निर्देशन से यह सभी कार्य सम्पन्न हुआ है तथा काशिराजन्यास के महामन्त्री श्री रमेशचन्द्र देव जिनकी प्रेरणा तथा उत्साहप्रवर्धन से यह कार्य समय के भीतर पूरा हो सका परम धन्यवाद के पात्र हैं और हम सभी उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

तारा प्रेस के प्रबन्धक एवं मुद्रक श्री रमाशंकर पण्ड्या ने जिस अथक परिश्रम एवं अनुकरणीय लगन तथा कुशलता के साथ इस कार्य को समय पर पूरा किया उसके लिये न्यास उनका परम कृतज्ञ है।

पुराण-विभाग, रामनगर फोर्ट
३० अगस्त, १९७२ ई०

—आनन्दस्वरूप गुप्त

मूलसंस्कृतग्रन्थस्य अशुद्धिपत्रम्

(कुत्रचिद् अनुवादोऽपि तदनुसारेणैव संशोधनमर्हेत्)

	अशुद्धम्	शुद्धम्
I. 1.88d	द्वितीया व्यक्तयंश्रया	द्वितीयाऽव्यक्तसंश्रया
I. 11.161b	नामभेदाऽमहामदा	नामभेदा महामदा
271b	°च्छास्त्रधर्माभिधायकं	°च्छास्त्रं धर्माभिधायकम्
I. 14.25b	भगवान्नृषिः	भगवानृषिः
I. 15.150c	कोऽन्वयं	को न्वयं
I. 16.2b	स देवेन्द्रान्	सदेवेन्द्रान्
I. 21.13c	हैहस्य	हैहयस्य
I. 23.39b	वैमात्तिकास्	वै मार्तिकास्
I. 29.25a	स्थानान्तरं	स्थानान्तरे
I. 43.12d	भरतास्	भारतास्
26b, 30b, 35b	केसराचलः	केसराचलाः
I. 44.20d	येऽम्बुदाः	ये नराः
I. 49.13b	सुरा वाहरयस्तथा	सुरावा हरयस्तथा
42d	प्रद्युम्नः	पुरुषः
47d	चेदं	वेदं
II. 2.8d	नाहं कर्त्ता	नाहंकर्त्ता
II. 6.26d	तिष्ठन्ममा°	तिष्ठेन्ममा°
II. 11.132a	यदहं	यदाहं
II. 12.56c	ब्रह्मचर्याहरे°	ब्रह्मचार्याहरे°
II. 13.6d	स्पृष्ट्वा प्रयतमेव	स्पृष्ट्वाऽप्रयतमेव
II. 14.57c	प्रोष्ठपद्यां	प्रौष्ठपद्यां
65b	शेषरात्रौ	शेषे रात्रौ
II. 16.15c	पञ्चरात्रान्	पाञ्चरात्रान्
85c	मुखे नैव	मुखेनैव
II. 18.42c	हिरण्मयं	हिरण्मये
44c	सर्वभक्ताय	सर्वभक्षाय
II. 19.18c	वृत्यर्थ	वृत्त्यर्थं
II. 20.29a, 32b	गङ्गायां	गयायां
II. 22.90c	ऋक्याद्	ऋक्थाद्
II. 23.36c	चास्ववर्ये	वा श्वशुर्ये
36d	तदिष्यते	च शिष्यके
37b	वै तदेव हि	चैतदेव हि
II. 26.46c	अनडुदः	अनुडुद्दः
II- 31.25a	दृष्ट्वा	सृष्ट्वा
62b	सुतः	श्रुतः
90c	न विद्यतेऽनाभ्युदिता	न विद्यते नाभ्युदिता
II. 37.15b	युवानो जितमानसाः	युवानोऽजितमानसाः
18d	मायानुभूयन्ते	मयाऽनुभूयन्ते
16d	दन्तोऽलूखलिनस्	दन्तोलूखलिनस्
II. 44.101c	ब्रह्मविष्णोस्	ब्रह्मविष्ण्वोस्

अध्यायविषयसूची

(पूर्वविभाग)

(उपरि विभागे)

अथ श्रीकूर्मपुराणम्

पूर्वविभागः

१

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।।

नमस्कृत्वाऽप्रमेयाय विष्णवे कूर्मरूपिणे ।
पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं विश्वयोनिना ।।१
सत्रान्ते सूतमनघं नैमिषीया महर्षयः ।
पुराणसंहितां पुण्यां पप्रच्छू रोमहर्षणम् ।।२
त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः ।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ।।३
तस्य ते सर्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत् ।
द्वैपायनस्य भगवांस्ततो वै रोमहर्षणः ।।४
भवन्तमेव भगवान् व्याजहार स्वयं प्रभुः ।
मुनीनां संहितां वक्तुं व्यासः पौराणिकीं पुरा ।।५

त्वं हि स्वायंभुवे यज्ञे सुत्याहे वितते हरिः ।
संभूतः संहितां वक्तुं स्वांशेन पुरुषोत्तमः ।।६
तस्माद् भवन्तं पृच्छामः पुराणं कौर्ममुत्तमम् ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं पुराणार्थविशारद ।।७
मुनीनां वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः ।
प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम् ।।८

रोमहर्षण उवाच ।

नमस्कृत्वा जगद्योनिं कूर्मरूपधरं हरिम् ।
वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम् ।।९

१

नारायण, नरों में श्रेष्ठ नर तथा सरस्वती देवी को नमस्कार कर जय (पुराण, इतिहास) का पाठ करें।

कूर्मरूपधारी अप्रमेय विष्णु को नमस्कार कर मैं (उस) पुराण को कहूँगा जिसे विश्वयोनि (विष्णु) ने कहा था। (१)

नैमिषारण्यवासी महर्षियों ने यज्ञ के अन्त में निष्पाप रोमहर्षण सूत से पवित्र पुराण-संहिता पूछी— (२)

हे महाबुद्धिमान् सूत ! आपने इतिहास और पुराणों के लिए श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी भगवान् व्यास की भलीभाँति उपासना की है। (३)

अतः आपके वचन से उन द्वैपायन (महर्षि) के समस्त रोम हर्षित हो गये थे अतएव आप रोमहर्षण कहे जाते हैं। (४)

प्राचीन काल में स्वयं प्रभु भगवान् व्यास ने आपको ही मुनियों से पुराण-संहिता कहने के लिये कहा था। (५)

आप ब्रह्मा के यज्ञ में सुत्या—अर्थात् सोमरस प्रस्तुत करने के दिन (पुराण) संहिता कहने के लिये अपने अंश से उत्पन्न (साक्षात्) पुरुषोत्तम हरि हैं। (६)

अतः हम आप से उत्तम कूर्म-पुराण पूछ रहे हैं। हे पुराणों के अर्थ में विशारद ! आप हमसे (उसे) कहिए। (७)

मुनियों का वचन सुनकर श्रेष्ठ पौराणिक सूत ने (अपने) गुरु सत्यवती के पुत्र (व्यास) को मन से प्रणाम कर कहा। (८)

रोमहर्षण ने कहा—

संसार के मूल (कारण) कूर्मरूपधारी हरि को नमस्कार कर मैं पाप को नष्ट करने वाली पुराण की (उस)

यां श्रुत्वा पापकर्माऽपि गच्छेत परमां गतिम् ।
न नास्तिके कथां पुण्यामिमां ब्रूयात् कदाचन ।।१०
श्रद्दधानाय शान्ताय धार्मिकाय द्विजातये ।
इमां कथामनुब्रूयात् साक्षान्नारायणेरिताम् ।।११
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।१२
ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च ।
शैवं भागवतं चैव भविष्यं नारदीयकम् ।।१३
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेव च ।
लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च ।।१४
कौर्मं मात्स्यं गारुडं च वायवीयमनन्तरम् ।
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम् ।।१५
अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु ।
अष्टादशपुराणानि श्रुत्वा संक्षेपतो द्विजाः ।।१६
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम् ।
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम् ।।१७
चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम् ।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम् ।।१८
कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम् ।
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च ।।१९
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसंचयम् ।
पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवाह्वयम् ।।२०
इदं तु पञ्चदशमं पुराणं कौर्ममुत्तमम् ।
चतुर्द्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः ।।२१
ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिताः ।
चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः ।।२२
इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता ।
भवन्ति षट्सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया ।।२३

दिव्य कथा को कहता हूँ जिसे सुनकर पाप कर्म करने वाला भी परम गति प्राप्त करता है। इस पवित्र कथा को कभी किसी नास्तिक से नहीं कहनी चाहिए। (९, १०)

साक्षात् नारायण की कही इस कथा को श्रद्धालु, शान्त एवं धार्मिक द्विजों-अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों-से कहनी चाहिए। (११)

पुराण सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित (अर्थात् मूल मानववंशों के पुरुषों के चरित्र का वर्णन) रूपी पाँच लक्षणों से युक्त होते हैं। (१२)

प्रथम ब्रह्मपुराण है एवं तदनन्तर पद्म पुराण, विष्णु पुराण, शिवपुराण, भागवत, भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ (पुराण) हैं तथा वायुप्रोक्त अठ्ठारहवें पुराण का नाम ब्रह्माण्ड कहा गया है। (१३-१५)

हे ब्राह्मणो ! अट्ठारह पुराणों को सुनकर मुनियों ने संक्षेप से अन्य उपपुराणों को कहा। (१६)

(इन उपपुराणों में) प्रथम सनत्कुमार के द्वारा कहा गया है; तदनन्तर नृसिंह पुराण एवं कुमार (कार्तिकेय) द्वारा वर्णित तृतीय स्कन्द पुराण है। साक्षात् नन्दीश- अर्थात् शिव ने शिवधर्म नामक चतुर्थ पुराण कहा है। तदनन्तर दुर्वासा का कहा हुआ (पंचम) आश्चर्य पुराण एवं (छठवाँ) नारद पुराण है। (सप्तम) कपिल पुराण (एवं अष्टम) मानव पुराण है। इसी प्रकार उशना अर्थात् शुक्राचार्य ने (नवम पुराण) कहा है। (तदनन्तर दसवाँ) ब्रह्माण्ड पुराण, (ग्यारहवाँ) वरुण पुराण, एवं (बारहवाँ) कालिका नामक पुराण है। (तेरहवाँ) माहेश्वर पुराण (चौदहवाँ) साम्वपुराण तथा सम्पूर्ण अर्थों से युक्त (पन्द्रहवाँ) सौर पुराण है। (सोलहवाँ) पुराण पराशर ने कहा है। इसी प्रकार (सत्रहवाँ) मारीच पुराण तदनन्तर (अट्ठारहवाँ) भार्गव पुराण है। (१७-२०)

यह उत्तम कूर्म पुराण पन्द्रहवाँ (पुराण) है। संहिताओं के भेद से यह पवित्र (पुराण) चार भागों में विभक्त है— (२१)

ब्राह्मी, भागवती, सौरी एवं वैष्णवी (नामक इसकी) चार पवित्र संहिताएँ धर्म, काम, अर्थ एवं मोक्ष को देने वाली कही गयी हैं। (२२)

यह ब्राह्मी संहिता चारों वेदों से अनुमोदित है। इसमें श्लोकों की संख्या छः हजार है। (२३)

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः ।
माहात्म्यमखिलं ब्रह्म ज्ञायते परमेश्वरः ।।२४
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं दिव्याः पुण्याः प्रासङ्गिकीः कथाः ।।२५
ब्राह्मणाद्यैरियं धार्या धार्मिकैः शान्तमानसैः ।
तामहं वर्त्तयिष्यामि व्यासेन कथितां पुरा ।।२६
पुराऽमृतार्थं दैतेयदानवैः सह देवताः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम् ।।२७
मथ्यमाने तदा तस्मिन् कूर्मरूपी जनार्दनः ।
वभार मन्दरं देवो देवानां हितकाम्यया ।।२८
देवाश्च तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः ।
कूर्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम् ।।२९
तदन्तरेऽभवद् देवी श्रीर्नारायणवल्लभा ।
जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः ।।३०

तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः ।
मोहिताः सह शक्रेण श्रियो वचनमब्रुवन् ।।३१
भगवन् देवदेवेश नारायण जगन्मय ।
कैषा देवी विशालाक्षी यथावद् ब्रूहि पृच्छताम् ।।३२
श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवमर्दनः ।
प्रोवाच देवीं संप्रेक्ष्य नारदादीनकल्मजान् ।।३३
इयं सा परमा शक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी ।
माया मम प्रियाऽनन्ता ययेदं मोहितं जगत् ।।३४
अनयैव जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विसृजामि च ।।३५
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतनामागतिं गतिम् ।
विज्ञायान्वीक्ष्य चात्मानं तरन्ति विपुलामिमाम् ।।३६
अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् द्विजाः ।
ब्रह्मेशानादयो देवाः सर्वशक्तिरियं मम ।।३७

हे मुनीश्वरो ! इसमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के सम्पूर्ण माहात्म्य एवं परमेश्वर ब्रह्म का ज्ञान होता है । (२४)

(तथा इसमें) सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित एवं अलौकिक प्रासङ्गिक पवित्र कथायें (कही गयी) हैं । (२५)

शान्तचित्त एवं धार्मिक ब्राह्मणादिकों को यह कथा धारण करनी चाहिए । पूर्वकाल में व्यास की कही ऐसी उस कथा का मैं वर्णन करूँगा । (२६)

प्राचीन काल में मन्दराचल को मन्थन-दण्ड बनाकर दैत्यों और दानवों के साथ देवताओं ने अमृत के लिए क्षीरसागर का मंथन किया । (२७)

उस क्षीरसागर का मन्थन होने के समय देवों के हित की कामना से कूर्मरूपधारी जनार्दन-विष्णु-ने मन्दराचल को ऊपर उठाये रक्खा । (२८)

कूर्मरूपधारी साक्षी (द्रष्टा) अव्यय (विनाशहीन) विष्णु को देखकर देवों तथा नारदादि महर्षियों ने उन देव की स्तुति की । (२९)

उसी बीच नारायण की वल्लभा (श्री लक्ष्मी) उत्पन्न हुई । पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने ही उन्हें ग्रहण किया । (३०)

लक्ष्मी के तेज से मोहित इन्द्र सहित नारदादि महर्षियों ने अव्यक्त विष्णु से यह वचन कहा— (३१)

हे देवदेवेश ! जगन्मय ! भगवन् ! नारायण ! (हम) पूछने वालों को आप ठीक-ठीक बतलायें कि यह विशाल नेत्रों वाली देवी कौन हैं ? (३२)

उस समय उनका वह वाक्य सुनकर दानवों के विनाशक विष्णु ने देवी की ओर देखकर निष्पाप नारदादि से कहा— (३३)

यह मेरी स्वरूपभूता ब्रह्मरूपिणी परमा शक्ति मेरी वही अनन्ता एवं प्रिया माया है, जिससे यह जगत मोहित किया गया है । (३४)

हे द्विजश्रेष्ठो ! मैं इसी के द्वारा देवताओं, असुरों एवं मानवों से युक्त समस्त जगत् को मोहित करता तथा उसका संहार और सृष्टि करता हूँ । (३५)

(ज्ञानी जन) (जगत् की) उत्पत्ति और प्रलय एवं प्राणियों के जन्म और मोक्ष को जानकर तथा आत्मा का चिन्तन कर इस विपुल माया को पार करते हैं । (३६)

हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मा, शिव आदि सभी देवता इसी के अंशों का आश्रय प्राप्त कर शक्तिमान् हुए हैं । यह मेरी सर्वशक्तिस्वरूपा है । (३७)

सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।
प्रागेव मत्तः संजाता श्रीकल्पे पद्मवासिनी ।।३८
चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्ता शुभान्विता ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशा मोहिनी सर्वदेहिनाम् ।।३९
नालं देवा न पितरो मानवा वसवोऽपि च ।
मायामेतां समुत्तर्तुं ये चान्ये भुवि देहिनः ।।४०
इत्युक्ता वासुदेवेन मुनयो विष्णुमब्रुवन् ।
ब्रूहि त्वं पुण्डरीकाक्ष यदि कालत्रयेऽपि च ।।
को वा तरति तां मायां दुर्जयां देवनिर्मिताम् ।।४१
अथोवाच हृषीकेशो मुनीन् मुनिगणार्चितः ।
अस्ति द्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ।।४२
पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शंकरादिभिः ।
दृष्ट्वा मां कूर्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम् ।
संहितां मन्मुखाद् दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान् ।।४३
ब्रह्माणं च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः ।
मच्छक्तौ संस्थितान् बुद्ध्वा मामेव शरणं गतः ।।४४
संभाषितो मया चाथ विप्रयोनिं गमिष्यसि ।
इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो जातिं स्मरसि पौर्विकीम् ।।४५
सर्वेषामेव भूतानां देवानामप्यगोचरम् ।
वक्तव्यं यद् गुह्यतमं दास्ये ज्ञानं तवानघ ।
लब्ध्वा तन्मामकं ज्ञानं मामेवान्ते प्रवेक्ष्यसि ।।४६
अंशान्तरेण भूम्यां त्वं तत्र तिष्ठ सुनिर्वृतः ।
वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते कार्यार्थं मां प्रवेक्ष्यसि ।।४७
मां प्रणम्य पुरीं गत्वा पालयामास मेदिनीम् ।
कालधर्मं गतः कालाच्छ्वेतद्वीपे मया सह ।।४८
भुक्त्वा तान् वैष्णवान् भोगान् योगिनामप्यगोचरान् ।
मदाज्ञया मुनिश्रेष्ठा जज्ञे विप्रकुले पुनः ।।४९
ज्ञात्वा मां वासुदेवाख्यं यत्र द्वे निहितेऽक्षरे ।
विद्याविद्ये गूढरूपे यत्तद् ब्रह्म परं विदुः ।।५०
सोऽर्चयामास भूतानामाश्रयं परमेश्वरम् ।
व्रतोपवासनियमैर्होमैर्ब्राह्मणतर्पणैः ।।५१

यही वह समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली त्रिगुणों से युक्त प्रकृति है, जो प्राचीन समय में श्रीकल्प में शङ्ख, चक्र एवं पद्म से युक्त हाथों वाली एवं मङ्गलमय गुणों वाली, करोड़ों सूर्य के तुल्य (तेजयुक्त) एवं सभी प्राणियों को मोहित करनेवाली चतुर्भुजधारिणी पद्मवासिनी के रूप में मुझसे उत्पन्न हुई थी। (३८,३९)

देवता, पितर, मनुष्य, वसुगण एवं पृथ्वी के अन्य जितने देहधारी हैं वे इस माया को पार करने में समर्थ नहीं हैं। (४०)

वासुदेव के ऐसा कहने पर मुनियों ने विष्णु से कहा—"हे पुण्डरीकाक्ष ! तीनों कालों में जो उस दुर्जय देवनिर्मित माया को पार करता है उसे आप बतलायें।" (४१)

तदनन्तर मुनियों से पूजित हृषीकेश ने (उन) मुनियों से कहा—इन्द्रद्युम्न नाम से प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ द्विजाति (ब्राह्मण) था। (४२)

पूर्वजन्म में वह शङ्करादि (देवों से भी) अजेय राजा था। कूर्मरूपधारी मुझे देखने एवं स्वयं मेरे मुख से दिव्य पुराण की संहिता श्रवण करने के उपरान्त श्रेष्ठ मुनियों सहित ब्रह्मा, महादेव एवं अपनी शक्तियों से युक्त अन्य देवों को भी मेरी शक्ति में स्थित जानकर (वह) मेरी शरण में आया। मैंने उससे कहा—कि "तुम विप्रयोनि में उत्पन्न होगे (और) इन्द्रद्युम्न नाम से प्रसिद्ध होकर तुम पूर्वजन्म का स्मरण करोगे। हे निष्पाप! मैं सभी प्राणियों एवं देवों को भी अज्ञात तथा अत्यन्त गूढ़ रूप से कहने योग्य ज्ञान तुम्हें प्रदान करूँगा। मेरे उस ज्ञान को प्राप्त कर अन्त में तुम मुझमें ही प्रविष्ट हो जाओगे।" (४३-४६)

दूसरे अंश से तुम वहाँ भूमि पर शान्तिपूर्वक रहो। वैवस्वत मन्वन्तर समाप्त होने पर (अभीष्ट) कार्य के लिये तुम मुझमें प्रविष्ट हो जाओगे। (४७)

(तदनन्तर) मुझे प्रणाम करने के उपरान्त (अपने) नगर में जाकर वह पृथ्वी का पालन करने लगा। यथा-समय मृत्यु होने पर उसने मेरे साथ श्वेतद्वीप में योगियों को भी अगोचर विष्णु से सम्बन्धित भोगों का उपभोग किया। हे मुनिश्रेष्ठो ! (तदनन्तर) वह मेरी आज्ञा से पुनः ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। (४८,४९)

जहाँ गूढस्वरूपा अविनाशी विद्या एवं अविद्या ये दोनों निहित हैं एवं जिसे (ज्ञानीजन) परम ब्रह्म (के नाम से) जानते हैं ऐसे वासुदेव नामक मुझे जानकर उसने व्रत, उपवास, नियम, होम और ब्राह्मणों की तृप्ति

तदाशीस्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
आराधयन् महादेवं योगिनां हृदि संस्थितम् ॥५२
तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचित् परमा कला ।
स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं विष्णुसमुद्भवम् ॥५३
दृष्ट्वा प्रणम्य शिरसा विष्णोर्भगवतः प्रियाम् ।
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः कृताञ्जलिरभाषत ॥५४

इन्द्रद्युम्न उवाच ।

का त्वं देवि विशालाक्षि विष्णुचिह्नाङ्किते शुभे ।
याथातथ्येन वै भावं तवेदानीं ब्रवीहि मे ॥५५
तस्य तद् वाक्यमाकर्ण्य सुप्रसन्ना सुमङ्गला ।
हसन्ती संस्मरन् विष्णुं प्रियं ब्राह्मणमब्रवीत् ॥५६
न मां पश्यन्ति मुनयो देवाः शक्रपुरोगमाः ।
नारायणात्मिका चैका मायाऽहं तन्मया परा ॥५७
न मे नारायणाद् भेदो विद्यते हि विचारतः ।
तन्मयाऽहं परं ब्रह्म स विष्णुः परमेश्वरः ॥५८
येऽर्चयन्तीह भूतानामाश्रयं परमेश्वरम् ।
ज्ञानेन कर्मयोगेन न तेषां प्रभवाम्यहम् ॥५९
तस्मादनादिनिधनं कर्मयोगपरायणः ।
ज्ञानेनाराधयानन्तं ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥६०
इत्युक्तः स मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नो महामतिः ।
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत् ॥६१
कथं स भगवानीशः शाश्वतो निष्कलोऽच्युतः ।
ज्ञातुं हि शक्यते देवि ब्रूहि मे परमेश्वरि ॥६२
एवमुक्ताऽथ विप्रेण देवी कमलवासिनी ।
साक्षान्नारायणो ज्ञानं दास्यतीत्याह तं मुनिम् ॥६३
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिम् ।
स्मृत्वा परात्परं विष्णुं तत्रैवान्तरधीयत ॥६४

द्वारा सभी प्राणियों के आश्रयस्वरूप परमेश्वर की आराधना की। (५०, ५१)

उन्हीं की मङ्गलकामना तथा उन्हीं को नमस्कार करते हुए उनका अनन्यानुरागी एवं आश्रित होकर वह योगियों के हृदय में स्थित महादेव की आराधना करने लगा। (५२)

उसके इस प्रकार का व्यवहार करते समय किसी दिन परमा कला—अर्थात् विद्यात्मिका वैष्णवी शक्ति—ने विष्णु से उत्पन्न अपना दिव्य स्वरूप (उसे) दिखलाया। (५३)

भगवान् विष्णु की प्रिया को देखकर (उसने) सिर झुका कर प्रणाम किया एवं अनेक प्रकार के स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर हाथ जोड़कर कहा। (५४)

इन्द्रद्युम्न ने कहा—"हे विष्णु के चिन्हों से युक्त कल्याणमयी विशाल नेत्रों वाली देवी ! आप कौन हैं ? आप अपना यथार्थ स्वरूप मुझे बतलायें" (५५)

उसके उस वाक्य को सुनकर अतीव प्रसन्न मङ्गलमयी देवी ने हँसते हुए प्रिय ब्राह्मण से कहा— (५६)

"मुनि तथा इन्द्रादि देवता मुझ अद्वितीय नारायण स्वरूपा को नहीं देख पाते। मैं उन विष्णु की प्रकृत-स्वरूपा परा माया हूँ।" (५७)

"विचार करने पर मुझमें और नारायण में कोई भेद नहीं है। मैं उनकी प्रकृतिस्वरूपा हूँ एवं वह विष्णु परमेश्वर पर ब्रह्म हैं।" (५८)

"ज्ञान एवं कर्मयोग द्वारा जो लोग प्राणियों के आश्रय स्थान पुरुषोत्तम की अर्चना करते हैं उनके ऊपर मेरा वश नहीं चलता।" (५९)

"अतः कर्मयोग का अवलम्बन करते हुए ज्ञानपूर्वक आदि और अन्त से रहित अनन्त (विष्णु) की आराधना करो। इस प्रकार तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा।" (६०)

ऐसा कहे जाने पर अत्यन्त बुद्धिमान् मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न ने देवी को सिर झुका कर प्रणाम किया एवं हाथ जोड़कर पुनः कहा— (६१)

"हे देवि ! हे परमेश्वरी ! नित्य, अखण्ड, अच्युत नियामक भगवान् को किस प्रकार जाना जा सकता है यह मुझे बताइये" (६२)

ब्राह्मण के ऐसा कहने पर कमलवासिनी देवी ने उस मुनि से कहा—"साक्षात् नारायण (तुम्हें यह) ज्ञान प्रदान करेंगे।" (६३)

(तदनन्तर) प्रणाम कर रहे मुनि को दोनों हाथों से स्पर्श करने के उपरान्त परात्पर विष्णु का स्मरण कर (श्री देवी) वहीं अन्तर्हित हो गयीं। (६४)

सोऽपि नारायणं द्रष्टुं परमेण समाधिना ।
आराधयद्धृषीकेशं प्रणतार्तिप्रभञ्जनम् ॥६५
ततो बहुतिथे काले गते नारायणः स्वयम् ।
प्रादुरासीन्महायोगी पीतवासा जगन्मयः ॥६६
दृष्ट्वा देवं समायान्तं विष्णुमात्मानमव्ययम् ।
जानुभ्यामवनिं गत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥६७

इन्द्रद्युम्न उवाच ।

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव ।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश तुभ्यं विश्वात्मने नमः ॥६८
नमोऽस्तु ते पुराणाय हरये विश्वमूर्तये ।
सर्गस्थितिविनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये ॥६९
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं निष्कलायामलात्मने ।
पुरुषाय नमस्तुभ्यं विश्वरूपाय ते नमः ॥७०
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये ।
आदिमध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥७१
नमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नमः ।
भेदाभेदविहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे ॥७२
नमस्ताराय शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने ।
अनन्तमूर्तये तुभ्यममूर्ताय नमो नमः ॥७३
नमस्ते परमार्थाय मायातीताय ते नमः ।
नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥७४
नमोऽस्तु ते सुसूक्ष्माय महादेवाय ते नमः ।
नमः शिवाय शुद्धाय नमस्ते परमेष्ठिने ॥७५
त्वयैव सृष्टमखिलं त्वमेव परमा गतिः ।
त्वं पिता सर्वभूतानां त्वं माता पुरुषोत्तम ॥७६
त्वमक्षरं परं धाम चिन्मात्रं व्योम निष्कलम् ।
सर्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं तमसः परम् ॥७७
प्रपश्यन्ति परात्मानं ज्ञानदीपेन केवलम् ।
प्रपद्ये भवतो रूपं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥७८

नारायण का दर्शन करने के लिए उसने भी श्रेष्ठ समाधि द्वारा भक्तों के दुखनाशक हृषीकेश की आराधना की। (६५)

तत्पश्चात् बहुत दिनों का समय व्यतीत हो जाने पर पीताम्बरधारी जगन्मय महायोगी नारायण स्वयं प्रकट हुए। (६६)

अव्ययात्मा विष्णु को आते देख घुटनों के बल पृथ्वी पर स्थित होकर वह गरुड़ध्वज की स्तुति करने लगा। (६७)

इन्द्रद्युम्न ने कहा—हे यज्ञेश। हे अच्युत ! हे गोविन्द ! हे माधव ! हे अनन्त ! हे केशव ! हे कृष्ण ! हे विष्णु ! हे हृषीकेश ! आप विश्वात्मा को नमस्कार है। (६८)

हे पुराण-पुरुष विश्वमूर्ति ! सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के कारण स्वरूप अनन्तशक्ति हरि ! आपको नमस्कार है। (६९)

हे निर्गुणस्वरूप ! आपको नमस्कार है। निष्कल एवं अमलात्मा को नमस्कार है। हे विश्वरूप पुरुष ! आपको नमस्कार है। (७०)

विश्व के मूलकारणस्वरूप वासुदेव विष्णु को नमस्कार है। आदि, मध्य एवं अन्त से रहित ज्ञान द्वारा जानने योग्य आपको नमस्कार है। (७१)

आप निर्विकार एवं प्रपञ्चरहित को नमस्कार है। भेद एवं अभेद से रहित आनन्दस्वरूप आपको नमस्कार है। (७२)

तारने वाले शान्त शुद्धात्मा को नमस्कार है। अनन्त-मूर्त्तियों वाले आप अमूर्त को बारंबार नमस्कार है। (७३)

परमार्थ स्वरूप एवं मायातीत आपको नमस्कार है। हे ब्रह्मस्वरूप परमसमर्थ परमात्मा ब्रह्म! आपको नमस्कार है। (७४)

हे अति सूक्ष्म महादेव ! आपको नमस्कार है। शुद्ध-स्वरूप शिव को नमस्कार है। हे परमेष्ठी ! आपको नमस्कार है। (७५)

आपने इस सम्पूर्ण (जगत्) की सृष्टि की है। आप ही परमगति हैं। हे पुरुषोत्तम ! आप सभी प्राणियों के पिता एवं माता हैं। (७६)

आप अक्षर, परम धाम (तेज या निवास), केवल चित् स्वरूप, सभी के आधारभूत, तमोगुण से रहित, अव्यक्त एवं अनन्त हैं। (७७)

(साधक जन) केवल ज्ञानरूपी दीपक से जिस परमात्मा का दर्शन करते हैं मैं आपके उस रूप की शरण ग्रहण करता हूँ। वह श्रीविष्णु का श्रेष्ठ स्थान है। (७८)

एवं स्तुवन्तं भगवान् भूतात्मा भूतभावनः ।
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां पस्पर्श प्रहसन्निव ॥७९
स्पृष्टमात्रो भगवता विष्णुना मुनिपुंगवः ।
यथावत् परमं तत्त्वं ज्ञातवांस्तत्प्रसादतः ॥८०
ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥८१
त्वत्प्रसादादसंदिग्धमुत्पन्नं पुरुषोत्तम ।
ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं परमानन्दसिद्धिदम् ॥८२
नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे ।
किं करिष्यामि योगेश तन्मे वद जगन्मय ॥८३
श्रुत्वा नारायणो वाक्यमिन्द्रद्युम्नस्य माधवः ।
उवाच सस्मितं वाक्यमशेषजगतो हितम् ॥८४

श्रीभगवानुवाच ।

वर्णाश्रमाचारवतां पुंसां देवो महेश्वरः ।
ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा ॥८५
विज्ञाय तत्परं तत्त्वं विभूतिं कार्यकारणम् ।
प्रवृत्तिं चापि मे ज्ञात्वा मोक्षार्थीश्वरमर्चयेत् ॥८६
सर्वसङ्गान् परित्यज्य ज्ञात्वा मायामयं जगत् ।
अद्वैतं भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम् ॥८७
त्रिविधा भावना ब्रह्मन् प्रोच्यमाना निबोध मे ।
एका मद्विषया तत्र द्वितीया व्यक्तसंश्रया ।
अन्या च भावना ब्राह्मी विज्ञेया सा गुणातिगा ॥८८
आसामन्यतमां चाथ भावनां भावयेद् बुधः ।
अशक्तः संश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥८९
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
समाराधय विश्वेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥९०

इन्द्रद्युम्न उवाच ।

किं तत् परतरं तत्त्वं का विभूतिर्जनार्दन ।
किं कार्यं कारणं कस्त्वं प्रवृत्तिश्चापि का तव ॥९१

भूतात्मा एवं भूतभावन भगवान् ने किञ्चित् हँसते हुए दोनों ही हाथों से इस प्रकार स्तुति कर रहे (इन्द्रद्युम्न) का स्पर्श किया । (७९)

भगवान् विष्णु के स्पर्श करते ही मुनिश्रेष्ठ को उनकी कृपा से परम तत्त्व का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो गया ।(८०)

तदनन्तर प्रसन्न मन से प्रफुल्ल पद्म सदृश नेत्रों वाले पीताम्बरधारी अच्युत जनार्दन को प्रणाम कर (उसने) कहा— (८१)

"हे पुरुषोत्तम ! आपकी कृपा से परमानन्दविषयक सिद्धि देनेवाला, एकमात्र ब्रह्मविषयक एवं सन्देह-रहित ज्ञान (मुझे) उत्पन्न हुआ ।" (८२)

"हे भगवन् ! हे वासुदेव ! हे वेधा ! आपको नमस्कार है । हे योगेश ! हे जगन्मय ! मैं क्या करूँ ? उसे आप मुझसे कहें ।" (८३)

इन्द्रद्युम्न के वचन को सुनकर माधव नारायण ने हँसते हुए समस्त जगत के लिये हितकर वचन कहा । (८४)

श्रीभगवान् ने कहा—

"वर्णों एवं आश्रमों के आचार से युक्त (व्यक्तियों) को ज्ञान एवं भक्तियोग द्वारा देव महेश्वर की पूजा करनी चाहिए; किसी अन्य प्रकार से नहीं । (८५)

उस परम तत्त्व, विभूति एवं कार्यकारण को भली-भाँति जानकर तथा मेरी प्रवृत्ति को भी समझकर मोक्षार्थी ईश्वर का पूजन करे । (८६)

समस्त सङ्गों का परित्याग कर एवं जगत् को मायामय जानकर अद्वैत आत्मा की भावना करो । (इस प्रकार तुम) परमेश्वर का दर्शन करोगे । (८७)

हे ब्राह्मण ! मुझसे कही जाने वाली तीन प्रकार की भावनाओं को सुनो । उनमें एक मद्विषया–अर्थात् मेरे विषय की भावना है । द्वितीय व्यक्ताश्रय एवं तृतीय ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्मविषयक भावना है । उसको (अर्थात् तीसरी ब्राह्मी भावना को) गुणातीत मानना चाहिए । ज्ञानी को इनमें से किसी एक भावना का ध्यान करना चाहिए । यह वैदिक मत है कि असमर्थ (व्यक्ति) प्रथम (भावना) का अवलम्बन करे । अतः समस्त प्रयत्नपूर्वक तन्निष्ठ एवं तत्परायण होकर विश्वेश की आराधना करो । इससे तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा ।" (८८-९०)

इन्द्रद्युम्न ने कहा—

"हे जनार्दन ! वह अत्यन्त श्रेष्ठ तत्त्व कौन है ? विभूति क्या है ? कार्य और कारण क्या है ? आप कौन हैं ? एवं आपकी प्रवृत्ति क्या है ? (९१)

श्रीभगवानुवाच ।

परात्परतरं तत्त्वं परं ब्रह्मैकमव्ययम् ।
नित्यानन्दं स्वयंज्योतिरक्षरं तमसः परम् ॥९२
ऐश्वर्यं तस्य यन्नित्यं विभूतिरिति गीयते ।
कार्यं जगदथाव्यक्तं कारणं शुद्धमक्षरम् ॥९३
अहं हि सर्वभूतानामन्तर्यामीश्वरः परः ।
सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते ॥९४
एतद् विज्ञाय भावेन यथावदखिलं द्विज ।
ततस्त्वं कर्मयोगेन शाश्वतं सम्यगर्चय ॥९५

इन्द्रद्युम्न उवाच ।

के ते वर्णाश्रमाचारा यैः समाराध्यते परः ।
ज्ञानं च कीदृशं दिव्यं भावनात्रयसंस्थितम् ॥९६
कथं सृष्टमिदं पूर्वं कथं संह्रियते पुनः ।
कियत्यः सृष्टयो लोके वंशा मन्वन्तराणि च ।
कानि तेषां प्रमाणानि पावनानि व्रतानि च ॥९७
तीर्थान्यर्कादिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरे ।
कति द्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च नदीनदाः ।
ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्ष यथावदधुनाऽखिलम् ॥९८

श्रीकूर्म उवाच ।

एवमुक्तोऽथ तेनाहं भक्तानुग्रहकाम्यया ।
यथावदखिलं सर्वमवोचं मुनिपुंगवाः ॥९९
व्याख्यायाशेषमेवेदं यत्पृष्टोऽहं द्विजेन तु ।
अनुगृह्य च तं विप्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम् ॥१००
सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमः ।
आराधयामास परं भावपूतः समाहितः ॥१०१
त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
संन्यस्य सर्वकर्माणि परं वैराग्यमाश्रितः ॥१०२
आत्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत् ।
संप्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्विकाम् ॥१०३

श्रीभगवान् ने कहा—

"नित्य, आनन्दमय, ज्योतिस्वरूप, अनश्वर, तमोगुण-शून्य, एक एवं अव्यय परम ब्रह्म (ही) परात्परतर तत्त्व है। उसके नित्य ऐश्वर्य को ही विभूति कहते हैं। जगत् कार्य एवं शुद्ध अविनश्वर अव्यक्त (अर्थात् प्रकृति) कारण है। मैं सभी प्राणियों का अन्तर्यामी परमेश्वर हूँ। सृष्टि, स्थिति एवं संहार करना मेरी प्रवृत्ति कही जाती है। हे द्विज! श्रद्धापूर्वक इस सम्पूर्ण (तत्त्व) को यथावत् जानकर तुम कर्मयोग द्वारा शाश्वत (देव) की भलीभाँति आराधना करो।" (९२-९५)

इन्द्रद्युम्न ने कहा—

"वर्णों एवं आश्रमों के वे कौन आचार हैं जिनसे परतत्त्व की आराधना की जाती है। तीन भावनाओं से सम्वन्वित दिव्य ज्ञान कैसा है? (९६)

कैसे पूर्व (काल) में इस (समस्त जगत्) की सृष्टि हुई एवं पुनः किस प्रकार इसका संहार होता है। लोक में कितनी सृष्टियाँ, वंश एवं मन्वन्तर हैं? उनके कितने प्रमाण हैं? तथा पवित्र व्रत कौन हैं? (९७)

तीर्थ कौन हैं? सूर्यादि (ग्रहों) की स्थिति एवं पृथ्वी का आयाम एवं विस्तार अर्थात् लम्बाई-चौड़ाई क्या है? द्वीप, समुद्र, पर्वत, नदी एवं नद कितने हैं? हे पुण्डरीकाक्ष! अव आप मुझे यह सभी यथावत् वतलायें।" (९८)

श्रीकूर्म ने कहा—

"हे मुनिश्रेष्ठो! उसके ऐसा कहने पर भक्त के प्रति अनुग्रह की कामना से ब्राह्मण के पूछे इस सम्पूर्ण (विषय) की व्याख्या करते हुए मैंने यथार्थ रूप से सम्पूर्ण (तत्त्व) उससे भलीभाँति कहा। उस विप्र के ऊपर अनुग्रह करने के उपरान्त मैं वहीं अन्तर्हित हो गया। (९९,१००)

उस द्विजोत्तम ने भी मेरे कहे विवान से (इस प्रकार) भाव द्वारा पवित्र एवं एकाग्रचित्त होने के उपरान्त परम (ब्रह्म) की आराधना की। (१०१)

पुत्रादिकों के प्रति आसक्ति को छोड़कर निर्द्वन्द्व एवं अपरिग्रही रूप से सभी कर्मो को त्यागकर (उसने) श्रेष्ठ वैराग्य का आश्रय ग्रहण किया एवं आत्मा अर्थात् परमात्मा में-आत्मा-अर्थात् अपने जीवात्मा-को पुनः पुनः ध्यान कर अपने आत्मा में ही सम्पूर्ण जगत् का अनुभव किया। जिसके पूर्व अक्षर तत्त्व सम्वन्धी भावना की जाती है ऐसी अन्तिम ब्राह्मी भावना प्राप्त करने के उपरान्त उसे (वह) श्रेष्ठ योग उपलव्ध हुआ जिससे

अवाप परमं योगं येनैकं परिपश्यति ।
यं विनिद्रा जितश्वासाः काङ्क्षन्ते मोक्षकाङ्क्षिणः ।।१०४
ततः कदाचिद् योगीन्द्रो ब्रह्माणं द्रष्टुमव्ययम् ।
जगामादित्यनिर्देशान्मानसोत्तरपर्वतम् ।
आकाशेनैव विप्रेन्द्रो योगैश्वर्यप्रभावतः ।।१०५
विमानं सूर्यसंकाशं प्रादुर्भूतमनुत्तमम् ।
अन्वगच्छन् देवगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
दृष्ट्वाऽन्ये पथि योगीन्द्रं सिद्धा ब्रह्मर्षयो ययुः ।।१०६
ततः स गत्वा तु गिरिं विवेश सुरवन्दितम् ।
स्थानं तद् योगिभिर्जुष्टं यत्रास्ते परमः पुमान् ।।१०७
संप्राप्य परमं स्थानं सूर्यायुतसमप्रभम् ।
विवेश चान्तर्भवनं देवानां च दुरासदम् ।।१०८
विचिन्तयामास परं शरण्यं सर्वदेहिनाम् ।
अनादिनिधनं देवं देवदेवं पितामहम् ।।१०९
ततः प्रादुरभूत् तस्मिन् प्रकाशः परमात्मनः ।
तन्मध्ये पुरुषं पूर्वमपश्यत् परमं पदम् ।।११०
महान्तं तेजसो राशिमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम् ।
चतुर्मुखमुदाराङ्गमर्चिभिरुपशोभितम् ।।१११
सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्य प्रणमन्तमुपस्थितम् ।
प्रत्युद्गम्य स्वयं देवो विश्वात्मा परिषस्वजे ।।११२
परिष्वक्तस्य देवेन द्विजेन्द्रस्याथ देहतः ।
निर्गत्य महती ज्योत्स्ना विवेशादित्यमण्डलम् ।
ऋग्यजुःसामसंज्ञं तत् पवित्रममलं पदम् ।।११३
हिरण्यगर्भो भगवान् यत्रास्ते हव्यकव्यभुक् ।
द्वारं तद् योगिनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ।
ब्रह्मतेजोमयं श्रीमन्निष्ठा चैव मनीषिणाम् ।।११४
दृष्टमात्रो भगवता ब्रह्मणार्चिर्मयो मुनिः ।
अपश्यदैश्वरं तेजः शान्तं सर्वत्रगं शिवम् ।।११५
स्वात्मानमक्षरं व्योम तद् विष्णोः परमं पदम् ।
आनन्दमचलं ब्रह्म स्थानं तत्पारमेश्वरम् ।।११६

अद्वितीय (तत्त्व) का साक्षात्कार होता है तथा निद्रात्यागी एवं श्वासजयी मोक्षार्थी जन जिसकी अभिलाषा करते हैं। (१०२-१०४)

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! तदनन्तर (वह) श्रेष्ठ योगी किसी समय सूर्य के कहने पर योगैश्वर्य के प्रभाव से उत्पन्न सूर्यतुल्य विमान (पर चढ़कर) आकाश मार्ग से ही अव्यय ब्रह्मा का दर्शन करने मानस (सर) के उत्तर में स्थित पर्वत पर गया। देवों, गन्धर्वों एवं अप्सराओं का समूह भी (उसके) पीछे-पीछे गया। (उस) श्रेष्ठ योगी को (आकाश) मार्ग में जाते हुए, देखकर अन्य सिद्ध एवं ब्रह्मर्षियों ने भी उसका अनुसरण किया। (१०५,१०६)

तदनन्तर पर्वत पर पहुँचकर (वह) देवों से वन्दित एवं योगियों से सेवित उस स्थान में प्रविष्ट हुआ जहाँ परम पुरुष स्थित हैं। (१०७)

दस सहस्र सूर्य के तुल्य प्रकाशमान श्रेष्ठ स्थान पर पहुँचकर (वह योगी) देवों को भी अगम्य (उस स्थान के) अन्तर्गृह में प्रविष्ट हुआ एवं सभी प्राणियों के श्रेष्ठ शरणदाता, आदि एवं अन्त से रहित, देवाधिदेव पितामह का ध्यान करने लगा। तदुपरान्त वहाँ परमात्मा का परम प्रकाश उत्पन्न हुआ। (योगी ने) उस (प्रकाश) के मध्य परमपद स्वरूप तेजःसमूहरूपी ब्रह्मविद्वेषियों को अगम्य, प्रशस्त अङ्गों वाले, प्रकाशकिरणों से सुशोभित चतुर्मुख पूर्व पुरुष का दर्शन किया। (१०८-१११)

उपस्थित योगी को प्रणाम करते देख स्वयं उसके समीप जाकर उन विश्वात्मा (ब्रह्म) देव ने उसका आलिङ्गन किया। (११२)

तदनन्तर देव के आलिङ्गन करने पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण की देह से महान् तेज निकलकर आदित्य-मण्डल में चला गया। उस पवित्र निर्मल स्थान का नाम ऋक्, यजुः एवं साम है। (११३)

हव्यकव्यभोजी (देवताओं को अर्पित भोज्य द्रव्य एवं पितरों को अर्पित श्राद्धीय पदार्थों का भोग करने वाले) भगवान् हिरण्यगर्भ जहाँ रहते हैं वह स्थान वेदान्त-प्रतिपादित योगियों का आद्य स्थान है। ब्रह्म-तेजोमय, श्रीयुक्त एवं मनीषियों की वह निष्ठा है। (११४)

भगवान् ब्रह्मा के देखते ही देखते मुनि तेजमय, हो गया। (उसने) तेजोमय, शान्त, सर्वव्यापी, कल्याणमय, स्वात्मस्वरूप एवं अक्षर व्योम को देखा। वह विष्णु का परमपद है। वह आनन्दमय अचल ब्रह्म का स्थान परमेश्वर, स्वरूप है। (११५,११६)

सर्वभूतात्मभूतः स परमैश्वर्यमास्थितः ।
प्राप्तवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम् ॥११७
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः ।
समाश्रित्यान्तिमं भावं मायां लक्ष्मीं तरेद् बुधः ॥११८

सूत उवाच ।

व्याहृता हरिणा त्वेवं नारदाद्या महर्षयः ।
शक्रेण सहिताः सर्वे पप्रच्छुर्गरुडध्वजम् ॥११९

ऋषय ऊचुः ।

देवदेव हृषीकेश नाथ नारायणामल ।
तद् वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा ॥१२०
इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्मादिगोचरम् ।
शुश्रूषुश्चाप्ययं शक्रः सखा तव जगन्मय ॥१२१
ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी जनार्दनः ।
रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः ॥१२२
पृष्टः प्रोवाच सकलं पुराणं कौर्ममुत्तमम् ।
सन्निधौ देवराजस्य तद् वक्ष्ये भवतामहम् ॥१२३
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदं नृणाम् ।
पुराणश्रवणं विप्राः कथनं च विशेषतः ॥१२४
श्रुत्वा चाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१२५
इदं पुराणं परमं कौर्मं कूर्मस्वरूपिणा ।
उक्तं देवाधिदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः ॥१२६

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

सर्वभूतों को आत्मस्वरूप समझने वाला योगी परमैश्वर्य में स्थित हो गया। उसकी आत्मा को जो स्थान प्राप्त हुआ वह अव्यय मोक्ष नामक स्थान है। अतः सभी प्रयत्नों द्वारा वर्णाश्रम विधि में स्थित रहते हुए अन्तिम भाव का अवलम्बन कर बुद्धिमान् पुरुष को माया लक्ष्मी के पार जाना चाहिए। (११७, ११८)

सूत ने कहा—हरि के ऐसा कहने पर इन्द्र के सहित नारदादि सभी महर्षियों ने गरुड़ध्वज (विष्णु) से पूछा। (११९)

ऋषियों ने कहा—हे देवाधिदेव ! हृषीकेश ! निर्मल ! नारायण नाथ ! आप हमें धर्मादिविषयक वह सम्पूर्ण ज्ञान बतलायें जिसे आपने पूर्वकाल में ब्राह्मण इन्द्रद्युम्न से कहा था। हे जगन्मय ! आपके यह सखा इन्द्र भी (वह) सुनना चाहते हैं। (१२०, १२१)

तदनन्तर रसातलस्थित कूर्मरूपी जनार्दन भगवान् विष्णु देव ने नारदादि महर्षियों के पूछने पर देवराज के समीप उत्तम कूर्मपुराण कहा। मैं आपलोगों से उस (पुराण) का संपूर्ण वर्णन करता हूँ। (१२२, १२३)

हे ब्राह्मणो ! (इस) पुराण का सुनना एवं विशेष रूप से उसका कहना मनुष्यों को यश, आयु एवं मोक्ष का दाता, कृतकृत्य करने वाला तथा पुण्यजनक होता है। (१२४)

इसका एक अध्याय भी सुनने से समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है। अथवा (इसका) एक उपाख्यान (सुनने) से ब्रह्मलोक में महत्त्व प्राप्त होता है। (१२५)

इस उत्तम कूर्मपुराण को कूर्मरूपधारी देवाधिदेव ने कहा है इस पर द्विजातियों को श्रद्धा करनी चाहिए। (१२६)

छः सहस्र श्लोकों वाली कूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में प्रथम अध्याय समाप्त—१.

२

श्रीकूर्म उवाच ।
शृणुध्वमृषयः सर्वे यत्पृष्टोऽहं जगद्धितम् ।
वक्ष्यमाणं मया सर्वमिन्द्रद्युम्नाय भाषितम् ॥१
भूतैर्भव्यैर्भविष्यद्भिश्चरितैरुपबृंहितम् ।
पुराणं पुण्यदं नृणां मोक्षधर्मानुकीर्तनम् ॥२
अहं नारायणो देवः पूर्वमासं न मे परम् ।
उपास्य विपुलां निद्रां भोगिशय्यां समाश्रितः ॥३
चिन्तयामि पुनः सृष्टिं निशान्ते प्रतिबुध्य तु ।
ततो मे सहसोत्पन्नः प्रसादो मुनिपुंगवाः ॥४
चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तदन्तरेऽभवत् क्रोधः कस्माच्चित् कारणात् तदा ॥५
आत्मनो मुनिशार्दूलास्तत्र देवो महेश्वरः ।
रुद्रः क्रोधात्मजो जज्ञे शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
तेजसा सूर्यसंकाशस्त्रैलोक्यं संहरन्निव ॥६

ततः श्रीरभवद् देवी कमलायतलोचना ।
सुरूपा सौम्यवदना मोहिनी सर्वदेहिनाम् ॥७
शुचिस्मिता सुप्रसन्ना मङ्गला महिमास्पदा ।
दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता ॥८
नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया ।
स्वधाम्ना पूरयन्तीदं मत्पार्श्वं समुपाविशत् ॥९
तां दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पतिः ।
मोहायाशेषभूतानां नियोजय सुरूपिणीम् ।
येनेयं विपुला सृष्टिर्वर्द्धते मम माधव ॥१०
तथोक्तोऽहं श्रियं देवीमब्रुवं प्रहसन्निव ।
देवीदमखिलं विश्वं सदेवासुरमानुषम् ॥
मोहयित्वा ममादेशात् संसारे विनिपातय ॥११
ज्ञानयोगरतान् दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिनः ।
अक्रोधनान् सत्यपरान् दूरतः परिवर्जय ॥१२

२

श्रीकूर्म ने कहा—

हे समस्त ऋषियो ! (आपलोगों ने) मेरे द्वारा इन्द्रद्युम्न को कहे गए जगत के लिये हितकारी जिस (तत्त्व) को मुझसे पूछा है (उसे मैं) कह रहा हूँ (आपलोग) सुनें । (१)

भूत, वर्तमान एवं भविष्य काल के चरितों (के समावेश) से अतिविस्तृत मोक्ष एवं धर्म का वर्णन करनेवाला यह (कूर्म)पुराण मनुष्यों को पुण्य प्रदान करता है। (२)

पूर्वकाल में नारायण देव (के रूप में) मैं (ही) था। मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा (नहीं था)। दीर्घनिद्रा का अवलम्वन कर मैं शेष की शय्या पर पड़ा था। (३)

हे मुनिश्रेठो ! निशा के अन्त में जागकर मैं सृष्टि (विषयक) चिन्ता करने लगा। तदनन्तर अकस्मात् मुझमें प्रसन्नता (प्रसाद) की उत्पत्ति हुई। (४)

तदुपरान्त लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् उस समय किसी कारण से क्रोध उत्पन्न हुआ। (५)

हे मुनिश्रेष्ठो ! उस समय क्रोध से अपने तेज से मानों त्रैलोक्य का संहार करते हुए सूर्य-तुल्य शूलपाणि, त्रिलोचन महेश्वर रुद्र देव उत्पन्न हुए। (६)

तदनन्तर कमल सदृश बड़े नेत्रों से युक्त, सुन्दररूप एवं शान्त मुख वाली तथा सभी प्राणियों को मोहित करने वाली लक्ष्मी उत्पन्न हुई। मनोहर मुस्कान से युक्त, सुन्दर, प्रसन्न कल्याणकारिणी, महिमामयी, अलौकिक कान्तिधारिणी, दिव्यमाला से सुशोभित, अव्यय, मूलप्रकृतिस्वरूपा, महामाया, वे नारायणी इस (संसार) को अपने तेज से आपूरित करती हुई मेरे पार्श्व में वैठ गयीं। (७-९)

उन्हें देखकर भगवान् जगत्पति ब्रह्मा ने मुझ से कहा—"हे माधव ! (इन) सुरूपिणी को समस्त प्राणियों के मोहार्थ आप नियुक्त करें जिससे मेरी यह विशाल सृष्टि वढ़ने लगे।" (१०)

उस प्रकार कहे जाने पर मैंने कुछ हँसते हुए श्री देवी से कहा—हे देवी ! देवता, असुर एवं मनुष्यों से युक्त इस सम्पूर्ण विश्व को मोहित कर मेरे आदेश से संसार में गिराओ (लगाओ)। (११)

(परन्तु) ज्ञानयोग में रत, इन्द्रियजित, ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी एवं अक्रोधी और सत्यशीलों को दूर से ही छोड़ देना। (१२)

ध्यायिनो निर्ममान् शान्तान् धार्मिकान् वेदपारगान् ।
जापिनस्तापसान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय ॥१३
वेदवेदान्तविज्ञानसंछिन्नाशेषसंशयान् ।
महायज्ञपरान् विप्रान् दूरतः परिवर्जय ॥१४
ये यजन्ति जपैर्होमैर्देवदेवं महेश्वरम् ।
स्वाध्यायेनेज्यया दूरात् तान् प्रयत्नेन वर्जय ॥१५
भक्तियोगसमायुक्तानीश्वरार्पितमानसान् ।
प्राणायामादिषु रतान् दूरात् परिहरामलान् ॥१६
प्रणवासक्तमनसो रुद्रजप्यपरायणान् ।
अथर्वशिरसोऽध्येतॄन् धर्मज्ञान् परिवर्जय ॥१७
बहुनाऽत्र किमुक्तेन स्वधर्मपरिपालकान् ।
ईश्वराराधनरतान् मन्नियोगान्न मोहय ॥१८
एवं मया महामाया प्रेरिता हरिवल्लभा ।
यथादेशं चकारासौ तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत् ॥१९

ध्यानरत, ममतारहित, शान्त, धार्मिक वेदपारगामी, जपपरायण और तपस्वी ब्राह्मणों को दूर से ही छोड़ देना । (१३)

वेद एवं वेदान्त के विज्ञान से जिनके समस्त संशय दूर हो गए हों ऐसे तथा बड़े-बड़े यज्ञों को करने वाले ब्राह्मणों को दूर से ही छोड़ देना । (१४)

जो लोग जप, होम, स्वाध्याय एवं यज्ञ द्वारा देवाधिदेव महेश्वर की पूजा करते हैं उनका दूर से ही परित्याग कर देना । (१५)

भक्तियोग में लगे, ईश्वर को अर्पित मानस वाले, प्राणायामादि में रत निर्मल (विप्रों) को दूर से ही त्याग देना । (१६)

प्रणव में आसक्त मनवाले, रुद्र (मन्त्र) का जप करने वाले, अथर्ववेद का अध्ययन करने वाले धर्मज्ञों को छोड़ देना । (१७)

बहुत क्या कहा जाय; अपना धर्म पालन करने वाले ईश्वर की आराधना में रत (जनों) को मेरी आज्ञा से मोहित न करना । (१८)

इस प्रकार मुझसे प्रेरित हरिवल्लभा महामाया ने आदेश के अनुसार यह सब किया । अतएव लक्ष्मी का पूजन करना चाहिए । (१९)

श्रियं ददाति विपुलां पुष्टिं मेधां यशो बलम् ।
अर्चिता भगवत्पत्नी तस्माल्लक्ष्मीं समर्चयेत् ॥२०
ततोऽसृजत् स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
चराचराणि भूतानि यथापूर्वं ममाज्ञया ॥२१
मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद् योगविद्यया ॥२२
नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्रह्माणो ब्राह्मणोत्तमाः ।
ब्रह्मवादिन एवैते मरीच्याद्यास्तु साधकाः ॥२३
ससर्ज ब्राह्मणान् वक्त्रात् क्षत्रियांश्च भुजाद् विभुः ।
वैश्यानूरुद्वयाद् देवः पादाच्छूद्रान् पितामहः ॥२४
यज्ञनिष्पत्तये ब्रह्मा शूद्रवर्जं ससर्ज ह ।
गुप्तये सर्ववेदानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्बभौ ॥२५
ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च ।
ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया ॥२६

पूजा करने पर भगवत्पत्नी (लक्ष्मी) विपुल सम्पत्ति, पुष्टि, मेधा, यश एवं बल प्रदान करती हैं । अतः लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए । (२०)

तदुपरान्त लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा ने मेरी आज्ञा से पूर्व के सदृश चर और अचर प्राणियों की सृष्टि की । (२१)

उन्होंने योगविद्या से मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ को उत्पन्न किया । (२२)

हे ब्राह्मणोत्तमो ! ब्रह्मा के मरीचि आदि ये नव पुत्र ब्रह्मवादी साधक ब्रह्मा हैं । (२३)

पितामह विभु (ब्रह्मा ने) मुख से ब्राह्मणों को, भुजा से क्षत्रियों को, दोनों जङ्घाओं से वैश्यों को तथा चरणों से शूद्रों को उत्पन्न किया । (२४)

ब्रह्मा ने यज्ञ की निष्पत्ति एवं वेदों की रक्षा के लिये शूद्र के अतिरिक्त—अन्य सभी वर्णो-की सृष्टि की । क्योंकि उनसे यज्ञ का निर्वाह होता है । (२५)

ऋग्, यजुः, साम एवं उसी प्रकार अथर्ववेद ब्रह्मदेव का सहज स्वरूप है एवं यह नित्य अव्यय शक्ति है । (२६)

अनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ।
आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ।।२७
अतोऽन्यानि तु शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित् ।
न तेषु रमते धीरः पाषण्डी तेन जायते ।।२८
वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा ।
स ज्ञेयः परमो धर्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः ।।२९
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताःस्मृताः।।३०
पूर्वकल्पे प्रजा जाताः सर्वबाधाविवर्जिताः ।
शुद्धान्तःकरणाः सर्वाः स्वधर्मनिरताः सदा ।।३१
ततः कालवशात् तासां रागद्वेषादिकोऽभवत् ।
अधर्मो मुनिशार्दूलाः स्वधर्मप्रतिबन्धकः ।।३२
ततः सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते ।
रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन् ।।३३

स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने प्रारम्भ में इस वेदमयी नित्य अविनाशी, आदि और अन्त से रहित दिव्य वाक् रूपी शक्ति को आविर्भूत किया (सृष्टि की) जिससे सभी व्यवहार होते हैं। (२७)

पृथ्वी पर इनसे भिन्न जो कोई भी शास्त्र हैं, उनमें बुद्धिमान् पुरुष का अनुराग नहीं होता। (क्योंकि मनुष्य) उससे पाखण्डी हो जाता है। (२८)

प्राचीन काल में श्रेष्ठ वेदार्थवेत्ता मुनियों ने जो कार्य कहा है उसे परम धर्म जानना चाहिए। (वह धर्म) अन्य शास्त्रों में नहीं है। (२९)

वेद से बहिर्भूत जो स्मृतियाँ एवं जो कोई भी कुदर्शन हैं वे सभी मरणोपरान्त निष्फल हैं क्योंकि वे तामसी कहे गये हैं। (३०)

पूर्वकल्प में समस्त प्रजा सभी बाधाओं से रहित, शुद्धहृदय-सम्पन्न एवं सदा अपने धर्म का परिपालन करने वाली थी। (३१)

तदुपरान्त कालानुसार उनमें राग, द्वेष आदि उत्पन्न हुआ। हे मुनिश्रेष्ठो ! पुनः अपने धर्म का प्रतिबन्धक अधर्म उत्पन्न हुआ। (३२)

उस समय उनमें वह सहज सिद्धि अधिक नहीं होती थी। उस समय उन्हें केवल रजोगुणमूलक सिद्धियाँ प्राप्त होती थीं। (३३)

तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ताः पुनः ।
वार्त्तोपायं पुनश्चक्रुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ।
ततस्तासां विभुर्ब्रह्मा कर्माजीवमकल्पयत् ।।३४
स्वायंभुवो मनुः पूर्वं धर्मान् प्रोवाच धर्मदृक् ।
साक्षात् प्रजापतेर्मूर्तिर्निसृष्टा ब्रह्मणा द्विजाः ।
भृग्वादयस्तद्वदनाच्छ्रुत्वा धर्मानथोचिरे ।।३५
यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहम् ।
अध्यापनं चाध्ययनं षट् कर्माणि द्विजोत्तमाः ।।३६
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः ।
दण्डो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते ।।३७
शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम् ।
कारुकर्म तथाजीवः पाकयज्ञोऽपि धर्मतः ।।३८
ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान् ।
गृहस्थं च वनस्थं च भिक्षुकं ब्रह्मचारिणम् ।।३९

कालयोग से उन सभी के पुनः क्षीण होने पर वे (प्रजायें) वार्त्तोपाय—अर्थात् कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य रूपी जीविका का उपाय-तथा कर्मसाध्य हस्तसिद्धि—अर्थात् शिल्पकौशल-करने लगीं। तदनन्तर विभु ब्रह्मा ने उनके कर्म एवं आजीविका की व्यवस्था की। (३४)

हे द्विजो ! ब्रह्मा से उत्पन्न साक्षात् प्रजापतिस्वरूप सर्वदर्शी स्वायम्भुव मनु ने पूर्वकाल में धर्मों का उपदेश किया। तदनन्तर उनके मुख से उसे सुनकर भृगु आदि ने धर्मों वर्णन किया। (३५)

हे द्विजोत्तमो ! यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना अध्यापन एवं अध्ययन-ब्राह्मणों के ये छः कर्म हैं। (३६)

दान देना, अध्ययन एवं यज्ञ करना (ये तीन) क्षत्रिय एवं वैश्यों के धर्म हैं। क्षत्रिय के लिये दण्ड एवं युद्ध तथा वैश्य के लिये कृषि प्रशस्त (कर्म) है। (३७)

द्विजातियों की शुश्रूषा ही शूद्रों के धर्म का साधन है। धर्मानुसार पाकयज्ञ तथा कारुकर्म—अर्थात् शिल्पकौशल-उनकी आजीविका है। (३८)

तदुपरान्त वर्णों की व्यवस्था हो जाने पर (उन्होंने) गृहस्थ, वनस्थ, भिक्षुक एवं ब्रह्मचारी (इन चार) आश्रमों की स्थापना की। (३९)

अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम् ।
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं मुनिपुंगवाः ।।४०
होमो मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च ।
संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनाम् ।।४१
भैक्षाशनं च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः ।
सम्यग्ज्ञानं च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः ।।४२
भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च ।
सन्ध्याकर्माग्निकार्यं च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम् ।।४३
ब्रह्मचारिवनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमाः ।
साधारणं ब्रह्मचर्यं प्रोवाच कमलोद्भवः ।।४४
ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषु न चान्यतः ।
पर्ववर्ज्जं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम् ।।४५
आगर्भसंभवादाद्यात् कार्यं तेनाप्रमादतः ।
अकुर्वाणस्तु विप्रेन्द्रा भ्रूणहा तु प्रजायते ।।४६

हे मुनिश्रेष्ठो ! अग्नियाँ (गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिणाग्नि नामक तीन अग्नियाँ). अतिथिसेवा, यज्ञ, दान एवं देवपूजन—यही गृहस्थों का संक्षिप्त धर्म है । (४०)

होम, फलमूल का आहार, स्वाध्याय, तप तथा न्यायानुसार (सम्पत्ति का) संविभाजन यह वनवासियों का धर्म है । (४१)

भिक्षा में प्राप्त पदार्थ का भोजन, मौनव्रत, तप, विशेषकर ध्यान, सम्यक् ज्ञान एवं वैराग्य इन्हें भिक्षुओं अर्थात् सन्यासियों का धर्म माना जाता है । (४२)

भिक्षा माँगना, गुरु की सेवा, स्वाध्याय, सन्ध्याकर्म एवं अग्निकार्य यह ब्रह्मचारियों का धर्म है । (४३)

हे द्विजोत्तमो ! कमलोद्भव (ब्रह्मा) ने ब्रह्मचर्य को ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं भिक्षुओं का साधारण धर्म कहा है अर्थात् यह तीनों आश्रमों का धर्म है । (४४)

पर्व अर्थात् अमावस्या एवं पूर्णिमा के दिनों को छोड़कर अपनी पत्नी में ही अन्यत्र नहीं, ऋतु काल में (अर्थात् स्त्री के रजस्वलावस्था के समाप्त होने पर) गमन करना गृहस्थ के लिये ब्रह्मचर्य कहा गया है । (४५)

विना प्रमाद के प्रथम गर्भधारण तक उसे इस नियम का पालन करना चाहिए । हे विप्रेन्द्रो ! (ऐसा) न करनेवाला भ्रूणघाती होता है । (४६)

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या श्राद्धं चातिथिपूजनम् ।
गृहस्थस्य परो धर्मो देवताभ्यर्चनं तथा ।।४७
वैवाह्यमग्निमिन्धीत सायं प्रातर्यथाविधि ।
देशान्तरगतो वाऽथ मृतपत्नीक एव वा ।।४८
त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते ।
अन्ये तमुपजीवन्ति तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी ।।४९
ऐकाश्रम्यं गृहस्थस्य त्रयाणां श्रुतिदर्शनात् ।
तस्माद् गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मसाधनम् ।।५०
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ ।
सर्वलोकविरुद्धं च धर्ममप्याचरेन्न तु ।।५१
धर्मात् संजायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽभिजायते ।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद् धर्मं समाश्रयेत् ।।५२
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः ।
सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत् ।।५३

यथाशक्ति प्रतिदिन वेदाभ्यास, श्राद्ध, अतिथिपूजन एवं देवाराधन करना गृहस्थ का श्रेष्ठ धर्म है । (४७)

देशान्तर में जाने अथवा पत्नी के मर जाने पर भी वैवाहिक अग्नि को प्रातः एवं सायं यथाविधि प्रज्वलित करना चाहिए । (४८)

गृहस्थ को तीन आश्रमों की योनि (मूल) कहा गया है । अन्य (आश्रम) उसके आश्रित होते हैं । अतएव गृहाश्रमी श्रेष्ठ होता है । (४९)

वेदों की दृष्टि से गृहस्थ के एक आश्रम में (अन्य) तीनों आश्रमों का (समावेश) होता है । अतः एकमात्र गार्हस्थ्य को ही धर्म का साधन जानना चाहिए । (५०)

(उन) अर्थ और काम का परित्याग करना चाहिए जो धर्मविहीन हों । सभी लोकों के विरुद्ध धर्म का भी आचरण नहीं करना चाहिए । (५१)

धर्म से अर्थ और काम की सिद्धि होती है । अपवर्ग-(मोक्ष) के लिये भी धर्म ही (आवश्यक) है । अतः धर्म का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । (५२)

धर्म, अर्थ एवं कामरूपी त्रिवर्ग को (क्रमशः) सत्त्व रज एवं तम रूपी त्रिगुण (से युक्त) माना गया है । अतएव धर्म का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । (५३)

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।५४
यस्मिन् धर्मसमायुक्तावर्थकामौ व्यवस्थितौ ।
इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते ।।५५
धर्मात् संजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते ।
एवं साधनसाध्यत्वं चातुर्विध्ये प्रदर्शितम् ।।५६
य एवं वेद धर्मार्थकामर्मोक्षस्य मानवः ।
माहात्म्यं चानुतिष्ठेत स चानन्त्याय कल्पते ।।५७
तस्मादर्थं च कामं च त्यक्त्वा धर्मं समाश्रयेत् ।
धर्मात् संजायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ।।५८
धर्मेण धार्यते सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
अनादिनिधना शक्तिः सैषा ब्राह्मी द्विजोत्तमाः ।।५९
कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न संशयः ।
तस्माज्ज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाचरेत् ।।६०

सत्त्व गुण में स्थित प्राणी ऊर्ध्व लोकों में जाते हैं, राजस गुण में आसक्त व्यक्ति मध्य लोक में रहते हैं एवं अन्तिम तमोगुण के कर्म में लीन तामसी प्राणी अधोलोक में जाते हैं । (५४)

जिस व्यक्ति में धर्मयुक्त अर्थ और काम व्यवस्थित होते हैं वह (पुरुष) इस लोक में सुखी होकर मरणोपरान्त मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होता है । (५५)

धर्म से मोक्ष एवं अर्थ से काम की सिद्धि होती है । चार प्रकार के (पुरुषार्थों) में इस प्रकार साधन-साध्यत्व का वर्णन किया गया है । (५६)

जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष (रूपी चतुःपुरुषार्थ) के महात्म्य को जानता एवं उसके अनुसार अनुष्ठान करता है वह मोक्ष (प्राप्त) करने में समर्थ होता है । (५७)

अतः अर्थ और काम का त्याग कर धर्म का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । ब्रह्मवादियों ने कहा है,कि धर्म से सभी की उत्पत्ति होती है । (५८)

धर्म सम्पूर्ण स्थावरजङ्गमात्मक जगत् को धारण करता है ।—हे द्विजोत्तमो ! यह ब्रह्म की वह शक्ति है जिसका आदि एवं अन्त नहीं है । (५९)

निस्सन्देह कर्म एवं ज्ञान द्वारा धर्म प्राप्त होता है । अतः ज्ञान-सहित कर्मयोग का आचरण ।करना चाहिए । (६०)

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ।
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात् प्रवृत्तं यदतोऽन्यथा ।।६१
निवृत्तं सेवमानस्तु याति तत् परमं पदम् ।
तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यथा संसरेत् पुनः ।।६२
क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च ।
आर्जवं चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ।।६३
सत्यं सन्तोष आस्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः ।
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ।।६४
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकल्कता ।
सामासिकमिमं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ।।६५
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ।।६६
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तताम् ।
गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारेण वर्तताम् ।।६७

वैदिक कर्म प्रवृत्त एवं निवृत्त भेद से दो प्रकार का होता है । निवृत्त कर्म ज्ञानपूर्वक एवं प्रवृत्त कर्म इससे भिन्न प्रकार का होता है । (६१)

निवृत्त कर्म का सेवन करने वाला (मनुष्य) उस परम पद को प्राप्त करता है । अतः निवृत्त कर्म का सेवन करना चाहिए अन्यथा पुनः संसार में आना पड़ता है । (६२)

क्षमा, दम, दया, दान, अलोभ, त्याग, सरलता, अनसूया, तीर्थानुसरण—अर्थात् गुरु एवं शास्त्र का अनुगमन एवं तीर्थयात्रा, सत्य, सन्तोष, आस्तिकता-अर्थात् ईश्वर एवं परलोक के अस्तित्व में विश्वास, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह, देवाराधन एवं विशेषतः ब्राह्मणों की पूजा, अहिंसा, प्रियवादिता, अपिशुनता तथा अकल्कता-अर्थात् पाप से निवृत्त यह संक्षिप्त धर्म चारों वर्णों के लिये मनु ने कहा है । (६३-६५)

क्रियावान् ब्राह्मणों के लिये प्राजापत्य स्थान कहा गया है । संग्राम में पलायन न करने वाले क्षत्रियों के लिये ऐन्द्र स्थान कहा गया है । (६६)

अपने धर्म का अनुसरण करने वाले वैश्य के लिये मारुत स्थान तथा सेवा करने वाले शूद्रजाति के लिये गन्धर्व स्थान कहा गया है । (६७)

अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥६८
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद् वै वनौकसाम् ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयंभुवा ॥६९
यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम् ।
हैरण्यगर्भं तत् स्थानं यस्मान्नावर्त्तते पुनः ॥७०
योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम् ।
आनन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा सा परागतिः ॥७१

ऋषय ऊचुः ।

भगवन् देवतारिघ्न हिरण्याक्षनिषूदन ।
चत्वारो ह्याश्रमाः प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते ॥७२

श्रीकूर्म उवाच ।

सर्वकर्माणि संन्यस्य समाधिमचलं श्रितः ।
य आस्ते निश्चलो योगी स संन्यासी न पञ्चमः ॥७३
सर्वेषामाश्रमाणां तु द्वैविध्यं श्रुतिदर्शितम् ।
ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः ॥७४
योऽधीत्यविधिवद्वेदान् गृहस्थाश्रममाव्रजेत् ।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ॥७५
उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् ।
कुटुम्बभरणे यत्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ॥७६
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम् ।
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः ॥७७
तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद् देवान् जुहोति च ।
स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसो मतः ॥७८
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत् ।
सांन्यासिकः स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ॥७९
योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः ।
ज्ञानाय वर्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः ॥८०

ऊर्ध्वरेता अट्ठासी हजार ऋषियों के लिए जो स्थान कहा गया है वही गुरु के यहाँ निवास करने वालों का होता है। वानप्रस्थों का वही स्थान है जो सप्तर्षियों के लिये कहा गया है। स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने गृहस्थों के लिये प्रजापति का स्थान कहा है। (६८, ६९)

यतात्मा (चित्तजयी) ऊर्ध्वरेता संन्यासियों के लिये हिरण्यगर्भ का वह स्थान है जहाँ से पुनरावृत्ति नहीं होती। (७०)

योगियों के लिये नित्य, अविनाशी व्योम नामक श्रेष्ठ स्थान है। आनन्दमय एवं ऐश्वर्य युक्त वह स्थान अन्तिम एवं परम गति है। (७१)

ऋषियों ने कहा—

हे देवशत्रुओं के नाशक! हे हिरण्याक्ष को मारने वाले भगवन्! आश्रम चार ही कहे गये हैं। (किन्तु) योगियों के लिये एक (आश्रम) कहा जाता है। (७२)

श्रीकूर्म ने कहा—जो सभी कर्मों को त्यागकर अचल समाधि में स्थित होता वह योगी (ही) संन्यासी होता है। (अन्य कोई) पञ्चम आश्रम नहीं है। (७३)

वेद में सभी आश्रम दो प्रकार के बतलाये गये हैं। उपकुर्वाण एवं नैष्ठिक (भेद से दो प्रकार के) ब्रह्मतत्पर ब्रह्मचारी होते हैं। (७४)

यथाविधि वेदों का अध्ययन कर जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है उसे उपकुर्वाणक (ब्रह्मचारी) जानना चाहिए। नैष्ठिक (ब्रह्मचारी) मरणपर्यन्त गुरु के यहाँ रहता है। (७५)

उदासीन एवं साधक (भेद से) गृहस्थ दो प्रकार का होता है। कुटुम्ब के भरण में आसक्त गृहस्थ साधक होता है। (७६)

जो तीन ऋणों—देवऋण, ऋषिऋण एवं पितृऋण—को चुकाने के उपरान्त भार्या एवं धनादि को त्यागकर एकाकी विचरण करता है वह मोक्षार्थी उदासीन (गृहस्थ) होता है। (७७)

वन में तपस्या एवं देवपूजन करने वाले, अग्नि में आहुति देने वाले तथा स्वाध्याय में निरत वानप्रस्थी को तापस माना गया है। (७८)

जो तपस्या से अत्यन्त कृश एवं ध्यान में लगा रहने वाला हो उस वानप्रस्थाश्रम में स्थित (व्यक्ति) को सांन्यासिक (वानप्रस्थी) जानना चाहिए। (७९)

नित्य योगाभ्यास में रत, मुक्तिपथ पर आरूढ़ होने की इच्छा वाले, जितेन्द्रिय एवं ज्ञान के लिये यत्नशील भिक्षु (संन्यासी) को पारमेष्ठिक कहते हैं। (८०)

यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः ।
सम्यग् दर्शनसंपन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते ।।८१

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनोऽपरे ।
कर्मसन्यासिनः केचित् त्रिविधाः पारमेष्ठिकाः ।।८२

योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः सांख्य एव च ।
तृतीयोत्याश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममास्थितः ।।८३

प्रथमा भावना पूर्वे सांख्ये त्वक्षरभावना ।
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ।।८४

तस्मादेतद् विजानीध्वमाश्रमाणां चतुष्टयम् ।
सर्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमो नोपपद्यते ।।८५

एवं वर्णाश्रमान् सृष्ट्वा देवदेवो निरञ्जनः ।
दक्षादीन् प्राह विश्वात्मा सृजध्वं विविधाः प्रजाः ।।८६

ब्रह्मणो वचनात् पुत्रा दक्षाद्या मुनिसत्तमाः ।
असृजन्त प्रजाः सर्वा देवमानुषपूर्विकाः ।।८७

जो (व्यक्ति) आत्मा में रमण करने वाला, नित्यतृप्त, महामुनि एवं भलीभाँति ज्ञानसम्पन्न होता है उस भिक्षु (संन्यासी) को योगी कहते हैं। (८१)

पारमेष्ठिक के तीन प्रकार होते हैं—कोई ज्ञान-संन्यासी होते हैं, कोई वेद-संन्यासी एवं कोई कर्म-सन्यासी होते हैं। (८२)

योगी भी तीन प्रकार के जानना चाहिए। भौतिक, सांख्य एवं उत्तम योग का आश्रयण करने वाले तीसरे को अत्याश्रमी कहा गया है। (८३)

पूर्व में प्रथम भावना, सांख्य में अक्षर (तत्त्व) विपयक भावना एवं तृतीय में परमेश्वर सम्बन्धी अन्तिम भावना कही गयी है। (८४)

अतः सभी वेदों एवं शास्त्रों में इन्हीं चार आश्रमों को जानो। (कोई अन्य) पाँचवाँ आश्रम नहीं सिद्ध होता। (८५)

इस प्रकार वर्णों एवं आश्रमों की सृष्टि करके देवाधिदेव निरञ्जन विश्वात्मा (ब्रह्मदेव) ने दक्षादि से कहा—'अनेक प्रकार के प्रजा की सृष्टि करो'। (८६)

मुनिश्रेष्ठो ! ब्रह्मा के कहने से (उनके) दक्षादि पुत्रों ने देवताओं एवं मनुष्यों के सहित सम्पूर्ण प्रजाओं की सृष्टि की। (८७)

इत्येष भगवान् ब्रह्मा स्रष्टृत्वे स व्यवस्थितः ।
अहं वै पालयामीदं संहरिष्यति शूलभृत् ।।८८

तिस्रस्तु मूर्त्तयः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
रजःसत्त्वतमोयोगात् परस्य परमात्मनः ।।८९

अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः ।
अन्योन्यं प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः ।।९०

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना ।
तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्तन्ते सततं द्विजाः ।।९१

प्रवर्तते मय्यजस्रमाद्या चाक्षरभावना ।
द्वितीया ब्रह्मणः प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना ।।९२

अहं चैव महादेवो न भिन्नौ परमार्थतः ।
विभज्य स्वेच्छयात्मानं सोऽन्तर्यामीश्वरः स्थितः ।।९३

त्रैलोक्यमखिलं स्रष्टुं सदेवासुरमानुषम् ।
पुरुषः परतोऽव्यक्ताद् ब्रह्मत्वं समुपागमत् ।।९४

इस प्रकार सृष्टि के कार्य में ब्रह्मा की व्यवस्था हुई है। मैं इसका पालन करता हूँ। शूलधारी (शङ्कर) इसका संहार करेंगे। (८८)

सत्त्व, रज एवं तम के योग से सर्वोच्च परमात्मा की ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर नामक तीन मूर्त्तियाँ कही गई हैं। (८९)

ये परस्पर एक दूसरे में अनुरक्त एवं एक दूसरे के उपजीवी अर्थात् (आश्रित) हैं। ये (तीनों) परमेश्वर लीलावश एक दूसरे के प्रणत हैं। (९०)

हे द्विजो ! रुद्र में सदा ही ब्राह्मी, माहेश्वरी एवं अक्षर सम्बन्धी तीन प्रकार की भावनाएँ वर्तमान रहती हैं। (९१)

मुझमें आद्या अर्थात् प्रथम अक्षर भावना निरन्तर प्रवर्तित होती है। ब्रह्मदेव के विषय में द्वितीय अक्षर भावना कही गयी है। (९२)

मैं और महादेव परमार्थ रूप में भिन्न नहीं हैं। वही अन्तर्यामी ईश्वर स्वेच्छा से (मेरे और महादेव के रूप में) अपने को विभक्त कर स्थित है। (९३)

देव, असुर एवं मनुष्यों सहित त्रैलोक्य की सृष्टि करने के लिये (परम) पुरुष ने (अपने) उत्कृष्ट अव्यक्त (रूप) से ब्रह्मत्व को अङ्गीकार किया। (९४)

तस्माद् ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः ।
एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तनूः कार्यवशात् प्रभोः ॥९५
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वन्द्याः पूज्याः प्रयत्नतः ।
यदीच्छेदचिरात् स्थानं यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम् ॥९६
वर्णाश्रमप्रयुक्तेन धर्मेण प्रीतिसंयुतः ।
पूजयेद् भावयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया ॥९७
चतुर्णामाश्रमाणां तु प्रोक्तोऽयं विधिवद्द्विजाः ।
आश्रमो वैष्णवो ब्राह्मो हराश्रम इति त्रयः ॥९८
तल्लिङ्गधारी सततं तद्भक्तजनवत्सलः ।
ध्यायेदथार्चयेदेतान् ब्रह्मविद्यापरायणः ॥९९
सर्वेषामेव भक्तानां शंभोर्लिङ्गमनुत्तमम् ।
सितेन भस्मना कार्यं ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ॥१००
यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम् ।
धारयेत् सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभिः ॥१०१
प्रपन्ना ये जगद्बीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
तेषां ललाटे तिलकं धारणीयं तु सर्वदा ॥१०२
योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्माऽसौ धृतो भवेत् ।
उपर्यधो भावयोगात् त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात् ॥१०३
यत्तत् प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
धृतं त्रिशूलधरणाद् भवत्येव न संशयः ॥१०४
ब्रह्मतेजोमयं शुक्लं यदेतन् मण्डलं रवेः ।
भवत्येव धृतं स्थानमैश्वरं तिलके कृते ॥१०५
तस्मात् कार्यं त्रिशूलाङ्कं तथा च तिलकं शुभम् ।
त्रियायुषं च भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम् ॥१०६
यजेत जुहुयादग्नौ जपेद् दद्याज्जितेन्द्रियः ।
शान्तो दान्तो जितक्रोधो वर्णाश्रमविधानवित् ॥१०७
एवं परिचरेद् देवान् यावज्जीवं समाहितः ।
तेषां संस्थानमचलं सोऽचिरादधिगच्छति ॥१०८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अतः ब्रह्मा, महादेव एवं परात्पर विश्वेश्वर विष्णु (ये तीनों ही) कार्य के अनुरोध से एक ही प्रभु की तीन (मूर्त्तियाँ) कही गयी हैं। (९५)

अतः सभी प्रकार के प्रयत्नों से विशेषतः (ये तीनों देव) वन्दनीय एवं पूजनीय हैं। यदि शीघ्र ही उस अविनाशी मोक्ष नामक स्थान की इच्छा हो तो प्रीति सहित वर्णाश्रम प्रयुक्त धर्म द्वारा प्रतिज्ञापूर्वक जीवन पर्यन्त (इन देवों का) पूजन करना चाहिए। (९६, ९७)

हे द्विजो ! विधिपूर्वक चारों आश्रमों का वर्णन किया गया। (इनमें) वैष्णव, ब्राह्म एवं हराश्रम नामक तीन (सम्प्रदाय) होते हैं। (९८)

नियमपूर्वक उस (आश्रम) का लिङ्ग धारण कर उस (देवता) के भक्तजनों के प्रति प्रेम रखते हुए ब्रह्मविद्या में तत्पर व्यक्ति को इन देवों का ध्यान एवं पूजन करना चाहिए। (९९)

शिव के सभी भक्तों के लिये शिव का लिङ्ग (चिह्न) धारण श्रेष्ठ होता है। उन्हें ललाट पर श्वेत भस्म से त्रिपुण्ड्र करना चाहिए। (१००)

जो (व्यक्ति) परम पद (स्वरूप) नारायण देव का भक्त हो (उसे) सर्वदा ललाट पर (कस्तूरी आदि के) सुगन्धित जल से शूल (की आकृति) का (तिलक) धारण करना चाहिए। (१०१)

जो (व्यक्ति) जगत् के मूलकारण परमेष्ठी ब्रह्मा के भक्त हों (उन्हें) सर्वदा ललाट पर तिलक धारण करना चाहिए। (१०२)

ऊपर-नीचे भावपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करने से उस (देव) का धारण हो जाता है, जो (स्वयं) अनादि (होते हुए) भूतों का आदि तथा कालात्मा है। (१०३)

निस्सन्देह त्रिशूल (का चिह्न) धारण करने से उस त्रिगुणात्मक प्रधान (तत्त्व) का धारण होता है जो ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवस्वरूप है। (१०४)

तिलक करने से वह ऐश्वर्य युक्त ब्रह्म तेजोमय शुक्ल स्थान धारण होता है जो सूर्य का मण्डल है। (१०५)

अतः तीनों प्रकार के भक्तों को कल्याणकारी एवं आयु प्रदान करने वाला त्रिशूल का चिह्न और तिलक विधिपूर्वक धारण करना चाहिए। (१०६)

वर्णाश्रम के विधान को जानने वाले, शान्त, दान्त एवं क्रोधजयी, जितेन्द्रिय (व्यक्ति) को यज्ञ, अग्नि में हवन, जप तथा दान करना चाहिए। (१०७)

इस प्रकार एकाग्रतापूर्वक जीवनपर्यन्त देवों की आराधना करे। (जो ऐसा करता है) वह शीघ्र ही उन (देवों) से सम्बन्धित अचल स्थान प्राप्त कर लेता है। (१०८)

छः सहस्र श्लोकों वाली कूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में द्वितीय अध्याय समाप्त—२.

३

ऋषय ऊचुः ।
वर्णा भगवतोद्दिष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा ।
इदानीं क्रममस्माकमाश्रमाणां वद प्रभो ॥१

श्रीकूर्म उवाच ।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
क्रमेणैवाश्रमाः प्रोक्ताः कारणादन्यथा भवेत् ॥२
उत्पन्नज्ञानविज्ञानो वैराग्यं परमं गतः ।
प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्यात् तु यदीच्छेत् परमां गतिम् ॥३
दारानाहृत्य विधिवदन्यथा विविधैर्मखैः ।
यजेदुत्पादयेत् पुत्रान् विरक्तो यदि संन्यसेत् ॥४
अनिष्ट्वा विधिवद् यज्ञैरनुत्पाद्य तथात्मजम् ।
न गार्हस्थ्यं गृही त्यक्त्वा संन्यसेद् बुद्धिमान् द्विजः॥५
अथ वैराग्यवेगेन स्थातुं नोत्सहते गृहे ।
तत्रैव संन्यसेद् विद्वाननिष्ट्वाऽपि द्विजोत्तमः ॥६
अन्यथा विविधैर्यज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयेत् ।
तपस्तप्त्वा तपोयोगाद् विरक्तः संन्यसेद् यदि ॥७
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेत् पुनः ।
न संन्यासी वनं चाथ ब्रह्मचर्यं न साधकः ॥८
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा द्विजः ।
प्रव्रजेत गृही विद्वान् वनाद् वा श्रुतिचोदनात् ॥९
प्रकर्त्तुमसमर्थोऽपि जुहोतियजतिक्रियाः ।
अन्धः पङ्गुर्दरिद्रो वा विरक्तः संन्यसेद् द्विजः ॥१०
सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासाय विधीयते ।
पतत्येवाविरक्तो यः संन्यासं कर्तुमिच्छति ॥११

३

ऋषियों ने कहा:—

हे प्रभु ! आपने चारों वर्णों और आश्रमों का वर्णन किया। अब हमें आश्रमों का क्रम बतलायें। (१)

श्रीकूर्म ने कहा—

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं यति (इस) क्रम से ही आश्रम कहे गये हैं। कारणवश (इस क्रम में) परिवर्तन होता है। (२)

ज्ञानविज्ञानयुक्त परमवैराग्यवान् (व्यक्ति) यदि परम गति चाहता हो तो वह ब्रह्मचर्य (आश्रम) से संन्यासाश्रम में चला जाय। (३)

अन्यथा विधिपूर्वक स्त्री से विवाह कर विविध यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए पुत्रों को उत्पन्न करे। जब विरक्त हो तो संन्यास ग्रहण करना चाहिए। (४)

बुद्धिमान् गृहस्थ द्विज विधिपूर्वक यज्ञों का अनुष्ठान एवं पुत्रों को उत्पन्न किये बिना गार्हस्थ्य (आश्रम) को न छोड़े। (५)

किन्तु वैराग्य के आवेगवश गृह में रहने का उत्साह न रहने पर उत्तम विद्वान् द्विज यज्ञ किये बिना भी उसी समय सन्यास ग्रहण कर ले। (६)

अन्यथा अनेक यज्ञों का सम्पादन कर वन का आश्रय लेना चाहिये एवं तपोयोग द्वारा तप करने के उपरान्त यदि विराग हो जाय तो संन्यास लेना चाहिये। (७)

वानप्रस्थ आश्रम में जाकर पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं करना चाहिए। संन्यासी भी वानप्रस्थ आश्रम में तथा साधक-गृहस्थ ब्रह्मचर्याश्रम में (पुनः प्रवेश न करे)। (८)

विद्वान् गृहस्थ द्विज प्राजापत्य अथवा आग्नेयी इष्टि का सम्पादन कर प्रव्रज्या ग्रहण करे अथवा वैदिक विधि के अनुसार वानप्रस्थ से (संन्यासाश्रम) में प्रवेश करे। (९)

हवन एवं यज्ञ सम्बन्धी क्रियाओं के करने में असमर्थ अन्धा, लंगड़ा अथवा दरिद्र द्विज विराग होने पर संन्यास ग्रहण करे। (१०)

सभी के लिये संन्यास के निमित्त वैराग्य का विधान किया गया है। जो अविरक्त (पुरुष) संन्यास ग्रहण करना चाहता है वह अवश्य पतित हो जाता है। (११)

एकस्मिन्नथवा सम्यग् वर्तेतामरणं द्विजः ।
श्रद्धावानाश्रमे युक्तः सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।१२
न्यायागतधनः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ।
स्वधर्मपालको नित्यं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।१३
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि निःसङ्गः कामवर्जितः ।
प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम् ।।१४
ब्रह्मणा दीयते देयं ब्रह्मणे संप्रदीयते ।
ब्रह्मैव दीयते चेति ब्रह्मार्पणमिदं परम् ।।१५
नाहं कर्ता सर्वमेतद् ब्रह्मैव कुरुते तथा ।
एतद् ब्रह्मार्पणं प्रोक्तमृषिभिः तत्त्वदर्शिभिः ।।१६
प्रीणातु भगवानीशः कर्मणाऽनेन शाश्वतः ।
करोति सततं बुद्धया ब्रह्मार्पणमिदं परम् ।।१७
यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात् परमेश्वरे ।
कर्मणामेतदप्याहुः ब्रह्मार्पणमनुत्तमम् ।।१८

अथवा जो श्रद्धावान् (व्यक्ति) मरणपर्यन्त एक ही आश्रम में भलीभाँति व्यवहार करता रहता है वह अमृतत्व अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होता है। (१२)

न्याय से धन प्राप्त करने वाला, शान्त, ब्रह्मविद्या-परायण तथा अपने धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति ब्रह्मभाव की प्राप्ति में समर्थ होता है। (१३)

ब्रह्म में समस्त कार्यों का आधान कर आसक्ति-रहित निष्काम व्यक्ति प्रसन्न मन से कर्म करते हुए मोक्षपद को प्राप्त करता है। (१४)

ब्रह्म देने योग्य (वस्तु) प्रदान करता है, ब्रह्म को ही दिया जाता है एवं ब्रह्म ही दिया भी जाता है। यही श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण (की भावना) है। (१५)

मैं करने वाला नहीं हूँ तथा ब्रह्म ही यह सब कर रहा है। तत्त्वदर्शी ऋषियों ने इस (भाव को) ब्रह्मार्पण कहा है। (१६)

इस कर्म से शाश्वत भगवान् ईश प्रसन्न हों। बुद्धि से निरन्तर इस प्रकार की भावना करना श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण होता है। (१७)

अथवा परमेश्वर में सभी कर्मों के फलों का संन्यास करे—यह भी श्रेष्ठ ब्रह्मार्पण कहा गया है। (१८)

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं सङ्गवर्जितम् ।
क्रियते विदुषा कर्म तद्भवेदपि मोक्षदम् ।।१९
अन्यथा यदि कर्माणि कुर्यान्नित्यमपि द्विजः ।
अकृत्वा फलसंन्यासं बध्यते तत्फलेन तु ।।२०
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्माश्रितं फलम् ।
अविद्वानपि कुर्वीत कर्माप्नोत्यचिरात् पदम् ।।२१
कर्मणा क्षीयते पापमैहिकं पौर्विकं तथा ।
मनः प्रसादमन्वेति ब्रह्म विज्ञायते ततः ।।२२
कर्मणा सहिताज्ज्ञानात् सम्यग् योगोऽभिजायते ।
ज्ञानं च कर्मसहितं जायते दोषवर्जितम् ।।२३
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र तत्राश्रमे रतः ।
कर्माणीश्वरतुष्टयर्थं कुर्यान्नैष्कर्म्यमाप्नुयात् ।।२४
संप्राप्य परमं ज्ञानं नैष्कर्म्यं तत्प्रसादतः ।
एकाकी निर्ममः शान्तो जीवन्नेव विमुच्यते ।।२५

विद्वान् व्यक्ति अनासक्त रूप से जिस कर्म को कर्त्तव्य समझकर नियमतः करता है वह कर्म भी मोक्षदायक होता है। (१९)

अन्यथा यदि द्विज नित्य कर्मों को करे तो (भी कर्म) फल का संन्यास न करने पर उसके फल से आवद्ध होता है। (२०)

अतः अविद्वान् को भी सभी प्रकार के प्रयत्न से कर्माश्रित फल का त्याग कर कर्म करना चाहिये। (इससे उसे) शीघ्र (परम) पद प्राप्त हो जाता है। (२१)

(निष्काम) कर्म से (मनुष्य का) इस जन्म एवं पूर्व-जन्म का पाप क्षीण हो जाता है। (तदनन्तर) मन की प्रसन्नता प्राप्त कर मनुष्य ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। (२२)

कर्मयुक्त ज्ञान से यथार्थ योग की सिद्धि होती है एवं कर्मयुक्त ज्ञान दोपरहित होता है। (२३)

अतः विभिन्न आश्रमों में रहते हुए सभी प्रकार के प्रयत्न द्वारा ईश्वर की तुष्टि के लिये कर्मों को करना चाहिए। (इस प्रकार) नैष्कर्म्य की प्राप्ति होती है। (२४)

परम ज्ञान की प्राप्ति के उपरान्त उसके प्रभाव से नैष्कर्म्य की सिद्धि कर ममता-रहित, एकाकी और शान्त (पुरुष) जीवन काल में ही मुक्त हो जाता है। (२५)

वीक्षते परमात्मानं परं ब्रह्म महेश्वरम् ।
नित्यानन्दं निराभासं तस्मिन्नेव लयं व्रजेत् ॥२६
तस्मात् सेवेत सततं कर्मयोगं प्रसन्नधीः ।
तृप्तये परमेशस्य तत् पदं याति शाश्वतम् ॥२७
एतद् वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् ।
न ह्येतत् समतिक्रम्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥२८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

४

सूत उवाच ।
श्रुत्वाऽऽश्रमविधिं कृत्स्नमृषयो हृष्टमानसाः ।
नमस्कृत्य हृषीकेशं पुनर्वचनमब्रुवन् ॥१
मुनय ऊचुः ।
भाषितं भवता सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम् ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामो यथा संभवते जगत् ॥२
कुतः सर्वमिदं जातं कस्मिंश्च लयमेष्यति ।
नियन्ता कश्च सर्वेषां वदस्व पुरुषोत्तम ॥३
श्रुत्वा नारायणो वाक्यमृषीणां कूर्मरूपधृक् ।
प्राह गम्भीरया वाचा भूतानां प्रभवाप्ययौ ॥४

श्रीकूर्म उवाच ।
महेश्वरः परोऽव्यक्तश्चतुर्व्यूहः सनातनः ।
अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता विश्वतोमुखः ॥५
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥६

(इस प्रकार का मनुष्य) नित्यानन्दस्वरूप, निराभास, महेश्वर, परमात्मा, परम ब्रह्म का साक्षात्कार कर उसी में लीन हो जाता है। (२६)

अतः प्रसन्न मन से परमेश्वर की तृप्ति के लिये निरन्तर कर्मयोग का सेवन करना चाहिए। (इस प्रकार मनुष्य) उस (परमेश्वर के) शाश्वत पद को प्राप्त करता है। (२७)

आप लोगों को चारों आश्रम सम्बन्धी यह सम्पूर्ण श्रेष्ठ क्रम बतलाया गया। मनुष्य इसका अतिक्रमण कर सिद्धि नहीं प्राप्त करता। (२८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में तीसरा अध्याय समाप्त—३.

४

सूत ने कहा—
आश्रमसम्बन्धी सम्पूर्ण विधि सुनने के उपरान्त प्रसन्नचित्त ऋषियों ने हृषिकेश को नमस्कार कर पुनः (यह) वचन कहा। (१)

मुनियों ने कहा—आपने श्रेष्ठ चारो आश्रमों का पूर्णरूप से वर्णन किया। अब हम यह सुनना चाहते हैं कि जगत् कैसे उत्पन्न होता है। (२)

हे पुरुषोत्तम ! आप (हमें) बतलायें कि यह सब कहाँ से उत्पन्न हुआ, कहाँ विलीन होगा तथा (इन) सभी का नियामक कौन है ? (३)

ऋषियों का वाक्य सुनकर कूर्मरूपधारी, सभी भूतों के उत्पत्ति तथा विनाश स्थान, नारायण ने गम्भीर वाणी में कहा। (४)

श्रीकूर्म ने कहा—सभी ओर मुखवाले, पर, अव्यक्त, चतुर्व्यूह, सनातन, अनन्त एवं अप्रमेय महेश्वर (समस्त जगत् के) नियन्ता हैं। (५)

तत्त्व का विचार करने वाले जिसे प्रधान एवं प्रकृति कहते हैं सत् एवं असत्-स्वरूप (वही) अव्यक्त नित्य कारण है। (६)

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ।।७
जगद्योनिर्महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम् ।
विग्रहः सर्वभूतानामात्मनाऽधिष्ठितं महत् ।।८
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् ।
असांप्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ।।९
गुणसाम्ये तदा तस्मिन् पुरुषे चात्मनि स्थिते ।
प्राकृतः प्रलयो ज्ञेयो यावद् विश्वसमुद्भवः ।।१०
ब्राह्मी रात्रिरियं प्रोक्ता अहः सृष्टिरुदाहृता ।
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारतः ।।११
निशान्ते प्रतिबुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान् ।
सर्वभूतमयोऽव्यक्तो ह्यन्तर्यामीश्वरः परः ।।१२
प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु महेश्वरः ।
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ।।१३
यथा मदो नरस्त्रीणां यथा वा माधवोऽनिलः ।
अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथासौ योगमूर्तिमान् ।।१४
स एव क्षोभको विप्राः क्षोभ्यश्च परमेश्वरः ।
स संकोचविकासाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ।।१५
प्रधानात् क्षोभ्यमाणाच्च तथा पुंसः पुरातनात् ।
प्रादुरासीन्महद् बीजं प्रधानपुरुषात्मकम् ।।१६
महानात्मा मतिर्ब्रह्मा प्रबुद्धिः ख्यातिरीश्वरः ।
प्रज्ञा धृतिः स्मृतिः संविदेतस्मादिति तत् स्मृतम् ।।१७
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।
त्रिविधोऽयमहंकारो महतः संबभूव ह ।। १८
अहंकारोऽभिमानश्च कर्त्ता मन्ता च स स्मृतः ।
आत्मा च पुद्गलो जीवो यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ।।१९
पञ्चभूतान्यहंकारात् तन्मात्राणि च जज्ञिरे ।
इन्द्रियाणि तथा देवाः सर्वं तस्यात्मजं जगत् ।।२०
मनस्त्वव्यक्तजं प्रोक्तं विकारः प्रथमः स्मृतः ।
येनासौ जायते कर्त्ता भूतादींश्चानुपश्यति ।।२१

गन्ध, वर्ण एवं रसों से रहित, शब्द एवं स्पर्श से शून्य, अजर, निश्चल, अक्षय, स्वात्मा में नित्यस्थित, जगत् का मूल कारण, महाभूत, परम ब्रह्म, सनातन, सभी भूतों के शरीर स्वरूप, आत्मा से अधिष्ठित महत्तत्व, अनादि, अनन्त, अजन्मा, सूक्ष्म, त्रिगुण, उत्पत्ति एवं प्रलय के स्थान शाश्वत अविज्ञेय ब्रह्म (ही) आदि में वर्तमान था। (७-९)

उस समय गुणों की साम्यावस्थास्वरूप अपने स्वरूप में पुरुष के स्थित होने पर विश्व की उत्पत्ति होने तक प्राकृतिक प्रलय (की अवस्था) जाननी चाहिए। (१०)

इसे ब्रह्मा की रात्रि कहा गया है। सृष्टि (के काल) को (ब्रह्मा का) दिन कहा जाता है। यह एक औपचारिक वर्णन है। (वस्तुतः) उसका दिन या रात्रि नहीं है। (११)

वह आदिरहित, जगत का आदिकारण, सर्वभूतमय, अव्यक्त एवं अन्तर्यामी ईश्वर रात्रि का अन्त होने पर जागृत हुआ है। (१२)

परम समर्थ महेश्वर ने शीघ्र प्रकृति एवं पुरुष में प्रवेश कर उत्कृष्ट योग द्वारा (उनमें) क्षोभ उत्पन्न किया। (१३)

जैसे मद अथवा वसन्त ऋतु की वायु पुरुष एवं स्त्रियों को (क्षुब्ध करते हैं) उसी प्रकार वह योगमूर्त्ति अनुप्रविष्ट होकर क्षोभ का कारण होता है। (१४)

हे विप्रो ! वह परमेश्वर ही क्षुब्ध करने वाला एवं क्षुब्ध होने वाला है। वह संकोच एवं विकास—अर्थात् प्रलय एवं सृष्टि के कारण प्रधान माना जाता है। (१५)

क्षुब्ध हो रहे पुरातन पुरुष तथा प्रधान से प्रधान-पुरुषात्मक महद्बीज का प्रादुर्भाव हुआ। (१६)

इस (पुरातन पुरुष) से (उत्पन्न महद्बीज को) महान् आत्मा, मति ब्रह्मा, प्रबुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, धृति, स्मृति एवं संविद् कहा गया है। (१७)

महत्तत्व से प्राणियों का आदिकारण वैकारिक, तैजस एवं तामस रूप त्रिविध अहङ्कार उत्पन्न हुआ। (१८)

उस अहङ्कार को अभिमान, कर्त्ता एवं मन्ता अर्थात् मानने वाला, आत्मा तथा पुद्गल एवं जीव कहा जाता है। उससे (ही प्राणियों की) सभी प्रवृत्तियाँ होती हैं। (१९)

अहङ्कार से पाँच (स्थूल) महाभूत, तन्मात्रा अर्थात् सूक्ष्म महाभूत एवं सभी इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई। यह सम्पूर्ण जगत् उस (ब्रह्म) के आत्मा (स्वरूप अहङ्कार) से उत्पन्न हुआ है। (२०)

अव्यक्त से उत्पन्न मन को प्रथम विकार माना गया है। इसलिये यह कर्त्ता एवं भूतादिकों का देखने वाला है। (२१)

वैकारिकादहंकारात् सर्गो वैकारिकोऽभवत् ।
तैजसानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश ॥२२
एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम् ।
भूततन्मात्रसर्गोऽयं भूतादेरभवन् प्रजाः ॥२३
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह ।
आकाशं शुषिरं तस्मादुत्पन्नं शब्दलक्षणम् ॥२४
आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ।
वायुरुत्पद्यते तस्मात् तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥२५
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥२६
ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।
संभवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि तु ॥२७
आपश्चापि विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे ।
संघातो जायते तस्मात् तस्य गन्धो गुणो मतः ॥२८

वैकारिक अहङ्कार से वैकारिक सृष्टि हुई। इन्द्रियाँ तैजस हैं एवं (इन इन्द्रियों के अधिष्ठाता) दस देवता वैकारिक हैं। (२२)

इनमें ग्यारहवाँ मन अपने गुण के कारण उभयात्मक है। हे द्विजो ! यह भूततन्मात्राओं की सृष्टि है। भूतादिकों से प्रजाओं की उत्पत्ति हुई। (२३)

विकार प्राप्त भूतों ने शब्दतन्मात्रा को उत्पन्न किया। उस (शब्दतन्मात्रा से) शब्दगुणवाले अवकाशस्वरूप आकाश की उत्पत्ति हुई। (२४)

विकार प्राप्त आकाश ने स्पर्शतन्मात्रा की सृष्टि की। उससे वायु उत्पन्न हुआ। उसका गुण स्पर्श माना जाता है। (२५)

विकार प्राप्त वायु से रूपतन्मात्रा की उत्पत्ति हुई। वायु से ज्योति अर्थात् तेज पदार्थ उत्पन्न हुआ। उसका गुण रूप कहा जाता है। (२६)

विकार को प्राप्त ज्योति अर्थात् तेज पदार्थ ने रस तन्मात्रा की सृष्टि की। उससे जल उत्पन्न हुआ। वह इस गुण का आधार है। (२७)

विकारभाव को प्राप्त हो रहे जल ने गन्धतन्मात्रा को उत्पन्न किया। उससे सङ्घात (अर्थात् पृथ्वी रूपी द्रव्य) उत्पन्न हुआ। उसका गुण गन्ध माना जाता है। (२८)

आकाशं शब्दमात्रं यत् स्पर्शमात्रं समावृणोत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥२९
रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शौ गुणावुभौ ।
त्रिगुणः स्यात् ततो वह्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥३०
शब्द स्पर्शश्च रूपं च रसमात्रं समाविशन् ।
तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः ॥३१
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धं समाविशन् ।
तस्मात् पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शब्द्यते ॥३२
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ।
परस्परानुप्रवेशाद् धारयन्ति परस्परम् ॥३३
एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात् ।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥३४
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ।
महदादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥३५

आकाश के शब्द तन्मात्रा ने स्पर्शतन्मात्रा को आवृत किया है। इसी से वायु शब्द एवं स्पर्श स्वरूप दो गुणों वाला है। (२९)

उसी प्रकार शब्द एवं स्पर्श इन दो गुणों से रूप गुण आविष्ट है। अतः अग्नि शब्द, स्पर्श एवं रूप इन तीन गुणों वाला है। (३०)

शब्द, स्पर्श एवं रूप रसतन्मात्रा में प्रविष्ट हुए। अतएव रसात्मक जल को चार गुणों वाला जानना चाहिए। (३१)

शब्द, स्पर्श, रूप एवं रस गन्धतन्मात्रा में समाविष्ट हुए। अतः (पञ्च महा-) भूतों में स्थूल पृथ्वी पाँच गुणों वाली कही जाती है। (३२)

इसी से इन्हें शान्त, घोर, मूढ एवं विशेष कहा जाता है। एक दूसरे में अनुप्रविष्ट होने से ये परस्पर एक दूसरे को धारण करते हैं। (३३)

एक दूसरे के आश्रित होने से ये सातों महात्मा सम्पूर्ण रूप से बिना मिले प्रजा की सृष्टि नहीं कर सके। (३४)

पुरुष से अधिष्ठित एवं अव्यक्त से अनुगृहीत होने के कारण महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त वे सभी (पदार्थ) अण्ड को उत्पन्न करते हैं। (३५)

एककालसमुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत् ।
विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत् तदुदकेशयम् ॥३६
तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धिः परमेष्ठिनः ।
प्राकृतेऽण्डे विवृत्तः स क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥३७
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ।
आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥३८
यमाहुः पुरुषं हंसं प्रधानात् परतः स्थितम् ।
हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दोमूर्तिं सनातनम् ॥३९
मेरुरुल्वमभूत् तस्य जरायुश्चापि पर्वताः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन् परमात्मनः ॥४०
तस्मिन्नण्डेऽभवद् विश्वं सदेवासुरमानुषम् ।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ॥४१
अद्भिर्दशगुणाभिश्च बाह्यतोऽण्डं समावृतम् ।
आपो दशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः ॥४२
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुनावृतम् ।
आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिनावृतम् ॥४३
भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् ।
एते लोका महात्मानः सर्वतत्त्वाभिमानिनः ॥४४
वसन्ति तत्र पुरुषास्तदात्मानो व्यवस्थिताः ।
ईश्वरा योगधर्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः ॥४५
सर्वज्ञाः शान्तरजसो नित्यं मुदितमानसाः ।
एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥४६
एतावच्छक्यते वक्तुं मायैषा गहना द्विजाः ।
एतत् प्राधानिकं कार्यं यन्मया बीजमीरितम् ।
प्रजापतेः परा मूर्त्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ॥४७
ब्रह्माण्डमेतत् सकलं सप्तलोकतलान्वितम् ।
द्वितीयं तस्य देवस्य शरीरं परमेष्ठिनः ॥४८
हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा वै कनकाण्डजः ।
तृतीयं भगवद्रूपं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः ॥४९
रजोगुणमयं चान्यद् रूपं तस्यैव धीमतः ।
चतुर्मुखः स भगवान् जगत्सृष्टौ प्रवर्त्तते ॥५०

जल के वुद्‌वुद सदृश जल में स्थित वह वृहद् अण्ड एक ही समय विशेपों से निष्पन्न हुआ। (३६)

उसी (वृहद् अण्ड) में परमेष्ठी के (सृष्टि स्वरूप) कार्य का करण-अर्थात् व्यापारसंयुक्त असाधारण कारण-सिद्ध हुआ। प्राकृतिक अण्ड में ब्रह्मा नामक क्षेत्रज्ञ आविर्भूत हुआ। (३७)

वही प्रथम उत्पन्न शरीरधारी है। वही पुरुप कहलाता है। भूतों को सर्वप्रथम उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा (सृष्टि के) प्रारम्भ में उत्पन्न हुए। (३८)

प्रधान से पर में स्थित उस पुरुप को हंस, हिरण्यगर्भ, कपिल, छन्दोमूर्ति एवं सनातन कहते हैं। (३९)

उस परमात्मा का मेरु गर्भवेष्ठन, पर्वत जरायु-अर्थात् गर्भावरण चर्म एवं समुद्र गर्भोदक थे। (४०)

उस अण्ड में देवता, असुर एवं ग्रहों, नक्षत्रों एवं वायु के सहित चन्द्रमा और सूर्य की उत्पत्ति हुई। (४१)

वाहरी ओर अण्ड अपने से दस गुना अधिक जल से आवृत है एवं जल अपने से दस गुना अधिक तेज से घिरा है। (४२)

तेज वाह्यभाग में अपने से दस गुने वायु से ढँका है। वायु आकाश से और आकाश भूतादि-अर्थात् अहङ्कार से आवृत है। (४३)

अहङ्कार महत्तत्व से एवं उसी प्रकार महान् अव्यक्त से आवृत है। ये लोक सर्वतत्त्वाभिमानी महान् आत्मायें हैं। (४४)

उनमें उन्हीं के स्वरूपभूत (चेतन) पुरुप तथा अन्य तत्त्वचिन्तक योगधर्मयुक्त ऐश्वर्यसम्पन्न पुरुप व्यवस्थापूर्वक निवास करते हैं। (४५)

(वे सभी पुरुप) नित्य प्रसन्न मन एवं शान्त रजोगुण वाले तथा सर्वज्ञ हैं। अण्ड इन्हीं सात प्राकृत आवरणों से आवृत हैं। (४६)

हे द्विजो! (इस विपय में) इतना ही कहा जा सकता है कि यह माया गहन है। मैंने वीज रूप से जिसका वर्णन किया है वह प्रधान-अर्थात् प्रकृति का कार्य है। वेदों का कथन है कि यह प्रजापति की परा मूर्ति है। (४७)

सप्त लोकों के तलों के आवरण से युक्त यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन परमेष्ठी देव का दूसरा शरीर है। (४८)

वेदार्थ को जानने वाले कहते हैं कि स्वर्णवर्ण के अण्ड में उत्पन्न हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा भगवान् के तीसरे रूप हैं। (४९)

वुद्धिमान् उन्हीं के रजोगुणमय अन्य रूपवाले चतुर्मुख ब्रह्मा जगत् की सृष्टि करते हैं। (५०)

सृष्टं च पाति सकलं विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
सत्त्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम् ॥५१
अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः ।
तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत् ॥५२
एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधाऽसौ समवस्थितः ।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः ।
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः ॥५३
योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च ।
नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया ॥५४
हिताय चैव भक्तानां स एव ग्रसते पुनः ।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैकाल्ये संप्रवर्तते ।
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च विशेषतः ॥५५
यस्मात् सृष्ट्वाऽनुगृह्णाति ग्रसते च पुनः प्रजाः ।
गुणात्मकत्वात् त्रैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते ॥५६
अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतः सनातनः ।
आदित्वादादिदेवोऽसौ अजातत्वादजः स्मृतः ॥५७
पाति यस्मात् प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः ।
देवेषु च महादेवो महादेव इति स्मृतः ॥५८
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा परत्वात् परमेश्वरः ।
वशित्वादप्यवश्यत्वादीश्वरः परिभाषितः ॥५९
ऋषिः सर्वत्रगत्वेन हरिः सर्वहरो यतः ।
अनुत्पादाच्च पूर्वत्वात् स्वयंभूरिति स स्मृतः ॥६०
नराणामयनो यस्मात् तेन नारायणः स्मृतः ।
हरः संसारहरणाद् विभुत्वाद् विष्णुरुच्यते ॥६१
भगवान् सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः ।
सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात् सर्वः सर्वमयो यतः ॥६२
शिवः स निर्मलो यस्माद् विभुः सर्वगतो यतः ।
तारणात् सर्वदुःखानां तारकः परिगीयते ॥६३

विश्वात्मा तथा सभी ओर मुखवाले विश्वेश्वर विष्णु स्वयं सत्त्वगुण का आश्रयण कर उत्पन्न किये गये समस्त (जगत्) का पालन करते हैं। (५१)

अन्त समय में स्वयं सर्वात्मा परमेश्वर रुद्रदेव तमोगुण का आश्रय लेकर जगत् का संहार करते हैं। (५२)

एक होते हुए भी वे महादेव सृष्टि, पालन एवं संहार रूपी गुणों के कारण तीन रूपों में स्थित हैं। वह निर्गुण, निरञ्जन (देव) एक, दो, तीन एवं अनेक प्रकार के हो जाते हैं। (५३)

(वह) योगेश्वर अपनी लीला से अनेक आकार, रूप, कर्म एवं नाम वाले शरीरों का निर्माण एवं विनाश करता रहता है। (५४)

भक्तों के कल्याण के लिये ही वह (परमेश्वर सृष्टि का) पुन संहार करता है। वह स्वयं को तीन रूपों में विभाजित कर तीनों कालों में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार— (वह देव) विशेषरूप से सृष्टि, संहार एवं रक्षण का कार्य करता है। (५५)

क्योंकि प्रजा की सृष्टि कर उसका पालन और संहार करता है अतः तीनों कालों में त्रिगुणात्मक होने के कारण उसे एक कहा जाता है। (५६)

प्रारम्भ में वह सनातन हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ था। अतः आदि में होने से उसे आदिदेव एवं अजात होने अर्थात् जन्म न होने से उसे अज कहा जाता है। (५७)

क्योंकि वह समस्त प्रजा का पालन करता है अतः प्रजापति कहा जाता है तथा देवों में महान् देव होने से महादेव कहा जाता है। (५८)

बृहत् होने से उसे ब्रह्मा तथा परत्व-अर्थात् श्रेष्ठत्व-के कारण उसे परमेश्वर कहते हैं। वशित्व एवं अवश्यत्व अर्थात् सबको अपने वश में रखने वाला किन्तु स्वयं किसी के वश में न रहने वाला-होने से उसे ईश्वर कहा जाता है। (५९)

उसकी सर्वत्र गति होने से उसे ऋषि तथा सभी का हरण करने से हरि कहा जाता है। किसी द्वारा उत्पन्न न होने और पूर्ववर्ती होने से उसे स्वयम्भू कहा गया है। (६०)

चूँकि वह नरों अर्थात् मनुष्यों का अयन अर्थात् आश्रय स्थान है अतः उसे नारायण कहते हैं। संसार का हरण अर्थात् संहार करने के कारण वह हर तथा विभु अर्थात् व्यापक होने से विष्णु कहा जाता है। (६१)

सभी पदार्थों का विशिष्ट ज्ञान होने से उसे भगवान् तथा अवन अर्थात् रक्षा का कार्य करने से उसे ओम् कहते हैं। सभी पदार्थों का विज्ञान होने के कारण उसे सर्वज्ञ तथा सर्वमय अर्थात् सभी पदार्थों में व्याप्त होने के कारण उसे सर्व कहा जाता है। (६२)

यतः वह निर्मल एवं सर्वगत अर्थात् सर्वव्यापक होता है अतः उसको शिव एवं विभु कहा जाता है। सभी

बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वं ब्रह्ममयं जगत् ।
अनेकभेदभिन्नस्तु क्रीडते परमेश्वरः ॥६४
इत्येष प्राकृतः सर्गः संक्षेपात् कथितो मया ।
अबुद्धिपूर्वको विप्रा ब्राह्मीं सृष्टिं निबोधत ॥६५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्रयां संहितायां पूर्वविभागे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

५

श्रीकूर्म उवाच ।
स्वयंभुवो विवृत्तस्य कालसंख्या द्विजोत्तमाः ।
न शक्यते समाख्यातुं बहुवर्षैरपि स्वयम् ॥१
कालसंख्या समासेन परार्द्धद्वयकल्पिता ।
स एव स्यात् परः कालः तदन्ते प्रतिसृज्यते ॥२
निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ।
तत् पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते ॥३
काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः ।
काष्ठास्त्रिंशत् कला त्रिंशत् कला मौहूर्त्तिकी गतिः॥४
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्त्तैर्मानुषं स्मृतम् ।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः ॥५
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् ॥६
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् ।
चतुर्युगं द्वादशभिः तद्विभागं निबोधत ॥७
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्य तु ॥८

दुःखों से तारने अर्थात् मुक्त करने वाला होने से उसे तारक कहा जाता है । (६३)

अधिक कहने का क्या प्रयोजन ? समस्त जगत् ब्रह्ममय है। अनेक रूपों में विभक्त परमेश्वर (जगत् में) क्रीड़ा कर रहा है । (६४)

मैंने संक्षेप में इस अबुद्धिपूर्वक हुये प्राकृत सर्ग का वर्णन किया है। हे विप्रो ! ब्रह्मा की सृष्टि को सुनो । (६५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में चौथा अध्याय समाप्त—४.

५

श्री कूर्म ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! स्वयम्भ्—अर्थात् स्वयं उत्पन्न ब्रह्मा के व्यतीत काल की संख्या का वर्णन बहुत वर्षों में भी नहीं हो सकता। (१)

संक्षेप में काल की संख्या दो परार्द्ध मानी गई है। वही (परार्ध द्वय) पर काल होता है। उसके-अर्थात् दो परार्द्धों वाले पर काल-के अन्त में प्रलय होता है। (२)

उस (ब्रह्मा) की अपने परिमाण के अनुसार सौ वर्ष की आयु कही गई है। उसी का नाम पर है। उसके आधे को परार्द्ध कहते हैं। (३)

हे द्विजोत्तमो ! पन्द्रह निमेप की एक काष्ठा कही जाती है। तीस काष्ठा की एक कला एवं तीस कला का एक मुहूर्त्त की अवस्था होती है। (४)

उतनी ही संख्या-अर्थात् तीस मुहूर्त्तो का एक मानवीय अहोरात्र कहा गया है। उतने ही-अर्थात् तीस-अहोरात्र का दो पक्षों वाला एक महीना होता है। (५)

उन छः (मासों का एक) अयन एवं दक्षिण तथा उत्तर नामक दो अयनों का एक वर्ष होता है। दक्षिणायन देवताओं की रात्रि एवं उत्तरायण दिन होता है। (६)

बारह दिव्य सहस्र वर्षों का कृत, त्रेतादि नामक एक चतुर्युग होता है। उसके विभाग का वर्णन सुनो। (७)

उस (दिव्य) चार हजार वर्षों का कृतयुग कहा जाता है। उतने ही सौ (अर्थात् चार सौ वर्षों की) कृतयुग की सन्ध्या (पूर्व सन्ध्या) तथा सन्ध्यांश (त्रेतायुग से सन्धि का काल) होता। (८)

त्रिशती द्विशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात् ।
अंशकं षट्शतं तस्मात् कृतसन्ध्यांशकं विना ॥९
त्रिद्व्येकसाहस्रमतो विना सन्ध्यांशकेन तु ।
त्रेताद्वापरतिष्याणां कालज्ञाने प्रकीर्त्तितम् ॥१०
एतद् द्वादशसाहस्रं साधिकं परिकल्पितम् ।
तदेकसप्ततिगुणं मनोरन्तरमुच्यते ॥११
ब्रह्मणो दिवसे विप्रा मनवः स्युश्चतुर्दश ।
स्वायंभुवादयः सर्वे ततः सावर्णिकादयः ॥१२
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ।
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ॥१३
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
व्याख्यातानि न संदेहः कल्पं कल्पेन चैव हि ॥१४
ब्राह्ममेकमहः कल्पस्तावती रात्रिरिष्यते ।
चतुर्युगसहस्रं तु कल्पमाहुर्मनीषिणः ॥१५
त्रीणि कल्पशतानि स्युः तथा षष्टिर्द्विजोत्तमाः ।
ब्रह्मणः कथितं वर्षं पराख्यं तच्छतं विदुः ॥१६
तस्यान्ते सर्वतत्त्वानां स्वहेतौ प्रकृतौ लयः ।
तेनायं प्रोच्यते सद्भिः प्राकृतः प्रतिसंचरः ॥१७
ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्रकृतौ लयः ।
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च संभवः ॥१८
एवं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकरः ।
कालेनैव तु सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः ॥१९
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः ।
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्माऽसौ महेश्वरः ॥२०
ब्रह्माणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादयः ।
एको हि भगवानीशः कालः कविरिति श्रुति ॥२१

कृतसन्ध्यांश को छोड़कर तीन सौ, दो सौ एवं एक सौ दिव्य वर्षों का त्रेतादि युगों का संध्या तथा सन्ध्यांश होता । (९)

काल का ज्ञान करने के लिये सन्ध्यांशों से रहित तीन, दो एवं एक सहस्र वर्षों का त्रेता, द्वापर एवं कलियुग कहा गया है । (१०)

यही (दिव्य-) बारह सहस्रोंवर्षो का कुछ अधिकतापूर्ण कालपरिमाण कहा जाता है । उसके इकहत्तर गुना (काल) को मनु का अन्तर कहते हैं । (११)

हे विप्रो ! ब्रह्मा के (एक) दिन में चौदह मनु होते हैं । वे सभी स्वायम्भुव एवं तदनन्तर सार्वणिकादि मनु हैं । (१२)

उन नरेश्वरों द्वारा इस सात द्वीपों एवं पर्वतों वाली सम्पूर्ण पृथ्वी का पूरे एक हजार युगों तक परिपालन होता है । (१३)

एक मन्वन्तर के अनुसार सभी (मनु) के अन्तरों का वर्णन किया गया है । इसमें सन्देह नहीं (करना) चाहिये । प्रत्येक कल्प (पूर्व) कल्प के (अनुसार) ही होता है । (१४)

एक कल्प का ब्रह्मा का दिन एवं उतने की ही रात्रि होती है । मनीषियों ने एक सहस्र चतुर्युग का कल्प कहा है । (१५)

हे द्विजोत्तमो ! तीन सौ एवं साठ-अर्थात् तीन सौ साठ-कल्पों का ब्रह्मा का वर्ष होता है । उस-(तीन सौ साठ कल्पों वाले-काल के) सौ गुने (काल) को पर नामक (काल) कहते हैं । (१६)

उस (परनामक) काल के अन्त में समस्त तत्त्वों का अपने हेतुभूत प्रकृति में लय होता है । इसी से विद्वान् लोग इसको प्राकृत प्रतिसञ्चर अर्थात् प्राकृत प्रलय कहते हैं । (१७)

ब्रह्म, नारायण एवं ईश का प्रकृति में लय हो जाता है । काल के योगवश पुनः (उनका) आविर्भाव कहा जाता है । (१८)

इस प्रकार काल से ही ब्रह्मा, जीव, वासुदेव एवं शङ्कर की सृष्टि होती है । वही-अर्थात् काल ही-पुनः इनका संहार करता है । (१९)

सर्वव्यापक, स्वतन्त्र एवं सर्वस्वरूप होने से यह काल अनादि, अनन्त, अजर, अमर, भगवान् एवं महेश्वर है । (२०)

ब्रह्मा, रुद्र एवं नारायण अनेक होते हैं । किन्तु श्रुति के अनुसार भगवान्, काल एक है एवं वही ईश एवं कवि हैं । (२१)

एकमत्र व्यतीतं तु परार्द्धं ब्रह्मणो द्विजाः ।
सांप्रतं वर्त्तते तद्वत् तस्य कल्पोऽयमष्टमः ।।२२

योऽतीतः सप्तमः कल्पः पाद्म इत्युच्यते बुधैः ।
वाराहो वर्त्तते कल्पः तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ।।२३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

६

श्रीकूर्म उवाच ।
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ।
शान्तवातादिकं सर्वं न प्रज्ञायत किञ्चन ।।१
एकार्णवे तदा तस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
तदा समभवद् ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।।२
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णस्त्वतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ।।३
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।।४

आपो नारा इति प्रोक्ता नाम्ना पूर्वमिति श्रुतिः ।
अयनं तस्य ता यस्मात् तेन नारायणः स्मृतः ।।५
तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ।।६
ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् ।
अनुमानात् तदुद्धारं कर्त्तुकामः प्रजापतिः ।।७
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः ।
अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम् ।।८

हे द्विजो ! ब्रह्मा का एक परार्द्ध व्यतीत हो चुका है। अब उनका दूसरा परार्द्ध चल रहा है। उसका यह आठवाँ कल्प है। (२२)

विद्वान् लोग बीते हुए सातवें कल्प को पाद्म (कल्प) कहते हैं। (इस समय) वाराह कल्प चल रहा है। उसके विस्तार का वर्णत करूँगा। (२३)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में पाचवाँ अध्याय समाप्त—५.

६

श्रीकूर्म ने कहा—(सृष्टि के पूर्व) सभी कुछ एकार्णव अर्थात् एक समुद्र स्वरूप, विभागशून्य, घोर एवं अन्धकार मय था। (उस समय) वायु आदि सभी (तत्त्व) शान्त थे। कुछ भी ज्ञात नहीं होता था। (१)

उस समय स्थावर एवं जङ्गम पदार्थो के उस एकार्णव में नष्ट होने पर सहस्र नेत्रों एवं सहस्र चरणों वाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए। (२)

उस समय स्वर्णतुल्य वर्ण वाले, अतीन्द्रिय एवं सहस्र मस्तकों वाले नारायण नामक पुरुष स्वरूप ब्रह्मा जल में सो रहे थे। (३)

इस विषय में ब्रह्मस्वरूप, जगत के सृष्टि-विनाश के कारण, अविनाशी नारायण देव के प्रति यह श्लोक कहते हैं। (४)

श्रुति कहती है कि "आप" अर्थात् 'जल' को 'नार' नाम से कहा गया है। यतः वे (जल) नर का 'अयन' अर्थात् आश्रयस्थान हैं अतएव (उन्हें) नारायण कहा जाता है। (५)

सहस्र युगों के तुल्य (प्रलयकालीन) रात्रि के काल का भोग करने के उपरान्त (उस प्रलयकालीन) रात्रि का अन्त होने पर वे (नारायण देव) सृष्टि के लिये ब्रह्मत्व ग्रहण करते हैं। (६)

तदनन्तर उस जल में विलीन पृथ्वी को अनुमान द्वारा जानकर प्रजापति ने उसके उद्धार की कामना की। (७)

(उन देव ने) जल की क्रीड़ा के लिये सुन्दर, मन से भी अगम्य ब्रह्मनामक वाक्यस्वरूप सुन्दर वाराह का रूप धारण किया। (८)

पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम् ।
दंष्ट्रयाऽभ्युज्जहारैनामात्माधारो धराधरः ॥९
दृष्ट्वा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथिवीं प्रथितपौरुषम् ।
अस्तुवञ्जनलोकस्थाः सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम् ॥१०

ऋषय ऊचुः ।

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने ।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च ॥११
नमः स्वयंभुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने ।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने ॥१२
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये ।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे ॥१३
नमोऽस्तु ते चतुर्वक्त्रे शार्ङ्गचक्रासिधारिणे ।
सर्वभूतात्मभूताय कूटस्थाय नमो नमः ॥१४
नमो वेदरहस्याय नमस्ते वेदयोनये ।
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥१५
नमोऽस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगतां नमः ।
अनन्तायाप्रमेयाय कार्याय करणाय च ॥१६
नमस्ते पञ्चभूताय पञ्चभूतात्मने नमः ।
नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नमः ॥१७
नमोऽस्तु ते वराहाय नमस्ते मत्स्यरूपिणे ।
नमो योगाधिगम्याय नमः संकर्षणाय ते ॥१८
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं त्रिधाम्ने दिव्यतेजसे ।
नमः सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभाविने ॥१९
नमोऽस्त्वादित्यवर्णाय नमस्ते पद्मयोनये ।
नमोऽमूर्त्ताय मूर्ताय माधवाय नमो नमः ॥२०
त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव लयमेष्यति ।
पालयैतज्जगत् सर्वं त्राता त्वं शरणं गतिः ॥२१
इत्थं स भगवान् विष्णुः सनकाद्यैरभिष्टुतः ।
प्रसादमकरोत् तेषां वराहवपुरीश्वरः ॥२२

पृथ्वी के उद्धार हेतु रसातल में प्रवेश कर आत्माधार धराधर (पृथ्वीधारक-नारायण) ने (अपनी) दंष्ट्रा-अर्थात् दाढ़ द्वारा इसे ऊपर निकाला। (९)

(उनकी) दंष्ट्रा के ऊपरी भाग में स्थित पृथ्वी को देखकर जनलोक निवासी सिद्ध एवं ब्रह्मर्षि लोग पौरुष प्रकट करने वाले हरि की स्तुति करने लगे। (१०)

ऋषियों ने कहा—देवों के देव, पुराण पुरुष, शाश्वत एवं जय स्वरूप परमेष्ठी ब्रह्म को नमस्कार है। (११)

सभी अर्थों को जानने वाले सृष्टिकर्त्ता स्वयम्भू ! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ परमात्मा वेधा को नमस्कार है। (१२)

विश्व के कारण वासुदेव, विष्णु, देवों के हितकारी नारायण देव को नमस्कार है। (१३)

शार्ङ्ग (धनुष), सुदर्शन (चक्र) एवं (नन्दक नामक) असि को धारण करने वाले हे चतुर्मुख आपको नमस्कार है। सभी प्राणियों के आत्मास्वरूप कूटस्थ को बारंबार नमस्कार है। (१४)

वेदो के रहस्यस्वरूप एवं वेदों के योनि अर्थात् मूल-कारण को नमस्कार है। शुद्ध एवं बुद्ध (अर्थात् ज्ञानी) को नमस्कार है। हे ज्ञानस्वरूप ! (आपको) नमस्कार है। (१५)

आनन्दस्वरूप जगत के साक्षी को नमस्कार है। अनन्त, अप्रमेय, कार्य एवं करण को नमस्कार है। (१६)

पञ्चभूत को नमस्कार है। पञ्चभूतात्मा को नमस्कार है। हे मायारूप ! आपको नमस्कार है। (१७)

हे वराह ! आपको नमस्कार है। हे मत्स्यरूप धारण करने वाले ! आपको नमस्कार है। योग द्वारा अधिगम्य अर्थात् जानने योग्य (परमेश्वर) को नमस्कार है। हे सङ्कर्षण ! आपको नमस्कार है। (१८)

हे तीन मूर्त्तियों एवं तीन धामों (स्थानों) वाले दिव्य तेज स्वरूप ! आपको नमस्कार है। तीनों गुणों को विभावित अर्थात्-प्रेरित करने वाले एवं पूज्य सिद्ध को नमस्कार है। (१९)

आदित्यवर्ण तथा पद्मयोनि अर्थात् कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा को नमस्कार है। मूर्त्तिरहित (निराकार ब्रह्म) एवं मूर्त्त—अर्थात् साकार माधव को बारंबार नमस्कार है। (२०)

आपने ही सभी की सृष्टि की है। आपमें ही सभी कुछ विलीन होता है। रक्षक एवं शरण देने वाले आश्रय-स्वरूप आप इस समस्त जगत् का पालन करें। (२१)

सनकादि (महर्षियों) द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर वराहशरीरधारी उन भगवान् विष्णु ने उनके ऊपर अनुग्रह किया। (२२)

ततः संस्थानसानीय पृथिवीं पृथिवीपतिः ।
मुमोच रूपं मनसा धारयित्वा प्रजापतिः ॥२३
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता ।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति संप्लवम् ॥२४
पृथिवीं तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद् गिरीन् ।
प्राक्सर्गदग्धानखिलांस्ततः सर्गेऽदधन्मनः ॥२५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

७

श्रीकूर्म उवाच ।
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।
अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥१
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रश्चान्धसंज्ञितः ।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥२
पञ्चधाऽवस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ।
संवृतस्तमसा चैव बीजकम्भुवनावृतः ॥३
बहिरन्तश्चाप्रकाशः स्तब्धो निःसंज्ञ एव च ।
मुख्या नगा इति प्रोक्ता मुख्यसर्गस्तु स स्मृतः ॥४
तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यदपरं प्रभुः ।
तस्याभिध्यायतः सर्गस्तिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्तत ॥५
यस्मात् तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः ।
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः ॥६
तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यं ससर्ज ह ।
ऊर्ध्वस्रोत इति प्रोक्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः ॥७

तदनन्तर पृथ्वी के स्वामी (परमेश्वर) पृथ्वी को अपने स्थान पर लाए एवं मन द्वारा उसे धारण कर उन प्रजापति ने (उस) रूप को छोड़ दिया । (२३)

उस जल की बाढ़ के ऊपर स्थित महती नौका तुल्य पृथ्वी अपने देह के विस्तार के कारण डूबती नहीं । (२४)

उन्होंने पृथ्वी को समतल बनाने के उपरान्त पूर्व सृष्टि के समय दग्ध हुए समस्त पर्वतों को पृथ्वी पर स्थापित किया । तदनन्तर (उन परमेश्वर ने) सृष्टि (के कार्य) में अपना मन लगाया । (२५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में छठवाँ अध्याय समाप्त—६.

७

श्रीकूर्म ने कहा—पूर्व के कल्पादि के सदृश उन (ब्रह्मा) के सृष्टि विषयक विचार करने पर एक अबुद्धिपूर्वक (अर्थात् ज्ञानातीत) अन्धकारस्वरूपा सृष्टि प्रकट हुई । (१)

उन महात्मा से तम, मोह, महामोह, तामिस्र, एवं अन्ध (तामिस्र) नामक पाँच पर्वो वाली अविद्या उत्पन्न हुई । (२)

उन अभिमानी (देव) के ध्यान करते (समय) अन्धकाराच्छन्न बीज तुल्य एवं भुवनों-अर्थात् विभिन्न लोकों से आवृत वह सृष्टि पाँच रूपों में स्थित हुई । (३)

बाहर एवं भीतर के प्रकाश अर्थात् ज्ञान से शून्य, स्तब्ध-अर्थात् जड़ एवं संज्ञा अर्थात् चेतनारहित नगों—अर्थात् वृक्ष अथवा पर्वतों-को मुख्य कहते हैं । इसी को मुख्य सर्ग कहा जाता है । (४)

प्रभु ने उस (सर्ग) को असाधक अर्थात् अपने प्रयोजन को पूर्ण न करने वाला देखकर अन्य सर्ग (करने) का विचार किया । इनके सृष्टि-विषयक विचार करने पर तिर्यक्-स्रोत-अर्थात् तिर्यक्योनि वाले पशु-पक्षियों की उत्पत्ति हुई । (५)

हे द्विजो ! क्योंकि वह सर्ग तिर्यक्-वक्र-भाव से प्रवृत्त हुआ था अतः उसे तिर्यक्स्रोत कहते हैं । वे उत्पथग्राही अर्थात् मार्ग के उल्लंघन करने वाले पशु आदि कहलाते हैं ।

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च नावृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद् देवसंज्ञिताः ॥८
ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ।
प्रादुरासीत् तदाऽव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥९
ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोधिकाः ।
दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्तिताः ॥१०
तं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद् भगवानजः ।
तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत् ॥११
तेऽपरिग्राहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः ।
खादनाश्चाप्यशीलाश्च भूताद्याः परिकीर्तिताः ।
इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुंगवाः ॥१२
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ।
तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ॥१३
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ।
इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतोऽबुद्धिपूर्वकः ॥१४
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ।
तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः ॥१५
तथोर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।
ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥१६
अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्तितः ।
नवमश्चैव कौमारः प्राकृता वैकृतास्त्विमे ॥१७
प्राकृतास्तु त्रयः पूर्वे सर्गास्तेऽबुद्धिपूर्वकाः ।
बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तन्ते मुख्याद्या मुनिपुंगवाः ॥१८
अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ।
सनकं सनातनं चैव तथैव च सनन्दनम् ।
ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वमेव प्रजापतिः ॥१९

उसे भी असाधक जानकर (उन देव ने) अन्य सर्ग उत्पन्न किया । (उस) ऊर्ध्वस्रोतवाले सात्त्विक (सर्ग) को देवसर्ग कहा जाता है। (६, ७)

उनमें सुख एवं प्रीति की अधिकता होती है। बाहरी एवं भीतरी आवरण से रहित तथा स्वभाव से ही अन्त-र्बाह्य प्रकाश अर्थात् ज्ञान से युक्त होने से वे लोग देव कहे जाते हैं। (८)

तदनन्तर सत्यचिन्तक (उन देव) के ध्यान करने पर अव्यक्त (अर्थात् प्रकृत्ति) से अर्वाक् स्रोत वाला साधक (सर्ग) प्रादुर्भूत हुआ। (९)

प्रकाश अर्थात् ज्ञान की अधिकता, तमोगुण की प्रबलता तथा रजोगुण की अधिकता वाले अत्यन्त दुःखी एवं सत्त्वगुणयुक्त उन प्राणियों को मनुष्य कहते हैं। (१०)

उसको देखकर अजन्मा भगवान् ने अन्य सर्ग का विचार किया। उनके सर्ग-विषयक ध्यान करने पर भूतादिकों की सृष्टि हुई। (११)

वे अपरिग्रही-अर्थात् असंग्रहशील एवं संविभागरत अर्थात् दान करने वाले थे। ये भूतादिक उपभोग करने वाले एवं शील-रहित कहे गये हैं। हे द्विजश्रेष्ठो ! ये ही पाँच सर्ग कहे गये हैं। (१२)

ब्रह्मा के उस प्रथम सर्ग को महत् (सर्ग) जानना चाहिए। तन्मात्राओं के द्वितीय सर्ग को भूतसर्ग कहा गया है। (१३)

तृतीय वैकारिक सर्ग को ऐन्द्रियक अर्थात् इन्द्रिय-सम्बन्धी सर्ग कहा जाता है। यह प्राकृत सर्ग अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ था। (१४)

चतुर्थ (सर्ग को) मुख्यसर्ग (कहते हैं)। स्थावर अर्थात् जड़ पदार्थों को ही मुख्य कहा जाता है। तिर्यक्-स्रोतवाला जो (सर्ग) कहा गया है वह तिर्यग्योनियों अर्थात् पशु-पक्षियों का पञ्चम सर्ग है। (१५)

इसी प्रकार ऊर्ध्वस्रोतवालों का छठवाँ देवसर्ग कहा गया है। इसी प्रकार अर्वाक् स्रोतवालों का सातवाँ मानुष सर्ग है। (१६)

भूतादिकों का आठवाँ भौतिकसर्ग कहा गया है। नवम कौमारसर्ग है। ये सभी प्राकृत-वैकृत होते हैं— अर्थात् किसी के उत्पादक कारण होने के साथ ही किसी कारण से उत्पन्न होने वाले कार्य भी होते हैं। (१७)

प्रथम तीन प्राकृत सर्ग अबुद्धिपूर्वक होते हैं। हे मुनि-पुङ्गवो ! मुख्यादिकों की प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक होती है। (१८)

प्रजापति ब्रह्मा ने पहले अपने सदृश मानस (पुत्रों) को उत्पन्न किया (वे ये हैं—) सनक, सनातन, सनन्दन, ऋभु एवं सनत्कुमार। (१९)

पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमास्थिताः ।
ईश्वरासक्तमनसो न सृष्टौ दधिरे मतिम् ।।२०
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ प्रजापतिः ।
मुमोह मायया सद्यो मायिनः परमेष्ठिनः ।।२१
तं बोधयामास सुतं जगन्मायो महामुनिः ।
नारायणो महायोगी योगिचित्तानुरञ्जनः ।।२२
बोधितस्तेन विश्वात्मा तताप परमं तपः ।
स तप्यमानो भगवान् न किञ्चित् प्रतिपद्यत ।।२३
ततो दीर्घेण कालेन दुखात् क्रोधो व्यजायत ।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ।।२४
भ्रुकुटीकुटिलात् तस्य ललाटात् परमेश्वरः ।
समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः ।।२५
स एव भगवानीशस्तेजोराशिः सनातनः ।
यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः स्वात्मस्थं परमेश्वरम् ।।२६
ओंकारं समनुस्मृत्य प्रणम्य च कृताञ्जलिः ।
तमाह भगवान् ब्रह्मा सृजेमा विविधाः प्रजाः ।।२७
निशम्य भगवान् वाक्यं शंकरो धर्मवाहनः ।
स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः ।
कपर्दिनो निरातङ्कांस्त्रिनेत्रान् नीललोहितान् ।।२८
तं प्राह भगवान् ब्रह्मा जन्ममृत्युयुताः प्रजाः ।
सृजेति सोऽब्रवीदीशो नाहं मृत्युजरान्विताः ।
प्रजाः स्रक्ष्ये जगन्नाथ सृज त्वमशुभाः प्रजाः ।।२९
निवार्य च तदा रुद्रं ससर्ज कमलोद्भवः ।
स्थानाभिमानिनः सर्वान् गदतस्तान् निबोधत ।।३०
आपोऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा ।
नद्यः समुद्राः शैलाश्च वृक्षा वीरुध एव च ।।३१
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः ।
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगादयः ।।३२
स्थानाभिमानिनः सृष्ट्वा साधकानसृजत् पुनः ।
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च धर्मं संकल्पमेव च ।।३३

हे विप्रो ! ईश्वर में आसक्त मन वाले एवं उत्कृष्ट वैराग्ययुक्त इन पाँचों योगियों ने सृष्टि के कार्य में चित्त नहीं लगाया । (२०)

लोकसृष्टि के कार्य में उन लोगों के इस प्रकार निरपेक्ष हो जाने पर प्रजापति (ब्रह्मा) तत्काल मायापति परमेष्ठी की माया से मोहित हो गये । (२१)

योगियों के चित्त का अनुरञ्जन करने वाले महायोगी, महामुनि, जगत्कर्त्ता नारायण ने (अपने) उस पुत्र (ब्रह्मा) को प्रबुद्ध किया । (२२)

उनसे प्रबुद्ध किये गए विश्वात्मा (ब्रह्मा) ने उत्कृष्ट तप किया । तप करने वाले उन भगवान् को कुछ प्राप्त नहीं हुआ । (२३)

तदनन्तर बहुत समय के पश्चात् (उन्हें) दुःख के कारण क्रोध उत्पन्न हुआ । क्रोधयुक्त (उनके) नेत्रों से आँसू की बूँदे गिरीं । (२४)

परमेष्ठी की टेढ़ी भ्रुकुटियों वाले ललाट से नीललोहित शरणदाता महादेव उत्पन्न हुए । (२५)

वे ही तेज के समूह सनातन भगवान् ईश हैं जिन्हें विद्वान् लोग अपने भीतर स्थित परमेश्वर के रूप में देखते हैं । (२६)

'ओंकार' का स्मरण करने के उपरान्त प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए भगवान् ब्रह्मा ने उनसे कहा—"इन अनेक प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करो ।" (२७)

उनके वाक्य को सुनकर धर्मवाहन-अर्थात् वृषभ पर सवारी करने वाले-कल्याणकारी भगवान् शिव ने मन द्वारा अपने सदृश जटाधारी आतङ्करहित, त्रिनेत्र एवं नीललोहित रुद्रों को उत्पन्न किया । (२८)

भगवान् ब्रह्मा ने उनसे कहा—"जन्म एवं मृत्यु से युक्त प्रजा की सृष्टि करो ।" उन ईश ने उत्तर दिया—"मैं जरामरण से युक्त प्रजा नहीं उत्पन्न करूँगा । हे जगन्नाथ ! आप (ही) अशुभ प्रजाओं को उत्पन्न करें ।" (२९)

कमल से उत्पन्न उन (ब्रह्मा) ने तब रुद्र को (सृष्टि-कार्य से) हटा कर सभी स्थानाभिमानियों को उत्पन्न किया । (मैं उन्हें) बतला रहा हूँ । इसे (तुम लोग) जान लो । (३०)

जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, आकाश, वायु, पृथ्वी, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, वनस्पति, लव, काष्ठा, कला मुहूर्त्त, दिन, रात्रि, अर्द्धमास अर्थात् पक्ष, महीना, अयन, वर्ष एवं युगादि (नामक) स्थानाभिमानियों को उत्पन्न कर (उन्होंने) साधकों की सृष्टि की । (उन्होंने) मरीचि,

प्राणाद् ब्रह्माऽसृजद् दक्षं चक्षुषश्च मरीचिनम् ।
शिरसोऽङ्गिरसं देवो हृदयाद् भृगुमेव च ।।३४
श्रोत्राभ्यामत्रिनामानं धर्मं च व्यवसायतः ।
संकल्पं चैव संकल्पात् सर्वलोकपितामहः ।।३५
पुलस्त्यं च तथोदानाद् व्यानाच्च पुलहं मुनिम् ।
अपानात् क्रतुमव्यग्रं समानाच्च वसिष्ठकम् ।।३६
इत्येते ब्रह्मणा सृष्टाः साधका गृहमेधिनः ।
आस्थाय मानवं रूपं धर्मस्तैः संप्रवर्त्तितः ।।३७
ततो देवासुरपितॄन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ।।३८
युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताऽभूत् प्रजापतेः ।
ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ।।३९
उत्ससर्जासुरान् सृष्ट्वा तां तनुं पुरुषोत्तमः ।
सा चोत्सृष्टा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ।
सा तमोवहुला यस्मात् प्रजास्तस्यां स्वपन्त्यतः ।।४०

भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य पुलह, ऋतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ, धर्म एवं सङ्कल्प को (उत्पन्न किया)। (३१-३३)

सर्वलोक-पितामह ब्रह्मदेव ने प्राण से दक्ष को, नेत्र से मरीचि को, शिर से अङ्गिरा को, हृदय से भृगु को, कानों से अत्रि नामक (ऋषि) को, व्यवसाय से धर्म को तथा सङ्कल्प से सङ्कल्प को, उदान से पुलस्त्य को, व्यान से मुनि पुलह को, अपान से अव्यग्र ऋतु को एवं समान (वायु) से वसिष्ठ को उत्पन्न किया। (३४-३६)

ये सभी ब्रह्मा से उत्पन्न किये गए साधक गृहमेधी अर्थात् गृहस्थ हैं। मनुष्य का रूप धारण कर इन लोगों ने धर्म को प्रवर्त्तित किया है। (३७)

तदुपरान्त जल में देवता, असुर, पितर एवं मनुष्य इन चारों की सृष्टि करने की इच्छा करने वाले (भगवान् ईश ने) अपनी आत्मा को संयुक्त किया। (३८)

युक्तात्मा प्रजापति से तमोगुण की मात्रा का उद्रेक हुआ। तदनन्तर पहले उनकी जङ्घा से असुर पुत्र उत्पन्न हुए। (३९)

असुरों को उत्पन्न कर पुरुषोत्तम ने वह शरीर छोड़ दिया। उनसे छोड़ा गया वह शरीर तत्काल रात्रि बन गया। क्योंकि उसमें अन्धकार की अधिकता होती है अतः उस समय प्रजायें सोती हैं। (४०)

सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्तनुमन्यामगृह्णत ।
ततोऽस्य मुखतो देवा दीव्यतः संप्रजज्ञिरे ।।४१
त्यक्ता साऽपि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद् दिनम् ।
तस्मादहो धर्मयुक्ता देवताः समुपासते ।।४२
सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् ।
पितृवन्मन्यमानस्य पितरः संप्रजज्ञिरे ।।४३
उत्ससर्ज पितॄन् सृष्ट्वा ततस्तामपि विश्वसृक् ।
साऽपविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या व्यजायत ।।४४
तस्मादहर्देवतानां रात्रिः स्याद् देवविद्विषाम् ।
तयोर्मध्ये पितॄणां तु मूर्तिः सन्ध्या गरीयसी ।।४५
तस्माद् देवासुराः सर्वे मनवो मानवास्तथा ।
उपासते सदा युक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमां तनुम् ।।४६
रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा तनुमन्यामगृह्णत ।
ततोऽस्य जज्ञिरे पुत्रा मनुष्या रजसावृताः ।।४७

(ब्रह्म) देव ने सत्त्वगुणात्मक अन्य शरीर को धारण किया। तदनन्तर उनके मुख से तेजस्वी देवता उत्पन्न हुए। (४१)

उन्होंने वह शरीर भी छोड़ दिया। वह छोड़ा गया शरीर सत्त्वगुण की अधिकता वाला दिन हुआ। इसीसे धर्मयुक्त देवता लोग दिन का सेवन करते हैं। (४२)

तदनन्तर (प्रजापति ने) सत्त्वगुणात्मक ही अन्य शरीर धारण किया। पितातुल्य मान रहे (प्रजापति) से पितर उत्पन्न हुए। (४३)

विश्व-स्रष्टा (ब्रह्मा) ने पितरों की सृष्टि कर उस शरीर को भी छोड़ दिया। वह त्यक्त देह भी तत्काल सन्ध्या हो गई। (४४)

इसीसे दिन देवताओं की एवं रात्रि देवविद्वेषियों अर्थात् असुरों की (प्रिय) होती है। उन दोनों के मध्य पितरों की मूर्तिस्वरूपा श्रेष्ठ सन्ध्या होती है। (४५)

इसीसे सभी देवता, असुर, मनु एवं मानव सदा एकाग्रतापूर्वक रात्रि एवं दिन के मध्य के (सन्ध्या रूपी) शरीर की उपासना करते हैं। (४६)

तदुपरान्त ब्रह्मा ने रजोगुणात्मक अन्य शरीर धारण किया। उससे उन्हें रजोगुणयुक्त मनुष्य पुत्र उत्पन्न हुए। (४७)

तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः ।
ज्योत्स्ना सा चाभवद्विप्राः प्राक्सन्ध्या याऽभिधीयते ॥४८
ततः स भगवान् ब्रह्मा संप्राप्य द्विजपुंगवाः ।
मूर्तिं तमोरजःप्रायां पुनरेवाभ्ययूयुजत् ॥४९
अन्धकारे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे ।
पुत्रास्तमोरजःप्राया बलिनस्ते निशाचराः ॥५०
सर्पा यक्षास्तथा भूता गन्धर्वाः संप्रजज्ञिरे ।
रजस्तमोभ्यामाविष्टांस्ततोऽन्यानसृजत् प्रभुः ॥५१
वयांसि वयसः सृष्ट्वा अवयो वक्षसोऽसृजत् ।
मुखतोऽजान् ससर्जान्यान् उदराद् गाश्च निर्ममे ॥५२
पद्भ्यां चाश्वान् समातङ्गान् रासभान् गवयान् मृगान् ।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कूनन्यांश्च जातयः ।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥५३
गायत्रं च ऋचं चैव त्रिवृत्साम रथन्तरम् ।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥५४
यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा ।
बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥५५
सामानि जागतं छन्दस्तोमं सप्तदशं तथा ।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥५६
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥५७
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
ब्रह्मणो हि प्रजासर्गं सृजतस्तु प्रजापतेः ॥५८
सृष्ट्वा चतुष्टयं सर्गं देवर्षिपितृमानुषम् ।
ततोऽसृजच्च भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५९
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसः शुभाः ।
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ।
अव्ययं च व्ययं चैव द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥६०

प्रजापति ने तत्क्षण उस शरीर को भी छोड़ दिया । हे विप्रो ! (प्रजापति की) वह (देह) ज्योत्स्ना हो गई, जो प्राक्सन्ध्या कही जाती है । (४८)

हे द्विजश्रेष्ठो ! तब वे भगवान् ब्रह्मा तम एवं रजोगुण की अधिकता वाला शरीर धारण कर पुनः योग-युक्त हुए । (४९)

(तदनन्तर) उनसे अन्धकार में क्षुधा से पीड़ित रहने वाले राक्षस उत्पन्न हुए । तम एवं रजोगुण की अधिकता वाले (उनके) वे पुत्र बलवान् राक्षस हैं । (५०)

(इसी प्रकार) सर्प, यक्ष, भूत एवं गन्धर्व उत्पन्न हुए । तदनन्तर उस प्रभु ने रज एवं तमोगुण से युक्त अन्य प्राणियों को उत्पन्न किया । (५१)

वयः (अवस्था) से पक्षियों की सृष्टि के उपरान्त (उन्होंने अपने) वक्षःस्थल से भेड़ों को उत्पन्न किया । तदुपरान्त (उन्होंने) मुख से बकरियों को एवं उदर से गायों को उत्पन्न किया । (५२)

प्रजापति ने (अपने) पैरों से हाथियों सहित, घोड़ों, गदहों, नीलगायों, मृगों, ऊँटों, खच्चरों, न्यङ्कुओं (मृग-विशेष) एवं अन्य तिर्यक्योनि के प्राणियों को उत्पन्न किया । उनके रोमों से फलमूलवाली ओषधियाँ उत्पन्न हुई । (५३)

(अपने) प्रथम (पूर्व) मुख से (उन्होंने) गायत्री छन्द, ऋचाओं, त्रिवृत साम, रथन्तर (नामक वेद मन्त्रों) एवं यज्ञों में अग्निष्टोम को उत्पन्न किया । (५४)

(उन्होंने) अपने दक्षिण मुख से यजुर्वेद, त्रैष्टुभ् छन्द, पन्द्रह छन्दों के समूह, बृहत्साम तथा उक्थ (नामक वेद मन्त्रों) की सृष्टि की । (५५)

पश्चिम के मुख से (उन्होंने) सामवेद, जगती छन्द, सत्रह छन्दों के समूह तथा वैरूप एवं अतिरात्र (नामक यज्ञ) को उत्पन्न किया । (५६)

उत्तर के मुख से उन्होंने अथर्ववेद के इक्कीस आप्तोर्याम (नामक छन्द समूह) अनुष्टुभ छन्द, एवं वैराज (नामक यज्ञ) की सृष्टि की । (५७)

प्रजा की सृष्टि करने वाले प्रजापति ब्रह्मा के अवयवों से उच्च एवं निम्न (कोटि के) प्राणी उत्पन्न हुए । (५८)

देवता, ऋषि, पितर एवं मनुष्य इन चारों की सृष्टि करने के उपरान्त (ब्रह्मा ने) चर एवं अचर प्राणियों की सृष्टि की । (५९)

यक्षों, पिशाचों, गन्धर्वो, एवं सुन्दर अप्सराओं, नर, किन्नरों, राक्षसों, पक्षियों, पशुओं, मृगों एवं सर्पों को उत्पन्न किया । अव्यय अर्थात् नित्य एवं व्यय अर्थात् अनित्य भेद से चर एवं अचर सृष्टि दो प्रकार की है । (६०)

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टौ प्रतिपेदिरे ।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥६१
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात् तत् तस्य रोचते ॥६२
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु ।
विनियोगं च भूतानां धातैव विदधात् स्वयम् ॥६३

नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥६४
आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु दृष्टयः ।
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ॥६५
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥६६

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥



श्रीकूर्म उवाच ।

एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ।
यदा चास्य प्रजाः सृष्टा न व्यवर्द्धन्त धीमतः ॥१
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाशोचत दुःखितः ।
ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ॥२

अथात्मनि समद्राक्षीत् तमोमात्रां नियामिकाम् ।
रजःसत्त्वं च संवृत्य वर्तमानां स्वधर्मतः ॥३
तमस्तद् व्यनुदत् पश्चात् रजः सत्त्वेन संयुतः ।
तत् तमः प्रतिनुन्नं वै मिथुनं समजायत ॥४

पूर्व की सृष्टि में—अर्थात् वर्तमान सृष्टि के पूर्व की सृष्टि के समय-उनमें से जो प्राणी जिन कर्मो से युक्त थे पुनः सृष्टि होने पर (उन्होंने) उन्हीं कर्मो को प्राप्त किया। (६१)

अतएव तद्भावित-अर्थात् उसी प्रकार के संस्कार से युक्त (वे प्राणी) हिंसक एवं अहिंसक, कोमल एवं क्रूर, धर्म एवं अधर्म तथा सत्य एवं असत्य की प्रवृत्ति प्राप्त करते हैं। अतएव उन्हें वही रुचिकर होता है। (६२)

स्वयं ब्रह्मा ने ही प्राणियों की इन्द्रियों के विषयों, महाभूतों एवं मूर्त्तियों में भिन्नता एवं विनियोग की व्यवस्था की है। (६३)

उन महेश्वर ने आदि काल में वेद के शब्दों से ही भूतों (प्राणियों) के नाम और रुप तथा कर्मो के विस्तार का निर्माण किया। (६४)

वेदों में जिन दृष्टियों एवं ऋषियों के नाम हैं (प्रलय रूपी) रात्रि के उपरान्त ब्रह्मा वही नामादि उन्हें अर्थात् उत्पन्न पदार्थों एवं ऋषियों को-प्रदान करते हैं। (६५)

प्रलय काल (के पूर्व) जितनी ऋतुओं, ऋतु के चिन्हों एवं अनेक रूपों का साक्षात्कार होता था वे ही युग के आदि के कालों- अर्थात् पुनः सृष्टि के प्रारम्भ में उसी प्रकार प्रकट होते हैं। (६६)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में सातवाँ अध्याय समाप्त—७.



श्रीकूर्म ने कहा—

इस प्रकार स्थावर एवं जङ्गम प्राणियों की सृष्टि हुई। जब उन बुद्धिमान् (ब्रह्मा) की उत्पन्न प्रजाओं की वृद्धि न हुई तब तमोगुण से आवृत ब्रह्मा दुःखी होकर विचार करने लगे। तदनन्तर उन्होंने अर्थ का निश्चय करने वाली बुद्धि को धारण किया। (१, २)

तदुपरान्त स्वधर्मानुसार रज एवं सत्त्व को आवृत कर स्थित नियामिका तमोमात्रा का (उन्होंने) आत्मा में साक्षात्कार किया। (३)

तत्पश्चात् सत्त्वगुण से युक्त रजोगुण ने उस तमोगुण को दूर किया। वह तमोगुण मिथुन अर्थात् दो भागों में विभक्त हो गया। (४)

अधर्माचरणो विप्रा हिंसा चाशुभलक्षणा ।
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम् ।।५
द्विधाऽकरोत् पुनर्देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्द्धेन नारी पुरुषो विराजमसृजत् प्रभुः ।।६
नारीं च शतरूपाख्यां योगिनीं ससृजे शुभाम् ।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य संस्थिता ।।७
योगैश्वर्यबलोपेता ज्ञानविज्ञानसंयुता ।
योऽभवत् पुरुषात् पुत्रो विराडव्यक्तजन्मनः ।।८
स्वायंभुवो मनुर्देवः सोऽभवत् पुरुषो मुनिः ।
सा देवी शतरूपाख्या तपः कृत्वा सुदुश्चरम् ।।९
भर्तारं ब्रह्मणः पुत्रं मनुमेवानुपद्यत ।
तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत ।।१०
प्रियव्रतोत्तानपादौ कन्याद्वयमनुत्तमम् ।
तयोः प्रसूतिं दक्षाय मनुः कन्यां ददौ पुनः ।।११
प्रजापतिरथाकूतिं मानसो जगृहे रुचिः ।

हे विप्रो ! (इस प्रकार) अधर्माचरण एवं अशुभलक्षणों वाली हिंसा (उत्पन्न) हुई। उन ब्रह्मा ने तत्पश्चात् अपने उस तेजयुक्त शरीर को छोड़ दिया। (५)

(पुरातन) पुरुष प्रभु ने पुनः देह का दो भाग किया। (उनके शरीर के) आधे भाग से पुरुष एवं आधे भाग से नारी की उत्पत्ति हुई। (उन्होंने) विराट् (नामक) पुरुष की सृष्टि की। (६)

(उन्होंने) शतरूपा नाम की कल्याणमयी योगिनी नारी को उत्पन्न किया। वह पृथ्वी एवं आकाश को अपने तेज से व्याप्त कर स्थित हुई। (७)

(शतरूपा नामक वह नारी) योगैश्वर्य बल एवं ज्ञान विज्ञान से युक्त थी। अव्यक्तजन्मा (ब्रह्मा) का जो विराट् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ वह मननशील पुरुष स्वायम्भुव नामक मनुदेव हुए। शतरूपानामक उन देवी ने अत्यन्त कठोर तपस्या करके ब्रह्मा के पुत्र मनु को ही पति बनाया। उसे उस मनु से दो पुत्र उत्पन्न हुए। (८-१०)

प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा दो श्रेष्ठ कन्यायें हुईं। मनु ने उनमें से एक प्रसूति नामक कन्या दक्ष को प्रदान किया। (११)

(ब्रह्मा के) मानस पुत्र प्रजापति रुचि ने (दूसरी पुत्री)

आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम् ।
यज्ञश्च दक्षिणा चैव याभ्यां संवर्धितं जगत् ।।१२
यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेऽन्तरे ।।१३
प्रसूत्यां च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिं तथा ।
ससर्ज कन्या नामानि तासां सम्यक् निबोधत ।।१४
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी।१५
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः शुभाः ।
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ।।१६
ख्यातिः सत्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ।
संततिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ।।१७
भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः ।
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः परमधर्मवित् ।।१८
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम् ।
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः ।।१९

आकूति को ग्रहण किया। मानस (पुत्र) रुचि से आकूति में यज्ञ एवं दक्षिणा (नामक मिथुन की उत्पत्ति हुई) जिन दोनों से जगत् की वृद्धि हुई। (१२)

यज्ञ द्वारा दक्षिणा में बारह पुत्र हुए। स्वायम्भुव मन्वन्तर में (वे) याम नाम से प्रसिद्ध देवता हुए। इसी प्रकार दक्ष ने प्रसूति में चौबीस कन्याओं को उत्पन्न किया। उनके नाम भलीभाँति सुनो। (१४)

श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि एवं तेरहवीं कीर्ति है। (१५)

इन कल्याणमयी दक्ष की पुत्रियों को धर्म ने पत्नीरूप से ग्रहण किया। उन (कन्याओं) के अतिरिक्त सुन्दर नेत्रों वाली अवस्था में छोटी ग्यारह कन्याएँ थी। (१६)

(उन कन्याओं के नाम क्रमशः) ख्याति, सती, संभूति स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्तति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा है। (१७)

हे श्रेष्ठ मुनियो ! भृगु, भव, मरीचि, मुनि अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, परमधर्मज्ञ क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, वह्नि एवं पितर नामक मुनियों ने क्रमानुसार ख्याति आदि कन्याओं को ग्रहण किया। (१८-१९)

श्रद्धाया आत्मजः कामो दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ।
धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः संतोष उच्यते ॥२०
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा ।
क्रियायाश्चाभवत् पुत्रो दण्डः समय एव च ॥२१
बुद्ध्या बोधः सुतस्तद्वदप्रमादो व्यजायत ।
लज्जाया विनयः पुत्रो वपुषो व्यवसायकः ॥२२
क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धिरजायत ।
यशः कीर्तिसुतस्तद्वदित्येते धर्मसूनवः ॥२३
कामस्यं हर्षः पुत्रोऽभूद् देवानन्दो व्यजायत ।
इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्तितः ॥२४
जज्ञे हिंसा त्वधर्माद् वै निकृतिं चानृतं सुतम् ।
निकृत्यनृतयोर्जज्ञे भयं नरक एव च ॥२५
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ।
भयाज्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥२६
वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे ॥२७
दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः ।
नैषां भार्याऽस्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥२८
इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः ।
संक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिर्मुनिपुंगवाः ॥२९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

श्रद्धा के पुत्र को काम एवं लक्ष्मी के पुत्र को दर्प कहा गया है। धृति का पुत्र नियम तथा तुष्टि का पुत्र सन्तोष कहलाता है। (२०)

पुष्टि का पुत्र लाभ तथा मेधा का पुत्र श्रुत है। क्रिया को दण्ड नामक पुत्र हुआ। वही समय (कहलाता है)। (२१)

बुद्धि से बोध नामक पुत्र हुआ। उसी प्रकार अप्रमाद भी उत्पन्न हुआ (अथवा उसीको अप्रमाद भी कहते हैं)। लज्जा से विनय एवं वपु से व्यवसायक नामक पुत्र (उत्पन्न हुए)। (२२)

शान्ति का पुत्र क्षेम है तथा सिद्धि को भी सुख नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार कीर्त्ति का पुत्र यश है। ये सभी धर्म के पुत्र हैं। (२३)

काम को हर्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो देवताओं को आनन्ददायक है। यही धर्म की सुखदायक सृष्टि कही जाती है। (२४)

हिंसा ने अधर्म से निकृति एवं अनृत नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। निकृति और अनृत से भय एवं नरक नामक पुत्र हुए। (२५)

माया और वेदना उन दोनों की पत्नियाँ हैं। तदनन्तर माया ने भय से प्राणियों को मारने वाले मृत्यु को उत्पन्न किया। (२६)

वेदना ने रौरव अर्थात् नरक नामक अपने पति से दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया। मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा एवं क्रोध उत्पन्न हुए। (२७)

ये सभी अधर्मस्वरूप एवं दुःख देने वाले हैं। इन्हें भार्या और पुत्र नहीं हैं। ये सभी ऊर्ध्वरेता हैं। (२८)

इस प्रकार धर्मनियामक तामस सर्ग की सृष्टि हुई। हे मुनिपुङ्गवो ! मैंने संक्षेप में इस प्रकार विसृष्टि अर्थात् विशिष्ट सृष्टि का वर्णन किया। (२९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में आठवाँ अध्याय समाप्त—८.

९

सूत उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदाद्या महर्षयः ।
प्रणम्य वरदं विष्णुं पप्रच्छुः संशयान्विताः ॥१

ऋषय ऊचुः ।

कथितो भवता सर्गो मुख्यादीनां जनार्दन ।
इदानीं संशयं चेममस्माकं छेत्तुमर्हसि ॥२

कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिनाकधृक् ।
पुत्रत्वमगच्छंभुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥३

कथं च भगवाञ्जज्ञे ब्रह्मा लोकपितामहः ।
अण्डजो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि ॥४

श्रीकूर्म उवाच ।

शृणुध्वमृषयः सर्वे शंकरस्यामितौजसः ।
पुत्रत्वं ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च ॥५

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत् त्रयम् ।
आसीदेकार्णवं सर्वं न देवाद्या न चर्षयः ॥६

तत्र नारायणो देवो निर्जने निरुपप्लवे ।
आश्रित्य शेषशयनं सुष्वाप पुरुषोत्तमः ॥७

सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः ॥८

पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः ।
महाविभूतिर्योगात्मा योगिनां हृदयालयः ॥९

कदाचित् तस्य सुप्तस्य लीलार्थं दिव्यमद्भुतम् ।
त्रैलोक्यसारं विमलं नाभ्यां पङ्कजमुद्बभौ ॥१०

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम् ।
दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥११

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्तमानस्य शार्ङ्गिणः ।
हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे ॥१२

९

सूत ने कहा—

नारदादि महर्षियों ने यह वचन सुनने के उपरान्त वरदाता विष्णु को प्रणाम कर सन्देह करते हुए (उनसे) पूछा। (१)

मुनियों ने कहा—

हे जनार्दन ! आपने मुख्यादिकों की सृष्टि का वर्णन किया। अब आप हमारे इस संशय को दूर करें कि (ब्रह्मा से) पूर्व में उत्पन्न होने पर भी वे पिनाकधारी ईश भगवान् शम्भु किस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के पुत्र हुए तथा जगत् के स्वामी अण्डज (अर्थात् हिरणयगर्भ) लोकपितामह भगवान ब्रह्मा कैसे उत्पन्न हुए। आप हमें यह बतलायें। (२-४)

श्रीकूर्म ने कहा—

हे सभी ऋषियो ! अत्यन्त तेजस्वी शंकर के पुत्र होने एवं उन ब्रह्मा की पद्म से कैसे उत्पत्ति हुई यह सुनो। (५)

विगत कल्प का अन्त होने पर तीनों जगत् अन्धकार स्वरूप हो गया। सभी ओर एक मात्र समुद्र था। उस समय देवता एवं ऋषि नहीं थे। (६)

उस निर्जन एवं उपद्रवरहित (समुद्र) में पुरुषोत्तम नारायण देव शेषनाग रूपी शयन पर सो रहे थे। (७)

सहस्रशीर्ष, सहस्रनेत्र, सहस्रपाद एवं सहस्रबाहुओं से युक्त होकर मनीषियों के चिन्तन के विषय स्वरूप सर्वज्ञ, पीताम्बरधारी विशालनेत्रों वाले, नीलमेघ तुल्य, महान्‌विभूतिमय, योग स्वरूप एवं योगियों के हृदय में निवास करने वाले (भगवान्) शेष शय्या पर सो रहे थे। किसी समय उन शयन करने वाले (भगवान्) की नाभि में लीला के लिये तीनों लोकों का सारभूत एक अद्भुत, दिव्य एवं विमल कमल प्रकट हुआ। (८-१०)

(वह कमल) शतयोजन विस्तीर्ण, दिव्यगन्ध-युक्त, पवित्र कर्णिका और केसर से युक्त तथा तरुण सूर्य के सदृश था। (११)

उन शार्ङ्ग (नामक धनुष) धारण करने वाले (विष्णु भगवान्) के बहुत दिनों तक इस प्रकार रहने पर भगवान् हिरण्यगर्भ उस स्थान पर गए। (१२)

स तं करेण विश्वात्मा समुत्थाप्य सनातनम् ।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं मायया तस्य मोहितः ॥१३
अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते ।
एकाकी को भवांञ्छेते ब्रूहि मे पुरुषर्षभ ॥१४
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः ।
उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥१५
भो भो नारायणं देवं लोकानां प्रभवाप्ययम् ।
महायोगेश्वरं मां त्वं जानीहि पुरुषोत्तमम् ॥१६
मयि पश्य जगत् कृत्स्नं त्वां च लोकपितामहम् ।
सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रैः सप्तभिर्वृतम् ॥१७
एवमाभाष्य विश्वात्मा प्रोवाच पुरुषं हरिः ।
जानन्नपि महायोगी को भवानिति वेधसम् ॥१८
ततः प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ।
प्रत्युवाचाम्बुजाभाक्षं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा ॥१९
अहं धाता विधाता च स्वयंभूः प्रपितामहः ।
मय्येव संस्थितं विश्वं ब्रह्माऽहं विश्वतोमुखः ॥२०
श्रुत्वा वाचं स भगवान् विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
अनुज्ञाप्याथ योगेन प्रविष्टो ब्रह्मणस्तनुम् ॥२१
त्रैलोक्यमेतत् सकलं सदेवासुरमानुषम् ।
उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥२२
तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतनः ।
अजातशत्रुर्भगवान् पितामहमथाब्रवीत् ॥२३
भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम् ।
प्रविश्य लोकान् पश्यैतान् विचित्रान् पुरुषर्षभ ॥२४
ततः प्रह्लादनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च ।
श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश कुशध्वजः ॥२५
तानेव लोकान् गर्भस्थानपश्यत् सत्यविक्रमः ।
पर्यटित्वा तु देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरेः ॥२६
ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि महात्मना ।
जनार्दनेन ब्रह्माऽसौ नाभ्यां द्वारमविन्दत ॥२७

उनकी माया से मोहित उन विश्वात्मा ने उन सनातन (पुरुष को) हाथ से उठकर यह मधुर वाक्य कहा—(१३)

हे पुरुषश्रेष्ठ ! तम से आवृत इस निर्जन घोर एकार्णव में अकेले सोने वाले आप कौन है ? (आप) मुझे यह बतलायें। (१४)

उनके उस वचन को सुनने के उपरान्त मेघ-सदृश गम्भीर ध्वनि वाले गरुडध्वज ने हँस कर ब्रह्मदेव से कहा—(हे ब्रह्मा) ! (आप) मुझे ही देवों एवं लोकों की उत्पन्न एवं विनष्ट करनेवाला, अव्यय, महायोगीश्वर पुरुषोत्तम नारायण जानें। (१५, १६)

आप मुझसे सात समुद्रों से आवृत पर्वतों एवं महाद्वीपों से युक्त समस्त जगत् तथा लोकपितामह अपने को देखें। (१७)

ऐसा कहकर विश्वात्मा महायोगी हरि ने जानते हुए भी ब्रह्मा रूपी पुरुष से कहा "आप कौन हैं ?" (१८)

तदनन्तर वेद-निधि प्रभु भगवान् ब्रह्मा ने हँस कर स्नेहयुक्त वाणी द्वारा हँस रहे कमलनेत्र (भगवान् विष्णु) को उत्तर दिया—(१९)

मैं धाता अर्थात् धारण करने वाला, विधाता-अर्थात् विधान करने वाला, स्वयम्भू-अर्थात् स्वयं ही उत्पन्न होने वाला एवं प्रपितामह (हूँ) विश्व मुझमें ही स्थित है। मैं सभी ओर से मुख रखने वाला ब्रह्मा हूँ। (२०)

(ब्रह्मा का) वचन सुनकर सत्यपराक्रम वाले वे भगवान् विष्णु (ब्रह्मा से) आज्ञा लेकर योग द्वारा ब्रह्मा के शरीर में प्रविष्ट हुए। (२१)

उन देव के उदर में असुर एवं मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण त्रैलोक्य को देखकर (उन्हें) अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तदनन्तर पन्नगेन्द्र निकेतन अर्थात् सर्पराज शेष पर निवास करने वाले अजातशत्रु भगवान् विष्णु ने (ब्रह्मा) के मुख से बाहर निकलकर पितामह से कहा— (२२, २३)

हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप भी अब इसी प्रकार मेरे नित्य उदर में प्रवेश कर इन विचित्र लोकों को देखें। (२४)

तदनन्तर अत्यन्त आनन्द देने वाली वाणी को सुनने के उपरान्त पुनः कुशध्वज (ब्रह्मा) ने उन (विष्णु) की प्रशंसा कर श्रीपति के उदर में प्रवेश किया। (२५)

सत्यविक्रम (ब्रह्मा) ने उन्हीं लोकों को (विष्णु) के गर्भ (उदर) में स्थिति देखा। इस प्रकार भ्रमण कर विष्णु देव का अन्त न पा सके। (२६)

तदुपरांत महात्मा जनार्दन ने सभी द्वारों को बन्द कर दिया। उन ब्रह्मा ने (विष्णु की) नाभि में द्वार पाया। (२७)

तत्र योगबलेनासौ प्रविश्य कनकाण्डजः ।
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ॥२८
विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् जगद्योनिः पितामहः ॥२९
समन्यमानो विश्वेशमात्मानं परमं पदम् ।
प्रोवाच पुरुषं विष्णुं मेघगम्भीरया गिरा ॥३०
किं कृतं भवतेदानीमात्मनो जयकाङ्क्षया ।
एकोऽहं प्रबलो नान्यो मां वै कोऽभिभविष्यति ॥३१
श्रुत्वा नारायणो वाक्यं ब्रह्मणो लोकतन्त्रिणः ।
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यं बभाषे मधुरं हरिः ॥३२
भवान् धाता विधाता च स्वयंभूः प्रपितामहः ।
न मात्सर्याभियोगेन द्वाराणि पिहितानि मे ॥३३
किन्तु लीलार्थमेवैतन्न त्वां बाधितुमिच्छया ।
को हि बाधितुमन्विच्छेद् देवदेवं पितामहम् ॥३४
न तेऽन्यथाऽवगन्तव्यं मान्यो मे सर्वथा भवान् ।

उन कनकाण्डज-अर्थात् सुवर्णमय अण्ड से उत्पन्न चतुरानन (ब्रह्मा) ने योगवल से उसमें प्रवेश कर कमल से अपने रूप को वाहर निकाला । (२८)

पद्मगर्भ के तुल्य शोभावाले स्वयम्भू, जगद्योनि पितामह, भगवान् ब्रह्मा कमल पर बैठे हुए शोभित होने लगे। स्वयं को विश्वेश एवं परम पद मानते हुए उन्होंने मेघ-तुल्य गम्भीर वाणी में विष्णु (स्वरूप) पुरुष से कहा । (२९, ३०)

इस समय आपने अपने जय की आकांक्षा से क्या कर दिया ? मैं अकेला (ही) प्रवल हूँ । दूसरा कोई नहीं है। मुझे कौन हरायेगा ? (३१)

लोकनियामक (ब्रह्मा) के कहे वचन को सुनकर नारायण हरि ने विनय पूर्वक यह मधुर वाक्य कहा— (३२)

आप धाता, विधाता, स्वयम्भू और प्रपितामह हैं। (मैंने) मात्सर्य के कारण अपने (शरीर) के द्वारा नहीं बन्द किया है । (३३)

किन्तु, यह केवल लीला के लिये हुआ है न कि आपको वाधा पहुंचाने की इच्छा से । भला देवाधिदेव पितामह को कौन वाधा पहुँचाना चाहेगा ? (३४)

हे ब्रह्मन् ! आप कुछ दूसरा न समझें । आप सभी प्रकार से मेरे मान्य हैं। मैंने आपका जो अपहरण किया है

सर्वमन्वय कल्याणं यन्मयाऽपहृतं तव ॥३५
अस्माच्च कारणाद् ब्रह्मन् पुत्रो भवतु मे भवान् ।
पद्मयोनिरिति ख्यातो मत्प्रियार्थं जगन्मय ॥३६
ततः स भगवान् देवो वरं दत्त्वा किरीटिने ।
प्रहर्षमतुलं गत्वा पुनर्विष्णुमभाषत ॥३७
भवान् सर्वात्मकोऽनन्तः सर्वेषां परमेश्वरः ।
सर्वभूतान्तरात्मा वै परं ब्रह्म सनातनम् ॥३८
अहं वै सर्वलोकानामात्मा लोकमहेश्वरः ।
मन्मयं सर्वमेवेदं ब्रह्माऽहं पुरुषः परः ॥३९
नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः ।
एका मूर्तिर्द्विधा भिन्ना नारायणपितामहौ ॥४०
तेनैवमुक्तो ब्रह्माणं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ।
इयं प्रतिज्ञा भवतो विनाशाय भविष्यति ॥४१
किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम् ।
प्रधानपुरुषेशानं वेदाहं परमेश्वरम् ॥४२

उसमें आप सभी प्रकार से अपना कल्याण समझें। (३५)

हे ब्रह्मन् ! इसी कारण मेरी प्रीति के लिये आप मेरे पुत्र वनें। हे जगन्नाथ ! आप 'पद्मयोनि' इस नाम से प्रसिद्ध हों। (३६)

तदनन्तर उन भगवान् (ब्रह्मा) देव ने किरीटधारी (विष्णु) को वर देने के उपरान्त अत्यन्त प्रसन्न होकर पुनः विष्णु से कहा— (३७)

आप सर्वात्मक, अनन्त, सभी के श्रेष्ठ नियामक, सभी प्राणियों के अन्तरात्मा एवं सनातन परब्रह्म हैं। (३८)

मैं ही सभी लोकों का आत्मा एवं लोकमहेश्वर हूँ। यह सब मेरा स्वरूप है। मैं परम पुरुष ब्रह्मा हूँ। (३९)

हम दोनो के अतिरिक्त दूसरा कोई लोकों का परमेश्वर नहीं हैं। एक ही मूर्ति नारायण और पितामह के नाम से दो भागों में विभक्त है। (४०)

उनके ऐसा कहने पर वासुदेव ने ब्रह्मा से कहा कि यह प्रतिज्ञा आपके विनाश का कारण होगी। (४१)

क्या आप योगेश्वर, अव्यय, ब्रह्माधिपति एवं प्रधान पुरुष ईशान अर्थात् शंकर को नहीं देख रहे हैं ? मैं उस परमेश्वर को जानता हूँ। (४२)

यं न पश्यन्ति योगीन्द्राः सांख्या अपि महेश्वरम् ।
अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज ॥४३
ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ।
भवान् न नूनमात्मानं वेत्ति तत् परमक्षरम् ॥४४
ब्रह्माणं जगतामेकमात्मानं परमं पदम् ।
नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वरः ॥४५
संत्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोकय ।
तस्य तत् क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत ॥४६
मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः ।
न मेऽस्त्यविदितं ब्रह्मन् नान्यथाऽहं वदामि ते ॥४७
किन्तु मोहयति ब्रह्मन् भवन्तं पारमेश्वरी ।
मायाऽशेषविशेषाणां हेतुरात्मसमुद्भवा ॥४८
एतावदुक्त्वा भगवान् विष्णुस्तूष्णीं बभूव ह ।
ज्ञात्वा तत् परमं तत्त्वं स्वमात्मानं महेश्वरम् ॥४९
कुतोऽप्यपरिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः ।
प्रसादं ब्रह्मणे कर्तुं प्रादुरासीत् ततो हरः ॥५०
ललाटनयनोऽनन्तो जटामण्डलमण्डितः ।
त्रिशूलपाणिर्भगवांस्तेजसां परमो निधिः ॥५१
दिव्यां विशालां ग्रथितां ग्रहैः सार्केन्दुतारकैः ।
मालामत्यद्भुताकारां धारयन् पादलम्बिनीम् ॥५२
तं दृष्ट्वा देवमीशानं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
मोहितो माययाऽत्यर्थं पीतवाससमब्रवीत् ॥५३
क एष पुरुषोऽनन्तः शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
तेजोराशिरमेयात्मा समायाति जनार्दन ॥५४
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दानवमर्दनः ।
अपश्यदीश्वरं देवं ज्वलन्तं विमलेऽम्भसि ॥५५
ज्ञात्वा तत्परमं भावमैश्वरं ब्रह्मभावनम् ।
प्रोवाचोत्थाय भगवान् देवदेवं पितामहम् ॥५६
अयं देवो महादेवः स्वयंज्योतिः सनातनः ।
अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान् ॥५७

योगीन्द्र तथा सांख्यशास्त्र के ज्ञाता भी जिस अनादि-निधन महेश्वर का साक्षात्कार नहीं कर पाते उसी ब्रह्म की शरण में जाओ। (४३)

तदनन्तर क्रुद्ध ब्रह्मा ने कमल-सदृश नेत्रों वाले केशव से कहा—हे भगवन् ! आप निश्चित ही अपने आप को वह परम अक्षर स्वरूप एवं लोकों का ब्रह्मा, एक मात्र आत्मा एवं परम पद नहीं जानते हैं। निश्चय ही हम दोनों से भिन्न कोई लोकों का परमेश्वर नहीं हैं। दीर्घ निद्रा को छोड़कर अपने आपको देखो। तब उनके उस क्रोध से उत्पन्न वाक्य को सुनकर प्रभु विष्णु ने कहा 'हे कल्याण ? ऐसा न कहें, न कहें। यह (उन) महात्मा की निन्दा है। हे ब्रह्मन् ! मुझे यह अविदित नहीं है। मैं आपसे असत्य नहीं कह रहा हूँ। (४४-४७)

किन्तु, आत्मा से उत्पन्न समस्त विशेषों को उत्पन्न करने वाली परमेश्वर की माया (आपको) मोहित कर रही है।" (४८)

इतना कहने के उपरान्त भगवान् विष्णु अपने आत्मस्वरूप उन महेश्वर को परम तत्त्व जानकर मौन हो गये। (४९)

तदनन्तर ब्रह्मा के ऊपर अनुग्रह करने के लिये प्राणियों के परमेश्वर अपरियेआत्मा हर अर्थात् शङ्कर कहीं से प्रादुर्भूत हुए। (५०)

उन अनन्त देव के ललाट में नेत्र थे और वे जटा-मण्डल से मण्डित थे। तेज के परम निधि (उन) भगवान् के हाथ में त्रिशूल था। वे सूर्य, और चन्द्र युक्त ग्रहों से बनी हुई अत्यद्भुत आकार की पैर तक लटकती हुई दिव्य विशाल माला धारण किये थे। (५१, ५२)

उन ईशान देव को देखकर माया से अत्यन्त मोहित लोकपितामह ब्रह्मा ने पीताम्बरधारी (विष्णु) से कहा—"हे जनार्दन ! अन्तहीन; तेजोराशि अपरिमेय स्वरूप, शूलपाणि एवं तीन नेत्रों वाला यह कौन पुरुष आ रहा है ?" (५३, ५४)

उनके उस वचन को सुनकर दानवों का मर्दन करने वाले विष्णु ने स्वच्छ आकाश में प्रकाशित हो रहे श्रेष्ठ देव महेश्वर को देखा। (५५)

ईश्वर-सम्बन्धी उस ब्रह्मस्वरूप श्रेष्ठ भाव अर्थात् तत्त्व को जानकर भगवान् (विष्णु) ने उठकर देवों के देव पितामह से कहा— (५६)

ये देव आदि एवं अन्त से रहित, अचिन्तनीय, लोकों के ईश्वर महान् एवं स्वयं प्रकाशित होने वाले सनातन महादेव हैं। (५७)

शंकरः शंभुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः ।
भूतानामधिपो योगी महेशो विमलः शिवः ।।५८
एष धाता विधाता च प्रधानपुरुषेश्वरः ।
यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेन भाविताः ।।५९
सृजत्येष जगत् कृत्स्नं पाति संहरते तथा ।
कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलः शिवः ।।६०
ब्रह्माणं विदधे पूर्वं भवन्तं यः सनातनः ।
वेदांश्च प्रददौ तुभ्यं सोऽयमायाति शंकरः ।।६१
अस्यैव चापरां मूर्तिं विश्वयोनिं सनातनीम् ।
वासुदेवाभिधानां मामवेहि प्रपितामह ।।६२
किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम् ।
दिव्यं भवतु ते चक्षुर्येन द्रक्ष्यसि तत्परम् ।।६३
लब्ध्वा शैवं तदा चक्षुर्विष्णोर्लोकपितामहः ।
बुबुधे परमेशानं पुरतः समवस्थितम् ।।६४
स लब्ध्वा परमं ज्ञानमैश्वरं प्रपितामहः ।
प्रपेदे शरणं देवं तमेव पितरं शिवम् ।।६५
ओंकारं समनुस्मृत्य संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
अथर्वशिरसा देवं तुष्टाव च कृताञ्जलिः ।।६६
संस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वरः ।
अवाप परमां प्रीतिं व्याजहार स्मयन्निव ।।६७
मत्समस्त्वं न संदेहो मद्भक्तश्च यतो भवान् ।
मयैवोत्पादितः पूर्वं लोकसृष्ट्यर्थमव्ययम् ।।६८
त्वमात्मा ह्यादिपुरुषो मम देहसमुद्भवः ।
वरं वरय विश्वात्मन् वरदोऽहं तवानघ ।।६९
स देवदेववचनं निशम्य कमलोद्भवः ।
निरीक्ष्य विष्णुं पुरुषं प्रणम्याह वृषध्वजम् ।।७०
भगवन् भूतभव्येश महादेवाम्बिकापते ।
त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृशं सुतम् ।।७१
मोहितोऽस्मि महादेव मायया सूक्ष्मया त्वया ।
न जाने परमं भावं याथातथ्येन ते शिव ।।७२

(ये) शङ्कर, शम्भु, ईशान, सर्वात्मा, परमेश्वर, भूतों के अधिपति, योगी, महेश एवं विमल शिव हैं। (५८)

ये (वही) धाता, विधाता, प्रधान पुरुष तथा ईश्वर हैं जिनका साक्षात्कार ब्रह्म-भाव से युक्त यति लोग करते हैं। (५९)

ये ही निष्कल, केवल महादेव शिव काल बन कर सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं। (६०)

ये वही शङ्कर आ रहे हैं जिन सनातन देव ने पूर्व काल में आपको बनाया एवं वेदों का ज्ञान दिया। (६१)

हे प्रपितामह वासुदेव नामक मुझे विश्व को उत्पन्न करने वाली इनकी ही दूसरी सनातन मूर्ति समझो (६२)

क्या आप ब्रह्मा के अधिपति अव्यय योगेश को नहीं देख रहे हैं ? आपके नेत्र दिव्य हो जायँ जिससे आप उन श्रेष्ठ (देव) को देखें। (६३)

विष्णु से इस प्रकार शैव नेत्र (ज्ञान) प्राप्त कर लोक-पितामह को सम्मुख उपस्थित परम देव का ज्ञान हुआ। (६४)

वे प्रपितामह ब्रह्मा ईश्वर सम्बन्धी श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर पिता स्वरूप उन्हीं शिव देव की शरण में गए। (६५)

ओंकार का स्मरण करने के उपरान्त आत्मा द्वारा मन का निरोध कर हाथ जोड़े हुए (उन्होंने) अथर्ववेद के मन्त्रों से (उन) देव की स्तुति की। (६६)

उन ब्रह्मा के स्तुति करने पर भगवान् परमेश्वर को परम प्रीति प्राप्त हुई। (उन्होंने) मानों हँसते हुए कहा— (६७)

"हे वत्स ! निस्संदेह तुम मेरे सदृश हो क्योंकि तु मेरे भक्त हो। पूर्व समय में मैंने ही लोक की सृष्टि के लिए तुम अव्यय को उत्पन्न किया था। (६८)

तुम मेरी देह से उत्पन्न आत्मा एवं आदिपुरुष हो। हे विश्वात्मा वर माँगो। हे निष्पाप ! मैं तुम्हें वर दूंगा। (६९)

कमल से उत्पन्न उन (ब्रह्मदेव) ने देवाधिदेव का वचन सुनने के उपरान्त विष्णु की ओर देखा एवं उन (परम) पुरुष शङ्कर को प्रणाम कर उनसे कहा— (७०)

"हे भगवन् ! हे भूतभव्येश-अर्थात् विगत एवं अगामी के स्वामी ! हे महादेव ! अम्बिकापति ! मैं आपको ही या आपके तुल्य पुत्र चाहता हूँ ! (७१)

हे महादेव ! आपने मुझे सूक्ष्म माया से मोहित कर दिया है। हे शिव ! मैं यथार्थ रूप से आपके परम भाव अर्थात् उत्कृष्ट स्वरूप को नहीं जानता। (७२)

त्वमेव देव भक्तानां भ्राता माता पिता सुहृत् ।
प्रसीद तव पादाब्जं नमामि शरणं गतः ।।७३

स तस्य वचनं श्रुत्वा जगन्नाथो वृषध्वजः ।
व्याजहार तदा पुत्रं समालोक्य जनार्दनम् ।।७४

यदर्थितं भगवता तत् करिष्यामि पुत्रक ।
विज्ञानमैश्वरं दिव्यमुत्पत्स्यति तवानघ ।।७५

त्वमेव सर्वभूतानामादिकर्ता नियोजितः ।
तथा कुरुष्व देवेश मया लोकपितामह ।।७६

एष नारायणोऽनन्तो ममैव परमा तनुः ।
भविष्यति तवेशानो योगक्षेमवहो हरिः ।।७७

एवं व्याहृत्य हस्ताभ्यां प्रीतात्मा परमेश्वरः ।
संस्पृश्य देवं ब्रह्माणं हरिं वचनमब्रवीत् ।।७८

तुष्टोऽस्मि सर्वथाऽहं ते भक्त्या तव जगन्मय ।
वरं वृणीष्व नह्यावां विभिन्नौ परमार्थतः ।।७९

श्रुत्वाऽथ देववचनं विष्णुर्विश्वजगन्मयः ।
प्राह प्रसन्नया वाचा समालोक्य चतुर्मुखम् ।।८०

एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं परमेश्वरम् ।
पश्यामि परमात्मानं भक्तिर्भवतु मे त्वयि ।।८१

तथेत्युक्त्वा महादेवः पुनर्विष्णुमभाषत ।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहऽमधिदैवतम् ।।८२

मन्मयं त्वन्मयं चैव सर्वमेतन्न संशयः ।
भवान् सोमस्त्वहं सूर्यो भवान् रात्रिरहं दिनम् ।।८३

भवान् प्रकृतिरव्यक्तमहं पुरुष एव च ।
भवान् ज्ञानमहं ज्ञाता भवान् मायाऽहमीश्वरः ।।८४

भवान् विद्यात्मिका शक्तिः शक्तिमानहमीश्वरः ।
योऽहं सुनिष्कलो देवः सोऽपि नारायणः परः ।।८५

एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिनः ।
त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपैष्यति ।
पालयैतज्जगत् कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ।।८६

हे देव ! आप ही भक्तों के माता, पिता, भ्राता एवं मित्र हैं। (आप) प्रसन्न हों। मैं (आपकी) शरण में आया हूँ। मैं आपके चरण कमलों में प्रणाम करता हूँ। (७३)

तदनन्तर उनका वचन सुनने के उपरान्त उन जगत् के स्वामी वृषध्वज ने पुत्र (स्वरूप) जनार्दन को देखकर (ब्रह्मा से) कहा— (७४)

"हे पुत्रक ! आप ने जो माँगा है उसे करूँगा। हे अनघ ! तुम्हें ईश्वर सम्बन्धी दिव्य ज्ञान उत्पन्न होगा। (७५)

मेरे द्वारा तुम्हीं प्राणियों के प्रथम कर्त्ता नियुक्त किये गये हो। (अतः) हे लोकपितामह ! देवेश ! वैसा ही कार्य करो। (७६)

मेरे ही श्रेष्ठ शरीर स्वरूप ये अनन्त, नियामक नारायण हरि आपके योग क्षेम का निर्वाह करेंगे। (७७)

ऐसा कहने के उपरान्त उन प्रसन्न परमेश्वर ने हाथों से ब्रह्मदेव को स्पर्श कर विष्णु से कहा— (७८)

हे जगन्मय ! तुम्हारी भक्ति से मैं सर्वथा प्रसन्न हूँ। वर मांगो। निश्चय ही हम दोनों परमार्थरूप में पृथक् नहीं हैं। (७९)

महादेव का वचन सुनने के उपरान्त ब्रह्मा की ओर देखकर विश्वमय जगन्मय विष्णु ने प्रसन्नतापूर्ण वाणी में कहा— (८०)

यही श्लाघनीय वर है कि मैं परमात्मा परमेश्वर को देखता हूँ। आप में मेरी भक्ति हो। (८१)

"ऐसा ही हो" यह कहकर महादेव ने पुनः विष्णु से कहा—आप सभी कार्यो के कर्त्ता एवं मैं अधिदेवता हूँ। (८२)

निस्सन्देह यह सब तुमसे एवं मुझसे व्याप्त है। आप सोम हैं एवं मैं सूर्य हूँ। आप रात्रि हैं एवं मैं दिन हूँ। (८३)

आप अव्यक्त प्रकृति एवं मैं पुरुष हूँ। आप ज्ञान और मैं ज्ञाता हूँ। आप माया और मैं ईश्वर हूँ। (८४)

आप विद्यास्वरूपा शक्ति तथा मैं शक्तिमान् ईश्वर हूँ। मैं जो निष्कल देव हूँ वही प्रभु नारायण भी है। (८५)

ब्रह्मवादी योगी (हम दोनों को) एक भाव से देखते हैं। हे विश्वात्मा ! आपका आश्रय ग्रहण किये विना योगी मेरे पास नहीं पहुँच सकता। देवता, असुर एवं मनुष्यों से युक्त इस सम्पूर्ण जगत् का पालन करो। (८६)

इतीदमुक्त्वा भगवाननादिः
स्वमायया मोहितभूतभेदः ।
जगाम जन्मर्द्धिविनाशहीनं
धामैकमव्यक्तमनन्तशक्तिः ॥८७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे नवमोऽध्यायः ॥९॥

१०

श्रीकूर्म उवाच ।

गते महेश्वरे देवे स्वाधिवासं पितामहः ।
तदेव सुमहत् पद्मं भेजे नाभिसमुत्थितम् ॥१
अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ ।
महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥२
क्रोधेन महताविष्टौ महापर्वतविग्रहौ ।
कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥३
तावागतौ समीक्ष्याह नारायणमजो विभुः ।
त्रैलोक्यकण्टकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि ॥४
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा हरिर्नारायणः प्रभुः ।
आज्ञापयामास तयोर्वधार्थं पुरुषावुभौ ॥५
तदाज्ञया महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभूद् द्विजाः ।
व्यनयत् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्च व्यनयन्मधुम् ॥६
ततः पद्मासनासीनं जगन्नाथं पितामहम् ।
बभाषे मधुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः ॥७
अस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो ।
नाहं भवन्तं शक्नोमि वोढुं तेजोमयं गुरुम् ॥८
ततोऽवतीर्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः ।
अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूयाथ विष्णुना ॥९

ऐसा कहकर अनन्तशक्ति, अनादि एवं अपनी माया से सभी प्राणियों को मोहित करने वाले भगवान् जन्म, विकास एवं विनाश से रहित (अपने) एकमात्र अव्यक्त धाम को चले गए। (८७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में नवाँ अध्याय समाप्त—९.

१०

श्रीकूर्म ने कहा—

महेश्वर देव के अपने स्थान पर चले जाने के उपरान्त (विष्णु की) नाभि से निकले उसी सुन्दर एवं महान् पद्म पर पितामह रहने लगे। (१)

तदनन्तर दीर्घकाल के उपरान्त वहाँ अतुलनीय पौरुष वाले मधु और कैटभ नामक दो महान् असुर-बन्धु आये। (२)

देवादिदेव शार्ङ्गधनुपधारी (विष्णु) के कान से उत्पन्न महान् पर्वत के तुल्य शरीर वाले तथा क्रोध से आविष्ट उन दोनों को आया हुआ देखकर अजन्मा विभु (ब्रह्मा ने) नारायण से कहा—'त्रैलोक्य के कण्टक इन दोनों असुरो को आप मारें।' (३, ४)

उनके उस वचन को सुनकर प्रभु नारायण हरि ने उन दोनों के वध के लिये (जिष्णु एवं विष्णु) नामक दो पुरुषों को आज्ञा प्रदान किया। हे द्विजो! उनकी आज्ञा से उन (जिष्णु एवं विष्णु) से उन दोनों (असुरों) का महान युद्ध हुआ। जिष्णु ने कैटभ को जीता एवं विष्णु ने मधु को पराजित किया। तदुपरान्त स्नेहपूर्ण मनवाले हरि ने पद्मासन पर आसीन जगत् के स्वामी पितामह से मधुर वचन कहा— (५-७)

हे प्रभु! मेरे कहने से आप इस पद्म से नीचे उतरें। मैं तेजोमय एवं भारी आपको नहीं ढो सकता। (८)

तदनन्तर विश्वात्मा नीचे उतरे एवं चक्रधारी विष्णु की देह में प्रवेश कर वैष्णवी निद्रा से युक्त हो गए एवं इस प्रकार विष्णु से उनकी एकात्मकता हो गई। (९)

सहस्रशीर्षनयनः शङ्खचक्रगदाधरः ।
ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ सुष्वाप सलिले तदा ॥१०
सोऽनुभूय चिरं कालमानन्दं परमात्मनः ।
अनाद्यनन्तमद्वैतं स्वात्मानं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥११
ततः प्रभाते योगात्मा भूत्वा देवश्चतुर्मुखः ।
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां वैष्णवं भावमाश्रितः ॥१२
पुरस्तादसृजद् देवः सनन्दं सनकं तथा ।
ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वजं तं सनातनम् ॥१३
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः परं वैराग्यमास्थिताः ।
विदित्वा परमं भावं न सृष्टौ दधिरे मतिम् ॥१४
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ पितामहः ।
बभूव नष्टचेता वै मायया परमेष्ठिनः ॥१५
ततः पुराणपुरुषो जगन्मूर्तिर्जनार्दनः ।
व्याजहारात्मनः पुत्रं मोहनाशाय पद्मजम् ॥१६
विष्णुरुवाच ।
कच्चिन्न विस्मृतो देवः शूलपाणिः सनातनः ।
यदुक्तवानात्मनोऽसौ पुत्रत्वे तव शंकरः ॥१७
अवाप्य संज्ञां गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः ।
प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तपः परमदुश्चरम् ॥१८
तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित् समवर्तत ।
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधोऽभ्यजायत ॥१९
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ।
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो भूताः प्रेतास्तथाभवन् ॥२०
सर्वांस्तानश्रुजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ।
जहौ प्राणांश्च भगवान् क्रोधाविष्टः प्रजापतिः ॥२१
तदा प्राणमयो रुद्रः प्रादुरासीत् प्रभोर्मुखात् ।
सहस्रादित्यसंकाशो युगान्तदहनोपमः ॥२२
रुरोद सुस्वरं घोरं देवदेवः स्वयं शिवः ।
रोदमानं ततो ब्रह्मा मा रोदीरित्यभाषत ।
रोदनाद् रुद्र इत्येवं लोके ख्यातिं गमिष्यसि ॥२३

सहस्रों मस्तक तथा नेत्र वाले तथा शङ्ख, चक्र एवं गदाधारण करने वाले नारायण नामक वे ब्रह्मा जल के ऊपर सो गए। (१०)

उन्होंने चिरकाल तक परमात्मा के अनादि, अनन्त स्वात्मस्वरूप ब्रह्मनामक अद्वैत आनन्द का अनुभव किया। (११)

तदनन्तर प्रभात (अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ) का काल उपस्थित होने पर वैष्णव भाव का आश्रय लिए हुए वे योगात्मा चार मुखों वाले देव वनकर उसप्रकार की सृष्टि करने लगे। (१२)

उन देव ने पहले सनक, सनन्दन, ऋभु सनत्कुमार तथा पूर्व में उत्पन्न होने वाले सनातन (नामक ऋषियों) को उत्पन्न किया। (१३)

द्वन्द्व एवं मोह से रहित वे लोग उत्कृष्ट वैराग्य में स्थित थे। परम भाव को जानकर (उन्होंने) सृष्टि-कार्य में मन नहीं लगाया। (१४)

लोक की सृष्टि करने में उन लोगों के इस प्रकार निरपेक्ष होने पर पितामह परमेष्ठी (परमात्मा) की माया से मोहित हो गए। (१५)

तदुपरान्त जगन्मूर्त्ति सनातन पुराणपुरुष जनार्दन ने, मोह के नाश हेतु अपने पुत्र पद्मजन्मा (ब्रह्मा) से कहा। (१६)

विष्णु ने कहा—क्या (आप) शूलपाणि सनातन देव को भूल गये? उन शङ्कर ने स्वयं को आपका पुत्र होने की वात कही थी वे हैं। (१७)

गोविन्द से चेतना प्राप्त कर पद्मयोनि पितामह प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा से परम दुस्तर तप करने लगे। उनके इस प्रकार तप करते कुछ नहीं हुआ—तदनन्तर वहुत समय के पश्चात् (उन्हें) दुःख से क्रोध उत्पन्न हुआ। (१८, १९)

क्रोधाविष्ट उनके नेत्रों से आँसू की बूँदें गिरीं। तदनन्तर उन अश्रु-बिन्दुओं से भूत और प्रेत उत्पन्न हुए। (२०)

अश्रु से उत्पन्न होने वाले उन सभी को देखकर क्रोधाविष्ट भगवान् प्रजापति ब्रह्मा ने अपनी निन्दा की एवं प्राणों का परित्याग कर दिया। (२१)

तदुपरान्त प्रभु के मुख से सहस्रों सूर्य के सदृश एवं प्रलय कालीन अग्नि के तुल्य प्राणमय रुद्र उत्पन्न हुए। देवाधिदेव स्वयं शिव सुन्दर स्वर में घोर रुदन करने लगे। तदनन्तर ब्रह्मा ने रोते हुए (रुद्र) से कहा 'मत

अन्यानि सप्त नामानि पत्नीः पुत्रांश्च शाश्वतान्।
स्थानानि चैषामष्टानां ददौ लोकपितामहः ।।२४

भवः शर्वस्तथेशानः पशूनां पतिरेव च।
भीमश्चोग्रो महादेवस्तानि नामानि सप्त वै ।।२५

सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येता अष्टमूर्त्तयः ।।२६

स्थानेष्वेतेषु ये रुद्रं ध्यायन्ति प्रणमन्ति च।
तेषामष्टतनुर्देवो ददाति परमं पदम् ।।२७

सुवर्चला तथैवोमा विकेशी च तथा शिवा।
स्वाहा दिशश्च दीक्षा च रोहिणी चेति पत्नयः ।।२८

शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः।
स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चैषां सुताः स्मृताः ।।२९

एवंप्रकारो भगवान् देवदेवो महेश्वरः।
प्रजाधर्मं च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमाश्रितः ।।३०

आत्मन्याधाय चात्मानमैश्वरं भावमास्थितः।
पीत्वा तदक्षरं ब्रह्म शाश्वतं परमामृतम् ।।३१

प्रजाः सृजेति चादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः।
स्वात्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः ।।३२

कपर्दिनो निरातङ्कान् नीलकण्ठान् पिनाकिनः।
त्रिशूलहस्तानृष्टिघ्नान् महानन्दांस्त्रिलोचनान् ।।३३

जरामरणनिर्मुक्तान् महावृषभवाहनान्।
वीतरागांश्च सर्वज्ञान् कोटिकोटिशतान् प्रभुः ।।३४

तान् दृष्ट्वा विविधान् रुद्रान् निर्मलान् नीललोहितान्।
जरामरणनिर्मुक्तान् व्याजहार हरं गुरुः ।।३५

मा स्राक्षीरीदृशीर्देव प्रजा मृत्युविवर्जिताः।
अन्याः सृजस्व भूतेश जन्ममृत्युसमन्विताः ।।३६

ततस्तमाह भगवान् कपर्दी कामशासनः।
नास्ति मे तादृशः सर्गः सृज त्वमशुभाः प्रजाः ।।३७

रोओ। रोदन करने के कारण (तुम) लोक में 'रुद्र' इस से नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करोगे।' (२२, २३)

लोकपितामह ने (उन्हें) अन्य सात नाम, आठ पत्नियाँ, शाश्वत पुत्र एवं उन आठों को स्थान प्रदान किया। (२४)

भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र एवं महादेव (ये ही) वे सात नाम हैं। (२५)

सूर्य, जल, मही, वह्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण एवं चन्द्रमा ये ही वे आठ मूर्त्तियाँ हैं। (२६)

जो लोग इन स्थानों में रुद्र का ध्यान करते एवं उन्हें प्रणाम करते हैं उन्हें अष्टमूर्त्ति देव परम पद प्रदान करते हैं। (२७)

सुवर्चला, उमा, विकेशी, शिवा, स्वाहा, दिशाएँ, दीक्षा एवं रोहिणी ये ही (रुद्र की आठ) पत्नियाँ हैं। (२८)

शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सनातन एवं बुध उनके पुत्र कहे गए हैं। (२९)

इस प्रकार के देवादिदेव भगवान् महेश्वर ने प्रजा, धर्म एवं काम को त्यागकर वैराग्य का आश्रय ग्रहण किया। (३०)

आत्मा में मन को एकाग्र करने के उपरान्त श्रेष्ठ अमृतस्वरूप, शाश्वत, अक्षर ब्रह्म का अस्वादन कर वे ऐश्वर भाव में स्थित हुए। (३१)

ब्रह्मा द्वारा प्रजा की सृष्टि का आदेश प्राप्त कर नीललोहित शिव ने मन द्वारा अपने समान रुद्रों को उत्पन्न किया। (३२)

प्रभु (शिव) ने करोड़ों-करोड़ों जटाजूटधारी, भय-रहित, नीलकण्ठ, पिनाकपाणि, हाथ में त्रिशूल धारण किये, ऋष्टिघ्न, महानन्दस्वरुप, त्रिलोचन, जरा एवं मरण से रहित, महावृषभ-वाहन, वीतराग एवं सर्वज्ञ (रुद्रों) को उत्पन्न किया। (३३, ३४)

उन अनेक निर्मल, नीललोहित, जरामरण से रहित रुद्रों को देखकर गुरु (ब्रह्मा) ने महादेव से कहा—(३५)

"हे देव! इस प्रकार की मृत्युरहित प्रजा मत उत्पन्न करो। हे भूतेश! जन्म एवं मृत्यु से युक्त अन्य (प्रजाओं) की सृष्टि करो।" (३६)

तदनन्तर जटाजूटधारी काम के नियामक भगवान् ने उनसे कहा "मेरे पास उस प्रकार की सृष्टि नहीं है। आप अशुभ प्रजाओं को उत्पन्न करें।" (३७)

ततः प्रभृति देवोऽसौ न प्रसूतेऽशुभाः प्रजाः ।
स्वात्मजैरेव तै रुद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यतिष्ठत ।
स्थाणुत्वं तेन तस्यासीद् देवदेवस्य शूलिनः ।।३८
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः ।
स्रष्टृत्वमात्मसंबोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च ।।३९
अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे ।
स एव शंकरः साक्षात् पिनाकी परमेश्वरः ।।४०
ततः स भगवान् ब्रह्मा वीक्ष्य देवं त्रिलोचनम् ।
सहैव मानसैः पुत्रैः प्रीतिविस्फारिलोचनः ।।४१
ज्ञात्वा परतरं भावमैश्वरं ज्ञानचक्षुषा ।
तुष्टाव जगतामेकं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।।४२

ब्रह्मोवाच ।

नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर ।
नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ।।४३
नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे ।
प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः ।।४४
नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने ।
नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमो नमः ।।४५
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं ब्रह्मणो जनकाय ते ।
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने ।।४६
नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः ।
वेदान्तसारसाराय नमो वेदात्ममूर्त्तये ।।४७
नमो बुद्धाय शुद्धाय योगिनां गुरवे नमः ।
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते ।।४८
नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः ।
त्रियम्बकाय देवाय नमस्ते परमेष्ठिने ।।४९
नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने ।
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ।।५०
नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगर्द्धिहेतवे ।
नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः ।।५१

उस समय से उन देव ने अशुभ प्रजाओं को नहीं उत्पन्न किया। अपने आत्मज उन रुद्रों के साथ (वे) निवृत्तात्मा-अर्थात् क्रिया-रहित हो गये। इसीसे देवाधिदेव त्रिशूली (शिव) स्थाणु हुए। (३८)

शङ्कर में ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व, आत्मज्ञान एवं अधिष्ठातृत्व ये दस शाश्वत गुण नित्य रहते हैं। वे शङ्कर ही साक्षात् पिनाकी परमेश्वर हैं। (३९, ४०)

तदनन्तर प्रीति से नेत्रों को फैलाए हुए उन भगवान् ब्रह्मा ने त्रिलोचन देव को (उनके) मानस पुत्रों के साथ देखा। (४१)

ज्ञान रूपी नेत्र से (उनके) ईश्वरीय परात्पर स्वरूप को जानकर (वे) मस्तक पर हाथ जोड़ कर जगत् के एकमात्र ईश की स्तुति करने लगे। (४२)

ब्रह्मा ने कहा—हे महादेव ! आपको नमस्कार है। हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। शिव को नमस्कार है। ब्रह्मरूपी देव को नमस्कार है। (४३)

हे महेश ! आपको नमस्कार है। शान्त हेतुस्वरूप (आप) को नमस्कार है। प्रधानपुरुष, ईश एवं योगाधिपति को नमस्कार है। (४४)

काल, रुद्र, महाग्रास एवं शूलधारी को नमस्कार है। पिनाकपाणि को नमस्कार है। त्रिनेत्र को बारंबार नमस्कार है। (४५)

त्रिमूर्त्तिधारी आपको नमस्कार है। ब्रह्मा के जनक को नमस्कार है। हे ब्रह्मविद्या के अधिपति, एवं ब्रह्मविद्या के प्रदाता ! आपको नमस्कार है। (४६)

वेदों के रहस्य स्वरूप को नमस्कार है। काल के भी कालस्वरूप आपको नमस्कार है। वेदान्तसार के भी सार-स्वरूप एवं वेदस्वरूप मूर्त्तिवाले को नमस्कार है। (४७)

शुद्ध, बुद्ध एवं योगियों के गुरु को नमस्कार है। शोक-रहित एवं अनेक प्रकार भूतों से घिरे हुए आपको नमस्कार है। (४८)

ब्रह्मण्यदेव एवं ब्रह्माधिपति को नमस्कार है। तीन नेत्रों वाले देव परमेष्ठी को नमस्कार है। (४९)

हे दिगम्बर ! आपको नमस्कार है। मुण्ड एवं दण्ड-धारी को नमस्कार है। हे अनादि, मलरहित-अर्थात् शुद्ध एवं ज्ञान द्वारा ज्ञात होने योग्य (देव) ! आपको नमस्कार है। (५०)

तारक, तीर्थ एवं योग-सम्बन्धी विभूतियों के कारण स्वरूप को नमस्कार है। हे धर्म द्वारा प्राप्य एवं योग से विदित होने के योग्य आपको नमस्कार है। (५१)

नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः ।
ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने ।।५२
त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम् ।
त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय ।।५३
त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः ।
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः ।।५४
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः ।
त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा ।।५५
भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहङ्कार एव च ।
यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसंज्ञितम् ।।५६
यस्य द्यौरभवन्मूर्द्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः ।
आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ।।५७
संतापयति यो विश्वं स्वभाभिर्भासयन् दिशः ।
ब्रह्मतेजोमयं नित्यं तस्मै सूर्यात्मने नमः ।।५८
हव्यं वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः ।
कव्यं पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नमः ।।५९
आप्यायति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत् ।
पीयते देवतासङ्घैस्तस्मै सोमात्मने नमः ।।६०
बिभर्त्यशेषभूतानि योऽन्तश्चरति सर्वदा ।
शक्तिर्माहेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः ।।६१
सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्मानुरूपतः ।
स्वात्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः ।।६२
यः शेषशयने शेते विश्वमावृत्य मायया ।
स्वात्मानुभूतियोगेन तस्मै विश्वात्मने नमः ।।६३
बिभर्त्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम् ।
ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नमः ।।६४
यः परान्ते परानन्दं पीत्वा दिव्यैकसाक्षिकम् ।
नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः ।।६५

हे निष्प्रपञ्च ! आपको नमस्कार है। हे निराभास ! आपको नमस्कार है। विश्वरूप परमात्मा ब्रह्म को नमस्कार है। (५२)

आपने ही सबकी सृष्टि की है एवं सभी कुछ आप में ही स्थित है। हे जगन्मय ! आप ही प्रधानादि समस्त विश्व का संहार करते हैं। (५३)

आप ईश्वर, महादेव, परम ब्रह्म एवं महेश्वर हैं। आप परमेष्ठी, शिव, शान्त, पुरुष, निष्कल एवं हर हैं। (५४)

आप अक्षर, परम ज्योति, काल एवं परमेश्वर हैं। आप ही अनन्त पुरुष, प्रधान और प्रकृति हैं। (५५)

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश एवं अहङ्कार जिसके स्वरूप हैं उस ब्रह्मनामक आपको ही नमस्कार करता हूँ। (५६)

द्युलोक जिसका मस्तक, पृथ्वी पैर, दिशाएँ जिसकी भुजायें एवं आकाश उदर हैं उस विराट् पुरुष को मैं प्रणाम करता हूँ। (५७)

जो अपने प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए विश्व को उष्णता प्रदान करते हैं उन शाश्वत ब्रह्मतेजमय सूर्य स्वरूप (देव) को नमस्कार है। (५८)

रुद्र के तेजस्वरूप शरीरवाला जो नित्य (देवों को) हव्य एवं पितृगणों को कव्य पहुँचाता है उस अग्निस्वरूप देव को नमस्कार है। (५९)

जो नित्य अपने तेज से सम्पूर्ण जगत् को आप्यायित करता है एवं देवता लोग जिसका पान करते हैं उस चन्द्र स्वरूप (देव) को नमस्कार है। (६०)

महेश्वर की जो शक्ति समस्त भूतों का भरण-पोषण करती है तथा सर्वदा (सभी के) भीतर विचरण करती है उस वायुस्वरूप (महेश्वर की शक्ति) को नमस्कार है। जो अपने-अपने कर्मों के अनुसार सभी की सृष्टि करता एवं जो अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित रहता है उस चतुर्मुख स्वरूप (ब्रह्मा) देव को नमस्कार है। (६१, ६२)

अपने आत्मा में स्थित अनुभूति-स्वरूप योगसे (प्रेरित) माया द्वारा विश्व को आवृत कर जो शेष रूपी पर्यङ्क पर शयन करते हैं उन विश्वात्मा को नमस्कार है। (६३)

जो नित्य चौदह भुवनों वाले ब्रह्माण्ड को शिर पर धारण करते हैं सभी के आधारस्वरूप उन शेष स्वरूप (देव) को नमस्कार है। (६४)

अनन्त महिमावान् जो (देव) महाप्रलय के समय दिव्य अद्वितीय उत्कृष्ट साक्षी वाले आनन्द का अस्वादन

योऽन्तरा सर्वभूतानां नियन्ता तिष्ठतीश्वरः ।
तं सर्वसाक्षिणं देवं नमस्ये भवतस्तनुम् ॥६६
यं विनिन्द्रा जितश्वासाः संतुष्टाः समदर्शिनः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥६७
यया संतरते मायां योगी संक्षीणकल्मषः ।
अपारतरपर्यन्तां तस्मै विद्यात्मने नमः ॥६८
यस्य भासा विभातीदमद्वयं तमसः परम् ।
प्रपद्ये तत् परं तत्त्वं तद्रूपं परमेश्वरम् ॥६९
नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम् ।
प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम् ॥७०
एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा तद्भावभावितः ।
प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥७१
ततस्तस्मै महादेवो दिव्यं योगमनुत्तमम् ।
ऐश्वर्यं ब्रह्मसद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः ॥७२

कर नृत्य करते हैं उस रुद्रस्वरूप (देव) को नमस्कार है। (६५)

जो ईश्वर सभी प्राणियों (के हृदय) के भीतर नियामक रूप से रहता है। मैं सभी के साक्षी एवं आपके शरीर स्वरूप उस देव को नमस्कार करता हूँ। (६६)

निद्रारहित, श्वास को जीतने वाले, सन्तुष्ट एवं समदर्शी योगी जिस ज्योति स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं उन योगात्मा को नमस्कार है। (६७)

जिसके द्वारा निष्पाप योगी अपारतरपर्यन्त अर्थात् अत्यन्त गूढ एवं दुस्तर माया को पार करते हैं उस विद्या-स्वरूप (देवता) को नमस्कार है। (६८)

मैं अन्धकार से वहिर्भूत, अद्वय परमतत्त्व स्वरूप एवं तद्रूप परमेश्वर की शरण ग्रहण करता हूँ जिसके प्रकाश से यह (विश्व) प्रकाशित होता है। (६९)

(मैं) नित्य आनन्दस्वरूप, निराधार, निष्कल, परम शिव एवं परमात्मास्वरूप आप परमेश्वर का शरणागत हूँ। (७०)

इस प्रकार महादेव की स्तुति कर उनकी भावना से भावित ब्रह्मा सनातन ब्रह्म अर्थात् वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए हाथ जोड़कर विनय पूर्वक खड़े हो गए। (७१)

तदनन्तर महादेव हर ने उन्हें सर्वोत्कृष्ट दिव्य योग, ऐश्वर्य, ब्रह्मभावना एवं वैराग्य प्रदान किया। (७२)

कराभ्यां सुशुभाभ्यां च संस्पृश्य प्रणतार्तिहा ।
व्याजहार स्वयं देवः सोऽनुगृह्य पितामहम् ॥७३
यत्त्वयाऽभ्यर्थितं ब्रह्मन् पुत्रत्वे भवतो मम ।
कृतं मया तत् सकलं सृजस्व विविधं जगत् ॥७४
त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः ॥७५
स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः ।
ममैव दक्षिणादङ्गाद् वामाङ्गात् पुरुषोत्तमः ॥७६
तस्य देवादिदेवस्य शंभोर्हृदयदेशतः ।
संबभूवाथ रुद्रोऽसावहं तस्यापरा तनुः ॥७७
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः ।
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शंकरः स्थितः ॥७८
तथान्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि तु ।
निरूपः केवलः स्वच्छो महादेवः स्वभावतः ॥७९

भक्तों का कष्ट दूर करनेवाले उन (शङ्कर) देव ने स्वयं सुन्दर कल्याणकारी हाथों से पितामह (ब्रह्मा) का स्पर्श कर हँसते हुए अनुग्रहपूर्वक उनसे कहा— (७३)

हे ब्रह्मा! आपने जो यह प्रार्थना की थी कि (मैं) आपका पुत्र वनूँ उसे मैंने पूर्ण कर दिया। (अव आप) अनेक प्रकार के जगत् की सृष्टि करें। (७४)

हे ब्रह्मा! निष्कल परमेश्वर स्वरुप मैं सृष्टि, रक्षा एवं संहाररुपी तीन गुणों के कारण ब्रह्मा, विष्णु एवं हर के नाम से तीन रूपों में विभक्त हूँ। (७५)

मेरे ही दाहिने अङ्ग से सृष्टि के लिये वनाये गए वही आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र हैं। (मेरे) वाम अङ्ग से पुरुषोत्तम अर्थात् विष्णु का निर्माण हुआ है। (७६)

उन देवादिदेव शम्भु के हृदय प्रदेश से रुद्र उत्पन्न हुए। वही मैं उत्कृष्ट शरीर हूँ। (७७)

हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के कारण हैं। एक होते हुए भी शङ्कर अपनी इच्छा से अपना विभाग कर स्थित हैं। (७८)

इसी प्रकार अन्य रूप भी मेरी माया से रचित हैं। स्वभावतः अपने स्वरूप में स्थित महादेव स्वच्छ, अद्वितीय एवं अरूप हैं। (७९)

एभ्यः परतरो देवस्त्रिमूर्तिः परमा तनुः ।
माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा ।।८०
तस्या एव परां मूर्ति मामवेहि पितामह ।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानतेजोयोगसमन्विताम् ।।८१
सोऽहं ग्रसामि सकलमधिष्ठाय तमोगुणम् ।
कालो भूत्वा न तमसा मामन्योऽभिभविष्यति ।।८२
यदा यदा हि मां नित्यं विचिन्तयसि पद्मज ।
तदा तदा मे सान्निध्यं भविष्यति तवानघ ।।८३
एतावदुक्त्वा ब्रह्माणं सोऽभिवन्द्य गुरुं हरः ।
सहैव मानसैः पुत्रैः क्षणादन्तरधीयत ।।८४
सोऽपि योगं समास्थाय ससर्ज विविधं जगत् ।
नारायणाख्यो भगवान् यथापूर्वं प्रजापतिः ।।८५
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च सोऽसृजद् योगविद्यया ।।८६
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्याः साधका ब्रह्मवादिनः ।।८७
संकल्पं चैव धर्मं च युगधर्मांश्च शाश्वतान् ।
स्थानाभिमानिनः सर्वान् यथा ते कथितं पुरा ।।८८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

११

श्रीकूर्म उवाच ।

एवं सृष्ट्वा मरीच्यादीन् देवदेवः पितामहः ।
सहैव मानसैः पुत्रैस्तताप परमं तपः ।।१
तस्यैवं तपतो वक्त्राद् रुद्रः कालाग्निसन्निभः ।
त्रिशूलपाणिरीशानः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः ।।२
अर्द्धनारीनरवपुः दुष्प्रेक्ष्योऽतिभयंकरः ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा ब्रह्मा चान्तर्दधे भयात् ।।३

वे देव त्रिमूर्त्ति इन (माया से निर्मित मूर्त्तियों) से उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ शरीर सम्पन्न हैं। महेश्वर की (वह) तीन नेत्रों वाली मूर्त्ति सदा योगियों को शान्ति प्रदान करती है। (८०)

हे पितामह ! मुझे उनकी वही शाश्वत ऐश्वर्य एवं ज्ञान सम्पन्न तथातेज एवं योग से युक्त परामूर्त्ति समझो। (८१)

वही मैं काल बनकर तमोगुण के आश्रय से समस्त (विश्व) का ग्रास करता हूँ। दूसरा कोई तम द्वारा मुझे आक्रान्त नहीं कर सकता। (८२)

हे निष्पाप पद्मज ! जब-जब तुम मुझे नित्य का चिन्तन करोगे तब-तब तुम मेरे निकट (उपस्थित) हो जाओगे। (८३)

इतना कहने के उपरान्त गुरु ब्रह्मा की अभिवन्दना कर वे शङ्कर क्षण भर में मानस पुत्रों के साथ ही अन्तर्हित हो गए। (८४)

उन नारायण नामक भगवान् प्रजापति (ब्रह्मा) ने भी योग का अवलम्बन कर अनेक प्रकार के जगत् की सृष्टि की। उन्होंने योग विद्या द्वारा पूर्व (कल्प) के अनुसार मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि एवं वसिष्ठ को उत्पन्न किया। (८५, ८६)

पुराण में यह मत निश्चित हुआ है कि ये नव ब्रह्मा हैं। वे सभी ब्रह्मा के सदृश साधक एवं ब्रह्मवादी हैं। (८७)

सङ्कल्प, धर्म, शाश्वत युगधर्म एवं सभी स्थानाभिमानी (देवों) का यथापूर्व वर्णन तुम्हें सुनाया गया। (८८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में दसवाँ अध्याय समाप्त—१०.

११

श्रीकूर्म ने कहा—इस प्रकार मरीचि आदि की सृष्टि करने के उपरान्त देवों के देव पितामह मानस पुत्रों के साथ ही परम तप करने लगे। (१)

इस प्रकार तपस्या कर रहे उनके मुख से कालाग्नि सदृश, त्रिशूलपाणि, त्रिलोचन, आधे भाग में नारी एवं आधे भाग में नर की आकृति से सम्पन्न शरीरवाले,

तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वमथाकरोत् ।
विभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा पुनः ।।४
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ।
कपालीशादयो विप्रा देवकार्ये नियोजिताः ।।५
सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वं च स प्रभुः ।
विभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैः सितैः ।।६
ता वै विभूतयो विप्रा विश्रुताः शक्तयो भुवि ।
लक्ष्म्यादयो याभिरीशा विश्वं व्याप्नोति शांकरी ।।७
विभज्य पुनरीशानी स्वात्मानं शंकराद् विभोः ।
महादेवनियोगेन पितामहमुपस्थिता ।।८
तामाह भगवान् ब्रह्मा दक्षस्य दुहिता भव ।
साऽपि तस्य नियोगेन प्रादुरासीत् प्रजापतेः ।।९
नियोगाद् ब्रह्मणो देवीं ददौ रुद्राय तां सतीम् ।
दक्षाद् रुद्रोऽपि जग्राह स्वकीयामेव शूलभृत् ।।१०
प्रजापतिं विनिन्द्यैषा कालेन परमेश्वरी ।
मेनायामभवत् पुत्री तदा हिमवतः सती ।।११
स चापि पर्वतवरो ददौ रुद्राय पार्वतीम् ।
हिताय सर्वदेवानां त्रिलोकस्यात्मनोऽपि च ।।१२
सैषा माहेश्वरी देवी शंकरार्द्धशरीरिणी ।
शिवा सती हैमवती सुरासुरनमस्कृता ।।१३
तस्याः प्रभावमतुलं सर्वे देवाः सवासवाः ।
विन्दन्ति मुनयो वेत्ति शंकरो वा स्वयं हरिः ।।१४
एतद् वः कथितं विप्राः पुत्रत्वं परमेष्ठिनः ।
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं शंकरस्यामितौजसः ।।१५

सूत उवाच ।

इत्याकर्ण्याथ मुनयः कूर्मरूपेण भाषितम् ।
विष्णुना पुनरेवैनं पप्रच्छुः प्रणता हरिम् ।।१६

दुर्दर्शनीय एवं अतिभयङ्कर ईशान रुद्र प्रकट हुए। 'अपना विभाग करो' ऐसा कह कर ब्रह्मा भय से अन्तर्हित हो गए। (ब्रह्मा द्वारा) उस प्रकार कहे जाने पर उन्होंने तदनुसार स्त्री और पुरुष रूप से दो भाग कर दिया। पुनः पुरुष भाग को दश एवं एक अर्थात् ग्यारह भागों में विभक्त कर दिया। (२-४)

ये एकादश रुद्र त्रिभुवनेश्वर कहे जाते हैं। हे विप्रो ! कपालीश इत्यादि नामवाले (ये एकादश रुद्र) देवकार्य में नियोजित हैं। (५)

उन देव प्रभु ने श्वेत एवं कृष्ण, सौम्य और असौम्य, शान्त एवं अशान्त रूपों से स्त्री भाग को अनेक प्रकार से विभक्त किया। (६)

हे विप्रो ! वे ही विभूतियाँ पृथ्वी पर लक्ष्मी आदि नामक शक्तियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। शङ्कर की शक्ति ईश्वराणी उन्हीं के द्वारा विश्व में व्याप्त है। (७)

हे द्विजो ! ईशानी ने तदनन्तर विभु शङ्कर से अपने स्वरूप को पृथक् कर लिया एवं महादेव के आदेश से पितामह के निकट उपस्थित हुई। (८)

भगवान् ब्रह्मा ने उनसे कहा—"दक्ष की पुत्री बनो"। उनकी आज्ञा से वह भी प्रजापति (दक्ष) के यहाँ उत्पन्न हुई। (९)

(दक्ष प्रजापति ने) ब्रह्मा की आज्ञा से रुद्र को वह देवी सती दे दी। शूलधारी रुद्र ने भी दक्ष से (उनकी पुत्री स्वरूपा) अपनी (शक्ति) को ही ग्रहण किया। (१०)

कालान्तर में प्रजापति (दक्ष) की निन्दा कर (तथा शरीर का त्यागकर) वे परमेश्वरी सती ईशानी पुनः हिमवान् से मेना की पुत्री बनी। (११)

हे द्विजो ! देवों, त्रैलोक्य एवं अपने हित के लिये उस पर्वतश्रेष्ठ ने भी रुद्र को पार्वती प्रदान किया। (१२)

शाङ्करार्द्धशरीररूपिणी महेश्वर की शक्ति-स्वरूपा वही देवी शिवा, सती एवं हैमवती के रूप में सुरों एवं असुरों से पूजित हैं। (१३)

शङ्कर अथवा स्वयं हरि, इन्द्र सहित सभी देवता एवं मुनि उन (देवी) के अतुल प्रभाव को जानते हैं। (१४)

हे विप्रो ! (इस प्रकार मैंने) आपसे अमित तेजस्वी शङ्कर के पुत्रत्व तथा परमेष्ठी ब्रह्मा के पद्मयोनित्व का वर्णन किया। (१५)

सूत ने कहा—कूर्मरूपी विष्णु के इस कथन को सुनकर मुनियों ने पुनः उन हरि को प्रणाम कर पूछा। (१६)

ऋषय ऊचुः ।
कैषा भगवती देवी शंकरार्द्धशरीरिणी ।
शिवा सती हैमवती यथावद् ब्रूहि पृच्छताम् ।।१७
तेषां तद् वचनं श्रुत्वा मुनीनां पुरुषोत्तमः ।
प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वं परमं पदम् ।।१८
श्रीकूर्म उवाच ।
पुरा पितामहेनोक्तं मेरुपृष्ठे सुशोभनम् ।
रहस्यमेतद् विज्ञानं गोपनीयं विशेषतः ।।१९
सांख्यानां परमं सांख्यं ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम् ।
संसारार्णवमग्नानां जन्तूनामेकमोचनम् ।।२०
या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपाऽतिलालसा ।
व्योमसंज्ञा परा काष्ठा सेयं हैमवती मता ।।२१
शिवा सर्वगताऽनन्ता गुणातीता सुनिष्कला ।
एकानेकविभागस्था ज्ञानरूपाऽतिलालसा ।।२२
अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता तस्य तेजसा ।
स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवामला ।।२३
एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः ।
परावरेण रूपेण क्रीडते तस्य सन्निधौ ।।२४
सेयं करोति सकलं तस्याः कार्यमिदं जगत् ।
न कार्यं नापि करणमीश्वरस्येति सूरयः ।।२५
चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः ।
अधिष्ठानवशात् तस्याः शृणुध्वं मुनिपुंगवाः ।।२६
शान्तिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः ।
चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः ।।२७
अनया परया देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते ।
चतुर्ष्वपि च वेदेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः ।।२८
अस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्यमतुलं महत् ।
तत्सम्बन्धादनन्ताया रुद्रेण परमात्मना ।।२९
सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका ।
प्रोच्यते भगवान् कालो हरिः प्राणो महेश्वरः ।।३०

ऋषियों ने कहा—शङ्करार्द्धशरीर स्वरूपा, शिवा, सती, हैमवती यह भगवती देवी कौन हैं ? (हम सभी) पूछने वालों को (आप) यथार्थ रूप से बतलायें। (१७)

उन मुनियों के उस वचन को सुनने के उपरान्त महायोगी पुरुषोत्तम ने अपने परम पद का ध्यान कर उत्तर दिया। (१८)

श्रीकूर्म ने कहा—

प्राचीन काल में पितामह (ब्रह्मा) ने मेरु पर्वत के रम्य पृष्ठ पर यह रहस्यपूर्ण ज्ञान कहा था। यह विशेष रूप से गोपनीय है। (१९)

सांख्यों अर्थात् विचारशीलों का यह सब श्रेष्ठ सांख्य (विचार) एवं उत्तम ब्रह्मविज्ञान है। संसाररूपी समुद्र में डूबने वाले प्राणियों के लिये यह एकमात्र मुक्ति का साधन है। (२०)

यह हैमवती वही हैं जो व्योम संज्ञा वाली श्रेष्ठ कोटि की ज्ञानरूपा एवं उत्कृष्ट इच्छास्वरूपा महेश्वर की शक्ति मानी जाती है। (२१)

(महेश्वर की यह हैमवती शक्ति) कल्याण करनेवाली, सर्वत्र व्याप्त, अन्तरहित, गुणातीत, नितान्त भेदशून्य, अद्वितीय, अनेक विभागों में व्याप्त, ज्ञानरूपा, उत्कृष्ट इच्छास्वरूपा, अनन्य एवं उन (शिव) के तेज के द्वारा पूर्ण निष्कल तत्त्व में स्थित तथा सूर्य की प्रभा के सदृश स्वच्छ तथा उन (शिव) के आश्रित एवं स्वभावतः प्रवृत्त होने वाली हैं। (२२, २३)

अनेक उपाधियों के संयोगवश अद्वितीय माहेश्वरी शक्ति पर एवं अवर अर्थात् उत्तम एवं अधम रूप से उन (शिव) के समीप क्रीड़ा करती रहती है। (२४)

वही यह सम्पूर्ण (कार्य) करती हैं। यह जगत् उसी का कार्य है। विद्वानों का यह मत है कि ईश्वर का कोई कार्य या करण अर्थात् साधन नहीं होता। (२५)

हे मुनिश्रेष्ठो ! आप सुनें। अधिष्ठानवश अर्थात् आश्रय भेद से उन देवी की स्वरूपभूता चार शक्तियाँ हैं। (२६)

उन शक्तियों को शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा एवं निवृत्ति नाम से अभिहित किया गया है। इसीलिये परमेश्वर देव को चतुर्व्यूह कहा जाता है। (२७)

(महेश्वर) देव इस परा (शक्ति) द्वारा स्वात्मानन्द का उपभोग करते हैं। चारो ही वेदों में चतुर्मूर्त्ति महेश्वर (का वर्णन हुआ) है। (२८)

उन परमात्मा रुद्र का सम्बन्ध होने से इस अनन्ता (शक्ति) का अतुलनीय महान् ऐश्वर्य अनादि काल से सिद्ध है। (२९)

वही यह सर्वेश्वरी देवी सभी भूतों को प्रवर्त्तित करती है। भगवान् काल को हरि, प्राण और महेश्वर कहा जाता है। (३०)

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत् ।
स कालोऽग्निर्हरो रुद्रो गीयते वेदवादिभिः ॥३१
कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद् वशे ॥३२
प्रधानं पुरुषस्तत्त्वं महानात्मा त्वहंकृतिः ।
कालेनान्यानि तत्त्वानि समाविष्टानि योगिना ॥३३
तस्य सर्वजगत्सूतिः शक्तिर्मायेति विश्रुता ।
तयेदं भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः ॥३४
सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्वाकारा सनातनी ।
वैश्वरूप्यं महेशस्य सर्वदा संप्रकाशयेत् ॥३५
अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्मिताः ।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम् ॥३६
सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिताः ।
माययैवाथ विप्रेन्द्राः सा चानादिरनन्तया ॥३७
सर्वशक्त्यात्मिका माया दुर्निवारा दुरत्यया ।
मायावी सर्वशक्तीशः कालः कालकारः प्रभुः ॥३८
करोति कालः सकलं संहरेत् काल एव हि ।
कालः स्थापयते विश्वं कालाधीनमिदं जगत् ॥३९
लब्ध्वा देवाधिदेवस्य सन्निधिं परमेष्ठिनः ।
अनन्तस्याखिलेशस्य शंभोः कालात्मनः प्रभोः ॥४०
प्रधानं पुरुषो माया माया चैवं प्रपद्यते ।
एका सर्वगताऽनन्ता केवला निष्कला शिवा ॥४१
एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिवः ।
शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः ॥४२
शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः ।
अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः ॥४३
शक्तयो गिरजा देवी शक्तिमन्तोऽथ शंकरः ।
विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः ॥४४
भोग्या विश्वेश्वरी देवी महेश्वरपतिव्रता ।
प्रोच्यते भगवान् भोक्ता कपर्दी नीललोहितः ॥४५

यह सम्पूर्ण जगत् उसी में ओतप्रोत है। वेदवादी लोग उन्हें ही कालाग्नि, हर, रुद्र कहकर गान करते हैं। (३१)

काल भूतों की उत्पत्ति एवं प्रजाओं का संहार करता है। सभी काल के वशीभूत हैं। काल किसी के वश में नहीं है। (३२)

(वह काल ही) प्रधान, पुरुष, तत्त्व, महान्, आत्मा एवं अहङ्कार है। योगी काल अन्य तत्त्वों को समाविष्ट किये हैं। (३३)

सम्पूर्ण जगत् को उसकी सन्तति एवं उसकी शक्ति को माया कहा गया है। मायावी पुरुषोत्तम ईश उसके द्वारा इस (जगत्) को भ्रमित करते हैं। (३४)

वही यह सभी आकारों वाली सनातनी मायास्वरूपा शक्ति सदा महेश के विश्वरूपत्व को प्रकाशित करती है। (३५)

उन देव की निर्मित ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, एवं प्राणशक्ति नामक तीन अन्य मुख्य शक्तियाँ हैं। (३६)

हे विप्रेन्द्रो ! अन्तरहित माया द्वारा ही सभी शक्तियों के शक्ति मानों का निर्माण हुआ है। किन्तु, वह (माया) अनादि है। (३७)

सर्वशक्तिस्वरूपा माया का निवारण करना एवं उसका अतिक्रमण करना दुष्कर है। सभी शक्तियों के स्वामी मायावी प्रभु काल (व्यावहारिक) काल के उत्पादक हैं। (३८)

काल सभी को उत्पन्न करता है तथा काल ही (सबका) संहार करता है। काल विश्व की व्यवस्था करता है। यह जगत् काल के अधीन है। (३९)

अनन्त, अखिलेश, कालात्मा, देवाधिदेव परमेष्ठी प्रभु शम्भु की सन्निधि प्राप्त कर वही माया (शक्ति) प्रधान एवं पुरुष तथा माया का रूप धारण करती है। (वह शक्ति) अद्वितीय, सर्वव्यापक, अन्तहीन, केवल, भेदशून्य एवं कल्याणकारिणी है। (४०, ४१)

शक्ति एक है और शिव भी एक हैं। शिव शक्तिमान् कहे जाते हैं। अन्य शक्तियाँ एवं शक्तिमान् (इसी) सर्वशक्ति से उत्पन्न हैं। (४२)

शक्ति एवं शक्तिमान् में भेद परमार्थदृष्टि से कहा जाता है। किन्तु, तत्त्वचिन्तक योगी लोग उनमें अभेद का साक्षात्कार करते हैं। (४३)

(सभी) शक्तियाँ गिरिजा देवी एवं (सभी) शक्तिमान् शङ्कर हैं। ब्रह्मवादी लोग पुराण में इनके भेद का वर्णन करते हैं। (४४)

महेश्वर की पतिव्रता, विश्वेश्वरी देवी को भोग्या एवं जटाधारी नीललोहित भगवान् को भोक्ता कहा गया है। (४५)

मन्ता विश्वेश्वरो देवः शंकरो मन्मथान्तकः ।
प्रोच्यते मतिरीशानी मन्तव्या च विचारतः ।।४६
इत्येतदखिलं विप्राः शक्तिशक्तिमदुद्भवम् ।
प्रोच्यते सर्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।।४७
एतत् प्रदर्शितं दिव्यं देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ।
सर्ववेदान्तवेदेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः ।।४८
एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।
योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम् ।।४९
आनन्दमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम् ।
योगिनस्तत् प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम् ।।५०
परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम् ।
अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत् परमं पदम् ।।५१
शुभं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्जितम् ।
आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत् परमं पदम् ।।५२
सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम् ।
संसारतापानखिलान् निहन्तीश्वरसंश्रया ।।५३
तस्माद् विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम् ।
आश्रयेत् सर्वभावानामात्मभूतां शिवात्मिकाम् ।।५४
लब्ध्वा च पुत्रीं शर्वाणीं तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
सभार्यः शरणं यातः पार्वतीं परमेश्वरीम् ।।५५
तां दृष्ट्वा जायमानां च स्वेच्छयैव वराननाम् ।
मेना हिमवतः पत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम् ।।५६

मेनोवाच ।

पश्य बालामिमां राजन् राजीवसदृशाननाम् ।
हिताय सर्वभूतानां जाता च तपसावयोः ।।५७
सोऽपि दृष्ट्वा ततः पुत्रीं तरुणादित्यसन्निभाम् ।
कपर्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम् ।।५८
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम् ।
निर्गुणां सगुणां साक्षात् सदसद्व्यक्तिवर्जिताम् ।।५९

कामदेव को नष्ट करने वाले विश्वेश्वर शङ्कर देव को मनन करने वाला तथा ईशानी को मति एवं विचार द्वारा मानने योग्य कहा गया है। (४६)

हे विप्रो ! तत्त्वदर्शी मुनि सभी वेदों में इस प्रकार सम्पूर्ण शक्ति एवं शक्तियों के उद्भव का वर्णन करते हैं। (४७)

ब्रह्मवादियों द्वारा समस्त वेदान्त एवं वेदों में निश्चित किये गये देवी के दिव्य उत्तम माहात्म्य का यह वर्णन किया गया है। (४८)

योगी लोग महादेवी के अद्वितीय, सर्वत्र व्यापक, सूक्ष्म, कूटस्थ, अचल एवं शाश्वत परम पद का साक्षात्कार करते हैं। (४९)

योगी लोग महादेवी के उस आनन्दमय, अविनाशी, ब्रह्मस्वरूप, अद्वितीय, भेदरहित, उत्कृष्ट परम पद का दर्शन करते रहते हैं। (५०)

देवी का वह परम पद अनन्त प्रकृति में लीन, परात्परतर, शाश्वत एवं अच्युत शिव तत्त्व है। (५१)

देवी का वह परम पद शुभ, निरञ्जन, शुद्ध, निर्गुण द्वैतरहित एवं आत्मज्ञान का विषयस्वरूप है। (५२)

वही परमानन्द चाहने वालों की धात्री एवं विधात्री हैं। वह ईश्वर के आश्रय से संसार के सभी तापों का नाश करती हैं। (५३)

अतएव विमुक्ति की इच्छा करने वाले को सभी पदार्थों की आत्मस्वरूपा, शिवात्मिका परमेश्वरी पार्वती का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। (५४)

अत्यन्त कठोर तप करने के उपरान्त शर्वाणी अर्थात् शङ्करप्रिया को पुत्री के रूप में प्राप्त कर (हिमालय अपनी) भार्या (मेना) के साथ परमेश्वरी पार्वती की शरण में गए। (५५)

सुन्दर मुखवाली को स्वेच्छा से ही उत्पन्न होते हुए देखकर हिमवान् की पत्नी मेना ने पर्वतेश्वर (हिमवान्) से कहा। (५६)

मेना ने कहा—हे राजन् ! कमल के समान मुखवाली इस बालिका को देखो। यह हमलोगों की तपस्या से सभी प्राणियों के हितार्थ उत्पन्न हुई है। (५७)

तदनन्तर तरुण सूर्य के तुल्य, कपर्द्दिनी-अर्थात् जटा जूटधारिणी, चतुर्मुखी, तीन नेत्रों वाली, अतिलालसा अर्थात् उत्कृष्ट इच्छास्वरूपा, आठ भुजाओं वाली, विशालाक्षी, चन्द्रकला का आभूषण धारण करने वाली, गुणातीत एवं गुणयुक्त, सद् एवं असत् के लक्षणों से शून्य साक्षात् देवी को देखने के उपरान्त उन्होंने (हिमवान् ने)

प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चातिविह्वलः ।
भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम् ॥६०

हिमवानुवाच ।

का त्वं देवि विशालाक्षि शशाङ्कावयवाङ्किते ।
न जाने त्वामहं वत्से यथावद् ब्रूहि पृच्छते ॥६१
गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी ।
व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा ॥६२

देव्युवाच ।

मां विद्धि परमां शक्तिं परमेश्वरसमाश्रयाम् ।
अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥६३
अहं वै सर्वभावानात्मा सर्वान्तरा शिवा ।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिः सर्वप्रवर्तिका ॥६४
अनन्ताऽनन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे रूपमैश्वरम् ॥६५
एतावदुक्त्वा विज्ञानं दत्त्वा हिमवते स्वयम् ।
स्वं रूपं दर्शयामास दिव्यं तत् पारमेश्वरम् ॥६६
कोटिसूर्यप्रतीकाशं तेजोबिम्बं निराकुलम् ।
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम् ॥६७
दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं जटामण्डलमण्डितम् ।
त्रिशूलवरहस्तं च घोररूपं भयानकम् ॥६८
प्रशान्तं सौम्यवदनमनन्ताश्चर्यसंयुतम् ।
चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥६९
किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् ।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥७०
शङ्खचक्रधरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम् ।
अण्डस्थं चाण्डबाह्यस्थं बाह्यमाभ्यन्तरं परम् ॥७१
सर्वशक्तिमयं शुभ्रं सर्वाकारं सनातनम् ।
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्बुजम् ॥७२
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वमावृत्य तिष्ठन्तं ददर्श परमेश्वरम् ॥७३

भूमि पर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया एवं उन (देवी) के तेज से अतिविह्वल एवं भयभीत होने के कारण हाथ जोड़कर कहने लगे । (५८-६०)

हिमवान् ने कहा—हे विशालनेत्रों वाली एवं चन्द्रकला से सुशोभित देवि ! तुम कौन हो ! हे वत्से ! मैं तुम्हें नहीं जानता । (मुझ) पूछने वाले को यथार्थ रूप से बतलाओ । (६१)

तदनन्तर गिरीन्द्र के वचन को सुनकर योगियों को अभय प्रदान करनेवाली उस देवी परमेश्वरी ने महाशैल से कहा । (६२)

देवी ने कहा—मोक्षार्थी लोग जिस अद्वितीय एवं अविनाशी (शक्ति) का साक्षात्कार करते हैं परमेश्वर में समाश्रित वही परम शक्ति मुझे जानो । (६३)

मैं सभी पदार्थों की आत्मा, सभी के हृदय में स्थित, कल्याणस्वरूपा, शाश्वत ऐश्वर्य एवं विज्ञान स्वरूपा तथा सभी को प्रवृत्त करने वाली हूँ । (६४)

(मैं) अन्तरहित, अनन्त महिमावाली तथा संसार रूपी सागर से पार करने वाली हूँ । (मैं) तुम्हें दिव्य नेत्र प्रदान करती हूँ । मेरे ऐश्वर्यमय रूप को देखो । (६५)

इतना कहने के उपरान्त हिमवान् को स्वयं विशिष्ट ज्ञान प्रदान कर (देवी ने उन्हें अपना) वह परमैश्वर्यमय रूप दिखलाया । (६६)

(हिमवान् ने) करोड़ों सूर्य के सदृश (प्रकाशमान) तेज का बिम्ब, स्थिर, सहस्रों ज्वालासमूह युक्त, सैकड़ों कालाग्नि सदृश, भयङ्कर दाढ़ों वाला, दुर्द्धर्ष, जटामण्डल से सुशोभित, त्रिशूल एवं वर की मुद्रा युक्त हाथ वाला, भयोत्पादक, घोररूप एवं प्रशान्त, सुदर्शनीय मुखवाला, अनन्त आश्चर्यों से युक्त, चन्द्रकला से सुशोभित, करोड़ों चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त, किरीट एवं हाथों में गदा धारण करनेवाला, नूपुरों से अलङ्कृत, दिव्य माला एवं वस्त्र धारण करने वाला, दिव्य सुगन्धियों से अनुलिप्त, शङ्खचक्रधर, कमनीय, त्रिनेत्रयुक्त, चर्माम्बरधारी, अण्ड अर्थात् ब्रह्माण्ड के भीतर एवं बाहर स्थित, श्रेष्ठ बाह्य एवं अभ्यन्तर भाग वाला, सर्वशक्तिमय, शुभ्र, सभी आकारों से युक्त, सनातन, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु एवं श्रेष्ठ योगियों द्वारा पूजित हो रहे चरणकमलों वाला, सभी ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर एवं मुख वाला, एवं सभी को आवृत कर स्थित परमेश्वर (स्वरूप देवी के रूप) को देखा । (६७-७३)

दृष्ट्वा तदीदृशं रूपं देव्या माहेश्वरं परम् ।
भयेन च समाविष्टः स राजा हृष्टमानसः ।।७४
आत्मन्याधाय चात्मानमोङ्कारं समनुस्मरन् ।
नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरीम् ।।७५

हिमवानुवाच ।

शिवोमा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलाऽमला ।
शान्ता माहेश्वरी नित्या शाश्वती परमाक्षरा ।।७६
अचिन्त्या केवलाऽनन्त्या शिवात्मा परमात्मिका ।
अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा सर्वगाऽचला ।।७७
एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला ।
महामाहेश्वरी सत्या महादेवी निरञ्जना ।।७८
काष्ठा सर्वान्तरस्था च चिच्छक्तिरतिलालसा ।
नन्दा सर्वात्मिका विद्या ज्योतीरूपाऽमृताक्षरा ।।७९
शान्तिः प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा ।
व्योममूर्तिर्व्योमलया व्योमाधाराऽच्युताऽमरा ।।८०
अनादिनिधनाऽमोघा कारणात्मा कलाऽकला ।
क्रतुः प्रथमजा नाभिरमृतस्यात्मसंश्रया ।।८१

देवी के महेश्वरस्वरूप इस प्रकार के रूप को देखकर वे (पर्वतों के) राजा भय से आविष्ट एवं प्रसन्न मन हो गए। (७४)

अपनी आत्मा में आत्मा को एकाग्र कर ओङ्कार का स्मरण करते हुए (वे) एक सहस्र आठ नामों के स्तोत्र से परमेश्वरी की स्तुति करने लगे। (७५)

हिमवान् ने कहा—(हे देवी ! आप) शिवा, उमा, परमा शक्ति, अनन्ता, निष्कला, अमला, शान्ता, माहेश्वरी, नित्या, शाश्वती, परमा अक्षरा, अचिन्त्या, केवला, अनन्त्या, शिवात्मा, परमात्मिका, अनादि, अव्यया, शुद्धा, देवात्मा, सर्वगा, अचला, एका, अनेकविभागस्था, मायातीता, सुनिर्मला, महामाहेश्वरी, सत्या, महादेवी, निरञ्जना, काष्ठा, सर्वान्तरस्था, चिच्छक्ति, अतिलालसा, नन्दा, सर्वात्मिका, विद्या, ज्योतीरूपा, अमृताक्षरा, शान्ति, सभी की प्रतिष्ठा, निवृत्ति (स्वरूपा), अमृतप्रदा, व्योममूर्त्ति, व्योमलया, व्योमाधारा, अच्युता, अमरा,

प्राणेश्वरप्रिया माता महामहिषघातिनी ।
प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी ।।८२
सर्वशक्तिकलाकारा ज्योत्स्ना द्यौर्महिमास्पदा ।
सर्वकार्यनियन्त्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी ।।८३
अनादिरव्यक्तगुहा महानन्दा सनातनी ।
आकाशयोनिर्योगस्था महायोगेश्वरेश्वरी ।।८४
महामाया सुदुष्पूरा मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
संसारयोनिः सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा ।।८५
संसारपारा दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा ।
प्राणशक्तिः प्राणविद्या योगिनी परमा कला ।।८६
महाविभूतिर्दुर्द्धर्षा मूलप्रकृतिसंभवा ।
अनाद्यनन्तविभवा परार्था पुरुषारणिः ।।८७
सर्गस्थित्यन्तकरणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया ।
शब्दयोनिः शब्दमयी नादाख्या नादविग्रहा ।।८८
प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका ।
पुराणी चिन्मयी पुंसामादिः पुरुषरूपिणी ।।८९
भूतान्तरात्मा कूटस्था महापुरुषसंज्ञिता ।
जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता ।।९०

अनादिनिधना, अमोघा, कारणात्मा, कला, अकला, क्रतु, प्रथमजा, अमृतनाभि, आत्मसंश्रया, प्राणेश्वरप्रिया, माता, महामहिषघातिनी, प्राणेश्वरी, प्राणरूपा, प्रधानपुरुषेश्वरी, सर्वशक्तिकलाकारा, ज्योत्स्ना, द्यौः, महिमास्पदा, सर्वकार्यनियन्त्री, सर्वभूतेश्वरेश्वरी, अनादि, अव्यक्तगुहा, महानन्दा, सनातनी, आकाशयोनि, योगस्था, महायोगेश्वरेश्वरी, महामाया, सुदुष्पूरा, मूलप्रकृति, ईश्वरी, संसारयोनि, सकला, सर्वशक्तिसमुद्भवा, संसारपारा, दुर्वारा, दुर्निरीक्ष्या, दुरासदा, प्राणशक्ति, प्राणविद्या, योगिनी, परमा, कला। (७६-८६)

महाविभूति, दुर्द्धर्पा, मूलप्रकृति-सम्भवा, अनाद्यनन्त-विभवा, परार्था, पुरुषारणि, सर्गस्थित्यन्तकरणी, सुदुर्वाच्या, दुरत्यया, शब्दयोनि, शब्दमयी, नादाख्या, नादविग्रहा, प्रधानपुरुषातीता, प्रधानपुरुषात्मिका, पुराणी, चिन्मयी, पुरुषों की आदिस्वरूपा, पुरुषरूपिणी, भूतान्तरात्मा, कूटस्था, महापुरुषसंज्ञिता, जन्ममृत्युजरातीता, सर्वशक्तिसमन्विता, (८७-९०)

व्यापिनी चानवच्छिन्ना प्रधानानुप्रवेशिनी ।
क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता ॥९१
अनादिमायासंभिन्ना त्रितत्त्वा प्रकृतिर्गुहा ।
महामायासमुत्पन्ना तामसी पौरुषी ध्रुवा ॥९२
व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्ला प्रसूतिका ।
अकार्या कार्यजननी नित्यं प्रसवधर्मिणी ॥९३
सर्गप्रलयनिर्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी ।
ब्रह्मगर्भा चतुर्विंशा पद्मनाभाऽच्युतात्मिका ॥९४
वैद्युती शाश्वती योनिर्जगन्मातेश्वरप्रिया ।
सर्वाधारा महारूपा सर्वैश्वर्यसमन्विता ॥९५
विश्वरूपा महागर्भा विश्वेशेच्छानुवर्तिनी ।
महीयसी ब्रह्मयोनिर्महालक्ष्मीसमुद्भवा ॥९६
महाविमानमध्यस्था महानिद्रात्महेतुका ।
सर्वसाधारणी सूक्ष्मा ह्यविद्या पारमार्थिका ॥९७
अनन्तरूपाऽनन्तस्था देवी पुरुषमोहिनी ।
अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता ॥९८
ब्रह्मजन्मा हरेर्मूर्तिर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका ।
ब्रह्मेशविष्णुजननी ब्रह्माख्या ब्रह्मसंश्रया ॥९९
व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ज्ञानरूपिणी ।
वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्ममूर्तिर्हृदिस्थिता ।
अपांयोनिः स्वयंभूतिर्मानसी तत्त्वसंभवा ॥१००
ईश्वराणी च शर्वाणी शंकरार्द्धशरीरिणी ।
भवानी चैव रुद्राणी महालक्ष्मीरथाम्बिका ॥१०१
महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा ॥१०२
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शंकरेच्छानुवर्तिनी ।
ईश्वरार्द्धासनगता महेश्वरपतिव्रता ॥१०३
सकृद्विभाविता सर्वा समुद्रपरिशोषिणी ।
पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी ॥१०४
गुणाढ्या योगजा योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकासिनी ।
सावित्री कमला लक्ष्मीः श्रीरनन्तोरसि स्थिता ॥१०५
सरोजनिलया मुद्रा योगनिद्रा सुरार्दिनी ।
सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठा सुमङ्गला ॥१०६
वाग्देवी वरदा वाच्या कीर्तिः सर्वार्थसाधिका ।
योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुशोभना ॥१०७

व्यापिनी, अनवच्छिन्ना, प्रधानानुप्रवेशिनी, क्षेत्रज्ञशक्ति, अव्यक्तलक्षणा, मलवर्जिता, अनादिमायासंभिन्ना, त्रितत्त्वा, प्रकृति, गुहा, महामायासमुत्पन्ना, तामसी, पौरुषी, ध्रुवा, व्यक्ताव्यक्तात्मिका, कृष्णा, रक्ता, शुक्ला, प्रसूतिका, अकार्या, कार्यजननी, नित्यप्रसवधर्मिणी, (९१-९३)

सर्गप्रलयनिर्मुक्ता, सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी, ब्रह्मगर्भा, चतुर्विंशा, पद्मनाभा, अच्युतात्मिका, वैद्युती, शाश्वती, योनि, जगन्माता, ईश्वरप्रिया, सर्वाधारा, महारूपा, सर्वैश्वर्यसमन्विता, विश्वरूपा, महागर्भा, विश्वेशेच्छानुवर्त्तिनी, महीयसी, ब्रह्मयोनि, महालक्ष्मीसमुद्भवा, महाविमानमध्यस्था, महानिद्रा, आत्महेतुका, सर्वसाधारणी, सूक्ष्मा, अविद्या, पारमार्थिका, (९४-९७)

अनन्तरूपा, अनन्तस्था, देवी, पुरुषमोहिनी, अनेकाकारसंस्थाना, कालत्रयविवर्जिता, ब्रह्मजन्मा, हरि की मूर्त्ति, ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका, ब्रह्मेशविष्णुजननी, ब्रह्माख्या, ब्रह्मसंश्रया, व्यक्ता, प्रथमजा, ब्राह्मी, महती, ज्ञानरूपिणी, वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा, ब्रह्ममूर्त्ति, हृदिस्थिता, अप अर्थात् जल की योनि, स्वयम्भूति, मानसी, तत्त्वसम्भवा, ईश्वराणी, शर्वाणी, शङ्करार्द्धशरीरिणी, भवानी, रुद्राणी, महालक्ष्मी, अम्बिका, महेश्वरसमुत्पन्ना, भुक्तिमुक्तिफलप्रदा, सर्वेश्वरी, सर्ववन्द्या, नित्यमुदितमानसा, (९८-१०२)

ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता, शङ्करेच्छानुवर्त्तिनी, ईश्वरार्द्धासनगता, महेश्वरपतिव्रता, सकृद्विभाविता, सर्वा, समुद्रपरिशोषिणी, पार्वती, हिमवत्पुत्री, परमानन्ददायिनी, गुणाढ्या, योगजा, योग्या, ज्ञानमूर्त्ति, विकासिनी, सावित्री, कमला, लक्ष्मी, श्री अनन्तोरसि स्थिता, सरोजनिलया, मुद्रा, योगनिद्रा, सुरार्दिनी, सरस्वती, सर्वविद्या, जगज्जेष्ठा, सुमङ्गला, (१०३-१०६)

वाग्देवी, वरदा, वाच्या, कीर्त्ति, सर्वार्थसाधिका, योगीश्वरी, ब्रह्मविद्या, महाविद्या, सुशोभना, गुह्यविद्या,

गुह्यविद्यात्मविद्या च धर्मविद्यात्मभाविता ।
स्वाहा विश्वंभरा सिद्धिः स्वधा मेधा धृतिः श्रुतिः ।।१०८
नीतिः सुनीतिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी ।
अजा विभावरी सौम्या भोगिनी भोगदायिनी ।।१०९
शोभा वंशकरी लोला मालिनी परमेष्ठिनी ।
त्रैलोक्यसुन्दरी रम्या सुन्दरी कामचारिणी ।।११०
महानुभावा सत्त्वस्था महामहिषमर्दनी ।
पद्ममाला पापहरा विचित्रा मुकुटानना ।।१११
कान्ता चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ।
हंसाख्या व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्द्धिनी ।।११२
निर्यन्त्रा यन्त्रवाहस्था नन्दिनी भद्रकालिका ।
आदित्यवर्णा कौमारी मयूरवरवाहिनी ।।११३
वृषासनगता गौरो महाकाली सुरार्चिता ।
अदितिर्नियता रौद्री पद्मगर्भा विवाहना ।।११४
विरूपाक्षी लेलिहाना महापुरनिवासिनी ।
महाफलाऽनवद्याङ्गी कामपूरा विभावरी ।।११५
विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्तिप्रभञ्जनी ।
कौशिकी कर्षणी रात्रिस्त्रिदशार्तिविनाशिनी ।।११६

बहुरूपा सुरूपा च विरूपा रूपवर्जिता ।
भक्तार्तिशमनी भव्या भवभावविनाशनी ।।११७
निर्गुणा नित्यविभवा निःसारा निरपत्रपा ।
यशस्विनो सामगीतिर्भवाङ्गनिलयालया ।।११८
दीक्षा विद्याधरी दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी ।
सर्वातिशायिनी विद्या सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।।११९
सर्वेश्वरप्रिया तार्क्ष्या समुद्रान्तरवासिनी ।
अकलङ्का निराधारा नित्यसिद्धा निरामया ।।१२०
कामधेनुर्बृहद्गर्भा धीमती मोहनाशिनी ।
निःसङ्कल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रदा ।।१२१
ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोन्मनी ।
महाभगवती दुर्गा वासुदेवसमुद्भवा ।।१२२
महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा ।
ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषया गतिः ।।१२३
दक्षिणा दहना दाह्या सर्वभूतनमस्कृता ।
योगमाया विभावज्ञा महामाया महीयसी ।।१२४
संध्या सर्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मवृक्षाश्रयानतिः ।
बीजाङ्कुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः ।।१२५

आत्मविद्या, धर्मविद्या, आत्मभाविता, स्वाहा, विश्वम्भरा, सिद्धि, स्वधा, मेधा, धृति, श्रुति, नीति, सुनीति, सुकृति, माधवी, नरवाहिनी, अजा, विभावरी, सौम्या, भोगिनी, भोगदायिनी, शोभा, वंशकरी, लोला, मालिनी, परमेष्ठिनी, त्रैलोक्यसुन्दरी, रम्या, सुन्दरी, कामचारिणी, (१०७-११०)

महानुभावा, सत्त्वस्था, महामहिपमर्द्दिनी, पद्ममाला, पापहरा, विचित्रा, मुकुटानना, कान्ता, चित्राम्वरधरा, दिव्याभरणभूपिता, हंसाख्या, व्योमनिलया, जगत्सृष्टि-विवर्द्धिनी, निर्यन्त्रा, यन्त्रवाहस्था, नन्दिनी, भद्रकालिका, आदित्यवर्णा, कौमारी मयूरवरवाहिनी, वृषासनगता, गौरी, महाकाली, सुरार्च्चिता, अदिति, नियता, रौद्री, पद्मगर्भा, विवाहना, (१११-११४)

विरूपाक्षी, लेलिहाना, महापुरनिवासिनी, महाफला, अनवद्याङ्गी, कामपूरा, विभावरी, विचित्ररत्नमुकुटा, प्रणतार्त्तिप्रभञ्जिनी, कौशिकी, कर्षणी, रात्रि, त्रिदशा-र्त्तिविनाशिनी, वहुरूपा, सुरूपा, विरूपा, रूपवर्जिता, भक्तार्त्तिशमनी, भव्या, भवभाव-विनाशिनी, निर्गुणा, नित्यविभवा, निःसारा, निरपत्रपा, यशस्विनी, सामगीति, भवाङ्गनिलया, आलया, (११५-११८)

दीक्षा, विद्याधरी, दीप्ता, महेन्द्रविनिपातिनी, सर्वाति-शायिनी, विद्या, सर्वसिद्धिप्रदायिनी, सर्वेश्वरप्रिया, ताक्ष्यां, समुद्रान्तरवासिनी, अकलङ्का, निराधारा, नित्यसिद्धा, निरामया, कामधेनु, वृहद्गर्भा, धीमती, मोहनाशिनी, निःसङ्कल्पा, निरातङ्का, विनया, विनयप्रदा, ज्वालामाला-सहस्राढ्या, देवदेवी, मनोन्मनी, महाभगवती, दुर्गा, वासु-देवसमुद्भवा, (११९-१२२)

महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी, भक्तिगम्या, परावरा, ज्ञानज्ञेया जरातीता, वेदान्तविषया, गति, दक्षिणा, दहना, दाह्या, सर्वभूतनमस्कृता, योगमाया, विभावज्ञा, महामाया, महीयसी, सन्ध्या, सर्वसमुद्भूति, ब्रह्मवृक्षाश्रयानति, वीजाङ्कुरस-मुद्भूति, महाशक्ति, महामति, ख्याति, प्रज्ञा, चिति,

ख्यातिः प्रज्ञा चितिः संवित् महाभोगीन्द्रशायिनी ।
विकृतिः शांकरी शास्त्री गणगन्धर्वसेविता ।।१२६
वैश्वानरी महाशाला देवसेना गुहप्रिया ।
महारात्रिः शिवानन्दा शची दुःस्वप्ननाशिनी ।।१२७
इज्या पूज्या जगद्धात्री दुर्विज्ञेया सुरूपिणी ।
गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता ।।१२८
हव्यवाहान्तरागादिः हव्यवाहसमुद्भवा ।
जगद्योनिर्जगन्माता जन्ममृत्युजरातिगा ।।१२९
बुद्धिमाता बुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी ।
तरस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिवि संस्थिता ।।१३०
सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदि स्थिता ।
संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया ।।१३१
ब्रह्माणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारणिः ।
हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्त्तिका ।।१३२
सुमालिनी सुरूपा च भाविनी तारिणी प्रभा ।
उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी ।।१३३
सुसौम्या चन्द्रवदना ताण्डवासक्तमानसा ।
सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी ।।१३४
जगत्प्रिया जगन्मूर्तिस्त्रिमूर्तिरमृताश्रया ।
निराश्रया निराहारा निरङ्कुरवनोद्भवा ।।१३५
चन्द्रहस्ता विचित्राङ्गी स्रग्विणी पद्मधारिणी ।
परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा ।।१३६
विद्येश्वरप्रिया विद्या विद्युज्जिह्वा जितश्रमा ।
विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा ।।१३७
सहस्ररश्मिः सत्त्वस्था महेश्वरपदाश्रया ।
क्षालिनी सन्मयी व्याप्ता तैजसी पद्मबोधिका ।।१३८
महामायाश्रया मान्या महादेवमनोरमा ।
व्योमलक्ष्मीः सिंहरथा चेकितानाऽमितप्रभा ।।१३९
वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी ।
अनाहता कुण्डलिनी नलिनी पद्मवासिनी ।।१४०
सदानन्दा सदाकीर्तिः सर्वभूताश्रयस्थिता ।
वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलारणिः १४१
ब्रह्मश्रीर्ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया ।
व्योमशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः परागतिः ।।१४२
क्षोभिका बन्धिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता ।
अभिन्नाभिन्नसंस्थाना वंशिनी वंशहारिणी ।।१४३
गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी ।
भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालकारिणी ।।१४४

संवित् महाभोगीन्द्रशायिनी, विकृति, शाङ्करी, शास्त्री, गणगन्धर्वसेविता, वैश्वानरी, महाशाला, देवसेना, गुहप्रिया, महारात्रि, शिवानन्दा, शची, दुःस्वप्नाशिनी, (१२३-१२७)

इज्या, पूज्या, जगद्धात्री, दुर्विज्ञेया, सुरूपिणी, गुहाम्बिका, गुणोत्पत्ति, महापीठा, मरुत्सुता, हव्यवाहान्तरागादि, हव्यवाहसमुद्भवा, जगद्योनि, जगन्माता, जन्ममृत्युजरातिगा, बुद्धिमाता, बुद्धिमती, पुरुषान्तरवासिनी, तरस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, दिविसंस्थिता, सर्वेन्द्रियमनोमाता, सर्वभूतहृदि स्थिता, संसारतारिणी, विद्या, ब्रह्मवादिमनोलया, ब्रह्माणी, बृहती, ब्राह्मी, ब्रह्मभूता, भवारणि, हिरण्मयी, महारात्रि, संसारपरिवर्त्तिका, (१२८-१३२)

सुमालिनी, सुरूपा, भाविनी, तारिणी, प्रभा, उन्मीलिनी, सर्वसहा, सर्वप्रत्ययसाक्षिणी, सुसौम्या, चन्द्रवदना, ताण्डवासक्तमानसा, सत्त्वशुद्धिकरी, शुद्धि, मलत्रयविनाशिनी, जगत्प्रिया, जगन्मूर्त्ति, त्रिमूर्त्ति, अमृताश्रया, निराश्रया, निराहारा, निरङ्कुरवनोद्भवा चन्द्रहस्ता, विचित्राङ्गी, स्रग्विणी, पद्मधारिणी, परावरविधानज्ञा, महापुरुषपूर्वजा, विद्येश्वरप्रिया, विद्या, विद्युज्जिह्वा, जितश्रमा, विद्यामयी, सहस्राक्षी, सहस्रवदनात्मजा, सहस्ररश्मि, सत्त्वस्था, महेश्वरपदाश्रया, क्षालिनी सन्मयी, व्याप्ता, तैजसी, पद्मबोधिका । (१३३-१३८)

महामायाश्रया, मान्या, महादेवमनोरमा, व्योमलक्ष्मी, सिंहरथा, चेकिताना, अमितप्रभा, वीरेश्वरी, विमानस्था, विशोका, शोकनाशिनी, अनाहता, कुण्डलिनी, नलिनी, पद्मवासिनी, सदानन्दा, सदाकीर्त्ति, सर्वभूताश्रयस्थिता, वाग्देवता, ब्रह्मकला, कलातीता, कलारणि, ब्रह्मश्री, ब्रह्महृदया, ब्रह्मविष्णुशिवप्रिया, व्योमशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, परागति, क्षोभिका, बन्धिका, भेद्या, भेदाभेदविवर्जिता, अभिन्ना, भिन्नसंस्थाना, वंशिनी, वंशहारिणी, गुह्यशक्ति, गुणातीता, सर्वदा, सर्वतोमुखी, भगिनी, भगवत्पत्नी, सकला, कालकारिणी, सर्ववित्,

सर्ववित् सर्वतोभद्रा गुह्यातीता गुहारणिः ।
प्रक्रिया योगमाता च गङ्गा विश्वेश्वरेश्वरी ।।१४५
कपिला कापिला कान्ता कनकाभा कलान्तरा ।
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरंदरपुरस्सरा ।।१४६
पोषणी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा ।
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिः परमार्थार्थविग्रहा ।।१४७
धर्मोदया भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा ।
मनोहरा मनोरक्षा तापसी वेदरूपिणी ।।१४८
वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्याप्रकाशिनी ।
योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमयी ।।१४९
विश्वावस्था वियन्मूर्त्तिर्विद्युन्माला विहायसी ।
किंनरी सुरभी वन्द्या नन्दिनी नन्दिवल्लभा ।।१५०
भारती परमानन्दा परापरविभेदिका ।
सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी ।।१५१
अचिन्त्याऽचिन्त्यविभवा हृल्लेखा कनकप्रभा
कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गन्धदायिनी ।।१५२
त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणिः शिवोदया ।
सुदुर्लभा धनाध्यक्षा धन्या पिङ्गललोचना ।।१५३
शान्तिः प्रभावती दीप्तिः पङ्कजायतलोचना ।
आद्या हृत्कमलोद्भूता गवां माता रणप्रिया ।।१५४
सत्क्रिया गिरिजा शुद्धा नित्यपुष्टा निरन्तरा ।
दुर्गा कात्यायनी चण्डी चर्चिका शान्तविग्रहा ।।१५५
हिरण्यवर्णा रजनी जगद्यन्त्रप्रवर्तिका ।
मन्दराद्रिनिवासा च शारदा स्वर्णमालिनी ।।१५६
रत्नमाला रत्नगर्भा पृथ्वी विश्वप्रमाथिनी ।
पद्मानना पद्मनिभा नित्यतुष्टाऽमृतोद्भवा ।।१५७
धुन्वती दुःप्रकम्प्या च सूर्यमाता दृषद्वती ।
महेन्द्रभगिनी मान्या वरेण्या वरदर्पिता ।।१५८
कल्याणी कमला रामा पञ्चभूता वरप्रदा ।
वाच्या वरेश्वरी वन्द्या दुर्जया दुरतिक्रमा ।।१५९
कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रप्रिया हिता ।
भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी ।।१६०
कराला पिङ्गलाकारा नामभेदाऽमहामदा ।
यशस्विनी यशोदा च षडध्वपरिवर्त्तिका ।।१६१
शङ्खिनी पद्मिनी सांख्या सांख्ययोगप्रवर्तिका ।
चैत्रा संवत्सरारूढा जगत्संपूरणीन्द्रजा ।।१६२
शुम्भारिः खेचरी स्वस्था कम्बुग्रीवा कलिप्रिया ।
खगध्वजा खगारूढा परार्ध्या परमालिनी ।।१६३

सर्वतोभद्रा, गुह्यातीता, गुहारणि, प्रक्रिया, योगमाता, गङ्गा, विश्वेश्वरेश्वरी, कपिला, कापिला, कान्ता, कनकाभा, कलान्तरा, पुण्या, पुष्करिणी, भोक्त्री, पुरन्दरपुरस्सरा, पोषणी, परमैश्वर्यभूतिदा, भूतिभूषणा, पञ्चब्रह्मसमुत्पत्ति, परमार्थार्थविग्रहा, धर्मोदया, भानुमती, योगिज्ञेया, मनोजवा, मनोहरा, मनोरक्षा, तापसी, वेदरूपिणी । (१३९-१४८)

वेदशक्ति, वेदमाता, वेदविद्याप्रकाशिनी, योगेश्वरेश्वरी, माता, महाशक्ति, मनोमयी, विश्वावस्था, वियन्मूर्त्ति, विद्युन्माला, विहायसी, किन्नरी, सुरभी, वन्द्या, नन्दिनी, नन्दिवल्लभा, भारती, परमानन्दा, परापरविभेदिका, सर्वप्रहरणोपेता, काम्या, कामेश्वरेश्वरी, अचिन्त्या, अचिन्त्यविभवा, हृल्लेखा, कनकप्रभा, कूष्माण्डी, धनरत्नाढ्या, सुगन्धा, गन्धदायिनी, त्रिविक्रमपदोद्भूता, धनुष्पाणि, शिवोदया, सुदुर्लभा, धनाध्यक्षा, धन्या, पिङ्गललोचना, शान्ति, प्रभावती, दीप्ति, पङ्कजायतलोचना, आद्या, हृत्कलोद्भूता, गौवों की माता, रणप्रिया, सत्क्रिया, गिरिजा, शुद्धा, नित्यपुष्टा, निरन्तरा, दुर्गा, कात्यायनी, चण्डी, चर्चिका, शान्तविग्रहा, (१४९-१५५)

हिरण्यवर्णा, रजनी, जगद्यन्त्रप्रवर्त्तिका, मन्दराद्रिनिवासा, शारदा, स्वर्णमालिनी, रत्नमाला, रत्नगर्भा, पृथ्वी, विश्वप्रमाथिनी, पद्मानना, पद्मनिभा, नित्यतुष्टा, अमृतोद्भवा, धुन्वती, दुष्प्रकम्प्या, सूर्यमाता, दृषद्वती, महेन्द्रभगिनी, मान्या, वरेण्या, वरदर्पिता, (१५६-१५८)

कल्याणी, कमला, रामा, पञ्चभूता, वरप्रदा, वाच्या, वरेश्वरी, वन्द्या, दुर्जया, दुरतिक्रमा, कालरात्रि, महावेगा, वीरभद्रप्रिया, हिता, भद्रकाली, जगन्माता, भक्तों की भद्रदायिनी, कराला, पिङ्गलाकारा, नामभेदा, अमहामदा, यशस्विनी, यशोदा, षडध्वपरिवर्त्तिका, शङ्खिनी, पद्मिनी, साङ्ख्या, साङ्ख्ययोग-

ऐश्वर्यवर्त्मनिलया विरक्ता गरुडासना ।
जयन्ती हृद्गुहा रम्या गह्वरेष्ठा गणाग्रणीः ॥१६४
संकल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी ।
कलिकल्मषहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा ॥१६५
निष्ठा दृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः क्रियावती ।
विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिः शिवाऽमृता ॥१६६
लोहिता सर्पमाला च भीषणी वनमालिनी ।
अनन्तशयनाऽनन्या नरनारायणोद्भवा ॥१६७
नृसिंही दैत्यमथनी शङ्खचक्रगदाधरा ।
संकर्षणसमुत्पत्तिरम्बिकापादसंश्रया ॥१६८
महाज्वाला महामूर्त्तिः सुमूर्त्तिः सर्वकामधुक् ।
सुप्रभा सुस्तना गौरी धर्मकामार्थमोक्षदा ॥१६९
भ्रूमध्यनिलया पूर्वा पुराणपुरुषारणिः ।
महाविभूतिदा मध्या सरोजनयना समा ॥१७०
अष्टादशभुजाऽनाद्या नीलोत्पलदलप्रभा ।
सर्वशक्त्यासनारूढा धर्माधर्मार्थवर्जिता ॥१७१
वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका निरिन्द्रिया ।
विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी ॥१७२
स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी ।
अशेषदेवतामूर्त्तिर्देवता वरदेवता ।
गणाम्बिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपातिनी ॥१७३
अवर्णा वर्णरहिता निवर्णा बीजसंभवा ।
अनन्तवर्णाऽनन्यस्था शंकरी शान्तमानसा ॥१७४
अगोत्रा गोमती गोप्त्री गुह्यरूपा गुणोत्तरा ।
गौर्गीर्गव्यप्रिया गौणी गणेश्वरनमस्कृता ॥१७५
सत्यमात्रा सत्यसंधा त्रिसंध्या संधिवर्जिता ।
सर्ववादाश्रया संख्या सांख्ययोगसमुद्भवा ॥१७६
असंख्येयाऽप्रमेयाख्या शून्या शुद्धकुलोद्भवा ।
बिन्दुनादसमुत्पत्तिः शंभुवामा शशिप्रभा ॥१७७
विसङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी ।
महाश्रीः श्रीसमुत्पत्तिस्तमःपारे प्रतिष्ठिता ॥१७८
त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंश्रया ।
शान्त्यतीता मलातीता निर्विकारा निराश्रया ॥१७९
शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी ।
दैत्यदानवनिर्मात्री काश्यपी कालकल्पिका ॥१८०

प्रवर्त्तिका, चैत्रा, सम्वत्सरारूढ़ा, जगत्संपूरणीन्द्रजा, शुम्भारि, खेचरी, स्वस्था, कम्बुग्रीवा, कलिप्रिया, खगध्वजा, खगारूढा, पराध्यर्या, परमालिनी । (१५६-१६३)

ऐश्वर्यवर्त्मनिलया, विरक्ता, गरुडासना, जयन्ती, हृद्गुहा, रम्या, गह्वरेष्ठा, गणाग्रणी, सङ्कल्पसिद्धा, साम्यस्था, सर्वविज्ञानदायिनी, कलिकल्मषहन्त्री, गुह्योपनिषत्, उत्तमा, निष्ठा, दृष्टि, स्मृति, व्याप्ति, पुष्टि, तुष्टि, क्रियावती, विश्वामरेश्वरेशाना, भुक्ति, मुक्ति, शिवा, अमृता, लोहिता, सर्पमाला, भीषणी, वनमालिनी, अनन्तशयना, अनन्या, नरनारायणोद्भवा, (१६४-१६७)

नृसिंही, दैत्यमथनी, शङ्खचक्रगदाधरा, सङ्कर्षणसमुत्पत्ति, अम्बिकापादसंश्रया, महाज्वाला, महाभूति, सुमूर्त्ति, सर्वकामधुक्, सुप्रभा, सुस्तना, गौरी, धर्मकामार्थमोक्षदा, भ्रूमध्यनिलया, पूर्वा, पुराणपुरुषारणि, महाविभूतिदा, मध्या, सरोजनयना, समा, अष्टादशभुजा, अनाद्या, नीलोत्पलदलप्रभा, सर्वशक्त्यासनारूढा, धर्माधर्मार्थवर्ज्जिता, वैराग्यज्ञाननिरता, निरालोका, निरिन्द्रिया, विचित्रगहनाधारा, शाश्वतस्थानवासिनी, स्थानेश्वरी, निरानन्दा, त्रिशूलवरधारिणी, अशेषदेवतामूर्त्ति, देवता, वरदेवता, गणाम्बिका, गिरिपुत्री, निशुम्भविनिपातिनी । (१६८-१७३)

अवर्णा, वर्णरहिता, निवर्णा, बीजसम्भवा, अनन्तवर्णा, अनन्यस्था, शङ्करी, शान्तमानसा, अगोत्रा, गोमती, गोप्त्री, गुह्यरूपा, गुणोत्तरा, गौ, गीः, गव्यप्रिया, गौणी, गणेश्वरनमस्कृता, सत्यमात्रा, सत्यसन्धा, त्रिसन्ध्या, सन्धिवर्जिता, सर्ववादाश्रया, सङ्ख्या, साङ्ख्ययोगसमुद्भवा, असंख्येया, अप्रमेयाख्या, शून्या, शुद्धकुलोद्भवा, विन्दुनादसमुत्पत्ति, शम्भुवामा, शशिप्रभा, विसङ्गा, भेदरहिता, मनोज्ञा, मधुसूदनी, महाश्री, श्रीसमुत्पत्ति, तमःपारे प्रतिष्ठिता, त्रितत्त्वमाता, त्रिविधा, सुसूक्ष्मपदसंश्रया, शान्त्यतीता, मलातीता, निर्विकारा, निराश्रया, शिवाख्या, चित्तनिलया, शिवज्ञानस्वरूपिणी, दैत्यदानवनिर्मात्री, काश्यपी, कालकल्पिका, (१७४-१८०)

शास्त्रयोनिः क्रियामूर्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका ।
नारायणी नरोद्भूतिः कौमुदी लिङ्गधारिणी ॥१८१
कामुकी ललिता भावा परापरविभूतिदा ।
परान्तजातमहिमा बडवा वामलोचना ॥१८२
सुभद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा ।
मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा ॥१८३
अमृत्युरमृता स्वाहा पुरुहूता पुरुष्टुता ।
अशोच्या भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया ॥१८४
हिरण्या राजती हैमी हेमाभरणभूषिता ।
विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा ॥१८५
महानिद्रासमुद्भूतिरनिद्रा सत्यदेवता ।
दीर्घा ककुद्मिनी हृद्या शान्तिदा शान्तिवर्द्धिनी ॥१८६
लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्तिका ।
त्रिशक्तिजननी जन्या षड्र्मिपरिवर्जिता ॥१८७
सुधामा कर्मकरणी युगान्तदहनात्मिका ।
संकर्षणी जगद्धात्री कामयोनिः किरीटिनी ॥१८८
ऐन्द्री त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी ।
प्रद्युम्नदयिता दान्ता युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना ॥१८९
मदोत्कटा हंसगतिः प्रचण्डा चण्डविक्रमा ।
वृषावेशा वियन्माता विन्ध्यपर्वतवासिनी ॥१९०
हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी ।
चाणूरहन्तृतनया नीतिज्ञा कामरूपिणी ॥१९१
वेदविद्याव्रतस्नाता धर्मशीलाऽनिलाशना ।
वीरभद्रप्रिया वीरा महाकालसमुद्भवा ॥१९२
विद्याधरप्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृतिः ।
आप्यायनी हरन्ती च पावनी पोषणी खिला ॥१९३
मातृका मन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया ।
करीषिणी सुधावाणी वीणावादनतत्परा ॥१९४
सेविता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मती ।
अरुन्धती हिरण्याक्षी मृगाङ्का मानदायिनी ॥१९५
वसुप्रदा वसुमती वसोर्द्धारा वसुंधरा ।
धाराधरा वरारोहा वरावरसहस्रदा ॥१९६
श्रीफला श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा शिवप्रिया ।
श्रीधरा श्रीकरी कल्या श्रीधरार्द्धशरीरिणी ॥१९७
अनन्तदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया ।
निहन्त्री दैत्यसङ्घानां सिंहिका सिंहवाहना ॥१९८

शास्त्रयोनि, क्रियामूर्त्ति, चतुर्वर्गप्रदर्शिका, नारायणी, नरोद्भूति, कौमुदी, लिङ्गधारिणी, कामुकी, ललिता, भावा, परापरविभूतिदा, परान्तजातमहिमा, वडवा, वामलोचना, सुभद्रा, देवकी, सीता, वेदवेदाङ्गपारगा, मनस्विनी, मन्युमाता, महामन्युसमुद्भवा, अमृत्यु, अमृता, स्वाहा, पुरुहूता, पुरुष्टुता, अशोच्या, भिन्नविषया, हिरण्यरजतप्रिया, (१८१-१८४)

हिरण्या, राजती, हैमी, हेमाभरणभूषिता, विभ्राजमाना, दुर्ज्ञेया, ज्योतिष्टोमफलप्रदा, महानिद्रासमुद्भूति, अनिद्रा, सत्यदेवता, दीर्घा, ककुद्मिनी, हृद्या, शान्तिदा, शान्तिवर्द्धिनी, लक्ष्म्यादिशक्तिजननी, शक्तिचक्रप्रवर्त्तिका, त्रिशक्तिजननी, जन्या, षड्र्मिपरिवर्जिता, (१८५-१८७)

सुधामा, कर्मकरणी, युगान्तदहनात्मिका, संकर्षणी, जगद्धात्री, कामयोनि, किरीटिनी, ऐन्द्री, त्रैलोक्यनमिता, वैष्णवी, परमेश्वरी, प्रद्युम्नदयिता, दान्ता, युग्मदृष्टि, त्रिलोचना, मदोत्कटा, हंसगति, प्रचण्डा, चण्डविक्रमा, वृषावेशा, वियन्माता, विन्ध्यपर्वतवासिनी, हिमवन्मेरुनिलया, कैलासगिरिवासिनी, चाणूरहन्तृतनया, नीतिज्ञा, कामरूपिणी, वेदविद्याव्रतस्नाता, धर्मशीला, अनिलाशना, वीरभद्रप्रिया, वीरा, महाकालसमुद्भवा, विद्याधरप्रिया, सिद्धा, विद्याधरनिराकृति, आप्यायनी, हरन्ती, पावनी, पोषणी, खिला, (१८८-१९३)

मातृका, मन्मथोद्भूता, वारिजा, वाहनप्रिया, करीषिणी, सुधावाणी, वीणावादनतत्परा, सेविता, सेविका, सेव्या, सिनीवाली, गरुत्मती, अरुन्धती, हिरण्याक्षी, मृगाङ्का, मानदायिनी, वसुप्रदा, वसुमती, वसोर्द्धारा, वसुन्धरा, धाराधरा, वरारोहा, वरावरसहस्रदा, श्रीफला, श्रीमती, श्रीशा, श्रीनिवासा, शिवप्रिया, श्रीधरा, श्रीकरी, कल्या, श्रीधरार्धशरीरिणी, (१९४-१९७)

अनन्तदृष्टि, अक्षुद्रा, धात्रीशा, धनदप्रिया, दैत्यसङ्घनिहन्त्री, सिंहिका, सिंहवाहना, सुषेणा, चन्द्रनिलया, सुकीर्त्ति,

सुषेणा चन्द्रनिलया सुकीर्तिश्छिन्नसंशया ।
रसज्ञा रसदा रामा लेलिहानाऽमृतस्रवा ॥१९९
नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुका मृतजीवनी ।
वज्रदण्डा वज्रजिह्वा वैदेही वज्रविग्रहा ॥२००
मङ्गल्या मङ्गला माला मलिना मलहारिणी ।
गान्धर्वी गारुडी चान्द्री कम्बलाश्वतरप्रिया ॥२०१
सौदामिनी जनानन्दा भ्रुकुटीकुटिलानना ।
कर्णिकारकरा कक्ष्या कंसप्राणापहारिणी ॥२०२
युगंधरा युगावर्त्ता त्रिसंध्या हर्षवर्द्धनी ।
प्रत्यक्षदेवता दिव्या दिव्यगन्धा दिवापरा ॥२०३
शक्रासनगता शाक्री साध्वी नारी शवासना ।
इष्टा विशिष्टा शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता॥२०४
शतरूपा शतावर्त्ता विनता सुरभिः सुरा ।
सुरेन्द्रमाता सुद्युम्ना सुषुम्ना सूर्यसंस्थिता ॥२०५
समीक्ष्या सत्प्रतिष्ठा च निवृत्तिर्ज्ञानपारगा ।
धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना ॥२०६
धर्माधर्मविनिर्मात्री धार्मिकाणां शिवप्रदा ।
धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी ॥२०७
धर्मान्तरा धर्ममेघा धर्मपूर्वा धनावहा ।
धर्मोपदेष्ट्री धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा ॥२०८
कापाली शाकला मूर्त्तिः कला कलितविग्रहा ।
सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रयाश्रया ॥२०९
सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सुसूक्ष्मा ज्ञानरूपिणी ।
प्रधानपुरुषेशेशा महादेवैकसाक्षिणी ।
सदाशिवा वियन्मूर्त्तिर्विश्वमूर्त्तिरमूर्त्तिका ॥२१०
एवं नाम्नां सहस्रेण स्तुत्वाऽसौ हिमवान् गिरिः ।
भूयः प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलिः ॥२११
यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरि ।
भीतोऽस्मि साम्प्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत् प्रदर्शय ॥२१२
एवमुक्ताऽथ सा देवी तेन शैलेन पार्वती ।
संहृत्य दर्शयामास स्वरूपमपरं पुनः ॥२१३
नीलोत्पलदलप्रख्यं नीलोत्पलसुगन्धिकम् ।
द्विनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम् ॥२१४

छिन्नसंशया, रसज्ञा, रसदा, रामा, लेलिहाना, अमृतस्रवा, नित्योदिता, स्वयंज्योति, उत्सुका, मृतजीवनी, वज्रदण्डा, वज्रजिह्वा, वैदेही, वज्रविग्रहा, मङ्गल्या, मङ्गला, माला, मलिना, मलहारिणी, गान्धर्वी, गारुडी, चान्द्री, कम्वलाश्वतरप्रिया, सौदामिनी, जनानन्दा, भ्रकुटीकुटिलानना, कर्णिकारकरा, कक्ष्या, कंसप्राणापहारिणी, युगन्धरा, युगावर्ता, त्रिसन्ध्या, हर्षवर्द्धनी, प्रत्यक्षदेवता, दिव्या, दिव्यगन्धा, दिवापरा, (१९८-२०३)

शक्रासनगता, शाक्री, साध्वी, नारी, शवासना, इष्टा, विशिष्टा, शिष्टेष्टा, शिष्टाशिष्टप्रपूजिता, शतरूपा, शतावर्त्ता, विनता, सुरभि, सुरा, सुरेन्द्रमाता, सुद्युम्ना, सुषुम्ना, सूर्यसंस्थिता, समीक्ष्या, सत्प्रतिष्ठा, निवृत्ति, ज्ञानपारगा, धर्मशास्त्रार्थकुशला, धर्मज्ञा, धर्मवाहना, धर्माधर्मविनिर्मात्री, धार्मिकों का कल्याण करने वाली, धर्मशक्ति, धर्ममयी, विधर्मा, विश्वधर्मिणी, धर्मान्तिरा, धर्ममेघा, धर्मपूर्वा, धनावहा, धर्मोपदेष्ट्री, धर्मात्मा, धर्मगम्या, धराधरा । (२०४-२०८)

कापाली, शाकला, मूर्त्ति, कला, कलितविग्रहा, सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता, सर्वशक्त्याश्रयाश्रया, सर्वा, सर्वेश्वरी, सूक्ष्मा, सुसूक्ष्मा, ज्ञानरूपिणी, प्रधानपुरुषेशेशा, महादेवैकसाक्षिणी, सदाशिवा, वियन्मूर्त्ति, विश्वमूर्त्ति एवं अमूर्त्तिका (के नाम से प्रसिद्ध हैं) । (२०९-२१०)

हिमवान् गिरि इस प्रकार सहस्रनाम द्वारा स्तुति करने के उपरान्त पुनः प्रणाम कर डरे हुए हाथ जोड़कर यह कहने लगे— (२११)

हे परमेश्वरी ! आपके इस घोर ऐश्वर्यमय रूप को देखकर मैं डर गया हूँ । अब आप अन्य रूप दिखलायें । (२१२)

तदनन्तर उस पर्वत के ऐसा कहने पर उन पार्वती देवी ने (अपने घोर रूप को) समेट कर पुनः नीलोत्पल-दल के तुल्य एवं नीलकमल-सदृश सुगन्धियुक्त दूसरा रूप दिखलाया । (देवी का वह रूप) दो नेत्र एवं दो भुजाओं वाला सौम्य, नील अलकों से विभूषित, रक्त कमल तुल्य चरणतल वाला एवं सुन्दर रक्तकरपल्लवयुक्त था । (वह) शोभायुक्त, विशाल एवं प्रशस्त ललाट पर लगे तिलक द्वारा उज्ज्वल (था) । (उसके) सभी अङ्ग अतिकोमल एवं

रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम् ।
श्रीमद् विशालसंवृत्तललाटतिलकोज्ज्वलम् ।।२१५
भूषितं चारुसर्वाङ्गं भूषणैरतिकोमलम् ।
दधानमुरसा मालां विशालां हेमनिर्मिताम् ।।२१६
ईषत्स्मितं सुबिम्बोष्ठं नूपुरारावसंयुतम् ।
प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम् ।।२१७
तदीदृशं समालोक्य स्वरूपं शैलसत्तमः ।
भीतिं संत्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम् ।।२१८

हिमवानुवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।
यन्मे साक्षात् त्वमव्यक्ता प्रसन्ना दृष्टिगोचरा ।।२१९
त्वया सृष्टं जगत् सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम् ।
त्वय्येव लीयते देवि त्वमेव च परा गतिः ।।२२०
वदन्ति केचित् त्वामेव प्रकृतिं प्रकृतेः पराम् ।
अपरे परमार्थज्ञाः शिवेति शिवसंश्रये ।।२२१

भूषणों से भलीभाँति भूषित थे । (उस शरीर) के वक्ष-स्थल पर हेमनिर्मित विशाल माला सुशोभित हो रही थी । ओष्ठविम्व किञ्चित् हास्य से युक्त था एवं (धारण किये गए) नूपुरों से शब्द हो रहा था । (देवी का वह रूप) अनन्त महिमायुक्त, दिव्य एवं प्रसन्न मुख युक्त था । (२१३-२१७)

देवी के इस प्रकार के (सौम्य) स्वरूप को देखकर शैलश्रेष्ठ (हिमवान्) भय का त्याग कर प्रसन्न मन से परमेश्वरी से कहने लगे । (२१८)

हिमवान् ने कहा—आज मेरा जन्म सफल हुआ; आज मेरा तप सफल हो गया। क्योंकि आप अव्यक्तस्वरूपा प्रसन्न होकर मेरे दृष्टिगोचर हुई हैं । (२१९)

आपने सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की है । प्रधानादि आप में स्थित हैं । हे देवी ! (सम्पूर्ण जगत्) आप में ही लीन होता है । आप ही परम गति है । (२२०)

कुछ लोग आपको ही प्रकृति और कुछ लोग प्रकृति से श्रेष्ठ कहते हैं । हे शिव के आश्रित रहने वाली ! परमार्थ को जानने वाले दूसरे लोग आपको शिवा कहते हैं । (२२१)

त्वयि प्रधानं पुरुषो महान् ब्रह्मा तथेश्वरः ।
अविद्या नियतिर्माया कलाद्याः शतशोऽभवन् ।२२२
त्वं हि सा परमा शक्तिरनन्ता परमेष्ठिनी ।
सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रया निजा ।।२२३
त्वामधिष्ठाय योगेशि महादेवो महेश्वरः ।
प्रधानाद्यं जगत् कृत्स्नं करोति विकरोति च ।।२२४
त्वयैव संगतो देवः स्वमानन्दं समश्नुते ।
त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी ।।२२५
त्वमक्षरं परं व्योम महज्ज्योतिर्निरञ्जनम् ।
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ।।२२६
त्वं शक्रः सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामसि ।
वायुर्बलवतां देवि योगिनां त्वं कुमारकः ।।२२७
ऋषीणां च वसिष्ठस्त्वं व्यासो वेदविदामसि ।
सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणामसि शंकरः ।।२२८

आप में प्रधान (प्रकृति), पुरुष, महान्, ब्रह्मा तथा ईश्वर (स्थित हैं)। (आप से)अविद्या, नियति, माया एवं शतशः कला इत्यादि की उत्पत्ति हुई है । (२२२)

आप ही परमा शक्ति, अनन्ता एवं परमेष्ठिनी हैं । आप सभी भेदों से विनिर्मुक्त तथा सभी भेदों की आश्रय एवं निजा (आत्माश्रया) हैं । (२२३)

हे योगेशि ! आपको अधिष्ठित कर महादेव महेश्वर प्रधानादि सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि एवं संहार का कार्य करते हैं । (२२४)

आप से ही मिलने पर महादेव स्वात्मानन्द का उपभोग करते हैं । आप ही परमानन्द (स्वरूपा) एवं आप ही आनन्ददायिनी हैं । आप अक्षर, परम व्योम, महज्ज्योति, निरञ्जन, शिवस्वरूप, सर्वगत, सूक्ष्म एवं सनातन परम ब्रह्म हैं । (२२५, २२६)

आप सभी देवों में इन्द्र एवं ब्रह्मज्ञानियों में ब्रह्मा हैं । हे देवी ! (आप) वलवानों में वायु, योगियों में कुमारक अर्थात् सनत्कुमार हैं । (२२७)

आप ऋषियों में वसिष्ठ एवं वेदज्ञों में व्यास हैं । (आप) सांख्यशास्त्र को जानने वालों में कपिल देव एवं रुद्रों में शङ्कर हैं । (२२८)

आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वं वसूनां चैव पावकः ।
वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्री छन्दसामसि ॥२२९
अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गतिः ।
माया त्वं सर्वशक्तीनां कालः कलयतामसि ॥२३०
ओङ्कारः सर्वगुह्यानां वर्णानां च द्विजोत्तमः ।
आश्रमाणां च गार्हस्थ्यमीश्वराणां महेश्वरः ॥२३१
पुंसां त्वमेकः पुरुषः सर्वभूतहृदि स्थितः ।
सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे ॥२३२
ईशानश्चासि कल्पानां युगानां कृतमेव च ।
आदित्यः सर्वमार्गाणां वाचां देवी सरस्वती ॥२३३
त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामसि ।
अरुन्धती सतीनां त्वं सुपर्णः पततामसि ॥२३४
सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठसाम च सामसु ।
सावित्री चासि जप्यानां यजुषां शतरुद्रियम् ॥२३५
पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामसि ।
सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥२३६

आदित्यों में आप उपेन्द्र तथा वसुओं में पावक हैं। आप वेदों में सामवेद तथा छन्दों में गायत्री हैं। (२२९)

(आप) विद्याओं में अध्यात्मविद्या तथा गतियों में परम गति अर्थात् मोक्ष हैं। सभी शक्तियों में आप माया एवं संहार करने वालों में काल हैं। (२३०)

आप सभी गुह्यों में ओङ्कार एवं वर्णो में द्विजोत्तम हैं। आप आश्रमों में गृहस्थ एवं ईश्वरों में महेश्वर हैं। (२३१)

आप पुरुषों में सभी प्राणियों के हृदय में रहने वाले एक पुरुष हैं। आप सभी उपनिषदों में गुह्य उपनिषद कही जाती हैं। (२३२)

(आप) कल्पों में ईशान एवं युगों में कृतयुग (हैं)। सभी भ्रमणकारियों में आप आदित्य एवं वाणियों में सरस्वती हैं। (२३३)

सुन्दर रूपों में आप लक्ष्मी एवं मायावियों में विष्णु हैं। आप सतियों में अरुन्धती एवं पक्षियों में गरुड़ हैं। (२३४)

(आप) सूक्तों में पुरुष सूक्त एवं साम मन्त्रों में ज्येष्ठ-साम हैं। (आप) जपने योग्य मन्त्रों में सावित्री एवं यजुर्वेद के मन्त्रों में शतरुद्रिय हैं। (२३५)

रूपं तवाशेषकलाविहीन-
मगोचरं निर्मलमेकरूपम् ।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं
नमामि सत्यं तमसः परस्तात् ॥२३७
यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं
वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः ।
आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं
तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये ॥२३८
अशेषभूतान्तरसन्निविष्टं
प्रधानपुंयोगवियोगहेतुम् ।
तेजोमयं जन्मविनाशहीनं
प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम् ॥२३९
आद्यन्तहीनं जगदात्मभूतं
विभिन्नसंस्थं प्रकृतेः परस्तात् ।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तवैव
नमामि रूपं पुरुषाभिधानम् ॥२४०

आप पर्वतों में महामेरु एवं सर्पो में अनन्त हैं। सभी (पदार्थो) में आप पर ब्रह्म हैं। सभी कुछ आप में व्याप्त है। (२३६)

(मैं) आपके समस्त कलाओं से रहित, अगोचर, निर्मल, अद्वितीय, आदि, मध्य एवं अन्तरहित, अनन्त, आदि स्वरूप एवं तमोगुण से परे रहने वाले सत्य रूप को नमस्कार करता हूँ। (२३७)

वेदान्त-विषयक विज्ञान का विशेष रूप से निश्चय करने वाले (व्यक्ति) जगत् के उत्पादक प्रणव नामक जिस अद्वितीय आनन्द का साक्षात्कार करते हैं (मैं) उसी रूप की शरण लेता हूँ। (२३८)

(मैं) सभी प्राणियों के भीतर सन्निविष्ट, प्रधान और पुरुष के योग एवं वियोग के कारणस्वरूप, तेजोमय, जन्म-विनाशरहित, प्राण नामक रूप को प्रणाम करता हूँ। (२३९)

(मैं) आदि और अन्त से रहित, जगत् के आत्मा स्वरूप, विभिन्न (रूपों में) स्थित, प्रकृति के परे रहने वाले कूटस्थ, अव्यक्त शरीरधारी पुरुष नामक (आपके) रूप को नमस्कार करता हूँ। (२४०)

सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं
सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम् ।
सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं
नतोऽस्मि ते रूपमलुप्तभेदम् ।।२४१
आद्यं महत् ते पुरुषात्मरूपं
प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम् ।
ऐश्वर्यविज्ञानविरागधर्मैः
समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपम् ।।२४२
द्विसप्तलोकात्मकमम्बुसंस्थं
विचित्रभेदं पुरुषैकनाथम् ।
अनन्तभूतैरधिवासितं ते
नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसंज्ञम् ।।२४३
अशेषवेदात्मकमेकमाद्यं
स्वतेजसा पूरितलोकभेदम् ।
त्रिकालहेतुं परमेष्ठिसंज्ञं
नमामि रूपं रविमण्डलस्थम् ।।२४४
सहस्रमूर्धानमनन्तशक्तिं
सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम् ।
शयानमन्तः सलिले तथैव
नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम् ।।२४५
दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवन्द्यं
युगान्तकालानलकल्परूपम् ।
अशेषभूताण्डविनाशहेतुं
नमामि रूपं तव कालसंज्ञम् ।।२४६
फणासहस्रेण विराजमानं
भोगीन्द्रमुख्यैरभिपूज्यमानम् ।
जनार्दनारूढतनुं प्रसुप्तं
नतोऽस्मि रूपं तव शेषसंज्ञम् ।।२४७
अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं
ब्रह्मामृतानन्दरसज्ञमेकम् ।
युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं
नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसंज्ञम् ।।२४८
प्रहीणशोकं विमलं पवित्रं
सुरासुरैरर्चितपादपद्मम् ।
सुकोमलं देवि विशालशुभ्रं
नमामि ते रूपमिदं नमामि ।।२४९

(मैं) सभी के आश्रय-स्वरूप, सम्पूर्ण जगत् का विधान करने वाले, सर्वव्यापी, जन्म-मरणरहित, सूक्ष्म, विचित्र, तीन गुणों वाले, प्रधान स्वरूप एवं भेद-रहित रूप को प्रणाम करता हूँ। (२४१)

हे देवि ! (मैं) आदि में वर्तमान, पुरुष नामक, महान् प्रकृति में अवस्थित, त्रिगुणात्मक मूलकारण स्वरूप ऐश्वर्य, विज्ञान तथा विराग नामक धर्मों से युक्त (आपके) रूप को नमस्कार करता हूँ। (२४२)

(मैं) चौदह लोकात्मक, जल में स्थित, विचित्र-भेद-युक्त, पुरुष स्वरूप एक मात्र स्वामी, तथा अनन्त भूतों से संयुक्त जगदण्ड (ब्रह्माण्ड) नामक आपके रूप को नमस्कार करता हूँ। (२४३)

(मैं) सम्पूर्ण वेदस्वरूप, अद्वितीय, आदिकाल में वर्तमान, अपने तेज से विभिन्न लोकों को पूरित करने वाले त्रिकाल (भूत, भविष्यत एवं वर्तमान) के हेतु रूप परमेष्ठी नामक रविमण्डल में स्थित (आपके) रूप को नमस्कार करता हूँ। (२४४)

(मैं) सहस्र मूर्द्धा वाले, अनन्त शक्तियुक्त, सहस्रबाहु-धारी, जल के मध्य शयन करने वाले नारायण नामक पुराण पुरुष स्वरूप (आपके) रूप को प्रणाम करता हूँ। (२४५)

(मैं) भयङ्कर दाढ़ों वाले, देवों से वन्दनीय, प्रलय कालीन अग्नि-स्वरूप, सम्पूर्ण प्राणियों का विनाश करने के हेतुभूत काल नामक (आपके) रूप को नमस्कार करता हूँ। (२४६)

(मैं) सहस्र फणों से सुशोभित एवं प्रधान सर्पराजों से पूजित होने वाले, जनार्दन से अधिष्ठित शरीर वाले शेष नामक (आपके) प्रसुप्त रूप को नमस्कार करता हूँ। (२४७)

(मैं) अव्याहत ऐश्वर्य वाले, विषम नेत्रधारी, ब्रह्म विषयक अमृतानन्द रस के ज्ञाता, अद्वितीय, प्रलय में शेष रहने वाले तथा द्युलोक में नृत्य रत आपके रुद्रनामक रूप को नमस्कार करता हूँ। (२४८)

हे देवि ! शोक रहित, विमल, पवित्र, सुरों एवं असुरों

ॐ नमस्ते महादेवि नमस्ते परमेश्वरि ।
नमो भगवतीशानि शिवायै ते नमो नमः ॥२५०
त्वन्मयोऽहं त्वदाधारस्त्वमेव च गतिर्मम ।
त्वामेव शरणं यास्ये प्रसीद परमेश्वरि ॥२५१
मया नास्ति समो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ।
जगन्मातैव मत्पुत्री संभूता तपसा यतः ॥२५२
एषा तवाम्बिका देवि किलाभूत पितृकन्यका ।
मेनाऽशेषजगन्मातुरहो पुण्यस्य गौरवम् ॥२५३
पाहि मामामरेशानि मेनया सह सर्वदा ।
नमामि तव पादाब्जं व्रजामि शरणं शिवाम् ॥२५४
अहो मे सुमहद् भाग्यं महादेवीसमागमात् ।
आज्ञापय महादेवि किं करिष्यामि शंकरि ॥२५५
एतावदुक्त्वा वचनं तदा हिमगिरीश्वरः ।
संप्रेक्षणमाणो गिरिजां प्राञ्जलिः पार्श्वतोऽभवत्॥२५६
अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोऽरणिः ।
सस्मितं प्राह पितरं स्मृत्वा पशुपतिं पतिम् ॥२५७

देव्युवाच ।

शृणुष्व चैतत् परमं गुह्यमीश्वरगोचरम् ।
उपदेशं गिरिश्रेष्ठ सेवितं ब्रह्मवादिभिः ॥२५८
यन्मे साक्षात् परं रूपमैश्वरं दृष्टमद्भुतम् ।
सर्वशक्तिसमायुक्तमनन्तं प्रेरकं परम् ॥२५९
शान्तः समाहितमना दम्भाहंकारवर्जितः ।
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदेव शरणं व्रज ॥२६०
भक्त्या त्वनन्यया तात मद्भावं परमाश्रितः ।
सर्वयज्ञतपोदानैस्तदेवार्चय सर्वदा ॥२६१
तदेव मनसा पश्य तद् ध्यायस्व जपस्व च ।
ममोपदेशात् संसारं नाशयामि तवानघ ॥२६२

से पूजित चरण कमल वाले आपके सुकोमल एवं अत्यन्त शुभ्र रूप को मैं वार-वार नमस्कार करता हूँ। (२४९)

हे महादेवि ! आपको नमस्कार है। हे परमेश्वरी ! आपको नमस्कार है। हे भगवती ईशानी कल्याणमयी आपको नमस्कार है। (२५०)

मैं आपसे व्याप्त हूँ आप मेरे आधार स्वरूप हैं तथा आप ही मेरी गति हैं। हे परमेश्वरी ! मैं आपकी शरण में जाता हूँ। आप (मेरे ऊपर) प्रसन्न हों। (२५१)

संसार में (कोई) देवता अथवा दानव मेरे समान नहीं हैं। क्योंकि (मेरे) तप के कारण जगन्माता ही मेरी पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई हैं। (२५२)

हे देवि ! यह पितृकन्या मेना सम्पूर्ण जगत् की माता स्वरूप आपकी माता हुई हैं। अहो ! पुण्य के गौरव का क्या कहना ? (२५३)

हे अमरेशानि ! (आप) सर्वदा मेना सहित मेरी रक्षा करें। मैं आप कल्याणमय के शरण में जाता हूँ एवं आपके चरणकमलों में प्रणाम करता हूँ। (२५४)

अहो ! महादेवी के समागम के कारण मेरा भाग्य सुन्दर एवं महान् हो गया। हे महादेवि ! हे शङ्करी ! (मुझे) आज्ञा करें कि मैं क्या करूँ ? (२५५)

उस समय पर्वतराज हिमालय इतना कहने के उपरान्त हाथ जोड़कर गिरिजा को देखते हुए (उनके) पार्श्व में खड़े हो गए। (२५६)

तदनन्तर उनके वचन को सुनने के पश्चात् जगत् की अरणि स्वरूप अर्थात जगत् की मूलकारणस्वरूपा उन देवी ने (अपने) पति पशुपति (शंकर) का स्मरण कर पिता से हँसते हुए कहा। (२५७)

देवी ने कहा—

हे गिरिश्रेष्ठ ! ब्रह्मवादियों से सेवित तथा ईश्वर को विदित यह परम गुह्य उपदेश सुनो। (२५८)

(तुमने) मेरे जिस उत्कृष्ट ऐश्वर्ययुक्त, अद्भुत, सभी प्रकार की शक्ति से सम्पन्न अनन्त एवं प्रेरक श्रेष्ठ रूप को साक्षात् देखा है। मान और अहङ्कार को छोड़कर शान्त एवं एकाग्र मन तथा तन्निष्ठ एवं तत्परायण होकर उसी की शरण में जाओ। (२५९, २६०)

हे तात ! मेरे श्रेष्ठ भाव का आश्रय ग्रहणकर अनन्य भक्ति द्वारा सभी प्रकार के यज्ञ, तप एवं दानों से सर्वदा उस (रूप) का पूजन करो। मेरे उपदेश से मन द्वारा उसी (रूप) का साक्षात्कार, ध्यान एवं जप करो। हे निष्पाप ! मैं तुम्हारे संसार अर्थात् आवागमन रूपी सांसारिक बन्धन का नाश कर दूंगी। (२६१, २६२)

अहं वै मत्परान् भक्तानैश्वरं योगमास्थितान् ।
संसारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु ॥२६३
ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्या ज्ञानेन चैव हि ।
प्राप्याऽहं ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथा कर्मकोटिभिः ॥२६४
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् कर्म वर्णाश्रमात्मकम् ।
अध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु ॥२६५
धर्मात् संजायते भक्तिर्भक्त्या संप्राप्यते परम् ।
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्मो यज्ञादिको मतः ॥२६६
नान्यतो जायते धर्मो वेदाद् धर्मो हि निर्बभौ ।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थी मद्रूपं वेदमाश्रयेत् ॥२६७
ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी ।
ऋग्यजुः सामरूपेण सर्गादौ संप्रवर्त्तते ॥२६८
तेषामेव च गुप्त्यर्थं वेदानां भगवानजः ।
ब्राह्मणादीन् ससर्जाथ स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत् ॥२६९
ये न कुर्वन्ति तद् धर्मं तदर्थं ब्रह्मनिर्मितम् ।
तेषामधस्ताद् नरकांस्तामिस्रादीनकल्पयत् ॥२७०
न च वेदाद् ऋते किञ्चिच्छास्त्रधर्माभिधायकम् ।
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न संभाष्यो द्विजातिभिः ॥२७१
यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन् विविधानि तु ।
श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी ॥२७२
कापालं पञ्चरात्रं च यामलं वाममार्हतम् ।
एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि तु ॥२७३
ये कुशास्त्राभियोगेन मोहयन्तीह मानवान् ।
मया सृष्टानि शास्त्राणि मोहायैषां भवान्तरे ॥२७४
वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत् स्मृतं कर्म वैदिकम् ।
तत् प्रयत्नेन कुर्वन्ति मत्प्रियास्ते हि ये नराः ॥२७५
वर्णानामनुकम्पार्थं मन्नियोगाद् विराट् स्वयम् ।
स्वायंभुवो मनुर्धर्मान् मुनीनां पूर्वमुक्तवान् ॥२७६

मैं शीघ्र ही इस संसार-सागर से ऐश्वर्य योग में स्थित अपने भक्तों का उद्धार करती हूँ । (२६३)

हे गिरिश्रेष्ठ ! मैं ध्यान, कर्मयोग, भक्ति एवं ज्ञान द्वारा ही प्राप्त हो सकती हूँ दूसरे प्रकार के करोड़ों कर्मों से नहीं । (२६४)

मुक्ति के लिये सदा अध्यात्मज्ञानयुक्त श्रुति एवं स्मृतियों में कहे गए वर्णाश्रमात्मक कर्म का भलीभाँति आचरण करें । (२६५)

धर्म से भक्ति होती है एवं भक्ति से परम (तत्त्व) प्राप्त होता है । यज्ञादि को श्रुति एवं स्मृति द्वारा प्रतिपादित धर्म माना जाता है । (२६६))

धर्म अन्य किसी से नहीं उत्पन्न होता । क्योंकि धर्मवेद से उत्पन्न होता है । अतएव मोक्ष एवं धर्म का अभिलाषी मेरे स्वरूपभूत वेद का आश्रय ग्रहण करे । (२६७)

वेद नामक मेरी यह पुरातनी शक्ति ही सृष्टि के आदि में ऋक्, यजु एवं सामवेद के रूप में प्रवर्तित होती है । (२६८)

उन्हीं वेदों की रक्षा के लिये अजन्मा भगवान् (ब्रह्मा) ने ब्राह्मणादि को उत्पन्न कर (उन्हें) अपने-अपने कर्मों में नियोजित किया । (२६९)

ब्रह्मा द्वारा निर्मित जो लोग अपने लिये निर्धारित उस धर्म का पालन नहीं करते उनके लिये (ब्रह्मा ने) अधो लोक में तामिस्र आदि नरकों की रचना की है । (२७०)

वेद से भिन्न कोई शास्त्र धर्म का बतलाने वाला नहीं है । जो (वेद से) अन्यत्र मन लगाते हैं द्विजातियों को उनसे बात नहीं करनी चाहिये । (२७१)

इस लोक में जो अनेक प्रकार के श्रुति एवं स्मृति के विरोधी शास्त्र दिखलायी पड़ते हैं निश्चय ही उनकी निष्ठा तमोगुणी है । (२७२)

कापाल, पञ्चरात्र, यामल, वाममार्ग एवं आर्हत अर्थात् जैन (मत के प्रतिपादक शात्र) तथा इसी प्रकार के अन्य (जितने शास्त्र हैं वे सभी) मोह उत्पन्न करने वाले हैं । (२७३)

कुत्सित शास्त्रों के आग्रहवश जो लोग मनुष्यों को मोहित करते हैं इस संसार में उन लोगों को मोहित करने के लिये मैंने शास्त्रों की रचना की है । (२७४)

श्रेष्ठ वेदार्थज्ञों को वही कर्म करना चाहिए जिसे वैदिक कहा जाता है । प्रयत्नपूर्वक जो उस कर्म को करते हैं वे मेरे प्रिय हैं । (२७५)

वर्णों पर दया करने के लिये विराट् स्वायम्भुव मनु ने स्वयं मेरे आदेश से पूर्व काल में मुनियों से धर्म (मनुस्मृति) कहा था । (२७६)

श्रुत्वा चान्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद् धर्ममुत्तमम्।
चक्रुर्धर्मप्रतिष्ठार्थं धर्मशास्त्राणि चैव हि ।।२७७
तेषु चान्तर्हितेष्वेवं युगान्तेषु महर्षयः।
ब्रह्मणो वचनात् तानि करिष्यन्ति युगे युगे ।।२७८
अष्टादश पुराणानि व्यासेन कथितानि तु।
नियोगाद् ब्रह्मणो राजंस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः ।।२७९
अन्यान्युपपुराणानि तच्छिष्यैः कथितानि तु।
युगे युगेऽत्र सर्वेषां कर्ता वै धर्मशास्त्रवित् ।।२८०
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च।
ज्योतिःशास्त्रं न्यायविद्या मीमांसा चोपबृंहणम्।।२८१
एवं चतुर्दशैतानि विद्यास्थानानि सत्तम।
चतुर्वेदैः सहोक्तानि धर्मो नान्यत्र विद्यते ।।२८२
एवं पैतामहं धर्मं मनुव्यासादयः परम्।
स्थापयन्ति ममादेशाद् यावदाभूतसंप्लवम् ।।२८३
ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ।।२८४
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ।।२८५
ये तु सङ्गान् परित्यज्य मामेव शरणं गताः।
उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरमास्थिताः ।।२८६
सर्वभूतदयावन्तः शान्ता दान्ता विमत्सराः।
अमानिनो बुद्धिमन्तस्तापसाः शंसितव्रताः ।।२८७
मच्चित्ता मद्गतप्राणा मज्ज्ञानकथने रताः।
संन्यासिनो गृहस्थाश्च वनस्था ब्रह्मचारिणः ।।२८८
तेषां नित्याभियुक्तानां मायातत्त्वसमुत्थितम्।
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपने मा चिरात् ।।२८९
ते सुनिर्धूततमसो ज्ञानेनैकेन मन्मयाः।
सदानन्दास्तु संसारे न जायन्ते पुनः पुनः ।।२९०
तस्मात् सर्वप्रकारेण मद्भक्तो मत्परायणः।
मामेवार्चय सर्वत्र मेनया सह संगतः ।।२९१

उनसे मुख से उत्तम धर्म को सुनकर अन्य ऋषियों ने भी धर्म की प्रतिष्ठा के लिये धर्मशास्त्रों की रचना की। प्रलय के समय उन सभी के अन्तर्हित हो जाने पर प्रत्येक युग में ब्रह्मा के आदेश से महर्षि लोग (पुनः) उन (शास्त्रों) की रचना करते हैं। (२७७, २७८)

हे राजन्! ब्रह्मा के आदेश से व्यासादि ने अट्ठारह पुराणों को कहा है। उनमें धर्म प्रतिष्ठित हैं। (२७९)

उन व्यासादि से शिष्यों ने अन्य उपपुराणों को कहा है। यहाँ प्रत्येक युग में (इन) सभी (शास्त्रों) का कर्त्ता ही धर्मशास्त्र का जानने वाला होता है। (२८०)

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिशास्त्र एवं न्यायविद्या (उन) सभी श्रुति-स्मृतिरूप (धर्मशास्त्रों) का उपबृहण हैं। (२८१)

हे सत्तम! चार वेदों सहित इन विद्या के चौदह स्थानों को कहा गया है। (इनसे भिन्न अन्यत्र) धर्म नहीं है। (२८२)

इस प्रकार मेरे आदेश से प्रलयकालपर्यन्त मनु-व्यासादिक पितामह से प्रवर्त्तित श्रेष्ठ धर्म को स्थापित करते हैं। (२८३)

पर (अर्थात् ब्रह्मा की पूरी आयु) के अन्त में प्रतिसञ्चर अर्थात् प्रलय काल आने पर वे सभी कृतातमा लोग ब्रह्मा सहित परम पद में प्रवेश करते हैं। (२८४)

अतएव सभी प्रकार के प्रयत्न से धर्म के लिये वेद का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। (वेद के आश्रय से) धर्म सहित ज्ञान एवं परम ब्रह्म प्रकाशित होता है। (२८५)

सङ्गों का परित्याग कर मेरे ही शरणागत हुए जो लोग ईश्वर सम्बन्धी योग में स्थित, सभी भूतों पर दया करने वाले, शान्त, दान्त, मत्सरशून्य, मानरहित, बुद्धिमान्, तपस्वी, कठोर व्रती, मुझमें ही अपने चित्त एवं प्राणों को लगाने वाले, मद्विषयक ज्ञान के वर्णन में रत, संन्यासी, गृहस्थ, वनस्थ एवं ब्रह्मचारी मेरी नित्य भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं उन नित्य भक्तों के मायातत्त्व से उत्पन्न सम्पूर्ण (मोह स्वरूप) तम को मैं शीघ्र ज्ञान रूपी दीप से दूर करती हूँ। (२८६-२८९)

अद्वितीय ज्ञान द्वारा जिनके (मोह रूप) तम का नाश हो गया है वे सभी मेरे स्वरूपभूत सदा आनन्दमग्न लोग वारंवार संसार में नहीं उत्पन्न होते। (२९०)

अतएव सभी प्रकार से मेरे भक्त एवं मेरे आश्रित होकर मेना के साथ सर्वत्र मेरी ही अर्चना करो। (२९१)

अशक्तो यदि मे ध्यातुमैश्वरं रूपमव्ययम् ।
ततो मे सकलं रूपं कालाद्यं शरणं व्रज ॥२९२
यद् यत् स्वरूपं मे तात मनसो गोचरं भवेत् ।
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदर्चनपरो भव ॥२९३
यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतं परम् ॥२९४
ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम् ।
ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविशन्ति ते ॥२९५
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥२९६
मामनाश्रित्य परमं निर्वाणममलं पदम् ।
प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज ॥२९७
एकत्वेन पृथक्त्वेन तथा चोभयतोऽपि वा ।
मामुपास्य महाराज ततो यास्यासि तत्पदम् ॥२९८
मामनाश्रित्य तत् तत्त्वं स्वभावविमलं शिवम् ।
ज्ञायते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज ॥२९९
तस्मात् त्वमक्षरं रूपं नित्यं चारूपमैश्वरम् ।
आराधय प्रयत्नेन ततो बन्धं प्रहास्यसि ॥३००
कर्मणा मनसा वाचा शिवं सर्वत्र सर्वदा ।
समाराधय भावेन ततो यास्यसि तत्पदम् ॥३०१
न वै पश्यन्ति तत् तत्त्वं मोहिता मम मायया ।
अनाद्यनन्तं परमं महेश्वरमजं शिवम् ॥३०२
सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं निरञ्जनम् ।
नित्यानन्दं निराभासं निर्गुणं तमसः परम् ॥३०३
अद्वैतमचलं ब्रह्म निष्कलं निष्प्रपञ्चकम् ।
स्वसंवेद्यमवेद्यं तत् परे व्योम्नि व्यवस्थितम् ॥३०४
सूक्ष्मेण तमसा नित्यं वेष्टिता मम मायया ।
संसारसागरे घोरे जायन्ते च पुनः पुनः ॥३०५
भक्त्या त्वनन्यया राजन् सम्यग् ज्ञानेन चैव हि ।
अन्वेष्टव्यं हि तद् ब्रह्म जन्मबन्धनिवृत्तये ॥३०६

यदि मेरे अविनाशी ऐश्वर्ययुक्त रूप का ध्यान न कर सको तो आदि काल स्वरूप मेरे कलायुक्त रूप की शरण में जाओ। (२९२)

हे तात ! मेरा जो स्वरूप आपका मन ग्रहण करे उसमें अपनी निष्ठा रखते हुए तत्परायण होकर उसकी पूजा करने वाला बनो। (२९३)

मेरा जो कलारहित चिन्मात्र, अद्वितीय, कल्याणमय, सभी उपाधियों से रहित अनन्त एवं अविनाशी श्रेष्ठ रूप है वह परम पद क्लेश एवं एकमात्र ज्ञान से प्राप्त होता है। ज्ञान का ही साक्षात्कार करने वाले वे लोग मुझ में ही प्रवेश करते हैं। (२९४, २९५)

उसी (श्रेष्ठ रूप) में बुद्धि एवं मन लगानेवाले, तन्निष्ठ, तत्परायण एवं ज्ञान से जिनके पाप नष्ट हो गये हैं (वे सभी लोग) अपुनरावृत्ति अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं। (२९६)

हे राजेन्द्र! क्योंकि बिना मेरा आश्रय ग्रहण किये शुद्ध श्रेष्ठ निर्वाण पद प्राप्त नहीं होता अतः मेरी शरण में जाओ। (२९७)

हे महाराज ! अद्वैत, द्वैत अथवा दोनों ही रूपों से मेरी उपासना कर उस श्रेष्ठ पद को प्राप्त करोगे। (२९८)

हे राजेन्द्र ! क्योंकि बिना मेरा आश्रय लिये वह स्वभावतः शुद्ध कल्याणकारी तत्त्व नहीं विदित होता अतः मेरी शरण में जाओ। (२९९)

अतः तुम प्रयत्नपूर्वक नित्य, अक्षर स्वरूप एवं रूपरहित ईश्वरीय भाव की आराधना करो। इससे (तुम) बन्धन से मुक्त हो जाओगे। (३००)

सर्वदा कर्म, मन, एवं वाणी द्वारा भक्तिपूर्वक सर्वत्र शिव की आराधना करो इससे उस (श्रेष्ठ) पद को प्राप्त करोगे। (३०१)

मेरी माया से मोहित (संसार के प्राणी) अनादि, अनन्त, परम, महेश्वर, अजन्मा, शिव, सभी भूतों के आत्मा-स्वरूप सर्वाधार, निरञ्जन, नित्य, आनन्दस्वरूप, निराभास, निर्गुण, तमोगुण-रहित, अद्वैत, अचल, अखण्ड, प्रपञ्चरहित, स्वसंवेद्य, अविज्ञेय, परमाकाश में अवस्थित उस ब्रह्म नामक तत्त्व को नहीं जानते। (३०२-३०४)

मेरी माया द्वारा सूक्ष्म तमोगुण से नित्य वेष्टित (सांसारिक जन) बार-बार घोर संसार-सागर में उत्पन्न होते रहते हैं। (३०५)

अतः हे राजन् ! अनन्य भक्ति एवं सम्यक् ज्ञान द्वारा जन्मरूपी बन्धन की निवृत्ति के लिये उस ब्रह्म का अन्वेषण करना चाहिए। (३०६)

अहंकारं च मात्सर्यं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
अधर्माभिनिवेशं च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितः ।।३०७
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
अन्वीक्ष्य चात्मनात्मानं ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।३०८
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा सर्वभूताभयप्रदः ।
ऐश्वरीं परमां भक्तिं विन्देतानन्यगामिनीम् ।।३०९
वीक्षते तत् परं तत्त्वमैश्वरं ब्रह्मनिष्कलम् ।
सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ।।३१०
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽयं परस्य परमः शिवः ।
अनन्तस्याव्ययस्यैकः स्वात्माधारो महेश्वरः ।।३११
ज्ञानेन कर्मयोगेन भक्तियोगेन वा नृप ।
सर्वसंसारमुक्त्यर्थमीश्वरं सततं श्रय ।।३१२
एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर ।
अन्वीक्ष्य चैतदखिलं यथेष्टं कर्त्तुमर्हसि ।।३१३
अहं वै याचिता देवैः संजाता परमेश्वरात् ।
विनिन्द्य दक्षं पितरं महेश्वरविनिन्दकम् ।।३१४
धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात् ।
मेनादेहसमुत्पन्ना त्वामेव पितरं श्रिता ।।३१५
स त्वं नियोगाद् देवस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
प्रदास्यसे मां रुद्राय स्वयंवरसमागमे ।।३१६
तत्संवन्धाच्च ते राजन् सर्वे देवाः सवासवाः ।
त्वां नमस्यन्ति वै तात प्रसीदति च शंकरः ।।३१७
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मां विद्धीश्वरगोचराम् ।
संपूज्य देवमीशानं शरण्यं शरणं व्रज ।।३१८
स एवमुक्तो भगवान् देवदेव्या गिरीश्वरः ।
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत् ।।३१९
विस्तरेण महेशानि योगं माहेश्वरं परम् ।
ज्ञानं चैवात्मनो योगं साधनानि प्रचक्ष्व मे ।।३२०

अहङ्कार, मत्सरता, काम, क्रोध, परिग्रह-अर्थात् सङ्ग्रहशीलता एवं अधर्म में रुचि का त्याग करने के उपरान्त वैराग्य में स्थित पुरुष सभी भूतों में अपने को एवं अपने में सभी भूतों को तथा आत्मा द्वारा परम आत्मा का साक्षात्कार कर ब्रह्मत्व की प्राप्ति करने में समर्थ होता है। (३०७, ३०८)

सभी प्राणियों को अभय प्रदान करने वाला-प्रसन्नात्मा ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त व्यक्ति को ईश्वर-विषयक अनन्य भाव वाली श्रेष्ठ भक्ति प्राप्त होती है। (३०९)

समस्त संसार (के बन्धनों) से मुक्त (आत्मज्ञानी व्यक्ति) अखण्ड, ऐश्वर्ययुक्त, ब्रह्मस्वरूप श्रेष्ठ तत्व का चिन्तन करते हुए ब्रह्म में ही स्थित हो जाता है। (३१०)

ये अद्वितीय स्वाश्रय परम शिव महेश्वर अनन्त अव्यय परब्रह्म की प्रतिष्ठा हैं। (३११)

हे नृप ! समस्त संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिये ज्ञान, कर्मयोग, अथवा भक्तियोग द्वारा ईश्वर का सतत आश्रय ग्रहण करो। (३१२)

हे गिरीश्वर ! मैंने तुम्हें यह गुह्य उपदेश दिया है। इस सम्पूर्ण (तत्त्व) का विचार कर यथेष्ट कार्य करो। (३१३)

महेश्वर की निन्दा करने वाले पिता दक्ष की निन्दा करने के उपरान्त देवों के प्रार्थना करने पर मैं परमेश्वर से उत्पन्न हुई हूँ। (३१४)

आपकी आराधना के कारण धर्म की स्थापना हेतु (मैं तुम्हें ही पिता बनाकर) मेना की देह से उत्पन्न हुई हूँ। (३१५)

परमात्मा ब्रह्मदेव के आदेश से स्वयंवर के समय आप मुझे रुद्र को प्रदान करेंगे। (३१६)

हे राजन् ! हे तात् ! उस सम्बन्ध के कारण इन्द्र सहित सभी देवता आपको नमस्कार करेंगें एवं शङ्कर भी (आपके ऊपर) प्रसन्न होंगे। (३१७)

अतः सभी प्रकार के प्रयत्न द्वारा ईश्वर की विषय-स्वरूपा मुझको जानो एवं ईशान-अर्थात् शङ्कर देव की पूजा कर उन शरणागत हितकारी (देव) की शरण में जाओ। (३१८)

(महेश्वर) देव की देवी के ऐसा कहने पर वे गिरिराज हिमालय सिर द्वारा देवी को प्रणाम करने के उपरान्त हाथ जोड़कर पुनः कहने लगे— (३१९)

हे महेशानि ! (आप) मुझे श्रेष्ठ माहेश्वर योग एवं ज्ञान तथा अपना योग और साधन विस्तारपूर्वक बतलायें। (३२०)

तस्यैतत् परमं ज्ञानमात्मयोगमनुत्तमम् ।
यथावद् व्याजहारेशा साधनानि च विस्तरात् ॥३२१
निशम्य वदनाम्भोजाद् गिरीन्द्रो लोकपूजितः ।
लोकमातुः परं ज्ञानं योगासक्तोऽभवत्पुनः ॥३२२
प्रददौ च महेशाय पार्वतीं भाग्यगौरवात् ।
नियोगाद् ब्रह्मणः साध्वीं देवानां चैव संनिधौ ॥३२३
य इमं पठतेऽध्यायं देव्या माहात्म्यकीर्तनम् ।
शिवस्य संनिधौ भक्त्या शुचिस्तद्भावभावितः ॥३२४
सर्वपापविनिर्मुक्तो दिव्ययोगसमन्वितः ।
उल्लङ्घ्य ब्रह्मणो लोकं देव्याः स्थानमवाप्नुयात् ॥३२५
यश्चैतत् पठते स्तोत्रं ब्राह्मणानां समीपतः ।
देव्याः समाहितमनाः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३२६
नाम्नामष्टसहस्रं तु देव्या यत् समुदीरितम् ।
ज्ञात्वाऽर्कमण्डलगतां संभाव्य परमेश्वरीम् ॥३२७
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्तियोगसमन्वितः ।
संस्मरन् परमं भावं देव्या माहेश्वरं परम् ॥३२८
अनन्यमानसो नित्यं जपेदामरणाद् द्विजः ।
सोऽन्तकाले स्मृतिं लब्ध्वा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥३२९
अथवा जायते विप्रो ब्राह्मणानां कुले शुचौ ।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्य सः ॥३३०
संप्राप्य योगं परमं दिव्यं तत् पारमेश्वरम् ।
शान्तः सर्वगतो भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥३३१
प्रत्येकं चाथ नामानि जुहुयात् सवनत्रयम् ।
पूतनादिकृतैर्दोषैर्ग्रहदोषैश्च मुच्यते ॥३३२
जपेद् वाऽहरहर्नित्यं संवत्सरमतन्द्रितः ।
श्रीकामः पार्वतीं देवीं पूजयित्वा विधानतः ॥३३३
संपूज्य पार्श्वतः शंभुं त्रिनेत्रं भक्तिसंयुतः ।
लभते महतीं लक्ष्मीं महादेवप्रसादतः ॥३३४

देवी ने उन्हें विस्तारपूर्वक वह (माहेश्वर) श्रेष्ठ ज्ञान, अपना उत्तम योग एवं साधन ठीक-ठीक बतलाया। (३२१)

लोक-माता के मुखकमल से परम ज्ञान को सुनकर लोकपूजित पर्वतराज पुनः योगासक्त हो गए। (३२२)

महान् भाग्यवश ब्रह्मा के निर्देश से (उन्होंने) देवों की उपस्थिति में महेश को साध्वी पार्वती का दान दिया। (३२३)

जो व्यक्ति शिव के समीप पवित्रतापूर्वक उनके भाव से युक्त होकर देवी के माहात्म्य का वर्णन करने वाले इस अध्याय को पढ़ता है (वह) सभी पापों से मुक्त हो जाता है एवं दिव्ययोग से युक्त होकर ब्रह्मलोक को पारकर देवी के स्थान को प्राप्त करता है। (३२४, ३२५)

जो एकाग्र चित्त से देवी के इस स्तोत्र को ब्राह्मणों के समीप पढ़ता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (३२६)

द्विज को देवी के जो एक सहस्र और आठ नाम कहे गये हैं उन्हें जानने के अनन्तर सूर्यमण्डल में स्थित परमेश्वरी की भावना करने के उपरान्त भक्तियोगपूर्वक अनन्य मन से गन्धपुष्प आदि द्वारा (उनकी) पूजा कर देवी के महेश्वर सम्बन्धी श्रेष्ठ भाव का स्मरण करते हुए मरण-पर्यन्त नित्य (उस एक सहस्र आठ नाम का) जप करना चाहिए। (ऐसा करने वाला) वह द्विज अन्त समय में (देवी-विषयक) स्मृति प्राप्त कर परम ब्रह्म की उपलब्धि करता है। (३२७-३२९)

अथवा वह विप्र ब्राह्मण के पवित्र कुल में उत्पन्न होता है तथा पूर्व संस्कार के माहात्म्य से (उसे) ब्रह्मविद्या की प्राप्ति होती है। (३३०)

परमेश्वर सम्बन्धी अलौकिक श्रेष्ठ योग प्राप्त करने के उपरान्त शान्त एवं सर्वव्यापी होकर (वह व्यक्ति) शिव का सायुज्य प्राप्त करता है। (३३१)

(जो व्यक्ति) तीन सवनों अर्थात् तीनों संध्या अथवा तीन यज्ञों में प्रत्येक नाम से हवन करता है (वह) पूतनादि सम्बन्धी दोष तथा ग्रहों के दोषों से मुक्त हो जाता है। (३३२)

अथवा लक्ष्मी की कामना करने वाला व्यक्ति विधानपूर्वक पार्वती की पूजा करने के उपरान्त (उनके) पार्श्व में भक्तिपूर्वक त्रिलोचन शम्भु का पूजनकर आलस्यरहित भाव से एक वर्ष तक प्रतिदिन (सहस्र नाम का) जप करे। (ऐसा करने से वह व्यक्ति) महादेव की कृपा से महान् लक्ष्मी प्राप्त करता है। (३३३, ३३४)

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जप्तव्यं हि द्विजातिभिः ।
सर्वपापापनोदार्थं देव्या नाम सहस्रकम् ॥३३५

प्रसङ्गात् कथितं विप्रा देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ।
अतः परं प्रजासर्गं भृग्वादीनां निबोधत ॥३३६

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

१२

सूत उवाच ।

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया ।
देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातरौ तथा ॥१

आयतिर्नियतिर्मेरोः कन्ये चैव महात्मनः ।
धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥२

प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः ।
तथा वेदशिरा नाम प्राणस्य द्युतिमान् सुतः ॥३

मरीचेरपि संभूतिः पौर्णमासमसूयत ।
कन्याचतुष्टयं चैव सर्वलक्षणसंयुतम् ॥४

तुष्टिर्ज्येष्ठा तथा वृष्टिः कृष्टिश्चापचितिस्तथा ।
विरजाः पर्वतश्चैव पौर्णमासस्य तौ सुतौ ॥५

क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः ।
कर्दमं च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमम् ॥६

तथैव च कनीयांसं तपोनिर्द्धूतकल्मषम् ।
अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ॥७

सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ।
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पुत्रीर्जज्ञे लक्षणसंयुताः ॥८

सिनीवालीं कुहूं चैव राकामनुमतिं तथा ।
प्रीत्यां पुलस्त्यो भगवान् दत्तात्रिमसृजत् प्रभुः ॥९

पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायंभुवेऽन्तरे ।
वेदबाहुं तथा कन्यां सन्नतिं नाम नामतः ॥१०

अतएव द्विजाति को सभी प्रकार के प्रयत्न द्वारा सभी पापों को दूर करने के लिए देवी के सहस्रनाम का जप करना चाहिए । (३३५)

हे विप्रो ! प्रसङ्गवश देवी के उत्तम माहात्म्य का वर्णन किया गया । इसके पश्चात् भृगु आदि की प्रजा-सृष्टि को सुनो । (३३६)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त—११.

१२

सूत ने कहा—

भृगु की ख्याति नामक पत्नी से नारायण प्रिया लक्ष्मी उत्पन्न हुई तथा धाता एवं विधाता नाम के दो (देव) जो मेरु के जामाता थे (भृगु के पुत्र थे) । (१)

महात्मा मेरु को आयति और नियति नामक कन्यायें थीं । धाता और विधाता की वे पत्नियाँ हुई । उनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—प्राण और मृकण्डु (उनमें) मृकण्डु से मार्कण्डेय तथा प्राण से तेजस्वी वेदशिरा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । (२, ३)

मरीचि की (पत्नी) सम्भूति ने भी सभी लक्षणों से युक्त पौर्णमास नामक पुत्र एवं चार कन्याओं को उत्पन्न किया । (४)

सबसे बड़ी तुष्टि, (तथा तदनन्तर) वृष्टि, कृष्टि तथा अपचिति (नामक चार कन्यायें थीं) पौर्णमास को विरजा एवं पर्वत नामक दो पुत्र हुए । (५)

प्रजापति पुलह की पत्नी क्षमा ने कर्दम, वरीयान् एवं उनसे छोटे सहिष्णु नामक तपस्या से निष्पाप श्रेष्ठ मुनि को जन्म दिया । इसी प्रकार अत्रि की पत्नी अनसूया ने सोम, दुर्वासा एवं योगी दत्तात्रेय नामक निष्पाप पुत्रों को उत्पन्न किया । अङ्गिरा की पत्नी स्मृति ने सिनीवाली, कुहू, राका एवं अनुमति नामक पुत्रियों को उत्पन्न किया । प्रभु भगवान् पुलस्त्य ने प्रीति (नामक अपनी पत्नी) से दत्तात्रि (नामक पुत्र) उत्पन्न किया । स्वायम्भुव नामक मन्वन्तर के (अपने) पूर्वजन्म में वे (दत्तात्रि) अगस्त्य कहे जाते थे । इसी प्रकार (पुलस्त्य को प्रीति से) वेदबाहु नामक (एक अन्य पुत्र) तथा सन्नति नामक एक दूसरी कन्या थी । (९-१०)

पुत्राणां षष्टिसाहस्रं संततिः सुषुवे क्रतोः ।
ते चोर्ध्वरेतसः सर्वे बालखिल्या इति स्मृताः ।।११
वसिष्ठश्च तथोर्ज्जायां सप्तपुत्रानजीजनत् ।
कन्यां च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम् ।।१२
रजोहश्चोर्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा ।
सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः ।।१३
योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणस्तनयो द्विजाः ।
स्वाहा तस्मात् सुतान् लेभे त्रीनुदारान् महौजसः ।।१४
पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च ते त्रयः ।
निर्मथ्यः पवमानः स्याद् वैद्युतः पावकः स्मृतः ।।१५
यश्चासौ तपते सूर्यः शुचिरग्निस्त्वसौ स्मृतः ।
तेषां तु संततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च ।।१६
पावकः पवमानश्च शुचिस्तेषां पिता च यः ।
एते चैकोनपञ्चाशद् वह्नयः परिकीर्तिताः ।।१७
सर्वे तपस्विनः प्रोक्ताः सर्वे यज्ञेषु भागिनः ।
रुद्रात्मकाः स्मृताः सर्वे त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः ।।१८
अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः स्मृताः ।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः ।।१९
तेभ्यः स्वधा सुतां जज्ञे मेनां वैतरणीं तथा ।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ मुनिसत्तमाः ।।२०
असूत मेना मैनाकं क्रौञ्चं तस्यानुजं तथा ।
गङ्गा हिमवतो जज्ञे सर्वलोकैकपावनी ।।२१
स्वयोगाग्निबलाद् देवीं लेभे पुत्रीं महेश्वरीं ।
यथावत् कथितं पूर्वं देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ।।२२
एषा दक्षस्य कन्यानां मयाऽपत्यानुसंततिः ।
व्याख्याता भवतामद्य मनोः सृष्टिं निबोधत ।।२३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

क्रतु की पत्नी सन्तति ने साठ हजार पुत्रों को जन्म दिया । वे सभी ऊर्ध्वरेता वालखिल्य कहे जाते हैं । (११)

वसिष्ठ ने ऊर्ज्जा नामक पत्नी से सात पुत्रों एवं सभी प्रकार की शोभा से युक्त कमलनयना एक कन्या को उत्पन्न किया । (१२)

रज, ऊह, ऊर्ध्ववाहु, सवन, अनघ, सुतपा एवं शुक्र ये (वसिष्ठ के) सात महातेजस्वी पुत्र थे । (१३)

हे द्विजो ! ब्रह्मा को रुद्रस्वरूप वह्नि नामक जो पुत्र था उससे स्वाहा (नामक उसकी पत्नी) ने महापराक्रमी तीन उदार पुत्र प्राप्त किये । (१४)

वे तीनों पावक, पवमान और शुचि अग्नि (नामक पुत्र) थे । निर्मथ्य-अर्थात् मन्थन द्वारा उत्पन्न-अग्नि को पवमान तथा विद्युत सम्बन्धी अग्नि को पावक कहते हैं । (१५)

और जो यह सूर्य तपता है उसे शुचि अग्नि कहा जाता है । उन (तीनों अग्नियों) की चालीस एवं पाँच अर्थात् पैंतालीसों सन्तान हैं । (१६)

पावक, पवमान एवं शुचि और इनके पिता (रुद्रात्मक अग्नि) तथा (उन तीनों अग्नियों के पैंतालीस पुत्र) ये सभी उनचास वह्नियाँ कही गई हैं । (१७)

ये सभी तपस्वी कहे गये हैं । यज्ञ में इन सभी का भाग होता है । इन सभी को रुद्रात्मक कहा गया है । ये सभी मस्तक पर त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं । (१८)

अग्निष्वात्ता एवं वर्हिषद नामक पितृगण ब्रह्मा के पुत्र कहे गये हैं । उनका अयज्वा अर्थात् अयज्ञशील एवं यज्वा अर्थात् यज्ञशील नामक दो विभाग हैं । (१९)

स्वधा ने उनसे मेना और वैतरणी नामक पुत्रियों को उत्पन्न किया । हे मुनिश्रेष्ठो ! वे दोनों ही ब्रह्मवादिनी एवं योगयुक्त थीं । (२०)

मेना ने मैनाक और उसके अनुज क्रौञ्च को उत्पन्न किया । हिमवान् से समस्त लोक को पावन करने वाली अद्वितीय गङ्गा उत्पन्न हुई । (२१)

(हिमवान् ने) अपने योगाग्नि के वल से देवी महेश्वरी को पुत्री रूप में प्राप्त किया । पूर्व में यथावत् देवी के उत्तम माहात्म्य का वर्णन किया जा चुका है । (२२)

मैंने दक्ष की कन्याओं की इस सन्तति (के क्रम) का आप लोगों से व्याख्यान किया । अब मनु की सृष्टि का वर्णन सुनो । (२३)

छः सहस्र श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में वारहवाँ अध्याय समाप्त—१२.

१३

सूत उवाच ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायंभुवस्य तु ।
धर्मज्ञौ सुमहावीर्यौ शतरूपा व्यजीजनत् ।।१
ततस्तूत्तानपादस्य ध्रुवो नाम सुतोऽभवत् ।
भक्तो नारायणे देवे प्राप्तवान् स्थानमुत्तमम् ।।२
ध्रुवात् श्लिष्टिञ्च भव्यं च भार्या शम्भुर्व्यजायत ।
श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ।।३
वसिष्ठवचनाद् देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
आराध्य पुरुषं विष्णुं शालग्रामे जनार्दनम् ।।४
रिपुं रिपुंजयं विप्रं वृकलं वृषतेजसम् ।
नारायणपरान् शुद्धान् स्वधर्मपरिपालकान् ।।५
रिपोराधत्त वृहती चक्षुषं सर्वतेजसम् ।
सोऽजीजनत् पुष्करिण्यां वैरण्यां चाक्षुषं मनुम् ।
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः ।।६
मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः ।
कन्यायां सुमहावीर्या वैराजस्य प्रजापतेः ।।७
ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः ।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः ।।८
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाबलान् ।
अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं शिवम् ।।९
अङ्गाद् वेनोऽभवत् पश्चाद् वैन्यो वेनादजायत ।
योऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः ।।१०
येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकारणात् ।
नियोगाद् ब्रह्मणः सार्द्धं देवेन्द्रेण महौजसा ।।११
वेनपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे ।
सूतः पौराणिको जज्ञे मायारूपः स्वयं हरिः ।।१२
प्रवक्ता सर्वशास्त्राणां धर्मज्ञो गुणवत्सलः ।
तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः पूर्वोद्भूतं सनातनम् ।।१३

१३

सूत ने कहा—स्वायम्भुव (मनु) की पत्नी शतरूपा ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो धर्मज्ञ एवं महा-पुत्रों को पराक्रमी जन्म दिया । (१)

तदनन्तर उत्तानपाद को ध्रुव नामक पुत्र हुआ। नारायण देव के (उस) भक्त ने श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया। (२)

ध्रुव की शम्भु नामक भार्या ने श्लिष्टि एवं भव्य नामक पुत्र उत्पन्न किये । श्लिष्टि की पत्नी सुच्छाया ने पाँच निष्पाप पुत्रों को उत्पन्न किया । उसने वसिष्ठ के कथनानुसार अत्यन्त कठोर तप करके एवं शालग्राम में जनार्दन पुरुष विष्णु की आराधना कर रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, वृकल एवं वृषतेजस नामक नारायण-परायण, शुद्ध, स्वधर्म परिपालक (पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया) । (३-५)

रिपु की पत्नी वृहती ने सर्वतेज सम्पन्न चक्षुष को जन्म दिया । उसने अर्थात् चक्षुष ने प्रजापति महात्मा वीरण की पुत्री पुष्करिणी से चाक्षुष मनु को उत्पन्न किया । (६)

अतितेजस्वी मनु को वैराज नामक प्रजापति की कन्या नड्वला से महापराक्रमी ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, शुचि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न एवं अभि-मन्युक नामक दस पुत्र हुए । (७, ८)

ऊरु की पत्नी आग्नेयी ने महाबलवान् अङ्ग, सुमनस, स्वाति, क्रतु, अङ्गिरस एवं शिव नामक छः पुत्रों को उत्पन्न किया । अङ्ग से वेन की उत्पत्ति हुई एवं वेन से वैन्य उत्पन्न हुए वे ही महाबलवान् प्रजापालक पृथु नाम से प्रसिद्ध हुए । (९, १०)

पूर्व काल में ब्रह्मा की आज्ञा से उन्होंने प्रजाओं के हित की कामना से अति तेजस्वी इन्द्र के साथ पृथ्वी का दोहन किया । (११)

प्राचीनकाल में वेनपुत्र के अति विस्तृत पैतामह नामक यज्ञ में सभी शास्त्रों के प्रवक्ता, धर्मज्ञ, गुणवत्सल पौराणिक सूत के रूप में माया रूपधारी हरि स्वयं उत्पन्न हुए । हे श्रेष्ठ मुनियो ! मुझे पूर्वकाल में उत्पन्न वही सनातन (हरिस्वरूप सूत) जानो । (१२, १३)

अस्मिन् मन्वन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ।
श्रावयामास मां प्रीत्या पुराणं पुरुषो हरिः ॥१४
मदन्वये तु ये सूताः संभूता वेदवर्जिताः ।
तेषां पुराणवक्तृत्वं वृत्तिरासीदजाज्ञया ॥१५
स तु वैन्यः पृथुर्धीमान् सत्यसंधो जितेन्द्रियः ।
सार्वभौमो महातेजाः स्वधर्मपरिपालकः ॥१६
तस्य बाल्यात् प्रभृत्येव भक्तिर्नारायणेऽभवत् ।
गोवर्धनगिरिं प्राप्य तपस्तेपे जितेन्द्रियः ॥१७
तपसा भगवान् प्रीतः शङ्खचक्रगदाधरः ।
आगत्य देवो राजानं प्राह दामोदरः स्वयम् ॥१८
धार्मिकौ रूपसंपन्नौ सर्वशस्त्रभृतां वरौ ।
मत्प्रसादादसंदिग्धं पुत्रौ तव भविष्यतः ।
एवमुक्त्वा हृषीकेशः स्वकीयां प्रकृतिं गतः ॥१९
वैन्योऽपि वेदविधिना निश्चलां भक्तिमुद्वहन् ।
अपालयत् स्वकं राज्यं न्यायेन मधुसूदने ॥२०

इस मन्वन्तर में कृष्णद्वैपायन व्यास नामक पुराण पुरुष हरि ने स्वयं मुझे प्रीतिपूर्वक पुराण सुनाया है। (१४)

मेरे वंश में जो वेदवर्जित सूत उत्पन्न हुए अजन्मा (ब्रह्मा) की आज्ञा से पुराणों का प्रवचन करना उनकी वृत्ति हुई। (१५)

वे वैन्य पृथु बुद्धिमान्, सत्यसन्ध, जितेन्द्रिय, सम्पूर्ण भूमि के स्वामी, महातेजस्वी एवं स्वधर्म परिपालक थे। (१६)

बाल्यकाल से ही उनकी नारायण में भक्ति थी। गोवर्द्धन पर्वत पर जाकर उन जितेन्द्रिय (पृथु) ने तप किया। (१७)

उनके तप से शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले भगवान् प्रसन्न हो गये। राजा के पास आकर स्वयं दामोदर देव ने कहा— (१८)

मेरे अनुग्रह से निस्सन्देह तुम्हें धार्मिक, स्वरूपवान् सभी शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ दो पुत्र होंगे। ऐसा कहकर हृषीकेश अपने प्राकृतिक रूप में स्थित हो गए। (१९)

वैन्य (पृथु) भी वेदविधि से मधुसूदन में निश्चल भक्ति धारण करते हुए न्यायपूर्वक अपने राज्य का पालन करने लगे। (२०)

अचिरादेव तन्वङ्गी भार्या तस्य शुचिस्मिता ।
शिखण्डिनं हविर्द्धानमन्तर्द्धाना व्यजायत ॥२१
शिखण्डिनोऽभवत् पुत्रः सुशील इति विश्रुतः ।
धार्मिको रूपसंपन्नो वेदवेदाङ्गपारगः ॥२२
सोऽधीत्य विधिवद् वेदान् धर्मेण तपसि स्थितः ।
मतिं चक्रे भाग्ययोगात् संन्यासं प्रति धर्मवित् ॥२३
स कृत्वा तीर्थसंसेवां स्वाध्याये तपसि स्थितः ।
जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित् सिद्धसेवितम् ॥२४
तत्र धर्मपदं नाम धर्मसिद्धिप्रदं वनम् ।
अपश्यद् योगिनां गम्यमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम् ॥२५
तत्र मन्दाकिनी नाम सुपुण्या विमला नदी ।
पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता ॥२६
स तस्या दक्षिणे तीरे मुनीन्द्रैर्योगिभिर्वृतम् ।
सुपुण्यमाश्रमं रम्यमपश्यत् प्रीतिसंयुतः ॥२७

उनकी शुचिस्मिता कृशाङ्गी भार्या अन्तर्द्धान ने थोड़े ही समय में शिखण्डी, एवं हविर्द्धान (नामक पुत्रों) को जन्म दिया। (२१)

शिखण्डी को सुशील नाम से प्रसिद्ध, धार्मिक, रूपसंपन्न एवं वेदवेदाङ्गपारगामी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। (२२)

धर्मानुसार विधिपूर्वक वेदों का अध्ययनकर धर्मपूर्वक तप में रत उस धर्मज्ञ ने भाग्यवश संन्यास का विचार किया। (२३)

तीर्थ अर्थात् गुरु एवं पुण्यजनक स्थानों की भलीभाँति सेवा करने के उपरान्त स्वाध्याय एवं तप में लगा रहने वाला (वह) एक समय सिद्धों से सेवित हिमालय पर्वत पर गया। (२४)

वहाँ (उसने) योगियों को गम्य तथा ब्रह्म अर्थात् वेद एवं ब्राह्मणों के द्वेषियों को अगम्य धर्म एवं सिद्धि को देने वाले धर्मपद नामक वन को देखा। (२५)

वहाँ सिद्धों के आश्रम से विभूषित पद्मोत्पल के वन अर्थात् कमलदल के समूहों से युक्त सुन्दर पवित्र एवं स्वच्छ (जल वाली) मन्दाकिनी नाम की नदी थी। (२६)

उसके दक्षिण तट पर उसने प्रीतिपूर्वक मुनीन्द्रों एवं योगियों से युक्त सुन्दर-पवित्र व रम्य आश्रम को देखा। (२७)

मन्दाकिनीजले स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः ।
अर्चयित्वा महादेवं पुष्पैः पद्मोत्पलादिभिः ।।२८
ध्यात्वार्कसंस्थमीशानं शिरस्याधाय चाञ्जलिम् ।
संप्रेक्षमाणो भास्वन्तं तुष्टाव परमेश्वरम् ।।२९
रुद्राध्यायेन गिरिशं रुद्रस्य चरितेन च ।
अन्यैश्च विविधैः स्तोत्रैः शांभवैर्वेदसंभवैः ।।३०
अथास्मिन्नन्तरेऽपश्यत् समायान्तं महामुनिम् ।
श्वेताश्वतरनामानं महापाशुपतोत्तमम् ।।३१
भस्मसंदिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम् ।
तपसा कर्षितात्मानं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ।।३२
समाप्य संस्तवं शंभोरानन्दास्राविलेक्षणः ।
ववन्दे शिरसा पादौ प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।।३३
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वरः ।
योगीश्वरोऽद्य भगवान् दृष्टो योगविदां वरः ।।३४
अहो मे सुमहद्भाग्यं तपांसि सफलानि मे ।
किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयानघ ।।३५
सोऽनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम् ।
शिष्यत्वे परिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम् ।।३६
सांन्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः ।
ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितं व्रतम् ।।३७
अशेषवेदसारं तत् पशुपाशविमोचनम् ।
अन्त्याश्रममिति ख्यातं ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम् ।।३८
उवाच शिष्यान् संप्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिनः ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् ब्रह्मचर्यपरायणान् ।।३९
मया प्रवर्त्तितां शाखामधीत्यैवेह योगिनः ।
समासते महादेवं ध्यायन्तो निष्कलं शिवम् ।।४०
इह देवो महादेवो रममाणः सहोमया ।
अध्यास्ते भगवानीशो भक्तानामनुकम्पया ।।४१
इहाशेषजगद्धाता पुरा नारायणः स्वयम् ।
आराधयन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया ।।४२

मन्दाकिनी के जल में स्नान करने के उपरान्त पितृ-देवों का तर्पण कर (उसने) पुष्प एवं कमलदल द्वारा महादेव का पूजन किया। तत्पश्चात् सूर्यस्थ ईशान-अर्थात् परमेश्वर का ध्यान करने के अनन्तर मस्तक से हाथ जोड़कर सूर्य को देखते हुए (वह) रुद्राध्याय, रुद्र के चरित्र एवं अन्य अनेक प्रकार के शम्भु विषयक वैदिक स्तोत्रों से परमेश्वर गिरीश की स्तुति करने लगा। (२८-३०)

तदन्तर इसी बीच (उसने) समस्त अङ्गों को भस्म से लिप्त किये हुए कौपीन रूपी वस्त्र से युक्त तपस्या से क्षीण शरीर वाले शुक्ल यज्ञोपवीतधारी श्रेष्ठ महापाशुपत श्वेताश्वतर नामक महामुनि को आते देखा। (३१, ३२)

शम्भु की स्तुति समाप्त कर नेत्रों में आनन्दाश्रु भरे हुए (उसने उनके) चरणों में सिर से प्रणाम किया एवं हाथ जोड़ कर बोला— (३३)

क्योंकि आज (मुझे) योगज्ञों में श्रेष्ठ मुनीश्वर (स्वरूप) साक्षात् योगीश्वर भगवान् (आप) दिखलाई पड़े अतः मैं धन्य तथा अनुगृहीत हूँ। (३४)

अहा! मेरा भाग्य महान् एवं सुन्दर है। मेरे तप सफल हुए। हे निष्पाप! मैं क्या करूँ? मैं आपका शिष्य हूँ। (आप) मेरी रक्षा करें। (३५)

तदनन्तर सदाचार सम्पन्न राजा सुशील के ऊपर अनुग्रह कर उन्होंने तपस्या के कारण क्षीण हुए पापों वाले (उस राजा को अपने) शिष्य रूप से स्वीकार किया। (३६)

(उन) कुशल (मुनि) ने सम्पूर्ण संन्यास सम्बन्धी विधि करवाकर (उसे) ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान, अपनी (वेद की) शाखा द्वारा विहित व्रत, पशु अर्थात् अमुक्त जीवों के पाश अर्थात् (उन्हें) बाँधने वाली माया से छुटकारा दिलाने वाला सम्पूर्ण वेदों का तत्त्व तथा अन्त्याश्रम नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मादिकों द्वारा अनुष्ठित आश्रम प्रदान किया। (३७, ३८)

उस आश्रम स्थल में रहने वाले अपने ब्रह्मचर्य-परायण ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य शिष्यों को देखकर (उन्होंने) कहा— (३९)

योगी लोग मेरे द्वारा प्रवर्तित (वेद की) शाखा का अध्ययन कर निष्कल शिव, महादेव का ध्यान करते हुए यहाँ निवास करते हैं। (४०)

भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने की दृष्टि से भगवान् ईश महादेव उमा के साथ रमण करते हुए यहाँ रहते हैं। (४१)

प्राणियों के हित की इच्छा से सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले स्वयं नारायण महादेव की आराधना करते हुए प्राचीन काल में यहाँ रहते थे। (४२)

इहैव देवमीशानं देवानामपि दैवतम् ।
आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवाः ।।४३
इहैव मुनयः पूर्वं मरीच्याद्या महेश्वरम् ।
दृष्ट्वा तपोबलाज्ज्ञानं लेभिरे सार्वकालिकम् ।।४४
तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र तपोयोगसमन्वितः ।
तिष्ठ नित्यं मया सार्द्धं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ।।४५
एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम् ।
आचचक्षे महामन्त्रं यथावत् स्वार्थसिद्धये ।।४६
सर्वपापोपशमनं वेदसारं विमुक्तिदम् ।
अग्निरित्यादिकं पुण्यमृषिभिः संप्रवर्तितम् ।।४७
सोऽपि तद्वचनाद् राजा सुशीलः श्रद्धयान्वितः ।
साक्षात् पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत् ।।४८
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः कन्दमूलफलाशनः ।
शान्तो दान्तो जितक्रोधः संन्यासविधिमाश्रितः ।।४९
हविर्धानस्तथाऽग्नेय्यां जनयामास सत्सुतम् ।
प्राचीनबर्हिषं नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगम् ।।५०
प्राचीनबर्हिर्भगवान् सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समुद्रतनयायां वै दश पुत्रानजीजनत् ।।५१
प्रचेतसस्ते विख्याता राजानः प्रथितौजसः ।
अधीतवन्तः स्वं वेदं नारायणपरायणाः ।।५२
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
दक्षो जज्ञे महाभागो यः पूर्वं ब्रह्मणः सुतः ।।५३
स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता ।
कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्तः प्राचेतसोऽभवत् ।।५४
समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः ।
दृष्ट्वा यथोचितां पूजां दक्षाय प्रददौ स्वयम् ।।५५
तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः ।
पूजामनर्हामन्विच्छन् जगाम कुपितो गृहम् ।।५६
कदाचित् स्वगृहं प्राप्तां सतीं दक्षः सुदुर्मनाः ।
भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामास वै रुषा ।।५७

यहीं देवों के भी देव ईशान (शिव) की आराधना कर देवों एवं दानवों ने महती सिद्धि प्राप्त की। (४३)

तप के बल से महेश्वर का दर्शन कर मरीच्यादि मुनियों ने यहीं सभी कालों में बना रहने वाला स्थिर ज्ञान प्राप्त किया। (४४)

अतः हे राजेन्द्र! तुम भी तप एवं योग से युक्त होकर मेरे साथ (यहाँ) रहो। इससे तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। (४५)

ऐसा कहने के उपरान्त पिनाकधारी देव (शङ्कर) का ध्यान कर उन विप्रश्रेष्ठ ने स्वार्थ की सिद्धि के लिये सभी पापों को नष्ट करने वाले, वेदों के सारस्वरूप, मोक्षप्रद, ऋषियों द्वारा प्रवर्त्तित एवं प्रणय-जनक "अग्नि" इत्यादि महामन्त्र का विधिपूर्वक उपदेश दिया। (४६,४७)

वह सुशील राजा भी उनके कहने से श्रद्धापूर्वक साक्षात् पशुपति का भक्त होकर वेदाभ्यास में रत हुआ। (४८)

सभी अङ्गों में भस्म लगाकर कन्दमूल एवं फलों का आहार करते हुए शान्त, दान्त एवं क्रोधजयी (राजा) ने संन्यास विधि अङ्गीकार कर लिया। (४९)

हविर्द्धान ने आग्नेयी नामक अपनी पत्नी में धनुर्वेद के पारगामी प्राचीनबर्हि नामक सत्पुत्र को उत्पन्न किया। (५०)

सभी शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भगवान् प्राचीनबर्हि ने समुद्र की पुत्री से दस पुत्रों को उत्पन्न किया। (५१)

प्रचेतस के नाम से प्रसिद्ध अतितेजस्वी नारायण परायण उन राजाओं ने अपने वेद का अध्ययन किया। (५२)

इन्हीं दस प्रचेताओं से मारिषा (नामक उनकी पत्नी) को महाभाग्यशाली प्रजापति दक्ष, जो पूर्व समय में ब्रह्मा के पुत्र थे, उत्पन्न हुए। (५३)

उन (पूर्वकालिक) दक्ष ने बुद्धिमान् महेश रुद्र से विवाद किया था। (इससे) रुद्र ने उन्हें शाप दिया था। अतएव वे प्रचेताओं के पुत्र बने। (५४)

(पूर्व समय में) स्वयं महादेव हर ने देवी (पार्वती) के गृह आ रहे दक्ष को यथोचित आदर प्रदान किया। (५५)

उस समय तमोगुण के आवेश से युक्त ब्रह्मा के पुत्र (दक्ष अपने) अनुपयुक्त अधिक पूजा की इच्छा करने के कारण कुपित होकर (अपने) गृह चले गये। (५६)

दूषित चित्त दक्ष ने किसी समय अपने घर आयी सती की (उनके) पति के साथ निन्दा कर क्रोध से उनकी भर्त्सना की— (५७)

अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्त्तुस्तव पिनाकिनः ।
त्वमप्यसत्सुताऽस्माकं गृहाद् गच्छ यथागतम् ।।५८
तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सा देवी शंकरप्रिया ।
विनिन्द्य पितरं दक्षं ददाहात्मानमात्मना ।।५९
प्रणम्य पशुभर्त्तारं भर्त्तारं कृत्तिवाससम् ।
हिमवद्दुहिता साऽभूत् तपसा तस्य तोषिता ।।६०
ज्ञात्वा तद्भगवान् रुद्रः प्रपन्नार्त्तिहरो हरः ।
शशाप दक्षं कुपितः समागत्याथ तद्गृहम् ।।६१
त्यक्त्वा देहमिमं ब्रह्मन् क्षत्रियाणां कुलोद्भवः ।
स्वस्यां सुतायां मूढात्मा पुत्रमुत्पादयिष्यसि ।।६२
एवमुक्त्वा महादेवो ययौ कैलासपर्वतम् ।
स्वायंभुवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत् ।।६३
एतद् वः कथितं सर्वं मनोः स्वायंभुवस्य तु ।
विसर्गं दक्षपर्यन्तं शृण्वतां पापनाशनम् ।।६४

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

१४

नैमिषीया ऊचुः ।

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्तिं विस्तरात् सूत ब्रूहि वैवस्वतेऽन्तरे ।।१
स शप्तः शंभुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः ।
किमकार्षीन्महाबुद्धे श्रोतुमिच्छाम सांप्रतम् ।।२

सूत उवाच ।

वक्ष्ये नारायणेनोक्तं पूर्वकल्पानुषङ्गिकम् ।
त्रिकालबद्धं पापघ्नं प्रजासर्गस्य विस्तरम् ।।३
स शप्तः शंभुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः ।
विनिन्द्य पूर्ववैरेण गङ्गाद्वारेऽयजद् भवम् ।।४

तुम्हारे पिनाकधारी पति से मेरे अन्य जामाता श्रेष्ठ हैं एवं तुम भी अच्छी पुत्री नहीं हो। अतः मेरे घर से जहाँ से आई हो वहाँ चली जाओ। (५८)

उनके उस वचन को सुनकर शङ्कर की प्रिया उन देवी ने पिता दक्ष की निन्दा करने के उपरान्त चर्माम्बरधारी अपने स्वामी पशुपति को प्रणाम कर स्वयं ही अपने को भस्म कर डाला तदनन्तर वे हिमालय की तपस्या से प्रसन्न होकर उसकी पुत्री बनीं। (५९, ६०)

तत्पश्चात् वह (समाचार) जानकर भक्तों के कष्ट-हारी भगवान् रुद्र हर दक्ष के घर आये और उन्हें क्रोध-पूर्वक शाप दिया। (६१)

हे ब्रह्मन्! हे मूढात्मा! इस शरीर को छोड़कर क्षत्रियों के कुल में जन्म ग्रहण कर (तुम) अपनी पुत्री से पुत्र उत्पन्न करोगे। (६२)

ऐसा कहकर महादेव कैलास पर्वत पर चले गए। यथा समय स्वायम्भुव दक्ष भी प्रचेता के पुत्र हुए। (६३)

(मैंने) आप लोगों से स्वायम्भुव मनु की दक्षपर्यन्त विशेष सृष्टि का वर्णन किया। (यह वर्णन) सुनने वालों के पाप को नष्ट करता है। (६४)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुरण संहिता के पूर्वविभाग में तेरहवाँ अध्याय समाप्त—१३.

१४

नैमिषारण्य निवासियों ने कहा—

हे सूत! वैवस्वत मनु के समय हुई देवों, दानवों, गन्धर्वों उरगों एवं राक्षसों की उत्पत्ति का विस्तार पूर्वक वर्णन करें। (१)

हे महाबुद्धि! पूर्व काल में शम्भु से शापित प्रचेता के पुत्र राजा दक्ष ने क्या किया? अब हम यह सुनना चाहते हैं। (२)

सूत ने कहा—मैं पूर्व कल्प के प्रसङ्ग में नारायण द्वारा कथित तीनों कालों अर्थात् भूत, वर्तमान एवं भविष्य से सम्बन्धित पापों को नष्ट करने वाले प्रजा-सृष्टि के विस्तार का वर्णन करता हूँ। (३)

पूर्व काल में शम्भु से शापित प्रचेता के पुत्र राजा दक्ष ने पूर्व वैर के कारण शङ्कर की निन्दा कर गङ्गाद्वार में यज्ञ किया। (४)

देवाश्च सर्वे भागार्थमाहूता विष्णुना सह ।
सहैव मुनिभिः सर्वैरागता मुनिपुंगवाः ।।५
दृष्ट्वा देवकुलं कृत्स्नं शंकरेण विनागतम् ।
दधीचो नाम विप्रर्षिः प्राचेतसमथाब्रवीत् ।।६
दधीच उवाच ।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः ।
स देवः सांप्रतं रुद्रो विधिना किं न पूज्यते ।।७
दक्ष उवाच ।
सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु न भागः परिकल्पितः ।
न मन्त्रा भार्यया सार्द्धं शंकरस्येति नेज्यते ।।८
विहस्य दक्षं कुपितो वचः प्राह महामुनिः ।
शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयः स्वयम् ।।९
दधीच उवाच ।
यतः प्रवृत्तिर्विश्वेषां यश्चास्य परमेश्वरः ।
संपूज्यते सर्वयज्ञैर्विदित्वा किल शंकरः ।।१०
दक्ष उवाच ।
न ह्ययं शंकरो रुद्रः संहर्त्ता तामसो हरः ।
नग्नः कपाली विकृतो विश्वात्मा नोपपद्यते ।।११
ईश्वरो हि जगत्स्रष्टा प्रभुर्नारायणः स्वराट् ।
सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यते सर्वकर्मसु ।।१२
दधीच उवाच ।
किं त्वया भगवानेष सहस्रांशुर्न दृश्यते ।
सर्वलोकैकसंहर्त्ता कालात्मा परमेश्वरः ।।१३
यं गृणन्तीह विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः ।
सोऽयं साक्षी तीव्ररोचिः कालात्मा शांकरी तनुः ।।१४
एष रुद्रो महादेवः कपर्दी च घृणी हरः ।
आदित्यो भगवान् सूर्यो नीलग्रीवो विलोहितः ।।१५
संस्तूयते सहस्रांशुः सामगाध्वर्युहोतृभिः ।
पश्यैनं विश्वकर्माणं रुद्रमूर्तिं त्रयीमयम् ।।१६
दक्ष उवाच ।
य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः ।
सर्वे सूर्या इति ज्ञेया न ह्यन्यो विद्यते रविः ।।१७

विष्णु-सहित सभी देवता भाग लेने के लिये बुलाये गए । सभी मुनियों सहित हे श्रेष्ठ मुनियो ! वे वहाँ आये । (५)

तत्पश्चात् विना शङ्कर के (आए) हुए संपूर्ण देवकुल को आए देख कर दधीच नामक ब्रह्मर्षिने प्रचेता के पुत्र दक्ष से कहा । (६)

दधीच ने कहा—ब्रह्मा से लेकर पिशाच तक जिसकी आज्ञा का पालन करते हैं उन रुद्र देव की पूजा विधिपूर्वक क्यों नहीं की जा रही है ? (७)

दक्ष ने कहा—सभी यज्ञों में भार्या सहित शङ्कर के भाग एवं मन्त्रों की परिकल्पना नहीं हुई है । अतः उनकी पूजा नहीं होती । (८)

सर्वज्ञानमय महामुनि ने स्वयं कोपपूर्वक हँसकर सभी देवों को सुनाते हुए दक्ष से कहा । (९)

दधीच ने कहा—जिससे सभी की प्रवृत्ति होती है एवं जो इस (विश्व) का परमेश्वर है वे शङ्कर निश्चय ही सभी यज्ञों द्वारा ज्ञानपूर्वक पूजित होते हैं । (१०)

दक्ष ने कहा—(क्या तुम्हें यह) विदित नहीं है कि तमोगुणी, संहारकारी, नग्न एवं कपाल धारण करने वाले विकृत रुद्र हर शङ्कर विश्वात्मा नहीं हो सकते ? (११)

जगत् की सृष्टि करने वाले स्वराट् प्रभु नारायण हरि ईश्वर हैं । सभी कर्मों में उन सत्त्वात्मक भगवान् की पूजा की जाती है । (१२)

दधीच ने कहा—क्या तुम सभी लोकों के अद्वितीय संहारकर्त्ता कालस्वरूप परमेश्वर इन सहस्रकिरण भगवान् (सूर्य) को नहीं देखते । (१३)

धर्मपरायण ब्रह्मवादी विद्वान् जिनकी स्तुति करते हैं वह तीक्ष्ण तेजसम्पन्न कालस्वरूप साक्षी (सूर्य) शङ्कर के शरीर स्वरूप हैं । (१४)

अदिति के पुत्र ये भगवान् सूर्य ही नीलकण्ठ विलोहित जटाधारी, रश्मिमाली, महादेव रुद्र हर हैं । (१५)

सामवेद का गान करने वाले, अध्वर्यु एवं होता लोग सहस्रांशु सूर्य की स्तुति करते हैं । विश्व की रचना करने वाले त्रयीमय—अर्थात् ऋग्, यजुः एवं सामस्वरूप इन रुद्र मूर्त्ति को देखो । (१६)

दक्ष ने कहा—यज्ञ में भाग ग्रहण करने वाले आये हुए ये सभी बारह आदित्य ही सूर्य के नाम से ज्ञात हैं । कोई अन्य सूर्य नहीं है । (१७)

एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षवः ।
बाढमित्यब्रुवन् वाक्यं तस्य साहाय्यकारिणः ॥१८

तमसाविष्टमनसो न पश्यन्ति वृषध्वजम् ।
सहस्रशोऽथ शतशो भूय एव विनिन्द्यते ॥१९

निन्दन्तो वैदिकान् मन्त्रान् सर्वभूतपतिं हरम् ।
अपूजयन् दक्षवाक्यं मोहिता विष्णुमायया ॥२०

देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादयः ।
नापश्यन् देवमीशानमृते नारायणं हरिम् ॥२१

हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
पश्यतामेव सर्वेषां क्षणादन्तरधीयत ॥२२

अन्तर्हिते भगवति दक्षो नारायणं हरिम् ।
रक्षकं जगतां देवं जगाम शरणं स्वयम् ॥२३

प्रवर्त्तयामास च तं यज्ञं दक्षोऽथ निर्भयः ।
रक्षते भगवान् विष्णुः शरणागतरक्षकः ॥२४

ऐसा कहने पर यज्ञ देखने की इच्छा से आये हुए उनकी सहायता करने वाले मुनियों ने दक्ष से कहा—"ठीक है ।" (१८)

तदनन्तर तमोगुण के आवेश से मन के युक्त होने के कारण वृषध्वज (शिव) को न देखते हुए सैकड़ो हजारों की संख्या में (आये हुए) बहुत से लोगों ने विष्णु की माया से मोहित होकर वैदिक मन्त्रों एवं सर्वभूतपति हर की पुनः निन्दा की एवं दक्ष के वाक्य का अनुमोदन किया । (१९, २०)

भाग के लिये आए हुए इन्द्रादिक सभी देवों ने भी नारायण हरि के अतिरिक्त देव ईशान अर्थात् शिव को नहीं देखा (माना) । (२१)

ब्रह्मज्ञों में सर्वश्रेष्ठ हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा सब के देखते ही देखते क्षण भर में तिरोहित हो गए । (२२)

भगवान् (ब्रह्मा) के अन्तर्हित हो जाने पर स्वयं दक्ष जगत् के रक्षक देव नारायण हरि की शरण में गए । (२३)

तदनन्तर निर्भय होकर दक्ष ने वह यज्ञ प्रारम्भ किया शरणागत की रक्षा करने वाले भगवान् विष्णु (यज्ञ की) रक्षा करने लगे । (२४)

पुनः प्राह च तं दक्षं दधीचो भगवानृषिः ।
संप्रेक्ष्यर्षिगणान् देवान् सर्वान् वै ब्रह्मविद्विषः ॥२५

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने ।
नरः पापमवाप्नोति महद् वै नात्र संशयः ॥२६

असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैव विमानना ।
दण्डो देवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः ॥२७

एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः शशापेश्वरविद्विषः ।
समागतान् ब्राह्मणांस्तान् दक्षसाहाय्यकारिणः ॥२८

यस्माद् बहिष्कृता वेदा भवद्भिः परमेश्वरः ।
विनिन्दितो महादेवः शंकरो लोकवन्दितः ॥२९

भविष्यध्वं त्रयीबाह्याः सर्वेऽपीश्वरविद्विषः ।
निन्दन्तो ह्यैश्वरं मार्गं कुशास्त्रासक्तमानसाः ॥३०

मिथ्याधीतसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिनः ।
प्राप्य घोरं कलियुगं कलिजैः किल पीडिताः ॥३१

ब्रह्म (शिव) के विद्वेषी तथा सभी ऋषियों एवं देवों को देखकर भगवान् दधीच ऋषि ने पुनः उस दक्ष से कहा— (२५)

इसमें सन्देह नहीं है कि अपूज्य की पूजा करने और पूज्य की पूजा न करने से मनुष्य को निश्चय ही महान् पाप लगता है । (२६)

जहाँ असज्जनों का ग्रहण एवं सज्जनों का अनादर होता है वहाँ शीघ्र ही दारुण दैवी दण्ड उपस्थित होता है । (२७)

ऐसा कहकर ब्रह्मर्षि ने दक्ष की सहायता करने वाले आए हुए उन ईश्वर-द्वेषी ब्राह्मणों को शाप दिया—(२८)

क्योंकि आप लोगों ने वेदों को बहिष्कृत किया है एवं लोकवन्दित परमेश्वर महादेव की निन्दा की अतः सभी ईश्वर द्वेषी तुमलोग त्रयी अर्थात् ऋग्, यजुः एवं सामवेद से रहित हो जाओगे और कुशास्त्रों में चित्त लगाकर ईश्वरी मार्ग की निन्दा करोगे । (२९, ३०)

घोर कलियुग आने पर (तुम सभी ईश्वर-द्वेषी) मिथ्या अध्ययन एवं आचार युक्त होकर मिथ्या ज्ञान का प्रलाप करने वाले एवं कलि के कारण उत्पन्न कष्टों से परिपीडित होओगे । (३१)

त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं गच्छध्वं नरकान् पुनः ।
भविष्यति हृषीकेशः स्वाश्रितोऽपि पराङ्मुखः ।।३२
एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिविरराम तपोनिधिः ।
जगाम मनसा रुद्रमशेषाघविनाशनम् ।।३३
एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेवं महेश्वरम् ।
पतिं पशुपतिं देवं ज्ञात्वैतत् प्राह सर्वदृक् ।।३४

देव्युवाच ।

दक्षो यज्ञेन यजते पिता मे पूर्वजन्मनि ।
विनिन्द्य भवतो भावमात्मानं चापि शंकर ।।३५
देवाः सहर्षिभिश्चासंस्तत्र साहाय्यकारिणः ।
विनाशयाशु तं यज्ञं वरमेकं वृणोम्यहम् ।।३६
एवं विज्ञापितो देव्या देवो देववरः प्रभुः ।
ससर्ज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञजिघांसया ।।३७
सहस्रशीर्षपादं च सहस्राक्षं महाभुजम् ।
सहस्रपाणिं दुर्धर्षं युगान्तानलसन्निभम् ।।३८
दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दण्डहस्तं महानादं शार्ङ्गिणं भूतिभूषणम् ।।३९
वीरभद्र इति ख्यातं देवदेवसमन्वितम् ।
स जातमात्रो देवेशमुपतस्थे कृताञ्जलिः ।।४०
तमाह दक्षस्य मखं विनाशय शिवोऽस्त्विति ।
विनिन्द्य मां स यजते गङ्गाद्वारे गणेश्वर ।।४१
ततो बन्धुप्रयुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया ।
वीरभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमत् क्रतुः ।।४२
मन्युना चोमया सृष्टा भद्रकाली महेश्वरी ।
तया च सार्द्धं वृषभं समारुह्य ययौ गणः ।।४३
अन्ये सहस्रशो रुद्रा निसृष्टास्तेन धीमता ।
रोमजा इति विख्यातास्तस्य साहाय्यकारिणः ।।४४
शूलशक्तिगदाहस्ताष्टङ्कोपलकरास्तथा ।
कालाग्निरुद्रसंकाशा नादयन्तो दिशो दश ।।४५
सर्वे वृषासनारूढाः सभार्याश्चातिभीषणाः ।
समावृत्य गणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमखं प्रति ।।४६

संपूर्ण तपोवल का त्याग कर तुम सभी लोग पुनः नरक प्राप्त करो। भलीभाँति आश्रय ग्रहण करने पर भी हृषीकेश (विष्णु तुमसे) पराङ् मुख रहेंगे। (३२)

ऐसा कहकर तपोनिधि ब्रह्मर्षि चुप हो गये एवं मन से सम्पूर्ण पापों के नाशक रुद्र की शरण में गए। (३२)

इसी वीच यह सव (चरित्र) जानकर सर्वदर्शी देवी (पार्वती) ने (अपने) पतिदेव पशुपति महादेव महेश्वर से कहा। (३४)

देवी ने कहा—हे शङ्कर! मेरे पूर्वजन्म के पिता दक्ष आपके भाव एवं स्वरूप की निन्दा कर यज्ञ कर रहे हैं। (३५)

वहाँ देवता और महर्षि लोग (उनकी) सहायता कर रहे हैं। मैं यह एक वर माँगती हूँ कि आप शीघ्र उस यज्ञ को नष्ट कर दें। (३६)

देवी के ऐसा कहने पर देवों में श्रेष्ठ प्रभु देव (शङ्कर) ने दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने की इच्छा से शीघ्र ही सहस्रशिर, सहस्र पैर, सहस्र नेत्र एवं वड़ी भुजाओं तथा सहस्र हाथों वाले, दुर्द्धर्ष, प्रलयकालीन अग्नि के सदृश, घोर दंष्ट्रा अर्थात् दाढ़ों वाले, देखने में भयङ्कर, शङ्ख, चक्र एवं गदा-धारी, हाथ में दण्ड धारण करने वाले, महान् शब्द करने वाले, सींग के वने धनुप से युक्त, विभूति से भूषित, देवाधिदेव से सम्वन्धित वीरभद्र नामक रुद्र पुरुष को उत्पन्न किया। उत्पन्न होते ही हाथ जोड़े हुए वह देवेश (शङ्कर) के सम्मुख उपस्थित हुआ। (३७-४०)

(शङ्कर ने) उससे कहा—"हे गणेश्वर! दक्ष के यज्ञ को विनष्ट करो वह (दक्ष) मेरी निन्दा करके गङ्गाद्वार में यज्ञ कर रहा है। तुम्हारा कल्याण हो।" (४१)

तदनन्तर यज्ञ नष्ट करने के लिये वन्धु (शिव) द्वारा प्रयुक्त सिंह के सदृश लीलापूर्वक वीरभद्र ने अकेले दक्ष का यज्ञ विनष्ट कर दिया। (४२)

उमा ने भी क्रोधपूर्वक महेश्वरी भद्रकाली की सृष्टि की। वृपभ पर आरुढ़ गण उसके साथ गया। (४३)

उन वुद्धिमान् (शङ्कर) ने उसकी सहायता करने वाले 'रोमज' नाम से प्रसिद्ध अन्य हजारों रुद्रों को उत्पन्न किया। (४४)

हाथों में शूल, शक्ति, गदा, टङ्क तथा पत्थर लिये हुए, कालाग्नि रुद्र के सदृश दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करते

सर्वे संप्राप्य तं देशं गङ्गाद्वारमिति श्रुतम् ।
ददृशुर्यज्ञदेशं तं दक्षस्यामिततेजसः ।।४७
देवाङ्गनासहस्राढ्यमप्सरोगीतनादितम् ।
वीणावेणुनिनादाढ्यं वेदवादाभिनादितम् ।।४८
दृष्ट्वा सहर्षिभिर्देवैः समासीनं प्रजापतिम् ।
उवाच भद्रया रुद्रैर्वीरभद्रः स्मयन्निव ।।४९
वयं ह्यनुचराः सर्वे शर्वस्यामिततेजसः ।
भागाभिलिप्सया प्राप्ता भागान् यच्छध्वमीप्सितान् ५०
अथ चेत् कस्यचिदियमाज्ञा मुनिसुरोत्तमाः ।
भागो भवद्भ्यो देयस्तु नास्मभ्यमिति कथ्यताम् ।
तं ब्रूताज्ञापयति यो वेत्स्यामो हि वयं ततः ।।५१
एवमुक्ता गणेशेन प्रजापतिपुरःसराः ।
देवा ऊचुर्यज्ञभागे न च मन्त्रा इति प्रभुम् ।।५२
मन्त्रा ऊचुः सुरान् यूयं तमोपहतचेतसः ।
ये नाध्वरस्य राजानं पूजयध्वं महेश्वरम् ।।५३
ईश्वरः सर्वभूतानां सर्वभूततनुर्हरः ।
पूज्यते सर्वयज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिदः ।।५४
एवमुक्ता अपीशानं मायया नष्टचेतसः ।
न मेनिरे ययुर्मन्त्रा देवान् मुक्त्वा स्वमालयम् ।।५५
ततः स रुद्रो भगवान् सभार्यः सगणेश्वरः ।
स्पृशन् कराभ्यां ब्रह्मर्षि दधीचं प्राह देवताः ।।५६
मन्त्राः प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलगर्वितैः ।
यस्मात् प्रसह्य तस्माद् वो नाशयाम्यद्य गर्वितम् ।।५७
इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुंगवः ।
गणेश्वराश्च संक्रुद्धा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपुः ।।५८
प्रस्तोत्रा सह होत्रा च अश्वं चैव गणेश्वराः ।
गृहीत्वा भीषणाः सर्वे गङ्गास्रोतसि चिक्षिपुः ।।५९

हुए अपनी भार्याओं के साथ वृषभ पर आरूढ़, अतिभीषण वे सभी लोग श्रेष्ठ गण को घेर कर दक्ष के यज्ञ की ओर चले। (४५, ४६)

गङ्गाद्वार के नाम से प्रसिद्ध उस स्थान पर पहुँच कर उन सभी ने अमित तेजस्वी दक्ष के सहस्रों देवाङ्गनाओं से युक्त, अप्सराओं के गीत से प्रतिध्वनित, वीणा एवं बाँसुरी की ध्वनि से मुखरित तथा वेद-मंत्रों के उच्चारण से गुञ्जित यज्ञस्थल को देखा। (४७, ४८)

देवताओं एवं ऋषियों के साथ बैठे हुए प्रजापति (दक्ष) को देखकर उन वीरभद्र ने हँसते हुए भद्रा एवं रुद्रों के साथ यह वचन कहा। (४९)

अमित तेजस्वी शङ्कर के हम सभी अनुचर लोग भाग प्राप्त करने की इच्छा से आए हैं। (आप हमारा) इच्छित भाग प्रदान करें। (५०)

हे उत्तम मुनियो एवं देवगण ! अथवा आपको किसकी यह आज्ञा है कि मुझे भाग न दें और आप लोगों का ही भाग है आप हमें यह वतलायें। जो ऐसी आज्ञा देने वाला है उसे वतलायें। तदनन्तर हम समझेंगे।" (५१)

गणेश (वीरभद्र) के ऐसा कहने पर प्रजापति (दक्ष) सहित देवों ने प्रभु (गणेश्वर) से कहा—"यज्ञ भाग के विषय में मन्त्र नहीं हैं"। (५२)

(इसपर) मन्त्रों ने देवों से (स्वयं) कहा—"आपका चित्त तमोगुण से आक्रान्त हो गया है। अतएव आप यज्ञ के राजा महेश्वर की पूजा नहीं कर रहे हैं। (५३)

"सभी भूतों के ईश्वर, सभी भूत स्वरूप शरीरवाले एवं समस्त अभ्युदय तथा सिद्धियों को देनेवाले हर की पूजा सभी यज्ञों में होती है।" (५४)

ईशान अर्थात् गणेश्वर शंकर के वारे में ऐसा कहे जाने पर भी माया के कारण नष्ट चेतना वाले देवों ने नहीं माना तव मंत्र उन्हें छोड़कर अपने स्थान पर चले गए। (५५)

तदनन्तर भार्या एवं गणेश्वरों सहित उन (वीरभद्र स्वरूप) रुद्र ने ब्रह्मर्षि दधीच को हाथों से स्पर्श करते हुए देवों से कहा— (५६)

क्योंकि वल के दर्प से युक्त होने के कारण तुम लोगों ने मन्त्रों को प्रमाण नहीं माना अतएव वलपूर्वक मैं आज आप सभी के गर्व को नष्ट करूँगा। (५७)

ऐसा कहकर गणश्रेष्ठ (वीरभद्र) ने उस यज्ञशाला को जला दिया। अत्यन्त क्रुद्ध गणेश्वरों ने (यज्ञ के) यूपों अर्थात् स्तम्भों को उखाड़ कर फेंक दिया। सभी भयङ्कर गणेश्वरों ने होता अर्थात् आहुति देने वाले के साथ प्रस्तोता अर्थात् पाठ करने वाले एवं अश्व को भी पकड़ कर गङ्गा के प्रवाह में फेंक दिया। (५८,५९)

वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्योद्यच्छतःकरम् ।
व्यष्टम्भयददीनात्मा तथाऽन्येषां दिवौकसाम् ।।६०
भगस्य नेत्रे चोत्पाटच करजाग्रेण लीलया ।
निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चैवमपातयत् ।।६१
तथा चन्द्रमसं देवं पादाङ्गुष्ठेन लीलया ।
धर्षयामास बलवान् स्मयमानो गणेश्वरः ।।६२
वह्नेर्हस्तद्वयं छित्त्वा जिह्वामुत्पाटच लीलया ।
जघान मूर्ध्नि पादेन मुनीनपि मुनीश्वराः ।।६३
तथा विष्णुं सगरुडं समायान्तं महाबलः ।
विव्याध निशितैर्बाणैः स्तम्भयित्वा सुदर्शनम् ।।६४
समालोक्य महाबाहुरागत्य गरुडो गणम् ।
जघान पक्षैः सहसा ननादाम्बुनिधिर्यथा ।।६५
ततः सहस्रशो भद्रः ससर्ज गरुडान् स्वयम् ।
वैनतेयादभ्यधिकान् गरुडं ते प्रदुद्रुवुः ।।६६
तान् दृष्ट्वा गरुडो धीमान् पलायत महाजवः ।
विसृज्य माधवं वेगात् तदद्भुतमिवाभवत् ।।६७
अन्तर्हिते वैनतेये भगवान् पद्मसंभवः ।
आगत्य वारयामास वीरभद्रं च केशवम् ।।६८
प्रसादयामास च तं गौरवात् परमेष्ठिनः ।
संस्तूय भगवानीशः साम्बस्तत्रागमत् स्वयम् ।।६९
वीक्ष्य देवाधिदेवं तं साम्बं सर्वगणैर्वृतम् ।
तुष्टाव भगवान् ब्रह्मा दक्षः सर्वे दिवौकसः ।।७०
विशेषात् पार्वतीं देवीमीश्वरार्द्धशरीरिणीम् ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्य च कृताञ्जलिः ।।७१
ततो भगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम् ।
प्रसन्नमानसा रुद्रं वचः प्राह घृणानिधिः ।।७२
त्वमेव जगतः स्रष्टा शासिता चैव रक्षकः ।
अनुग्राह्यो भगवता दक्षश्चापि दिवौकसः ।।७३
ततः प्रहस्य भगवान् कपर्दी नीललोहितः ।
उवाच प्रणतान् देवान् प्राचेतसमथो हरः ।।७४

दीनता-रहित तेजस्वी वीरभद्र ने भी इन्द्र के उठे सौ हाथों एवं अन्य देवताओं के उठे हुए हाथों को स्तब्ध कर दिया। (६०)

(उन्होंने) लीलापूर्वक अपने अँगुलियों के अग्रभाग से भग देवता के नेत्रों को निकाल लिया एवं मुक्के से मार कर पूषा के दाँतो को गिरा दिया। (६१)

हँसते हुए बलवान् गणेश्वर ने इसी प्रकार लीलापूर्वक पैर के अँगूठे से चन्द्रमा को धर्षित किया। (६२)

वह्नि के दोनों हाथों को काटकर लीलापूर्वक उनकी जिह्वा को उखाड़ लिया। हे मुनीश्वरो ! (उन्होंने) मुनियों के भी मस्तक पर पैर से प्रहार किया। (६३)

(उन) महाबली ने सुदर्शन (चक्र) को स्तब्ध कर गरुड के साथ आ रहे विष्णु को तीक्ष्ण बाणों से विद्ध कर दिया। (६४)

(उन) गण (वीरभद्र) को देखकर महाबाहु गरुड ने आकर सहसा गण (वीरभद्र) को (अपने) पंखों से मारा एवं समुद्र के समान गर्जन करने लगा। (६५)

तदुपरान्त वीरभद्र ने स्वयं विनता के पुत्र गरुड से उत्कृष्ट सहस्रों गरुड़ों को उत्पन्न किया। वे गरुड़ के ऊपर टूट पड़े। (६६)

उन्हें देख कर बुद्धिमान् एवं महावेगवान् गरुड़ माधव को छोड़ कर वेगपूर्वक भागे। यह एक अद्भुत बात थी। (६७)

विनतापुत्र (गरुड़) के अन्तर्हित हो जाने पर कमल से उत्पन्न भगवान् ब्रह्मा ने आकर वीरभद्र और केशव को रोका। (६८)

परमेष्ठी ब्रह्मा के गौरव से (वीरभद्र ने उनकी) स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। पार्वती-सहित भगवान् ईश वहाँ स्वयं आ गए। (६९)

सभी गणों से आवृत उमा-सहित देवाधिदेव को देखकर भगवान् ब्रह्मा, दक्ष एवं सभी देवता (उनकी) स्तुति करने लगे। (७०)

दक्ष ने ईश्वर के शरीरार्द्ध स्वरूपा पार्वती को विशेषरूप से प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए अनेक प्रकार के स्तोत्रों से प्रसन्न किया। (७१)

तदनन्तर दयानिधि देवी भगवती ने हँसते हुए प्रसन्न-मन से महेश्वर रुद्र से यह वचन कहा— (७२)

आप ही जगत के कर्त्ता, शासक एवं रक्षक हैं। आप दक्ष एवं देवों के ऊपर अनुग्रह करें। (७३)

तदनन्तर जटाजूटधारी नीललोहित भगवान् हर ने हँसकर देवों एवं प्रचेता के पुत्र (दक्ष से) कहा— (७४)

गच्छध्वं देवताः सर्वाः प्रसन्नो भवतामहम् ।
संपूज्यः सर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽहं विशेषतः ॥७५
त्वं चापि शृणु मे दक्ष वचनं सर्वरक्षणम् ।
त्यक्त्वा लोकैषणामेतां मद्भक्तो भव यत्नतः ॥७६
भविष्यसि गणेशानः कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम ।
तावत् तिष्ठ ममादेशात् स्वाधिकारेषु निर्वृतः ॥७७
एवमुक्त्वा स भगवान् सपत्नीकः सहानुगः ।
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥७८
अन्तर्हिते महादेवे शंकरे पद्मसंभवः ।
व्याजहार स्वयं दक्षमशेषजगतो हितम् ॥७९
ब्रह्मोवाच ।
किं तवापगतो मोहः प्रसन्ने वृषभध्वजे ।
यदाचष्ट स्वयं देवः पालयैतदतन्द्रितः ॥८०
सर्वेषामेव भूतानां हृद्येष वसतीश्वरः ।
पश्यन्त्येनं ब्रह्मभूता विद्वांसो वेदवादिनः ॥८१

हे सभी देवताओ ! जाओ । मैं आप पर प्रसन्न हूँ । मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिए । सभी यज्ञों में विशेष रूप से मेरी पूजा करनी चाहिए । हे दक्ष ! तुम भी मेरे सभी के रक्षक वचन को सुनो इस लौकिक इच्छा को छोड़कर यत्नपूर्वक मेरे भक्त वनो । (७५, ७६)

मेरे अनुग्रह से कल्प का अन्त होने पर तुम गणेशान (गणों के स्वामी) वनोगे उस समय तक मेरे आदेश से अपने अधिकार पर शान्तिपूर्वक बने रहो । (७७)

ऐसा कहकर पत्नी एवं अनुचरों सहित वे भगवान् अमित तेजस्वी दक्ष से तिरोहित हो गए । (७८)

महादेव शङ्कर के अन्तर्हित हो जाने पर पद्म से उत्पन्न (ब्रह्मा) ने स्वयं दक्ष से सम्पूर्ण जगत् के लिये हितकारी (वचन) कहा । (७९)

ब्रह्मा ने कहा—

वृषभध्वज (शङ्कर) के प्रसन्न हो जाने पर क्या तुम्हारा मोह दूर हुआ ? उन देव ने स्वयं जो कहा है उसे आलस्य-रहित होकर करो । (८०)

ये परमेश्वर सभी प्राणियों के हृदय में स्थित हैं । वेदवादी ब्रह्म स्वरूप विद्वान् लोग उनका साक्षात्कार करते हैं । (८१)

स आत्मा सर्वभूतानां स बीजं परमा गतिः ।
स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर्देवदेवो महेश्वरः ॥८२
तमर्चयति यो रुद्रं स्वात्मन्येकं सनातनम् ।
चेतसा भावयुक्तेन स याति परमं पदम् ॥८३
तस्मादनादिमध्यान्तं विज्ञाय परमेश्वरम् ।
कर्मणा मनसा वाचा समाराधय यत्नतः ॥८४
यत्नात् परिहरेशस्य निन्दामात्मविनाशनीम् ।
भवन्ति सर्वदोषाय निन्दकस्य क्रिया यतः ॥८५
यस्तवैष महायोगी रक्षको विष्णुरव्ययः ।
स देवदेवो भगवान् महादेवो न संशयः ॥८६
मन्यन्ते ये जगद्योनिं विभिन्नं विष्णुमीश्वरात् ।
मोहादवेदनिष्ठत्वात् ते यान्ति नरकं नराः ॥८७
वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा ।
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते ॥८८

वे सभी भूतों के आत्मा, मूल कारण एवं परम गति हैं । वैदिक मन्त्रों से देवों के देव महेश्वर की स्तुति की जाती है । (८२)

श्रद्धायुक्त मन द्वारा जो अपनी आत्मा में सनातन रुद्र की आराधना करता है वह परम पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है । (८३)

अतः परमेश्वर को आदि, मध्य एवं अन्त से रहित जान कर यत्नपूर्वक कर्म, मन एवं वचन द्वारा उनकी आराधना करो । (८४)

ईश की आत्मविनाशकारी निन्दा को यत्नपूर्वक छोड़ दो क्योंकि निन्दक की सभी क्रियायें सभी प्रकार के दोषों का कारण होती हैं । (८५)

रक्षक स्वरूप जो ये महायोगी अव्यय विष्णु देव हैं वे निःसन्देह देवदेव भगवान् महादेव रुद्र हैं । (८६)

जो लोग मोहवश तथा वेदविरोधी निष्ठा के कारण जगत् के मूल कारण विष्णु को ईश्वर अर्थात् शङ्कर से भिन्न मानते हैं वे मनुष्य नरक में जाते हैं । (८७)

वेदानुयायी लोग रुद्रदेव एवं नारायण को एक रूप से देखते हैं तथा वे लोग मुक्ति के भागी होते हैं । (८८)

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः ।
इति मत्वा यजेद् देवं स याति परमां गतिम् ।।८९
सृजत्येतज्जगत् सर्वं विष्णुस्तत् पश्यतीश्वरः ।
इत्थं जगत् सर्वमिदं रुद्रनारायणोद्भवम् ।।९०
तस्मात् त्यक्त्वा हरेर्निन्दां विष्णावपि समाहितः ।
समाश्रयेन्महादेवं शरण्यं ब्रह्मवादिनाम् ।।९१
उपश्रुत्याथ वचनं विरिञ्चस्य प्रजापतिः ।
जगाम शरणं देवं गोपतिं कृत्तिवाससम् ।।९२
येऽन्ये शापाग्निनिर्दग्धा दधीचस्य महर्षयः ।
द्विषन्तो मोहिता देवं संबभूवुः कलिष्वथ ।।९३
त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं विप्राणां कुलसंभवाः ।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मणो वचनादिह ।।९४
मुक्तशापास्ततः सर्वे कल्पान्ते रौरवादिषु ।
निपात्यमानाः कालेन संप्राप्यादित्यवर्चसम् ।
ब्रह्माणं जगतामीशमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ।।९५
समाराध्य तपोयोगादीशानं त्रिदशाधिपम् ।
भविष्यन्ति यथा पूर्वं शंकरस्य प्रसादतः ।।९६
एतद् वः कथितं सर्वं दक्षयज्ञनिषूदनम् ।
शृणुध्वं दक्षपुत्रीणां सर्वासां चैव संततिम् ।।९७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

जो विष्णु हैं वे ही स्वयं रुद्र हैं एवं जो रुद्र हैं वही जनार्दन हैं—ऐसा मानकर देव की आराधना करने वाला परम गति प्राप्त करता है। (८९)

विष्णु इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं एवं ईश्वर अर्थात् रुद्र देव इसकी रक्षा करते हैं। इस प्रकार वह सम्पूर्ण जगत् रुद्र एवं नारायण से उत्पन्न होता है। (९०)

अतः हरि की निन्दा का त्याग कर एवं विष्णु में भी ध्यान लगा कर ब्रह्मवादियों के आश्रय स्वरूप महादेव का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। (९१)

तदनन्तर ब्रह्मा का वचन सुनकर प्रजापति (दक्ष) चर्माम्बरधारी पशुपति देव की शरण गए। (९२)

महर्षि दधीच के शाप रूपी अग्नि से दग्ध हुए जो अन्य मोहग्रस्त शङ्कर से द्वेष करने वाले लोग थे वे तदुपरान्त पूर्व-संस्कार के महात्म्य तथा ब्रह्मा के वचन से सम्पूर्ण तपोबल का त्याग कर कलियुग में ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न होंगे। (९३, ९४)

तदनन्तर रौरवादि नरकों में डाले गए वे लोग कल्प का अन्त होने पर यथा समय स्वयम्भू की आज्ञा से आदित्य के सदृश तेज सम्पन्न जगदीश ब्रह्मा को प्राप्त कर एवं तपोयोग द्वारा देवेश ईशान अर्थात् शङ्कर की आराधना करके शङ्कर की कृपा से पूर्व के सदृश हो जायेंगे। (९५, ९६)

(मैंने) प्रसङ्गवश दक्ष-यज्ञ के विनाश की यह सम्पूर्ण कथा तुमसे कही। अब दक्ष के सभी पुत्रियों की सन्तान का वर्णन सुनो। (९७)

छः सहस्र श्लोकोंवाली श्री कूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में चौदहवाँ अध्याय समाप्त—१४.

१५

सूत उवाच ।
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयंभुवा ।
ससर्ज देवान् गन्धर्वान् ऋषींश्चैवासुरोरगान् ।।१
यदास्य सृजमानस्य न व्यवर्द्धन्त ताः प्रजाः ।
तदा ससर्ज भूतानि मैथुनेनैव धर्मतः ।।२
असिक्न्यां जनयामास वीरणस्य प्रजापतेः ।
सुतायां धर्मयुक्तायां पुत्राणां तु सहस्रकम् ।।३
तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य सः ।
षष्टिं दक्षोऽसृजत् कन्या वैरण्यां वै प्रजापतिः ।।४
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
विंशत् सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ।।५
द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते ।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत् तासां वक्ष्येऽथ विस्तरम् ।।६
अरुन्धती वसुर्जामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ।।७
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासां पुत्रान् निबोधत ।
विश्वाया विश्वदेवास्तु साध्या साध्यानजीजनत् ।।८
मरुत्वन्तो मरुत्वत्यां वसवोऽष्टौ वसोः सुताः ।
भानोस्तु भानवश्चैव मुहूर्ता वै मुहूर्तजाः ।।९
लम्बायाश्चाथ घोषो वै नागवीथी तु जामिजा ।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत ।
संकल्पायास्तु संकल्पो धर्मपुत्रा दश स्मृताः ।।१०
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।।११
आपस्य पुत्रो वैतण्डयः श्रमः श्रान्तो धुनिस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः ।।१२

१५

सूत ने कहा—पूर्वकाल में 'प्रजा की सृष्टि करो' इस प्रकार स्वयम्भू ब्रह्मा का आदेश होने पर दक्ष ने देवों, गन्धर्वों, ऋषियों, असुरों एवं नागों की सृष्टि की। (१)

सृष्टि करने वाले उन दक्ष की वे प्रजायें जब नहीं बढ़ी तो उन्होंने धर्मपूर्वक मैथुन द्वारा ही प्राणियों की सृष्टि की । (२)

उन्होंने वीरण नामक प्रजापति की असिक्नी नामक धर्मनिरत कन्या में एक सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया। (३)

नारद की माया से उन पुत्रों के नष्ट होने पर प्रजापति दक्ष ने वीरण की पुत्री असिक्नी से ही साठ कन्याओं को उत्पन्न किया। (४)

उन्होंने उनमें से दस कन्यायें धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताइस सोम को, चार अरिष्टनोमि को, दो बहुपुत्र को, दो बुद्धिमान् कृशाश्व को एवं उसी प्रकार दो अङ्गिरा को प्रदान किया। अब उनके वंश के विस्तार का वर्णन करूँगा। (५, ६)

अरुन्धती, वसु, जामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्त्ता, साध्या एवं भामिनी विश्वा—ये दस धर्म की पत्नियाँ हैं। उनके पुत्रों का नाम सुनो। विश्वा से विश्वेदेवों की उत्पत्ति हुई एवं साध्या ने साध्यों को उत्पन्न किया। मरुत्वती से मरुद्गण की उत्पत्ति हुई, आठ वसुगण वसु के पुत्र हैं। भानु से भानुओं का एवं मुहूर्त्ता से मुहूर्त्तों का जन्म हुआ। (७-८)

लम्बा से घोष तथा जामि से नागवीथी उत्पन्न हुए। सम्पूर्ण पृथ्वी के प्राणियों की उत्पत्ति अरुन्धती से हुई। सङ्कल्पा से सङ्कल्प उत्पन्न हुए—धर्म के (ये) दस पुत्र कहे गये हैं। (१०)

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष, एवं प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। (११)

आप के पुत्र वैतण्ड्य श्रम, श्रान्त एवं धुनि हैं। लोक के प्रकालन अर्थात् संहर्ता भगवान् काल ध्रुव के पुत्र हैं। (१२)

सोमस्य भगवान् वर्चा धरस्य द्रविणः सुतः।
पुरोजवोऽनिलस्य स्यादविज्ञातगतिस्तथा ।।१३
कुमारो ह्यनलस्यासीत् सेनापतिरिति स्मृतः।
देवलो भगवान् योगी प्रत्यूषस्याभवत् सुतः।
विश्वकर्मा प्रभासस्य शिल्पकर्ता प्रजापतिः ।।१४
अदितिर्दितिर्दनुस्तद्वदरिष्टा सुरसा तथा।
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा।
कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञा तत्पुत्रान् वै निबोधत ।।१५
अंशो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा।
विवस्वान् सविता पूषा ह्यंशुमान् विष्णुरेव च ।।१६
तुषिता नाम ते पूर्वं चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
वैवस्वतेऽन्तरे प्रोक्ता आदित्याश्चादितेः सुताः ।।१७
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपाद् बलसंयुतम्।
हिरण्यकशिपुं ज्येष्ठं हिरण्याक्षं तथापरम् ।।१८
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो महाबलपराक्रमः।
आराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।

भगवान वर्चा सोम के पुत्र हैं एवं धर के पुत्र द्रविण हैं। पुरोजव एवं अविज्ञातगति अनिल के पुत्र हैं। (१३)

अनल के पुत्र कुमार हैं जिन्हें सेनापति कहा जाता है। योगी भगवान् देवल प्रत्यूष के पुत्र हैं। शिल्पकर्त्ता प्रजापति विश्वकर्मा प्रभास के पुत्र हैं। (१४)

अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू मुनि एवं धर्मज्ञा (ये सभी दक्ष की कन्यायें कश्यप की पत्नियाँ हैं) उनके पुत्रों का वर्णन सुनो। (१५)

अंश, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान्, एवं विष्णु ये सभी चाक्षुष मन्वन्तर में तुषित नाम के देवता थे। वैवस्वत मन्वन्तर में अदिति के पुत्र (बारह) आदित्य कहे गये है। (१६, १७)

दिति को कश्यप से दो बलयुक्त पुत्र प्राप्त हुए। हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ था एवं उसका अनुज हिरण्याक्ष था। (१८)

दैत्य हिरण्यकशिपु महाबलवान् एवं पराक्रमी था। उसने तपस्या द्वारा परमेश्वर ब्रह्मदेव की आराधना कर

दृष्ट्वा लेभे वरान् दिव्यान् स्तुत्वाऽसौ विविधैः स्तवैः ।।१९
अथ तस्य बलाद् देवाः सर्व एव सुरर्षयः।
बाधितास्ताडिता जग्मुर्देवदेवं पितामहम् ।। २०
शरण्यं शरणं देवं शंभुं सर्वजगन्मयम्।
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं त्रातारं पुरुषं परम्।
कूटस्थं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम् ।।२१
स याचितो देववरैर्मुनिभिश्च मुनीश्वराः।
सर्वदेवहितार्थाय जगाम कमलासनः ।।२२
संस्तूयमानः प्रणतैर्मुनीन्द्रैरमरैरपि।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं यत्रास्ते हरिरीश्वरः ।।२३
दृष्ट्वा देवं जगद्योनिं विष्णुं विश्वगुरुं शिवम्।
ववन्दे चरणौ मूर्ध्ना कृताञ्जलिरभाषत ।।२४

ब्रह्मोवाच।

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः।
व्यापी सर्वामरवपुर्महायोगी सनातनः ।।२५

उनका दर्शन किया एवं अनेक प्रकार के स्तोत्रों से उनकी स्तुति कर दिव्य वर प्राप्त किये। (१९)

तदनन्तर उसके बल से पीडित एवं ताडित सभी देवता एवं देवर्षिगण शरणदाता, आश्रयस्वरूप, सर्व-जगन्मय शम्भुदेव स्वरूप लोककर्त्ता, त्राता, परम पुरुष, कूटस्थ, जगत् के एकमात्र पुराण-पुरुष पुरुषोत्तम पितामह के समीप गए। (२०, २१)

हे मुनीश्वरो! श्रेष्ठ देवों एवं मुनियों के प्रार्थना करने पर सभी देवों के कल्याणार्थ कमलासन (ब्रह्मा) क्षीरसागर के उत्तरी तट पर गये जहाँ विनीत श्रेष्ठ मुनियों एवं देवों द्वारा स्तुति किए जा रहे ईश्वर हरि रहते हैं। (२२, २३)

जगत् के मूल कारण, कल्याणमय, विश्वगुरु विष्णु देव को देखकर उन्होंने मस्तक झुकाकर उनके चरणों में प्रणाम किया एवं हाथ जोड़ कर कहने लगे। (२४)

ब्रह्मा ने कहा—(हे भगवान्!) आप सभी प्राणियों की गति, अनन्त एवं विश्वरूप हैं। आप सभी देवों के शरीर स्वरुप, महायोगी, व्यापक एवं सनातन हैं। (२५)

त्वमात्मा सर्वभूतानां प्रधानं प्रकृतिः परा ।
वैराग्यैश्वर्यनिरतो रागातीतो निरञ्जनः ।।२६

त्वं कर्ता चैव भर्ता च निहन्ता सुरविद्विषाम् ।
त्रातुमर्हस्यनन्तेश त्राता हि परमेश्वरः ।।२७

इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणा संप्रबोधितः ।
प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षः पीतवासाऽसुरद्विषः ।।२८

किमर्थं सुमहावीर्याः सप्रजापतिकाः सुराः ।
इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः ।।२९

देवा ऊचुः ।

हिरण्यकशिपुर्नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः ।
बाधते भगवन् दैत्यो देवान् सर्वान् सहर्षिभिः ।।३०

अवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते पुरुषोत्तम ।
हन्तुमर्हसि सर्वेषां त्वं त्राताऽसि जगन्मय ।।३१

श्रुत्वा तद्दैवतैरुक्तं स विष्णुर्लोकभावनः ।
वधाय दैत्यमुख्यस्य सोऽसृजत् पुरुषं स्वयम् ।।३२

मेरुपर्वतवर्ष्माणं घोररूपं भयानकम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः ।।३३

हत्वा तं दैत्यराजं त्वं हिरण्यकशिपुं पुनः ।
इमं देशं समागन्तुं क्षिप्रमर्हसि पौरुषात् ।।३४

निशम्य वैष्णवं वाक्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ।
महापुरुषमव्यक्तं ययौ दैत्यमहापुरम् ।।३५

विमुञ्चन् भैरवं नादं शङ्खचक्रगदाधरः ।
आरुह्य गरुडं देवो महामेरुरिवापरः ।।३६

आकर्ण्य दैत्यप्रवरा महामेघरवोपमम् ।
समाचचक्षिरे नादं तदा दैत्यपतेर्भयात् ।।३७

असुरा ऊचुः ।

कश्चिदागच्छति महान् पुरुषो देवचोदितः ।
विमुञ्चन् भैरवं नादं तं जानीमोऽमरार्दन ।।३८

ततः सहासुरवरैर्हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।
संनद्धैः सायुधैः पुत्रैः प्रह्लादाद्यैस्तदा ययौ ।।३९

आप सभी प्राणियों की आत्मा, प्रधान स्वरूप, परा प्रकृति हैं। आप वैराग्य एवं ऐश्वर्य में निरत, रागातीत एवं निरञ्जन हैं। (२६)

आप ही कर्त्ता एवं भरण-पोषण करने वाले तथा देव-द्वेषियों के विनाशक हैं। हे अनन्तेश ! आप रक्षक एवं परमेश्वर हैं आप रक्षा करें। (२७)

ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार भली भाँति जगाये जाने पर विकसित कमल-सदृश नेत्रों वाले पीताम्बरधारी (विष्णु) ने कहा—महावीर्यशाली असुर-विरोधी देवगण ! प्रजापति के साथ (आप लोग) इस स्थान पर क्यों आये हैं, अथवा (मैं) आपका कौन कार्य करूँ ? (२८, २९)

देवों ने कहा—हे भगवन् ! ब्रह्मा के वर से दर्पयुक्त हुआ हिरण्यकशिपु नाम का दैत्य ऋषियों-सहित सभी देवों को कष्ट दे रहा है। (३०)

आपको छोड़कर वह सभी प्राणियों से अवध्य है। आपको उसे मारना चाहिये। हे जगन्मय ! हे पुरुषोत्तम ! आप (सभी के) रक्षक हैं। (३१)

देवताओं के कहे उस वचन को सुनकर लोकभावन उन विष्णु ने दैत्यों के प्रधान का वध करने के लिए स्वयं एक पुरुष को उत्पन्न किया। (३२)

गरुड़ध्वज (विष्णु) ने हाथों में शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले उस मेरु पर्वत के सदृश शरीर वाले घोररूपधारी एवं भयानक पुरुष से कहा— (३३)

(अपने) पराक्रम से तुम उस दैत्यराज हिरण्यकशिपु को मार कर पुनः इस स्थान पर शीघ्र आओ। (३४)

विष्णु का वचन सुनने के उपरान्त पुरुषोत्तम महापुरुष अव्यक्त को प्रणाम कर शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाला, दूसरे महामेरु के तुल्य (वह पुरुष) गरुड़ पर चढ़कर भीषण शब्द करते हुए दैत्य के महान् नगर को गया। (३५, ३६)

महामेघ के शब्दतुल्य नाद को सुनकर श्रेष्ठ दैत्यों ने दैत्यराज से भयपूर्वक कहा। (३७)

असुरों ने कहा—देवताओं से प्रेरित कोई महान् पुरुष भीषण गर्जना करते हुए आ रहा है। हे देव-विनाशक ! (हमें) उसे समझना चाहिये। (३८)

तदुपरान्त स्वयं हिरण्यकशिपु श्रेष्ठ असुरों एवं आयुधों से सज्जित प्रह्लाद इत्यादि पुत्रों के साथ चला। (३९)

दृष्ट्वा तं गरुडासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
पुरुषं पर्वताकारं नारायणमिवापरम् ।।४०
दुद्रुवुः केचिदन्योन्यमूचुः संभ्रान्तलोचनाः ।
अयं स देवो देवानां गोप्ता नारायणो रिपुः ।।४१
अस्माकमव्ययो नूनं तत्सुतो वा समागतः ।
इत्युक्त्वा शस्त्रवर्षाणि ससृजुः पुरुषाय ते ।
तानि चाशेषतो देवो नाशयामास लीलया ।।४२
तदा हिरण्यकशिपोश्चत्वारः प्रथितौजसः ।
पुत्रा नारायणोद्भूतं युयुधुर्मेघनिःस्वनाः ।
प्रह्लादश्चाप्यनुह्लादः संह्लादो ह्लाद एव च ।।४३
प्रह्लादः प्राहिणोद् ब्राह्ममनुह्लादोऽथ वैष्णवम् ।
संह्लादश्चापि कौमारमाग्नेयं ह्लाद एव च ।।४४
तानि तं पुरुषं प्राप्य चत्वार्यस्त्राणि वैष्णवम् ।
न शेकुर्बाधितुं विष्णुं वासुदेवं यथा तथा ।।४५
अथासौ चतुरः पुत्रान् महाबाहुर्महाबलः ।

करोड़ों सूर्य के तुल्य प्रभावान्, गरुड़ पर आरूढ़, दूसरे नारायण के तुल्य पर्वताकार उस पुरुष को देख कोई तो भाग गये और कोई परस्पर भ्रान्त दृष्टि होकर कहने लगे—यह अवश्य ही हमलोगों का शत्रु तथा देवताओं का रक्षक विनाशहीन नारायण अथवा उसका पुत्र आया है। ऐसा कहकर वे लोग उस पुरुष पर शस्त्रों की वर्षा करने लगे। उन देव ने लीला-पूर्वक उन सभी (शस्त्रों) को नष्ट कर दिया। (४०-४२)

तदनन्तर हिरण्यकशिपु के अत्यन्त ओजस्वी, मेघ के सदृश शब्द करने वाले प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद एवं ह्लाद नामक चार पुत्र नारायण से उत्पन्न पुरुष से युद्ध करने लगे। (४३)

प्रह्लाद ने ब्रह्मास्त्र, अनुह्लाद ने नारायणास्त्र, संह्लाद ने कौमारास्त्र एवं ह्लाद ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। (४४)

वे चारों अस्त्र विष्णु के पुरुष के पास पहुँचकर वासुदेव विष्णु तुल्य उस पुरुष को विचलित नहीं कर सके। (४५)

तदुपरान्त उन चारों पुत्रों के पैर अपने हाथों में

प्रगृह्य पादेषु करैः संचिक्षेप ननाद च ।।४६
विमुक्तेष्वथ पुत्रेषु हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।
पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं बली ।।४७
स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन तथाऽऽशुगः ।
अदृश्यः प्रययौ तूर्णं यत्र नारायणः प्रभुः ।
गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तथा ।।४८
संचिन्त्य मनसा देवः सर्वज्ञानमयोऽमलः ।
नरस्यार्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्धतनुं तथा ।।४९
नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपोः पुरे ।
आविर्बभूव सहसा मोहयन् दैत्यपुंगवान् ।।५०
दंष्ट्राकरालो योगात्मा युगान्तदहनोपमः ।
समारुह्यात्मनः शक्तिं सर्वसंहारकारिकाम् ।
भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यंदिने रविः ।।५१
दृष्ट्वा नृसिंहवपुषं प्रह्लादं ज्येष्ठपुत्रकम् ।
वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुरः ।।५२

पकड़कर महान् बाहुओं वाले उस महाबलशाली पुरुष ने उन्हें फेंक दिया और गर्जना करने लगा। (४६)

पुत्रों के फेंक दिये जाने पर बलवान् हिरण्यकशिपु ने स्वयं पैर से उसकी छाती पर मारा। (४७)

इससे अत्यन्त पीड़ित होकर वह पुरुष गरुड पर चढ़कर शीघ्रतापूर्वक अदृश्य होकर वहाँ गया जहाँ प्रभु नारायण स्थित थे। वहाँ जाकर (उसने) सम्पूर्ण घटित (वृत्तान्त) बतलाया। (४८)

तब सर्वज्ञानमय निर्मल देव ने मन में ध्यान कर आधा शरीर मनुष्य का एवं आधा शरीर सिंह का बनाया। दैत्यों एवं दानवों को मोहित करते हुए नृसिंहशरीर धारी अव्यक्त (देव) अकस्मात् हिरण्यकशिपु के पुर में प्रकट हुए। (४९, ५०)

भयानक दाढ़ों वाले योगात्मा प्रलयाग्नितुल्य अनन्त नारायण अपनी सर्वसंहारकारिणी शक्ति पर आरूढ़ होकर इस प्रकार प्रकाशित हो रहे थे जैसे मध्याह्नकालीन सूर्य प्रकाशित होता है। (५१)

नृसिंह स्वरूपी को देखकर उस असुर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रह्लाद को नरसिंह के वध हेतु प्रेरित किया। (५२)

इमं नृसिंहवपुषं पूर्वस्माद् बहुशक्तिकम् ।
सहैव त्वनुजैः सर्वैर्नाशयाशु मयेरितः ।।५३
तत्संनियोगादसुरः प्रह्लादो विष्णुमव्ययम् ।
युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जितः ।।५४
ततः संचोदितो दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुजः ।
ध्यात्वा पशुपतेरस्त्रं ससर्ज च ननाद च ।।५५
तस्य देवादिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ।
न हानिमकरोदस्त्रं यथा देवस्य शूलिनः ।।५६
दृष्ट्वा पराहतं त्वस्त्रं प्रह्लादो भाग्यगौरवात् ।
मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम् ।।५७
संत्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेन चेतसा ।
ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम् ।।५८
स्तुत्वा नारायणैः स्तोत्रैः ऋग्यजुःसामसंभवैः ।
निवार्य पितरं भ्रातॄन् हिरण्याक्षं तदाऽब्रवीत् ।।५९
अयं नारायणोऽनन्तः शाश्वतो भगवानजः ।
पुराणपुरुषो देवो महायोगी जगन्मयः ।।६०
अयं धाता विधाता च स्वयंज्योतिर्निरञ्जनः ।
प्रधानपुरुषस्तत्त्वं मूलप्रकृतिरव्ययः ।।६१
ईश्वरः सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिगः ।
गच्छध्वमेनं शरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम् ।।६२
एवमुक्ते सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।
प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया ।।६३
अयं सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रमः ।
समागतोऽस्मद्भवनमिदानीं कालचोदितः ।।६४
विहस्य पितरं पुत्रो वचः प्राह महामतिः ।
मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम् ।।६५
कथं देवो महादेवः शाश्वतः कालवर्जितः ।
कालेन हन्यते विष्णुः कालात्मा कालरूपधृक् ।।६६
ततः सुवर्णकशिपुर्दुरात्मा विधिचोदितः ।
निवारितोऽपि पुत्रेण युयोध हरिमव्ययम् ।।६७
संरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम् ।
नखैर्विदारयामास प्रह्लादस्यैव पश्यतः ।।६८

(उसने कहा)—मेरी प्रेरणा से अपने छोटे भाइयों के साथ तुम पहले की अपेक्षा अधिक शक्तिवाले इस नृसिंह शरीरधारी (पुरुष) को शीघ्र नष्ट करो। (५३)

उसकी आज्ञा से असुर प्रह्लाद ने सभी प्रकार के प्रयत्नों द्वारा अव्यय विष्णु से युद्ध किया। किन्तु, वह नरसिंह से पराजित हो गया। (५४)

तदनन्तर उस (हिरण्यकशिपु की) आज्ञा से उसके छोटे भाई दैत्य हिरण्याक्ष ने पशुपति के अस्त्र का ध्यान कर उसे चलाया और गर्जन करने लगा। (५५)

अस्त्र ने उन अमित तेजस्वी देवाधिदेव विष्णु की कोई हानि उसी प्रकार नहीं की जैसे त्रिशूलधारी देव (शङ्कर) की नहीं करता। (५६)

अस्त्र को विफल होते देखकर भाग्य के गौरववश प्रह्लाद ने (उन) देव को सनातन सर्वात्मक वासुदेव माना। (५७)

(उसने) सभी शस्त्रों का त्याग कर सात्त्विकभाव युक्त चित्त से योगियों के हृदय में निवास करने वाले देव को मस्तक से प्रणाम किया एवं ऋग्, यजु तथा सामवेद के स्तोत्रों से नारायण की स्तुति कर पिता, भाइयों एवं हिरण्याक्ष को निवारित कर कहने लगा— (५८, ५९)

ये अनन्त, शाश्वत, अज, पुराणपुरुष, महायोगी, जगन्मय, भगवान् नारायण देव हैं। (६०)

ये धाता, विधाता, स्वयंज्योति, निरञ्जन, प्रधान पुरुषरूपी तत्त्व, मूलप्रकृति, अव्यय, ईश्वर, सभी प्राणियों के अन्तर्यामी एवं गुणातीत हैं। (आप सभी) इन अव्यय, अव्यक्त विष्णु की शरण में जायें। (प्रह्लाद के) ऐसा कहने पर विष्णु की माया से अत्यन्त मोहित दुर्बुद्धि हिरण्यकशिपु ने स्वयं पुत्र से कहा— (६१-६३)

इस समय काल से प्रेरित मेरे घर में आया हुआ अल्पपराक्रमी यह नृसिंह सभी प्रकार से वध करने योग्य है। (६४)

महामतिमान् पुत्र ने हँस कर पिता से कहा—प्राणियों के एकमात्र ईश इन अव्यय की निन्दा मत करो। (६५)

शाश्वत, कालवर्जित, कालात्मा, कालरूपधारी, महादेव विष्णु देव को काल कैसे मार सकता है। (६६)

तदुपरान्त भाग्य द्वारा प्रेरित दुरात्मा हिरण्यकशिपु पुत्र के मना करने पर भी अव्यय हरि से लड़ने लगा। (६७)

अत्यन्त लाल नेत्रों वाले अनन्त (विष्णु ने) प्रह्लाद के

हते हिरण्यकशिपौ हिरण्याक्षो महाबलः ।
विसृज्य पुत्रं प्रह्लादं दुद्रुवे भयविह्वलः ॥६९
अनुह्लादादयः पुत्रा अन्ये च शतशोऽसुराः ।
नृसिंहदेहसंभूतैः सिंहैर्नीता यमालयम् ॥७०
ततः संहृत्य तद्रूपं हरिर्नारायणः प्रभुः ।
स्वमेव परमं रूपं ययौ नारायणाह्वयम् ॥७१
गते नारायणे दैत्यः प्रह्लादोऽसुरसत्तमः ।
अभिषेकेण युक्तेन हिरण्याक्षमयोजयत् ॥७२
स बाधयामास सुरान् रणे जित्वा मुनीनपि ।
लब्ध्वाऽन्धकं महापुत्रं तपसाराध्य शंकरम् ॥७३
देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् बध्वा च धरणीमिमाम् ।
नीत्वा रसातलं चक्रे वन्दीमिन्दीवरप्रभाम् ॥७४
ततः सब्रह्मका देवाः परिम्लानमुखश्रियः ।
गत्वा विज्ञापयामासुर्विष्णवे हरिमन्दिरम् ॥७५
स चिन्तयित्वा विश्वात्मा तद्वधोपायमव्ययः ।
सर्ववेदमयं शुभ्रं वाराहं वपुरादधे ॥७६
गत्वा हिरण्यनयनं हत्वा तं पुरुषोत्तमः ।
दंष्ट्रयोद्धारयामास कल्पादौ धरणीमिमाम् ॥७७
त्यक्त्वा वराहसंस्थानं संस्थाप्य च सुरद्विजान् ।
स्वामेव प्रकृतिं दिव्यां ययौ विष्णुः परं पदम् ॥७८
तस्मिन् हतेऽमररिपौ प्रह्लादो विष्णुतत्परः ।
अपालयत् स्वकं राज्यं भावं त्यक्त्वा तदाऽऽसुरम् ॥७९
इयाज विधिवद् देवान् विष्णोराराधने रतः ।
निःसपत्नं तदा राज्यं तस्यासीद् विष्णुवैभवात् ॥८०
ततः कदाचिदसुरो ब्राह्मणं गृहमागतम् ।
तापसं नार्चयामास देवानां चैव मायया ॥८१
स तेन तापसोऽत्यर्थं मोहितेनावमानितः ।
शशापासुरराजानं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥८२

देखते ही देखते हिरण्याक्ष के वड़े भाई को नखों से फाड़ डाला। (६८)

हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर भयविह्वल महावली हिरण्याक्ष, पुत्र प्रह्लाद को छोड़कर भाग गया। (६९)

अनुह्लादादि पुत्र एवं दूसरे सैकड़ों असुरों को नृसिंह की देह से उत्पन्न सिंहों ने मार डाला। (७०)

तदनन्तर प्रभु नारायण हरि ने उस रूप को समेट कर अपने नारायण नामक श्रेष्ठ रूप को धारण किया। (७१)

नारायण के चले जाने पर असुर-श्रेष्ठ दैत्य प्रह्लाद ने हिरण्याक्ष का उचित अभिषेक किया। (७२)

उसने युद्ध में देवताओं और मुनियों को भी जीतकर उन्हें कष्ट दिया और तपस्या द्वारा शङ्कर की आराधना करने के उपरान्त अन्धक नामक श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया। (उसने) देवेन्द्र सहित देवताओं को जीता और कमलतुल्य इस पृथ्वी को वाँध कर रसातल में ले जाकर वन्दी वना दिया। (७३, ७४)

तदनन्तर मलिन हुई मुख की शोभा वाले व्रह्मादि देवता हरि के निवास स्थान पर गये और उन्होंने विष्णु से (समस्त प्रसङ्ग) वतलाया। (७५)

उन विश्वात्मा अव्यय ने उसके वध का उपाय सोचकर सर्ववेदमय शुभ्र वराह का रूप धारण किया था। (७६)

कल्प के प्रारम्भ काल में पुरुषोत्तम हिरण्याक्ष के पास गये और उसे मार कर (अपनी) दाढों से इस पृथ्वी का उद्धार किया। (७७)

वराह रूप का परित्याग कर एवं देवों और द्विजों को संस्थापित कर विष्णु ने अपनी ही दिव्य प्रकृति को धारण किया और (अपने) उत्कृष्ट स्थान पर चले गये। (७८)

उस सुरद्रोही के मारे जाने पर विष्णु-भक्त प्रह्लाद आसुर भाव को छोड़कर अपने राज्य का पालन करने लगा। (७९)

विष्णु की आरधना करते हुए वह विधि-पूर्वक देवों का यज्ञ द्वारा पूजन करने लगा। विष्णु के प्रताप से उसका राज्य किसी प्रतिद्वन्द्वी से शून्य वना रहा। (८०)

तदनन्तर किसी समय घर में आये हुए तपस्वी व्राह्मण की देवों की मायावश असुर प्रह्लाद ने अर्चना नहीं की। (८१)

(देवों की) माया से मोहित उस प्रह्लाद से अपमानित होकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले उस व्राह्मण ने असुरराज को शाप दिया— (८२)

यत्तद्बलं समाश्रित्य ब्राह्मणानवमन्यसे ।
सा भक्तिर्वैष्णवी दिव्या विनाशं ते गमिष्यति ।।८३
इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं प्रह्लादस्य गृहाद् द्विजः ।
मुमोह राज्यसंसक्तः सोऽपि शापबलात् ततः ।।८४
बाधयामास विप्रेन्द्रान् न विवेद जनार्दनम् ।
पितुर्वधमनुस्मृत्य क्रोधं चक्रे हरिं प्रति ।।८५
तयोः समभवद् युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ।
नारायणस्य देवस्य प्रह्लादस्यामरद्विषः ।।८६
कृत्वा तु सुमहद् युद्धं विष्णुना तेन निर्जितः ।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्यात् परस्मिन् पुरुषे हरौ ।
संजातं तस्य विज्ञानं शरण्यं शरणं ययौ ।।८७
ततः प्रभृति दैत्येन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्वहन् ।
नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे ।।८८
हिरण्यकशिपोः पुत्रे योगसंसक्तचेतसि ।
अवाप तन्महद् राज्यमन्धकोऽसुरपुंगवः ।।८९
हिरण्यनेत्रतनयः शंभोर्देहसमुद्भवः ।
मन्दरस्थामुमां देवीं चकमे पर्वतात्मजाम् ।।९०
पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिनः ।
ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरुः सहस्रशः ।।९१
ततः कदाचिन्महती कालयोगेन दुस्तरा ।
अनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद् भूतविनाशिनी ।।९२
समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम् ।
अयाचन्त क्षुधाविष्टा आहारं प्राणधारणम् ।।९३
स तेभ्यः प्रददावन्नं मृष्टं बहुतरं बुधः ।
सर्वे बुभुजिरे विप्रा निर्विशङ्केन चेतसा ।।९४
गते तु द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शंकरी ।
बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभूज्जगत् ।।९५
ततः सर्वे मुनिवराः समामन्त्र्य परस्परम् ।
महर्षिं गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः ।।९६
निवारयामास च तान् कंचित् कालं यथासुखम् ।
उषित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति पण्डिताः ।।९७

जिस बल का आश्रय ग्रहण कर तुम ब्राह्मणों का अपमान करते हो तुम्हारी वह दिव्य वैष्णवी भक्ति विनष्ट हो जायेगी । (८३)

यह कहकर ब्राह्मण प्रह्लाद के घर से शीघ्र चला गया । तदुपरान्त शाप के प्रभाव से राज्य के कार्य में तत्पर वह प्रह्लाद भी मोहग्रस्त हो गया । (८४)

वह श्रेष्ठ विप्रों को कष्ट देने लगा एवं जनार्दन का ज्ञान उसे न रहा । पिता के वध का स्मरण कर उसने हरि के ऊपर क्रोध किया । तदनन्तर उन दोनों—नारायण देव और देवद्रोही प्रह्लाद में भयङ्कर रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ । (८५, ८६)

उन विष्णु ने महान् युद्ध कर उसे जीत लिया । पहले के संस्कार की महिमा से उसको परम पुरुष हरि का ज्ञान उत्पन्न हो गया । (तदनन्तर) वह शरणदाता (हरि) की शरण में गया । (८७)

उस समय से पुरुषोत्तम नारायण में अनन्य भक्ति रखते हुए दैत्येन्द्र ने महायोग प्राप्त किया । (८८)

हिरण्यकशिपु के पुत्र का चित्त योग में आसक्त हो जाने पर शम्भु की देह से उत्पन्न हिरण्याक्ष-पुत्र असुर श्रेष्ठ अन्धक को वह महद् राज्य प्राप्त हुआ । उसने मन्दर पर्वत पर स्थित उमा देवी की कामना की । (८९,९०)

प्राचीन काल में पवित्र दारुवन में सहस्रों गृहस्थ मुनि ईश्वर की आराधना करने के लिये तप करते थे । (९१)

तदनन्तर काल के संयोगवश किसी समय प्राणियों का विनाश करने वाली अतीव उग्र भयङ्कर अनावृष्टि हुई । तपोनिधि गौतम के पास जाकर सभी भूखे मुनियों ने प्राण धारण करने के लिये आहार माँगा । (९२, ९३)

उन बुद्धिमान् ने उन्हें अत्यन्त पर्याप्त सुस्वादु अन्न दिया । सभी विप्रों ने शङ्कारहित मन से भोजन किया । (९४)

बारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर कल्पान्त सदृश कल्याण करने वाली भारी वृष्टि हुई । संसार (पुनः) पूर्व के तुल्य हो गया । (९५)

तब सभी मुनिवरों ने परस्पर सम्मति कर महर्षि गौतम से पूछा—हम शीघ्र चले जायँ ? (९६)

(उन्होंने) उन लोगों को यह कह कर रोका कि—हे पण्डितगण ! कुछ समय तक सुखपूर्वक मेरे घर में रहने के उपरान्त अवश्य ही आप सभी जायँ । (९७)

ततो मायामयीं सृष्ट्वा कृशां गां सर्व एव ते ।
समीपं प्रापयामासुर्गौतमस्य महात्मनः ॥९८
सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः ।
गोष्ठे तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा ॥९९
स शोकेनाभिसंतप्तः कार्याकार्यं महामुनिः ।
न पश्यति स्म सहसा तादृशं मुनयोऽब्रुवन् ॥१००
गोवध्येयं द्विजश्रेष्ठ यावत् तव शरीरगा ।
तावत् तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेव हि ॥१०१
तेन ते मुदिताः सन्तो देवदारुवनं शुभम् ।
जग्मुः पापवशं नीतास्तपश्चर्तुं यथा पुरा ॥१०२
स तेषां मायया जातां गोवध्यां गौतमो मुनिः ।
केनापि हेतुना ज्ञात्वा शशापातीवकोपनः ॥१०३
भविष्यन्ति त्रयीबाह्या महापातकिभिः समाः ।
बभूवुस्ते तथा शापाज्जायमानाः पुनः पुनः ॥१०४

तत्पश्चात् उन सभी ने मायामयी दुर्वल गाय वना कर महात्मा गौतम के पास पहुँचा दी । (९८)

उसे देखकर उन कृपालु मुनि ने (उसकी) रक्षा के लिये उत्सुक होकर उसे गोशाला में वाँध दिया । वह छूते ही मर गयी । (९९)

शोक से पीड़ित वे महामुनि अकस्मात् कार्य और अकार्य को न समझ पाए । मुनियों ने ऐसे उन (ऋषि से) कहा— (१००)

हे द्विजश्रेष्ठ ! जव तक यह गोहत्या आपके शरीर में रहेगी उस समय तक आपका अन्न नहीं खाया जा सकता । अतः हम जाते हैं । (१०१)

अतः पापवश हुए वे (मुनिगण) प्रसन्नतापूर्वक पूर्व के सदृश तप करने कल्याणमय देवदारु वन में गए । (१०२)

उन गौतम मुनि ने किसी कारणवश उन मुनियों की माया से उत्पन्न गोहत्या को जानकर अत्यन्त कोपपूर्वक शाप दिया— (१०३)

महापातकियों के तुल्य ये लोग त्रयी अर्थात् वेद से वहिष्कृत हो जायेंगे । वे सभी शाप के कारण वार-वार जन्म ग्रहण करने वाले हो गए[1]। (१०४)

सर्वे संप्राप्य देवेशं शंकरं विष्णुमव्ययम् ।
अस्तुवन् लौकिकैः स्तोत्रैरुच्छिष्टा इव सर्वगौ ॥१०५
देवदेवौ महादेवौ भक्तानामार्तिनाशनौ ।
कामवृत्त्या महायोगौ पापान्नस्त्रातुमर्हथः ॥१०६
तदा पार्श्वस्थितं विष्णुं संप्रेक्ष्य वृषभध्वजः ।
किमेतेषां भवेत् कार्यं प्राह पुण्यैषिणामिति ॥१०७
ततः स भगवान् विष्णुः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
गोपतिं प्राह विप्रेन्द्रानालोक्य प्रणतान् हरिः ॥१०८
न वेदबाह्ये पुरुषे पुण्यलेशोऽपि शंकर ।
संगच्छते महादेव धर्मो वेदाद् विनिर्बभौ ॥१०९
तथापि भक्तवात्सल्याद् रक्षितव्या महेश्वर ।
अस्माभिः सर्व एवेमे गन्तारो नरकानपि ॥११०
तस्माद् वै वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम् ।
विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामो वृषध्वज ॥१११

(तदुपरान्त शाप के कारण) उच्छिष्ट-अर्थात् भोजन के पश्चात् वचे हुए जूठन के सदृश (वने हुए) वे सभी (ऋषि) सर्वव्यापक देवेश शङ्कर और अव्यय विष्णु की लौकिक स्तोत्रों से स्तुति करने लगे— (१०५)

भक्तों का दुःख दूर करने वाले तथा इच्छानुसार महान् योग का अवलम्वन करने वाले हे दोनों देवाधिदेवो !, हे महादेवो ! पाप से हमारी रक्षा करें । (१०६)

तव वृषभध्वज (शङ्कर) ने पार्श्व में स्थित विष्णु को देखकर कहा—पुण्य की कामना करने वाले इन लोगों का का क्या कार्य है ? (१०७)

तत्पश्चात् भक्तवत्सल, शरणदाता भगवान् विष्णु ने विनीत श्रेष्ठ विप्रों को देखकर पशुपति से कहा—(१०८)

"हे शङ्कर ! वेदवाह्य पुरुष में थोड़ा भी पुण्य नहीं रहता । हे महादेव ! धर्म वेद से उत्पन्न हुआ है । हे महेश्वर ! तथापि भक्तवात्सल्य के कारण हमलोगों को इन सभी नरक जाने वालों की भी रक्षा करनी चाहिए । (१०९, ११०)

हे वृषध्वज ! वेदवाह्य पापियों की रक्षा करने एवं (उन्हें) विमोहित करने के लिए (मैं) शास्त्रों की रचना करूँगा । (१११)

एवं संबोधितो रुद्रो माधवेन मुरारिणा ।
चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः ।।११२
कापालं नाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम् ।
पञ्चरात्रं पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः ।।११३
सृष्ट्वा तानूचतुर्देवौ कुर्वाणाः शास्त्रचोदितम् ।
पतन्तो निरये घोरे बहून् कल्पान् पुनः पुनः ।।११४
जायन्तो मानुषे लोके क्षीणपापचयास्ततः ।
ईश्वराराधनबलाद् गच्छध्वं सुकृतां गतिम् ।
वर्तध्वं मत्प्रसादेन नान्यथा निष्कृतिर्हि वः ।।११५
एवमीश्वरविष्णुभ्यां चोदितास्ते महर्षयः ।
आदेशं प्रत्यपद्यन्त शिरसाऽसुरविद्विषोः ।।११६
चक्रुस्तेऽन्यानि शास्त्राणि तत्र तत्र रताः पुनः ।
शिष्यानध्यापयामासुर्दर्शयित्वा फलानि तु ।।११७
मोहयन्त इमं लोकमवतीर्य महीतले ।
चकार शंकरो भिक्षां हितायैषां द्विजैः सह ।।११८
कपालमालाभरणः प्रेतभस्मावगुण्ठितः ।
विमोहयँल्लोकमिमं जटामण्डलमण्डितः ।।११९
निक्षिप्य पार्वतीं देवीं विष्णावमिततेजसि ।
नियोज्याङ्गभवं रुद्रं भैरवं दुष्टनिग्रहे ।।१२०
दत्त्वा नारायणे देवीं नन्दिनं कुलनन्दिनम् ।
संस्थाप्य तत्र गणपान् देवानिन्द्रपुरोगमान् ।।१२१
प्रस्थितेऽथ महादेवे विष्णुर्विश्वतनुः स्वयम् ।
स्त्रीरूपधारी नियतं सेवते स्म महेश्वरीम् ।।१२२
ब्रह्मा हुताशनः शक्रो यमोऽन्ये सुरपुंगवाः ।
सिषेविरे महादेवीं स्त्रीवेशं शोभनं गताः।।१२३
नन्दीश्वरश्च भगवान् शंभोरत्यन्तवल्लभः ।
द्वारदेशे गणाध्यक्षो यथापूर्वमतिष्ठत ।।१२४
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो ह्यन्धको नाम दुर्मतिः ।
आहर्तुकामो गिरिजामाजगामाथ मन्दरम् ।।१२५

इस प्रकार माधव मुरारि से प्रबुद्ध किये गये रुद्र ने मोहशास्त्र बनाया और शिव से प्रेरित केशव ने भी मोहकारक शास्त्रों की रचना की। (११२)

(उन्होंने) कापालिक, नाकुल, वाम, भैरव, पूर्व-पश्चिम, पञ्चरात्र, पाशुपत, एवं अन्य सहस्रों प्रकार के (शास्त्रों) का निर्माण करने के उपरान्त उन देवों ने उन (वेद बाह्यों) से कहा "अनेक कल्पों तक बारबार घोर नरक में गिरते एवं मनुष्यलोक में जन्मग्रहण करते हुए (इन) शास्त्रों में कहे कर्म को करने के कारण पापसमूह के क्षय होने पर ईश्वर की आराधना के बल से आप लोग पुण्यवानों की गति प्राप्त करेंगे। आप सभी मेरी प्रसन्नता से (आदेशानुसार) व्यवहार करें। अन्य किसी प्रकार आप सभी दोषमुक्त नहीं हो सकते। (११३-११५)

इस प्रकार शङ्कर और विष्णु से प्रेरित उन महर्षियों ने असुरद्वेषी उन दोनों देवों के आदेश को शिर से स्वीकार कर लिया। (११६)

उन अनेक प्रकार के सम्प्रदायों में प्रवृत्त उन लोगों ने पुनः अन्य शास्त्रों की रचना की और उन शास्त्रों का फल बतलाकर उन्हें शिष्यों को पढ़ाया और पृथ्वी पर अवतार लेकर इस लोक को मोहित किया। उन (ऋषियों) के कल्याण के लिये भगवान् रुद्र ने अमित तेजस्वी विष्णु के पास पार्वती को रखा तथा दुष्टों का निग्रह करने के लिये अपने अङ्ग से उत्पन्न भैरव को नियुक्त किया एवं कुलनन्दन नन्दी एवं देवी को नारायण के समीप रखा तथा वहाँ पर इन्द्रादि देवों को नियुक्त कर दिया। उपरान्त शङ्कर लोगों को मोहित करने वाला रूप धारण कर और कपालों की माला और आभूषण धारण किये, चिताभस्म लगाए तथा जटामण्डल धारण किए हुए इस संसार को मोहित करते हुए (उन) द्विजों के साथ भिक्षा माँगने लगे। महादेव के जाने के पश्चात् विश्वतनु विष्णु स्त्री का रूप धारण कर स्वयं महेश्वरी की सेवा करने लगे। (११७-१२२)

ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, यम एवं अन्य श्रेष्ठ देवता सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर महादेवी की सेवा करने लगे। (१२३)

शम्भु के अत्यन्त प्रिय गणाध्यक्ष भगवान् नन्दीश्वर यथापूर्व द्वारपर स्थित रहे। (१२४)

इसी बीच अन्धक नाम का एक दुर्बुद्धि दैत्य पार्वती को हरने की इच्छा से मन्दराचल पर आया। (१२५)

संप्राप्तमन्धकं दृष्ट्वा शंकरः कालभैरवः ।
न्यषेधयदमेयात्मा कालरूपधरो हरः ॥१२६
तयोः समभवद् युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ।
शूलेनोरसि तं दैत्यमाजघान वृषध्वजः ॥१२७
ततः सहस्रशो दैत्यः ससर्जान्धकसंज्ञितान् ।
नन्दिषेणादयो दैत्यैरन्धकैरभिनिर्जिताः ॥१२८
घण्टाकर्णो मेघनादश्चण्डेशश्चण्डतापनः ।
विनायको मेघवाहः सोमनन्दी च वैद्युतः ॥१२९
सर्वेऽन्धकं दैत्यवरं संप्राप्यातिबलान्विताः ।
युयुधुः शूलशक्त्यृष्टिगिरिकूटपरश्वधैः ॥१३०
भ्रामयित्वाऽथ हस्ताभ्यां गृहीतचरणद्वयाः ।
दैत्येन्द्रेणातिबलिना क्षिप्तास्ते शतयोजनम् ॥१३१
ततोऽन्धकनिसृष्टास्ते शतशोऽथ सहस्रशः ।
कालसूर्यप्रतीकाशा भैरवं त्वभिदुद्रुवुः ॥१३२
हा हेति शब्दः सुमहान् बभूवातिभयंकरः ।
युयोध भैरवो रुद्रः शूलमादाय भीषणम् ॥१३३
दृष्ट्वाऽन्धकानां सुबलं दुर्जयं तर्जितो हरः ।
जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम् ॥१३४
सोऽसृजद् भगवान् विष्णुर्देवीनां शतमुत्तमम् ।
देवीपार्श्वस्थितो देवो विनाशायामरद्विषाम् ॥१३५
तदाऽन्धकसहस्रं तु देवीभिर्यमसादनम् ।
नीतं केशवमाहात्म्याल्लीलयैव रणाजिरे ॥१३६
दृष्ट्वा पराहतं सैन्यमन्धकोऽपि महासुरः ।
पराङ्मुखो रणात् तस्मात् पलायत महाजवः ॥१३७
ततः क्रीडां महादेवः कृत्वा द्वादशवार्षिकीम् ।
हिताय लोके भक्तानामाजगामाथ मन्दरम् ॥१३८
संप्राप्तमीश्वरं ज्ञात्वा सर्व एव गणेश्वराः ।
समागम्योपतस्थुस्तं भानुमन्तमिव द्विजाः ॥१३९
प्रविश्य भवनं पुण्यमयुक्तानां दुरासदम् ।
ददर्श नन्दिनं देवं भैरवं केशवं शिवः ॥१४०

अन्धक को आया देख कर कल्याण करने वाले, अमेयात्मा कालरूपधारी हर काल भैरव ने उसे रोका। (१२६)

उन दोनों में अत्यन्त भयङ्कर और रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ। वृषध्वज ने शूल से उस दैत्य की छाती पर प्रहार किया। (१२७)

तदनन्तर (अन्धक ने) सहस्रों अन्धक नामक दैत्यों को उत्पन्न किया। (उन) अन्धक दैत्यों ने नन्दिषेण आदि (गणों) को पराजित कर दिया। (१२८)

घण्टाकर्ण, मेघनाद, चण्डेश, चण्डतापन, विनायक, मेघवाह, सोमनन्दी एवं वैद्युत ये सभी अतिबली (गण) दैत्यश्रेष्ठ अन्धक के पास जाकर शूल, शक्ति, ऋष्टि, गिरि-शिखर और परशु द्वारा युद्ध करने लगे। (१२९,१३०)

अतिबली दैत्य ने हाथों में (उन सभी के) दोनों पैरों को पकड़ कर और घुमाकर उन सभी को सौ योजन दूर फेंक दिया। (१३१)

तदुपरान्त अन्धक द्वारा निर्मित प्रलयकालीन सूर्य सदृश सैकड़ों-सहस्रों (योद्धा) भैरव के ऊपर टूट पड़े। अत्यन्त भयङ्कर हाहाकार का शब्द होने लगा। भयङ्कर शूल लेकर भैरव रुद्र युद्ध करने लगे। (१३२, १३३)

अन्धकों की सेना को दुर्जय देखकर भयभीत (भैरवरूप) हर विभु, अज, देव वासुदेव की शरण में गए। (१३४)

देवशत्रुओं का विनाश करने के लिये देवी (पार्वती) के समीप स्थित उन भगवान् विष्णु ने एक सौ उत्तम देवियों को उत्पन्न किया। (१३५)

तदनन्तर देवियों ने केशव के माहात्म्य से लीला द्वारा ही रणाङ्गण में सहस्रों अन्धकों को यमराज के घर पहुँचा दिया। (१३६)

सेना को नष्ट हुआ देखकर महान् असुर अन्धक भी उस युद्ध से पराङ्मुख होकर अत्यन्त वेग से भाग गया। (१३७)

तदुपरान्त महादेव भक्तजनों के हितार्थ बारह वर्ष तक चलने वाली क्रीड़ा लोक में समाप्त कर मन्दराचल पर आए। (१३८)

ईश्वर को आया जानकर सभी गणेश्वर आकर (उनके समीप) इस प्रकार उपस्थित हुए जैसे द्विज लोग सूर्य की उपासना करते हैं। (१३९)

अयोगियों के लिये दुर्गम पवित्र भवन में प्रवेश कर शिव ने नन्दी, देव भैरव और केशव को देखा। (१४०)

प्रणामप्रवणं देवं सोऽनुगृह्याथ नन्दिनम् ।
आघ्राय मूर्द्धनीशानः केशवं परिषस्वजे ।।१४१
दृष्ट्वा देवी महादेवं प्रीतिविस्फारितेक्षणा ।
ननाम शिरसा तस्य पादयोरीश्वरस्य सा ।।१४२
निवेद्य विजयं तस्मै शंकरायाथ शंकरी ।
भैरवो विष्णुमाहात्म्यं प्रणतः पार्श्वगोऽवदत् ।।१४३
श्रुत्वा तद्विजयं शंभुर्विक्रमं केशवस्य च ।
समास्ते भगवानीशो देव्या सह वरासने ।।१४४
ततो देवगणाः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः ।
आजग्मुर्मन्दरं द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम् ।।१४५
येन तद् विजितं पूर्वं देवीनां शतमुत्तमम् ।
समागतं दैत्यसैन्यमीशदर्शनवाञ्छया ।।१४६
दृष्ट्वा वरासनासीनं देव्या चन्द्रविभूषणम् ।
प्रणेमुरादराद् देव्यो गायन्ति स्मातिलालसाः ।।१४७

उन शङ्कर ने प्रणाम करने वाले नन्दी के ऊपर अनुग्रह कर उनका शिर सूंघा और (तदनन्तर) केशव का आलिङ्गन किया। (१४१)

प्रीति से विस्फारित हुए नेत्रों वाली उन देवी (पार्वती) ने महादेव को देखकर उन ईश्वर के चरणों में शिर से प्रणाम किया। (१४२)

तदुपरान्त शङ्कर-प्रिया पार्वती ने उन शङ्कर से विजय का समाचार कहा एवं (शङ्कर के) पार्श्ववर्ती भैरव ने विष्णु का माहात्म्य बतलाया। (१४३)

भगवान् ईश शम्भु उस विजय और केशव के विक्रम को सुनकर देवी के साथ श्रेष्ठ आसन पर बैठे। (१४४)

तदनन्तर सभी देवता एवं मरीचि आदि प्रमुख द्विज देवाधिदेव त्रिलोचन का दर्शन करने मन्दराचल पर आये। (१४५)

पहले आये हुए दैत्य की सेना को जिन्होंने जीता था वे श्रेष्ठ सौ देवियां भी ईश का दर्शन करने की इच्छा से आयीं। (१४६)

देवी के साथ चन्द्रमा रूपी आभूषण धारण करने वाले (शङ्कर) को श्रेष्ठ आसन पर बैठा देखकर देवियों ने आदरपूर्वक प्रणाम किया एवं अत्यन्त प्रेम से गान करने लगीं। (१४७)

प्रणेमुर्गिरिजां देवीं वामपार्श्वे पिनाकिनः ।
देवासनगतं देवं नारायणमनामयम् ।।१४८
दृष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्या नारायणेन च ।
प्रणम्य देवमीशानं पृष्टवत्यो वराङ्गनाः ।।१४९

कन्या ऊचुः ।

कस्त्वं विभ्राजसे कान्त्या केयं बालरविप्रभा ।
कोऽन्वयं भाति वपुषा पङ्कजायतलोचनः ।।१५०
निशम्य तासां वचनं वृषेन्द्रवरवाहनः ।
व्याजहार महायोगी भूताधिपतिरव्ययः ।।१५१
अहं नारायणो गौरी जगन्माता सनातनी ।
विभज्य संस्थितो देवः स्वात्मानं बहुधेश्वरः ।।१५२
न मे विदुः परं तत्त्वं देवाद्या न महर्षयः ।
एकोऽयं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च ।।१५३
अहं हि निष्क्रियः शान्तः केवलो निष्परिग्रहः ।
मामेव केशवं देवमाहुर्देवीमथाम्बिकाम् ।।१५४

(उन देवियों ने) पिनाकी (शङ्कर) के वामपार्श्व में (स्थित) गिरिजा देवी को एवं शङ्कर के आसन पर स्थित स्वस्थ नारायण को प्रणाम किया। (१४८)

देवी एवं नारायण के साथ सिंहासन पर आसीन शङ्कर देव को देख उन्हें प्रणामकर उन श्रेष्ठ स्त्रियों ने पूछा— (१४९)

कन्याओं ने कहा :—'तेज से प्रकाशित होने वाले आप कौन हैं? बाल सूर्य के सदृश प्रभावाली यह (बाला) कौन है? कमलतुल्य विशाल नेत्रोंवाला शरीर से शोभित हो रहा यह कौन (पुरुष) है?' (१५०)

उनका वचन सुनकर श्रेष्ठ वृष पर आरूढ़ होनेवाले महायोगी अव्यय भूताधिपति (शिव) ने कहा। (१५१)

"मैं, सनातन नारायण (और ये) जगन्माता सनातनी गौरी—अपनी आत्मा का विभाग कर अनेक रूपों में स्थित मैं देव ईश्वर हूँ। (१५२)

देवता या महर्षि लोग मेरे परम तत्त्व को नहीं जानते एकमात्र भवानी और विश्वात्मा विष्णु (मेरे तत्त्व को) जानते हैं। (१५३)

मैं निष्क्रिय, शान्त, अद्वितीय एवं परिग्रहशून्य हूँ। मुझे ही केशव देव तथा देवी अम्बिका कहते हैं। (१५४)

एष धाता विधाता च कारणं कार्यमेव च ।
कर्ता कारयिता विष्णुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥१५५
भोक्ता पुमानप्रमेयः संहर्ता कालरूपधृक् ।
स्रष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुखः ॥१५६
कूटस्थो ह्यक्षरो व्यापी योगी नारायणः स्वयम् ।
तारकः पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम् ॥१५७
सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरञ्जना ।
शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदमिति श्रुतिः ॥१५८
अस्याः सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति ।
एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः ॥१५९
तयाऽहं संगतो देव्या केवलो निष्कलः परः ।
पश्याम्यशेषमेवेदं यस्तद् वेद स मुच्यते ॥१६०
तस्मादनादिमद्वैतं विष्णुमात्मानमीश्वरम् ।
एकमेव विजानीध्वं ततो यास्यथ निर्वृतिम् ॥१६१
मन्यन्ते विष्णुमव्यक्तमात्मानं श्रद्धयाऽन्विताः ।

ये विष्णु ही स्वयं धाता, विधाता, कारण, कार्य, करने और करवाने वाले, भुक्ति एवं मुक्ति स्वरूप फल देनेवाले भोक्ता, अप्रमेय पुरुष, कालरूपधारी, संहार करने वाले, सृष्टि और पालन करने वाले, विश्वात्मा, सर्वव्यापक, वासुदेव, कूटस्थ, अक्षर, व्यापी, योगी, नारायण, तारक पुरुष, आत्मा एवं अद्वितीय परम पद हैं। (१५५-१५७)

यह माहेश्वरी गौरी मेरी शुद्ध शक्ति हैं। वेद इन्हें शान्त, सत्य, सदानन्द एवं परम पद वतलाते हैं। इन्हीं से यह सव उत्पन्न हुआ है एवं इन्हीं में (सभी) लीन होंगे। ये ही सभी प्राणियों की गतियों में उत्तम गति हैं। (१५८,१५९)

उन देवी के साथ अद्वितीय, निष्कल एवं परस्वरूप मैं इस सम्पूर्ण (विश्व) का साक्षात्कार करता हूँ। जो इसे जानता है वह मुक्त हो जाता है। (१६०)

अत एव अनादि, अद्वैत, आत्मास्वरूप ईश्वर (और) विष्णु को एक ही जानो। इससे (तुम्हें) शान्ति प्राप्त होगी। (१६१)

जो श्रद्धायुक्त व्यक्ति अव्यक्त एवं आत्मास्वरूप विष्णु को भिन्न मानकर ईशान (अर्थात् शिव) की पूजा करते हैं वे मुझे प्रिय नहीं होते। (१६२)

ये भिन्नदृष्टचापीशानं पूजयन्तो न मे प्रियाः ॥१६२
द्विषन्ति ये जगत्सूतिं मोहिता रौरवादिषु ।
पच्यमाना न मुच्यन्ते कल्पकोटिशतैरपि ॥१६३
तस्मादशेषभूतानां रक्षको विष्णुरव्ययः ।
यथावदिह विज्ञाय ध्येयः सर्वापदि प्रभुः ॥१६४
श्रुत्वा भगवतो वाक्यं देव्यः सर्वगणेश्वराः ।
नेमुर्नारायणं देवं देवीं च हिमशैलजाम् ॥१६५
प्रार्थयामासुरीशाने भक्तिं भक्तजनप्रिये ।
भवानीपादयुगले नारायणपदाम्बुजे ॥१६६
ततो नारायणं देवं गणेशा मातरोऽपि च ।
न पश्यन्ति जगत्सूतिं तदद्भुतमिवाभवत् ॥१६७
तदन्तरे महादैत्यो ह्यन्धको मन्मथार्दितः ।
मोहितो गिरिजां देवीमाहर्तुं गिरिमाययौ ॥१६८
अथानन्तवपुः श्रीमान् योगी नारायणोऽमलः ।
तत्रैवाविरभूद् दैत्यैर्युद्धाय पुरुषोत्तमः ॥१६९

जो लोग जगत् को उत्पन्न करने वाले (अर्थात् विष्णु) से द्वेष करते हैं (वे सभी) मोहित (प्राणी) रौरवादि नरकों में पकते रहते हैं। वे सैकड़ों कल्पों में भी मुक्त नहीं होते। (१६३)

अतएव सभी प्राणियों के रक्षक अव्यय विष्णु प्रभु को ठीक प्रकार से जानकर समस्त आपत्तियों में ध्यान करना चाहिए। (१६४)

भगवान् के वाक्य को सुनकर सभी देवियों और गणेश्वरों ने नारायण देव और हिमालय की पुत्री देवी को प्रणाम किया एवं भक्तजनों के प्रिय ईशान (अर्थात् शिव), भवानी के चरणयुगल तथा नारायण के चरणकमलों में भक्ति (होने की) प्रार्थना की। (१६५, १६६)

तदन्तर गणेश्वर एवं मातृदेवियों को जगत् के कारण स्वरूप नारायण देव नहीं दिखलाई पड़े। वह एक अद्भुत के सदृश (घटना) हुई। (१६७)

इसी वीच कामान्ध महादैत्य अन्धक मोहवश गिरजा देवी को छीनने के लिये पर्वत पर आया। (१६८)

तदनन्तर अनन्तशरीरधारी श्रीमान्, शुद्ध, योगी नारायण पुरुषोत्तम वहीं दैत्यों से युद्ध करने के लिये प्रकट हुए। (१६९)

कृत्वाऽथ पार्श्वे भगवन्तमीशो
युद्धाय विष्णुं गणदेवमुख्यैः ।
शिलादपुत्रेण च मातृकाभिः
स कालरुद्रोऽभिजगाम देवः ॥१७०

त्रिशूलमादाय कृशानुकल्पं
स देवदेवः प्रययौ पुरस्तात् ।
तमन्वयुस्ते गणराजवर्या
जगाम देवोऽपि सहस्रबाहुः ॥१७१

रराज मध्ये भगवान् सुराणां
विवाहनो वारिदवर्णवर्णः ।
तदा सुमेरोः शिखराधिरूढ-
स्त्रिलोकदृष्टिर्भगवानिवार्कः ॥१७२

जगत्यनादिर्भगवानमेयो
हरः सहस्राकृतिराविरासीत् ।
त्रिशूलपाणिर्गगने सुघोषः
पपात देवोपरि पुष्पवृष्टिः ॥१७३

समागतं वीक्ष्य गणेशराजं
समावृतं देवरिपुर्गणेशैः ।
युयोध शक्रेण समातृकाभि-
र्गणैरशेषैरमरप्रधानैः ॥१७४

विजित्य सर्वानपि बाहुवीर्यात्
स संयुगे शंभुमनन्तधाम ।
समाययौ यत्र स कालरुद्रो
विमानमारुह्य विहीनसत्त्वः ॥१७५

दृष्ट्वाऽन्धकं समायान्तं भगवान् गरुडध्वजः ।
व्याजहार महादेवं भैरवं भूतिभूषणम् ॥१७६

हन्तुमर्हसि दैत्येशमन्धकं लोककण्टकम् ।
त्वामृते भगवान् शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते ॥१७७

त्वं हर्ता सर्वलोकानां कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः ।
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्वेदविद्भिर्विचक्षणैः ॥१७८

स वासुदेवस्य वचो निशम्य भगवान् हरः ।
निरीक्ष्य विष्णुं हनने दैत्येन्द्रस्य मतिं दधौ ॥१७९

जगाम देवतानीकं गणानां हर्षमुत्तमम् ।
स्तुवन्ति भैरवं देवमन्तरिक्षचरा जनाः ॥१८०

तदुपरान्त भगवान् विष्णु को अपने पार्श्व में कर प्रमुख गणों, शिलाद के पुत्र (नन्दी) तथा मातृकाओं के साथ कालरुद्र देव ईश युद्ध के लिये गये। (१७०)

अग्नितुल्य त्रिशूल लेकर देवाधिदेव आगे-आगे चले। श्रेष्ठ गणेश्वर लोग तथा सहस्रबाहु (विष्णु) देव ने भी उनका अनुसरण किया। (१७१)

उस समय देवों के मध्य मेघ सदृश वर्ण वाले विवाहन अर्थात् पक्षिराज गरुड पर आरूढ भगवान् विष्णु इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे सुमेरु के शिखर पर आरूढ़ तीनों लोकों के नेत्र-स्वरूप भगवान् सूर्य सुशोभित होते हैं। (१७२)

अनादि, अमेय, त्रिशूलपाणि, भगवान् हर पृथ्वी पर सहस्र आकार धारण कर प्रकट हुए। आकाश में सुन्दर शब्द होने लगा और उन देव के ऊपर पुष्पों की वर्षा होने लगी। (१७३)

गणेश्वरों के अधिपति अर्थात् शिव को आया हुआ एवं गणेश्वरों से घिरा हुआ देखकर देव शत्रु (अन्धक) इन्द्र, मातृकाओं, गणों तथा सभी प्रधान देवों से युद्ध करने लगा। (१७४)

बाहुबल से सभी को युद्ध में जीतकर वह विहीनसत्त्व अर्थात् दुर्बल (अन्धक) अनन्त तेजस्वी शम्भु के निकट गया जहाँ वे कालरुद्र विमान पर बैठे हुए थे। (१७५)

अन्धक को आते देखकर भगवान् गरुडध्वज ने विभूति से शोभित भैरव महादेव से कहा— (१७६)

आप लोककण्टक दैत्यराज अन्धक को मारें। हे भगवन्! आपके बिना दूसरा कोई इसको मारने में समर्थ नहीं है। (१७७)

आप सभी लोकों का संहार करने वाले ईश्वर के कालमय शरीर हैं। वेदों को जानने वाले चतुर लोग अनेक प्रकार के मन्त्रों से आपकी स्तुति करते हैं। (१७८)

उन भगवान् हर ने वासुदेव का वचन सुनने के उपरान्त विष्णु की ओर देखकर दैत्येन्द्र को मारने का विचार किया। (१७९)

गणों का हर्ष बढ़ाते हुए (वे) देवताओं की सेना में गए। अन्तरिक्षचारी लोग भैरव देव की स्तुति करने लगे— (१८०)

जयानन्त महादेव कालमूर्ते सनातन ।
त्वमग्निः सर्वभूतानामन्तश्चरसि नित्यशः ॥१८१

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वं धाता हरिरव्ययः ।
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम् ॥१८२

ओङ्कारमूर्तियोगात्मा त्रयीनेत्रस्त्रिलोचनः ।
महाविभूतिर्देवेशो जयाशेषजगत्पते ॥१८३

ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ गृहीत्वाऽन्धकमीश्वरः ।
त्रिशूलाग्रेषु विन्यस्य प्रननर्त सतां गतिः ॥१८४

दृष्ट्वाऽन्धकं देवगणाः शूलप्रोतं पितामहः ।
प्रणेमुरीश्वरं देवं भैरवं भवमोचकम् ॥१८५

अस्तुवन् मुनयः सिद्धा जगुर्गन्धर्वकिंनराः ।
अन्तरिक्षेऽप्सरःसङ्घा नृत्यन्ति स्म मनोरमाः ॥१८६

संस्थापितोऽथ शूलाग्रे सोऽन्धको दग्धकिल्बिषः ।
उत्पन्नाखिलविज्ञानस्तुष्टाव परमेश्वरम् ॥१८७

अन्धक उवाच ।

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेकं
समाहिता यं विदुरीशतत्त्वम् ।
पुरातनं पुण्यमनन्तरूपं
कालं कविं योगवियोगहेतुम् ॥१८८

दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं
हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम् ।
सहस्रपादाक्षिशिरोभियुक्तं
भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम् ॥१८९

जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे
विभागहीनामलतत्त्वरूप ।
त्वमग्निरेको बहुधाऽभिपूज्यसे
वाय्वादिभेदैरखिलात्मरूप ॥१९०

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराण-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
त्वं पश्यसीदं परिपास्यजस्रं
त्वमन्तको योगिगणाभिजुष्टः ॥१९१

हे कालमूर्त्ति!, सनातन!, अनन्त! महादेव ! आपकी जय हो। आप अग्निस्वरूप एवं सदैव सभी पदार्थों के भीतर रहने वाले हैं। (१८१)

आप यज्ञ हैं, आप वषट्कार हैं। आप धाता और अव्यय हरि हैं। आप ब्रह्मा और आप ही महादेव हैं। आप ही तेजस्वरूप परम-पद हैं। (१८२)

(आप) ओङ्कारमूर्त्ति, योगात्मा, त्रयी-अर्थात् ऋग् यजुः और सामवेद स्वरूप नेत्रवाले त्रिलोचन हैं। आप महान् ऐश्वर्ययुक्त और देवेश हैं। हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामी ! आपकी जय हो। (१८३)

तदनन्तर प्रलयकालीन अग्नि सदृश भयङ्कर तथा सज्जनों के आश्रयस्वरूप उन ईश्वर ने अन्धक को पकड़कर त्रिशूल की नोक पर रक्खा और नाचने लगे। (१८४)

अन्धक को शूल में पिरोया हुआ देखकर देवगण एवं पितामह (ब्रह्मा) संसार से मुक्त करने वाले भैरव देव को प्रणाम करने लगे। (१८५)

मुनि और सिद्ध लोग स्तुति करने लगे तथा गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे। अन्तरिक्ष में मनोहर अप्सराओं का समूह नृत्य करने लगा। (१८६)

तदनन्तर शूल की नोंक पर स्थित वह नष्टपाप अन्धक समस्त विज्ञान उत्पन्न हो जाने से परमेश्वर की स्तुति करने लगा। (१८७)

अन्धक ने कहा—समाविस्थ लोग जिस पुरातन, पवित्र, अनन्तस्वरूप, कालात्मा, कवि, योग एवं वियोग के हेतुस्वरूप ईश तत्त्व को जानते हैं मैं उन अद्वितीय भगवान् को सिर से प्रणाम करता हूँ। (१८८)

भयङ्कर दाढ़ों वाले, आकाश में नृत्य कर रहे, अग्निस्वरूप मुख वाले, प्रज्वलित सूर्य सदृश, सहस्रों पैर, नेत्र एवं मस्तकों वाले अद्वितीय आप रुद्र को (मैं) प्रणाम करता हूँ। (१८९)

देवताओं से पूजित चरणों वाले, विभागरहित, शुद्ध तत्त्वस्वरूप हे आदिदेव ! आपकी जय हो। अद्वितीय अग्निस्वरूप आप वायु आदि भेदों से अनेक प्रकार से पूजित होते हैं। आप सभी के आत्मास्वरूप हैं। (१९०)

सूर्य के सदृश वर्णवाले पुराण पुरुष आपको तम (अर्थात् माया) से परे कहा जाता है। आप इस (जगत्) के साक्षी हैं और निरन्तर इसका पालन करते हैं। योगिजनों का समूह आप संहारकर्त्ता की सेवा करता रहता है। (१९१)

एकोऽन्तरात्मा बहुधा निविष्टो
देहेषु देहादिविशेषहीनः ।
त्वमात्मशब्दं परमात्मतत्त्वं
भवन्तमाहुः शिवमेव केचित् ॥१९२

त्वमक्षरं ब्रह्म परं पवित्र-
मानन्दरूपं प्रणवाभिधानम् ।
त्वमीश्वरो वेदपदेषु सिद्धः
स्वयं प्रभोऽशेषविशेषहीनः ॥१९३

त्वमिन्द्ररूपो वरुणाग्निरूपो
हंसः प्राणो मृत्युरन्तासि यज्ञः ।
प्रजापतिर्भगवानेकरुद्रो
नीलग्रीवः स्तूयसे वेदविद्भिः ॥१९४

नारायणस्त्वं जगतामथादिः
पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च ।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः
सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि ॥१९५

नमः परस्तात् तमसः परस्मै
परात्मने पञ्चपदान्तराय ।
त्रिशक्त्यतीताय निरञ्जनाय
सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय ॥१९६

त्रिमूर्त्तयेऽनन्तपदात्ममूर्त्ते
जगन्निवासाय जगन्मयाय ।
नमो ललाटार्पितलोचनाय
नमो जनानां हृदि संस्थिताय ॥१९७

फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यं
मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादयुग्म ।
ऐश्वर्यधर्मासनसंस्थिताय
नमः परान्ताय भवोद्भवाय ॥१९८

सहस्रचन्द्रार्कविलोचनाय
नमोऽस्तु ते सोम सुमध्यमाय ।
नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहो
नमोऽम्बिकायाः पतये मृडाय ॥१९९

नमोऽतिगुह्याय गुहान्तराय
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चिताय ।
त्रिकालहीनामलधामधाम्ने
नमो महेशाय नमः शिवाय ॥२००

अद्वितीय अन्तरात्मास्वरूप आप (विभिन्न) देहों में अनेक प्रकार से स्थित रहते हैं। आप देहादि विशेष पदार्थों से रहित आत्मशब्द एवं परमात्मतत्त्व हैं। कुछ लोग आप को ही शिव कहते हैं। (१९२)

हे प्रभो! स्वयं आप परम पवित्र, आनन्दस्वरूप, ओंकार शब्द से वाच्य और अविनाशी परब्रह्म हैं। आप वेदवाक्यों में प्रसिद्ध ईश्वर हैं और समस्त विशेष पदार्थों से शून्य हैं। (१९३)

आप इन्द्र, वरुण एवं अग्निस्वरूप, हंस, प्राण, मृत्यु, अन्त एवं यज्ञ हैं। वेदों के जाननेवाले नीलकण्ठ, एकरुद्र, प्रजापति एवं भगवान् स्वरूप आपकी स्तुति करते रहते हैं। (१९४)

आप जगत् के आदि नारायण हैं। आप पितामह और प्रपितामह हैं। आप वेदान्त और गूढ़ उपनिषदों में वर्णित सदाशिव परमेश्वर हैं। (१९५)

तमोगुणातीत, परम परमात्मा, पञ्चपदान्तर स्वरूप, तीनों—ब्राह्मी, वैष्णवी एवं दैवी-शक्तियों से अतीत, निरञ्जन एवं सहस्रशक्त्यात्मक आसन पर स्थित (आपको) नमस्कार है। (१९६)

त्रिमूर्त्ति-अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव-स्वरूप, अनन्त पदात्मक मूर्तिवाले जगन्निवास एवं जगन्मय को नमस्कार है। ललाट में नेत्र धारण करने वाले एवं मनुष्यों के हृदय में स्थित (आपको) नमस्कार है। (१९७)

सर्पो की माला धारण करने वाले आपको नमस्कार है। श्रेष्ठ मुनि एवं सिद्धगण जिनके दोनों चरणों की सेवा करते रहते हैं उन ऐश्वर्यमय धर्मासन पर स्थित संसार को उत्पन्न करने वाले, परमोत्कृष्ट आपको नमस्कार है। (१९८)

सहस्रों चन्द्रों एवं सूर्यो के सदृश नेत्र वाले एवं सुन्दर मध्य भाग वाले सोमस्वरूप आप को नमस्कार है। हे हिरण्यबाहु! अम्बिकापति शङ्कर देव आपको नमस्कार है। (१९९)

अत्यन्त गुह्य, गुहान्तर, वेदान्त-विषयक विज्ञान द्वारा विशेष रूप से निश्चित किये गए, तीनों कालों के प्रभाव से शून्य, शुद्ध तेजोमय स्थान वाले महेश शिव को नमस्कार है। (२००)

एवं स्तुवन्तं भगवान् शूलाग्रादवरोप्य तम् ।
तुष्टः प्रोवाच हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वाऽथ परमेश्वरः ॥२०१
प्रीतोऽहं सर्वथा दैत्य स्तवेनानेन सांप्रतम् ।
संप्राप्य गाणपत्यं मे सन्निधाने वसामरः ॥२०२
अरोगश्छिन्नसंदेहो देवैरपि सुपूजितः ।
नन्दीश्वरस्यानुचरः सर्वदुःखविवर्जितः ॥२०३
एवं व्याहृतमात्रे तु देवदेवेन देवताः ।
गणेश्वरा महादेवमन्धकं देवसन्निधौ ॥२०४
सहस्रसूर्यसंकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रचिह्नितम् ।
नीलकण्ठं जटामौलिं शूलासक्तमहाकरम् ॥२०५
दृष्ट्वा तं तुष्टुवुर्दैत्यस्याश्चर्यं परमं गताः ।
उवाच भगवान् विष्णुर्देवदेवं स्मयन्निव ॥२०६
स्थाने तव महादेव प्रभावः पुरुषो महान् ।
नेक्षतेऽज्ञानजान् दोषान् गृह्णाति च गुणानपि ॥२०७
इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुंगवैः ।
सकेशवः सहान्धको जगाम शंकरान्तिकम् ॥२०८
निरीक्ष्य देवमागतं सशंकरः सहान्धकम् ।
समाधवं समातृकं जगाम निर्वृतिं हरः ॥२०९
प्रगृह्य पाणिनेश्वरो हिरण्यलोचनात्मजम् ।
जगाम यत्र शैलजा विमानमीशवल्लभा ॥२१०
विलोक्य सा समागतं भवं भवार्तिहारिणम् ।
अवाप सान्धकं सुखं प्रसादमन्धकं प्रति ॥२११
अथान्धको महेश्वरीं ददर्श देवपार्श्वगाम् ।
पपात दण्डवत्क्षितौ ननाम पादपद्मयोः ॥२१२
नमामि देववल्लभामनादिमद्रिजामिमाम् ।
यतः प्रधानपूरुषौ निहन्ति याऽखिलं जगत् ॥२१३
विभाति या शिवासने शिवेन साकमव्यया ।
हिरण्मयेऽतिनिर्मले नमामि तामिमामजाम् ॥२१४
यदन्तराखिलं जगज्जगन्ति यान्ति संक्षयम् ।
नमामि यत्र तामुमामशेषभेदवर्जिताम् ॥२१५

इस प्रकार स्तुति कर रहे उस (अन्धक को) सन्तुष्ट हुए उन भगवान् परमेश्वर ने शूल की नोंक पर से उतारा और हाथों से स्पर्श कर कहा— (२०१)

हे दैत्य ! मै इस समय इस स्तुति से सर्वथा प्रसन्न हूँ। गाणपत्य प्राप्त कर तुम मेरे पास निवास करो एवं अमर रहो। (२०२)

नन्दीश्वर के अनुचर होकर तुम रोगरहित, सन्देह शून्य, सभी प्रकार के दुःखों से रहित तथा देवताओं से भलीभाँति पूजित होओ। (२०३)

देवाधिदेव के इतना कहते ही देवता एवं गणेश्वर उस दैत्य अन्धक को (उन) देव के समीप सहस्रों सूर्यतुल्य, त्रिनेत्र, चन्द्रमा से अलंकृत, नीलकण्ठ, जटामुकुटधारी एवं महान् भुजा में शूल धारण किये हुए देखकर उसकी स्तुति करने लगे। उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। भगवान् विष्णु ने हँसते हुए देवाधिदेव (शङ्कर) से कहा—(२०४-२०६)

हे महादेव ! आपने उचित ही प्रभाव दिखाया। महान् पुरुष अज्ञान से उत्पन्न दोपों को नहीं देखते एवं गुणों को ही ग्रहण करते हैं। (२०७)

ऐसा कहे जाने के उपरान्त भैरव गणेश्वरों, श्रेष्ठ देवों, केशव और अन्धक के साथ शङ्कर के समीप गए। (२०८)

अन्धक, विष्णु और मातृकाओं के साथ (भैरव) देव को आया देखकर उन कल्याणकारी हर को शान्ति प्राप्त हुई। (२०९)

हिरण्याक्ष के पुत्र को हाथ से पकड़ कर ईश्वर वहाँ गए जहाँ ईश-प्रिया पार्वती विमान पर बैठी हुई थीं। (२१०)

संसार के दुःखों को दूर करने वाले पति को अन्धक के साथ आया देखकर उन्हें सुख प्राप्त हुआ (एवं उन्होंने) अन्धक के ऊपर अनुग्रह किया। (२११)

तदुपरान्त देव के पार्श्व में स्थित महेश्वरी को देखकर अन्धक पृथ्वी पर दण्ड के सदृश गिर पड़ा और (उनके) चरणकमलों में प्रणाम किया। (२१२)

जिनसे प्रधान(प्रकृति) और पुरुष (अथवा ब्रह्मा और विष्णु स्वरूप प्रधान पुरुष) उत्पन्न हुए हैं तथा जो सम्पूर्ण जगत् का संहार करती हैं उन्हीं देववल्लभा, अनादि, पर्वत-पुत्री को मैं नमस्कार करता हूँ। (२१३)

अति निर्मल हिरण्मय शिव (मङ्गलमय) आसन पर शिव के साथ विराजमान *अव्ययस्वरूपा अजन्मा* उन देवी को प्रणाम करता हूँ। (२१४)

सभी भेदों से रहित उन उमा को मैं प्रणाम करता हूँ जिनके भीतर सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न, स्थित एवं विलीन होता रहता है। (२१५)

न जायते न हीयते न वर्द्धते च तामुमाम् ।
नमामि या गुणातिगा गिरीशपुत्रिकामिमाम् ।।२१६
क्षमस्व देवि शैलजे कृतं मया विमोहतः ।
सुरासुरैर्यदर्च्चितं नमामि ते पदाम्बुजम् ।।२१७
इत्थं भगवती गौरी भक्तिनम्रेण पार्वती ।
संस्तुता दैत्यपतिना पुत्रत्वे जगृहेऽन्धकम् ।।२१८
ततः स मातृभिः सार्द्धं भैरवो रुद्रसंभवः ।
जगामानुज्ञया शंभोः पातालं परमेश्वरः ।।२१९
यत्र सा तामसी विष्णोर्मूर्तिः संहारकारिका ।
समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिंहाकृतिरीश्वरः ।।२२०
ततोऽनन्ताकृतिः शंभुः शेषेणापि सुपूजितः ।
कालाग्निरुद्रो भगवान् युयोजात्मानमात्मनि ।।२२१
युञ्जतस्तस्य देवस्य सर्वा एवाथ मातरः ।
बुभुक्षिता महादेवं प्रणम्याहुस्त्रिशूलिनम् ।।२२२

मातर ऊचुः ।
बुभुक्षिता महादेव अनुज्ञा दीयतां त्वया ।
त्रैलोक्यं भक्षयिष्यामो नान्यथा तृप्तिरस्ति नः ।।२२३
एतावदुक्त्वा वचनं मातरो विष्णुसंभवाः ।
भक्षयाञ्चक्रिरे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।२२४
ततः स भैरवो देवो नृसिंहवपुषं हरिम् ।
दध्यौ नारायणं देवं क्षणात्प्रादुरभूद्धरिः ।।२२५
विज्ञापयामास च तं भक्षयन्तीह मातरः ।
निवारयाशु त्रैलोक्यं त्वदीया भगवन्निति ।।२२६
संस्मृता विष्णुना देव्यो नृसिंहवपुषा पुनः ।
उपतस्थुर्महादेवं नरसिंहाकृतिं च तम् ।।२२७
संप्राप्य सन्निधिं विष्णोः सर्वाः संहारकारिकाः ।
प्रददुः शंभवे शक्तिं भैरवायातितेजसे ।।२२८
अपश्यंस्ता जगत्सूतिं नृसिंहमथ भैरवम् ।
क्षणादेकत्वमापन्नं शेषाहिं चापि मातरः ।।२२९

मैं गुणों से परे रहने वाली इन गिरीश पुत्री उन उमा को नमस्कार करता हूँ जो न उत्पन्न होती हैं, न क्षीण होती हैं और न बढ़ती ही हैं। (२१६)

हे शैलपुत्री देवी ! क्षमा करें। मैंने विमोहित होकर (दुष्ट) कर्म किया। सुरों एवं असुरों से नमस्कृत आपके चरणकमलों में प्रणाम है। (२१७)

भक्ति से विनम्र हुए दैत्यपति के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवती गौरी पार्वती देवी ने अन्धक को पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया। (२१८)

तदुपरान्त रुद्र से उत्पन्न परमेश्वर भैरव मातृकाओं के साथ शम्भु की आज्ञा से पाताल चले गए। जहाँ विष्णु की संहारकारिणी तामसी मूर्तिस्वरूप नृसिंहाकार ईश्वर अव्यक्त हरि स्थित हैं। (२१९, २२०)

वहीं शेष से भी पूजित होने वाले कालाग्निरुद्र अनन्ताकृति भगवान् शम्भु ने स्वयं को (परम) आत्मा से संयुक्त कर दिया। (२२१)

उन देव के (परमात्मा से) संयोग करते समय सभी भूखी मातृकाओं ने त्रिशूलधारी महादेव को प्रणाम कर कहा। (२२२)

मातृकाओं ने कहा—हे महादेव ! (हम) भूखी हैं। आप आज्ञा दें। हम त्रैलोक्य का भक्षण करेंगी। किसी दूसरे प्रकार से हमारी तृप्ति नहीं होगी। (२२३)

इतना कहकर विष्णु से उत्पन्न मातृकाएँ चराचर सहित सम्पूर्ण त्रैलोक्य का भक्षण करने लगीं। (२२४)

तदनन्तर भैरवदेव ने नृसिंहशरीरधारी नारायण देव हरि का ध्यान किया। हरि क्षणमात्र में प्रकट हो गये। (२२५)

(भैरव ने) उनसे निवेदन किया "हे भगवन् ! आपकी मातृकाएँ त्रैलोक्य का भक्षण कर रही हैं (आप) इन्हें शीघ्र रोकें। (२२६)

तदनन्तर नृसिंहवपु विष्णु के स्मरण करने पर (वे सभी) देवियाँ पुनः उन नरसिंह रूपधारी महादेव के सम्मुख उपस्थित हुई। (२२७)

विष्णु के समीप आकर सभी संहारकारिणी देवियों ने भैरव रूपधारी अत्यन्त तेजस्वी शम्भु को शक्ति प्रदान की। (२२८)

उन मातृकाओं ने जगत् को उत्पन्न करने वाले अतिभीषण नृसिंह, भैरव और सर्पराज शेष को क्षणमात्र में एक होते हुए देखा। (२२९)

व्याजहार हृषीकेशो ये भक्ताः शूलपाणिनः ।
ये च मां संस्मरन्तीह पालनीयाः प्रयत्नतः ।।२३०
ममैव मूर्तिरतुला सर्वसंहारकारिका ।
महेश्वरांशसंभूता भुक्तिमुक्तिप्रदा त्वियम् ।।२३१
अनन्तो भगवान् कालो द्विधाऽवस्था ममैव तु ।
तामसी राजसी मूर्तिर्देवदेवश्चतुर्मुखः ।।२३२
सोऽयं देवो दुराधर्षः कालो लोकप्रकालनः ।
भक्षयिष्यति कल्पान्ते रुद्रात्मा निखिलं जगत् ।।२३३
या सा विमोहिका मूर्तिर्मम नारायणाह्वया ।
सत्त्वोद्रिक्ता जगत् कृत्स्नं संस्थापयति नित्यदा ।।२३४
स हि विष्णुः परं ब्रह्म परमात्मा परा गतिः ।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सदानन्देति कथ्यते ।।२३५
इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विश्वमातरः ।
प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं हरिम् ।।२३६
एतद् वः कथितं सर्वं मयाऽन्धकनिबर्हणम् ।
माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितौजसः ।।२३७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

१६

श्रीकूर्म उवाच ।
अन्धके निगृहीते वै प्रह्लादस्य महात्मनः ।
विरोचनो नाम सुतो बभूव नृपतिः पुरा ।।१
देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् बहून् वर्षान् महासुरः ।
पालयामास धर्मेण त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।२
तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचिद् विष्णुचोदितः ।
सनत्कुमारो भगवान् पुरं प्राप महामुनिः ।।३
दृष्ट्वा सिंहासनगतो ब्रह्मपुत्रं महासुरः ।
ननामोत्थाय शिरसा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।।४

हृषीकेश ने कहा कि जो लोग त्रिशूलपाणि शङ्कर के भक्त हों और जो मेरा स्मरण करते हों प्रयत्नपूर्वक उन लोगों का पालन करना चाहिए। (२३०)

महेश्वर के अंश से उत्पन्न सर्वसंहारकारिणी मेरी ही यह अतुलनीय मूर्ति भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली है। (२३१)

भगवान् अनन्त और काल (भैरव) मेरी ही दो तामसी अवस्थाएँ हैं। देवाधिदेव चतुर्मुख ब्रह्मा मेरी राजसी मूर्ति हैं। (२३२)

वही ये लोक का संहार करने वाले दुर्धर्ष कालदेव हैं। कल्प का अन्त होने पर ये रुद्र रूप से सम्पूर्ण जगत् का भक्षण करेंगे। (२३३)

नारायण नामक जो मेरी सत्त्वगुणमयी नित्यता प्रदान करने वाली विमोहिनी मूर्त्ति है वह सम्पूर्ण जगत् की संस्थापना करती है। (२३४)

(मेरी) उस (मूर्ति) को विष्णु, परम ब्रह्म, परमात्मा, परम गति, मूलप्रकृति, अव्यक्ता और सदानन्दा कहते हैं। (२३५)

विष्णु के ऐसा समझाने पर देवी स्वरूपा सभी मातृकाएँ उन्हीं महादेव हरि की शरण में गईं। (२३६)

मैंने आपलोगों से अन्धक के विनाश एवं अमित ओजस्वी देवाधिदेव भैरव के माहात्म्य का सम्पूर्ण वर्णन किया। (२३७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त—१५.

१६

श्रीकूर्म ने कहा—प्राचीनकाल में अन्धक के निगृहीत हो जाने पर महात्मा प्रह्लाद का विरोचन नामक पुत्र राजा हुआ। (१)

उस महान् असुर ने देवेन्द्र सहित देवों को जीत कर बहुत वर्षों तक धर्मपूर्वक चराचर सहित त्रैलोक्य का पालन किया। (२)

उसके इस प्रकार व्यवहार करते समय विष्णु से प्रेरित महामुनि भगवान् सनत्कुमार किसी समय (उसके) नगर में पहुँचे। (३)

सिंहासन पर बैठे हुए महान् असुर ने ब्रह्मपुत्र को देखा एवं उठकर प्रणाम किया तथा हाथ जोड़ कर यह वचन कहा— (४)

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि संप्राप्तो मे पुरातनः ।
योगीश्वरोऽद्य भगवान् यतोऽसौ ब्रह्मवित् स्वयम् ।।५

किमर्थमागतो ब्रह्मन् स्वयं देवः पितामहः ।
ब्रूहि मे ब्रह्मणः पुत्र किं कार्यं करवाण्यहम् ।।६

सोऽब्रवीद् भगवान् देवो धर्मयुक्तं महासुरम् ।
द्रष्टुमभ्यागतोऽहं वै भवन्तं भाग्यवानसि ।।७

सुदुर्लभा नीतिरेषा दैत्यानां दैत्यसत्तम ।
त्रिलोके धार्मिको नूनं त्वादृशोऽन्यो न विद्यते ।।८

इत्युक्तोऽसुरराजस्तं पुनः प्राह महामुनिम् ।
धर्माणां परमं धर्मं ब्रूहि मे ब्रह्मवित्तम ।।९

सोऽब्रवीद् भगवान् योगी दैत्येन्द्राय महात्मने ।
सर्वगुह्यतमं धर्ममात्मज्ञानमनुत्तमम् ।।१०

स लब्ध्वा परमं ज्ञानं दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ।
निधाय पुत्रे तद्राज्यं योगाभ्यासरतोऽभवत् ।।११

स तस्य पुत्रो मतिमान् वलिर्नाम महासुरः ।
ब्रह्मण्यो धार्मिकोऽत्यर्थं विजिग्येऽथ पुरंदरम् ।।१२

कृत्वा तेन महद् युद्धं शक्रः सर्वामरैर्वृतः ।
जगाम निर्जितो विष्णुं देवं शरणमच्युतम् ।।१३

तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता ।
दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम् ।।१४

तताप सुमहद् घोरं तपोराशिस्तपः परम् ।
प्रपन्ना विष्णुमव्यक्तं शरण्यं शरणं हरिम् ।।१५

कृत्वा हृत्पद्मकिञ्जल्के निष्कलं परमं पदम् ।
वासुदेवमनाद्यन्तमानन्दं व्योम केवलम् ।।१६

प्रसन्नो भगवान् विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ।
आविर्बभूव योगात्मा देवमातुः पुरो हरिः ।।१७

दृष्ट्वा समागतं विष्णुमदितिर्भक्तिसंयुता ।
मेने कृतार्थमात्मानं तोषयामास केशवम् ।।१८

मैं धन्य और अनुगृहीत हूँ क्योंकि आज ब्रह्मवेत्ता पुरातन योगीश्वर भगवान् स्वयं मुझे मिले हैं। (५)

हे ब्रह्मन्। हे पितामह देव स्वरूप ! हे ब्रह्मपुत्र ! आप मुझे वतलायें कि आप स्वयं क्यों आये हैं एवं मै क्या कार्य करूँ। (६)

उन देवस्वरूप भगवान् ने धर्मयुक्त महान् असुर से कहा—"मैं आपको ही देखने आया हूँ। आप भाग्यवान् हैं। (७)

"हे दैत्यश्रेष्ठ ! दैत्यों के लिये यह नीति अत्यन्त दुर्लभ है। तीनों लोकों में तुम्हारे समान दूसरा धार्मिक नहीं है।" (८)

ऐसा कहे जाने पर असुरराज ने पुनः उन महामुनि से कहा—हे ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ ! मुझे धर्मो में सर्वश्रेष्ठ धर्म वतलायें। (९)

उन भगवत्स्वरूप योगी ने महात्मा दैत्येन्द्र को आत्मज्ञान रूपी सर्वश्रेष्ठ एवं अत्यन्त रहस्यमय धर्म वतलाया। (१०)

उसने श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त गुरुदक्षिणा देकर (उन्हें विदा किया तथा) वह राज्य पुत्र को देकर योगाभ्यास करने लगा। (११)

उसका पुत्र वह वलि नामक बुद्धिमान् महान् असुर अत्यन्त ब्राह्मण-भक्त और धार्मिक था। उसने इन्द्र को जीत लिया (१२)

उस (वलि) से देवों के सहित इन्द्र महान् युद्ध करने के उपरान्त पराजित होकर अच्युत विष्णु देव की शरण में गए। (१३)

तदनन्तर देवों की माता तपराशि स्वरूप अदिति देवी अत्यन्त दुःखित होकर दैत्येन्द्रों के वध हेतु मुझे पुत्र हो इस विचार से अत्यन्त कठिन उत्कृष्ट तप करने लगीं। हृदय रूपी कमलकलिका में आनन्दमय, व्योमस्वरूप, अद्वितीय, अनादि, अनन्त निष्कल एवं परमस्वरूप वासुदेव का ध्यान करते हुए (वे) शरणागतवत्सल अव्यक्त हरि विष्णु की शरण में गयीं। (१४-१६)

शङ्ख, चक्र एवं गदाधारी योगात्मा हरि भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर देवमाता (अदिति) के समक्ष प्रकट हुए। (१७)

विष्णु को आया देखकर भक्तियुक्त अदिति ने अपने आपको कृतार्थ माना और केशव को प्रसन्न करने लगीं। (१८)

अदितिरुवाच ।

जयाशेषदुःखौघनाशैकहेतो
जयानन्तमाहात्म्ययोगाभियुक्त ।
जयानादिमध्यान्तविज्ञानमूर्त्ते
जयाशेषकल्पामलानन्दरूप ॥१९

नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं
नमो नारसिंहाय शेषाय तुभ्यम् ।
नमः कालरुद्राय संहारकर्त्रे
नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते ॥२०

नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं
नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम् ।
नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं
नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते ॥२१

नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्त्ते
नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य ।
नमो देवदेवादिदेवादिदेव
प्रभो विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते ॥२२

नमः शंभवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यं
नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम् ।
नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं
शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते ॥२३

एवं स भगवान् कृष्णो देवमात्रा जगन्मयः ।
तोषितश्छंदयामास वरेण प्रहसन्निव ॥२४
प्रणम्य शिरसा भूमौ सा वव्रे वरमुत्तमम् ।
त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वरये वरम् ॥२५
तथास्त्वित्याह भगवान् प्रपन्नजनवत्सलः ।
दत्त्वा वरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत ॥२६
ततो बहुतिथे काले भगवन्तं जनार्दनम् ।
दधार गर्भं देवानां माता नारायणं स्वयम् ॥२७
समाविष्टे हृषीकेशे देवमातुरथोदरम् ।
उत्पाता जज्ञिरे घोरा बलेर्वैरोचनेः पुरे ॥२८

अदिति ने कहा—

समस्त दुःखों के समूह को नाश करने वाले एक मात्र कारण स्वरूप आपकी जय हो। हे अनन्त माहात्म्य एवं योगाभियुक्त! आपकी जय हो। हे आदि, मध्य और अन्त रहित विज्ञानमूर्त्ति! आपकी जय हो। हे अशेषकल्प! हे अमल आनन्दस्वरूप! आपकी जय हो। (१९)

हे कालरूपी विष्णु! आपको नमस्कार है। हे नृसिंहरूपधारी शेष! आपको नमस्कार है। हे संहार करने वाले कालरुद्र! आपको नमस्कार है। हे वासुदेव! आपको नमस्कार है। (२०)

हे विश्वरूपी माया का विधान करने वाले! आपको नमस्कार है। हे योगगम्य सत्यस्वरूप! आपको नमस्कार है। हे धर्मविज्ञाननिष्ठ! आपको नमस्कार है। हे वराहरूपधारी! आपको वार-वार नमस्कार है। (२१)

हे सहस्रों सूर्य और चन्द्रमा की कान्ति तुल्य मूर्त्ति वाले! आपको नमस्कार है। हे वेदविज्ञान और धर्म से प्राप्त होने वाले! आपको नमस्कार है। हे! देवादिदेव आदिदेव! आपको नमस्कार है। हे विश्वयोनि! हे प्रभो! आपको पुनः नमस्कार है। (२२)

हे सत्यनिष्ठ शम्भु! आपको नमस्कार है। हे कारण-स्वरूप! हे विश्वरूप! आपको नमस्कार है। हे योग-पीठान्तरस्थ! आपको नमस्कार है। हे एकरूप शिव! आपको पुनः नमस्कार है। (२३)

देवमाता के द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जाने पर जगन्मय भगवान् कृष्ण ने किंचित् हँसते हुए वर माँगने को कहा। (२४)

शिर से भूमि पर प्रणाम कर उन्होंने (यह) उत्तम वर माँगा कि देवों के हितार्थ तुम्हें ही पुत्र रूप से वर स्वरूप माँगती हूँ। (२५)

शरणागतवत्सल भगवान् ने कहा 'वैसा ही हो'। वरों को देकर अप्रमेय (भगवान्) वहीं अन्तर्हित हो गये। (२६)

तदनन्तर बहुत दिनों के पश्चात् देवों की माता (अदिति) ने स्वयं नारायण भगवान् जनार्दन को गर्भ में धारण किया। (२७)

देवमाता के उदर में हृषीकेश के समाविष्ट होने पर विरोचन के पुत्र वलि के पुर में घोर उत्पात प्रकट हुए। (२८)

निरीक्ष्य सर्वानुत्पातान् दैत्येन्द्रो भयविह्वलः ।
प्रह्लादमसुरं वृद्धं प्रणम्याह पितामहम् ।।२९

वलिरुवाच ।

पितामह महाप्राज्ञ जायन्तेऽस्मत्पुरेऽधुना ।
किमुत्पाता भवेत् कार्यमस्माकं किंनिमित्तकाः ।।३०
निशम्य तस्य वचनं चिरं ध्यात्वा महासुरः ।
नमस्कृत्य हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत् ।।३१

प्रह्लाद उवाच ।

यो यज्ञैरिज्यते विष्णुर्यस्य सर्वमिदं जगत् ।
दधारासुरनाशार्थं माता तं त्रिदिवौकसाम् ।।३२
यस्मादभिन्नं सकलं भिद्यते योऽखिलादपि ।
स वासुदेवो देवानां मातुर्देहं समाविशत् ।।३३
न यस्य देवा जानन्ति स्वरूपं परमार्थतः ।
स विष्णुरदितेर्देहं स्वेच्छयाऽद्य समाविशत् ।।३४
यस्माद् भवन्ति भूतानि यत्र संयान्ति संक्षयम् ।
सोऽवतीर्णो महायोगी पुराणपुरुषो हरिः ।।३५
न यत्र विद्यते नामजात्यादिपरिकल्पना ।
सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णुरंशेन जायते ।।३६
यस्य सा जगतां माता शक्तिस्तद्धर्मधारिणी ।
माया भगवती लक्ष्मीः सोऽवतीर्णो जनार्दनः ।।३७
यस्य सा तामसी मूर्त्तिः शंकरो राजसी तनुः ।
ब्रह्मा संजायते विष्णुरंशेनैकेन सत्त्वभृत् ।।३८
इत्थं विचिन्त्य गोविन्दं भक्तिनम्रेण चेतसा ।
तमेव गच्छ शरणं ततो यास्यसि निर्वृतिम् ।।३९
ततः प्रह्लादवचनाद् वलिर्वैरोचनिर्हरिम् ।
जगाम शरणं विश्वं पालयामास धर्मतः ।।४०
काले प्राप्ते महाविष्णुं देवानां हर्षवर्द्धनम् ।
असूत कश्यपाच्चैनं देवमाताऽदितिः स्वयम् ।।४१

सभी उत्पातों को देखकर भयविह्वल दैत्येन्द्र (वलि) ने (अपने) वृद्ध पितामह असुर प्रह्लाद को प्रणाम कर कहा । (२९)

वलि ने कहा—हे महाबुद्धिमान् पितामह ! संप्रति हमारे पुर में उत्पात क्यों हो रहे हैं ? इनका कारण क्या है ? हमें क्या करना चाहिए ? (३०)

उसकी वात सुनकर देर तक विचार करने के उपरान्त महान् असुर ने हृषीकेश को नमस्कार कर यह वचन कहा । (३१)

प्रह्लाद ने कहा—

देवों की माता ने असुरों के विनाश हेतु (गर्भ में) उन विष्णु को धारण किया है जिन की यज्ञों से आराधना की जाती है एवं जिनका यह सम्पूर्ण जगत् है । (३२)

देवों की माता के शरीर में उन वासुदेव ने समावेश किया है जिनसे सम्पूर्ण (जगत्) अभिन्न है तथा समस्त (जगत्) से जो भिन्न भी हैं । (३३)

आज वे देव विष्णु अदिति के शरीर में स्वेच्छा से समाविष्ट हुए हैं जिनके स्वरूप को देवता लोग (भी) यथार्थ रूप से नहीं जानते । (३४)

वे महायोगी पुराण पुरुष हरि अवतीर्ण हुए हैं जिनसे सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं एवं जिनमें नाश को प्राप्त होते हैं । (३५)

जहाँ नाम एवं जाति आदि की कोई कल्पना नहीं होती एवं 'सत्ता' ही जिनका स्वरूप है वे विष्णु अंशरूप से प्रकट हो रहे हैं । (३६)

जगत् की मातास्वरूपा एवं उनके धर्म को धारण करने वाली भगवती लक्ष्मी जिनकी मायाशक्ति हैं वे जनार्दन अवतीर्ण हुए हैं । (३७)

शङ्कर जिनकी तमोगुणमयी मूर्ति हैं एवं ब्रह्मा जिनके रजोगुणमयशरीर हैं वे सत्त्वगुणधारी विष्णु एक अंश से प्रकट हो रहे हैं । (३८)

गोविन्द को ऐसा समझकर भक्ति से विनम्र चित्त होकर उन्हीं की शरण में जाओ । इनसे तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी । (३९)

तदुपरान्त प्रह्लाद के कहने से विरोचनपुत्र वलि विष्णु का शरणागत होकर धर्मपूर्वक विश्व का पालन करने लगा । (४०)

समय आने पर कश्यप से स्वयं देवमाता अदिति ने देवों का हर्ष वढ़ाने वाले, उन महाविष्णु को उत्पन्न किया । (४१)

चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।
नीलमेघप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम् ॥४२

उपतस्थुः सुराः सर्वे सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ।
उपेन्द्रमिन्द्रप्रमुखा ब्रह्मा चर्षिगणैर्वृतः ॥४३

कृतोपनयनो वेदानध्यैष्ट भगवान् हरिः ।
समाचारं भरद्वाजात् त्रिलोकाय प्रदर्शयन् ॥४४

एवं हि लौकिकं मार्गं प्रदर्शयति स प्रभुः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥४५

ततः कालेन मतिमान् बलिर्वैरोचनिः स्वयम् ।
यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विष्णुमर्चयामास सर्वगम् ॥४६

ब्राह्मणान् पूजयामास दत्त्वा वहुतरं धनम् ।
ब्रह्मर्षयः समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः ॥४७

विज्ञाय विष्णुर्भगवान् भरद्वाजप्रचोदितः ।
आस्थाय वामनं रूपं यज्ञदेशमथागमत् ॥४८

कृष्णाजिनोपवीताङ्ग आषाढेन विराजितः ।
ब्राह्मणो जटिलो वेदानुद्गिरन् भस्ममण्डितः ॥४९

संप्राप्यासुरराजस्य समीपं भिक्षुको हरिः ।
स्वपादैर्विमितं देशमयाचत बलिं त्रिभिः ॥५०

प्रक्षाल्य चरणौ विष्णोर्बलिर्भावसमन्वितः ।
आचामयित्वा भृङ्गारमादाय स्वर्णनिर्मितम् ॥५१

दास्ये तवेदं भवते पदत्रयं
प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृतिः ।
विचिन्त्य देवस्य कराग्रपल्लवे
निपातयामास जलं सुशीतलम् ॥५२

विचक्रमे पृथिवीमेष एता-
मथान्तरिक्षं दिवमादिदेवः ।
व्यपेतरागं दितिजेश्वरं तं
प्रकर्तुकामः शरणं प्रपन्नम् ॥५३

आक्रम्य लोकत्रयमीशपादः
प्राजापत्याद् ब्रह्मलोकं जगाम ।
प्रणेमुरादित्यसहस्रकल्पं
ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धाः ॥५४

(वे विष्णु) चतुर्भुजधारी, विशाल नेत्रों वाले, श्रीवत्स से सुशोभित वक्षःस्थल वाले, नीलमेघतुल्य, शोभा से आवृत एवं प्रकाशमान थे। (४२)

ऋषिगणों से आवृत ब्रह्मा एवं इन्द्रादि सभी देवता और सिद्ध तथा चारण विष्णु की सेवा करने लगे। (४३)

उपनयन हो जाने के अनन्तर भगवान् हरि ने तीनों लोकों को प्रदर्शित करते हुए भरद्वाज से वेदों एवं सदाचार का अध्ययन किया। (४४)

वे प्रभु इस प्रकार लौकिक (लोकहितकारी) मार्ग प्रदर्शित करते हैं। वे जैसा प्रमाण उपस्थित करते हैं लोक उसी का अनुकरण करता है। (४५)

तदुपरान्त समयानुसार विरोचन के पुत्र स्वयं बुद्धिमान् वलि ने यज्ञ द्वारा सर्वव्यापक यज्ञेश्वर विष्णु का अर्चन किया। (४६)

अत्यधिक धन देकर (उसने) ब्राह्मणों की पूजा की। ब्रह्मर्षि लोग (उस) महात्मा के यज्ञस्थल में आये। (४७)

(उस यज्ञ को) जानकर भरद्वाज से प्रेरित भगवान् विष्णु वामन रूप धारण कर यज्ञस्थान में आये। (४८)

शरीर पर कृष्णमृग का चर्म तथा उपवीत धारण किये, पलाशदण्ड से सुशोभित, जटाधारी, भस्म मण्डित ब्राह्मण के रूप में वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए असुरराज के समीप पहुँच भिक्षुक हरि ने वलि से अपने तीन पगों द्वारा नापी गयी भूमि की याचना की। (४९, ५०)

वलि ने श्रद्धापूर्वक विष्णु के दोनों चरणों का प्रक्षालन करने के उपरान्त स्वर्ण-निर्मित पात्र लेकर (उन्हें) आचमन कराया और 'मैं आपको यह तीन पग (भूमि) देता हूँ, अव्यय आकार वाले देव हरि प्रसन्न हों' . (इस प्रकार) सङ्कल्प कर (उसने) देव के कराग्रपल्लव पर सुशीतल जल गिराया। (५१, ५२)

शरणागत दैत्यराज को आसक्ति-रहित करने की इच्छा से उन आदिदेव ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में पाद-विक्षेप किया। (५३)

तीनों लोकों को आक्रान्त कर ईश्वर का चरण प्रजापति के लोक से ब्रह्मलोक तक पहुँचा। उस लोक में

अथोपतस्थे भगवाननादिः
पितामहस्तोषयामास विष्णुम् ।
भित्त्वा तदण्डस्य कपालमूर्ध्वं
जगाम दिव्यावरणानि भूयः ॥५५
अथाण्डभेदान्निपपात शीतलं
महाजलं तत् पुण्यकृद्भिश्च जुष्टम् ।
प्रवर्तते चापि सरिद्वरा तदा
गङ्गेत्युक्ता ब्रह्मणा व्योमसंस्था ॥५६
गत्वा महान्तं प्रकृतिं प्रधानं
ब्रह्माणमेकं पुरुषं स्वबीजम् ।
अतिष्ठदीशस्य पदं तदव्ययं
दृष्ट्वा देवास्तत्र तत्र स्तुवन्ति ॥५७
आलोक्य तं पुरुषं विश्वकायं
महान् बलिर्भक्तियोगेन विष्णुम् ।
ननाम नारायणमेकमव्ययं
स्वचेतसा यं प्रणमन्ति देवाः ॥५८
तमब्रवीद् भगवानादिकर्त्ता
भूत्वा पुनर्वामनो वासुदेवः ।
ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेदं
लोकत्रयं भवता भावदत्तम् ॥५९
प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो
निपातयामास जलं कराग्रे ।
दास्ये तवात्मानमनन्तधाम्ने
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय ॥६०
प्रगृह्य सूनोरपि संप्रदत्तं
प्रह्लादसूनोरथ शङ्खपाणिः ।
जगाद दैत्यं जगदन्तरात्मा
पातालमूलं प्रविशेति भूयः ॥६१
समास्यतां भवता तत्र नित्यं
भुक्त्वा भोगान् देवतानामलभ्यान् ।
ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात्
प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्माम् ॥६२
उक्त्वैवं दैत्यसिंहं तं विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः ॥६३

रहने वाले सिद्धों ने सहस्रों सूर्य के सदृश (उन देव) को प्रणाम किया । (५४)

तदुपरान्त अनादि भगवान् पितामह ने उपस्थित होकर विष्णु को सन्तुष्ट किया। उस ब्रह्माण्ड के ऊपरी कपाल को भेदकर पुनः (वह चरण) दिव्यावरणों में जाने लगा। (५५)

तदनन्तर अण्ड का भेद होने के कारण पुण्यकर्मियों से सेवित शीतल महान् जल नीचे गिरा। तभी से आकाश-स्थित वह श्रेष्ठ नदी प्रवर्त्तित है। ब्रह्मा ने (उस जल को) 'गङ्गा' के नाम से अभिहित किया। (५६)

ईश्वर का चरण महान्, प्रधान प्रकृति एवं स्वबीज-स्वरूप अद्वितीय पुरुष ब्रह्म पर्यन्त पहुँचकर ठहर गया। उस अव्यय (पद) को देखकर विभिन्न स्थानों के देवता स्तुति करने लगे। (५७)

उन विश्वमय शरीर वाले पुरुष विष्णु को देखकर महान् बलि ने अपने भक्तियुक्त चित्त से उन अद्वितीय अव्यय नारायण को नमस्कार किया जिन्हें देवता प्रणाम करते रहते हैं। (५८)

पुनः वामन होकर आदिकर्त्ता भगवान् वासुदेव ने उससे कहा "हे दैत्याधिपति ! भक्तिपूर्वक आपका दिया हुआ तीनों लोक अब मेरा ही है।" (५९)

दैत्य ने पुनः शिर से प्रणाम कर उनके कराग्र पर जल गिराया (और कहा) "हे अनन्तधाम। हे त्रिविक्रम ! हे अमितपराक्रम वाले ! मैं अपने आपको तुम्हें प्रदान करता हूँ।" (६०)

तदनन्तर प्रह्लाद के पुत्र, (विरोचन) के पुत्र (बलि) का दिया हुआ ग्रहण कर जगत् के अन्तरात्मा शङ्खपाणि (विष्णु) ने पुनः दैत्य से कहा "(अब) पाताल मूल में चले जाओ।" (६१)

"आप वहाँ निरन्तर रहते हुए देवों को भी अलभ्य भोगों का उपभोग कर भक्तियोग द्वारा मेरा सतत ध्यान करें। कल्पान्त होने पर पुनः मुझमें प्रवेश करोगे।" (६२)

उस दैत्यश्रेष्ठ से ऐसा कहकर सत्यपराक्रम तथा बड़े-बड़े डगों वाले विष्णु ने इन्द्र को तीनों लोक दे दिये। (६३)

संस्तुवन्ति महायोगं सिद्धा देवर्षिकिन्नराः ।
ब्रह्मा शक्रोऽथ भगवान् रुद्रादित्यमरुद्गणाः ॥६४
कृत्वैतदद्भुतं कर्म विष्णुर्वामनरूपधृक् ।
पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥६५
सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान् पातालं प्राप चोदितः ।
प्रह्लादेनासुरवरैर्विष्णुना विष्णुतत्परः ॥६६
अपृच्छद् विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमनुत्तमम् ।
पूजाविधानं प्रह्लादं तदाहासौ चकार सः ॥६७
अथ रथचरणासिशङ्खपाणिं
सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम् ।
शरणमुपययौ स भावयोगात्
प्रणतगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम् ॥६८
एष वः कथितो विप्रा वामनस्य पराक्रमः ।
स देवकार्याणि सदा करोति पुरुषोत्तमः ॥६९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

१७

सूत उवाच ।
बलेः पुत्रशतं त्वासीन्महाबलपराक्रमम् ।
तेषां प्रधानो द्युतिमान् बाणो नाम महाबलः ॥१
सोऽतीव शंकरे भक्तो राजा राज्यमपालयत् ।
त्रैलोक्यं वशमानीय बाधयामास वासवम् ॥२
ततः शक्रादयो देवा गत्वोचुः कृत्तिवाससम् ।
त्वदीयो बाधते ह्यस्मान् बाणो नाम महासुरः ॥३
व्याहृतो दैवतैः सर्वैर्देवदेवो महेश्वरः ।
ददाह बाणस्य पुरं शरेणैकेन लीलया ॥४

तदनन्तर सिद्ध, देव, ऋषि, किन्नर, भगवान् ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, आदित्य, तथा मरुद्गण (उन) महायोगी की स्तुति करने लगे। (६४)

यह अद्भुत कर्म कर वामनरूपधारी विष्णु सभी के देखते-देखते वहीं अन्तर्हित हो गये। (६५)

वह विष्णुभक्त श्रीमान् दैत्यश्रेष्ठ भी विष्णु की प्रेरणा से प्रह्लाद एवं असुर श्रेष्ठों के साथ पाताल में चला गया। (६६)

उसने प्रह्लाद से विष्णु का महात्म्य, श्रेष्ठ भक्तियोग तथा पूजन का विधान पूछा। उन्होंने अर्थात् प्रह्लाद ने वतलाया और उसने अर्थात् वलि ने (उसके अनुसार) आचरण किया। (६७)

तदुपरान्त श्रद्धापूर्वक कर्मयोग का आचरण कर वह भक्तों के आश्रय अप्रमेय, कमलनेत्र, हाथों में शङ्ख, तलवार तथा चक्र धारण करने वाले ईश की शरण में गया। (६८)

हे विप्रो ! वामन का यह पराक्रम तुम्हें वतलाया गया। वे पुरुषोत्तम सदा देवों का कार्य करते हैं। (६९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में सोलहवाँ अध्याय समाप्त—१६.

१७

सूत ने कहा—

वलि के महान् वलवान् और पराक्रमी सौ पुत्र थे। महावली और तेजस्वी वाण नामक (असुर) उनमें प्रधान था। (१)

शङ्कर का अत्यन्त भक्त वह राजा राज्य का पालन करते हुए त्रैलोक्य को वशीभूत कर इन्द्र को पीडित करने लगा। (२)

तदनन्तर इन्द्रादि देव कृत्तिवासा अर्थात् शङ्कर के समीप गये और उनसे कहा "आपका (भक्त) महान् असुर वाण हम हमलोगों को पीड़ित कर रहा है। (३)

सभी देवों के कहने पर देवाधिदेव महेश्वर ने एक वाण से वाण के पुर को लीलापूर्वक दग्ध कर दिया। (४)

दह्यमाने पुरे तस्मिन् वाणो रुद्रं त्रिशूलिनम् ।
ययौ शरणमीशानं गोपतिं नीललोहितम् ।।५
मूर्द्धन्याधाय तल्लिङ्गं शांभवं भीतिवर्जितः ।
निर्गत्य तु पुरात् तस्मात् तुष्टाव परमेश्वरम् ।।६
संस्तुतो भगवानीशः शंकरो नीललोहितः ।
गाणपत्येन वाणं तं योजयामास भावतः ।।७
अथाभवन् दनोः पुत्रास्ताराद्या ह्यतिभीषणाः ।
तारस्तथा शम्बरश्च कपिलः शंकरस्तथा ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ।।८
सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणामभवद् द्विजाः ।
अनेकशिरसां तद्वत् खेचराणां महात्मनाम् ।।९
अरिष्टा जनयामास गन्धर्वाणां सहस्रकम् ।
अनन्ताद्या महानागाः काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः ।।१०
ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुंगवाः ।
शुकीं श्येनीं च भासीं च सुग्रीवां गृध्रिकां शुचिम् ।।११

जब वह पुर जलने लगा तब वाण नीललोहित त्रिशूली गोपति ईशान रुद्र की शरण में गया । (५)

शङ्कर का लिङ्ग मस्तक पर धारण कर वह उस पुर से निर्भयतापूर्वक निकल गया और परमेश्वर की स्तुति करने लगा । (६)

स्तुति किये जाने पर नीललोहित ईश भगवान्-शङ्कर ने स्नेहपूर्वक उस वाण को गणपति पद प्रदान किया । (७)

दनु के अत्यन्त भीषण तार आदि पुत्र थे। (उनमें) तार, शम्वर, कपिल, शङ्कर, स्वर्भानु एवं वृषपर्वा थे—इनका प्रधान रूप से वर्णन किया गया है। (८)

हे द्विजो ! सुरसा को अनेक शिरों वाले सहस्र सर्प उत्पन्न हुये। इसी प्रकार अरिष्टा ने एक सहस्र आकाशचारी महात्मा गन्धर्वों को जन्म दिया। अनन्त इत्यादि महान् नाग कद्रू के पुत्र कहे गये हैं। (९-१०)

हे द्विजपुङ्गवो ! ताम्रा ने शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवा, गृधिका एवं शुचि नामक छः कन्यायों को जन्म दिया । (११)

गास्तथा जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा ।
इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः ।।१२
खसा वै यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ।
रक्षोगणं क्रोधवशा जनयामास सत्तमाः ।।१३
विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ ।
तयोश्च गरुडो धीमान् तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
प्रसादाच्छूलिनः प्राप्तो वाहनत्वं हरेः स्वयम् ।।१४
आराध्य तपसा रुद्रं महादेवं तथाऽरुणः ।
सारथ्ये कल्पितः पूर्वं प्रीतेनार्कस्य शंभुना ।।१५
एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्थाणुजङ्गमाः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिञ्छृण्वतां पापनाशनाः ।।१६
सप्तविंशत् सुताः प्रोक्ताः सोमपत्न्यश्च सुव्रताः ।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ।।१७
वहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ।

सुरभि ने गायों एवं महिषियों को उत्पन्न किया। इरा ने सभी प्रकार के वृक्ष, लता, वल्लरी और तृण की जातियों को उत्पन्न किया । (१२)

हे द्विजश्रेष्ठो ! खसा ने यक्षों और राक्षसों को, मुनि ने अप्सराओं को तथा क्रोधवशा ने राक्षसों को उत्पन्न किया । (१३)

विनता के गरुड और अरुण नामक दो प्रसिद्ध पुत्र हुए। उनमें बुद्धिमान् गरुड कठोर तप करके शङ्कर के अनुग्रह से विष्णु के वाहन वन गये । (१४)

इसी प्रकार पूर्व काल में अरुण ने तपस्या द्वारा महादेव की आराधना की। अतः शम्भु ने (उसे) प्रीतिपूर्वक सूर्य का सारथी बना दिया । (१५)

इस वैवस्वत्त मन्वन्तर में ये सभी चर और अचर स्वरूप कश्यप के वंशज कहे गए हैं। इनका वर्णन सुनने वालों के पाप नष्ट हो जाते हैं। (१६)

हे शोभनव्रत वाले द्विजो ! (दक्ष की) सत्ताइस पुत्रियाँ सोम की पत्नियाँ कही गयी हैं। अरिष्टनेमि की पत्नियों को सोलह सन्तानें हुयीं । (१७)

विद्वान् वहुपुत्र के चार विद्युत नामक पुत्र कहे गए

तद्वदङ्गिरसः पुत्रा ऋषयो ब्रह्मसत्कृताः ॥१८
कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवप्रहरणाः सुताः ।
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ।
मन्वन्तरेषु नियतं तुल्यैः कार्यैः स्वनामभिः ॥१९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

१८

सूत उवाच ।
एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासंतानकारणात् ।
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार सुमहत् तपः ॥१
तस्य वै तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौ सुताविमौ ।
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ॥२
वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशाः ।
रैभ्यस्य जज्ञिरे रैभ्याः पुत्रा द्युतिमतां वराः ॥३
च्यवनस्य सुता पत्नी नैध्रुवस्य महात्मनः ।
सुमेधा जनयामास पुत्रान् वै कुण्डपायिनः ॥४
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत ।
नाम्ना वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महातपाः ॥५
शाण्डिल्यानां परः श्रीमान् सर्वतत्त्वार्थवित् सुधीः ।
प्रसादात् पार्वतीशस्य योगमुत्तममाप्तवान् ॥६
शाण्डिल्या नैध्रुवा रैभ्यास्त्रयः पक्षास्तु काश्यपाः ।
नरप्रकृतयो विप्राः पुलस्त्यस्य वदामि वः ॥७
तृणबिन्दोः सुता विप्रा नाम्ना त्विलविला स्मृता ।
पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत् ॥८

हैं। इसी प्रकार अङ्गिरा के पुत्र ब्रह्मा द्वारा सत्कृत श्रेष्ठ ऋषि थे। (१८)

देवर्षि कृशाश्व के पुत्र देवप्रहरण अर्थात् देवों के शस्त्र थे। सहस्र युगों का अन्त होने पर विभिन्न मन्वन्तरों में निश्चित रूप से ये अपने नामों के तुल्य कार्यों के साथ पुनः उत्पन्न होते हैं। (१९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्व विभाग में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त—१७.

१८

सूत ने कहा :—

प्रजा की वृद्धि हेतु इन पुत्रों को उत्पन्न कर पुत्राभिलापी कश्यप महान् तप करने लगे। (१)

अत्यन्त तप कर रहे उन (कश्यप) को वत्सर और असित नामक दो पुत्र हुए। वे दोनों ही ब्रह्मवादी थे। (२)

वत्सर से नैध्रुव और महान् यशस्वी रैभ्य उत्पन्न हुए। रैभ्य को तेजस्वियों में श्रेष्ठ रैभ्य नामक पुत्र उत्पन्न हुए। (३)

च्यवन की पुत्री सुमेधा महात्मा नैध्रुव की पत्नी थी। उस सुमेधा ने कुण्डपायी पुत्रों को उत्पन्न किया। (४)

असित की एकपर्णा नामक पत्नी से महातपस्वी ब्रह्मिष्ठ एवं योगाचार्य देवल एवं श्रीमान्, सभी तत्त्वार्थों के ज्ञाता तथा शाण्डिल्यों में श्रेष्ठ बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे शङ्कर के अनुग्रह से उत्तम योग प्राप्त हुआ। (५,६)

शाण्डिल्य, नैध्रुव एवं रैभ्य की सन्तान कश्यप वंशीय मानव प्रकृति वाले पुत्र हैं। हे विप्रो! अब आप से पुलस्त्य (के वंश का) वर्णन करता हूँ। (७)

हे ब्राह्मणो! तृणबिन्दु की एक पुत्री इलविला नाम की थी। उन राजर्षि ने वह कन्या पुलस्त्य को दे दी। (८)

ऋषिस्त्वैलविलिस्तस्यां विश्रवाः समपद्यत ।
तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धिकाः ।।९
पुष्पोत्कटा च राका च कैकसी देववर्णिनी ।
रूपलावण्यसंपन्नास्तासां वै शृणुत प्रजाः ।।१०
ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देवरूपिणी ।
कैकसी जनयत् पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम् ।।११
कुम्भकर्णं शूर्पणखां तथैव च विभीषणम् ।
पुष्पोत्कटा व्यजनयत् पुत्रान् विश्रवसः शुभान् ।।१२
महोदरं प्रहस्तं च महापार्श्वं खरं तथा ।
कुम्भीनसीं तथा कन्यां राकायां शृणुत प्रजाः ।।१३
त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबलः ।
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश ।
सर्वे तपोबलोत्कृष्टा रुद्रभक्ताः सुभीषणाः ।।१४
पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः ।
भूताः पिशाचाः सर्पाश्च शूकरा हस्तिनस्तथा ।।१५
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे ।
मरीचेः कश्यपः पुत्रः स्वयमेव प्रजापतिः ।।१६
भृगोरप्यभवच्छुक्रो दैत्याचार्यो महातपाः ।
स्वाध्याययोगनिरतो हरभक्तो महाद्युतिः ।।१७
अत्रेः पत्न्योऽभवन् बह्वयः सोदर्यास्ताः पतिव्रताः ।
कृशाश्वस्य तु विप्रेन्द्रा घृताच्यामिति मे श्रुतम् ।।१८
स तासु जनयामास स्वस्त्यात्रेयान् महौजसः ।
वेदवेदाङ्गनिरतांस्तपसा हतकिल्विषान् ।।१९
नारदस्तु वसिष्ठाय ददौ देवीमरुन्धतीम् ।
ऊर्ध्वरेतास्तत्र मुनिः शापाद् दक्षस्य नारदः ।।२०
हर्यश्वेषु तु नष्टेषु मायया नारदस्य तु ।
शशाप नारदं दक्षः क्रोधसंरक्तलोचनः ।।२१
यस्मान्मम सुताः सर्वे भवतो मायया द्विज ।
क्षयं नीतास्त्वशेषेण निरपत्यो भविष्यति ।।२२
अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत् सुतम् ।
शक्तेः पराशरः श्रीमान् सर्वज्ञस्तपतां वरः ।।२३
आराध्य देवदेवेशमीशानं त्रिपुरान्तकम् ।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ।।२४

उस इलविला से विश्रवा ऋषि उत्पन्न हुए पुलस्त्य के कुल को बढ़ाने वाली रूप और लावण्य से सम्पन्न पुष्पोत्कटा, राका, कैकसी और देववर्णिनी नामक (विश्रवा) की चार पत्नियाँ थीं। उनकी प्रजा का वर्णन सुनो। (९, १०)

उनकी देवरूपिणी (नामक पत्नी) ने ज्येष्ठ वैश्रवण (कुबेर) को जन्म दिया। कैकसी ने राक्षसराज रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण और शूर्पणखा को उत्पन्न किया। पुष्पोत्कटा ने भी महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व एवं खर नामक विश्रवा के सुन्दर पुत्रों तथा कुम्भीनसी नामक कन्या को जन्म दिया। राका की सन्तान का वर्णन सुनो (राका के) त्रिशिरा, दूषण और महाबली विद्युज्जिह्व नामक पुत्र हुए। पुलस्त्य के वंश में ये दस उत्कृष्ट तप और बलवाले, रुद्रभक्त, अत्यन्त भीषण एवं क्रूरकर्मा राक्षस हुए। (११-१४)

समस्त मृग, व्याल, दाँढ़ों वाले प्राणी, भूत, पिशाच, सर्प, शूकर और हाथी पुलह के पुत्र हैं। (१५)

उस वैवस्वत मन्वन्तर में क्रतु को सन्तान-रहित कहा गया है। मरीचि के पुत्र स्वयं प्रजापति कश्यप थे। (१६)

भृगु को स्वाध्याययोग में आसक्त, शङ्कर-भक्त, अत्यन्त तेजस्वी एवं महातपस्वी दैत्याचार्य शुक्र उत्पन्न हुए। (१७)

हे श्रेष्ठ विप्रो ! हमने सुना है कि कृशाश्व की घृताची से उत्पन्न वे पुत्रियाँ थीं। अत्रि की अनेक पत्नियाँ थीं और वे पतिव्रतायें बहनें थीं। (१८)

उन्होंने अर्थात् अत्रि ने उनसे महान् ओजस्वी वेद-वेदाङ्गपरायण एवं तपस्या द्वारा नष्ट हुए पापों वाले कल्याणकारी आत्रेयों (स्वस्त्यात्रेयों) को उत्पन्न किया। (१९)

नारद दक्ष के शाप से उर्ध्वरेता हो गये। उन्होंने वसिष्ठ को देवी अरुन्धती को दे दिया। (२०)

नारद की माया से हर्यश्वों के नष्ट होने पर क्रोध से लाल हुए नेत्रों वाले दक्ष ने नारद को शाप दिया था— (२१)

हे द्विज ! यतः आपकी माया से मेरे सभी पुत्र सर्वथा नष्ट हो गये अतः आप सन्तान-रहित हो जायेंगे। (२२)

वसिष्ठ ने अरुन्धती से शक्ति नामक पुत्र उत्पन्न किया। शक्ति के पुत्र श्रीमान् सर्वज्ञ एवं श्रेष्ठ तपस्वी पराशर ने देवाधिदेव, त्रिपुरारि शङ्कर की आराधना कर कृष्णद्वैपायन नामक अनुपम समर्थ पुत्र प्राप्त किया। (२३, २४)

द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शंकरः ।
अंशांशेनावतीर्योर्व्यां स्वं प्राप परमं पदम् ।।२५
शुकस्याप्यभवन् पुत्राः पञ्चात्यन्ततपस्विनः ।
भूरिश्रवाः प्रभुः शंभुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः ।
कन्या कीर्त्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता ।।२६
एतेऽत्र वंश्याः कथिता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनाम् ।
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वं कश्यपाद्राजसंततिम् ।।२७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे अष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

१९

सूत उवाच ।
अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपात् प्रभुम् ।
तस्यादित्यस्य चैवासीद् भार्याणां तु चतुष्टयम् ।
संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया पुत्रांस्तासां निबोधत ।।१
संज्ञा त्वाष्ट्री च सुषुवे सूर्यान्मनुमनुत्तमम् ।
यमं च यमुनां चैव राज्ञी रैवतमेव च ।।२
प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सावर्णमात्मजम् ।
शनिं च तपतीं चैव विष्टिं चैव यथाक्रमम् ।।३
मनोस्तु प्रथमस्यासन् नव पुत्रास्तु संयमाः ।
इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ।।४
नरिष्यन्तश्च नाभागो ह्यरिष्टः कारुषकस्तथा ।
पृषध्रश्च महातेजा नवैते शक्रसन्निभाः ।।५
इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च सोमवंशविवृद्धये ।
बुधस्य गत्वा भवनं सोमपुत्रेण संगता ।।६
असूत सौम्यजं देवी पुरूरवसमुत्तमम् ।
पितॄणां तृप्तिकर्त्तारं बुधादिति हि नः श्रुतम् ।।७
संप्राप्य पुंस्त्वममलं सुद्युम्न इति विश्रुतः ।
इला पुत्रत्रयं लेभे पुनः स्त्रीत्वमविन्दत ।।८
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च ।
सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रपन्नाः कमलोद्भवम् ।।९

भगवान् शङ्कर ही शुक नाम से द्वैपायन के पुत्र उत्पन्न हुए। अंशांश रूप से पृथ्वी पर उत्पन्न होकर (वे पुनः) अपने परम पद को चले गए। (२५)

भूरिश्रवा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण एवं पाँचवें गौर नामक अत्यन्त तपस्वी पाँच पुत्र एवं कीर्त्तिमती नाम की कन्या उत्पन्न हुई जो योगमाता एवं धृतव्रता थी। (२६)

यहाँ इन ब्रह्मवादी ब्राह्मणों के वंशजों का वर्णन किया गया। इसके पाश्चात् कश्यप से उत्पन्न होने वाले क्षत्रियों का वर्णन सुनो। (२७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त—१८.

१९

सूत ने कहा—अदिति ने कश्यप से प्रभु आदित्य को उत्पन्न किया। उन आदित्य की संज्ञा, राज्ञी प्रभा और छाया नाम की चार भार्यायें थीं। उनके पुत्रों को सुनो। (१)

त्वष्टा की पुत्री संज्ञा ने सूर्य से श्रेष्ठ मनु यम एवं यमुना को उत्पन्न किया। राज्ञी ने रैवत को उत्पन्न किया। (२)

प्रभा ने आदित्य से प्रभात को उत्पन्न किया तथा छाया ने क्रमानुसार सावर्ण, शनि, तपती एवं विष्टि नामक संतानें उत्पन्न किया। (३)

प्रथम मनु को इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, कारुपक एवं पृषध्र नामक इन्द्रतुल्य महातेजस्वी तथा संयमी नव पुत्र थे। (४, ५)

सोम वंश की वृद्धि हेतु (मनु की) ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ (पुत्री) इलादेवी बुध के गृह में गयी एवं चन्द्रमापुत्र (बुध) के संयोग से (इलाने) चन्द्रपुत्र से पितृगण को तृप्ति प्रदान करने वाले पुरूरवा को जन्म दिया—हमने ऐसा सुना है। (६, ७)

(सुन्दर पुत्र प्राप्त करने के उपरान्त इला को) शुद्ध पुरुपत्व की प्राप्ति हुई और उनका नाम सुद्युम्न पड़ा। (पुरुप में) इला ने उत्कल, गय एवं विनताश्व नामक तीन पुत्रों को प्राप्त किया। तदनन्तर वह पुनः स्त्री हो गयी। वे सभी अत्यन्त कीर्तिमान् एवं ब्रह्मपरायण थे। (८, ९)

इक्ष्वाकोश्चाभवद् वीरो विकुक्षिर्नाम पार्थिवः ।
ज्येष्ठः पुत्रशतस्यापि दश पञ्च च तत्सुताः ॥१०
तेषां ज्येष्ठः ककुत्स्थोऽभूत् काकुत्स्थो हि सुयोधनः।
सुयोधनात् पृथुः श्रीमान् विश्वकश्च पृथोः सुतः ॥११
विश्वकादार्द्रको धीमान् युवनाश्वस्तु तत्सुतः ।
स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्वः प्रतापवान् ॥१२
दृष्ट्वा तु गौतमं विप्रं तपन्तमनलप्रभम् ।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ पुत्रकामो महीपतिः ।
अपृच्छत् कर्मणा केन धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम् ॥१३

गौतम उवाच ।

आराध्य पूर्वपुरुषं नारायणमनामयम् ।
अनादिनिधनं देवं धार्मिकं प्राप्नुयात् सुतम् ॥१४
यस्य पुत्रः स्वयं ब्रह्मा पौत्रः स्यान्नीललोहितः ।
तमादिकृष्णमीशानमाराध्याप्नोति सत्सुतम् ॥१५
न यस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः ।
तमाराध्य हृषीकेशं प्राप्नुयाद्धार्मिकं सुतम् ॥१६
स गौतमवचः श्रुत्वा युवनाश्वो महीपतिः ।
आराधयन्महायोगं वासुदेवं सनातनम् ॥१७
तस्य पुत्रोऽभवद् वीरः श्रावस्तिरिति विश्रुतः ।
निर्मिता येन श्रावस्तिर्गौडदेशे महापुरी ॥१८
तस्माच्च बृहदश्वोऽभूत् तस्मात् कुवलयाश्वकः ।
धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धुं हत्वा महासुरम् ॥१९
धुन्धुमारस्य तनयास्त्रयः प्रोक्ता द्विजोत्तमाः ।
दृढाश्वश्चैव दण्डाश्वः कपिलाश्वस्तथैव च ॥२०
दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।
हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात् संहताश्वकः ॥२१
कृशाश्वश्च रणाश्वश्च संहताश्वस्य वै सुतौ ।
युवनाश्वो रणाश्वस्य शक्रतुल्यबलो युधि ॥२२
कृत्वा तु वारुणीमिष्टिमृषीणां वै प्रसादतः ।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं विष्णुभक्तमनुत्तमम् ।
मान्धातारं महाप्राज्ञं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥२३

इक्ष्वाकु से विकुक्षि नामक वीर राजा हुए। वे उनके (अर्थात् इक्ष्वाकु के) सौ पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र थे। उन्हें पन्द्रह पुत्र हुए। (१०)

उनमें ककुत्स्थ सबसे बड़े थे। ककुत्स्थ का पुत्र सुयोधन था। सुयोधन से श्रीमान् पृथु उत्पन्न हुए। पृथु के पुत्र विश्वक थे। (११)

विश्वक से बुद्धिमान् आर्द्रक की उत्पत्ति हुई एवं उनका पुत्र युवनाश्व था। प्रतापी युवनाश्व गोकर्ण नामक तीर्थ में गए। (वहाँ) तप कर रहे अग्नितुल्य विप्र गौतम का दर्शन करने के उपरान्त पुत्राभिलाषी राजा ने दण्डवत् भूमि पर प्रणाम कर (गौतम से) पूछा कि किस कर्म द्वारा धार्मिक पुत्र प्राप्त हो सकता है। (१२, १३)

गौतम ने कहा—

आदि और अन्त से रहित, अनामय पूर्वपुरुष नारायण देव की आराधना करने से धार्मिक पुत्र प्राप्त होता है। (१४)

स्वयं ब्रह्मा जिनके पुत्र एवं नीललोहित अर्थात् शङ्कर (उनके) पौत्र हैं उन आदि *कृष्ण ईशान की आराधना* करके (मनुष्य) सत्पुत्र प्राप्त करता है। (१५)

भगवान् ब्रह्मा जिनके प्रभाव को यथार्थ रूप से नहीं जानते, उन हृषीकेश की आराधना कर धार्मिक पुत्र प्राप्त करना चाहिए। (१६)

गौतम के वचन को सुनकर युवानाश्व नामक उस राजा ने महायोगी सनातन वासुदेव की आराधना की। (१७)

उसे श्रावस्ति नामक प्रसिद्ध वीर पुत्र हुआ, जिसने गौड़देश में श्रावस्ति नामक महापुरी का निर्माण किया। (१८)

उससे बृहदश्व उत्पन्न हुए एवं (बृहदश्व से) कुवलयाश्वक की उत्पत्ति हुई। धुन्धु नामक महान् असुर को मारकर वे धुन्धुमार (के नाम से प्रसिद्ध) हुए। (१९)

हे द्विजोत्तमो! धुन्धुमार के दृढ़ाश्व, दण्डाश्व और और कपिलाश्व नामक तीन पुत्र कहे जाते हैं। (२०)

दृढ़ाश्व के पुत्र प्रमोद एवं उस (प्रमोद) का पुत्र हर्यश्व था। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ था। निकुम्भ से संहताश्वक उत्पन्न हुआ। (२१)

संहिताश्व के कृशाश्व और रणाश्व नामक दो पुत्र थे। रणाश्व का युद्ध में इन्द्र के तुल्य बलवान् युवनाश्व नामक पुत्र था। (२२)

ऋषियों की कृपा से वारुणी नामक याग करके उसने महाबुद्धिमान्, सभी शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ मान्धाता नामक अनुपम एवं श्रेष्ठ विष्णु-भक्त पुत्र प्राप्त किया। (२३)

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्यवान् ।
मुचुकुन्दश्च पुण्यात्मा सर्वे शक्रसमा युधि ॥२४
अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः ।
हरितो युवनाश्वस्य हारितस्तत्सुतोऽभवत् ॥२५
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः ।
नर्मदायां समुत्पन्नः संभूतिस्तत्सुतोऽभवत् ॥२६
विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनरण्योऽभवत् परः ।
बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥२७
सोऽतीव धार्मिको राजा कर्दमस्य प्रजापतेः ।
प्रसादाद्धार्मिकं पुत्रं लेभे सूर्यपरायणम् ॥२८
स तु सूर्यं समभ्यर्च्य राजा वसुमनाः शुभम् ।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिंदमम् ॥२९
अयजच्चाश्वमेधेन शत्रून् जित्वा द्विजोत्तमाः ।
स्वाध्यायवान् दानशीलस्तितिक्षुर्धर्मतत्परः ॥३०
ऋषयस्तु समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः ।
वसिष्ठकश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥३१
तान् प्रणम्य महाराजः पप्रच्छ विनयान्वितः ।
समाप्य विधिवद् यज्ञं वसिष्ठादीन् द्विजोत्तमान् ॥३२

वसुमना उवाच ।

किंस्विच्छ्रेयस्करतरं लोकेऽस्मिन् ब्राह्मणर्षभाः ।
यज्ञस्तपो वा संन्यासो ब्रूत मे सर्ववेदिनः ॥३३

वसिष्ठ उवाच ।

अधीत्य वेदान् विधिवत् पुत्रानुत्पाद्य धर्मतः ।
इष्ट्वा यज्ञेश्वरं यज्ञैर् गच्छेद् वनमथात्मवान् ॥३४

पुलस्त्य उवाच ।

आराध्य तपसा देवं योगिनं परमेष्ठिनम् ।
प्रव्रजेद् विधिवद् यज्ञैरिष्ट्वा पूर्वं सुरोत्तमान् ॥३५

पुलह उवाच ।

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणं परमेश्वरम् ।
तमाराध्य सहस्रांशुं तपसा मोक्षमाप्नुयात् ॥३६

मान्धाता को पुरुकुत्स, वीर्यवान् अम्बरीष एवं पुण्यात्मा मुचुकुन्द नामक पुत्र हुए। वे सभी युद्ध में इन्द्र तुल्य थे। (२४)

अम्बरीष का पुत्र दूसरा युवनाश्व कहा जाता है। युवनाश्व का पुत्र हरित एवं उस (हरित) का पुत्र हारित था। (२५)

पुरुकुत्स को नर्मदा से महायशस्वी त्रसदस्यु नामक पुत्र हुआ। उस (त्रसदस्यु) का पुत्र संभूति था। (२६)

उस (संभूति) का पुत्र विष्णुवृद्ध एवं दूसरा अनरण्य था। अनरण्य का पुत्र बृहदश्व तथा उस बृहदश्व का पुत्र हर्यश्व था। (२७)

अत्यन्त धार्मिक उस राजा को कर्दम प्रजापति के अनुग्रह से सूर्यभक्त धार्मिक पुत्र (वसुमना) प्राप्त हुआ। (२८)

वसुमना नामक उस राजा को सूर्य की आराधना करने से शत्रुओं का दमन करने वाला त्रिधन्वा नामक अनुपम पुत्र प्राप्त हुआ। (२९)

हे द्विजोत्तमो! स्वाध्यायरत, दानशील, सहनशील एवं धर्मपरायण राजा ने शत्रुओं को जीतकर अश्वमेध यज्ञ किया। (३०)

महात्मा वसिष्ठ एवं कश्यप आदि ऋषिगण तथा इन्द्र इत्यादि देवता (राजा की) यज्ञशाला में आए। (३१)

विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त करने के उपरान्त वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ द्विजों को प्रणाम कर महाराज ने विनयपूर्वक उनसे पूछा। (३२)

वसुमना ने कहा :—

हे सभी कुछ जानने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मणो! (आप) मुझे यह बतला दें कि इस लोक में यज्ञ, तप अथवा संन्यास इनमें कौन अधिक श्रेयस्कर है। (३३)

वसिष्ठ ने कहा—

आत्मवान् को विधिवत् वेदों का अध्ययन करने के उपरान्त धर्मपूर्वक पुत्र उत्पन्न कर तथा यज्ञों द्वारा यज्ञेश्वर की आराधना कर वन में जाना चाहिए। (३४)

पुलस्त्य ने कहा—

पहले विधिपूर्वक यज्ञ द्वारा उत्तम देवों का पूजन कर तथा तप द्वारा योगी देव परमेश्वर की आराधना कर संन्यास ग्रहण करना चाहिए। (३५)

पुलह ने कहा—

जिन्हें अद्वितीय पुराणपुरुष पुरुषोत्तम कहा जाता है तपस्या द्वारा उन सहस्रांशु (अर्थात् सूर्यदेव) की आराधना कर मोक्ष प्राप्त करे। (३६)

जमदग्निरुवाच ।

अजस्य नाभावध्येकमीश्वरेण समर्पितम् ।
बीजं भगवता येन स देवस्तपसेज्यते ।।३७

विश्वामित्र उवाच ।

योऽग्निः सर्वात्मकोऽनन्तः स्वयंभूर्विश्वतोमुखः ।
स रुद्रस्तपसोग्रेण पूज्यते नेतरैर्मखैः ।।३८

भरद्वाज उवाच ।

यो यज्ञैरिज्यते देवो जातवेदाः सनातनः ।
स सर्वदैवततनुः पूज्यते तपसेश्वरः ।।३९

अत्रिरुवाच ।

यतः सर्वमिदं जातं यस्यापत्यं प्रजापतिः ।
तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेश्वरः ।।४०

गौतम उवाच ।

यतः प्रधानपुरुषौ यस्य शक्तिमयं जगत् ।
स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः ।।४१

कश्यप उवाच ।

सहस्रनयनो देवः साक्षी स तु प्रजापतिः ।
प्रसीदति महायोगी पूजितस्तपसा परः ।।४२

क्रतुरुवाच ।

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्धपुत्रस्य चैव हि ।
नान्तरेण तपः कश्चिद्धर्मः शास्त्रेषु दृश्यते ।।४३
इत्याकर्ण्य स राजर्षिस्तान् प्रणम्यातिहृष्टधीः ।
विसर्जयित्वा संपूज्य त्रिधन्वानमथाब्रवीत् ।।४४
आराधयिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्वयम् ।
प्राणं बृहन्तं पुरुषमादित्यान्तरसंस्थितम् ।।४५
त्वं तु धर्मरतो नित्यं पालयैतदतन्द्रितः ।
चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेषं क्षितिमण्डलम् ।।४६
एवमुक्त्वा स तद्राज्यं निधायात्मभवे नृपः ।
जगामारण्यमनघस्तपश्चर्तुमनुत्तमम् ।।४७

जमदग्नि ने कहा—

जिन भगवान् ईश्वर ने अजन्मा (ब्रह्म) की नाभि में अद्वितीय (जगत् कारण स्वरूप) बीज की स्थापना की यज्ञों द्वारा उन्हीं की आराधना करनी चाहिए। (३७)

विश्वामित्र ने कहा—

उग्र तपस्या द्वारा न कि अन्य यज्ञों द्वारा उन रुद्र की आराधना की जाती है जो अग्निस्वरूप, सर्वात्मक, अनन्त, स्वयम्भू एवं विश्वतोमुख हैं। (३८)

भरद्वाज ने कहा—

यज्ञों द्वारा जिन सनातन अग्निदेव की पूजा की जाती है सभी देवों के शरीरस्वरूप वे परमेश्वर ही तप द्वारा पूजित होते हैं। (३९)

अत्रि ने कहा—

अत्यन्त महान् तप करके उन महेश्वर की पूजा की जाती है जिनसे यह सम्पूर्ण (विश्व) उत्पन्न हुआ है एवं प्रजापति जिनकी सन्तान हैं। (४०)

गौतम ने कहा—

तपस्या के द्वारा उन सनातन देवाधिदेव की पूजा करनी चाहिए जिनसे प्रधान अर्थात् प्रकृति और पुरुष की सत्ता तथा जिनकी शक्ति (से) यह जगत् (उत्पन्न हुआ) है। (४१)

कश्यप ने कहा—

तप द्वारा आराधना करने से महायोगी, सहस्रनेत्र, परमदेव, प्रजापति, साक्षी, शम्भु प्रसन्न होते हैं। (४२)

क्रतु ने कहा—

अध्ययनयज्ञ समाप्त कर पुत्र प्राप्त कर लेने वाले पुरुष के लिए शास्त्रों में तप के अतिरिक्त कोई धर्म नहीं दिखलाई पड़ता। (४३)

यह सुनने के उपरान्त अत्यन्त प्रसन्न बुद्धि से उस राजर्षि ने उन लोगों को प्रणाम किया तथा पूजन कर उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् उसने (अपने पुत्र) त्रिधन्वा से कहा— (४४)

मैं तप द्वारा सूर्यमण्डलस्थ प्राणस्वरूप अद्वितीय अक्षर नामक ब्रह्म पुरुष की आराधना करूँगा। (४५)

तुम धर्म में निरत होते हुए नित्य आलस्यशून्य भाव से चातुर्वर्ण्य युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का पालन करो। (४६)

ऐसा कहने के उपरान्त पुत्र को राज्य देकर वह निष्पाप राजा श्रेष्ठ तप करने वन में चला गया। (४७)

हिमवच्छिखरे रम्ये देवदारुवने शुभे ।
कन्दमूलफलाहारो मुन्यन्नैरयजत् सुरान् ॥४८
संवत्सरशतं साग्रं तपोनिर्द्धूतकल्मषः ।
जजाप मनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम् ॥४९
तस्यैवं जपतो देवः स्वयंभूः परमेश्वरः ।
हिरण्यगर्भो विश्वात्मा तं देशमगमत् स्वयम् ॥५०
दृष्ट्वा देवं समायान्तं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम् ।
ननाम शिरसा तस्य पादयोर्नाम कीर्त्तयन् ॥५१
नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
हिरण्यमूर्त्तये तुभ्यं सहस्राक्षाय वेधसे ॥५२
नमो धात्रे विधात्रे च नमो वेदात्ममूर्त्तये ।
सांख्ययोगाधिगम्याय नमस्ते ज्ञानमूर्त्तये ॥५३
नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने ।
पुरुषाय पुराणाय योगिनां गुरवे नमः ॥५४

हिमालय के शिखर पर स्थित रमणीक देवदारु के वन में रहते हुए कन्दमूल एवं फलों का आहार कर मुनियों के अन्न से देवों के निमित्त यज्ञ (आराधना) करने लगा । (४८)

तपस्या द्वारा नष्ट पापों वाले (उस राजा ने) सौ वर्ष तक मन से वेदमाता सावित्री देवी का जप किया । (४९)

उसके इस प्रकार जप करने पर स्वयम्भू परमेश्वर हिरण्यगर्भ विश्वात्मा देव स्वयं उस स्थान पर गए । (५०)

सभी ओर मुख वाले ब्रह्मदेव को आते देखकर उस राजा ने अपना नाम उच्चारण करते हुए उनके चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया— (५१)

देवाधिदेव परमात्मा ब्रह्म को नमस्कार है। आप सहस्राक्ष हिरण्यमूर्ति वेधा को नमस्कार है । (५२)

धाता और विधाता को नमस्कार है । वेदात्ममूर्ति को नमस्कार है। सांख्य और योग द्वारा ज्ञात होने वाले ज्ञानमूर्ति को नमस्कार है । (५३)

तीन मूर्तियों वाले सभी अर्थो के ज्ञाता और स्रष्टा ! आपको नमस्कार है। योगियों के गुरु पुराण पुरुष को नमस्कार है । (५४)

ततः प्रसन्नो भगवान् विरिञ्चो विश्वभावनः ।
वरं वरय भद्रं ते वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥५५

राजोवाच ।

जपेयं देवदेवेश गायत्रीं वेदमातरम् ।
भूयो वर्षशतं साग्रं तावदायुर्भवेन्मम ॥५६
बाढमित्याह विश्वात्मा समालोक्य नराधिपम् ।
स्पृष्ट्वा कराभ्यां सुप्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५७
सोऽपि लब्धवरः श्रीमान् जजापातिप्रसन्नधीः ।
शान्तस्त्रिषवणस्नायी कन्दमूलफलाशनः ॥५८
तस्य पूर्णे वर्षशते भगवानुग्रदीधितिः ।
प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मण्डलमध्यतः ॥५९
तं दृष्ट्वा वेदविदुषं मण्डलस्थं सनातनम् ।
स्वयंभुवमनाद्यन्तं ब्रह्माणं विस्मयं गतः ॥६०

तदनन्तर विश्वभावन भगवान् ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा "तुम्हारा कल्याण हो, तुम वर माँगो मैं तुम्हें वर दूंगा ।" (५५)

राजा ने कहा—
'हे देवदेवेश ! मैं पुनः सौ वर्ष तक इस सुन्दर वेदमाता गायत्री का जप करूँ (अतः) तब तक की मेरी आयु हो । (५६)

राजा को देखकर विश्वात्मा ने 'ठीक है' ऐसा कहा और प्रसन्न हो (राजा को) हाथों से स्पर्श कर वहीं अन्तर्निहित हो गए । (५७)

वर प्राप्त कर वह श्रीमान् (राजा) भी तीनों सन्ध्याओं में स्नान करते हुए तथा कन्दमूल और फलों का आहार करते हुए शान्तिपूर्वक अति प्रसन्न मन से जप करने लगा । (५८)

उसका सौ वर्ष पूरा होने पर सूर्यमण्डल के मध्य से तीक्ष्ण किरणों वाले महायोगी भगवान् प्रकट हुए । (५९)

मण्डलस्थ सनातन स्वयम्भू अनादि एवं अनन्त वेदज्ञ ब्रह्मा को देखकर वह राजा विस्मित हो गया । (६०)

तुष्टाव वैदिकैर्मन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः ।
क्षणादपश्यत् पुरुषं तमेव परमेश्वरम् ।।६१
चतुर्मुखं जटामौलिमष्टहस्तं त्रिलोचनम् ।
चन्द्रावयवलक्ष्माणं नरनारीतनुं हरम् ।।६२
भासयन्तं जगत् कृत्स्नं नीलकण्ठं स्वरश्मिभिः ।
रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् ।।६३
तद्भावभावितो दृष्ट्वा सद्भावेन परेण हि ।
ननाम शिरसा रुद्रं सावित्र्यानेन चैव हि ।।६४
नमस्ते नीलकण्ठाय भास्वते परमेष्ठिने ।
त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे ।।६५
तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः ।
इमानि मे रहस्यानि नामानि शृणु चानघ ।।६६
सर्ववेदेषु गीतानि संसारशमनानि तु ।
नमस्कुरुष्व नृपते एभिर्मां सततं शुचिः ।।६७
अध्यायं शतरुद्रीयं यजुषां सारमुद्धृतम् ।
जपस्वानन्यचेतस्को मय्यासक्तमना नृप ।।६८
ब्रह्मचारी मिताहारो भस्मनिष्ठः समाहितः ।
जपेदामरणाद् रुद्रं स याति परमं पदम् ।।६९
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया ।
पुनः संवत्सरशतं राज्ञे ह्यायुरकल्पयत् ।।७०
दत्त्वाऽस्मै तत् परं ज्ञानं वैराग्यं परमेश्वरः ।
क्षणादन्तर्दधे रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत् ।।७१
राजाऽपि तपसा रुद्रं जजापानन्यमानसः ।
भस्मच्छन्नस्त्रिषवणं स्नात्वा शान्तः समाहितः ।।७२
जपतस्तस्य नृपतेः पूर्णे वर्षशते पुनः ।
योगप्रवृत्तिरभवत् कालात् कालात्मकं परम् ।।७३
विवेश तद् वेदसारं स्थानं वै परमेष्ठिनः ।
भानोः स मण्डलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम् ।।७४
यः पठेच्छृणुयाद् वापि राज्ञश्चरितमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।७५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

(वह) वैदिक मन्त्रों एवं विशेषरूप से गायत्री द्वारा स्तुति करने लगा। क्षण में ही (उसने) उसी परमेश्वर पुरुष को चतुर्मुख, शिर पर जटा धारण किये, आठ भुजाओं से युक्त, त्रिलोचन, चन्द्रमा की कला से युक्त, नर-नारीशरीर वाले, अपनी रश्मियों से सम्पूर्ण जगत् को भासित कर रहे, रक्ताम्बरधारी, रक्तवर्ण, रक्त माला और अनुलेपन से युक्त नीलकण्ठ हर के रूप में देखा। (६१-६३)

(उन्हें) देखने के उपरान्त उनकी भावना से आविष्ट होकर परम भक्तिपूर्वक (राजा ने) शिर से रुद्र को प्रणाम किया और सावित्री मन्त्र तथा अग्रिम स्तोत्र से उनकी स्तुति करने लगा— (६४)

भासमान, परमेष्ठी, नीलकण्ठ, त्रयीमय, रुद्र, कालरूप एवं हेतुस्वरूप को नमस्कार है। (६५)

तत्पश्चात् प्रसन्नमन महादेव ने राजा से कहा—हे निष्पाप ! मेरे इन रहस्यपूर्ण सभी वेदों में कहे गए संसारनाशक नामों को सुनो। हे नृपति ! पवित्रता पूर्वक इन (नामों) से मुझे सदा नमस्कार करो। (६६, ६७)

हे नृप ! यजुर्वेद के साररूप से उद्धृत शतरुद्री का अनन्यचित्त से मुझमें मन लगाकर जप करो। (६८)

ब्रह्मचर्य धारण कर, निराहार एवं भस्म का लेप किये हुए एकाग्रतापूर्वक मरणपर्यन्त रुद्र का जप करे। (ऐसा करने से) वह पुरुष परम पद प्राप्त करता है। (६९)

ऐसा कहकर भगवान् रुद्र ने भक्त के ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा से पुनः राजा को सौ वर्ष की आयु प्रदान की। (७०)

उसे वह श्रेष्ठ ज्ञान तथा वैराग्य प्रदान कर परमेश्वर रुद्र क्षण मात्र में अन्तर्हित हो गए। यह एक अद्भुत सी घटना हुई। (७१)

राजा भी तीनों सन्ध्याओं में स्नान करने के उपरान्त भस्म धारण कर शान्ति एवं एकाग्रतापूर्वक अनन्यमन से रुद्र का जप करने लगा। (७२)

उस राजा को जप करते हुए पुनः सौ वर्ष पूर्ण हो जाने पर उसमें योग की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई तथा यथा समय वह कालात्मक वेदों के तत्त्वस्वरूप एवं भानु के शुभ्र मण्डलस्वरूप परमेष्ठी के स्थान में प्रविष्ट हो गया। तदनन्तर वह महेश्वर को प्राप्त हुआ। (७३, ७४)

राजा के श्रेष्ठ चरित को जो पढ़ता या सुनता है वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है। (७५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त—१९.

२०

सूत उवाच ।

त्रिधन्वा राजपुत्रस्तु धर्मेणापालयन्महीम् ।
तस्य पुत्रोऽभवद् विद्वांस्त्रय्यारुण इति स्मृतः ॥ १
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ।
भार्या सत्यधना नाम हरिश्चन्द्रमजीजनत् ॥२
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद् रोहितो नाम वीर्यवान् ।
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥३
विजयश्च सुदेवश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः ।
विजयस्याभवत् पुत्रः कारुको नाम वीर्यवान् ॥४
कारुकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद् बाहुरजायत ।
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद् राजा परमधार्मिकः ॥५
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा ।
ताभ्यामाराधितः प्रादादौर्वाग्निर्वरमुत्तमम् ॥६
एकं भानुमती पुत्रमगृह्लादसमञ्जसम् ।
प्रभा षष्टिसहस्रं तु पुत्राणां जगृहे शुभा ॥७
असमञ्जस्य तनयो ह्यंशुमान् नाम पार्थिवः ।
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात् तु भगीरथः ॥८
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वाऽवतारिता ।
प्रसादाद् देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः ॥९
भगीरथस्य तपसा देवः प्रीतमना हरः ।
बभार शिरसा गङ्गां सोमान्ते सोमभूषणः ॥१०
भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह ।
नाभागस्तस्य दायादः सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ॥११
अयुतायुः सुतस्तस्य ऋतुपर्णस्तु तत्सुतः ।
ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत् सुदासो नाम धार्मिकः ।
सौदासस्तस्य तनयः ख्यातः कल्माषपादकः ॥१२

२०

सूत ने कहा—

राजकुमार त्रिधन्वा ने धर्मानुसार पृथ्वी का पालन किया। उसे त्रय्यारुण नामक विद्वान् पुत्र हुआ। (१)

उसे अर्थात् त्रय्यारुण को सत्यव्रत नामक महाबलवान् पुत्र हुआ। (सत्यव्रत की) सत्यधना नामक पत्नी ने हरिश्चन्द्र को जन्म दिया। (२)

हरिश्चन्द्र को रोहित नामक वीर्यवान् पुत्र हुआ। रोहित का पुत्र हरित था। उस (हरित) का पुत्र धुन्धु था। (३)

धुन्धु को विजय और सुदेव नामक दो पुत्र हुए। विजय को कारुक नामक वीर्यवान् पुत्र हुआ। (४)

कारुक का पुत्र वृक था। उस (वृक) को बाहु (नामक पुत्र) हुआ। उस (बाहु) का पुत्र परम धार्मिक राजा सगर था। (५)

सगर की प्रभा एवं भानुमती नामक दो पत्नियाँ थीं। उन दोनों से पूजित और्वाग्नि ने (उन्हें) उत्तम वर दिया। (६)

भानुमती ने असमञ्जस नामक एक पुत्र लिया। कल्याणमयी प्रभा ने साठ सहस्र पुत्र लिये। (७)

असमञ्ज के पुत्र अंशुमान् नामक राजा थे। उसके अर्थात् अंशुमान् के पुत्र दिलीप थे और दिलीप से भगीरथ उत्पन्न हुए। (८)

जिन्होंने तप करके देवाधिदेव बुद्धिमान् महादेव के अनुग्रह से भागीरथी गङ्गा को (पृथ्वी पर) अवतरित किया। (९)

भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न मन चन्द्रभूषण देव शङ्कर ने सिर पर चन्द्रमा के अग्रभाग में गङ्गा को धारण किया। (१०)

भगीरथ को भी श्रुत नामक पुत्र हुआ। उस (श्रुत) का पुत्र नाभाग था। उस (नाभाग) से सिन्धुद्वीप उत्पन्न हुआ। (११)

उस (सिन्धुद्वीप) का पुत्र अयुतायु था और उस (अयुतायु) का पुत्र ऋतुपर्ण था। ऋतुपर्ण को सुदास नामक धार्मिक पुत्र हुआ। उस सुदास का सौदास नामक पुत्र कल्माषपाद नाम से प्रसिद्ध हुआ। (१२)

वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके ।
अश्मकं जनयामास तमिक्ष्वाकुकुलध्वजम् ॥१३
अश्मकस्योत्कलायां तु नकुलो नाम पार्थिवः ।
स हि रामभयाद् राजा वनं प्राप सुदुःखितः ॥१४
बिभ्रत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत् ।
तस्माद् विलिविलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा च तत्सुतः ॥१५
तस्माद् विश्वसहस्तस्मात् खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ॥१६
रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः ।
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ॥१७
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ।
सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः ।
जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वकृत् ॥१८
रामस्य सुभगा भार्या जनकस्यात्मजा शुभा ।
सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता ॥१९
तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा ।
प्रायच्छज्जानकीं सीतां राममेवाश्रिता पतिम् ॥२०
प्रीतश्च भगवानीशस्त्रिशूली नीललोहितः ।
प्रददौ शत्रुनाशार्थं जनकायाद्भुतं धनुः ॥२१
स राजा जनको विद्वान् दातुकामः सुतामिमाम् ।
अघोषयदमित्रघ्नो लोकेऽस्मिन् द्विजपुंगवाः ॥२२
इदं धनुः समादातुं यः शक्नोति जगत्त्रये ।
देवो वा दानवो वाऽपि स सीतां लब्धुमर्हति ॥२३
विज्ञाय रामो बलवान् जनकस्य गृहं प्रभुः ।
भञ्जयामास चादाय गत्वाऽसौ लीलयैव हि ॥२४

महातेजस्वी वसिष्ठ ने कल्माषपाद के क्षेत्र में अर्थात् पत्नी से इक्ष्वाकु कुल के ध्वजस्वरूप अश्मक नामक पुत्र को उत्पन्न कराया। (१३)

अश्मक की उत्कला नामक पत्नी से नकुल नामक राजा की उत्पत्ति हुई। वह राजा परशुराम के भय से अत्यन्त दुःखित होकर वन में चला गया। (१४)

उसने नारीकवच* धारण कर रखा था। उससे शतरथ का जन्म हुआ। उस (शतरथ) से विलिविलि की उत्पत्ति हुई। श्रीमान् वृद्धशर्मा उस (विलिविलि) के पुत्र थे। (१५)

उस (वृद्धशर्मा) से विश्वसह और उस (विश्वसह) से खट्वाङ्ग नाम से प्रसिद्ध पुत्र का जन्म हुआ। उस (खट्वाङ्ग) का पुत्र दीर्घबाहु था तथा उस (दीर्घबाहु) से रघु का जन्म हुआ। (१६)

रघु से अज उत्पन्न हुए। तदुपरान्त उन (अज) से दशरथ उत्पन्न हुए। लोक प्रसिद्ध धर्मज्ञ वीर राम दशरथ के पुत्र थे। (१७)

(उन दशरथ से ही) महाबलवान् भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उत्पत्ति हुई। विष्णु की शक्ति से युक्त सभी पुत्र युद्ध में इन्द्र के तुल्य थे। रावण का नाश करने के लिये विश्व के पालनकर्त्ता विष्णु अंशरूप से प्रकट हुए थे। (१८)

जनक की कल्याणी पुत्री राम की सौभाग्यशालिनी पत्नी थीं। शील एवं उदारता आदि गुणों से युक्त (राम की पत्नी) तीनों लोकों में सीता के नाम से विख्यात हैं। (१९)

जनक की तपस्या से सन्तुष्ट की गई पार्वती देवी ने (उन जनक को) जानकी सीता दी थी। (सीता ने) राम को ही पति बनाया। (२०)

त्रिशूलधारी, नीललोहित भगवान् शंकर ने भी प्रसन्न होकर शत्रुओं के विनाशार्थ जनक को अद्भुत धनुष प्रदान किया। (२१)

हे श्रेष्ठ द्विजो! उन शत्रुनाशक बुद्धिमान् राजा जनक ने इस कन्या का दान करने की इच्छा से लोक में यह घोषित किया कि त्रैलोक्य में देव या दानव जो कोई भी यह धनुष उठाने में समर्थ होगा वह सीता को प्राप्त कर सकता है। (२२, २३)

(यह) जानकर बलवान् प्रभु राम जनक के गृह गए और लीलापूर्वक (उन धनुष को) लेकर तोड़ डाला। (२४)

* परशुराम द्वारा पृथ्वी के क्षत्रियशून्य किये जाने के समय विवस्त्रा स्त्रियों के मध्य रहकर नकुल ने अपनी रक्षा की थी। अतः इसे नारी-कवच कहते हैं।

उद्वाह च तां कन्यां पार्वतीमिव शंकरः ।
रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च षण्मुखः ।।२५
ततो बहुतिथे काले राजा दशरथः स्वयम् ।
रामं ज्येष्ठं सुतं वीरं राजानं कर्तुमारभत् ।।२६
तस्याथ पत्नी सुभगा कैकेयी चारुभाषिणी ।
निवारयामास पतिं प्राह संभ्रान्तमानसा ।।२७
मत्सुतं भरतं वीरं राजानं कर्त्तुमर्हसि ।
पूर्वमेव वरो यस्माद् दत्तो मे भवता यतः ।।२८
स तस्या वचनं श्रुत्वा राजा दुःखितमानसः ।
बाढमित्यब्रवीद् वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मवित् ।।२९
प्रणम्याथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः ।
ययौ वनं सपत्नीकः कृत्वा समयमात्मवान् ।।३०
संवत्सराणां चत्वारि दश चैव महाबलः ।
उवास तत्र मतिमान् लक्ष्मणेन सह प्रभुः ।।३१
कदाचिद् वसतोऽरण्ये रावणो नाम राक्षसः ।
परिव्राजकवेषेण सीतां हृत्वा ययौ पुरीम् ।।३२
अदृष्ट्वा लक्ष्मणो रामः सीतामाकुलितेन्द्रियौ ।
दुःखशोकाभिसंतप्तौ बभूवतुररिंदमौ ।।३३
ततः कदाचित् कपिना सुग्रीवेण द्विजोत्तमाः ।
वानराणामभूत् सख्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।।३४
सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनुमान् नाम वानरः ।
वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रियः सदा ।।३५
स कृत्वा परमं धैर्यं रामाय कृतनिश्चयः ।
आनयिष्यामि तां सीतामित्युक्त्वा विचचार ह ।।३६
महीं सागरपर्यन्तां सीतादर्शनतत्परः ।
जगाम रावणपुरीं लङ्कां सागरसंस्थिताम् ।।३७
तत्राथ निर्जने देशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम् ।
अपश्यदमलां सीतां राक्षसीभिः समावृताम् ।।३८
अश्रुपूर्णेक्षणां हृद्यां संस्मरन्तीमनिन्दिताम् ।
राममिन्दीवरश्यामं लक्ष्मणं चात्मसंस्थितम् ।।३९

तदनन्तर परम धर्मात्मा राम ने उस कन्या का पाणिग्रहण उसी प्रकार किया जैसे शंकर ने पार्वती का एवं षडानन (कार्त्तिक) ने सेना का। (२५)

तदनन्तर बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर राजा दशरथ ने स्वयं ज्येष्ठ पुत्र वीर राम को राजा बनाने का उपक्रम किया। (२६)

तदुपरान्त उनकी सुन्दर चारुभाषिणी कैकेयी नामक पत्नी ने पति को रोका और मन के सम्भ्रान्त हो जाने के कारण अपने पति से कहा कि मेरे वीर पुत्र भरत को राजा बनायें क्योंकि आपने पहले ही मुझे वर दे रक्खा है। (२७, २८)

उसका वचन सुनने के उपरान्त अत्यन्त दुःखित मन वाले उन राजा ने कहा "अच्छा ऐसा ही हो"। धर्मज्ञ, आत्मवान्, अच्युत बुद्धिमान् राम भी (चौदह वर्ष तक वन में निवास करने की) प्रतिज्ञा कर पिता के चरणों में प्रणाम करने के उपरान्त लक्ष्मण और पत्नी के साथ वन में चले गए। महाबलवान् प्रभु (राम) वहाँ लक्ष्मण सहित चौदह वर्ष रहे। (२९–३१)

उनके वन में रहते समय एक दिन रावण नामक राक्षस सन्यासी के वेष में सीता का हरण कर अपनी पुरी में चला गया। (३२)

सीता को न देख कर अरिनाशक लक्ष्मण और राम दुःख और शोक से अत्यन्त पीड़ित हो गये एवं उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गई। (३३)

हे द्विजोत्तमो! तदनन्तर किसी समय वानरों तथा कपि सुग्रीव से अक्लिष्टकर्मा राम की मित्रता हो गई। (३४)

सुग्रीव का अनुगामी हनुमान् नामक महातेजस्वी वायु पुत्र वीर वानर सर्वदा राम के अत्यन्त प्रिय रहे। (३५)

परम धैर्य धारण कर एवं निश्चय कर उन्होंने राम से कहा 'मैं सीता को लाऊँगा' ऐसा कहने के उपरान्त सीता का अन्वेषण करते हुए वे सागर तक विस्तृत पृथ्वी पर विचरण करने लगे। (वे) सागर में स्थित रावण की लङ्का पुरी में गए। (३६, ३७)

वहाँ उन्होंने एकान्त स्थान पर वृक्ष के नीचे राक्षसियों से घिरी शुचिस्मिता, पवित्र, अश्रुपूर्ण नेत्रोंवाली, अनि-

निवेदयित्वा चात्मानं सीतायै रहसि स्वयम् ।
असंशयाय प्रददावस्यै रामाङ्गुलीयकम् ।।४०
दृष्ट्वाऽङ्गुलीयकं सीता पत्युः परमशोभनम् ।
मेने समागतं रामं प्रीतिविस्फारितेक्षणा ।।४१
समाश्वास्य तदा सीतां दृष्ट्वा रामस्य चान्तिकम् ।
नयिष्ये त्वां महाबाहुरुक्त्वा रामं ययौ पुनः ।।४२
निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान् ।
तस्थौ रामेण पुरतो लक्ष्मणेन च पूजितः ।।४३
ततः स रामो बलवान् सार्द्धं हनुमता स्वयम् ।
लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धिं चक्रे हि रक्षसाम् ।।४४
कृत्वाऽथ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधेः ।
सेतुं परमधर्मात्मा रावणं हतवान् प्रभुः ।।४५
सपत्नीकं च ससुतं सभ्रातृकमरिंदमः ।
आनयामास तां सीतां वायुपुत्रसहायवान् ।।४६
सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम् ।
स्थापयामास लिङ्गस्थं पूजयामास राघवः ।।४७
तस्य देवो महादेवः पार्वत्या सह शंकरः ।
प्रत्यक्षमेव भगवान् दत्तवान् वरमुत्तमम् ।।४८
यत् त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः ।
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनश्यतु ।।४९
अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ ।
दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः ।।५०
यावत् स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी ।
यावत् सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः ।।५१
स्नानं दानं जपः श्राद्धं भविष्यत्यक्षयं कृतम् ।
स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापं प्रणश्यति ।।५२

न्वित सुन्दरी सीता को नीलकमल तुल्य श्यामवर्ण वाले राम और आत्मसंयमी लक्ष्मण का स्मरण करते हुए देखा। (३८, ३९)

एकान्त में सीता को अपना परिचय देकर प्रभु (हनुमान्) ने सन्देह-रहित करने के लिये उन्हें राम की अँगूठी दी। (४०)

पति की परम सुन्दर अँगूठी देखकर प्रेम के कारण फैले हुए नेत्रों वाली सीता ने राम को (ही) आया माना। (४१)

उन्होंने सीता को देखकर (उन्हें) आश्वासन दिया और कहा कि 'मैं आपको राम के पास ले चलूँगा'। ऐसा कह कर वे महाबाहु (हनुमान्) पुनः राम के पास चले गए। (४२)

सीता को देखने की बात राम से कह कर आत्मवान् (हनुमान्) उनके सम्मुख खड़े रहे। राम और लक्ष्मण ने उनका पूजन किया। (४३)

तत्पश्चात् स्वयं बलवान् राम ने हनुमान् और लक्ष्मण के साथ राक्षसों से युद्ध करने का निश्चय किया। (४४)

तदुपरान्त सैकड़ों वानरों द्वारा समुद्र से लङ्का जाने के मार्ग स्वरूप सेतु का निर्माण कराकर एवं वायुपुत्र (हनुमान्) की सहायता से परम धर्मात्मा शत्रुनाशक प्रभु (राम) ने रावण को उसकी पत्नी पुत्र और भाइयों सहित मार डाला और उन सीता को लौटा लिया। (४५, ४६)

रघुवंशी (राम) ने सेतु के मध्य में चर्माम्बरधारी महादेव शङ्कर के लिङ्ग की स्थापना कर उनकी पूजा की। (४७)

पार्वती-सहित महादेव भगवान् शङ्कर देव ने उन्हें प्रत्यक्ष रूप से (यह) उत्तम वर दिया कि तुमने जिस लिङ्ग की स्थापना की है उसका दर्शन करने वाले महा-पापयुक्त द्विजातियों के पाप नष्ट हो जायेंगे। (४८, ४९)

यहाँ समुद्र में स्नान करने वाले मनुष्य के अन्य पाप-अर्थात् उपपातकादि भी लिङ्ग का दर्शन करने मात्र से निस्सन्देह नष्ट हो जायेंगे। (५०)

जब तक पर्वत रहेंगे, जब तक यह पृथ्वी है तथा जब तक यह सेतु रहेगा तब तक मैं गुप्त रूप में यहाँ रहूँगा। (५१)

(यहाँ पर) किया हुआ स्नान, दान, जप और श्राद्ध अक्षय होगा। लिङ्ग का स्मरण करने से ही दिन भर का पाप नष्ट हो जायेगा। (५२)

इत्युक्त्वा भगवाञ्छंभुः परिष्वज्य तु राघवम् ।
सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ।।५३

रामोऽपि पालयामास राज्यं धर्मपरायणः ।
अभिषिक्तो महातेजा भरतेन महाबलः ।।५४

विशेषाद् ब्राह्मणान् सर्वान् पूजयामास चेश्वरम् ।
यज्ञेन यज्ञहन्तारमश्वमेधेन शंकरम् ।।५५

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ।
लवश्च सुमहाभागः सर्वतत्त्वार्थवित् सुधीः ।।५६

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत् ।
नलस्तु निषधस्याभून्नभस्तस्मादजायत ।।५७

नभसः पुण्डरीकाख्यः क्षेमधन्वा च तत्सुतः ।
तस्य पुत्रोऽभवद् वीरो देवानीकः प्रतापवान् ।।५८

अहीनगुस्तस्य सुतो सहस्वांस्तत्सुतोऽभवत् ।
तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्तु तत्सुतः ।।५९

तारापीडाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्तस्ततोऽभवत् ।
श्रुतायुरभवत् तस्मादेते इक्ष्वाकुवंशजाः ।
सर्वे प्राधान्यतः प्रोक्ताः समासेन द्विजोत्तमाः ।।६०

य इमं शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो स्वर्गलोके महीयते ।।६१

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे विंशोऽध्यायः ।।२०।।

ऐसा कहने के उपरान्त भगवान् शम्भु ने रघुवंशी (राम) का आलिङ्गन किया और नन्दी तथा रुद्रगणों के साथ वहीं अन्तर्हित हो गए । (५३)

भरत से अभिषिक्त होकर महातेजस्वी महाबलवान्, धर्मपरायण राम ने भी राज्य का पालन किया । (५४)

(उन्होंने) विशेष रूप से ब्राह्मणों की पूजा की तथा अश्वमेध यज्ञ द्वारा यज्ञहन्ता ईश्वर शङ्कर की आराधना की । (५५)

राम को कुश नाम से प्रसिद्ध तथा अत्यन्त भाग्यशाली सर्वतत्त्वार्थवेत्ता बुद्धिमान् लव नाम के पुत्र हुए । (५६)

कुश से अतिथि का जन्म हुआ तथा उस (अतिथि) को निषध नामक पुत्र हुआ । निषध का पुत्र नल था । उस (नल) से नभस् का जन्म हुआ । (५७)

नभस् से पुण्डरीक नामक (पुत्र) उत्पन्न हुआ एवं उस (पुण्डरीक) का पुत्र क्षेमधन्वा था । उस (क्षेमधन्वा) का पुत्र प्रतापवान् वीर देवानीक था । (५८)

उस (देवानीक) का पुत्र अहीनगु था एवं उस (अहीनगु) का पुत्र सहस्वान् था । उस (सहस्वान्) से चन्द्रावलोक उत्पन्न हुआ एवं उस (चन्द्रावलोक) का पुत्र तारापीड था । (५९)

तारापीड से चन्द्रगिरि एवं उस (चन्द्रगिरि) से भानुवित्त उत्पन्न हुआ । उस (भानुवित्त) से श्रुतायु की उत्पत्ति हुई । ये इक्ष्वाकु के वंशज हैं । हे द्विजोत्तमो ! संक्षेप से इनमें प्रधानों का वर्णन किया गया है । (६०)

जो नित्य इक्ष्वाकु के इस उत्तम वंश का वर्णन सुनेगा वह सभी पापों से मुक्त होकर देवलोक में आदर प्राप्त करेगा । (६१)

छःसहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में वीसवाँ अध्याय समाप्त—२०.

२१

रोमहर्षण उवाच ।

ऐलः पुरूरवाश्चाथ राजा राज्यमपालयत् ।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रसमतेजसः ॥१
आयुर्मायुरमावायुर्विश्वायुश्चैव वीर्यवान् ।
शतायुश्च श्रुतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः ॥२
आयुषस्तनया वीराः पञ्चैवासन् महौजसः ।
स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामिति नः श्रुतम् ॥३
नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः ।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः ॥४
उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महाबलाः ।
यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पञ्चकोऽश्वकः ॥५
तेषां ययातिः पञ्चानां महाबलपराक्रमः ।
देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः ।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः ॥६
यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा चाप्यजीजनत् ॥७
सोऽभ्यषिञ्चदतिक्रम्य ज्येष्ठं यदुमनिन्दितम् ।
पूरुमेव कनीयांसं पितुर्वचनपालकम् ॥८
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत् ।
दक्षिणापरयो राजा यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत् ।
प्रतीच्यामुत्तरायां च द्रुह्युं चानुमकल्पयत् ॥९
तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मतः परिपालिता ।
राजाऽपि दारसहितो वनं प्राप महायशाः ॥१०
यदोरप्यभवन् पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः ।
सहस्रजित् तथा ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽजितो रघुः ॥११
सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिवः ।
सुताः शतजितोऽप्यासंस्त्रयः परमधार्मिकाः ॥१२

21

रोमहर्षण ने कहा—

तदनन्तर इला का पुत्र राजा पुरूरवा राज्य का पालन करने लगा। उसे इन्द्र के समान तेजस्वी छः पुत्र हुए—आयु, मायु, अमावायु, वीर्यवान् विश्वायु, शतायु और श्रुतायु। ये उर्वशी के दिव्य छः पुत्र थे। (१,२)

हमने ऐसा सुना है कि आयु को राहु की कन्या प्रभा से पाँच महान् ओजस्वी एवं वीर पुत्र हुए थे। (३)

उनमें संसार प्रसिद्ध धर्मज्ञ नहुष प्रथम थे। नहुष को पितृकन्या विरजा से यति, ययाति, संयाति, आयाति और पाँचवें अश्वक नाम के महाबलवान् एवं इन्द्रतुल्य तेजस्वी पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। (४,५)

उन पाँचों में ययाति महान् बलवान् एवं पराक्रमी था। उसने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी एवं वृषपर्वा की असुरवंशोद्भवा कन्या शर्मिष्ठा को पत्नी के रूप में प्राप्त किया। (६)

देवयानी ने यदु और तुर्वसु को जन्म दिया। और शर्मिष्ठा ने भी द्रुह्यु, अनु और पूरु को उत्पन्न किया। (७)

उन ययाति ने अनिन्दित ज्येष्ठ पुत्र यदु को छोड़कर पिता के वचन का पालन करने वाले कनिष्ठ पूरु को अभिषिक्त किया। (८)

राजा ययाति ने तुर्वसु को दक्षिण-पूर्व की दिशा में ज्येष्ठ पुत्र यदु को दक्षिण-पश्चिम में, पश्चिम में द्रुह्यु को और उत्तर में अनु को (अधिकारी के रूप से) नियोजित किया। (९)

उन सभी (पुत्रों) ने धर्मपूर्वक सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन किया। महायशस्वी राजा पत्नी-सहित वन में चला गया। (१०)

यदु को भी ज्येष्ठ सहस्रजित्, क्रोष्टु, नील, अजित और रघु नामक पाँच देवतुल्य पुत्र हुए। (११)

इसी प्रकार सहस्रजित् का पुत्र शतजित् नाम का राजा था। शतजित् को भी हैहय, हय और श्रेष्ठ वेणुहय

हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयः परः ।
हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्म इत्यभिविश्रुतः ।।१३
तस्य पुत्रोऽभवद् विप्रा धर्मनेत्रः प्रतापवान् ।
धर्मनेत्रस्य कीर्त्तिस्तु संजितस्तत्सुतोऽभवत् ।।१४
महिष्मान् संजितस्याभूद् भद्रश्रेण्यस्तदन्वयः ।
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिवः ।।१५
दुर्दमस्य सुतो धीमान् धनको नाम वीर्यवान् ।
धनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसम्मताः ।।१६
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च ।
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कार्त्तवीर्योऽर्जुनोऽभवत् ।।१७
सहस्रबाहुर्द्युतिमान् धनुर्वेदविदां वरः ।
तस्य रामोऽभवन्मृत्युर्जामदग्न्यो जनार्दनः ।।१८
तस्य पुत्रशतान्यासन् पञ्च तत्र महारथाः ।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो मनस्विनः ।।१९
शूरश्च शूरसेनश्च धृष्णः कृष्णस्तथैव च ।
जयध्वजश्च बलवान् नारायणपरो नृपः ।।२०
शूरसेनादयः सर्वे चत्वारः प्रथितौजसः ।
रुद्रभक्ता महात्मानः पूजयन्ति स्म शंकरम् ।।२१
जयध्वजस्तु मतिमान् देवं नारायणं हरिम् ।
जगाम शरणं विष्णुं दैवतं धर्मतत्परः ।।२२
तमूचुरितरे पुत्रा नायं धर्मस्तवानघ ।
ईश्वराराधनरतः पिताऽस्माकमभूदिति ।।२३
तानब्रवीन्महातेजा एष धर्मः परो मम ।
विष्णोरंशेन संभूता राजानो यन्महीतले ।।२४
राज्यं पालयताऽवश्यं भगवान् पुरुषोत्तमः ।
पूजनीयो यतो विष्णुः पालको जगतो हरिः ।।२५
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च स्वयंभुवः ।
तिस्रस्तु मूर्त्तयः प्रोक्ताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः ।।२६
सत्त्वात्मा भगवान् विष्णुः संस्थापयति सर्वदा ।
सृजेद् ब्रह्मा रजोमूर्त्तिः संहरेत् तामसो हरः ।।२७

नामक तीन परम धार्मिक पुत्र थे। हैहय को धर्म नाम से प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। (१२,१३)

हे विप्रो ! उसे (धर्म को) धर्मनेत्र नामक प्रतापवान् पुत्र हुआ। धर्मनेत्र का पुत्र कीर्ति एवं उस (कीर्त्ति) का पुत्र संजित था। (१४)

संजित को महिष्मान् हुआ एवं उस (महिष्मान्) का पुत्र भद्रश्रेण्य था। भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नामक राजा था। (१५)

दुर्दम का धनक नामक एक वीर्यवान् एवं बुद्धिमान् पुत्र था। धनक के कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और चतुर्थ कृतौजा नामक लोकमान्य चार पुत्र थे। (उनमें) कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन था। (१६,१७)

(अर्जुन) सहस्रबाहुओं वाला, तेजस्वी एवं धनुर्वेदज्ञों में श्रेष्ठ था। जमदग्नि के पुत्र जनार्दन परशुराम उस (सहस्रार्जुन) के काल हुए। (१८)

उस (सहस्रार्जुन) के सौ पुत्र थे। उनमें शूर, शूरसेन, कृष्ण, धृष्ण और जयध्वज नामक पाँच पुत्र महारथी अस्त्रसम्पन्न, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और मनस्वी थे। बलवान् जयध्वज राजा नारायण का भक्त था। (१९,२०)

अत्यन्त ओजस्वी एवं महात्मा शूरसेनादि प्रथम चार रुद्र के भक्त थे। वे सभी शंकर की पूजा करते थे। (२१)

धर्मतत्पर बुद्धिमान् जयध्वज नारायण देव हरि विष्णुदेव की शरण में गया। (२२)

अन्य पुत्रों ने उनसे कहा 'हे निष्पाप ! तुम्हारा यह धर्म नहीं है हम लोगों के पिता ईश्वर अर्थात् शंकर की आराधना करते थे। (२३)

महातेजस्वी (जयध्वज) ने उनसे कहा "यही मेरा परम धर्म है। पृथ्वी पर जितने राजा हैं वे विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए हैं। (२४)

राज्य का पालन करने वाले को भगवान् पुरुषोत्तम का अवश्य पूजन करना चाहिये। क्योंकि हरि विष्णु जगत् के पालक हैं। (२५)

स्वयंभू प्रभु (विष्णु) की सात्त्विकी, राजसी और तामसी ये तीन मूर्तियाँ (क्रमशः) सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने वाली कही गई हैं। (२६)

सत्त्वगुणात्मक भगवान् विष्णु सर्वदा (संसार को) बनाये रखने का कार्य करते हैं। रजोमूर्ति ब्रह्मा सृष्टि करते हैं एवं तमोगुणात्मक हर संहार का कार्य करते हैं। (२७)

तस्मान्महीपतीनां तु राज्यं पालयतामयम् ।
आराध्यो भगवान् विष्णुः केशवः केशिमर्दनः ॥२८
निशम्य तस्य वचनं भ्रातरोऽन्ये मनस्विनः ।
प्रोचुः संहारकृद् रुद्रः पूजनीयो मुमुक्षुभिः ॥२९
अयं हि भगवान् रुद्रः सर्वं जगदिदं शिवः ।
तमोगुणं समाश्रित्य कल्पान्ते संहरेत् प्रभुः ॥३०
या सा घोरतरा मूर्त्तिरस्य तेजोमयी परा ।
संहरेद् विद्यया सर्वं संसारं शूलभृत् तया ॥३१
ततस्तानब्रवीद् राजा विचिन्त्यासौ जयध्वजः ।
सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वात्मा भगवान् हरिः ॥३२
तमूचुर्भ्रातरो रुद्रः सेवितः सात्त्विकैर्जनैः ।
मोचयेत् सत्त्वसंयुक्तः पूजयेशं ततो हरम् ॥३३
अथाब्रवीद् राजपुत्रः प्रहसन् वै जयध्वजः ।
स्वधर्मो मुक्तये पन्था नान्यो मुनिभिरिष्यते ॥३४

अतएव राज्य का पालन करने वाले राजाओं को इन केशि-मर्दन केशव भगवान् विष्णु की आराधना करनी चाहिए । (२८)

उसका वचन सुनकर (उसके) अन्य मनस्वी भाइयों ने कहा "मोक्षार्थी को संहारकर्त्ता रुद्र का पूजन करना चाहिये।" (२९)

यही प्रभु भगवान् रुद्र शिव प्रलयकाल में तमोगुण का आश्रय ग्रहण कर इस सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं । (३०)

इनकी जो वह घोरतम तेजोमयी परा मूर्ति है उस विद्या के द्वारा शूलधारी (शंकर) समस्त संसार का संहार करते हैं । (३१)

तदनन्तर उन राजा जयध्वज ने विचारकर उनसे कहा "प्राणी सत्त्वगुण द्वारा मुक्त होता है और भगवान् हरि सत्त्वस्वरूप हैं ।" (३२)

भाइयों ने उससे कहा "सात्त्विक पुरुषों से सेवित रुद्र सत्त्वगुण से युक्त होकर मुक्त करते हैं । (अतः) ईश हर की पूजा करनी चाहिए ।" (३३)

तदुपरान्त राजपुत्र जयध्वज ने हँसते हुए कहा "मुक्ति के लिए अपना धर्म उचित मार्ग होता है । मुनि लोग अन्य (धर्म) की इच्छा नहीं करते ।" (३४)

तथा च वैष्णवी शक्तिर्नृपाणां देवता सदा ।
आराधनं परो धर्मो मुरारेरमितौजसः ॥३५
तमब्रवीद् राजपुत्रः कृष्णो मतिमतां वरः ।
यदर्जुनोऽस्मज्जनकः स्वधर्मं कृतवानिति ॥३६
एवं विवादे वितते शूरसेनोऽब्रवीद् वचः ।
प्रमाणमृषयो ह्यत्र ब्रूयुस्ते यत् तथैव तत् ॥३७
ततस्ते राजशार्दूलाः पप्रच्छुर्ब्रह्मवादिनः ।
गत्वा सर्वे सुसंरब्धाः सप्तर्षीणां तदाश्रमम् ॥३८
तानब्रुवंस्ते मुनयो वसिष्ठाद्या यथार्थतः ।
या यस्याभिमता पुंसः सा हि तस्यैव देवता ॥३९
किन्तु कार्यविशेषेण पूजिताश्चेष्टदा नृणाम् ।
विशेषात् सर्वदा नायं नियमो ह्यन्यथा नृपाः ॥४०
नृपाणां दैवतं विष्णुस्तथैव च पुरंदरः ।
विप्राणामग्निरादित्यो ब्रह्मा चैव पिनाकधृक् ॥४१

ऐसी अवस्था में वैष्णवी शक्ति राजाओं के लिए सदा देवता है अतः अत्यन्त ओजस्वी मुरारि की आराधना करना परम धर्म है ।" (३५)

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजपुत्र कृष्ण ने उससे कहा कि हमलोगों के पिता अर्जुन ने जो धर्म किया था (वही हमारा धर्म है) । (३६)

इस प्रकार विवाद बढ़ने पर शूरसेन ने कहा "इस विषय में ऋषि ही प्रमाण होते हैं । अतः वे ही जैसा उचित हो वह कहें ।" (३७)

तदनन्तर सुसज्जित होकर वे सभी राज श्रेष्ठ सप्तर्षियों के आश्रम में गए और (उन) ब्रह्मवादियों से पूछा । (३८)

उन वसिष्ठ आदि मुनियों ने उनसे यथार्थ रूप से कहा कि जिस पुरुष को जो देवता अभिमत हो वही उसका देवता होता है । (३९)

किन्तु विशेष कार्यवश पूजित (विभिन्न) देवता मनुष्यों को अभीष्ट प्रदान करते हैं । हे नृपो ! विशेष (प्रयोजनवश) होने वाली आराधना सर्वदा नहीं की जाती क्योंकि नियम अन्य प्रकार का होता है । (४०)

राजाओं के देवता विष्णु और पुरन्दर अर्थात् इन्द्र

देवानां दैवतं विष्णुर्दानवानां त्रिशूलभृत् ।
गन्धर्वाणां तथा सोमो यक्षाणामपि कथ्यते ।।४२
विद्याधराणां वाग्देवी साध्यानां भगवान् रविः ।
रक्षसां शंकरो रुद्रः किंनराणां च पार्वती ।।४३
ऋषीणां दैवतं ब्रह्मा महादेवश्च शूलभृत् ।
मनूनां स्यादुमा देवी तथा विष्णुः सभास्करः ।।४४
गृहस्थानां च सर्वे स्युर्ब्रह्मा वै ब्रह्मचारिणाम् ।
वैखानसानामर्कः स्याद् यतीनां च महेश्वरः ।।४५
भूतानां भगवान् रुद्रः कूष्माण्डानां विनायकः ।
सर्वेषां भगवान् ब्रह्मा देवदेवः प्रजापतिः ।।४६
इत्येवं भगवान् ब्रह्मा स्वयं देवोऽभ्यभाषत ।
तस्माज्जयध्वजो नूनं विष्ण्वाराधनमर्हति ।।४७
तान् प्रणम्याथ ते जग्मुः पुरीं परमशोभनाम् ।
पालयाञ्चक्रिरे पृथ्वीं जित्वा सर्वरिपून् रणे ।।४८
ततः कदाचिद् विप्रेन्द्रा विदेहो नाम दानवः ।
भीषणः सर्वसत्त्वानां पुरीं तेषां समाययौ ।।४९
दंष्ट्राकरालो दीप्तात्मा युगान्तदहनोपमः ।
शूलमादाय सूर्याभं नादयन् वै दिशो दश ।।५०
तन्नादश्रवणान्मर्त्यास्तत्र ये निवसन्ति ते ।
तत्यजुर्जीवितं त्वन्ये दुद्रुवुर्भयविह्वलाः ।।५१
ततः सर्वे सुसंयत्ताः कार्त्तवीर्यात्मजास्तदा ।
युयुधुर्दानवं शक्तिगिरिकूटासिमुद्गरैः ।।५२
तान् सर्वान् दानवो विप्राः शूलेन प्रहसन्निव ।
वारयामास घोरात्मा कल्पान्ते भैरवो यथा ।।५३
शूरसेनादयः पञ्च राजानस्तु महाबलाः ।
युद्धाय कृतसंरम्भा विदेहं त्वभिदुद्रुवुः ।।५४

हैं। ब्राह्मणों के देवता अग्नि, आदित्य, ब्रह्मा और पिनाकी (शिव) हैं। (४१)

देवों के देवता विष्णु और दानवों के (देवता) त्रिशूली अर्थात् शंकर हैं। गन्धर्वों और यक्षों के देवता सोम कहे जाते हैं। (४२)

विद्याधरों की (देवता) वाग्देवी अर्थात् सरस्वती एवं साध्यों के देव भगवान् रवि हैं। राक्षसों के (आराध्य) शङ्कर रुद्र तथा किन्नरों की देवता पार्वती देवी हैं। (४३)

ऋषियों के देवता ब्रह्मा और त्रिशूलधारी शंकर हैं। मनुओं की देवता उमा देवी विष्णु और सूर्य हैं। इसी प्रकार गृहस्थों के सभी आराध्य हैं। ब्रह्मचारियों के देवता, ब्रह्मा वैखानसों अर्थात् वाणप्रस्थियों के देवता सूर्य तथा यतियों अर्थात् सन्यासियों के देवता महेश्वर हैं। (४४, ४५)

भूतों के देवता भगवान् रुद्र तथा कूष्माण्डों के देवता विनायक हैं। देवाधिदेव प्रजापति भगवान् ब्रह्मा सभी के देवता हैं। (४६)

ऐसा स्वयं भगवान् ब्रह्मदेव ने कहा है। अतः जयध्वज निश्चय ही विष्णु की आराधना कर सकते हैं। (४७)

तदनन्तर वे सभी उन (ऋषियों) को प्रणाम कर (अपनी) परम सुन्दरपुरी में गए एवं युद्ध में समस्त शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करने लगे। (४८)

हे विप्रेन्द्रो! तदनन्तर किसी समय सभी प्राणियों को भय देने वाला विदेह नाम का दानव उनकी पुरी में आया। (४९)

भयङ्कर दाढ़ों वाला प्रलयकालीन अग्नि तुल्य तेजस्वी (वह दानव) सूर्य सदृश प्रकाशमान शूल लेकर दशों दिशाओं को शब्दित करने लगा। (५०)

उसके नाद को सुनने से वहाँ रहने वाले कुछ मानवों ने प्राण त्याग दिया और शेष दूसरे लोग भय से व्याकुल होकर भागने लगे। (५१)

तदुपरान्त महाबलवान् राजा शूरसेनादि कार्त्तवीर्य के सभी पुत्र सुसंयत होकर शक्ति, पर्वतशिला, तलवार एवं मुद्गरों द्वारा दानव से युद्ध करने लगे। हे विप्रो! वह भयङ्कर दानव हँसते हुए शूल द्वारा प्रलय काल में भैरव के सदृश उन सभी का निवारण करने लगा। (५२,५३)

शूरसेनादि पाँच महाबलवान् राजाओं ने युद्ध का उद्योग कर विदेह पर आक्रमण किया। (५४)

शूरोऽस्त्रं प्राहिणोद् रौद्रं शूरसेनस्तु वारुणम् ।
प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं धृष्ण एव च ॥५५
जयध्वजश्च कौबेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च ।
भञ्जयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः ॥५६
ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम् ।
स्पृष्ट्वा मन्त्रेण तरसा चिक्षेप च ननाद च ॥५७
संप्राप्य सा गदाऽस्योरो विदेहस्य शिलोपमम् ।
न दानवं चालयितुं शशाकान्तकसंनिभम् ॥५८
दुद्रुवुस्ते भयग्रस्ता दृष्ट्वा तस्यातिपौरुषम् ।
जयध्वजस्तु मतिमान् सस्मार जगतः पतिम् ॥५९
विष्णुं ग्रसिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम् ।
त्रातारं पुरुषं पूर्वं श्रीपतिं पीतवाससम् ॥६०
ततः प्रादुरभूच्चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम् ।
आदेशाद् वासुदेवस्य भक्तानुग्रहकारणात् ॥६१
जग्राह जगतां योनिं स्मृत्वा नारायणं नृपः ।
प्राहिणोद् वै विदेहाय दानवेभ्यो यथा हरिः ॥६२
संप्राप्य तस्य घोरस्य स्कन्धदेशं सुदर्शनम् ।
पृथिव्यां पातयामास शिरोऽद्रिशिखराकृति ॥६३
तस्मिन् हते देवरिपौ शूराद्या भ्रातरो नृपाः ।
समाययुः पुरीं रम्यां भ्रातरं चाप्यपूजयन् ॥६४
श्रुत्वाजगाम भगवान् जयध्वजपराक्रमम् ।
कार्त्तवीर्यसुतं द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः ॥६५
तमागतमथो दृष्ट्वा राजा संभ्रान्तमानसः ।
समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः ॥६६
उवाच भगवान् घोरः प्रसादाद् भवतोऽसुरः ।
निपातितो मया संख्ये विदेहो दानवेश्वरः ॥६७
त्वद्वाक्याच्छिन्नसंदेहो विष्णुं सत्यपराक्रमम् ।
प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः ॥६८

शूर ने रौद्रास्त्र एवं शूरसेन ने वारुणास्त्र चलाया। कृष्ण ने प्राजापत्यास्त्र का और धृष्ण ने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। (५५)

जयध्वज ने कौवेरास्त्र, ऐन्द्रास्त्र और आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। उस दानव ने शूल से उन अस्त्रों को तोड़ डाला। (५६)

तदनन्तर महापराक्रमी कृष्ण ने भयंकर गदा ली और मन्त्र से स्पर्श कर वेगपूर्वक फेंका तथा गर्जन किया। (५७)

वह गदा उस विदेह की शिलातुल्य छाती पर लग कर भी यमराज तुल्य उस दानव को विचलित न कर सकी। (५८)

उसके अत्यन्त पौरुष को देखकर वे सभी भयभीत होकर भागने लगे। बुद्धिमान् जयध्वज ने अप्रमेय, अनामय लोकों के आदि में रहने वाले, ग्रासकारी, त्राणकर्त्ता, पीताम्बरधारी, जगन्नाथ, श्रीपति, पूर्वपुरुष विष्णु का स्मरण किया। (५९,६०)

तत्पश्चात् भक्त के ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त वासुदेव के आदेश से सहस्रों सूर्य के तुल्य प्रभावान् चक्र प्रकट हुआ। राजा (जयध्वज) ने संसार के कारण स्वरूप नारायण का स्मरण कर (उस चक्र को) ग्रहण किया एवं विदेह के ऊपर इस प्रकार चलाया जैसे विष्णु दानवों पर चलाते हैं। (६१,६२)

सुदर्शन चक्र उस भयङ्कर दानव के स्कन्ध में लगा एवं उसके पर्वत-शिखर तुल्य शिर को पृथ्वी पर गिरा दिया। (६३)

उस देव-शत्रु के मारे जाने पर राजा शूरादिक सभी भाई अपनी रम्य पुरी में आये और उन्होंने भ्राता (जयध्वज) की पूजा की। (६४)

जयध्वज के पराक्रम को सुनकर भगवान् महामुनि विश्वामित्र कार्तवीर्य के पुत्र को देखने आये। (६५)

उन्हें आया देखकर राजा ने भ्रमित मन वाले होकर उन्हें सुन्दर आसन पर बैठाकर श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा की और कहा "हे भगवन्! आपके अनुग्रह से मैंने भयङ्कर विदेह नामक दानवराज असुर को युद्ध में मारा। आपके कहने से सन्देह-रहित होकर (मैं) सत्यपराक्रम विष्णु की शरण में गया। उन्होंने मेरे ऊपर मङ्गलमय अनुग्रह किया। (६६-६८)

यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम् ।
कथं केन विधानेन संपूज्यो हरिरीश्वरः ।।६९
कोऽयं नारायणो देवः किंप्रभावश्च सुव्रत ।
सर्वमेतन्ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ।।७०

विश्वामित्र उवाच ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन् सर्वमिदं जगत् ।
स विष्णुः सर्वभूतात्मा तमाश्रित्य विमुच्यते ।।७१
स्ववर्णाश्रमधर्मेण पूज्योऽयं पुरुषोत्तमः ।
अकामहतभावेन समाराध्यो न चान्यथा ।।७२
एतावदुक्त्वा भगवान् विश्वामित्रो महामुनिः ।
शूराद्यैः पूजितो विप्रा जगामाथ स्वमालयम् ।।७३
अथ शूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम् ।
यज्ञेन यज्ञगम्यं तं निष्कामा रुद्रमव्ययम् ।।७४
तान् वसिष्ठस्तु भगवान् याजयामास सर्ववित् ।
गौतमोऽत्रिरगस्त्यश्च सर्वे रुद्रपरायणाः ।।७५
विश्वामित्रस्तु भगवान् जयध्वजमरिंदमम् ।
याजयामास भूतादिमादिदेवं जनार्दनम् ।।७६
तस्य यज्ञे महायोगी साक्षाद् देवः स्वयं हरिः ।
आविरासीत् स भगवान् तदद्भुतमिवाभवत् ।।७७
य इमं श्रृणुयान्नित्यं जयध्वजपराक्रमम् ।
सर्वपापविमुक्तात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ।।७८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्विभागे एकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

"मैं कमलदल-सदृश नेत्रों वाले परम परमेश्वर विष्णु का पूजन करूँगा। किस प्रकार एवं किस विधान से ईश्वर हरि का पूजन करना चाहिये।" (६९)

"ये नारायण देव कौन हैं एवं हे सुव्रत ! उनका क्या प्रभाव है ! मुझे यह सब बतलायें। (इस विषय में) मुझे अत्यन्त कौतूहल है।" (७०)

विश्वामित्र ने कहा—

सर्वभूतात्मा विष्णु वह हैं जिनसे सभी भूतों की प्रवृति होती है तथा जिनमें यह सभी जगत् स्थित हैं। उनका आश्रय लेकर विमुक्ति मिलती है। (७१)

निष्काम भावना से अपने वर्णाश्रमधर्म द्वारा इन पुरुषोत्तम की अराधना करनी चाहिये; किसी अन्य प्रकार से नहीं। (७२)

हे विप्रो ! इतना कहने के उपरान्त महामुनि भगवान् विश्वामित्र शूरादिकों से पूजित होकर अपने निवास को चले गए। (७३)

तदनन्तर शूरादिकों ने निष्काम भाव से यज्ञ द्वारा यज्ञगम्य अव्यय महेश्वर रुद्रदेव की पूजा की। (७४)

सर्वज्ञ भगवान् वसिष्ठ तथा रुद्रभक्त गौतम, अगस्त्य एवं अत्रि ने उन लोगों का यज्ञ करवाया। (७५)

भगवान् विश्वामित्र ने अरिनियामक जयध्वज से भूतों के आदिकारण आदिदेव जनार्दन के निमित्त यज्ञ करवाया। (७६)

उसके यज्ञ में महायोगी देव भगवान् हरि स्वयं साक्षात् प्रकट हुए। यह एक अद्भुत बात हुई। (७७)

जयध्वज के इस पराक्रम को जो नित्य सुनेगा वह सभी पापों से छूटकर विष्णु लोक में जायेगा। (७८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त—२१.

२२

सूत उवाच ।

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत् तालजङ्घ इति स्मृतः ।
शतपुत्रास्तु तस्यासन् तालजङ्घाः प्रकीर्तिताः ॥१
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृपः ।
वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवाः पुण्यकर्मिणः ॥२
वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः ।
मधोः पुत्रशतं त्वासीद् वृषणस्तस्य वंशभाक् ॥३
वीतिहोत्रसुतश्चापि विश्रुतोऽनन्त इत्युत ।
दुर्जयस्तस्य पुत्रोऽभूत् सर्वशास्त्रविशारदः ॥४
तस्य भार्या रूपवती गुणैः सर्वैरलंकृता ।
पतिव्रतासीत् पतिना स्वधर्मपरिपालिका ॥५
स कदाचिन्महाभागः कालिन्दीतीरसंस्थिताम् ।
अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरस्वनाम् ॥६
ततः कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै ।
प्रोवाच सुचिरं कालं देवि रन्तुं मयार्हसि ॥७
सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंयुतम् ।
रेमे तेन चिरं कालं कामदेवमिवापरम् ॥८
कालात् प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम् ।
गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्ती साऽब्रवीद् वचः ॥९
न ह्यनेनोपभोगेन भवता राजसुन्दर ।
प्रीतिः संजायते मह्यं स्थातव्यं वत्सरं पुनः ॥१०
तामब्रवीत् स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरं पुरीम् ।
आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि ॥११
तमब्रवीत् सा सुभगा तथा कुरु विशांपते ।
नान्ययाऽप्सरसा तावद् रन्तव्यं भवता पुनः ॥१२

२२

सूत ने कहा—जयध्वज को एक पुत्र हुआ जिसे तालजङ्घ कहा जाता था। उस (तालजङ्घ) के सौ पुत्र थे जो तालजङ्घ कहे जाते थे। (१)

उनमें वीतिहोत्र नामक महापराक्रमी राजा सबसे बड़ा था। अन्य वृष इत्यादि (नामक पुत्र) यादव पुण्यकर्मा थे। (२)

उनमें वृष वंश की वृद्धि करने वाला था। उसे मधु नामक पुत्र हुआ। मधु को एक सौ पुत्र थे। (उनमें) वृषण ही उस (मधु) का वंश धारक था। (३)

वीतिहोत्र को भी विश्रुत अथवा अनन्त नामक पुत्र हुआ। उस (विश्रुत) को सभी शास्त्रों का ज्ञाता दुर्जय नामक पुत्र हुआ। (४)

उस (दुर्जय) की भार्या रूपवती, सभी गुणों से अलंकृत और पतिव्रता थी। पति के साथ वह अपने धर्म का पालन करती थी। (५)

किसी समय उस महाभाग्यशाली ने कालिन्दी के तट पर स्थित मधुर स्वर से गान करती हुई देवी उर्वशी को देखा। (६)

तदनन्तर मन के काम से पीड़ित होने पर वे उसके पास गए और कहा—"हे देवि! मेरे साथ चिरकाल तक रमण करो"। (७)

उस राजा को दूसरे कामदेव के तुल्य रूप और सौन्दर्य से युक्त देखकर उस देवी ने उसके साथ चिरकाल तक रमण किया। (८)

बहुत समय के पश्चात् ज्ञान होने पर राजा ने उस सुन्दरी उर्वशी से कहा "मैं अपनी रमणीक पुरी को जाऊँगा"। उस (उर्वशी) ने हँसते हुए यह वचन कहा—हे राजसुन्दर! आपके साथ इतने उपभोग से मुझे प्रसन्नता (सन्तोष) नहीं हुई। अतः (आप) पुनः एक वर्ष तक रहें। (९,१०)

उस मतिमान् (राजा) ने उससे कहा—(मैं) अपनी पुरी में जाकर अतिशीघ्र यहाँ आ जाऊँगा। अतः मुझे जाने की आज्ञा दो। (११)

उस सुन्दरी ने उससे कहा "हे राजन्! वैसा ही कीजिये किन्तु तब तक आप पुनः किसी अप्सरा के साथ रमण न करें"। (१२)

ओमित्युक्त्वा ययौ तूर्णं पुरीं परमशोभनाम् ।
गत्वा पतिव्रतां पत्नीं दृष्ट्वा भीतोऽभवन्नृपः ॥१३
संप्रेक्ष्य सा गुणवती भार्या तस्य पतिव्रता ।
भीतं प्रसन्नया प्राह वाचा पीनपयोधरा ॥१४
स्वामिन् किमत्र भवतो भीतिरद्य प्रवर्त्तते ।
तद् ब्रूहि मे यथा तत्त्वं न राज्ञां कीर्त्तये त्विदम् ॥१५
स तस्या वाक्यमाकर्ण्य लज्जावनतचेतनः ।
नोवाच किञ्चिन्नृपतिर्ज्ञानदृष्ट्या विवेद सा ॥१६
न भेतव्यं त्वया स्वामिन् कार्यं पापविशोधनम् ।
भीते त्वयि महाराज राष्ट्रं ते नाशमेष्यति ॥१७
तदा स राजा द्युतिमान् निर्गत्य तु पुरात् ततः ।
गत्वा कण्वाश्रमं पुण्यं दृष्ट्वा तत्र महामुनिम् ॥१८
निशम्य कण्ववदनात् प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ।
जगाम हिमवत्पृष्ठं समुद्दिश्य महाबलः ॥१९

"अच्छा" ऐसा कहकर (राजा) शीघ्र अपनी अत्यन्त सुन्दर पुरी में गया। (वहाँ) जाने के उपरान्त (अपनी) पतिव्रता पत्नी को देखकर राजा डर गया। (१३)

उस (राजा) की बड़े-बड़े स्तनों वाली उस गुणवती पतिव्रता भार्या ने (राजा को) डरा हुआ देखकर प्रसन्न वाणी से कहा "हे स्वामी! आपको आज भय क्यों हो रहा है? (आप) मुझे यथार्थ रूप से यह बतलायें। इस प्रकार का (भय) राजाओं के लिये कीत्तिकर नहीं होता"। (१४,१५)

उसके वचन को सुनकर उस (राजा) का मन लज्जा से अवनत हो गया। राजा ने कुछ नहीं कहा। वह (रानी) ज्ञानदृष्टि से (सभी बातों को) जान गयी। (१६)

(रानी ने कहा—) "हे राजन्! आपको डरना नहीं चाहिए, पाप का शोधन (प्रायश्चित्त) करना चाहिए। हे महाराज! आपके भयभीत होने पर आपका राष्ट्र नष्ट हो जायेगा"। (१७)

तदनन्तर वह तेजस्वी तथा महाबलवान् राजा उस पुर से निकल कर कण्व के पवित्र आश्रम में गया और वहाँ महामुनि का दर्शन कर तथा उनके मुख से प्रायश्चित्त की कल्याणकारी विधि सुनकर हिमालय पर्वत की ओर गया। (१८, १९)

सोऽपश्यत् पथि राजेन्द्रो गन्धर्ववरमुत्तमम् ।
भ्राजमानं श्रिया व्योम्नि भूषितं दिव्यमालया ॥२०
वीक्ष्य मालाममित्रघ्नः सस्माराप्सरसां वराम् ।
उर्वशीं तां मनश्चक्रे तस्या एवेयमर्हति ॥२१
सोऽतीव कामुको राजा गन्धर्वेणाथ तेन हि ।
चकार सुमहद् युद्धं मालामादातुमुद्यतः ॥२२
विजित्य समरे मालां गृहीत्वा दुर्जयो द्विजाः ।
जगाम तामप्सरसं कालिन्दीं द्रष्टुमादरात् ॥२३
अदृष्ट्वाऽप्सरसं तत्र कामबाणाभिपीडितः ।
बभ्राम सकलां पृथ्वीं सप्तद्वीपसमन्विताम् ॥२४
आक्रम्य हिमवत्पार्श्वमुर्वशीदर्शनोत्सुकः ।
जगाम शैलप्रवरं हेमकूटमिति श्रुतम् ॥२५
तत्र तत्राप्सरोवर्या दृष्ट्वा तं सिंहविक्रमम् ।
कामं संदधिरे घोरं भूषितं चित्रमालया ॥२६

उस श्रेष्ठ राजा ने मार्ग में दिव्यमाला से विभूपित उत्तम श्रेष्ठ गन्धर्व को आकाश में तेज से प्रकाशित होते हुए देखा। (२०)

माला को देख कर शत्रुनाशक (राजा) उस श्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी का स्मरण करने लगा और मन में सोचा कि यह (माला) उसके ही योग्य है। (२१)

तदुपरान्त माला लेने को उद्यत उस अतीव कामुक राजा ने उस गन्धर्व से महान् युद्ध किया। (२२)

हे द्विजो! युद्ध में जीतकर और माला लेकर वह दुर्जय (राजा) उस अप्सरा को देखने के लिये आदर पूर्वक कालिन्दी तट पर गया। (२३)

वहाँ अप्सरा को न देखकर काम के बाण से अत्यन्त पीड़ित (राजा) सात द्वीपों वाली सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूमने लगा। (२४)

उर्वशी को देखने के लिये उत्सुक (राजा) हिमालय के पार्श्व को पारकर हेमकूट नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ पर्वत पर गया। (२५)

वहाँ विचित्र माला से विभूपित उस सिंह सदृश पराक्रमी (राजा) को देख कर श्रेष्ठ अप्सरायें अत्यन्त कामासक्त हो गयीं। (२६)

संस्मरन्नुर्वशीवाक्यं तस्यां संसक्तमानसः ।
न पश्यति स्म ताः सर्वा गिरिश्रृङ्गाणि जग्मिवान् ।।२७
तत्राप्यप्सरसं दिव्यामदृष्ट्वा कामपीडितः ।
देवलोकं महामेरुं ययौ देवपराक्रमः ।।२८
स तत्र मानसं नाम सरस्त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
भेजे श्रृङ्गाण्यतिक्रम्य स्वबाहुबलभावितः ।।२९
स तस्य तीरे सुभगां चरन्तीमतिलालसाम् ।
दृष्टवाननवद्याङ्गीं तस्यै मालां ददौ पुनः ।।३०
स मालया तदा देवीं भूषितां प्रेक्ष्य मोहितः ।
रेमे कृतार्थमात्मानं जानानः सुचिरं तया ।।३१
अथोर्वशी राजवर्यं रतान्ते वाक्यमब्रवीत् ।
किं कृतं भवता पूर्वं पुरीं गत्वा वृथा नृप ।।३२
स तस्यै सर्वमाचष्ट पत्न्या यत् समुदीरितम् ।
कण्वस्य दर्शनं चैव मालापहरणं तथा ।।३३
श्रुत्वैतद् व्याहृतं तेन गच्छेत्याह हितैषिणी ।
शापं दास्यति ते कण्वो ममापि भवतः प्रिया ।।३४
तयाऽसकृन्महाराजः प्रोक्तोऽपि मदमोहितः ।
न तत्याजाथ तत्पार्श्वं तत्र संन्यस्तमानसः ।।३५
ततोर्वशी कामरूपा राज्ञे स्वं रूपमुत्कटम् ।
सुरोमशं पिङ्गलाक्षं दर्शयामास सर्वदा ।।३६
तस्यां विरक्तचेतस्कः स्मृत्वा कण्वाभिभाषितम् ।
धिङ् मामिति विनिश्चित्य तपः कर्त्तुं समारभत् ।।३७
संवत्सरद्वादशकं कन्दमूलफलाशनः ।
भूय एव द्वादशकं वायुभक्षोऽभवन्नृपः ।।३८
गत्वा कण्वाश्रमं भीत्या तस्मै सर्वं न्यवेदयत् ।
वासमप्सरसा भूयस्तपोयोगमनुत्तमम् ।।३९
वीक्ष्य तं राजशार्दूलं प्रसन्नो भगवानृषिः ।
कर्त्तुकामो हि निर्बीजं तस्याघमिदमब्रवीत् ।।४०

उर्वशी के वाक्य का स्मरण करते हुए उसके प्रति आसक्त मन वाले राजा ने उन सभी (अप्सराओं) को नहीं देखा एवं पर्वत के शिखरों पर चले गये। (२७)

वहाँ भी दिव्य अप्सरा (उर्वशी) को न देखकर देवों के तुल्य पराक्रम वाला कामपीड़ित (राजा) देवों के निवास-स्थान महामेरु पर गया। (२८)

वह वहाँ के श्रृङ्गों को पार कर अपने बाहुबल के आश्रयसे तीनों लोकों में प्रसिद्ध मानस नामक सरोवर पर पहुँचा। (२९)

उसके तीर पर सुन्दर अङ्गोंवाली अतिस्नेहमयी सुन्दरी (उर्वशी) को पुनः भ्रमण करती हुई देखा और उसको माला दे दी। (३०)

उस समय माला से विभूषित देवी (उर्वशी) को देखकर वह मोहित हो गया एवं स्वयं को कृतार्थ मानते हुए उसके साथ चिरकाल तक रमण किया। (३१)

तदुपरान्त रति-क्रिया के अन्त में उर्वशी ने श्रेष्ठ राजा से कहा "हे नृप ! पहले पुरी में व्यर्थ जाकर आपने क्या किया"। (३२)

तब उस राजा ने पत्नी के कथन, कण्व के दर्शन और माला छीनने से सम्बन्धित सम्पूर्ण बातों को उससे कहा। (३३)

उसकी कही यह बात सुनकर हितैषिणी (उर्वशी) ने कहा—(आप) चले जाँय (अन्यथा) कण्व आपको तथा आपकी प्रिया मुझको भी शाप दे देंगे। (३४)

उसके बार-बार कहने पर भी मदमोहित-महाराज ने उसका साथ नहीं छोड़ा एवं उसमें ही उसका मन लगा रहा। (३५)

तब इच्छानुसार रूपधारण करने वाली उर्वशी राजा को रोमों से युक्त एवं पिंगल नेत्रों वाला अपना उग्र रूप सर्वदा दिखलाने लगी। (३६)

उसके प्रति विरक्त चित्त वाले (राजा) ने कण्व का कथन स्मरण कर 'मुझे धिक्कार है' ऐसा निश्चय कर तप करना प्रारम्भ किया। (३७)

राजा ने बारह वर्षो तक कन्द-मूल का भोजन किया एवं पुनः बारह वर्षो तक वह वायु का भक्षण करता रहा। (३८)

भयवश कण्व के आश्रम में जाकर (राजा ने) उनसे पुनः अप्सरा के साथ रहने और श्रेष्ठ तप करने की सभी बातों को कह दिया। (३९)

उस श्रेष्ठ राजा को देखकर प्रसन्न हुए भगवान् ऋषि (कण्व) ने उसके पाप को निर्बीज करने की इच्छा से यह कहा। (४०)

कण्व उवाच ।

गच्छ वाराणसीं दिव्यामीश्वराध्युषितां पुरीम् ।
आस्ते मोचयितुं लोकं तत्र देवो महेश्वरः ।।४१
स्नात्वा संतर्प्य विधिवद् गङ्गायां देवताः पितॄन् ।
दृष्ट्वा विश्वेश्वरं लिङ्गं किल्बिषान्मोक्ष्यसेऽखिलात् ।।४२
प्रणम्य शिरसा कण्वमनुज्ञाप्य च दुर्जयः ।
वाराणस्यां हरं दृष्ट्वा पापान्मुक्तोऽभवत् ततः ।।४३
जगाम स्वपुरीं शुभ्रां पालयामास मेदिनीम् ।
याजयामास तं कण्वो याचितो घृणया मुनिः ।।४४
तस्य पुत्रोऽथ मतिमान् सुप्रतीक इति श्रुतः ।
बभूव जातमात्रं तं राजानमुपतस्थिरे ।।४५
उर्वश्यां च महावीर्याः सप्त देवसुतोपमाः ।
कन्या जगृहिरे सर्वा गन्धर्वदयिता द्विजाः ।।४६
एष व कथितः सम्यक् सहस्रजित उत्तमः ।
वंशः पापहरो नृणां क्रोष्टोरपि निबोधत ।।४७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

२३

सूत उवाच ।

क्रोष्टोरेकोऽभवत् पुत्रो वृजिनीवानिति श्रुतिः ।
तस्य पुत्रो महान् स्वातिरुशद्गुस्तत्सुतोऽभवत् ।।१
उशद्गोरभवत् पुत्रो नाम्ना चित्ररथो बली ।
अथ चैत्ररथिर्लोके शशबिन्दुरिति स्मृतः ।।२
तस्य पुत्रः पृथुयशा राजाऽभूद् धर्मतत्परः ।

कण्व ने कहा—

ईश्वर के निवास-स्थान दिव्य वाराणसी पुरी को जाओ। वहाँ देव महेश्वर लोकों को मुक्त करने के लिये रहते हैं। (४१)

गंगा में स्नानोपरान्त विधिवत् देवता और पितरों का तर्पण कर विश्वेश्वर के लिङ्ग का दर्शन करने से समस्त पाप से मुक्त हो जाओगे। (४२)

तदनन्तर मस्तक झुका कर कण्व को प्रणाम करने के उपरान्त उनकी आज्ञा लेकर दुर्जय (राजा) वाराणसी में गया और हर का दर्शन कर पाप से मुक्त हो गया। (४३)

(तदनन्तर) अपनी शुभ्र पुरी में जाकर वह पृथ्वी का पालन करने लगा। प्रार्थना करने पर कण्व मुनि ने कृपा कर उसका यज्ञ कराया। (४४)

तदनन्तर उसे सुप्रतीक नामक एक बुद्धिमान् पुत्र हुआ। उत्पन्न होते ही (लोगों ने) उसे राजा मान लिया। (४५)

हे द्विजो! उर्वशी से भी देव-पुत्रों के समान सात पुत्र हुए। उन्होंने गन्धर्व-कन्याओं को अपनी पत्नी बनाया। (४६)

(मैंने) आप से भली-भाँति मनुष्यों के पाप को दूर करने वाले सहस्रजित् के उत्तम वंश का वर्णन किया। (अब) क्रोष्टु (के वंश) का भी (वर्णन) सुनें। (४७)

छःसहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में बाइसवाँ अध्याय समाप्त—२२.

२३

सूत ने कहा—

क्रोष्टु को वृजिनीवान् नाम से प्रसिद्ध एक पुत्र हुआ। उस (वृजिनीवान्) का महान् पुत्र स्वाति एवं उस (स्वाति) का पुत्र उशद्गु था। (१)

उशद्गु को चित्ररथ नामक बलवान् पुत्र हुआ। तदनन्तर चित्ररथ का पुत्र लोक में शशबिन्दु नाम से प्रसिद्ध हुआ। (२)

धर्मपरायण पृथुयशा नामक राजा उस (शशबिन्दु)

पृथुकर्मा च तत्पुत्रस्तस्मात् पृथुजयोऽभवत् ।।३
पृथुकीर्तिरभूत् तस्मात् पृथुदानस्ततोऽभवत् ।
पृथुश्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यासीत् पृथुसत्तमः ।।४
उशना तस्य पुत्रोऽभूत् सितेषुस्तत्सुतोऽभवत् ।
तस्याभूद् रुक्मकवचः परावृत् तस्य सत्तमाः ।।५
परावृतः सुतो जज्ञे ज्यामघो लोकविश्रुतः ।
तस्माद् विदर्भः संजज्ञे विदर्भात् क्रथकैशिकौ ।।६
रोमपादस्तृतीयस्तु बभ्रुस्तस्यात्मजो नृपः ।
धृतिस्तस्याभवत् पुत्रः संस्तस्तस्याप्यभूत् सुतः ।।७
संस्तस्य पुत्रो बलवान् नाम्ना विश्वसहस्तु सः ।
तस्य पुत्रो महावीर्यः प्रजावान् कौशिकस्ततः ।
अभूत् तस्य सुतो धीमान् सुमन्तुस्तत्सुतोऽनलः ।।८
कैशिकस्य सुतश्चेदिश्चैद्यास्तस्याभवन् सुताः ।
तेषां प्रधानो ज्योतिष्मान् वपुष्मांस्तत्सुतोऽभवत् ।।९
वपुष्मतो बृहन्मेधा श्रीदेवस्तत्सुतोऽभवत् ।
तस्य वीतरथो विप्रा रुद्रभक्तो महाबलः ।।१०
क्रथस्याप्यभवत् कुन्ती वृष्णी तस्याभवत् सुतः ।
वृष्णेर्निवृत्तिरुत्पन्नो दशार्हस्तस्य तु द्विजाः ।।११
दशार्हपुत्रोप्यारोहो जीमूतस्तत्सुतोऽभवत् ।
जैमूतिरभवद् वीरो विकृतिः परवीरहा ।।१२
तस्य भीमरथः पुत्रः तस्मान्नवरथोऽभवत् ।
दानधर्मरतो नित्यं सम्यक्शीलपरायणः ।।१३
कदाचिन्मृगयां यातो दृष्ट्वा राक्षसमूर्जितम् ।
दुद्राव महताविष्टो भयेन मुनिपुंगवाः ।।१४
अन्वधावत संक्रुद्धो राक्षसस्तं महाबलः ।
दुर्योधनोऽग्निसंकाशः शूलासक्तमहाकरः ।।१५

का पुत्र था। उस (पृथुयशा) का पुत्र पृथुकर्मा था। उस (पृथुकर्मा) से पृथुजय उत्पन्न हुआ। (३)

उस (पृथुजय) से पृथुकीर्त्ति उत्पन्न हुआ एवं उस (पृथुकीर्त्ति) से पृथुदान की उत्पत्ति हुई। उस (पृथुदान) का पुत्र पृथुश्रवा एवं उस (पृथुश्रवा) का पुत्र पृथुसत्तम था। (४)

उस (पृथुसत्तम) का पुत्र उशना एवं उस (उशना) का पुत्र सितेषु था। उस (सितेषु) से रुक्मकवच उत्पन्न हुआ एवं उस (रुक्मकवच) का पुत्र परावृत् था। (५)

परावृत् को लोक-प्रसिद्ध ज्यामघ नामक पुत्र हुआ। उस (ज्यामघ) से विदर्भ का जन्म हुआ एवं विदर्भ से क्रथ, कैशिक और रोमपाद नामक तीन पुत्र हुए। उस (रोमपाद) के पुत्र राजा बभ्रु थे। उन (बभ्रु) का पुत्र धृति तथा उस (धृति) का पुत्र संस्त था। (६,७)

संस्त का बलवान् पुत्र विश्वसह नाम से प्रसिद्ध था। उस (विश्वसह) का पुत्र महावीर्य प्रजावान् था और उस (महावीर्य प्रजावान्) से कौशिक का जन्म हुआ था। बुद्धिमान् सुमन्तु उस (कौशिक) के पत्र थे और (सुमन्तु) से अनल की उत्पत्ति हुई। (८)

कैशिक के पुत्र चेदि थे और उन चेदि के पुत्र चैद्य हुए जिनमें ज्योतिष्मान् प्रधान था एवं उस (ज्योतिष्मान्) का पुत्र वपुष्मान् था। वपुष्मान् का पुत्र बृहन्मेधा था एवं उसका पुत्र श्रीदेव था। हे विप्रो! उस (श्रीदेव) का पुत्र वीतरथ महाबलवान् और रुद्रभक्त था। (९, १०)

क्रथ का पुत्र कुन्ती और उस (कुन्ती) का पुत्र वृष्णी था। हे ब्राह्मणो! वृष्णि से निवृत्ति उत्पन्न हुआ और निवृत्ति से दशार्ह हुआ। (११)

दशार्ह का पुत्र आरोह था और उसका (आरोह का) पुत्र जीमूत हुआ। जीमूत का वीर पुत्र शत्रु-वीरों का संहारक विकृति हुआ। (१२)

उस (विकृति) का पुत्र भीमरथ हुआ जिससे नवरथ उत्पन्न हुआ। वह (नवरथ) सदैव दानधर्म में रत तथा भली-भाँति सदाचारी था। (१३)

हे श्रेष्ठ मुनियो! किसी समय आखेट के निमित्त जाने पर (उसने) बलवान् राक्षस को देखा और अत्यन्त भयभीत होकर भागा। (१४)

महान् भुजा में शूल लिये हुए अग्नि-समान महाबलवान् दुर्योधन राक्षस क्रोधित होकर उसके पीछे दौड़ा। (१५)

राजा नवरथो भीतया नातिदूरादनुत्तमम् ।
अपश्यत् परमं स्थानं सरस्वत्या सुगोपितम् ॥१६
स तद्वेगेन महता संप्राप्य मतिमान् नृपः ।
ववन्दे शिरसा दृष्ट्वा साक्षाद् देवीं सरस्वतीम् ॥१७
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्बद्धाञ्जलिरमित्रजित् ।
पपात दण्डवद् भूमौ त्वामहं शरणं गतः ॥१८
नमस्यामि महादेवीं साक्षाद् देवीं सरस्वतीम् ।
वाग्देवतामनाद्यन्तामीश्वरीं ब्रह्मचारिणीम् ॥१९
नमस्ये जगतां योनिं योगिनीं परमां कलाम् ।
हिरण्यगर्भमहिषीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ॥२०
नमस्ये परमानन्दां चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम् ।
पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम् ॥२१
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राजानं राक्षसेश्वरः ।
हन्तुं समागतः स्थानं यत्र देवी सरस्वती ॥२२
समुद्यम्य तदा शूलं प्रवेष्टुं बलदर्पितः ।
त्रिलोकमातुस्तत्स्थानं शशाङ्कादित्यसंन्निभम् ॥२३
तदन्तरे महद् भूतं युगान्तादित्यसन्निभम् ।
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि ॥२४
गच्छेत्याह महाराज न स्थातव्यं त्वया पुनः ।
इदानीं निर्भयस्तूर्णं स्थानेऽस्मिन् राक्षसो हतः ॥२५
ततः प्रणम्य हृष्टात्मा राजा नवरथः पराम् ।
पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरंदरपुरोपमाम् ॥२६
स्थापयामास देवेशीं तत्र भक्तिसमन्वितः ।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्होमैर्देवीं सरस्वतीम् ॥२७
तस्य चासीद् दशरथः पुत्रः परमधार्मिकः ।
देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥२८
तस्मात् करम्भः संभूतो देवरातोऽभवत् ततः ।
ईजे स चाश्वमेधेन देवक्षत्रश्च तत्सुतः ॥२९
मधुस्तस्य तु दायादस्तस्मात् कुरुवशोऽभवत् ।
पुत्रद्वयमभूत् तस्य सुत्रामा चानुरेव च ॥३०

भयभीत राजा नवरथ ने निकट में स्थित सरस्वती से सुरक्षित श्रेष्ठ स्थान को देखा। वह बुद्धिमान् राजा अत्यन्त वेग से वहाँ पहुँचा। साक्षात् सरस्वती देवी को देखकर शत्रुजयी (राजा) ने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़े हुए वह प्रिय वाणी से स्तुति करने लगा। भूमि पर दण्ड के सदृश गिर कर उसने कहा "मैं आपकी शरण में आया हूँ। (१६-१८)

"महादेवी साक्षात् सरस्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। मैं आदि और अन्त से रहित जगत् के मूल कारण एवं परम कला स्वरूपा योगिनी ब्रह्मचारिणी ईश्वरी वाग्देवता को नमस्कार करता हूँ। तीन नेत्रों वाली और मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाली हिरण्यगर्भ की महिषी चित्कला परमानन्द स्वरूपा ब्रह्मरूपिणी को नमस्कार है। हे परमेश्वरी ! मेरी रक्षा करो। भयभीत होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ।" (१९-२१)

इसी बीच क्रुद्ध राक्षस राजा को मारने के लिये वहाँ पहुँचा जहाँ सरस्वती देवी थीं। (२२)

शूल उठाकर बलगर्वित राक्षस तीनों लोकों की माता के चन्द्रमा और सूर्य सदृश स्थान में प्रविष्ट होना चाहा। (२३)

उसी बीच प्रलयकालीन सूर्य के सदृश किसी महान् प्राणी ने शूल से वक्षस्थल विदीर्ण कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और कहा 'हे महाराज ! अब आप शीघ्र भयरहित होकर चले जाँय इस स्थान पर पुनः न रहें, राक्षस मारा जा चुका है। (२४, २५)

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! तदनन्तर अत्यन्त प्रसन्न राजा नवरथ प्रणाम कर इन्द्रपुरी के सदृश अपनी पुरी को गया एवं वहाँ भक्तिपूर्वक देवेश्वरी की स्थापना की और अनेक प्रकार के यज्ञों तथा होमों के द्वारा सरस्वती देवी का यज्ञ किया। (२६, २७)

उसे दशरथ नामक परम धार्मिक देवी का भक्त एवं महातेजस्वी पुत्र हुआ। उस (दशरथ) का पुत्र शकुनी था। उस (शकुनि) से करम्भ उत्पन्न हुआ तथा उस (करम्भ) से देवरात की उत्पत्ति हुई। (देवरात ने) अश्वमेध यज्ञ किया एवं उसका पुत्र देवक्षत्र था। उस (देवक्षत्र) का पुत्र मधु था एवं उस (मधु) से कुरुवंश का

अनोस्तु पुरुकुत्सोऽभूदंशुस्तस्य च रिक्थभाक् ।
अथांशोः सत्त्वतो नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान् ।
महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां वरः ।।३१
स नारदस्य वचनाद् वासुदेवार्चनान्वितम् ।
शास्त्रं प्रवर्तयामास कुण्डगोलादिभिः श्रुतम् ।।३२
तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्त्वतं नाम शोभनम् ।
प्रवर्तते महाशास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम् ।।३३
सात्त्वतस्तस्य पुत्रोऽभूत् सर्वशास्त्रविशारदः ।
पुण्यश्लोको महाराजस्तेन वै तत्प्रवर्तितम् ।।३४
सात्त्वतः सत्त्वसंपन्नः कौशल्यां सुषुवे सुतान् ।
अन्धकं वै महाभोजं वृष्णिं देवावृधं नृपम् ।
ज्येष्ठं च भजमानाख्यं धनुर्वेदविदां वरम् ।।३५
तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः ।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति प्रभुः ।।३६

तस्य बभ्रुरिति ख्यातः पुण्यश्लोकोऽभवन्नृपः ।
धार्मिको रूपसंपन्नस्तत्त्वज्ञानरतः सदा ।।३७
भजमानस्य सृञ्जय्यां भजमाना विजज्ञिरे ।
तेषां प्रधानौ विख्यातौ निमिः कृकण एव च ।।३८
महाभोजकुले जाता भोजा वैमार्तिकास्तथा ।
वृष्णेः सुमित्रो बलवाननमित्रः शिनिस्तथा ।।३९
अनमित्रादभून्निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः ।
प्रसेनस्तु महाभागः सत्राजिन्नाम चोत्तमः ।।४०
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात् ।
सत्यवान् सत्यसंपन्नः सत्यकस्तत्सुतोऽभवत् ।।४१
सात्यकिर्युयुधानस्तु तस्यासङ्गोऽभवत् सुतः ।
कुणिस्तस्य सुतो धीमांस्तस्य पुत्रो युगंधरः ।।४२
माद्र्या वृष्णेः सुतो जज्ञे पृश्निर्वै यदुनन्दनः ।
जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकश्च ह ।।४३

जन्म हुआ । उस (कुरुवंश) के सुत्रामा और अनु नामक दो पुत्र थे । अनु का पुत्र पुरुकुत्स था तथा उस (पुरुकुत्स) का पुत्र अंशु था । अंशु का पुत्र प्रतापी तथा विष्णुभक्त सत्त्वत था । वह महात्मा, दानशील एवं धनुर्वेदज्ञों में श्रेष्ठ था । (२८-३१)

उस (सत्त्वत) ने नारद के कहने से कुण्डगोलादिकों* के जानने योग्य वासुदेव की पूजा से युक्त शास्त्र प्रवर्त्तित किया । (३२)

उसके नाम से सात्त्वत ऐसा विख्यात कुण्डादिकों के लिये हितावह महान् सुन्दर शास्त्र प्रवर्त्तित हुआ । (३३)

उस (सत्त्वत) का सात्त्वत नामक पुत्र सभी शास्त्रों का विद्वान् था । वह महाराज पुण्यश्लोक था । उसने भी उस शास्त्र को प्रचलित किया । (३४)

बलवान् सात्त्वत की पत्नी कौशल्या ने अन्धक, महाभोज, वृष्णि, राजा देवावृध तथा धनुर्वेदज्ञों में श्रेष्ठ भजमान नामक ज्येष्ठ पुत्र को जन्म दिया । (३५)

उनमें राजा देवावृध ने परम तप किया । उसने यह सङ्कल्प किया था कि मुझे सभी गुणों से युक्त समर्थ पुत्र उत्पन्न हो । (३६)

उससे बभ्रु नाम से प्रसिद्ध पुण्यश्लोक राजा उत्पन्न हुआ । (वह बभ्रु) धार्मिक, रूपसम्पन्न एवं तत्त्वज्ञान में सदा रत रहने वाला था । (३७)

भजमान से सृञ्जयी में भजमान नामक (अनेक) पुत्र हुए । उनमें निमि और कृकण प्रधान एवं प्रसिद्ध थे । (३८)

महाभोज के कुल में भोजों और वैमार्तिकों की उत्पत्ति हुई । वृष्णि से बलवान् सुमित्र, अनमित्र और शिनि उत्पन्न हुए । अनमित्र से निघ्न की उत्पत्ति हुई । निघ्न को महाभाग्यशाली प्रसेन तथा श्रेष्ठ सत्राजित् नामक दो पुत्र हुए । (३९-४०)

वृष्णि के पुत्र अनमित्र से शिनि नामक कनिष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ । उस (शिनि) को सत्य बोलने वाला सत्यसम्पन्न सत्यक नामक पुत्र हुआ । (४१)

सत्यक का पुत्र युयुधान और उस (युयुधान) का पुत्र असङ्ग था । उस (असङ्ग) का पुत्र बुद्धिमान् कुणि था एवं उसका पुत्र युगन्धर था । वृष्णि को माद्री के गर्भ से यदुनन्दन पृश्नि नामक एक पुत्र हुआ । पृश्नि को श्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र हुए । (४२, ४३)

* सधवा स्त्री के गर्भ से पर पुरुष द्वारा उत्पन्न सन्तान कुण्ड एवं विधवा स्त्री के गर्भ से पर पुरुष द्वारा उत्पन्न पुत्र गोलक कहा जाता है ।

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ।
तस्यामजनयत् पुत्रमक्रूरं नाम धार्मिकम् ।
उपमङ्गुस्तथा मङ्गुरन्ये च बहवः सुताः ।।४४
अक्रूरस्य स्मृतः पुत्रो देववानिति विश्रुतः ।
उपदेवश्च पुण्यात्मा तयोर्विश्वप्रमाथिनौ ।।४५
चित्रकस्याभवत् पुत्रः पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ।।४६
अन्धकात् काश्यदुहिता लेभे च चतुरः सुतान् ।
कुकुरं भजमानं च शुचिं कम्बलबर्हिषम् ।।४७
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयोऽभवत् ।
कपोतरोमा विपुलस्तस्य पुत्रो विलोमकः ।।४८
तस्यासीत् तुम्बुरुसखा विद्वान् पुत्रो नलः किल ।
ख्यायते तस्य नामानुरनोरानकदुन्दुभिः ।।४९
स गोवर्धनमासाद्य तताप विपुलं तपः ।
वरं तस्मै ददौ देवो ब्रह्मा लोकमहेश्वरः ।।५०
वंशस्य चाक्षयां कीर्तिं गानयोगमनुत्तमम् ।
गुरोरभ्यधिकं विप्राः कामरूपित्वमेव च ।।५१
स लब्ध्वा वरमव्यग्रो वरेण्यं वृषवाहनम् ।
पूजयामास गानेन स्थाणुं त्रिदशपूजितम् ।।५२
तस्य गानरतस्याथ भगवानम्बिकापतिः ।
कन्यारत्नं ददौ देवो दुर्लभं त्रिदशैरपि ।।५३
तया स सङ्गतो राजा गानयोगमनुत्तमम् ।
अशिक्षयदमित्रघ्नः प्रियां तां भ्रान्तलोचनाम् ।।५४
तस्यामुत्पादयामास सुभुजं नाम शोभनम् ।
रूपलावण्यसंपन्नां ह्रीमतीमपि कन्यकाम् ।।५५
ततस्तं जननी पुत्रं बाल्ये वयसि शोभनम् ।
शिक्षयामास विधिवद् गानविद्यां च कन्यकाम् ।।५६
कृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिवद् गुरोः ।
उद्वाहात्मजां कन्यां गन्धर्वाणां तु मानसीम् ।।५७

श्वफल्क ने काशिराज की पुत्री को भार्या के रूप में प्राप्त किया। (श्वफल्क ने) उसमें धर्मपरायण अक्रूर, उपमंगु और मंगु नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। (उसे) अन्य भी वहुत से पुत्र हुए। (४४)

अक्रूर को प्रसिद्ध देववान् तथा पुण्यात्मा उपदेव नामक दो प्रसिद्ध पुत्र हुए। उन दोनों को विश्व और प्रमाथी नामक दो पुत्र हुए। (४५)

चित्रक को पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, सुवाहु, सुपार्श्वक और गवेषण नामक पुत्र उत्पन्न हुए। (४६)

काश्य की पुत्री ने अन्धक से कुकुर, भजमान, शुचि और कम्वलवर्हिप नाम के चार पुत्रों को प्राप्त किया। (४७)

कुकुर का पुत्र वृष्णि एवं वृष्णि को कपोतरोमा विपुल नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ। उस (कपोतरोमा) का पुत्र विलोमक था। (४८)

उस (विलोमक) का पुत्र विद्वान् नल था, जो तुम्वुरु का मित्र था। उसको ही अनु भी कहा जाता है। अनु को आनकदुन्दुभि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। (४९)

हे विप्रो! गोवर्द्धन पर्वत पर जाकर उसने विपुल तप किया। लोक महेश्वर देव ब्रह्मा ने उसे वर दिया "तुम्हें अक्षय कीर्ति, उत्तम वंश तथा गुरु से भी अधिक गानयोग तथा कामरूपिता अर्थात् यथेच्छ रूपधारण करने की शक्ति हो"। (५०,५१)

वर प्राप्त कर शान्त (मनवाले) उसने गान द्वारा देवों से पूजित वरेण्य वृषवाहन स्थाणु अर्थात् शंकर की पूजा की। (५२)

भगवान् अम्बिकापति ने गान में रत उस आनकदुन्दुभि को देव-दुर्लभ कन्या रत्न प्रदान किया। (५३)

शत्रुनाशक राजा ने उससे साथ होने पर भ्रान्तलोचना अपनी उस प्रिया को उत्तम गानयोग की शिक्षा दी। (५४)

(उसने) उससे शोभन नामक सुन्दर भुजाओं वाला एक (पुत्र) तथा रूप और लावण्य से युक्त ह्रीमती नाम की कन्या को भी उत्पन्न किया। (५५)

तदनन्तर उनकी माता ने वाल्यावस्था में ही शोभन (नामक पुत्र) तथा (ह्रीमती नामक अपनी) कन्या को विधिवत् गान विद्या की शिक्षा दी। (५६)

उपनयन होने के उपरान्त विधिवत् गुरु से वेदों का अध्ययन कर (शोभन ने) गन्धर्वों की मानसी नामक कन्या से विवाह किया एवं उससे वीणा वजाने का तत्त्व

तस्यामुत्पादयामास पञ्च पुत्राननुत्तमान्।
वीणावादनतत्त्वज्ञान् गानशास्त्रविशारदान्॥५८
पुत्रैः पौत्रैः सपत्नीको राजा गानविशारदः।
पूजयामास गानेन देवं त्रिपुरनाशनम्॥५९
ह्लीमती चापि या कन्या श्रीरिवायतलोचना।
सुबाहुर्नाम गन्धर्वस्तामादाय ययौ पुरीम्॥६०
तस्यामप्यभवन् पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजसः।
सुषेणवीरसुग्रीवसुभोजनरवाहनाः॥६१
अथासीदभिजित् पुत्रो वीरस्त्वानकदुन्दुभेः।
पुनर्वसुश्चाभिजितः संबभूवाहुकः सुतः॥६२
आहुकस्योग्रसेनश्च देवकश्च द्विजोत्तमाः।
देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः॥६३
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः।
तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ॥६४
वृकदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता।
श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा च सुव्रता।
देवकी चापि तासां तु वरिष्ठाऽभूत् सुमध्यमा॥६५
उग्रसेनस्य पुत्रोऽभून्न्यग्रोधः कंस एव च।
सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमाञ्छङ्कुरेव च॥६६
भजमानादभूत् पुत्रः प्रख्यातोऽसौ विदूरथः।
तस्य शूरः शमिस्तस्मात् प्रतिक्षत्रस्ततोऽभवत्॥६७
स्वयंभोजस्ततस्तस्माद् हृदिकः शत्रुतापनः।
कृतवर्माऽथ तत्पुत्रो देवरस्तत्सुतः स्मृतः।
स शूरस्तत्सुतो धीमान् वसुदेवोऽथ तत्सुतः॥६८
वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः।
बभूव देवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः॥६९
रोहिणी च महाभागा वसुदेवस्य शोभना।
असूत पत्नी संकर्षं रामं ज्येष्ठं हलायुधम्॥७०
स एव परमात्माऽसौ वासुदेवो जगन्मयः।
हलायुधः स्वयं साक्षाच्छेषः संकर्षणः प्रभुः॥७१

जानने वाले गानशास्त्र में विशारद पाँच श्रेष्ठ पुत्रों को उत्पन्न किया। (५७,५८)

पुत्र, पौत्र एवं पत्नी के साथ गान-विशारद राजा ने गान द्वारा त्रिपुरनाशक (शङ्कर) देव का पूजन किया। (५९)

सुबाहु नाम का गन्धर्व लक्ष्मी के सदृश विशाल नेत्रों वाली उस ह्लीमती को लेकर अपनी पुरी में चला गया। (६०)

सुन्दर तेजस्वी गन्धर्व को उस (ह्लीमती) से सुषेण, वीर, सुग्रीव, सुभोज और नरवाहन नामक पुत्र हुए। (६१)

आनकदुन्दुभि को अभिजित् नामक एक वीर पुत्र था। अभिजित् का पुत्र पुनर्वसु था एवं उस (पुनर्वसु) से आहुक का जन्म हुआ। (६२)

हे द्विजोत्तमो! उग्रसेन और देवक आहुक के पुत्र थे। देवक को देवों के सदृश देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुए। इनकी सात बहनें वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सुव्रता सहदेवा तथा इन सभी से बड़ी एवं सुन्दर देवकी थी। वे सभी वसुदेव को दे दी गयीं। (६३-६५)

उग्रसेन को न्यग्रोध, कंस, सुभूमी, राष्ट्रपाल, तुष्टिमान् और शंकु नामक पुत्र थे। भजमान् को विदूरथ नाम का विख्यात पुत्र हुआ। उस (विदूरथ) से शूर की तथा उस (शूर) से शमि की उत्पत्ति हुई। उस (शमि) का पुत्र प्रतिक्षत्र था। उस (प्रतिक्षत्र) से स्वयंभोज तथा उस (स्वयंभोज) से शत्रुपीड़क हृदिक का जन्म हुआ। तदनन्तर उस (हृदिक) का पुत्र कृतवर्मा था। कृतवर्मा का पुत्र देवर था। उन शूर से धीमान हुए और उनके पुत्र वसुदेव थे। (६६-६८)

देवों के प्रार्थना करने पर महाबाहु जगद्गुरु वासुदेव हरि वसुदेव से देवकी पुत्र के रूप में प्रकट हुए। (६९)

वसुदेव की महाभाग्यशाली सुन्दरी रोहिणी नामक पत्नी ने हलायुध सङ्कर्षण राम (नामक) ज्येष्ठ पुत्र को जन्म दिया। (७०)

वह परमात्मा ही ये जगन्मय वासुदेव हैं। हलायुध सङ्कर्षण स्वयं साक्षात् प्रभु शेष हैं। (७१)

भृगुशापच्छलेनैव मानयन् मानुषीं तनुम् ।
बभूव तस्यां देवक्यां रोहिण्यामपि माधवः ।।७२
उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी ।
नियोगाद् वासुदेवस्य यशोदातनया ह्यभूत् ।।७३
ये चान्ये वसुदेवस्य वासुदेवाग्रजाः सुताः ।
प्रागेव कंसस्तान् सर्वान् जघान मुनिपुंगवाः ।।७४
सुषेणश्च तथोदायी भद्रसेनो महाबलः ।
ऋजुदासो भद्रदासः कीर्तिमानपि पूर्वजः ।।७५
हतेष्वेतेषु सर्वेषु रोहिणी वसुदेवतः ।
असूत रामं लोकेशं बलभद्रं हलायुधम् ।।७६
जातेऽथ रामे देवानामादिमात्मानमच्युतम् ।
असूत देवकी कृष्णं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।।७७
रेवती नाम रामस्य भार्यासीत् सुगुणान्विता ।
तस्यामुत्पादयामास पुत्रौ द्वौ निशठोल्मुकौ ।।७८
षोडशस्त्रीसहस्राणि कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ।
बभूवुरात्मजास्तासु शतशोऽथ सहस्रशः ।।७९
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः ।
चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः शंख एव च ।।८०
रुक्मिण्य वासुदेवस्यां महाबलपराक्रमाः ।
विशिष्टाः सर्वपुत्राणां संबभूवुरिमे सुताः ।।८१
तान् दृष्ट्वा तनयान् वीरान् रौक्मिणेयाञ्जनार्दनम् ।
जाम्बवत्यब्रवीत् कृष्णं भार्या तस्य शुचिस्मिता ।।८२
मम त्वं पुण्डरीकाक्ष विशिष्टं गुणवत्तमम् ।
सुरेशसदृशं पुत्रं देहि दानवसूदन ।।८३
जाम्बवत्या वचः श्रुत्वा जगन्नाथः स्वयं हरिः ।
समारेभे तपः कर्त्तुं तपोनिधिररिंदमः ।।८४
तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा यथाऽसौ देवकीसुतः ।
दृष्ट्वा लेभे सुतं रुद्रं तप्त्वा तीव्रं महत् तपः ।।८५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

भृगु के शापवश मानव शरीर धारण कर विष्णु उन देवकी तथा रोहिणी से उत्पन्न हुए । (७२)

उमा की देह से उत्पन्न योगनिद्रा-स्वरूपा कौशिकी वासुदेव की आज्ञा से यशोदा की पुत्री हुई । (७३)

हे मुनिश्रेष्ठो ! वसुदेव को वासुदेव के अग्रज जो पुत्र उत्पन्न हुए थे उन सभी को कंस ने पहले ही मार डाला था । (७४)

सुषेण, उदायी, भद्रसेन, महावल, ऋजुदास, भद्रदास और पूर्व उत्पन्न कीर्त्तिमान् इन सभी (वासुदेव के बड़े भाइयों के कंस द्वारा) मारे जाने पर रोहिणी ने वसुदेव से हलायुध लोकेश वलभद्र राम को उत्पन्न किया । (७५,७६)

(वल) राम के उत्पन्न होने पर देवकी ने देवों के आदि कारणस्वरूप श्रीवत्स से सुशोभित वक्षःस्थल वाले अच्युत कृष्ण को जन्म दिया । (७७)

(वल) राम की रेवती नामक भार्या सुन्दर गुणों से युक्त थी। उससे निशठ एवं उल्मुक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । (७८)

अक्लिष्टकर्मा कृष्ण को सोलह हजार स्त्रियाँ थीं। उनसे सैकड़ों हजारों पुत्र हुए । (७९)

वासुदेव को रुक्मिणी से । चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न एवं शंख नामक पुत्र हुए । ये पुत्र सभी पुत्रों में विशेष गुण-सम्पन्न थे । (८०,८१)

जनार्दन को रुक्मिणी से उत्पन्न उन वीर पुत्रों को देख कर उनकी शुचिस्मिता भार्या जाम्ववती ने श्री कृष्ण से कहा— (८२)

हे पुण्डरीकाक्ष ! हे दानव विनाशक ! आप मुझे विशिष्ट तथा गुणियों में श्रेष्ठ इन्द्रतुल्य पुत्र दें । (८३)

जाम्ववती का वचन सुनकर तपोनिधि, शत्रु-दमनकारी जगन्नाथ हरि स्वयं तप करने लगे । (८४)

हे मुनिश्रेष्ठो ! यह सुनो कि किस प्रकार उन देवकी पुत्र (श्रीकृष्ण) ने महान् कठोर तप करने के उपरान्त रुद्र का दर्शन कर पुत्र प्राप्त किया । (८५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में तेइसवाँ अध्याय समाप्त—२३.

२४

सूत उवाच ।

अथ देवो हृषीकेशो भगवान् पुरुषोत्तमः ।
ततापं घोरं पुत्रार्थं निदानं तपसस्तपः ॥१

स्वेच्छयाऽप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽपि विश्वधृक् ।
चचार स्वात्मनो मूलं बोधयन् भावमैश्वरम् ॥२

जगाम योगिभिर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम् ।
आश्रमं तूपमन्योर्वै मुनीन्द्रस्य महात्मनः ॥३

पतत्त्रिराजमारूढः सुपर्णमतितेजसम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिः श्रीवत्सकृतलक्षणः ॥४

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ।
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं वेदघोषनिनादितम् ॥५

सिंहर्क्षशरभाकीर्णं शार्दूलगजसंयुतम् ।
विमलस्वादुपानीयैः सरोभिरुपशोभितम् ॥६

आरामैर्विविधैर्जुष्टं देवतायतनैः शुभैः ।
ऋषिकैर्ऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा ॥७

वेदाध्ययनसंपन्नैः सेवितं चाग्निहोत्रिभिः ।
योगिभिर्ध्याननिरतैर्नासाग्रगतलोचनैः ॥८

उपेतं सर्वतः पुण्यं ज्ञानिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
नदीभिरभितो जुष्टं जापकैर्ब्रह्मवादिभिः ॥९

सेवितं तापसैः पुण्यैरीशाराधनतत्परैः ।
प्रशान्तैः सत्यसंकल्पैर्निःशोकैर्निरुपद्रवैः ॥१०

भस्मावदातसर्वाङ्गै रुद्रजाप्यपरायणैः ।
मुण्डितैर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यैश्च शिखाजटैः ।
सेवितं तापसैर्नित्यं ज्ञानिभिर्ब्रह्मचारिभिः ॥११

तत्राश्रमवरे रम्ये सिद्धाश्रमविभूषिते ।
गङ्गा भगवती नित्यं वहत्येवाघनाशिनी ॥१२

२४

सूत ने कहा —

तदनन्तर हृषीकेश भगवान् पुरुषोत्तम पुत्र के लिये तपस्या के निदान स्वरूप अर्थात् सर्वोच्च घोर तप करने लगे। (१)

अपनी इच्छा से ही अवतीर्ण कृतकृत्य विश्वधारक परमेश्वर रूप का परिचय देते हुए अपने स्वरूप के मूल में विचरण करने लगे। (२)

वे (कृष्ण) मुनिश्रेष्ठ महात्मा उपमन्यु के योगियों से सेवित तथा अनेक प्रकार के पक्षियों से युक्त आश्रम में गए। (३)

अत्यन्त तेजस्वी पक्षिराज गरुड़ के ऊपर आरूढ़, हाथों में शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हुए, श्रीवत्स से सुशोभित वक्षःस्थल वाले (श्रीकृष्ण) अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से पूर्ण, विविध प्रकार के पुष्पों से सुशोभित, ऋषियों के आश्रम से युक्त, वेदघोष से गुञ्जित, सिंह, भालू, शरभ, व्याघ्र और हाथियों से पूर्ण, स्वच्छ सुस्वादु जल वाले सरोवर से शोभित, अनेक प्रकार के उद्यानों, सुन्दर देवमन्दिरों, ऋषियों, ऋषिपुत्रों, महामुनिगणों (से युक्त), वेदों का अध्ययन करने वाले तथा अग्निहोत्रियों से सेवित, नासिका के अग्रभाग में नेत्र स्थिर कर ध्यान में निरत योगियों से युक्त, सभी प्रकार से पवित्र, तत्त्वदर्शी ज्ञानियों से सेवित, चारों ओर नदियों से घिरे हुए, ब्रह्मवादी जप करने वाले तथा ईश्वर की आराधना में रत पवित्र तपस्वियों से सेवित, प्रशान्त एवं सत्यसङ्कल्प वाले, शोक-रहित तथा उपद्रवशून्य, समस्त अङ्ग में भस्म धारण करने वाले, रुद्र के मन्त्रों का जप करने वाले, पवित्र मुण्डित तथा जटा-धारण करने वाले एवं अन्य अनेक शिखा और जटा धारणकरने वाले ब्रह्मचारी ज्ञानी तपस्वियों से नित्य सेवित आश्रम में पहुँचे। (४-११)

वहाँ उस सिद्धों के आश्रमों से सुशोभित दिव्य आश्रम में नित्य पापनाशिनी भगवती गङ्गा प्रवाहित होती थीं।

स तानन्विष्य विश्वात्मा तापसान् वीतकल्मषान् ।
प्रणामेनाथ वचसा पूजयामास माधवः ॥१३
तं ते दृष्ट्वा जगद्योनिं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं गुरुम् ॥१४
स्तुवन्ति वैदिकैर्मन्त्रैः कृत्वा हृदि सनातनम् ।
प्रोचुरन्योन्यमव्यक्तमादिदेवं महामुनिम् ॥१५
अयं स भगवानेकः साक्षान्नारायणः परः ।
आगच्छत्यधुना देवः पुराणपुरुषः स्वयम् ॥१६
अयमेवाव्ययः स्रष्टा संहर्त्ता चैव रक्षकः ।
अमूर्त्तो मूर्तिमान् भूत्वा मुनीन् द्रष्टुमिहागतः ॥१७
एष धाता विधाता च समागच्छति सर्वगः ।
अनादिरक्षयोऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः ॥१८
श्रुत्वा श्रुत्वा हरिस्तेषां वचांसि वचनातिगः ।
ययौ स तूर्णं गोविन्दः स्थानं तस्य महात्मनः ॥१९
उपस्पृश्याथ भावेन तीर्थे तीर्थे स यादवः ।
चकार देवकीसूनुर्देवर्षिपितृतर्पणम् ॥२०
नदीनां तीरसंस्थानि स्थापितानि मुनीश्वरैः ।
लिङ्गानि पूजयामास शंभोरमिततेजसः ॥२१
दृष्ट्वा दृष्ट्वा समायान्तं यत्र यत्र जनार्दनम् ।
पूजयाञ्चक्रिरे पुष्पैरक्षतैस्तत्र वासिनः ॥२२
समीक्ष्य वासुदेवं तं शार्ङ्गशङ्खासिधारिणम् ।
तस्थिरे निश्चलाः सर्वे शुभाङ्गं तन्निवासिनः ॥२३
यानि तत्रारुरुक्षूणां मानसानि जनार्दनम् ।
दृष्ट्वा समाहितान्यासन् निष्क्रामन्ति पुरा हरिम् ॥२४
अथावगाह्य गङ्गायां कृत्वा देवादितर्पणम् ।
आदाय पुष्पवर्याणि मुनीन्द्रस्याविशद् गृहम् ॥२५
दृष्ट्वा तं योगिनां श्रेष्ठं भस्मोद्धूलितविग्रहम् ।
जटाचीरधरं शान्तं ननाम शिरसा मुनिम् ॥२६
आलोक्य कृष्णमायान्तं पूजयामास तत्त्ववित् ।
आसने चासयामास योगिनां प्रथमातिथिम् ॥२७

उन विश्वात्मा माधव ने उन निष्पाप तपस्वियों को प्राप्त कर प्रणाम और वचन द्वारा उनकी पूजा की। (१२,१३)

उन लोगों ने जगत् के मूलकारण, शङ्ख, चक्र और गदाधारण करने वाले उन योगियों के परम गुरु (श्रीकृष्ण) को देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया एवं आदिदेव स्वरूप अव्यक्त महामुनि सनातन (देव) का हृदय में ध्यान कर वैदिक मन्त्रों से स्तुति करने और परस्पर कहने लगे। (१४, १५)

ये अद्वितीय सर्वश्रेष्ठ साक्षात् भगवान् नारायण हैं। आज स्वयं प्रधान पुरुष देव आ रहे हैं। ये अव्यय ही सृष्टि, प्रलय और पालन करते हैं। मूर्त्तिरहित (देव) मूर्त्तिमान् होकर मुनियों को देखने के लिये यहाँ आये हैं। ये सर्वव्यापी धाता और विधाता आ रहे हैं। ये अनादि अक्षय अनन्त महाभूत और महेश्वर हैं। (१६-१८)

वाणी से परे रहने वाले हरि ने उनके वचनों को सुना और वे गोविन्द शीघ्र उन महात्मा के स्थान पर गये। (१९)

उन यादव देवकी पुत्र (श्रीकृष्ण) ने प्रत्येक तीर्थ में श्रद्धापूर्वक आचमन कर देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण किया और श्रेष्ठ मुनियों द्वारा नदियों के तीर पर प्रतिस्थापित अमित तेजस्वी शम्भु के लिङ्गों का पूजन किया। (२०, २१)

दर्शन करते हुए जनार्दन जहाँ-जहाँ गए वहाँ के निवासियों ने पुष्पों और अक्षतों से उनकी पूजा की। (२२)

शार्ङ्ग धनुष, शङ्ख और असि धारण किये हुए सुन्दर अङ्गों वाले उन वासुदेव को देखकर वे सभी (मुनि) निश्चल हो गए। (२३)

वहाँ (योग की उच्च भूमिका में) आरोहण करने को इच्छुक जिन लोगों के मन समाधिस्थ थे अपने सम्मुख जनार्दन हरि को देखकर वे वहिर्मुख हो गए। (२४)

तदनन्तर गङ्गा में स्नान करने के उपरान्त (श्रीकृष्ण ने) देवता और ऋषियों का तर्पण किया तथा श्रेष्ठ पुष्पों को लेकर श्रेष्ठ मुनि के गृह में प्रवेश किया। (२५)

शरीर में भस्म लगाये जटाचीरधारी शान्त योगि-श्रेष्ठ मुनि को देखकर (श्रीकृष्ण ने) शिर झुकाकर प्रणाम किया। (२६)

कृष्ण को आते देखकर तत्त्वज मुनि ने उनकी पूजा

उवाच वचसां योनिं जानीमः परमं पदम् ।
विष्णुमव्यक्तसंस्थानं शिष्यभावेन संस्थितम् ।।२८
स्वागतं ते हृषीकेश सफलानि तपांसि नः ।
यत् साक्षादेव विश्वात्मा मद्गेहं विष्णुरागतः ।।२९
त्वां न पश्यन्ति मुनयो यतन्तोऽपि हि योगिनः ।
तादृशस्याथ भवतः किमागमनकारणम् ।।३०
श्रुत्वोपमन्योस्तद् वाक्यं भगवान् केशिमर्दनः ।
व्याजहार महायोगी वचनं प्रणिपत्य तम् ।।३१

श्रीकृष्ण उवाच ।

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि गिरीशं कृत्तिवाससम् ।
संप्राप्तो भवतः स्थानं भगवद्दर्शनोत्सुकः ।।३२
कथं स भगवानीशो दृश्यो योगविदां वरः ।
मयाऽचिरेण कुत्राहं द्रक्ष्यामि तमुमापतिम् ।।३३

इत्याह भगवानुक्तो दृश्यते परमेश्वरः ।
भक्त्या चोग्रेण तपसा तत्कुरुष्वेह यत्नतः ।।३४
इहेश्वरं देवदेवं मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः ।
ध्यायन्तोऽत्रासते देवं जापिनस्तापसाश्च ये ।।३५
इह देवः सपत्नीको भगवान् वृषभध्वजः ।
क्रीडते विविधैर्भूतैर्योगिभिः परिवारितः ।।३६
इहाश्रमे पुरा रुद्रात् तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
लेभे महेश्वराद् योगं वसिष्ठो भगवानृषिः ।।३७
इहैव भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
दृष्ट्वा तं परमं ज्ञानं लब्धवानीश्वरेश्वरम् ।।३८
इहाश्रमवरे रम्ये तपस्तप्त्वा कपर्दिनः ।
अविन्दत् पुत्रकान् रुद्रात् सुरभिर्भक्तिसंयुता ।।३९
इहैव देवताः पूर्वं कालाद् भीता महेश्वरम् ।
दृष्टवन्तो हरं श्रीमन्निर्भया निर्वृतिं ययुः ।।४०

की एवं योगियों के प्रमुख अतिथि को आसन पर विठाया । (२७)

(मुनि ने) कहा—मैं जानता हूँ कि वाणी के मूलकारण, परम पदस्वरूप, अव्यक्त शरीर वाले विष्णु शिष्य के रूप में स्थित हुए हैं । (२८)

हे हृपीकेश ! आपका स्वागत है । हम सभी की तपस्यायें सफल हो गयीं क्योंकि साक्षात् विश्वात्मा विष्णु मेरे गृह में आये हैं । (२९)

यत्न करने वाले भी योगी एवं मुनि भी आपको नहीं देख पाते । ऐसे आपके यहाँ आने का क्या कारण है ? (३०)

उपमन्यु के उस वचन को सुनकर केशि-विनाशक महायोगी भगवान् (श्रीकृष्ण ने) उन मुनि को प्रणाम कर कहा । (३१)

श्रीकृष्ण ने कहा—

"हे भगवन् ! मै चर्माम्वरधारी गिरीश (शंकर) का दर्शन करना चाहता हूँ । भगवान् के दर्शन के लिये उत्सुक मैं आपके स्थान पर आया हूँ । मैं योगियों में श्रेष्ठ उन भगवान् ईश को शीघ्र कैसे देख पाऊँगा एवं वे उमापति मुझे कहाँ दिखलायी पड़ेगें । (३२-३३)

ऐसा कहे जाने पर भगवान् (उपमन्यु) ने कहा कि भक्ति और उग्र तपस्या से परमेश्वर दिखलायी पड़ते हैं । अतएव उसे यत्नपूर्वक करो । (३४)

ब्रह्मवादी श्रेष्ठ मुनि, जपकर्ता एवं तपस्वी लोग यहाँ इन देवाधि देव ईश्वर का ध्यान करते हुए स्थित हैं । (३५)

पत्नी-सहित भगवान् वृषभध्वज देव यहाँ अनेक प्रकार के भूतों एवं योगियों से घिरे हुए कीडा करते हैं । (३६)

इस आश्रम में भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने प्राचीन काल में अत्यन्त कठोर तप से आराधना कर रुद्र महेश्वर से योग प्राप्त किया था । (३७)

यहाँ ही प्रभु भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास ने उन ईश्वरेश्वर का दर्शन कर परम ज्ञान प्राप्त किया था । (३८)

इस रमणीक श्रेष्ठ आश्रम में सुरभि ने भक्ति पूर्वक तप करके जटाधारी रुद्र से पुत्रों को प्राप्त किया था । (३९)

यहीं पूर्व काल में काल से डरे देवों ने श्रीमान् हर (महादेव) का दर्शन कर निर्भयतापूर्वक शान्ति प्राप्त किया था (४०)

इहाराध्य महादेवं सावर्णिस्तपतां वरः ।
लब्धवान् परमं योगं ग्रन्थकारत्वमुत्तमम् ।।४१
प्रवर्तयामास शुभां कृत्वा वै संहितां द्विजः ।
पौराणिकीं सुपुण्यार्थां सच्छिष्येषु द्विजातिषु ।।४२
इहैव संहितां दृष्ट्वा कापेयः शांशपायनः ।
महादेवं चकारेमां पौराणीं तन्नियोगतः ।
द्वादशैव सहस्राणि श्लोकानां पुरुषोत्तम ।।४३
इह प्रवर्तिता पुण्या द्व्यष्टसाहस्रिकोत्तरा ।
वायवीयोत्तरं नाम पुराणं वेदसंमितम् ।
इहैव ख्यापितं शिष्यैः शांशपायनभाषितम् ।।४४
याज्ञवल्क्यो महायोगी दृष्ट्वाऽत्र तपसा हरम् ।
चकार तन्नियोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम् ।।४५
इहैव भृगुणा पूर्वं तप्त्वा वै परमं तपः ।
शुक्रो महेश्वरात् पुत्रो लब्धो योगविदां वरः ।।४६
तस्मादिहैव देवेशं तपस्तप्त्वा महेश्वरम् ।
द्रष्टुमर्हसि विश्वेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम् ।।४७
एवमुक्त्वा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनिः ।
व्रतं पाशुपतं योगं कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे ।।४८
स तेन मुनिवर्येण व्याहृतो मधुसूदनः ।
तत्रैव तपसा देवं रुद्रमाराधयत् प्रभुः ।।४९
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो मुण्डो वल्कलसंयुतः ।
जजाप रुद्रमनिशं शिवैकाहितमानसः ।।५०
ततो बहुतिथे काले सोमः सोमार्धभूषणः ।
अदृश्यत महादेवो व्योम्नि देव्या महेश्वरः ।।५१
किरीटिनं गदिनं चित्रमालं
पिनाकिनं शूलिनं देवदेवम् ।
शार्दूलचर्माम्बरसंवृताङ्गं
देव्या महादेवमसौ ददर्श ।।५२
परश्वधासक्तकरं त्रिनेत्रं
नृसिंहचर्मावृतसर्वगात्रम् ।

तपस्वियों में श्रेष्ठ द्विज सावर्णि ने यहाँ महादेव की आराधना कर श्रेष्ठ योग और उत्तम ग्रन्थकारत्व प्राप्त किया तथा शुभ तथा पवित्र पौराणिक संहिता का निर्माण कर उसे शोभन द्विजाति-शिष्यों में प्रवर्त्तित किया। (४१,४२)

हे पुरुषोत्तम ! कापेय शांशपायन ने इसी स्थान पर महादेव का दर्शन प्राप्त कर उनकी आज्ञा से बारह सहस्र श्लोकों की इस पौराणिकी संहिता का निर्माण किया। यहीं पर पुण्यमयी सोलह सहस्र श्लोकों की उत्तर भाग वाली संहिता प्रवर्त्तित हुई थी उस वेद सम्मत पुराण को वायवीयोत्तर पुराण कहते हैं। यहीं पर शांशपायन की कही हुई पवित्र पुराण संहिता का प्रचार शिष्यों ने किया था। (४३, ४४)

महायोगी याज्ञवल्क्य ने यहाँ तपस्या द्वारा शंकर का दर्शन कर उनकी आज्ञा से उत्तम योगशास्त्र का निर्माण किया। (४५)

यहाँ ही पूर्व समय में भृगु ने अपूर्व महान् तप करके महेश्वर से योगियों में श्रेष्ठ शुक्र को पुत्र रूप से प्राप्त कया। (४६)

अतएव यहीं पर अत्यन्त कठोर तप कर भयङ्कर उग्र जटाधारी देवेश विश्वेश महेश्वर का दर्शन करें। (४७)

ऐसा कहकर महामुनि उपमन्यु ने सुन्दर कर्म करने वाले कृष्ण को पशुपति सम्बन्धी योग, व्रत और ज्ञान का उपदेश दिया। (४८)

उन श्रेष्ठ मुनि के कहने पर प्रभु श्रीकृष्ण वहीं पर तप द्वारा रुद्रदेव की आराधना करने लगे। (४९)

मुण्डित शिर, वल्कलधारी तथा समस्त अङ्ग में विभूति लगाए हुए वे एकमात्र शिव में मन लगाकर निरन्तर रुद्र सम्बन्धी मन्त्र का जप करने लगे। (५०)

तदनन्तर बहुत दिनों के उपरान्त अर्द्धचन्द्र से अलंकृत सौम्यस्वरूप महेश्वर (महादेव) देवी (पार्वती) के साथ आकाश में दिखलायी पड़े। (५१)

उन (श्रीकृष्ण) ने किरीट, गदा, पिनाक, त्रिशूल एवं अनेक वर्ण की माला धारण करने वाले तथा सिंह के चर्म रूपी वस्त्र से समस्त अङ्ग आच्छादित किये हुए देवाधिदेव महादेव को देवी (पार्वती) के साथ देखा। (५२)

(श्रीकृष्ण ने) हाथ में परशु धारण किये, नृसिंह के चर्म से आच्छादित शरीर वाले, प्रणव

समुद्गिरन्तं प्रणवं बृहन्तं
सहस्रसूर्यप्रतिमं ददर्श ॥५३

प्रभुं पुराणं पुरुषं पुरस्तात्
सनातनं योगिनमीशितारम् ।
अणोरणीयांसमनन्तशक्तिं
प्राणेश्वरं शंभुमसौ ददर्श ॥५४

न यस्य देवा न पितामहोऽपि
नेन्द्रो न चाग्निर्वरुणो न मृत्युः ।
प्रभावमस्याापि वदन्ति रुद्रं
तमादिदेवं पुरतो ददर्श ॥५५

तदान्वपश्यद् गिरिशस्य वामे
स्वात्मानमव्यक्तमनन्तरूपम् ।
स्तुवन्तमीशं बहुभिर्वचोभिः
शङ्खासिचक्रार्पितहस्तमाद्यम् ॥५६

कृताञ्जलिं दक्षिणतः सुरेशं
हंसाधिरूढं पुरुषं ददर्श ।
स्तुवानमीशस्य परं प्रभावं
पितामहं लोकगुरुं दिविस्थम् ॥५७

गणेश्वरानर्कसहस्रकल्पान्
नन्दीश्वरादीनमितप्रभावान् ।
त्रिलोकभर्त्तुः पुरतोऽन्वपश्यत्
कुमारमग्निप्रतिमं सशाखम् ॥५८

मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यं
प्रचेतसं दक्षमथापि कण्वम् ।
पराशरं तत्परतो वसिष्ठं
स्वायंभुवं चापि मनुं ददर्श ॥५९

तुष्टाव मन्त्रैरमरप्रधानं
बद्धाञ्जलिर्विष्णुरुदारबुद्धिः ।
प्रणम्य देव्या गिरिशं सभक्त्या
स्वात्मन्यथात्मानमसौ विचिन्त्य ॥६०

श्रीकृष्ण उवाच ।

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति ।
तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च
त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः ॥६१

का उच्चारण कर रहे सहस्र सूर्यों के तुल्य श्रेष्ठ त्रिलोचन का दर्शन किया । (५३)

उन्होंने अपने सम्मुख पुराण प्रभु पुरुष सनातन, ईश्वर, योगी, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अनन्तशक्ति प्राणेश्वर शम्भु को देखा । (५४)

देवता, पितामह, इन्द्र, अग्नि, वरुण एवं यमराज भी आज तक जिसका प्रभाव नहीं बताते उन्हीं आदिदेव रुद्र को (श्रीकृष्ण ने अपने) सम्मुख देखा । (५५)

उस समय उन्होंने शंकर के वाम भाग में हाथों में शंख, असि एवं चक्र धारण किये अव्यक्त अनन्त रूप अपने (विष्णु) को (बहुत से वचनों द्वारा) ईश की स्तुति करते हुए देखा । (५६)

उनके दक्षिण भाग में (उन्होंने) हंसारूढ़, देवताओं के स्वामी, अत्यन्त प्रभावयुक्त, लोक गुरु, आकाशस्थ पुरुष पितामह को हाथ जोड़े हुए शंकर की स्तुति करते देखा । (५७)

उन तीनों लोकों के स्वामी के सम्मुख (उन्होंने) सहस्रों सूर्य—तुल्य तथा अमित प्रभा वाले नन्दीश्वरों, गणपतियों आदि, अग्नि तुल्य कार्त्तिक और शाख को देखा । (५८)

उनके पीछे की ओर (श्रीकृष्ण ने) मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, दक्ष, कण्व, पराशर, वसिष्ठ और स्वायंभुव मनु को देखा । (५९)

उन उदार बुद्धि विष्णु (श्रीकृष्ण) ने भक्ति-पूर्वक अञ्जलिबद्ध प्रणाम करने के उपरान्त अपने हृदय में आत्मस्वरूप का ध्यान कर देवी (पार्वती) सहित देवताओं में श्रेष्ठ शंकर की मन्त्रों से स्तुति की । (६०)

श्रीकृष्ण ने कहा—

हे शाश्वत ! हे सर्वयोनि ! आपको नमस्कार है । ऋषि आपको ब्रह्माधिप बतलाते हैं, सन्तजन सत्त्व, रज एवं तम स्वरूप तीनों गुण एवं सर्व स्वरूप आपको ही बतलाते हैं । (६१)

त्वं ब्रह्मा हरिरथ विश्वयोनिरग्निः
संहर्त्ता दिनकरमण्डलाधिवासः ।
प्राणस्त्वं हुतवहवासवादिभेद-
स्त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम् ।।६२
सांख्यास्त्वां विगुणमथाहुरेकरूपं
योगास्त्वां सततमुपासते हृदिस्थम् ।
वेदास्त्वामभिदधतीह रुद्रमग्निं
त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम् ।।६३
त्वत्पादे कुसुमसथापि पत्रमेकं
दत्त्वासौ भवति विमुक्तविश्वबन्धः ।
सर्वाघं प्रणुदति सिद्धयोगिजुष्टं
स्मृत्वा ते पदयुगलं भवत्प्रसादात् ।।६४
यस्याशेषविभागहीनममलं हृद्यन्तरावस्थितं
तत्त्वं ज्योतिरनन्तमेकमचलं सत्यं परं सर्वगम् ।
स्थानं प्राहुरनादिमध्यनिधनं यस्मादिदं जायते
नित्यं त्वामहमुपैमि सत्यविभवं विश्वेश्वरं तं शिवम् ।।६५

आप ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, विश्वकर्त्ता, संहारक, सूर्यमण्डल में निवास करने वाले, प्राण, अग्नि एवं इन्द्रादि देव स्वरूप हैं। मैं एकमात्र समर्थ देव आपकी शरण में आया हूँ। (६२)

सांख्यशास्त्रज्ञ आपको गुण रहित कहते हैं एवं योगशास्त्र वाले हृदय में स्थित सदा आपकी सतत उपासना करते रहते हैं। सभी वेद आपको अग्नि रुद्र कहते हैं। मैं एक मात्र समर्थ देव आपकी शरण में आया हूँ। (६३)

आपके चरणों में एक भी पुष्प अथवा पत्र चढ़ाकर मनुष्य संसार के बन्धन से विमुक्त हो जाता है। सिद्धों और योगियों से सेवित आपके चरण कमल का स्मरण कर मनुष्य आपकी कृपा से सभी पापों को दूर कर देता है। (६४)

तत्त्वदर्शी लोग आपको सभी प्रकार के विभाग से रहित, अमल, हृदय प्रदेश में स्थित, ज्योति, अनन्त, अचल, सत्य सर्वोत्कृष्ट, सर्वव्यापी, आदि, मध्य और अन्तरहित स्थान स्वरूप कहते हैं। यह (चराचर विश्व) जिससे उत्पन्न होता है ऐसे आप सत्यविभव नित्य स्वरूप विश्वेश्वर शिव की मैं शरण में आया हूँ। (६५)

ॐ नमो नीलकण्ठाय त्रिनेत्राय च रंहसे ।
महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः ।।६६
नमः पिनाकिने तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने ।
नमस्ते वज्रहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने ।।६७
नमो भैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे ।
नागयज्ञोपवीताय नमस्ते वह्निरेतसे ।।६८
नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः ।
नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमो नमः ।।६९
नमस्ते कामनाशाय नमः कालप्रमाथिने ।
नमो भैरववेषाय हराय च निषङ्गिणे ।।७०
नमोऽस्तु ते त्र्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवाससे ।
नमोऽम्बिकाधिपतये पशूनां पतये नमः ।।७१
नमस्ते व्योमरूपाय व्योमाधिपतये नमः ।
नरनारीशरीराय सांख्ययोगप्रवर्त्तिने ।।७२

नीलकण्ठ, त्रिलोचन एवं रंहस् अर्थात् शक्ति स्वरूप आपको नमस्कार है। आप नित्य ईशान महादेव को वारंवार नमस्कार है। (६६)

पिनाक, मुण्ड एवं दण्डधारी आपको नमस्कार है। वज्रहस्त, दिगम्बर एवं जटाजूटधारी आपको नमस्कार है। (६७)

भयङ्कर नाद करने वाले, कालस्वरूप, दंष्ट्रावाले को नमस्कार है। नागों का यज्ञोपवीत धारण करने वाले एवं अग्निस्वरूप वीर्य वाले आपको नमस्कार है। (६८)

आप गिरीश को नमस्कार है। स्वाहाकार स्वरूप आपको नमस्कार है। मुक्त अट्टहास करने वाले को नमस्कार है। भीमस्वरूप को वारंवार नमस्कार है। (६९)

काम का विनाश करने वाले तथा काल को अत्यन्त मथने वाले को नमस्कार। भयङ्कर वेप वाले निपङ्गधारी हर को नमस्कार है। (७०)

आप त्रिलोचन एवं गजचर्मधारी को नमस्कार है। अम्बिका अर्थात् पार्वती के स्वामी पशुपति को नमस्कार है। (७१)

व्योमस्वरूप एवं व्योमाधिपति को नमस्कार है। नर और नारी युक्त शरीर वाले तथा साङ्ख्य और योग के

नमो देवतनाथाय देवानुगतलिङ्गिने ।
कुमारगुरवे तुभ्यं देवदेवाय ते नमः ॥७३
नमो यज्ञाधिपतये नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नमः ॥७४
नमो हंसाय विश्वाय मोहनाय नमो नमः ।
योगिने योगगम्याय योगमायाय ते नमः ॥७५
नमस्ते प्राणपालाय घण्टानादप्रियाय च ।
कपालिने नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥७६
नमो नमो नमस्तुभ्यं भूय एव नमो नमः ।
मह्यं सर्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वर ॥७७
एवं हि भक्त्या देवेशमभिष्टूय स माधवः ।
पपात पादयोर्विप्रा देवदेव्योः स दण्डवत् ॥७८
उत्थाप्य भगवान् सोमः कृष्णं केशिनिषूदनम् ।
बभाषे मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरनिःस्वनः ॥७९

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष तपस्तप्तं त्वयाऽव्यय ।
त्वमेव दाता सर्वेषां कामानां कामिनामिह ॥८०
त्वं हि सा परमा मूर्तिर्मम नारायणाह्वया ।
नानवाप्तं त्वया तात विद्यते पुरुषोत्तम ॥८१
वेत्थ नारायणानन्तमात्मानं परमेश्वरम् ।
महादेवं महायोगं स्वेन योगेन केशव ॥८२
श्रुत्वा तद्वचनं कृष्णः प्रहसन् वै वृषध्वजम् ।
उवाच वीक्ष्य विश्वेशं देवीं च हिमशैलजाम् ॥८३
ज्ञातं हि भवता सर्वं स्वेन योगेन शंकर ।
इच्छाम्यात्मसमं पुत्रं त्वद्भक्तं देहि शंकर ॥८४
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा प्रहृष्टमनसा हरः ।
देवीमालोक्य गिरिजां केशवं परिषस्वजे ॥८५
ततः सा जगतां माता शंकरार्द्धशरीरिणी ।
व्याजहार हृषीकेशं देवी हिमगिरीन्द्रजा ॥८६

प्रवर्तक को नमस्कार है। (७२)

देवों के स्वामी तथा देवों से आराध्य लिङ्ग वाले आपको नमस्कार है। कुमार गुरु अर्थात् कार्त्तिकेय के पिता देवाधिदेव आपको वारंवार नमस्कार है। (७३)

यज्ञाधिपति को नमस्कार है। ब्रह्मचारी को नमस्कार है। महान् मृगव्याध को नमस्कार है। ब्रह्माधिपति को नमस्कार है। (७४)

हंस, विश्व और मोहन को वारंवार नमस्कार है। योगगम्य एवं योगमाया स्वरूप योगी को नमस्कार है। (७५)

प्राणों के पालक तथा घण्टानादप्रिय को नमस्कार है। कपाली तथा ज्योतियों (नक्षत्रों) के पति आप को नमस्कार है। (७६)

आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आपको पुनः पुनः मेरा नमस्कार है। हे परमेश्वर! आप मुझे समस्त रूप से अभीष्टों को प्रदान करें। (७७)

हे विप्रो! इस प्रकार भक्ति-पूर्वक देवेश की स्तुति कर वे माधव देव और देवी अर्थात् महादेव और पार्वती के चरणों में दण्डवत् गिर पड़े। (७८)

केशिनिषूदन कृष्ण को उठाकर मेघ तुल्य गम्भीर ध्वनि वाले शंकर ने मधुर वचन कहा। (७९)

हे पुण्डरीकाक्ष! हे अव्यय! आपने तप क्यों किया? आप ही इस लोक में सभी इच्छुकों को अभीष्ट प्रदान करने वाले हैं। (८०)

आप नारायण नामक मेरी उत्कृष्ट मूर्त्ति हैं। हे पुरुषोत्तम! आपसे अप्राप्त कुछ नहीं है। (८१)

हे केशव! अपने योग द्वारा आप अपने को अनन्त नारायण नामक परमेश्वर स्वरूप महादेव एवं महायोगी जानो। (८२)

उनका वचन सुनने के उपरान्त विश्वेश एवं हिमालय पुत्री देवी पार्वती की ओर देखकर श्रीकृष्ण ने हँसते हुए वृषध्वज से कहा— (८३)

हे शंकर! अपने योग द्वारा आप सभी कुछ जानते हैं। मैं अपने सदृश आपका भक्त पुत्र चाहता हूँ। हे शंकर! आप मुझे प्रदान करें। (८४)

विश्वात्मा हर ने प्रसन्न मन से कहा 'ऐसा ही हो'। तदुपरान्त गिरिजा देवी को देखकर उन्होंने केशव का आलिङ्गन किया। (८५)

तदनन्तर शंकर के आधे शरीर में स्थित जगत् की माता पर्वतराज हिमालय की पुत्री देवी (पार्वती) ने हृषीकेश से कहा— (८६)

वत्स जाने तवानन्तां निश्चलां सर्वदाच्युत ।
अनन्यामीश्वरे भक्तिमात्मन्यपि च केशव ॥८७
त्वं हि नारायणः साक्षात् सर्वात्मा पुरुषोत्तमः ।
प्रार्थितो दैवतैः पूर्वं संजातो देवकीसुतः ॥८८
पश्य त्वमात्मनात्मानमात्मीयममलं पदम् ।
नावयोर्विद्यते भेद एकं पश्यन्ति सूरयः ॥८९
इमानिमान् वरानिष्टान् मत्तो गृह्णीष्व केशव ।
सर्वज्ञत्वं तथैश्वर्यं ज्ञानं तत् पारमेश्वरम् ।
ईश्वरे निश्चलां भक्तिमात्मन्यपि परं बलम् ॥९०
एवमुक्तस्तया कृष्णो महादेव्या जनार्दनः ।
आशिषं शिरसागृह्णाद् देवोऽप्याह महेश्वरः ॥९१
प्रगृह्य कृष्णं भगवानथेशः
करेण देव्या सह देवदेवः ।
संपूज्यमानो मुनिभिः सुरेशै-
र्जगाम कैलासगिरिं गिरीशः ॥९२

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

२५

सूत उवाच ।
प्रविश्य मेरुशिखरं कैलासं कनकप्रभम् ।
रराम भगवान् सोमः केशवेन महेश्वरः ॥१
अपश्यंस्तं महात्मानं कैलासगिरिवासिनः ।
पूजयाञ्चक्रिरे कृष्णं देवदेवमथाच्युतम् ॥२
चतुर्बाहुमुदाराङ्गं कालमेघसमप्रभम् ।
किरीटिनं शार्ङ्गपाणिं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥३

हे अच्युत केशव ! मैं ईश्वर (अर्थात् हमारे पति शिव) और मुझमें सर्वदा स्थिर रहने वाली आपकी अनन्त तथा अनन्य निश्चल भक्ति को जानती हूँ। (८७)

आप साक्षात् सर्वात्मा नारायण पुरुषोत्तम हैं। पूर्व काल में देवों के प्रार्थना करने पर देवकी के पुत्र रूप से आप उत्पन्न हुए हैं। (८८)

अव आप स्वयं द्वारा अपने को तथा अपने स्वच्छ स्वरूप को देखें। हम दोनों में कोई भेद नहीं हैं। तत्त्वदर्शी लोग (हम दोनों को) एक रूप से देखते हैं। (८९)

हे केशव ! मुझसे अभीष्ट इन वरों को ग्रहण करो। तुम्हें सर्वज्ञता, ऐश्वर्य, परमेश्वर सम्वन्धी ज्ञान, ईश्वर अर्थात् शिव में निश्चल भक्ति तथा स्वयं में श्रेष्ठ वल की सिद्धि हो। उन महादेवी ने जनार्दन कृष्ण से इस प्रकार से कहा। कृष्ण ने (पार्वती देवी के) आदेश को शिरोधार्य किया एवं देव (शंकर) ने भी ईश्वर (कृष्ण को) आशीर्वाद दिया। (९०,९१)

तदनन्तर देवों एवं मुनियों से पूजित होते हुए देवाधिदेव गिरीश भगवान् शंकर कृष्ण को हाथ से पकड़कर देवी-सहित कैलास पर्वत पर चले गये। (९२)

छः सहस्त्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में चौवीसवाँ अध्याय समाप्त—२४.

२५

सूत ने कहा—
महेश्वर भगवान् शंकर मेरु शिखर के स्वर्णिम कैलास पर्वत पर पहुँचकर केशव के साथ विहार करने लगे। (१)

कैलास पर्वत पर रहने वालों ने उन महात्मा को देखा और चतुर्भुज, प्रशस्त शरीर वाले, प्रलयकालीन मेघ के तुल्य प्रभाववाले, किरीटधारी, शार्ङ्गपाणि, श्रीवत्स से सुशोभित वक्षःस्थल वाले, दीर्घवाहु, विशाल नेत्र, पीताम्वरधारी, वक्षःस्थल पर उत्तम वैजयन्तीमाला धारण करने वाले, शोभा से सुशोभित, अतिकोमल,

दीर्घबाहुं विशालाक्षं पीतवाससमच्युतम् ।
दधानमुरसा मालां वैजयन्तीमनुत्तमाम् ।।४
भ्राजमानं श्रिया दिव्यं युवानमतिकोमलम् ।
पद्माङ्घ्रिनयनं चारु सुस्मितं सुगतिप्रदम् ।।५
कदाचित् तत्र लीलार्थं देवकीनन्दवर्द्धनः ।
भ्राजमानः श्रिया कृष्णश्चचार गिरिकन्दरे ।।६
गन्धर्वाप्सरसां मुख्या नागकन्याश्च कृत्स्नशः ।
सिद्धा यक्षाश्च गन्धर्वास्तत्र तत्र जगन्मयम् ।।७
दृष्ट्वाश्चर्यं परं गत्वा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि महात्मनः ।।८
गन्धर्वकन्यका दिव्यास्तद्वदप्सरसां वराः ।
दृष्ट्वा चकमिरे कृष्णं स्रस्तवस्त्रविभूषणाः ।।९
काश्चिद् गायन्ति विविधां गीतिं गीतविशारदाः ।
संप्रेक्ष्य देवकीसूनुं सुन्दर्यः काममोहिताः ।।१०
काश्चिद्विलासबहुला नृत्यन्ति स्म तदग्रतः ।
संप्रेक्ष्य संस्थिताः काश्चित् पपुस्तद्वदनामृतम् ।।११
काश्चिद् भूषणवर्याणि स्वाङ्गादादाय सादरम् ।
भूषयाञ्चक्रिरे कृष्णं कामिन्यो लोकभूषणम् ।।१२
काश्चिद् भूषणवर्याणि समादाय तदङ्गतः ।
स्वात्मानं भूषयामासुः स्वात्मगैरपि माधवम् ।।१३
काश्चिदागत्य कृष्णस्य समीपं काममोहिताः ।
चुचुम्बुर्वदनाम्भोजं हरेर्मुग्धमृगेक्षणाः ।।१४
प्रगृह्य काश्चिद् गोविन्दं करेण भवनं स्वकम् ।
प्रापयामासुर्लोकादिं मायया तस्य मोहिताः ।।१५
तासां स भगवान् कृष्णः कामान् कमललोचनः ।
बहूनि कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया ।।१६
एवं वै सुचिरं कालं देवदेवपुरे हरिः ।
रेमे नारायणः श्रीमान् मायया मोहयञ्जगत् ।।१७
गते बहुतिथे काले द्वारवत्यां निवासिनः ।
बभूवुर्विह्वला भीता गोविन्दविरहे जनाः ।।१८

युवावस्था वाले, कमल-तुल्य चरण एवं हाथों वाले सुन्दर हास्ययुक्त, सुन्दर गतिप्रदाता, देवाधिदेव अच्युत कृष्ण का पूजन किया। (२-५)

एक समय शोभा से प्रकाशित हो रहे देवकी-नन्दन कृष्ण लीला हेतु गिरि गुहा में विचरण करने लगे। (६)

सभी प्रमुख गन्धर्व, अप्सरा, नाग-कन्या, सिद्ध, यक्ष और देवता लोग उन जगन्मय को देखकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित उन सभी के नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो गए एवं उन लोगों ने उन महात्मा के मस्तक पर पुष्प की वर्षा की। (७,८)

गन्धर्वो की पवित्र आभूषणधारी दिव्य कन्यायें तथा श्रेष्ठ अप्सरायें कृष्ण को देखकर अस्तव्यस्त वस्त्राभूषण वाली होकर उनकी कामना करने लगी। (९)

उनमें कुछ गीत विशारद सुन्दरियाँ (गन्धर्व कन्यायें तथा अप्सरायें) देवकी पुत्र को देखकर काममोहित होकर विविध प्रकार का गान करने लगीं। (१०)

कतिपय अत्यन्त विलासिनी (कन्यायें) उनके समक्ष नृत्य करने लगीं। कुछ हँसते हुए उनकी ओर देखकर उनके वदनामृत का पान करने लगीं। (११)

कुछ कन्यायें अपनी शरीर से आभूषण उतारकर आदर पूर्वक लोक-विभूषण कृष्ण को अलंकृत करने लगीं। (१२)

कुछ (अन्य) उनके अङ्गों से श्रेष्ठ भूषणों को लेकर स्वयं को एवं अपने (आभूषणों) से माधव को सजाने लगीं। (१३)

कतिपय काम-मोहित मुग्ध मृग के समान नयन वाली (कन्यायें) हरि कृष्ण के समीप जाकर उनके मुख-कमल का चुम्बन करने लगीं। (१४)

उन (कृष्ण) की माया से मोहित कुछ (अप्सरायें) लोकों के आदि कारण गोविन्द का हाथ पकड़ कर अपने भवन में ले गयीं। (१५)

कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण ने लीलापूर्वक अनेक रूप धारण कर उनके काम की पूर्त्ति की। (१६)

इस प्रकार माया द्वारा जगत् को मोहित करते हुए श्रीमान् नारायण हरि बहुत समय तक देवाधिदेव (शंकर) के पुर में रमण करते रहे। (१७)

बहुत दिन व्यतीत होने पर द्वारकापुरी के रहने वाले लोग गोविन्द के विरह में विकल एवं भयभीत हो गए। (१८)

ततः सुपर्णो बलवान् पूर्वमेव विसर्जितः ।
कृष्णेन मार्गमाणस्तं हिमवन्तं ययौ गिरिम् ॥१९
अदृष्ट्वा तत्र गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम् ।
आजगामोपमन्युं तं पुरीं द्वारवतीं पुनः ॥२०
तदन्तरे महादैत्या राक्षसाश्चातिभीषणाः ।
आजग्मुर्द्वारकां शुभ्रां भीषयन्तः सहस्रशः ॥२१
स तान् सुपर्णो बलवान् कृष्णतुल्यपराक्रमः ।
हत्वा युद्धेन महता रक्षति स्म पुरीं शुभाम् ॥२२
एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः ।
दृष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गतः ॥२३
तं दृष्ट्वा नारदमृषिं सर्वे तत्र निवासिनः ।
प्रोचुर्नारायणो नाथः कुत्रास्ते भगवान् हरिः ॥२४
स तानुवाच भगवान् कैलासशिखरे हरिः ।
रमतेऽद्य महायोगी तं दृष्ट्वाऽहमिहागतः ॥२५
तस्योपश्रुत्य वचनं सुपर्णः पततां वरः ।
जगामाकाशगो विप्राः कैलासं गिरिमुत्तमम् ॥२६

तदनन्तर पहले ही कृष्ण द्वारा छोड़ दिये गए वलवान् गरुड़ खोजते हुए उनको हिमालय पर्वत पर गए । (१९)

वहाँ गोविन्द को न देखकर उन्होंने शिर द्वारा उन उपमन्यु मुनि को प्रणाम किया एवं पुनः द्वारकापुरी को लौट आये । (२०)

इसी वीच अत्यन्त भयङ्कर सहस्रों महादैत्य एवं राक्षस भय उत्पन्न करते हुए सुन्दर द्वारकापुरी में आये । (२१)

कृष्णतुल्य पराक्रमी वलवान् गरुड़ ने भारी युद्ध में उन्हें मारकर सुन्दर पुरी की रक्षा की । (२२)

इसी वीच कैलास के शिखर पर श्रीकृष्ण को देखकर भगवान् नारद ऋषि द्वारकापुरी गए । (२३)

वहाँ के सभी निवासियों ने नारद ऋषि को देखकर पूछा "नारायण नाथ भगवान् हरि कहाँ हैं ?" (२४)

उन्होंने उनसे कहा "इस समय महायोगी भगवान् हरि कैलास के शिखर पर रमण कर रहे हैं। उन्हें देखकर मैं यहाँ आया हूँ । (२५)

हे विप्रो ! उनका वचन सुनकर पक्षिश्रेष्ठ गरुड़ आकाश मार्ग से उत्तम कैलास पर्वत पर गए । (२६)

ददर्श देवकीसूनुं भवने रत्नमण्डिते ।
वरासनस्थं गोविन्दं देवदेवान्तिके हरिम् ॥२७
उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्रीभिः समन्ततः ।
महादेवगणैः सिद्धैर्योगिभिः परिवारितम् ॥२८
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ सुपर्णः शंकरं शिवम् ।
निवेदयामास हरेः प्रवृत्तिं द्वारके पुरे ॥२९
ततः प्रणम्य शिरसा शंकरं नीललोहितम् ।
आजगाम पुरीं कृष्णः सोऽनुज्ञातो हरेण तु ॥३०
आरुह्य कश्यपसुतं स्त्रीगणैरभिपूजितः ।
वचोभिरमृतास्वादैर्मानितो मधुसूदनः ॥३१
वीक्ष्य यान्तममित्रघ्नं गन्धर्वाप्सरसां वराः ।
अन्वगच्छन् महायोगं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥३२
विसर्जयित्वा विश्वात्मा सर्वा एवाङ्गना हरिः ।
ययौ स तूर्णं गोविन्दो दिव्यां द्वारवतीं पुरीम् ॥३३
गते मुररिपौ नैव कामिन्यो मुनिपुंगवाः ।
निशेव चन्द्ररहिता विना तेन चकाशिरे ॥३४

वहाँ उन्होंने रत्न-मण्डित भवन में देवाधिदेव (शंकर) के समीप देवकी-पुत्र गोविन्द को श्रेष्ठ आसन पर बैठे हुए देखा । (२७)

चारों ओर से घेरे हुए देवता, दिव्य स्त्रियाँ, महादेव के गण, सिद्ध एवं योगी लोग उनकी उपासना कर रहे थे । शंकर शिव को पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम कर गरुड़ ने हरि से द्वारिकापुरी का समाचार कहा । (२८, २९)

तदनन्तर शिर द्वारा नीललोहित शंकर को प्रणाम कर शंकर की आज्ञा से कश्यप के पुत्र (गरुड़) पर आरूढ़ होकर स्त्रियों द्वारा पूजित तथा अमृत-तुल्य मधुर वचनों से सत्कृत मधुसूदन श्रीकृष्ण द्वारिकापुरी को चले । (३०,३१)

शत्रुविनाशक शंख चक्र एवं गदा धारण करने वाले महायोगी को जाते देखकर श्रेष्ठ गन्धर्व एवं अप्सरायें उनके पीछे-पीछे चलीं । (३२)

सभी स्त्रियों को विदा कर वे विश्वात्मा गोविन्द हरि शीघ्र दिव्य द्वारवती पुरी को गए । (३३)

हे मुनीश्वरो ! असुर-शत्रु देव के चले जाने पर वे कामिनियाँ उनके विना चन्द्रशून्य रात्रि के सदृश शोभा-रहित हो गयीं । (३४)

श्रुत्वा पौरजनास्तूर्णं कृष्णागमनमुत्तमम् ।
मण्डयाञ्चक्रिरे दिव्यां पुरीं द्वारवतीं शुभाम् ।।३५
पताकाभिर्विशालाभिर्ध्वजै रत्नपरिष्कृतैः ।
लाजादिभिः पुरीं रम्यां भूषयाञ्चक्रिरे तदा ।।३६
अवादयन्त विविधान् वादित्रान् मधुरस्वनान् ।
शंखान् सहस्रशो दध्मुर्वीणावादान् वितेनिरे ।।३७
प्रविष्टमात्रे गोविन्दे पुरीं द्वारवतीं शुभाम् ।
अगायन् मधुरं गानं स्त्रियो यौवनशालिनः ।।३८
दृष्ट्वा ननृतुरीशानं स्थिताः प्रासादमूर्द्धसु ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि वसुदेवसुतोपरि ।।३९
प्रविश्य भवनं कृष्ण आशीर्वादाभिर्वर्द्धितः ।
वरासने महायोगी भाति देवीभिरन्वितः ।।४०
सुरम्ये मण्डपे शुभ्रे शङ्खाद्यैः परिवारितः ।
आत्मजैरभितो मुख्यैः स्त्रीसहस्रैश्च संवृतः ।।४१
तत्रासनवरे रम्ये जाम्बवत्या सहाच्युतः ।
भ्राजते मालया देवो यथा देव्या समन्वितः ।।४२
आजग्मुर्देवगन्धर्वा द्रष्टुं लोकादिमव्ययम् ।
महर्षयः पूर्वजाता मार्कण्डेयादयो द्विजाः ।।४३
ततः स भगवान् कृष्णो मार्कण्डेयं समागतम् ।
ननामोत्थाय शिरसा स्वासनं च ददौ हरिः ।।४४
संपूज्य तानृषिगणान् प्रणामेन महाभुजः ।
विसर्जयामास हरिर्दत्त्वा तदभिवाञ्छितान् ।।४५
तदा मध्याह्नसमये देवदेवः स्वयं हरिः ।
स्नात्वा शुक्लाम्बरो भानुमुपतिष्ठत् कृताञ्जलिः ।।४६
जजाप जाप्यं विधिवत् प्रेक्षमाणो दिवाकरम् ।
तर्पयामास देवेशो देवान् मुनिगणान् पितृन् ।।४७
प्रविश्य देवभवनं मार्कण्डेयेन चैव हि ।
पूजयामास लिङ्गस्थं भूतेशं भूतिभूषणम् ।।४८
समाप्य नियमं सर्वं नियन्ताऽसौ नृणां स्वयम् ।
भोजयित्वा मुनिवरं ब्राह्मणानभिपूज्य च ।।४९
कृत्वात्मयोगं विप्रेन्द्रा मार्कण्डेयेन चाच्युतः ।
कथाः पौराणिकीः पुण्याश्चक्रे पुत्रादिभिर्वृतः ।।५०

कृष्ण का उत्तम आगमन सुनकर पुर-निवासियों ने शीघ्र दिव्य कल्याणमयी द्वारवती पुरी को सजाया। (३५)

लोगों ने (भीतर और बाहर) विशाल पताकाओं, रत्नभूपित ध्वजों एवं लाजाओं से रमणीक पुरी को भूपित किया एवं विविध मधुर स्वर वाले वे लोग वाद्यों, सहस्रों शंखों एवं वीणा को बजाने लगे। (३६, ३७)

कल्याणमयी द्वारवती पुरी में गोविन्द के प्रवेश करते ही यौवन से सुशोभित स्त्रियाँ भगवान् (श्रीकृष्ण) को देखकर मधुर गान करने तथा नाचने लगीं एवं प्रासादों के शिखर पर स्थित स्त्रियाँ वसुदेव-सुत के ऊपर पुष्पों की वर्षा करने लगीं। (३८,३९)

महायोगी भगवान् कृष्ण भवन में प्रवेश कर आशीर्वादों से अभिनन्दित होते हुए सुन्दर शुभ्र रमणीक मण्डप में चारों ओर से शंखादि प्रमुख पुत्रजनों तथा सहस्रों स्त्रियों से घिरे हुए श्रेष्ठ आसन पर देवी के साथ शोभित हुए। (४०,४१)

माला से युक्त देव अच्युत (श्रीकृष्ण) जाम्बवती के सहित उस रमणीक आसन पर देवी (उमा) सहित महादेव के सदृश शोभा पाने लगे। (४२)

हे द्विजो! देवता, गन्धर्व तथा पूर्वकाल में उत्पन्न मार्कण्डेय इत्यादि महर्षि लोकों के आदि कारण अव्यय (श्रीकृष्ण) को देखने आये। (४३)

तदनन्तर भगवान् हरि कृष्ण ने आये हुए मार्कण्डेय को उठकर शिर द्वारा प्रणाम किया एवं अपना आसन दिया। (४४)

महाबलशाली हरि (कृष्ण) ने प्रणाम द्वारा उन ऋषियों की पूजा की एवं उनका अभीष्ट प्रदान कर उन्हें विदा किया। (४५)

तदुपरान्त मध्याह्न काल में देवाधिदेव हरि ने स्वयं स्नान किया एवं शुक्ल वस्त्र धारण कर हाथ जोड़े हुए सूर्य की आराधना की। सूर्य की ओर देखते हुए देवेश ने विधिवत् मन्त्र का जप किया और देवता, पितरों एवं ऋषियों का तर्पण किया। (४६,४७)

मार्कण्डेय-सहित देव-मन्दिर में प्रवेश कर (कृष्ण ने) लिङ्गस्थ विभूतिभूपण भूतपति (शङ्कर) की पूजा की। (४८)

मनुष्यों के नियामक उन (कृष्ण) ने सभी नियम समाप्त करने के उपरान्त मुनीश्वर को भोजन कराया एवं ब्राह्मणों की पूजा की। (४९)

हे विप्रेन्द्रो! तदुपरान्त पुत्रादिकों से घिरे हुए अच्युत

अथैतत् सर्वमखिलं दृष्ट्वा कर्म महामुनिः ।
मार्कण्डेयो हसन् कृष्णं बभाषे मधुरं वचः ॥५१

मार्कण्डेय उवाच ।

कः समाराध्यते देवो भवता कर्मभिः शुभैः ।
ब्रूहि त्वं कर्मभिः पूज्यो योगिनां ध्येय एव च ॥५२

त्वं हि तत् परमं ब्रह्म निर्वाणममलं पदम् ।
भारावतरणार्थाय जातो वृष्णिकुले प्रभुः ॥५३

तमब्रवीन्महाबाहुः कृष्णो ब्रह्मविदां वरः ।
शृण्वतामेव पुत्राणां सर्वेषां प्रहसन्निव ॥५४

श्रीभगवानुवाच ।

भवता कथितं सर्वं तथ्यमेव न संशयः ।
तथापि देवमीशानं पूजयामि सनातनम् ॥५५

न मे विप्रास्ति कर्त्तव्यं नानवाप्तं कथंचन ।
पूजयामि तथापीशं जानन्नैतत् परं शिवम् ॥५६

न वै पश्यन्ति तं देवं मायया मोहिता जनाः ।
ततोऽहं स्वात्मनो मूलं ज्ञापयन् पूजयामि तम् ॥५७

न च लिङ्गार्चनात् पुण्यं लोकेस्मिन् भीतिनाशनम् ।
तथा लिङ्गे हितायैषां लोकानां पूजयेच्छिवम् ॥५८

योऽहं तल्लिङ्गमित्याहुर्वेदवादविदो जनाः ।
ततोऽहमात्मनमीशानं पूजयाम्यात्मनैव तु ॥५९

तस्यैव परमा मूर्त्तिस्तन्मयोऽहं न संशयः ।
नावयोर्विद्यते भेदो वेदेष्वेवं विनिश्चयः ॥६०

एष देवो महादेवः सदा संसारभीरुभिः ।
ध्येयः पूज्यश्च वन्द्यश्च ज्ञेयो लिङ्गे महेश्वरः ॥६१

मार्कण्डेय उवाच ।

किं तल्लिङ्गं सुरश्रेष्ठ लिङ्गे संपूज्यते च कः ।
ब्रूहि कृष्ण विशालाक्ष गहनं ह्येतदुत्तमम् ॥६२

ने आत्मयोग का आश्रयण कर मार्कण्डेय से पवित्र पुराण सम्बन्धी कथा की चर्चा की। (५०)

तदनन्तर यह समस्त कर्म देखकर हँसते हुए महामुनि मार्कण्डेय ने कृष्ण से मधुर वचन कहा। (५१)

मार्कण्डेय ने कहा—

यह बतलायें कि शुभ कर्मों द्वारा आप किस देवता की आराधना कर रहे हैं। कर्मो द्वारा आपकी ही पूजा की जाती है तथा योगी लोग आपका ही ध्यान करते हैं। (५२)

आप ही परम ब्रह्म एवं निर्मल निर्वाण पद हैं (पृथ्वी का) भार उतारने के लिये वृष्णिकुल में (आप) प्रभु का जन्म हुआ है। (५३)

सभी पुत्रों के सुनते हुए ही ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ महाबाहु कृष्ण ने हँसते हुए उनसे कहा। (५४)

श्रीभगवान् ने कहा—

इसमें सन्देह नहीं कि आपने सभी कुछ यथार्थ ही कहा है तथापि मैं सनातन देव शंकर की पूजा करता हूँ। (५५)

हे विप्र ! मुझे न कुछ करना है और न तो मुझे कुछ अप्राप्त ही है। यह जानते हुए भी मैं ईश परम शिव की पूजा करता हूँ ! (५६)

माया से मोहित मनुष्य उन देव (शंकर) का साक्षात्कार नहीं कर पाते। अतः अपने मूल का परिचय देते हुए मैं उन (शंकर) का पूजन करता हूँ। (५७)

इस लोक में लिङ्गार्चन से बढ़कर कोई पुण्य एवं भय का नाशक नहीं है। अतः इन लोकों की भलाई के लिये लिङ्ग में शिव की पूजा करनी चाहिए। (५८)

वैदिक सिद्धान्तों को जानने वाले मुझे ही वह लिङ्ग बतलाते हैं। अतएव मैं स्वयमेव आत्मस्वरूप ईशान का पूजन करता हूँ। (५९)

(मैं) उनकी अर्थात् शंकर की श्रेष्ठ मूर्त्ति ही हूँ। इसमें सन्देह नहीं की मैं तन्मय अर्थात् शिवस्वरूप हूँ। वेदों में इस सम्बन्ध में विनिश्चय है कि हम दोनों में कोई भेद नहीं है। (६०)

संसार-भीरुओं को सदा लिङ्ग में इन देव महादेव महेश्वर की आराधना, पूजा, वन्दना और ज्ञान करना चाहिए। (६१)

मार्कण्डेय ने कहा—

हे सुरश्रेष्ठ विशालनेत्र कृष्ण ! आप यह श्रेष्ठ गूढ़ विषय बतलायें कि वह लिङ्ग क्या है तथा लिङ्ग में किसकी पूजा होती है ? (६२)

श्रीभगवानुवाच ।

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम् ।
वेदा महेश्वरं देवमाहुर्लिङ्गिनमव्ययम् ।।६३
पुरा चैकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
प्रबोधार्थं ब्रह्मणो मे प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः ।।६४
तस्मात् कालात् समारभ्य ब्रह्मा चाहं सदैव हि ।
पूजयावो महादेवं लोकानां हितकाम्यया ।।६५

मार्कण्डेय उवाच ।

कथं लिङ्गमभूत् पूर्वमैश्वरं परमं पदम् ।
प्रबोधार्थं स्वयं कृष्ण वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ।।६६

श्रीभगवानुवाच ।

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ।
मध्ये चैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ।।६७
सहस्रशीर्षा भूत्वाऽहं सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
सहस्रबाहुर्युक्तात्मा शयितोऽहं सनातनः ।।६८
एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम् ।।६९
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं काञ्चनप्रभम् ।
कृष्णाजिनधरं देवमृग्यजुःसामभिः स्तुतम् ।।७०
निमेषमात्रेण स मां प्राप्तो योगविदां वरः ।
व्याजहार स्वयं ब्रह्मा स्मयमानो महाद्युतिः ।।७१
कस्त्वं कुतो वा किं चेह तिष्ठसे वद मे प्रभो ।
अहं कर्त्ता हि लोकानां स्वयंभूः प्रपितामहः ।।७२
एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाऽहमुवाच ह ।
अहं कर्त्ताऽस्मि लोकानां संहर्ता च पुनः पुनः ।।७३
एवं विवादे वितते मायया परमेष्ठिनः ।
प्रबोधार्थं परं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम् ।।७४
कालानलसमप्रख्यं ज्वालामालासमाकुलम् ।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ।।७५
ततो मामाह भगवानधो गच्छ त्वमाशु वै ।
अन्तमस्य विजानीम ऊर्ध्वं गच्छेऽहमित्यजः ।।७६

श्रीभगवान् ने कहा—

ज्योतिस्वरूप अव्यक्त अक्षर आनन्द को लिङ्ग एवं वेद महेश्वर देव को अविनाशी लिङ्गी कहते हैं। (६३)

प्राचीनकाल में घोर एकार्णव-अर्थात् चारों ओर एक समुद्रवत् अवस्था—में समस्त चराचर के विलीन हो जाने पर ब्रह्मा तथा मुझको प्रबोधित करने के लिये स्वयं शिव का प्रादुर्भाव हुआ था। (६४)

उसी समय से ब्रह्मा और हम दोनों ही लोक का हित करने की इच्छा से सदा महादेव की पूजा करते हैं। (६५)

मार्कण्डेय ने कहा—

हे कृष्ण ! अब आप यह बतलायें कि (ब्रह्मा तथा आपके) प्रबोधार्थ ईश्वरीय परम पद स्वरूप लिङ्ग पूर्व-काल में अपने आप कैसे प्रकट हुआ। (६६)

श्रीभगवान् ने कहा—

(प्रलय काल में) विभाग-रहित, तमोमय, घोर एकार्णव-एकमात्र समुद्र की अवस्था थी। उस एकार्णव के मध्य में शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करने वाला युक्तात्मा मैं सनातन (पुरुष) सहस्रशीर्ष, सहस्रनेत्र, सहस्रपाद एवं सहस्रबाहु होकर शयन कर रहा था। (६७, ६८)

इसी बीच दूर पर मैंने करोड़ों सूर्य के तुल्य अमित प्रकाशमान, शोभायुक्त, चतुर्मुख, महायोगी, स्वर्णतुल्य प्रभा से युक्त, कृष्ण मृग का चर्म धारण करने वाले, ऋग्, यजुः एवं सामवेद द्वारा स्तुति किये जा रहे पुरुषदेव को देखा। (६९,७०)

योगियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी विस्मयान्वित ब्रह्मा क्षणमात्र में स्वयं मेरे निकट आये और बोले— (७१)

हे प्रभु ! मुझे बतलायें कि आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं अथवा यहाँ क्यों ठहरे हैं ? मैं लोकों का कर्त्ता स्वयंभू प्रपितामह हूँ। (७२)

उस समय ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर मैंने कहा— मैं पुनः पुनः लोकों की सृष्टि और संहार करने वाला हूँ। (७३)

परमेष्ठी की मायावश इस प्रकार विवाद बढ़ने पर (हमें) प्रबोधित करने के लिये प्रलयकालीन अग्नि के तुल्य प्रकाशमान ज्वाला के समूह से परिपूर्ण, क्षय एवं वृद्धि से रहित तथा आदि, मध्य और अन्त से रहित शिव स्वरूप श्रेष्ठ लिङ्ग उत्पन्न हुआ। (७४,७५)

तदनन्तर भगवान् ने मुझसे कहा तुम शीघ्र नीचे की ओर जाकर इसका ज्ञान प्राप्त करो और ये अज (ब्रह्मा) ऊपर की ओर जाँय। (७६)

तदाशु समयं कृत्वा गतावूर्ध्वमधश्च द्वौ ।
पितामहोऽप्यहं नान्तं ज्ञातवन्तौ समाः शतम् ॥७७
ततो विस्मयमापन्नौ भीतौ देवस्य शूलिनः ।
मायया मोहितौ तस्य ध्यायन्तौ विश्वमीश्वरम् ॥७८
प्रोच्चरन्तौ महानादमोङ्कारं परमं पदम् ।
प्रह्वाञ्जलिपुटोपेतौ शंभुं तुष्टुवतुः परम् ॥७९

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः ।

अनादिमलसंसाररोगवैद्याय शंभवे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥८०
प्रलयार्णवसंस्थाय प्रलयोद्भूतिहेतवे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥८१
ज्वालामालावृताङ्गाय ज्वलनस्तम्भरूपिणे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥८२
आदिमध्यान्तहीनाय स्वभावामलदीप्तये ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥८३

तव शीघ्र ही शर्त करके पितामह और मैं दोनों ही ऊपर और नीचे की ओर गए किन्तु सैकड़ों वर्ष में (भी) अन्त न पासके। (७७)

तदनन्तर विस्मयान्वित, भयभीत एवं उन त्रिशूलधारी देव की माया से मोहित हम दोनों विश्व स्वरूप ईश्वर का ध्यान करते हुए तथा श्रेष्ठ पद स्वरूप महानाद ओंकार का उच्चारण करते हुए नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर श्रेष्ठ शम्भु की स्तुति करने लगे। (७८,७९)

ब्रह्मा और विष्णु ने कहा—

आदिशून्य मल वाले संसार रूपी रोग के वैद्य स्वरूप शम्भु, शिव, शान्त एवं लिङ्गमूर्त्तिधारी ब्रह्म को नमस्कार है। (८०)

प्रलयकालीन समुद्र में स्थित, सृष्टि और प्रलय के कारणस्वरूप लिङ्गमूर्त्ति शान्त शिव ब्रह्म को नमस्कार है। (८१)

ज्वालाओं की माला से आवृत शरीर वाले, प्रज्वलित स्तम्भरूपी लिंगमूर्ति शिव, शान्त ब्रह्म को नमस्कार है। (८२)

आदि, मध्य और अन्त रहित, स्वभावतः निर्मल तेजस्वरूप लिङ्गमूर्त्ति शान्त शिव ब्रह्म को नमस्कार है। (८३)

महादेवाय महते ज्योतिषेऽनन्ततेजसे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥८४
प्रधानपुरुषेशाय व्योमरूपाय वेधसे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥८५
निर्विकाराय सत्याय नित्यायामलतेजसे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥८६
वेदान्तसाररूपाय कालरूपाय धीमते ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥८७
एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महेश्वरः ।
भाति देवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः ॥८८
वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवाम्बरम् ।
सहस्रहस्तचरणः सूर्यसोमाग्निलोचनः ॥८९
पिनाकपाणिर्भगवान् कृत्तिवासास्त्रिशूलभृत् ।
व्यालयज्ञोपवीतश्च मेघदुन्दुभिनिःस्वनः ॥९०
अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ।
पश्येतं मां महादेवं भयं सर्वं प्रमुच्यताम् ॥९१

महादेव, महान्, ज्योतिःस्वरूप, अनन्त तेजस्वी, लिङ्गमूर्ति शिव, शान्त, ब्रह्म को नमस्कार है। (८४)

प्रधानपुरुषेश (अर्थात् सांख्यप्रतिपादित प्रधान (प्रकृति) एवं जीवस्वरूप पुरुष के नियामक अथवा प्रधान-पुरुष रूपी ईश) व्योमस्वरूप, वेधा (ब्रह्मा) एवं लिङ्गमूर्त्ति शान्त ब्रह्म शिव को नमस्कार है। (८५)

निर्विकार, सत्य, नित्य, अमल तेजस्वी, शिव, शान्त, लिंगमूर्ति ब्रह्म को नमस्कार है। (८६)

वेदान्तसारस्वरूप, कालरूपी, बुद्धिमान्, लिङ्गमूर्त्ति शान्त शिव ब्रह्म को नमस्कार है। (८७)

इस प्रकार स्तुति किये जाते हुए महेश्वर महायोगी देव प्रकट होकर हजारों करोड़ मुख से आकाश को मानों ग्रसित करते हुए करोड़ों सूर्य के तुल्य शोभित होने लगे। तदुपरान्त सहस्रों हाथों और पैरों वाले, सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्निस्वरूप नेत्रोंवाले, पिनाकपाणि, चर्माम्बरधारी, त्रिशूलधारण करने वाले, सर्प का यज्ञोपवीत धारण करने वाले मेघ एवं दुन्दुभि के सदृश शब्द करने वाले भगवान् महादेव ने कहा—हे देव श्रेष्ठो! मैं प्रसन्न हूँ। मुझ महादेव को देखो एवं समस्त भय को छोड़ो। (८८-९१)

युवां प्रसूतौ गात्रेभ्यो मम पूर्वं सनातनौ ।
अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वामपार्श्वे च मे विष्णुः पालको हृदये हरः ॥९२
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यक् वरं दद्मि यथेप्सितम् ।
एवमुक्त्वाऽथ मां देवो महादेवः स्वयं शिवः ।
आलिङ्ग्य देवं ब्रह्माणं प्रसादाभिमुखोऽभवत् ॥९३
ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणिपत्य महेश्वरम् ।
ऊचतुः प्रेक्ष्य तद्वक्त्रं नारायणपितामहौ ॥९४
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ ।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव महेश्वरे ॥९५
ततः स भगवानीशः प्रहसन् परमेश्वरः ।
उवाच मां महादेवः प्रीतः प्रीतेन चेतसा ॥९६

देव उवाच ।

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्त्ता त्वं धरणीपते ।
वत्स वत्स हरे विश्वं पालयैतच्चराचरम् ॥९७
त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः ॥९८
संमोहं त्यज भो विष्णो पालयैनं पितामहम् ।
भविष्यत्येष भगवांस्तव पुत्रः सनातनः ॥९९
अहं च भवतो वक्त्रात् कल्पादौ घोररूपधृक् ।
शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रकः ॥१००
एवमुक्त्वा महादेवो ब्रह्माणं मुनिसत्तम ।
अनुगृह्य च मां देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१०१
ततः प्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता ।
लिङ्गं तल्लयनाद् ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमं वपुः ॥१०२
एतल्लिङ्गस्य माहात्म्यं भाषितं ते मयाऽनघ ।
एतद् बुध्यन्ति योगज्ञा न देवा न च दानवाः॥१०३
एतद्धि परमं ज्ञानमव्यक्तं शिवसंज्ञितम् ।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यं तत् पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१०४

पूर्वकाल में तुम दोनों सनातन (देव) मेरे शरीर से उत्पन्न हुए थे । मेरे दक्षिण पार्श्व में ये लोकपितामह ब्रह्मा स्थित हैं तथा मेरे वाम पार्श्व में पालनकर्त्ता विष्णु एवं हृदय में हर अवस्थित हैं। (९२)

मैं तुम दोनों पर भलीभाँति प्रसन्न हूँ अतः अभीष्ट वर प्रदान करूँगा। ऐसा कहकर महादेव शिव स्वयं मुझे एवं देव ब्रह्मा का आलिङ्गन कर प्रसाद (अनुग्रह) करने को उद्यत हुए। (९३)

तदनन्तर प्रसन्नमन नारायण और पितामह ने महेश्वर को प्रणाम किया और उनका मुख देखकर कहा— (९४)

हे देव ! यदि प्रीति उत्पन्न हुई हो एवं हमें वर देना हो तो हम दोनों की आप महेश्वर में नित्य भक्ति रहे। (९५)

तदनन्तर प्रसन्न हुये भगवान् ईश महादेव परमेश्वर ने प्रसन्न चित्त से हँसते हुए मुझ से कहा। (९६)

देव ने कहा—

हे धरणीपति ! हे वत्स ! हे हरि ! तुम प्रलय, स्थिति और सृष्टि के कर्त्ता हो। इस चराचर विश्व का पालन करो। हे विष्णु ! मैं निरञ्जन एवं निर्गुण होते हुए भी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के लिये अपेक्षित गुणों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु एवं हर नामों से विभक्त हूँ। (९७, ९८)

हे विष्णु ! मोह का त्याग कर इस पितामह का पालन करो। (ये) सनातन भगवान् आपके पुत्र होंगे। मैं भी आपके मुख से कल्प के आदि में घोर रूप से हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए तुम्हारा क्रोधज पुत्र होऊँगा। (९९, १००)

हे मुनिसत्तम ! ऐसा कहने के उपरान्त मेरे तथा ब्रह्मा के ऊपर अनुग्रह कर देव महादेव (शंकर) वहीं अन्तर्हित हो गए। (१०१)

उसी समय से लोक में लिङ्ग पूजन सुप्रतिष्ठित हुआ। हे ब्रह्मन् ! लय होने से लिङ्ग कहा जाता है क्योंकि लिङ्ग ब्रह्म का श्रेष्ठ शरीर है। हे निष्पाप ! मैंने आपसे यह लिङ्ग का माहात्म्य कहा। इसे योगज्ञ लोग ही जानते हैं देव या दानव नहीं। (१०२, १०३)

यह शिव नामक अव्यक्त श्रेष्ठ ज्ञान है। इसी के द्वारा ज्ञान रूपी नेत्र वाले सूक्ष्म और अचिन्त्य तत्त्व का साक्षात्कार करते हैं। उन भगवान् को हम नित्य नमस्कार करते हैं। देवाधिदेव, वेदरहस्य स्वरूप, नीलकण्ठ, लिङ्ग स्वरूप देवदेव महादेव रुद्र को

तस्मै भगवते नित्यं नमस्कारं प्रकुर्महे ।
महादेवाय रुद्राय देवदेवाय लिङ्गिने ।।१०५
नमो वेदरहस्याय नीलकण्ठाय वै नमः ।
विभीषणाय शान्ताय स्थाणवे हेतवे नमः ।।१०६
ब्रह्मणे वामदेवाय त्रिनेत्राय महीयसे ।
शंकराय महेशाय गिरीशाय शिवाय च ।।१०७
नमः कुरुष्व सततं ध्यायस्व मनसा हरम् ।
संसारसागरादस्मादचिरादुत्तरिष्यसि ।।१०८
एवं स वासुदेवेन व्याहृतो मुनिपुंगवः ।
जगाम मनसा देवमीशानं विश्वतोमुखम् ।।१०९
प्रणम्य शिरसा कृष्णमनुज्ञातो महामुनिः ।
जगाम चेप्सितं देशं देवदेवस्य शूलिनः ।।११०
य इमं श्रावयेन्नित्यं लिङ्गाध्यायमनुत्तमम् ।
शृणुयाद् वा पठेद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१११
श्रुत्वा सकृदपि ह्येतत् तपश्चरणमुत्तमम् ।
वासुदेवस्य विप्रेन्द्राः पापं मुञ्चति मानवः ।।११२
जपेद् वाहरहर्नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ।
एवमाह महायोगी कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।।११३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

२६

सूत उवाच ।

ततो लब्धवरः कृष्णो जाम्बवत्यां महेश्वरात् ।
अजीजनन्महात्मानं साम्बमात्मजमुत्तमम् ।।१
प्रद्युम्नस्याप्यभूत् पुत्रो ह्यनिरुद्धो महाबलः ।
तावुभौ गुणसंपन्नौ कृष्णस्यैवापरे तनू ।।२
हत्वा च कंसं नरकमन्यांश्च शतशोऽसुरान् ।
विजित्य लीलया शक्रं जित्वा बाणं महासुरम् ।।३

नमस्कार है। विशेष भयोत्पादक, शान्त, स्थाणु, वामदेव, त्रिनेत्र, महिमावान्, हेतुस्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है। शङ्कर, महेश, गिरीश एवं शिव को नमस्कार है। (१०४-१०७)

मन से हर का सतत ध्यान और नमस्कार करो। इस प्रकार इस संसार सागर से शीघ्र उद्धार हो जायेगा। (१०८)

वासुदेव ने इस प्रकार उन श्रेष्ठ मुनि से कहा। (उन मुनि ने) मन से विश्वतोमुख ईशान देव का ध्यान किया। (१०९)

कृष्ण को शिर द्वारा प्रणाम कर उनकी आज्ञा से वे महामुनि देवाधिदेव त्रिशूली के अभीष्ट स्थान को गये। (११०)

जो यह श्रेष्ठ लिङ्गाध्याय सुनाता, सुनता अथवा पढ़ता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (१११)

हे विप्रेन्द्रो ! एक वार भी वासुदेव के इस उत्तम तपस्या करनेका वर्णन सुनकर मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है अथवा प्रतिदिन इसका जप करने से ब्रह्मलोक में पूजित होता है महायोगी कृष्णद्वैपायन प्रभु ने ऐसा कहा है। (११२,११३)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त—२५.

२६

सूत ने कहा—

तदुपरान्त महेश्वर से वर प्राप्त कर कृष्ण ने जाम्ववती में महात्मा साम्व नामक उत्तम पुत्र उत्पन्न किया। (१)

प्रद्युम्न को महावलवान् अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। गुण सम्पन्न वे दोनों कृष्ण के ही द्वितीय शरीर थे। (२)

कंस, नरक एवं अन्य सैकड़ों असुरों को मारकर लीलापूर्वक इन्द्र को जीतकर, महान् असुर वाण को पराजित

स्थापयित्वा जगत् कृत्स्नं लोके धर्मांश्च शाश्वतान् ।
चक्रे नारायणो गन्तुं स्वस्थानं बुद्धिमुत्तमाम् ।।४
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा भृग्वाद्याः कृष्णमीश्वरम् ।
आजग्मुर्द्वारिकां द्रष्टुं कृतकार्यं सनातनम् ।।५
स तानुवाच विश्वात्मा प्रणिपत्याभिपूज्य च ।
आसनेपूपविष्टान् वै सह रामेण धीमता ।।६
गमिष्ये तत् परं स्थानं स्वकीयं विष्णुसंज्ञितम् ।
कृतानि सर्वकार्याणि प्रसीदध्वं मुनीश्वराः ।।७
इदं कलियुगं घोरं संप्राप्तमधुनाऽशुभम् ।
भविष्यन्ति जनाः सर्वे ह्यस्मिन् पापानुवर्त्तिनः ।।८
प्रवर्त्तयध्वं मज्ज्ञानं ब्राह्मणानां हितावहम् ।
येनेमे कलिजैः पापैर्मुच्यन्ते हि द्विजोत्तमाः ।।९
ये मां जनाः संस्मरन्ति कलौ सकृदपि प्रभुम् ।
तेषां नश्यतु तत् पापं भक्तानां पुरुषोत्तमे ।।१०
येऽर्चयिष्यन्ति मां भक्त्या नित्यं कलियुगे द्विजाः ।
विधिना वेददृष्टेन ते गमिष्यन्ति तत् पदम् ।।११
ये ब्राह्मणा वंशजाता युष्माकं वै सहस्रशः ।
तेषां नारायणे भक्तिर्भविष्यति कलौ युगे ।।१२
परात् परतरं यान्ति नारायणपरायणाः ।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम् ।।१३
ध्यानं होमं तपस्तप्तं ज्ञानं यज्ञादिको विधिः ।
तेषां विनश्यति क्षिप्रं ये निन्दन्ति पिनाकिनम् ।।१४
यो मां समाश्रयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः ।
विनिन्द्य देवमीशानं स याति नरकायुतम् ।।१५
तस्मात् सा परिहर्त्तव्या निन्दा पशुपतौ द्विजाः ।
कर्मणा मनसा वाचा तद्भक्तेष्वपि यत्नतः ।।१६
ये तु दक्षाध्वरे शप्ता दधीचेन द्विजोत्तमाः ।
भविष्यन्ति कलौ भक्तैः परिहार्याः प्रयत्नतः ।।१७
द्विषन्तो देवमीशानं युष्माकं वंशसंभवाः ।
शप्ताश्च गौतमेनोर्व्यां न संभाष्या द्विजोत्तमैः ।।१८

कर, समस्त संसार को सुप्रतिष्ठित कर तथा लोक में शाश्वत धर्मों की स्थापना कर नारायण ने अपने उत्तम स्थान में जाने का उत्तम विचार किया । (३,४)

हे विप्रो ! इसी बीच भृगु आदि (ऋषिगण) कृतकार्य सनातन ईश्वर कृष्ण का दर्शन करने द्वारका में आये । (५)

उन लोगों का अभिवादन एवं पूजन करने के उपरान्त आसन पर बैठे हुए उन लोगों से विश्वात्मा (कृष्ण) ने बुद्धिमान् बलराम सहित कहा— (६)

हे मुनिश्वरो ! सभी कार्य किये जा चुके। अतः मैं विष्णु-संज्ञक अपने उस श्रेष्ठ स्थान को जाऊँगा। आप प्रसन्न हों । (७)

अब घोर अशुभ कलियुग आ गया है। इसमें सभी मनुष्य पाप करने वाले हो जायेंगे । (८)

हे द्विजोत्तमो ! ब्राह्मणों के लिये हितकर मेरा ज्ञान प्रवर्तित करो जिससे ये (मनुष्य) कलि के पापों से मुक्त हो सकें । (९)

कलियुग में जो मनुष्य एक बार भी मुझ प्रभु का स्मरण करेंगे पुरुषोत्तम के भक्तों का वह पाप नष्ट हो जायेगा । (१०)

हे द्विजो ! कलियुग में जो भक्तिपूर्वक नित्य वैदिक विधि से मेरी आराधना करेंगे वे मोक्ष प्राप्त करेंगे । (११)

कलियुग में आपलोगों के वंश में जो सहस्रों ब्राह्मण उत्पन्न होंगे उनकी नारायण में भक्ति होगी । (१२)

नारायण के भक्तजन परात्परतर स्थान को प्राप्त करते हैं। जो महेश्वर से द्वेष करते हैं वे वहाँ नहीं जाते । (१३)

जो पिनाकी (महेश्वर) की निन्दा करते हैं उनका ध्यान, होम किया हुआ तप, ज्ञान एवं यज्ञादि विधियाँ शीघ्र विनष्ट हो जाती हैं । (१४)

जो ईशान (अर्थात् शङ्कर) देव की निन्दा कर अनन्य भाव से नित्य मेरा आश्रय ग्रहण करता है वह सहस्रों नरकों में जाता है । (१५)

अतएव हे द्विजो ! कर्म, मन एवं वाणी से यत्नपूर्वक पशुपति एवं उनके भक्तों की भी निन्दा का त्याग करना चाहिए । (१६)

हे द्विजोत्तमो ! दक्ष के यज्ञ में दधीच ने ईशान (देव) से द्वेष करने वाले आपके वंश में उत्पन्न जिन लोगों को शाप दिया था वे सभी कलियुग में पृथ्वी पर उत्पन्न होंगे। अतः भक्तों को यत्नपूर्वक उनका त्याग करना चाहिए एवं गौतम से शप्त लोगों से बात भी न करनी चाहिए । (१७,१८)

इत्येवमुक्ताः कृष्णेन सर्व एव महर्षयः ।
ओमित्युक्त्वा ययुस्तूर्णं स्वानि स्थानानि सत्तमाः ॥१९
ततो नारायणः कृष्णो लीलयैव जगन्मयः ।
संहृत्य स्वकुलं सर्वं ययौ तत् परमं पदम् ॥२०

इत्येष वः समासेन राज्ञां वंशोऽनुकीर्त्तितः ।
न शक्यो विस्तराद् वक्तुं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ ॥२१
यः पठेच्छृणुयाद् वापि वंशानां कथनं शुभम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥२२

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

२७

ऋषय ऊचुः ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
एषां स्वभावं सूताद्य कथयस्व समासतः ॥१

सूत उवाच ।
गते नारायणे कृष्णे स्वमेव परमं पदम् ।
पार्थः परमधर्मात्मा पाण्डवः शत्रुतापनः ॥२
कृत्वा चैवोत्तरविधिं शोकेन महतावृतः ।
अपश्यत् पथि गच्छन्तं कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥३

शिष्यैः प्रशिष्यैरभितः संवृतं ब्रह्मवादिनम् ।
पपात दण्डवद् भूमौ त्यक्त्वा शोकं तदाऽर्जुनः ॥४
उवाच परमप्रीतः कस्माद् देशान्महामुने ।
इदानीं गच्छसि क्षिप्रं कं वा देशं प्रति प्रभो ॥५
संदर्शनाद् वै भवतः शोको मे विपुलो गतः ।
इदानीं मम यत् कार्यं ब्रूहि पद्मदलेक्षण ॥६
तमुवाच महायोगी कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ।
उपविश्य नदीतीरे शिष्यैः परिवृतो मुनिः ॥७

कृष्ण के ऐसा कहने पर वे सभी उत्तम महर्षि 'अच्छा' यह कहकर शीघ्र अपने स्थानों पर चले गये। (१९)

तदुपरान्त जगन्मय नारायण कृष्ण लीलापूर्वक ही अपने सम्पूर्ण कुल का संहार कर उस परम पद को चले गये। (२०)

संक्षेप में यह राजाओं का वंश आपलोगों से कहा गया। विस्तारपूर्वक इसका वर्णन नहीं हो सकता। आप लोग पुनः क्या सुनना चाहते हैं? (२१)

जो वंशों का शुभ वर्णन पढ़ता या सुनता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में पूजित होता है। (२२)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त—२६.

२७

ऋषियों ने कहा—

कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलि ये चार युग हैं। हे सूत! अब संक्षेप में इनके स्वभाव का वर्णन कीजिये। (१)

सूत ने कहा—

नारायण कृष्ण के अपने परम पद को चले जाने पर शत्रुतापन परम धर्मात्मा पाण्डु पुत्र पार्थ और्ध्वदैहिक क्रिया करने के उपरान्त महान शोक से आवृत हो गए। (उन्होंने) शिष्यों एवं प्रशिष्यों से घिरे हुए ब्रह्मवादी कृष्णद्वैपायन मुनि को मार्ग में जाते हुए देखा। तब शोक को छोड़कर अर्जुन ने पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम किया और परम प्रेम पूर्वक कहा—"हे महामुनि! हे प्रभु! आप कहाँ से आ रहे हैं एवं इस समय शीघ्रता पूर्वक किस देश को जा रहे हैं"! (२-५)

आपका दर्शन होते ही मेरा विपुल शोक दूर हो गया। हे कमलनेत्र! इस समय मुझे जो करना हो वह बतलायें। (६)

शिष्यों से घिरे हुए महायोगी कृष्णद्वैपायन मुनि ने नदी के तीर पर बैठकर स्वयं कहा। (७)

व्यास उवाच ।

इदं कलियुगं घोरं संप्राप्तं पाण्डुनन्दन ।
ततो गच्छामि देवस्य वाराणसीं महापुरीम् ॥८

अस्मिन् कलियुगे घोरे लोकाः पापानुवर्त्तिनः ।
भविष्यन्ति महापापा वर्णाश्रमविवर्जिताः ॥९
नान्यत् पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम् ।
सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं कलौ युगे ॥१०
कृतं त्रेता द्वापरं च सर्वेष्वेतेषु वै नराः ।
भविष्यन्ति महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ॥११
त्वं हि लोकेषु विख्यातो धृतिमाञ् जनवत्सलः ।
पालयाद्य परं धर्मं स्वकीयं मुच्यसे भयात् ॥१२
एवमुक्तो भगवता पार्थः परपुरंजयः ।
पृष्टवान् प्रणिपत्यासौ युगधर्मान् द्विजोत्तमाः ॥१३
तस्मै प्रोवाच सकलं मुनिः सत्यवतीसुतः ।
प्रणम्य देवमीशानं युगधर्मान् सनातनान् ॥१४

व्यास ने कहा —

हे पाण्डुनन्दन ! यह घोर कलियुग प्रारम्भ हुआ है। अतः मैं (शंकर) देव की वाराणसी नामक महान् पुरी को जाता हूँ। (८)

हे महाबाहु ! इस घोर कलियुग में लोग पाप करने वाले एवं वर्णाश्रम से रहित महापापी हो जायेंगे। (९)

कलियुग में वाराणसी पुरी को छोड़ कर प्राणियों के पाप को नष्ट करने वाला अन्य कोई प्रायश्चित्त नहीं दिखलाई पड़ता। (१०)

कृत, त्रेता एवं द्वापर इन सभी युगों में लोग धार्मिक, सत्यवादी एवं महात्मा होते हैं। (११)

आप संसार में धैर्यशील और जनप्रिय के रूप में प्रसिद्ध हैं। अस्तु, अब अपने श्रेष्ठ धर्म का पालन करें। इस प्रकार आप भय से मुक्त हो जायेंगे। (१२)

हे द्विजोत्तमो ! भगवान् (व्यास) के ऐसा कहने पर शत्रु के पुर को जीतने वाले उन पार्थ ने प्रणाम करके युगधर्मों को पूछा। (१३)

सत्यवती के पुत्र मुनि (व्यास) ने ईशान् अर्थात् शङ्कर देव को प्रणाम कर उन्हें सनातन युगधर्मों को पूर्णरूप से बतलाया। (१४)

व्यास उवाच ।

वक्ष्यामि ते समासेन युगधर्मान् नरेश्वर ।
न शक्यते मया पार्थ विस्तरेणाभिभाषितुम् ॥१५

आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं ततस्त्रेतायुगं बुधैः ।
तृतीयं द्वापरं पार्थ चतुर्थं कलिरुच्यते ॥१६
ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे ॥१७
ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः ।
द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ रुद्रो महेश्वरः ॥१८
ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्यः सर्व एव कलिष्वपि ।
पूज्यते भगवान् रुद्रश्चतुर्ष्वपि पिनाकधृक् ॥१९
आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः सनातनः ।
त्रेतायुगे त्रिपादः स्याद् द्विपादो द्वापरे स्थितः ।
त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण तिष्ठति ॥२०

व्यास ने कहा—

हे नरेश्वर ! मैं संक्षेप में आपको युगधर्मों को बतलाता हूँ। हे राजन् ! मैं विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं कर सकता। (१५)

हे पार्थ ! पण्डितों ने प्रथम कृतयुग एवं तदनन्तर त्रेता का क्रम कहा है। तीसरा युग द्वापर और तदनन्तर चौथा कलियुग कहा जाता है। (१६)

कृतयुग में ध्यान, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में एकमात्र दान ही श्रेष्ठ बताया गया है। (१७)

कृतयुग में ब्रह्मा देवता होते हैं। त्रेता में देवता भगवान् रवि होते हैं। द्वापर के देवता विष्णु और कलि के देवता महेश्वर (शङ्कर) हैं। (१८)

ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य ये सभी कलि में भी पूजित होते हैं एवं पिनाकधारी भगवान् रुद्र चारों युगों में पूजित होते हैं। (१९)

प्रारम्भिक कृतयुग में चार चरणों का धर्म कहा गया है। त्रेता युग में धर्म तीन चरण का तथा द्वापर में दो चरण का रहता है। कलियुग में धर्म तीन चरणों से रहित होकर केवल सत्ता के आधार पर स्थित रहता है। (२०)

कृते तु मिथुनोत्पत्तिर्वृत्तिः साक्षाद् रसोल्लसा ।
प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सदानन्दाश्च भोगिनः ।।२१
अधमोत्तमत्वं नास्त्यासां निर्विशेषाः पुरंजय ।
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन् कृते युगे ।।२२
विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तबहुलास्तथा ।
ध्याननिष्ठास्तपोनिष्ठा महादेवपरायणाः ।।२३
ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः ।
पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताः परंतप ।।२४
रसोल्लासा कालयोगात् त्रेताख्ये नश्यते ततः ।
तस्यां सिद्धौ प्रणष्टायामन्या सिद्धिरवर्त्तत ।।२५
अपां सौक्ष्म्ये प्रतिहते तदा मेघात्मना तु वै ।
मेघेभ्यः स्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम् ।।२६
सकृदेव तया वृष्टया संयुक्ते पृथिवीतले ।
प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षा वै गृहसंज्ञिताः ।।२७

कृतयुग में मिथुन अर्थात् स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पत्ति होती थी। लोगों की वृत्ति अर्थात् जीविका साक्षात् आनन्दपूर्ण थी। सभी प्रजा सदा तृप्त, आनन्द एवं भोग से युक्त रहती थी। (२१)

हे पुरञ्जय ! उनमें उत्तम और अधम का कोई भेद नहीं था तथा सभी समान थे। उस कृतयुग में प्रजा की आयु सुख एवं रूप में तुल्यता थी। (२२)

समस्त प्रजा शोक-रहित, तत्त्वज्ञानी एवं एकान्तसेवी थी। उस समय की प्रजा ध्यानपरायण, तपोनिष्ठ एवं महादेव की भक्त थी। (२३)

वह प्रजा निष्काम कर्म करने वाली और नित्य प्रसन्न चित्त रहने वाली थी। हे परन्तप ! (कृतयुग की) प्रजा पर्वत या सागर के तट पर निवास करती थी एवं उनका कोई घर नहीं होता था। (२४)

हे द्विजो ! काल के योग-वश त्रेता नामक युग में (कृतयुग) का आनन्दोल्लास नष्ट हो गया। (कृतयुग की) उस सिद्धि का लोप हो जाने पर दूसरी सिद्धि प्रारम्भ हुई। (२५)

मेघ द्वारा जल की सूक्ष्मता प्राप्त होने पर (त्रेतायुग में) मेघ और विद्युत से वर्षा की उत्पत्ति हुई। (२६)

पृथ्वी तल पर एक वार ही उस वृष्टि का संयोग होने से उन (प्रजाओं) के लिए गृह-संज्ञक वृक्षों की उत्पत्ति हुई। (२७)

सर्वप्रत्युपयोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते ।
वर्त्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः ।।२८
ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात् ।
रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत् ।।२९
विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविना ।
प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः ।।३०
ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवाः ।
अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ।।३१
प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः ।
वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च ।।३२
तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ।।३३
तेन ता वर्त्तयन्ति स्म त्रेतायुगमुखे प्रजाः ।
हृष्टपुष्टास्तया सिद्धया सर्वा वै विगतज्वराः ।।३४

उन (वृक्षों) से ही उन (प्रजाओं) के समस्त कार्यों का निर्वाह होने लगा। त्रेतायुग में सम्पूर्ण प्रजा उन (वृक्षों) से ही अपनी जीविका का निर्वाह करती थी। (२८)

तदनन्तर वहुत काल व्यतीत होने पर उन प्रजाओं के ही विपर्यय से उनमें अकस्मात् राग और लोभ का भाव उत्पन्न हो गया। (२९)

तदनन्तर उनके उस उलट फेर के कारण उस समय के प्रभाव वश उत्पन्न गृहसंज्ञक वे सभी वृक्ष नष्ट हो गये। (३०)

तदुपरान्त उनके नष्ट हो जाने पर मैथुन से उत्पन्न (समस्त) सत्यध्यान वाली (प्रजा) विभ्रान्त होकर उस सिद्धि का ध्यान करने लगी। (३१)

उस समय (ध्यान की सत्यात्मकता के कारण) उनके गृहसंज्ञक वे सभी वृक्ष पुनः प्रकट हो गए। वे सभी वस्त्र, फल और आभूषण उत्पन्न करते थे। (३२)

उन (प्रजाओं) के लिये उन वृक्षों के पुटक पत्र में गन्ध, वर्ण और रस से युक्त विना मक्खियों द्वारा निर्मित अत्यन्त वीर्ययुक्त मधु उत्पन्न होता था। (३३)

इससे ही त्रेतायुग में वह समस्त प्रजा जीवन का निर्वाह करती थी। उस सिद्धि के कारण सभी प्रजा हृष्ट, पुष्ट एवं पीड़ारहित थी। (३४)

ततः कालान्तरेणैव पुनर्लोभावृतास्तदा ।
वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्त मधु चामाक्षिकं बलात् ॥३५
तासां तेनापचारेण पुनर्लोभकृतेन वै ।
प्रणष्टा मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षाः क्वचित् क्वचित् ॥३६
शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम् ।
द्वन्द्वैः संपीडयमानास्तु चक्रुरावरणानि च ॥३७
कृत्वा द्वन्द्वप्रतीघातान् वार्त्तोपायमचिन्तयन् ।
नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा ॥३८
ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ।
वार्त्तायाः साधिका ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः ॥३९
तासां वृष्ट्यूदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु ।
अवहन् वृष्टिसंतत्या स्रोतःस्थानानि निम्नगाः ॥४०
ये पुनस्तदपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ।
अपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाऽभवन् ॥४१

तदनन्तर कालान्तर में वह सभी (प्रजा) पुनः लोभाक्रान्त हो गयी। वे उन वृक्षों तथा (उन वृक्षों से उत्पन्न) अमाक्षिक शहद को बलपूर्वक स्वाधिकृत करने लगे। (३५)

उनके लोभ के कारण हो रहे उस दुष्टाचरण से पुनः वे कल्पवृक्ष कहीं-कहीं मधु के साथ विनष्ट हो गए। (३६)

अनन्तर वे (प्रजायें) शीत, वर्षा एवं तीव्र धूप से अत्यन्त पीड़ित होने लगीं, (शीतोष्णादि) द्वन्द्वों से पीड़ित होने पर (तत्कालीन प्रजाओं ने) आवरणों की रचना की। (३७)

उस समय मधु सहित कल्पवृक्ष नष्ट हो जानेपर द्वन्द्वों के निराकरण का उपाय करने के उपरान्त उन लोगों ने जीविका के उपाय का विचार किया। (३८)

(तदनन्तर उनके नष्ट होने पर) त्रेता युग में उन प्रजाओं की जीविका के साधन स्वरूप अन्य सिद्धि का पुनः प्रादुर्भाव हुआ। पर्याप्त वर्षा हुई। (३९)

सतत वर्षा के कारण जो जल नीचे की ओर प्रवाहित हुआ उससे उनके लिए अनेक सोतों तथा नदियों की उत्पत्ति हुई। (४०)

जब पृथ्वी तल पर थोड़ा जल हो गया तो पृथ्वी और जल के संयोग से अनेक प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न हुईं। (४१)

अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
ऋतुपुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे ॥४२
ततः प्रादुरभूत् तासां रागो लोभश्च सर्वशः ।
अवश्यं भाविनाऽर्थेन त्रेतायुगवशेन वै ॥४३
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम् ॥४४
विपर्ययेण तासां ता ओषध्यो विविशुर्महीम् ।
पितामहनियोगेन दुदोह पृथिवीं पृथुः ॥४५
ततस्ता जगृहुः सर्वा अन्योन्यं क्रोधमूर्च्छिताः ।
वसुदारधनाद्यांस्तु बलात् कालबलेन तु ॥४६
मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वैतद् भगवानजः ।
ससर्ज क्षत्रियान् ब्रह्मा ब्राह्मणानां हिताय च ॥४७
वर्णाश्रमव्यवस्थां च त्रेतायां कृतवान् प्रभुः ।
यज्ञप्रवर्त्तनं चैव पशुहिंसाविवर्जितम् ॥४८

बिना जोते-बोये ऋतु के अनुकूल पुष्प एवं फल से युक्त चौदह प्रकार के ग्राम्य एवं जंगली वृक्षों तथा झाड़ियों की उत्पत्ति हुई। (४२)

तदनन्तर त्रेता युग के प्रभाव से अवश्य होने वाले होनहार के कारण तत्कालीन प्रजा में पूर्णतः राग और लोभ की उत्पत्ति हुई। (४३)

तदुपरान्त उन लोगों ने बलपूर्वक नदी, क्षेत्रों, पर्वतों, वृक्षों, झाड़ियों, एवं औषधियों पर यथाशक्ति अधिकार किया। (४४)

उन लोगों के उलटे आचरण के कारण वे औषधियाँ पृथ्वी में प्रविष्ट हो गयीं। पृथु ने पितामह की आज्ञा से पृथ्वी का दोहन किया। (४५)

तदनन्तर काल के प्रभाव से वे सभी प्रजायें क्रोधाभिभूत होकर परस्पर एक दूसरे के पृथ्वी, स्त्री एवं धनादि को बलपूर्वक ग्रहण करने लगे। (४६)

यह जान कर मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिये भगवान् अजन्मा ब्रह्मा ने ब्राह्मणों के हितार्थ क्षत्रियों की सृष्टि की। (४७)

त्रेता युग में प्रभु ने वर्णाश्रम व्यवस्था की तथा पशु-हिंसा-रहित यज्ञ प्रवर्तित किया। (४८)

द्वापरेष्वथ विद्यन्ते मतिभेदाः सदा नृणाम् ।
रागो लोभस्तथा युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ।।४९
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ।
वेदव्यासैश्चतुर्द्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।।५०
ऋषिपुत्रैः पुनर्भेदाद् भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ।
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ।।५१
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ।
सामान्याद् वैकृताच्चैव दृष्टिभेदैः क्वचित् क्वचित्।।५२
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ।
इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सुव्रत ।।५३
अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ।
वाङ्मनःकायजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते नृणाम् ।।५४
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ।
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद् दोषदर्शनम् ।।५५
दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसंभवः ।
एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे स्मृता ।।५६
आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तते ।
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ।।५७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

द्वापर में सर्वदा मनुष्यों में मतभेद, राग, लोभ, युद्ध और तत्त्वज्ञान का अभाव रहता है । (४९)

त्रेता युग में एक वेद को चतुष्पाद किया जाता है। द्वापरादि में वेदव्यास (वेदों का) चार विभाग करते हैं । (५०)

ऋषियों के पुत्रों ने दृष्टिभेद, मन्त्र और ब्राह्मणों तथा स्वर एवं वर्णों के विपर्यय के क्रमानुसार पुनः (वेदों का) भेद किया । (५१)

वैदिक ऋषियों ने कहीं-कहीं समानता, विशेषता एवं दृष्टि भेद के आधार पर ऋक्, यजुः एवं साम संज्ञक मन्त्रों की संहिताओं का संकलन किया । (५२)

हे सुव्रत ! (उन ऋषियों ने) ब्राह्मण, कल्पसूत्रों, मन्त्रों, इतिहास, पुराण एवं धर्म शास्त्रों का उपदेश किया है । (५३)

अवृष्टि, मरण, अन्य अनेक व्याधि उपद्रव तथा मनुष्यों के वाणी, मन एवं शरीर सम्बन्धी दोषों के कारण, निर्वेद की उत्पत्ति होती है । (५४)

निर्वेद के कारण वे दुःख से मुक्ति का विचार करने लगते हैं । विचार करने से उनमें वैराग्य एवं वैराग्य से दोष-दृष्टि को उत्पत्ति हुई । (५५)

दोष-दर्शन के कारण द्वापर में ज्ञान की उत्पत्ति होती है। द्वापर में (मनुष्यों की) रजोगुण एवं तमोगुण से युक्त यही वृत्ति कही गयी है । (५६)

आदि कृत युग में धर्म की स्थिति थी। वह त्रेता में भी चलती रही। द्वापर में व्याकुल होकर (वह धर्म) कलियुग में नष्ट हो जाता है। (५७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त—२७.

२८

व्यास उवाच ।

तिष्ये मायामसूयां च वधं चैव तपस्विनाम् ।
साधयन्ति नरा नित्यं तमसा व्याकुलीकृताः ॥१
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद् भयं तथा ।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः ॥२
अधार्मिका अनाचारा महाकोपाल्पचेतसः ।
अनृतं वदन्ति ते लुब्धास्तिष्ये जाताः सुदुःप्रजाः ॥३
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ।
विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते भयम् ॥४
नाधीयते कलौ वेदान् न यजन्ति द्विजातयः ।
यजन्त्यन्यायतो वेदान् पठन्ते चाल्पबुद्धयः ॥५
शूद्राणां मन्त्रयौनैश्च संबन्धो ब्राह्मणैः सह ।
भविष्यति कलौ तस्मिञ् शयनासनभोजनैः ॥६
राजानः शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान् बाधयन्ति च ।
भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायेते नरेश्वर ॥७
स्नानं होमं जपं दानं देवतानां तथार्ऽचनम् ।
अन्यानि चैव कर्माणि न कुर्वन्ति द्विजातयः ॥८
विनिन्दन्ति महादेवं ब्राह्मणान् पुरुषोत्तमम् ।
आम्नायधर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ युगे ॥९
कुर्वन्त्यवेददृष्टानि कर्माणि विविधानि तु ।
स्वधर्मेऽभिरुचिर्नैव ब्राह्मणानां प्रजायते ॥१०
कुशीलचर्याः पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृताः ।
बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम् ॥११
अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।

२८

व्यास ने कहा—

कलियुग में तमोगुण से व्याकुल हुए मनुष्य नित्य माया, असूया अर्थात् लोगों के गुणों को दोष के रूप में प्रकट करना, तथा तपस्वियों का वध करने लगते हैं। (१)

कलि में महामारी का रोग, सतत क्षुधा का कष्ट, अनावृष्टि का घोर भय तथा देशों का उलटफेर होता रहता है। (२)

कलियुग में उत्पन्न हुए दुष्ट मनुष्य अधार्मिक, आचार शून्य, महाक्रोधी, अल्प बुद्धिवाले, असत्यभाषी एवं लोभी होते हैं। (३)

विप्रों के दोष पूर्ण यज्ञ, अध्ययन, दुराचार पूर्ण दूषित शास्त्रों तथा कर्म के दोषों से प्रजा को भय होता है। (४)

द्विजाति लोग कलियुग में वेदों का अध्ययन नहीं करते और न यज्ञ करते हैं। अल्पबुद्धि लोग यज्ञ करते तथा अन्यायपूर्वक वेद पढ़ते हैं। (५)

उस कलियुग में ब्राह्मणों के साथ शूद्रों का मन्त्र, योनि, शयन, आसन और भोजन के द्वारा सम्बन्ध हो जायेगा। (६)

हे राजन् ! शासकों में शूद्रों की अधिकता होगी जो ब्राह्मणों को पीड़ित करेंगे। भ्रूण-हत्या एवं वीर-हत्या प्रचलित होगी। (७)

द्विजाति लोग स्नान, होम, जप, दान, देवों का पूजन तथा अन्य (शास्त्र-विहित) कर्म नहीं करेंगे। (८)

कलियुग में (लोग) महादेव, ब्राह्मण, पुरुषोत्तम (विष्णु), वेद, धर्मशास्त्र और पुराणों की निन्दा करते हैं। (९)

(सभी लोग) अनेक प्रकार के अवैदिक कर्म करने लगते हैं एवं ब्राह्मणों की रुचि अपने धर्म में नहीं रहती। (१०)

(कलियुग के) लोग कुत्सित आचार वाले, व्यर्थ के पाखण्डी रूपों से युक्त तथा एक दूसरे से बहुत याचना करने वाले हो जायेंगे। (११)

कलियुग में जनपद अट्टशूल अर्थात् अन्नविक्रयी

प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे ।।१२
शुक्लदन्ताजिनाख्याश्च मुण्डाः काषायवाससः ।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ।।१३
शस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्षिणः ।
चौराश्चौरस्य हर्त्तारो हर्त्तुर्हर्त्ता तथाऽपरः ।।१४
दुःखप्रचुरताल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता ।
अधर्माभिनिवेशित्वात् तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ।।१५
काषायिणोऽथ निर्ग्रन्थास्तथा कापालिकाश्च ये ।
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे ।।१६
आसनस्थान् द्विजान् दृष्ट्वा न चलन्त्यल्पबुद्धयः ।
ताडयन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा राजोपजीविनः ।।१७
उच्चासनस्थाः शूद्रास्तु द्विजमध्ये परंतप ।
ज्ञात्वा न हिंसते राजा कलौ कालबलेन तु ।।१८
पुष्पैश्च हसितैश्चैव तथान्यैर्मङ्गलैर्द्विजाः ।

एवं चौराहे शिवशूल अर्थात् वेदविक्रय स्थल होंगे और स्त्रियाँ केशशूला-अर्थात् योनिविक्रयिणी हो जायेंगी। (१२)

कलियुग आने पर सफेद दाँतों वाले, जिननामक मुण्डित, कषायवस्त्रधारी शूद्र धर्माचरण करने लगेंगे। (१३)

(मनुष्य) अनाज एवं वस्त्र की चोरी करने लगेंगे चोर लोग चोरों की ही चोरी करेंगे तथा दूसरे चोर उस चोर का चुरायेंगे। (१४)

(लोगों के जीवन में) दुःख की अधिकता होगी। आयु अल्प होगी तथा देह में शिथिलता एवं रोग रहेगा। अधर्म के प्रति आग्रह रहने के कारण कलियुग में तमोगुणी व्यवहार होगा। (१५)

(कलियुग में) कुछ लोग कषायवस्त्रधारी, निर्ग्रन्थ, (वस्त्रहीन) कापालिक, वेदविक्रयी एवं कुछ लोग तीर्थ-विक्रयी हो जायेंगे। (१६)

अल्पबुद्धि राजसेवक शूद्र आसन पर स्थित द्विजों को देख कर नहीं चलते तथा श्रेष्ठ द्विजों को मारते हैं। (१७)

हे परन्तप ! काल के बल से कलियुग में द्विजों के मध्य शूद्र उच्च आसन पर आसीन होते हैं एवं राजा यह जानकर दण्ड नहीं देता। (१८)

अल्प ज्ञान, भाग्य एवं शक्ति वाले द्विज पुष्प, हास

शूद्रानभ्यर्चयन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः ।।१९
न प्रेक्षन्तेऽर्चितांश्चापि शूद्रा द्विजवरान् नृप ।
सेवावसरमालोक्य द्वारि तिष्ठन्ति च द्विजाः ।।२०
वाहनस्थान् समावृत्य शूद्राञ् शूद्रोपजीविनः ।
सेवन्ते ब्राह्मणास्तत्र स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ ।।२१
अध्यापयन्ति वै वेदाञ् शूद्राञ् शूद्रोपजीविनः ।
पठन्ति वैदिकान् मन्त्रान् नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः।।२२
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजोत्तमाः ।
यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ।।२३
नाशयन्ति ह्यधीतानि नाधिगच्छन्ति चानघ ।
गायन्ति लौकिकैर्गानैर्दैवतानि नराधिप ।।२४
वामपाशुपताचारास्तथा वै पाञ्चरात्रिकाः ।
भविष्यन्ति कलौ तस्मिन् ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा।।२५

तथा अन्य माङ्गलिक वस्तुओं से शूद्रों की सेवा करते हैं। (१९)

हे नृप ! शूद्र लोग श्रेष्ठ पूजित (अर्थात् अलंकृत) द्विजों की ओर दृष्टि नहीं डालते एवं द्विज लोग सेवा के अवसर की प्रतीक्षा करते हुए (उनके) द्वार पर खड़े रहते हैं। (२०)

कलियुग में शूद्र से जीविका पाने वाले ब्राह्मण वाहन पर स्थित शूद्रों को घेर कर स्तुतियों द्वारा उनकी प्रशंसा करते हैं। (२१)

शूद्र से जीविका प्राप्त करने वाले (ब्राह्मण) शूद्रों को वेद पढ़ाते हैं। घोर नास्तिकता से युक्त (शूद्र) लोग वैदिक मन्त्रों को पढ़ते हैं। (२२)

द्विजोत्तम लोग (अपने) तप एवं यज्ञ के फलों का विक्रय करते हैं। सैकड़ों एवं हजारों लोग संन्यासी वन जायेंगे। (२३)

हे निष्पाप (नराधिप) ! (कलि के प्राणी) अपने अध्ययन को नष्ट करते हैं। (उन्हें) ज्ञान नहीं होता। हे नराधिप (कलि के लोग) लौकिक गीतों से देवों की स्तुति करते हैं। (२४)

उस कलियुग में ब्राह्मण और क्षत्रिय वाममार्गी, पाशुपताचारी तथा पाञ्चरात्री हो जायेंगे। (२५)

ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते ।
कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान् ।।२६

कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां कुलेषु वै ।
दधीचशापनिर्दग्धाः पुरा दक्षाध्वरे द्विजाः ।।२७

निन्दन्ति च महादेवं तमसाविष्टचेतसः ।
वृथा धर्मं चरिष्यन्ति कलौ तस्मिन् युगान्तिके ।।२८

ये चान्ये शापनिर्दग्धा गौतमस्य महात्मनः ।
सर्वे ते च भविष्यन्ति ब्राह्मणाद्याः स्वजातिषु ।।२९

विनिन्दन्ति हृषीकेशं ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।
वेदबाह्यव्रताचारा दुराचारा वृथाश्रमाः ।।३०

मोहयन्ति जनान् सर्वान् दर्शयित्वा फलानि च ।
तमसाविष्टमनसो बैडालवृत्तिकाधमाः ।।३१

कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः ।
न देवता भवेन्नृणां देवतानां च दैवतम् ।।३२

करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः ।
श्रौतस्मार्त्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया ।।३३

उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम् ।
सर्ववेदान्तसारं हि धर्मान् वेदनिदर्शितान् ।।३४

ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनोपचारतः ।
विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परमं पदम् ।।३५

अनायासेन सुमहत् पुण्यमाप्नोति मानवः ।
अनेकदोषदुष्टस्य कलेरेष महान् गुणः ।।३६

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्राप्य माहेश्वरं युगम् ।
विशेषाद् ब्राह्मणो रुद्रमीशानं शरणं व्रजेत् ।।३७

ये नमन्ति विरूपाक्षमीशानं कृत्तिवाससम् ।
प्रसन्नचेतसो रुद्रं ते यान्ति परमं पदम् ।।३८

यथा रुद्रनमस्कारः सर्वकर्मफलो ध्रुवम् ।
अन्यदेवनमस्कारान्न तत्फलमवाप्नुयात् ।।३९

ज्ञान और कर्म का लोप हो जाने तथा लोगों के निष्क्रिय हो जाने पर कीड़े, चूहे एवं सर्प मनुष्यों को कष्ट पहुँचायेंगे । (२६)

प्राचीन काल में दक्ष के यज्ञ में दधीच के शाप से भस्म हुए द्विज ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न होंगे । (२७)

उस अन्तिम कलियुग में वे तमोगुणी चित्त वाले (ब्राह्मण) महादेव की निन्दा करेंगे तथा व्यर्थ के धर्मों का आचरण करेंगे । (२८)

महात्मा गौतम के शाप से भस्म हुए जो अन्य लोग थे वे सभी ब्राह्मणादि अपनी जातियों में उत्पन्न होंगे । (२९)

वेद से बहिर्भूत व्रत एवं आचार से युक्त दुराचारी तथा व्यर्थ श्रम करने वाले लोग हृषीकेश एवं ब्रह्मवादी ब्राह्मणों की निन्दा करेंगे । (३०)

कलि में तमोगुण से युक्त मन वाले बैडालव्रती अर्थात् दिखावटी धर्माचरण करने वाले अधम मनुष्य (अनेक प्रकार के) फल प्रदर्शित कर मनुष्यों को मोहित करेंगे । (३१)

कलि में देवों के देव लोकों के ईश्वर श्रेष्ठ रुद्र महादेव मनुष्यों के (आराध्य) देव न रहेंगे । (३२)

(वे) भक्तों के हित की कामना से श्रुति और स्मृति से प्रतिपादित धर्म की प्रतिष्ठा के लिये नीललोहित शंकर अवतारों को ग्रहण करेंगे । (३३)

वे शिष्यों को समस्त वेदान्त के सारस्वरूप ब्रह्मविषयक उस ज्ञान एवं वेद-प्रतिपादित धर्मों का उपदेश देंगे । (३४)

जो ब्राह्मण जिस किसी भी प्रकार उनकी सेवा करेंगे वे कलि के दोषों को जीत कर परम पद प्राप्त करेंगे । (३५)

(कलियुग में) मनुष्य अनायास महान् पुण्य प्राप्त कर लेता है । अनेक दोषों से दूषित कलि का यह एक महान् गुण है । (३६)

अतः महेश्वर सम्बन्धी युग प्राप्त कर विशेष रूप से ब्राह्मण को सभी प्रकार का प्रयत्न कर ईशान रुद्र की शरण में जाना चाहिए । (३७)

जो प्रसन्न मन से चर्माम्बरधारी विरूपाक्ष, ईशान रुद्र को नमस्कार करते हैं वे परम पद प्राप्त करते हैं । (३८)

रुद्र को किया हुआ नमस्कार जिस प्रकार निश्चित रूप से सभी कामनाओं को सफल करता है अन्य देवों को नमस्कार करने से वैसा फल नहीं प्राप्त होता । (३९)

एवंविधे कलियुगे दोषाणामेकशोधनम् ।
महादेवनमस्कारो ध्यानं दानमिति श्रुतिः ।।४०
तस्मादनीश्वरानन्यान् त्यक्त्वा देवं महेश्वरम् ।
समाश्रयेद् विरूपाक्षं यदीच्छेत् परमं पदम् ।।४१
नार्चयन्तीह ये रुद्रं शिवं त्रिदशवन्दितम् ।
तेषां दानं तपो यज्ञो वृथा जीवितमेव च ।।४२
नमो रुद्राय महते देवदेवाय शूलिने ।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय योगिनां गुरवे नमः ।।४३
नमोऽस्तु वामदेवाय महादेवाय वेधसे ।
शंभवे स्थाणवे नित्यं शिवाय परमेष्ठिने ।
नमः सोमाय रुद्राय महाग्रासाय हेतवे ।।४४
प्रपद्येऽहं विरूपाक्षं शरण्यं ब्रह्मचारिणम् ।
महादेवं महायोगमीशानं चाम्बिकापतिम् ।।४५
योगिनां योगदातारं योगमायासमावृतम् ।
योगिनां गुरुमाचार्यं योगिगम्यं पिनाकिनम् ।।४६
संसारतारणं रुद्रं ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽधिपम् ।
शाश्वतं सर्वगं शान्तं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ।।४७
कपर्दिनं कालमूर्त्तिममूर्त्तिं परमेश्वरम् ।
एकमूर्त्तिं महामूर्त्तिं वेदवेद्यं दिवस्पतिम् ।।४८
नीलकण्ठं विश्वमूर्त्तिं व्यापिनं विश्वरेतसम् ।
कालाग्निं कालदहनं कामदं कामनाशनम् ।।४९
नमस्ये गिरिशं देवं चन्द्रावयवभूषणम् ।
विलोहितं लेलिहानमादित्यं परमेष्ठिनम् ।
उग्रं पशुपतिं भीमं भास्करं तमसः परम् ।।५०
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ।
अतीतानागतानां वै यावन्मन्वन्तरक्षयः ।।५१
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै ।
व्याख्यातानि न संदेहः कल्पः कल्पेन चैव हि ।।५२
मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै ।
तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत ।।५३

श्रुति के अनुसार ऐसे कलियुग में महादेव को नमस्कार करना, (उनका) ध्यान करना एवं दान देना एक मात्र दोषों को दूर करता है । (४०)

अतः यदि परम पद की इच्छा हो तो अन्य अनीश्वरों को छोड़कर त्रिलोचन महेश्वर देव का आश्रय ग्रहण करना चाहिये । (४१)

जो लोग देवों से पूजित होने वाले रुद्र शिव की आराधना नहीं करते उनका दान, तप, यज्ञ एवं जीवन व्यर्थ होता है । (४२)

त्रिशूलधारी देवाधिदेव महान् रुद्र को नमस्कार है। योगियों के गुरु त्र्यम्बक, त्रिनेत्र को नमस्कार है । (४३)

वामदेव महादेव, विधाता, शम्भु, स्थाणु परमेष्ठी शिव को नित्य नमस्कार है। सोम, रुद्र, महाग्रास और हेतु अर्थात् संसार के हेतु को नमस्कार है। (४४)

मैं विरूपाक्ष, ब्रह्मचारियों के शरणस्थल महायोग-स्वरूप, ईशान, अम्बिकापति महादेव की शरण ग्रहण करता हूँ । (४५)

योगियों को योग प्रदान करने वाले, योगमाया से आवृत, योगियों के गुरु, आचार्य योगिगम्य, पिनाकी को (मैं नमस्कार करता हूँ ।) (४६)

संसार से मुक्त करने वाले, रुद्र, ब्रह्मा एवं ब्रह्माधिप शाश्वत, सर्वव्यापी, शान्त, ब्राह्मणों के रक्षक एवं ब्राह्मण प्रिय को (मैं नमस्कार करता हूँ) । (४७)

जटाधारी, कालमूर्ति एवं मूर्तिरहित परमेश्वर, एकमूर्ति, महामूर्ति, वेदवेद्य एवं द्युलोक के स्वामी (को नमस्कार करता हूँ) । (४८)

नीलकण्ठ, विश्वमूर्ति, व्यापी, विश्वरेता (अर्थात् सभी के उत्पादक) को (मैं नमस्कार करता हूँ)। कालरूपी अग्नि, प्रलयकालीन अग्निस्वरूप, कामनाओं की पूर्त्ति करने वाले, कामदेव के नाशक, को (मैं नमस्कार करता हूँ) । (४९)

चन्द्र के अर्ध अर्थात् द्वितीया के चन्द्रमा को आभूषण स्वरूप धारण करने वाले गिरिश देव को (मैं) नमस्कार करता हूँ। विलोहित अर्थात् अत्यधिक लालवर्ण वाले, ग्रास करने वाले, आदित्य, परमेष्ठी, उग्र, भीम, भास्कर, तमोगुणशून्य पशुपति को (मैं नमस्कार करता हूँ)। (५०)

मन्वन्तर की समाप्ति पर्यन्त वीते हुए एवं आगे आने वाले युगों का संक्षेप में यह लक्षण कहा गया है । (५१)

निस्सन्देह एक मन्वन्तर से सभी मन्वन्तरों की एवं एक कल्प से सभी कल्पों की व्याख्या हो गयी । (५२)

इन वीते हुए एवं आने वाले मन्वन्तरों में समान

एवमुक्तो भगवता किरीटी श्वेतवाहनः ।
बभार परमां भक्तिमीशानेऽव्यभिचारिणीम् ।।५४
नमश्चकार तमृषिं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ।
सर्वज्ञं सर्वकर्त्तारं साक्षाद् विष्णुं व्यवस्थितम् ।।५५
तमुवाच पुनर्व्यासः पार्थं परपुरंजयम् ।
कराभ्यां सुशुभाभ्यां च संस्पृश्य प्रणतं मुनिः ।।५६
धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि त्वादृशोऽन्यो न विद्यते ।
त्रैलोक्ये शंकरे नूनं भक्तः परपुरंजय ।।५७
दृष्टवानसि तं देवं विश्वाक्षं विश्वतोमुखम् ।
प्रत्यक्षमेव सर्वेशं रुद्रं सर्वजगद्गुरुम् ।।५८
ज्ञानं तदैश्वरं दिव्यं यथावद् विदितं त्वया ।
स्वयमेव हृषीकेशः प्रीत्योवाच सनातनः ।।५९
गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
व्रजस्व परया भक्त्या शरण्यं शरणं शिवम् ।।६०

एवमुक्त्वा स भगवाननुगृह्यार्जुनं प्रभुः ।
जगाम शंकरपुरीं समाराधयितुं भवम् ।।६१
पाण्डवेयोऽपि तद् वाक्यात् संप्राप्य शरणं शिवम् ।
संत्यज्य सर्वकर्माणि तद्भक्तिपरमोऽभवत् ।।६२
नार्जुनेन समः शंभोर्भक्त्या भूतो भविष्यति ।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम् ।।६३
तस्मै भगवते नित्यं नमः सत्याय धीमते ।
पाराशर्याय मुनये व्यासायामिततेजसे ।।६४
कृष्णद्वैपायनः साक्षाद् विष्णुरेव सनातनः ।
को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम् ।।६५
नमः कुरुध्वं तमृषिं कृष्णं सत्यवतीसुतम् ।
पाराशर्यं महात्मानं योगिनं विष्णुमव्ययम् ।।६६
एवमुक्तास्तु मुनयः सर्व एव समाहिताः ।
प्रणेमुस्तं महात्मानं व्यासं सत्यवतीसुतम् ।।६७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे अष्टाविंशोऽध्यायः ।।२८।।

अहंभाव युक्त सभी (देवादि निर्दिष्ट) नाम और रूपों से युक्त होते हैं । (५३)

भगवान् (व्यास) के ऐसा कहने पर श्वेतवाहन किरीटधारी (अर्जुन) ने ईशान (शंकरदेव) में निश्चल परम भक्ति धारण की । (५४)

उन्होंने उन सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, साक्षात् विष्णु के रूप से व्यवस्थित प्रभु कृष्णद्वैपायन ऋषि को नमस्कार किया । (५५)

मुनि व्यास ने शत्रु के पुर को जीतने वाले प्रणत पार्थ को सुन्दर शुभ हाथों से स्पर्श कर पुनः उनसे कहा—(५६)

हे शत्रुनगरी को जीतने वाले! तुम धन्य एवं अनुगृहीत हो। निश्चय ही त्रिलोक में तुम्हारे समान कोई दूसरा शङ्कर का भक्त नहीं है। (५७)

तुमने सभी ओर नेत्र और मुख वाले, समस्त संसार के गुरु उन सर्वेश रुद्र का प्रत्यक्ष दर्शन किया है। (५८)

तुम्हें वह ईश्वरीय दिव्य ज्ञान यथार्थ रूप से विदित है। सनातन हृषीकेश ने प्रीतिपूर्वक स्वयं (तुमसे) कहा था। (५९)

अपने स्थान को जाओ। शोक मत करो। परा भक्ति द्वारा शरणागतवत्सल शिव की शरण में जाओ। (६०)

अर्जुन के ऊपर अनुग्रह कर ऐसा कहने के उपरान्त वे भगवान् प्रभु (वेदव्यास) शङ्कर की आराधना करने शङ्करपुरी (वाराणसी) चले गये। (६१)

पाण्डुपुत्र (अर्जुन) भी उनके कहने से शिव की शरण में गये एवं समस्त कार्य त्यागकर उनकी भक्ति करने लगे। (६२)

सत्यवती के पुत्र कृष्ण (द्वैपायन) एवं देवकी के पुत्र कृष्ण को छोड़कर अन्य कोई भी अर्जुन के सदृश शङ्कर का भक्त न तो हुआ और न होगा। (६३)

उन सत्य (रूप), बुद्धिमान्, पराशर के पुत्र, अमित-तेजस्वी, भगवान्, व्यास मुनि को नित्य नमस्कार है। (६४)

कृष्णद्वैपायन साक्षात् सनातन विष्णु ही हैं। कौन अन्य यथार्थ रूप से उन परमेश्वर रुद्र को जानता है? (६५)

उन सत्यवतीसुत, पराशर के पुत्र, महात्मा, योगी अव्यय विष्णुस्वरूप कृष्णद्वैपायन ऋषि को नमस्कार करो। (६६)

इस प्रकार कहे गये सभी मुनियों ने एकाग्रचित्त से उन सत्यवती के पुत्र महात्मा व्यास को नमस्कार किया। (६७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त—२८.

२९

ऋषय ऊचुः ।

प्राप्य वाराणसीं दिव्यां कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
किमकार्षीन्महाबुद्धिः श्रोतुं कौतूहलं हि नः ॥१

सूत उवाच ।

प्राप्य वाराणसीं दिव्यामुपस्पृश्य महामुनिः ।
पूजयामास जाह्नव्यां देवं विश्वेश्वरं शिवम् ॥२
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा तत्र ये निवसन्ति वै ।
पूजयाञ्चक्रिरे व्यासं मुनयो मुनिपुंगवम् ॥३
पप्रच्छुः प्रणताः सर्वे कथाः पापविनाशनीः ।
महादेवाश्रयाः पुण्या मोक्षधर्मान् सनातनान् ॥४
स चापि कथयामास सर्वज्ञो भगवानृषिः ।
माहात्म्यं देवदेवस्य धर्मान् वेदनिदर्शितान् ॥५
तेषां मध्ये मुनीन्द्राणां व्यासशिष्यो महामुनिः ।
पृष्टवान् जैमिनिर्व्यासं गूढमर्थं सनातनम् ॥६

जैमिनिरुवाच ।

भगवन् संशयं त्वेकं छेत्तुमर्हसि तत्त्वतः ।
न विद्यते ह्यविदितं भवता परमर्षिणा ॥७
केचिद् ध्यानं प्रशंसन्ति धर्ममेवापरे जनाः ।
अन्ये सांख्यं तथा योगं तपस्त्वन्ये महर्षयः ॥८
ब्रह्मचर्यमथो मौनमन्ये प्राहुर्महर्षयः ।
अहिंसां सत्यमप्यन्ये संन्यासमपरे विदुः ॥९
केचिद् दयां प्रशंसन्ति दानमध्ययनं तथा ।
तीर्थयात्रां तथा केचिदन्ये चेन्द्रियनिग्रहम् ॥१०
किमेतेषां भवेज्ज्यायः प्रब्रूहि मुनिपुंगव ।
यदि वा विद्यतेऽप्यन्यद् गुह्यं तद्वक्तुमर्हसि ॥११
श्रुत्वा स जैमिनेर्वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
प्राह गम्भीरया वाचा प्रणम्य वृषकेतनम् ॥१२

२९

ऋषियों ने कहा—

हम लोगों को यह सुनने की उत्सुकता है कि दिव्य वाराणसी में पहुँच कर महाबुद्धिमान् कृष्णद्वैपायन मुनि ने क्या किया ? (१)

सूत ने कहा—

दिव्य वाराणसी में पहुँचने के उपरान्त महामुनि ने गङ्गा में आचमन कर देव विश्वेश्वर शिव का पूजन किया। (२)

उस मुनि को आया देखकर वहाँ पर रहने वाले मुनियों ने मुनिश्रेष्ठ व्यास का पूजन किया। (३)

सभी ने विनयपूर्वक महादेव सम्बन्धी पापनाशिनी तथा पवित्र कथा और सनातन मोक्षधर्मों को पूछा। (४)

उन सर्वज्ञ भगवान् ऋषि ने भी देवाधिदेव के धर्मयुक्त माहात्म्य तथा वेद में प्रदर्शित धर्मों का वर्णन किया। (५)

उन श्रेष्ठ मुनियों के मध्य व्यास के शिष्य महामुनि जैमिनि ने व्यास जी से गूढ़ सनातन अर्थ पूछा। (६)

जैमिनि ने कहा—

हे भगवन् ! (आप) एक सन्देह तत्त्वतः दूर करें। क्योंकि आप श्रेष्ठ ऋषि को कुछ अविदित नहीं है। (७)

कुछ लोग ध्यान की और दूसरे लोग धर्म की प्रशंसा करते हैं। अन्य लोग सांख्य और योग की तथा दूसरे महर्षि तप की प्रशंसा करते हैं। (८)

दूसरे महर्षि ब्रह्मचर्य एवं मौन का वर्णन करते हैं। अन्य लोग अहिंसा और सत्य की तथा अन्य लोग संन्यास को (प्रशंसनीय) समझते हैं। (९)

कुछ लोग दया, दान, अध्ययन और तीर्थयात्रा की तथा दूसरे लोग इन्द्रियनिग्रह की प्रशंसा करते हैं। (१०)

हे मुनिश्रेष्ठ ! यह बतलायें कि इनमें कौन श्रेयस्कर है ? अथवा यदि अन्य कोई गुप्त तत्त्व हो तो आप उसे बतलायें। (११)

जैमिनि के वाक्य को सुनकर उन कृष्णद्वैपायन मुनि

भगवानुवाच ।

साधु साधु महाभाग यत्पृष्टं भवता मुने ।
वक्ष्ये गुह्यतमाद् गुह्यं शृण्वन्त्वन्ये महर्षयः ॥१३
ईश्वरेण पुरा प्रोक्तं ज्ञानमेतत् सनातनम् ।
गूढमप्राज्ञविद्विष्टं सेवितं सूक्ष्मदर्शिभिः ॥१४
नाश्रद्दधाने दातव्यं नाभक्ते परमेष्ठिनः ।
न वेदविद्विषि शुभं ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ॥१५
मेरुशृङ्गे पुरा देवमीशानं त्रिपुरद्विषम् ।
देवासनगता देवी महादेवमपृच्छत ॥१६

देव्युवाच ।

देवदेव महादेव भक्तानामार्त्तिनाशन ।
कथं त्वां पुरुषो देवमचिरादेव पश्यति ॥१७
सांख्ययोगस्तथा ध्यानं कर्मयोगोऽथ वैदिकः ।
आयासबहुला लोके यानि चान्यानि शंकर ॥१८
येन विभ्रान्तचित्तानां योगिनां कर्मिणामपि ।
दृश्यो हि भगवान् सूक्ष्मः सर्वेषामथ देहिनाम् ॥१९
एतद् गुह्यतमं ज्ञानं गूढं ब्रह्मादिसेवितम् ।
हिताय सर्वभक्तानां ब्रूहि कामाङ्गनाशन ॥२०

ईश्वर उवाच ।

अवाच्यमेतद् विज्ञानं ज्ञानमज्ञैर्बहिष्कृतम् ।
वक्ष्ये तव यथा तत्त्वं यदुक्तं परमर्षिभिः ॥२१
परं गुह्यतमं क्षेत्रं मम वाराणसी पुरी ।
सर्वेषामेव भूतानां संसारार्णवतारिणी ॥२२
तत्र भक्ता महादेवि मदीयं व्रतमास्थिताः ।
निवसन्ति महात्मानः परं नियममास्थिताः ॥२३
उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च तत् ।
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं मम ॥२४
स्थानान्तरं पवित्राणि तीर्थान्यायतनानि च ।
श्मशानसंस्थितान्येव दिव्यभूमिगतानि च ॥२५

ने वृषकेतन (शिव) को प्रणाम कर गम्भीर वाणी में कहा । (१२)

भगवान् ने कहा—हे महाभाग्यशाली मुनि! आप धन्य हैं, धन्य हैं। आपने जो पूछा है मैं उस गुह्यतम से भी गुह्य (तत्त्व) का वर्णन करता हूं। अन्य सभी महर्षिगण सुनें । (१३)

प्राचीन काल में ईश्वर (शङ्कर) ने इस सनातन गूढ़ ज्ञान का वर्णन किया था। अज्ञानी लोग इससे द्वेष करते हैं तथा सूक्ष्मदर्शी इसका सेवन करते हैं । (१४)

अश्रद्धालु, परमेष्ठी अर्थात् शङ्कर के अभक्त एवं वेद से विद्वेष करने वालों को ज्ञानों में उत्तम यह शुभ ज्ञान नहीं प्रदान करना चाहिये । (१५)

प्राचीन काल में मेरुशृंग पर देव (शंकर) के आसन पर स्थित देवी पार्वती ने त्रिपुरारि महादेव ईशान से पूछा । (१६)

देवी ने कहा—हे भक्तों का कष्ट दूर करने वाले देवाधिदेव महादेव ! पुरुष किस प्रकार शीघ्र आप देव का दर्शन कर सकता है ? (१७)

हे शंकर ! सांख्य-योग, ध्यान, वैदिक-कर्मयोग और अन्य अनेक अधिक परिश्रम साध्य (कर्म) बतलाये गये हैं । (१८)

हे कामदेव के शरीर को नष्ट करने वाले (शंकर) ! सभी भक्तों के हितार्थ ब्रह्मादि से सेवित उस अत्यन्त गुह्य एवं गूढ़ ज्ञान को बतलायें जिससे भ्रान्तचित्त विज्ञानी एवं कर्म-योगी मनुष्यों एवं समस्त देहधारियों को सूक्ष्म भगवान् का दर्शन होता है । (१९, २०)

ईश्वर ने कहा—श्रेष्ठ ऋषियों ने जिस विज्ञान का वर्णन किया है उस अज्ञानियों से बहिष्कृत अकथनीय तत्त्व को तुमसे कहता हूँ । (२१)

मेरी वाराणसी पुरी अत्यन्त गुह्य श्रेष्ठ क्षेत्र है। यह (पुरी) सभी प्राणियों को संसार-सागर से तारने वाली है । (२२)

हे महादेवी ! नियमपूर्वक मेरा व्रत करते हुए महात्मा भक्त लोग वहाँ निवास करते हैं । (२३)

मेरा उत्कृष्ट अविमुक्त (नामक काशीक्षेत्र) सभी तीर्थों में उत्तम, सभी स्थानों से श्रेष्ठ एवं सभी ज्ञानों से उत्तम ज्ञान है । (२४)

दिव्य-भूमि-स्थान में स्थित अन्य पवित्र स्थान, तीर्थ एवं मन्दिर श्मशान-रूपी काशी में स्थित हैं ।

भूर्लोके नैव संलग्नमन्तरिक्षे ममालयम् ।
अयुक्तास्तन्न पश्यन्ति युक्ताः पश्यन्ति चेतसा ।।२६
श्मशानमेतद् विख्यातमविमुक्तमिति श्रुतम् ।
कालो भूत्वा जगदिदं संहराम्यत्र सुन्दरि ।।२७
देवीदं सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतमं मम ।
मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति मामेव प्रविशन्ति ते ।।२८
दत्तं जप्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
ध्यानमध्ययनं ज्ञानं सर्वं तत्राक्षयं भवेत् ।।२९
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसंचितम् ।
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ।।३०
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये वर्णसंकराः ।
स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः ।।३१
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः ।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते वरानने ।।३२
चन्द्रार्द्धमौलयस्त्र्यक्षा महावृषभवाहनाः ।
शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः ।।३३
नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी ।
ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम् ।।३४
मोक्षं सुदुर्लभं मत्वा संसारं चातिभीषणम् ।
अश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्यां वसेन्नरः ।।३५
दुर्लभा तपसा चापि पूतस्य परमेश्वरि ।
यत्र तत्र विपन्नस्य गतिः संसारमोक्षणी ।।३६
प्रसादाज्जायते ह्येतन्मम शैलेन्द्रनन्दिनि ।
अप्रबुद्धा न पश्यन्ति मम मायाविमोहिताः ।।३७
अविमुक्तं न सेवन्ति मूढा ये तमसावृताः ।
विण्मूत्ररेतसां मध्ये ते वसन्ति पुनः पुनः ।।३८
हन्यमानोऽपि यो विद्वान् वसेद् विघ्नशतैरपि ।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ।।३९

मेरा गृहस्वरूप-वाराणसी क्षेत्र-भूलोक से सम्बद्ध नहीं है अपितु यह अन्तरिक्ष में अवस्थित है। जो (योग से) युक्त नहीं हैं वे (इसे) नहीं देख सकते। योग से युक्त लोग चित्त द्वारा इसका साक्षात्कार करते हैं। (२५, २६)

हे सुन्दरी ! इस प्रसिद्ध श्मशान को अविमुक्त कहा जाता है। मैं काल-स्वरूप धारण कर यहाँ इस जगत् का संहार करता हूँ। (२७)

हे देवी ! सभी गुह्यों में यह स्थान मुझे अत्यन्त प्रिय है। मेरे भक्त वहाँ जाते एवं मुझ में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। (२८)

वहाँ पर किया हुआ सभी प्रकार का दान, जप, होम, यज्ञ, तप, कर्म, ध्यान, अध्ययन एवं ज्ञान अक्षय होता है। अविमुक्त-वाराणसी—क्षेत्र में प्रविष्ट होने वालों के अन्य सहस्रों जन्मों के पूर्वसञ्चित सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। (२९, ३०)

हे सुमुखी देवि ! अविमुक्त-वाराणसी—क्षेत्र में काल-वश मरे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, स्त्रियाँ, म्लेच्छ, अन्य संकीर्ण पाप योनियों वाले प्राणी, कीड़े, चीटियाँ एवं अन्य पशु-पक्षी सिर पर अर्द्धचन्द्र धारण करने वाले, त्रिलोचन एवं महावृषभ पर सवारी करने वाले (शिव-स्वरूप) मानव बनकर मेरे कल्याणमय पुर में उत्पन्न होते हैं। (३१-३३)

अविमुक्त-नामक वाराणसी—क्षेत्र में मरने वाला कोई पापी नरक नहीं जाता है। ईश्वर के अनुग्रह से सभी परम गति प्राप्त करते हैं। (३४)

मोक्ष को अत्यन्त दुर्लभ तथा संसार को अतिभीषण समझ कर पत्थर द्वारा पैरों को तोड़कर मनुष्य वाराणसी में निवास करे। (३५)

हे परमेश्वरी ! तपस्या द्वारा पवित्र हुए प्राणी को भी जहाँ कहीं मरने पर संसार से मुक्त करने वाली गति दुर्लभ होती है। (३६)

हे शैलेन्द्रनन्दिनी ! मेरे अनुग्रह से यह (गति यहाँ प्राप्त) हो जाती है। मेरी माया से मोहित अज्ञानी लोग इस तत्त्व को नहीं देखते। (३७)

तमोगुण से आवृत जो मूढ अविमुक्त-नामक क्षेत्र का सेवन नहीं करते वे पुनः-पुनः मल-मूत्र और रजोवीर्य के मध्य निवास करते हैं। (३८)

हे देवी ! सैकड़ों विघ्नों से आहत होने पर भी जो (अविमुक्त नामक वाराणसी क्षेत्र में) निवास करता है वह उस श्रेष्ठ स्थान पर जाता है जहाँ जाने पर शोक नहीं करना पड़ता। (३९)

जन्ममृत्युजरामुक्तं परं याति शिवालयम् ।
अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम् ।
यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्यन्ति पण्डिताः ।।४०

न दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैर्नापि विद्यया ।
प्राप्यते गतिरुत्कृष्टा याऽविमुक्ते तु लभ्यते ।।४१

नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डालाद्या जुगुप्सिताः ।
किल्बिषैः पूर्णदेहा ये विशिष्टैः पातकैस्तथा ।
भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः ।।४२

अविमुक्तं परं ज्ञानमविमुक्तं परं पदम् ।
अविमुक्तं परं तत्त्वमविमुक्तं परं शिवम् ।।४३

कृत्वा वै नैष्ठिकीं दीक्षामविमुक्ते वसन्ति ये ।
तेषां तत्परमं ज्ञानं ददाम्यन्ते परं पदम् ।।४४

प्रयागं नैमिषं पुण्यं श्रीशैलोऽथ महालयः ।
केदारं भद्रकर्णं च गया पुष्करमेव च ।।४५

कुरुक्षेत्रं रुद्रकोटिर्नर्मदाम्रातकेश्वरम् ।
शालिग्रामं च कुब्जाम्रं कोकामुखमनुत्तमम् ।
प्रभासं विजयेशानं गोकर्णं भद्रकर्णकम् ।।४६

एतानि पुण्यस्थानानि त्रैलोक्ये विश्रुतानि ह ।
न यास्यन्ति परं मोक्षं वाराणस्यां यथा मृताः ।।४७

वाराणस्यां विशेषेण गङ्गा त्रिपथगामिनी ।
प्रविष्टा नाशयेत् पापं जन्मान्तरशतैः कृतम् ।।४८

अन्यत्र सुलभा गङ्गा श्राद्धं दानं तपो जपः ।
व्रतानि सर्वमेवैतद् वाराणस्यां सुदुर्लभम् ।।४९

यजेत जुहुयान्नित्यं ददात्यर्चयतेऽमरान् ।
वायुभक्षश्च सततं वाराणस्यां स्थितो नरः ।।५०

यदि पापो यदि शठो यदि वाऽधार्मिको नरः ।
वाराणसीं समासाद्य पुनाति सकलं नरः ।।५१

वाराणस्यां महादेवं येऽर्चयन्ति स्तुवन्ति वै ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते विज्ञेया गणेश्वराः ।।५२

(वह व्यक्ति) जन्म मृत्यु और जरा से रहित शिव के गृह में पहुँच जाता है। क्योंकि पुनः मरण को न प्राप्त करने वाले मोक्षार्थियों की वह गति होती है जिसे प्राप्त कर पण्डित लोग (स्वयं को) कृतकृत्य हुआ मानते हैं। (४०)

अविमुक्त (नामक वाराणसी क्षेत्र) में जो उत्कृष्ट गति प्राप्त होती है वह दान, तप, यज्ञ एवं विद्या से भी नहीं प्राप्त हो सकती। (४१)

ज्ञानियों का कहना है कि विशिष्ट पापों से युक्त शरीर वाले घृणायोग्य अनेक वर्णों के मनुष्यों एवं वर्णरहित चाण्डालादिकों के लिये अविमुक्त (नामक वाराणसी क्षेत्र) श्रेष्ठ औषधि है। (४२)

अविमुक्त (क्षेत्र) श्रेष्ठ ज्ञान-स्वरूप है। अविमुक्त उत्कृष्ट स्थान है। अविमुक्त (क्षेत्र) श्रेष्ठ तत्त्व है तथा अविमुक्त (क्षेत्र) परम कल्याणमय है। (४३)

निष्ठापूर्वक दीक्षा ग्रहण कर जो लोग अविमुक्त (क्षेत्र) में निवास करते हैं उन्हें मैं श्रेष्ठ ज्ञान एवं अन्त में परम पद प्रदान करता हूँ। (४४)

प्रयाग, पवित्र नैमिषारण्य, श्रीशैल, महालय, केदार, भद्रकर्ण, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रुद्रकोटि, नर्मदा, आम्रातकेश्वर, शालिग्राम, कुब्जाम्र, श्रेष्ठ कोकामुख, प्रभास, विजयेशान, गोकर्ण एवं भद्रकर्ण ये सभी तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। किन्तु जिस प्रकार वाराणसी में मरने वालों को परम मोक्ष प्राप्त होता है वैसा अन्यत्र (इन पूर्वोक्त स्थानों में मरे हुये लोगों को) नहीं प्राप्त होता। (४५-४७)

वाराणसी में प्रविष्ट त्रिपथगामिनी अर्थात् स्वर्ग, पाताल एवं भूलोक में प्रवाहित होने वाली—गंगा विशेषरूप से सैकड़ों जन्मों में किये पापों को नष्ट करती है। (४८)

गंगा, श्राद्ध, दान, तप, जप एवं व्रत अन्यत्र भी सुलभ हैं किन्तु वाराणसी में ये सभी अत्यन्त दुर्लभ हैं। (४९)

वाराणसी में स्थित मनुष्य वायु का भक्षण (करते हुए) निरन्तर यज्ञ, हवन, दान एवं देवों की पूजा करता है। (५०)

यदि मनुष्य पापी, शठ एवं अधार्मिक हो तो भी वाराणसी में पहुँचकर वह सबको पवित्र कर देता है। (५१)

वाराणसी में जो महादेव की स्तुति एवं आराधना करते हैं उन्हें सभी पापों से मुक्त गणेश्वर समझना चाहिए। (५२)

अन्यत्र योगज्ञानाभ्यां संन्यासादथवाऽन्यतः ।
प्राप्यते तत् परं स्थानं सहस्रेणैव जन्मना ॥५३
ये भक्ता देवदेवेशे वाराणस्यां वसन्ति वै ।
ते विन्दन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्मना ॥५४
यत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना ।
अविमुक्तं समासाद्य नान्यद् गच्छेत् तपोवनम् ॥५५
यतो मया न मुक्तं तदविमुक्तं ततः स्मृतम् ।
तदेव गुह्यं गुह्यानामेतद् विज्ञाय मुच्यते ॥५६
ज्ञानाज्ञानाभिनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम् ।
या गतिर्विहिता सुभ्रु साविमुक्ते मृतस्य तु ॥५७
यानि चैवाविमुक्तस्य देहे तूक्तानि कृत्स्नशः ।
पुरी वाराणसी तेभ्यः स्थानेभ्यो ह्यधिका शुभा ॥५८
यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः ।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तकम् ॥५९
यत् तत् परतरं तत्त्वमविमुक्तमिति श्रुतम् ।
एकेन जन्मना देवि वाराणस्यां तदाप्नुयात् ॥६०
भ्रूमध्ये नाभिमध्ये च हृदये चैव मूर्द्धनि ।
यथाऽविमुक्तमादित्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम् ॥६१
वरणायास्तथा चास्या मध्ये वाराणसी पुरी ।
तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवाविमुक्तकम् ॥६२
वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति ।
यत्र नारायणो देवो महादेवो दिवेश्वरः ॥६३
तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
उपासते मां सततं देवदेवं पितामहम् ॥६४
महापातकिनो ये च ये तेभ्यः पापकृत्तमाः ।
वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम् ॥६५
तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेद् वै मरणान्तिकम् ।
वाराणस्यां महादेवाज्ज्ञानं लब्ध्वा विमुच्यते ॥६६
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसः ।
ततो नैव चरेत् पापं कायेन मनसा गिरा ॥६७

अन्यत्र योग, ज्ञान, संन्यास अथवा अन्य उपायों से सहस्त्रों जन्मों में परम पद की प्राप्ति होती है। (५३)

किन्तु, देवाधिदेव के जो भक्त वाराणसी में रहते हैं वे एक ही जन्म में श्रेष्ठ मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। (५४)

जहाँ एक ही जन्म में योग, ज्ञान और मुक्ति (की प्राप्ति होती है) उस अविमुक्त (क्षेत्र) में पहुँचकर अन्य किसी तपोवन में नहीं जाना चाहिए। (५५)

क्योंकि मैं उसे नहीं छोड़ता इसीलिये उसे अविमुक्त (क्षेत्र) कहते हैं। वही गुह्यों में अत्यन्त गुह्य तत्त्व है। इसे जानकर प्राणी मुक्त हो जाता है। (५६)

हे सुन्दर भौहों वाली ! ज्ञान और अज्ञान में लगे हुए परमानन्द की इच्छा करने वालों की जो गति कही गयी है वह अविमुक्त में मरने वालों को प्राप्त होती है।) (५७)

(अविमुक्त स्वरूप) देह में नित्य जिन क्षेत्रों का वर्णन हुआ है वाराणसी पुरी उन सभी स्थानों की अपेक्षा अधिक कल्याणकारिणी है। (५८)

यह अविमुक्त (क्षेत्र) ऐसा है जहाँ साक्षात् ईश्वर महादेव देहान्त होने के समय तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं। (५९)

हे देवि ! जिसे अविमुक्त कहा जाता है वह उत्कृष्ट परम तत्त्व वाराणसी में एक जन्म में ही प्राप्त हो जाता है। (६०)

भ्रूमध्य, नाभि के मध्य, हृदय, मस्तक तथा आदित्य में जिस प्रकार अविमुक्त स्थित है उसी प्रकार वाराणसी में अविमुक्त क्षेत्र प्रतिष्ठित हुआ है। (६१)

वरणा और असी के मध्य वाराणसी पुरी स्थित है। वहीं अविमुक्त नामक नित्य तत्त्व स्थित है। (६२)

वाराणसी से श्रेष्ठ कोई स्थान न तो हुआ और न होगा (क्योंकि) वहाँ नारायण देव तथा दिवेश्वर महादेव स्थित हैं। (६३)

वहाँ गन्धर्वों, यक्षों, सर्पों एवं राक्षसों के सहित देवगण सतत मुझ देवाधिदेव पितामह की उपासना करते हैं। (६४)

जो महापापी हैं अथवा जो उनसे भी अधिक पापमुक्त है वे वाराणसी में पहुंच कर परम गति प्राप्त कर लेते है। (६५)

अतः मोक्षार्थी को मरणपर्यन्त वाराणसी में रहना चाहिए। वाराणसी में महादेव से ज्ञान प्राप्त कर (मनुष्य) मुक्त हो जाता है। (६६)

किन्तु पाप से आक्रान्त चित्त वालों को विघ्न होते

एतद् रहस्यं वेदानां पुराणानां च सुव्रताः ।
अविमुक्ताश्रयं ज्ञानं न कश्चिद् वेत्ति तत्त्वतः ॥६८
देवतानामृषीणां च शृण्वतां परमेष्ठिनाम् ।
देव्यै देवेन कथितं सर्वपापविनाशनम् ॥६९
यथा नारायणः श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तमः ।
यथेश्वराणां गिरिशः स्थानानां चैतदुत्तमम् ॥७०
यैः समाराधितो रुद्रः पूर्वस्मिन्नेव जन्मनि ।
ते विन्दन्ति परं क्षेत्रमविमुक्तं शिवालयम् ॥७१
कलिकल्मषसंभूता येषामुपहता मतिः ।
न तेषां वेदितुं शक्यं स्थानं तत् परमेष्ठिनः ॥७२
ये स्मरन्ति सदा कालं विन्दन्ति च पुरीमिमाम् ।
तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम् ॥७३
यानि चेह प्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालयाः ।
नाशयेत् तानि सर्वाणि देवः कालतनुः शिवः ॥७४
आगच्छतामिदं स्थानं सेवितुं मोक्षकाङ्क्षिणाम् ।
मृतानां च पुनर्जन्म न भूयो भवसागरे ॥७५
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः ।
योगी वाप्यथवाऽयोगी पापी वा पुण्यकृत्तमः ॥७६
न वेदवचनात् पित्रोर्न चैव गुरुवादतः ।
मतिरुत्क्रमणीया स्यादविमुक्तगतिं प्रति ॥७७

सूत उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा भगवान् व्यासो वेदविदां वरः ।
सहैव शिष्यप्रवरैर्वाराणस्यां चचार ह ॥७८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

हैं । अतः शरीर, मन, और वाणी द्वारा पाप नहीं करना चाहिये । (६७)

हे सुव्रतो ! यह वेदों एवं पुराणों का रहस्य है । अविमुक्त-अर्थात् वाराणसी क्षेत्र-सम्बन्धी ज्ञान को तत्त्वतः कोई नहीं जानता । (६८)

परमेष्ठियों, ऋषिगणों एवं देवगण के समक्ष महादेव ने पार्वती से सर्वपापनाशक यह ज्ञान कहा था । (६९)

देवों में जिस प्रकार पुरुषोत्तम नारायण श्रेष्ठ हैं एवं ईश्वरों में जैसे महेश्वर श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सभी स्थानों में यह (वाराणसी) उत्तम है । (७०)

पूर्व जन्म में ही जिन्होंने रुद्र की आराधना की है वे ही अविमुक्त क्षेत्र नामक शिव के निवास स्थान को प्राप्त करते हैं । (७१)

जिनकी मन्द मति कलि के दोषों से उत्पन्न हुई है वे परमेष्ठी के उस श्रेष्ठ स्थान को नहीं देख सकते । (७२)

जो सर्वदा काल-स्वरूप शिव का स्मरण करते तथा इस पुरी का स्मरण करते हैं उनके इस लोक एवं परलोक सम्बन्धी समस्त पातक शीघ्र नष्ट हो जाते हैं । (७३)

यहाँ रहने वाले जो पाप करते हैं उन सभी को कालस्वरूप देव शिव नष्ट कर देते हैं । (७४)

मोक्ष की इच्छा से यहाँ आने वालों को मृत्यु के पश्चात् पुनः भवसागर में जन्म नहीं लेना पड़ता । (७५)

अतः योगी अथवा अयोगी, पापी अथवा अत्यन्त पुण्यकर्मा भी मनुष्य सभी प्रकार का प्रयत्न कर वाराणसी में निवास करे । (७६)

वेद के वचन से, माता पिता के कहने से और गुरु के वचन से भी वाराणसी आने के विचार का त्याग नहीं करना चाहिए । (७७)

सूत ने कहा—ऐसा कहकर वेदज्ञों में श्रेष्ठ भगवान् व्यास श्रेष्ठ शिष्यों के साथ वाराणसी में भ्रमण करने लगे । (७८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में उनतीसवाँ अध्याय समाप्त—२९.

३०

सूत उवाच ।

स शिष्यैः संवृतो धीमान् गुरुर्द्वैपायनो मुनिः ।
जगाम विपुलं लिङ्गमोंकारं मुक्तिदायकम् ॥१
तत्राभ्यर्च्य महादेवं शिष्यैः सह महामुनिः ।
प्रोवाच तस्य माहात्म्यं मुनीनां भावितात्मनाम्॥२
इदं तद् विमलं लिङ्गमोंकारं नाम शोभनम् ।
अस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥३
एतत् परतरं ज्ञानं पञ्चायतनमुत्तमम् ।
सेवितं सूरिभिर्नित्यं वाराणस्यां विमोक्षदम् ॥४
अत्र साक्षान्महादेवः पञ्चायतनविग्रहः ।
रमते भगवान् रुद्रो जन्तूनामपवर्गदः ॥५
यत् तत् पाशुपतं ज्ञानं पञ्चार्थमिति शब्दयते ।
तदेतद् विमलं लिङ्गमोङ्कारे समवस्थितम् ॥६
शान्त्यतीता तथा शान्तिर्विद्या चैव परा कला ।
प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च पञ्चार्थं लिङ्गमैश्वरम् ॥७
पञ्चानामपि देवानां ब्रह्मादीनां सदाश्रयम् ।
ओंकारबोधकं लिङ्गं पञ्चायतनमुच्यते ॥८
संस्मरेदैश्वरं लिङ्गं पञ्चायतनमव्ययम् ।
देहान्ते तत्परं ज्योतिरानन्दं विशते बुधः ॥९
अत्र देवर्षयः पूर्वं सिद्धा ब्रह्मर्षयस्तथा ।
उपास्य देवमीशानं प्राप्तवन्तः परं पदम् ॥१०
मत्स्योदर्यास्तटे पुण्यं स्थानं गुह्यतमं शुभम् ।

३०

सूत ने कहा—

शिष्यों से घिरे हुए बुद्धिमान् गुरु द्वैपायन मुनि मुक्तिदायक विशाल ओङ्कार लिङ्ग के पास गए। (१)

वहाँ शिष्यों-सहित महादेव की पूजा करने के उपरान्त महामुनि ने पवित्र आतमा वाले मुनियों से उस (लिङ्ग) का माहात्म्य कहा— (२)

ओङ्कार नामक यह लिङ्ग सुन्दर एवं विमल है। इसके स्मरणमात्र से (प्राणी) सभी पातकों से मुक्त हो जाता है। (३)

विद्वान् लोग इस वाराणसी में मुक्ति देने वाले परम ज्ञानस्वरूप श्रेष्ठ पञ्चायतन की नित्य पूजा करते हैं। (४)

यहाँ प्राणियों को मोक्ष देने वाले साक्षात् महादेव भगवान् रुद्र पञ्चायतन शरीर धारण कर रमण करते रहते हैं। (५)

जिस पाशुपत ज्ञान को पञ्चार्थस्वरूप कहा जाता है ओङ्कार में वहीं विमल लिङ्ग के रूप में स्थित है। (६)

क्रमानुसार अतीता शान्ति, शान्ति, उत्कृष्ट कला वाली विद्या, प्रतिष्ठा एवं निवृत्ति इन्हीं पाँच अर्थों के प्रतीक स्वरूप महादेव का (ओंङ्कार) लिङ्ग है। (७)

ब्रह्मादि पाँच देवों का भी जो आश्रय स्वरूप है वही ओङ्कार नामक लिङ्ग पञ्चायतन कहलाता है। (८)

अविनाशी पञ्चायतन स्वरूप ईश्वरीय लिङ्ग का स्मरण करना चाहिए। (ऐसा करने से मनुष्य) देहान्त होने पर पुनः आनन्दस्वरूप श्रेष्ठ ज्योति में प्रवेश करता है। (९)

यहाँ पूर्वकाल में देवर्षियों, महर्षियों, एवं सिद्धों ने शङ्कर की उपासना कर परम पद प्राप्त किया था। (१०)

मत्स्योदरी (वर्तमान काशी की मछोदरी) के तट पर कल्याणकारक अत्यन्त गुह्य पवित्र स्थान है। हे श्रेष्ठ

गोचर्ममात्रं विप्रेन्द्रा ओङ्कारेश्वरमुत्तमम् ॥११
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं मध्यमेश्वरमुत्तमम् ।
विश्वेश्वरं तथोंकारं कपर्दीश्वरमेव च ॥१२
एतानि गुह्यलिङ्गानि वाराणस्यां द्विजोत्तमाः ।
न कश्चिदिह जानाति विना शंभोरनुग्रहात् ॥१३
एवमुक्त्वा ययौ कृष्णः पाराशर्यो महामुनिः ।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं द्रष्टुं देवस्य शूलिनः ॥१४
समभ्यर्च्य तथा शिष्यैर्माहात्म्यं कृत्तिवाससः ।
कथयामास शिष्येभ्यो भगवान् ब्रह्मवित्तमः ॥१५
अस्मिन् स्थाने पुरा दैत्यो हस्ती भूत्वा भवान्तिकम् ।
ब्राह्मणान् हन्तुमायातो येऽत्र नित्यमुपासते ॥१६
तेषां लिङ्गान्महादेवः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः ।
रक्षणार्थं द्विजश्रेष्ठा भक्तानां भक्तवत्सलः ॥१७
हत्वा गजाकृतिं दैत्यं शूलेनावज्ञया हरः ।
वासस्तस्याकरोत् कृत्तिं कृत्तिवासेश्वरस्ततः ॥१८

अत्र सिद्धिं परां प्राप्ता मुनयो मुनिपुंगवाः ।
तेनैव च शरीरेण प्राप्तास्तत् परमं पदम् ॥१९
विद्या विद्येश्वरा रुद्राः शिवा ये च प्रकीर्त्तिताः ।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं नित्यमावृत्य संस्थिताः ॥२०
ज्ञात्वा कलियुगं घोरमधर्मबहुलं जनाः ।
कृत्तिवासं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्ते न संशयः ॥२१
जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षोऽन्यत्राप्यते न वा ।
एकेन जन्मना मोक्षः कृत्तिवासे तु लभ्यते ॥२२
आलयः सर्वसिद्धानामेतत् स्थानं वदन्ति हि ।
गोपितं देवदेवेन महादेवेन शंभुना ॥२३
युगे युगे ह्यत्र दान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपासते महादेवं जपन्ति शतरुद्रियम् ॥२४
स्तुवन्ति सततं देवं त्र्यम्बकं कृत्तिवाससम् ।
ध्यायन्ति हृदये देवं स्थाणुं सर्वान्तरं शिवम् ॥२५

विप्रो ! श्रेष्ठ ओङ्कारेश्वर लिङ्ग गोत्रर्ममात्र अर्थात् गोचर्म के परिणाम तुल्य है । (११)

हे द्विजोत्तमो ! कृत्तिवासेश्वर, उत्तम मध्यमेश्वर, विश्वेश्वर, ओङ्कारेश्वर और उत्तम कपर्दीश्वर लिङ्ग ये ही वाराणसी के गुह्यलिङ्ग हैं । शम्भु के अनुग्रह बिना कोई इन्हें यहाँ नहीं जान पाता । (१२, १३)

ऐसा कहकर पराशर के पुत्र महामुनि कृष्णद्वैपायन शूलधारी महादेव के कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग का दर्शन करने गए । (१४)

शिष्यों-सहित लिङ्ग का पूजन कर श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी भगवान् (व्यास) ने शिष्यों से कृत्तिवासेश्वर का माहात्म्य कहा । (१५)

प्राचीन काल में एक दैत्य हाथी का रूप धारण कर यहाँ शङ्कर के समीप नित्य उपासना करने वाले ब्राह्मणों को मारने के लिये आया । (१६)

हे द्विजश्रेष्ठों ! उन भक्तों की रक्षा के लिये लिङ्ग से भक्तवत्सल त्रिलोचन महादेव प्रादुर्भूत हुए । (१७)

हाथी के आकार वाले उस दैत्य को अवज्ञा पूर्वक शूल से मारकर शङ्कर ने उसके चर्म का वस्त्र धारण किया । उसी समय से वे कृत्तिवासेश्वर हो गए । (१८)

हे श्रेष्ठ मुनियो ! यहाँ मुनि लोग श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त किये तथा उसी शरीर से परम पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त किये । (१९)

विद्या, विद्येश्वर, रुद्र एवं शिव नाम से कहे जाने वाले (सभी देवादि) कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग को नित्य आवृत किये रहते हैं । (२०)

घोर कलियुग एवं मनुष्यों के अधिक अधर्म युक्त होने के रहस्य को जानकर जो लोग कृत्तिवासेश्वर का त्याग नहीं करते वे निस्सन्देह कृतार्थ हो जाते हैं । (२१)

सहस्रों जन्मान्तर से अन्यत्र मोक्ष प्राप्त होता है अथवा नहीं होता किन्तु कृत्तिवास क्षेत्र में एक जन्म में ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है । (२२)

लोगों का कहना है कि सभी सिद्धों के आश्रय स्वरूप यह स्थान देवाधिदेव महादेव शम्भु के द्वारा सुरक्षित है । (२३)

प्रत्येक युग में वेदपारगामी इन्द्रियनिग्रही ब्राह्मण यहाँ महादेव की उपासना एवं शतरुद्री का जप करते हैं । (२४)

(वे) हृदय में नित्य स्थाणु सर्वान्तरात्मा शिव का

गायन्ति सिद्धाः किल गीतकानि
ये वाराणस्यां निवसन्ति विप्राः ।
तेषामथैकेन भवेन मुक्तिर्
ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः ॥२६

संप्राप्य लोके जगतामभीष्टं
सुदुर्लभं विप्रकुलेषु जन्म ।
ध्याने समाधाय जपन्ति रुद्रं
ध्यायन्ति चित्ते यतयो महेशम् ॥२७

आराधयन्ति प्रभुमीशितारं
वाराणसीमध्यगता मुनीन्द्राः ।
यजन्ति यज्ञैरभिसंधिहीनाः
स्तुवन्ति रुद्रं प्रणमन्ति शंभुम् ॥२८

नमो भवायामलयोगधाम्ने
स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम् ।
स्मरामि रुद्रं हृदये निविष्टं
जाने महादेवमनेकरूपम् ॥२९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

३१

सूत उवाच ।

समाभाष्य मुनीन् धीमान् देवदेवस्य शूलिनः ।
जगाम लिङ्गं तद् द्रष्टुं कपर्दीश्वरमव्ययम् ॥१
स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयित्वा पितॄन् द्विजाः ।
पिशाचमोचने तीर्थे पूजयामास शूलिनम् ॥२
तत्राश्चर्यमपश्यंस्ते मुनयो गुरुणा सह ।
मेनिरे क्षेत्रमाहात्म्यं प्रणेमुर्गिरिशं हरम् ॥३
कश्चिदभ्याजगामेदं शार्दूलो घोररूपधृक् ।

ध्यान करते तथा त्रिलोचन कृत्तिवास त्रिलोचन महादेव की स्तुति करते हैं । (२५)

हे विप्रो ! सिद्ध लोग यह गीत गाते हैं कि जो लोग वाराणसी में निवास करते एवं कृत्तिवासा के शरणागत हैं उन्हें एक ही जन्म में मुक्ति प्राप्त हो जाती है । (२६)

लोक में संसार को अभीष्ट अत्यन्त दुर्लभ विप्रकुल में जन्म प्राप्त कर संयमी लोग चित्त एकाग्र कर रुद्र का जप करते एवं चित्त में महेश का ध्यान करते रहते हैं । (२७)

वाराणसी में रहने वाले श्रेष्ठ मुनिजन प्रभु शङ्कर की आराधना करते, फलाशा विना यज्ञों द्वारा पूजन करते, रुद्र की स्तुति करते एवं शम्भु को प्रणाम करते हैं । (२८)

शुद्ध योग के आश्रय स्वरूप भव को नमस्कार है। मैं स्थाणु पुराण गिरिश की शरण ग्रहण करता हूं। हृदय में स्थित रुद्र का स्मरण करता हूं तथा महादेव को अनेक रूपों में स्थित मानता हूं। (२९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में तीसवाँ अध्याय समाप्त-३०.

३१

सूत ने कहा—मुनियों से ऐसा कहने के उपरान्त बुद्धिमान् (व्यास) देवाधिदेव त्रिशूली के अविनाशी कपर्दीश्वर नामक लिङ्ग का दर्शन करने गये । (१)

हे द्विजो ! वहाँ पिशाचमोचन तीर्थ में स्नान करने उपरान्त विधानपूर्वक पितरों का तर्पण कर उन्होंने त्रिशूलधारी (शङ्कर) की पूजा की । (२)

वहाँ गुरु (व्यास) के सहित मुनियों ने एक आश्चर्य देखा । (इसे उन लोगों ने) क्षेत्र का माहात्म्य समझा और गिरिश हर शंकर को प्रणाम किया । (३)

एक भयङ्कर रूपधारी व्याघ्र एक हरिणी को

मृगीमेकां भक्षयितुं कपर्दीश्वरमुत्तमम् ।।४
तत्र सा भीतहृदया कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
धावमाना सुसंभ्रान्ता व्याघ्रस्य वशमागता ।।५
तां विदार्य नखैस्तीक्ष्णैः शार्दूलः सुमहाबलः ।
जगाम चान्यं विजनं देशं दृष्ट्वा मुनीश्वरान् ।।६
मृतमात्रा च सा बाला कपर्दीशाग्रतो मृगी ।
अदृश्यत महाज्वाला व्योम्नि सूर्यसमप्रभा ।।७
त्रिनेत्रा नीलकण्ठा च शशाङ्काङ्कितमूर्धजा ।
वृषाधिरूढा पुरुषैस्तादृशैरेव संवृता ।।८
पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति खेचरास्तस्य मूर्धनि ।
गणेश्वरः स्वयं भूत्वा न दृष्टस्तत्क्षणात् ततः ।।९
दृष्ट्वैतदाश्चर्यवरं जैमिनिप्रमुखा द्विजाः ।
कपर्दीश्वरमाहात्म्यं पप्रच्छुर्गुरुमच्युतम् ।।१०
तेषां प्रोवाच भगवान् देवाग्रे चोपविश्य सः ।
कपर्दीशस्य माहात्म्यं प्रणम्य वृषभध्वजम् ।।११
इदं देवस्य तल्लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम् ।
स्मृत्वैवाशेषपापौघं क्षिप्रमस्य विमुञ्चति ।।१२
कामक्रोधादयो दोषा वाराणसीनिवासिनाम् ।
विघ्नाः सर्वे विनश्यन्ति कपर्दीश्वरपूजनात् ।।१३
तस्मात् सदैव द्रष्टव्यं कपर्दीश्वरमुत्तमम् ।
पूजितव्यं प्रयत्नेन स्तोतव्यं वैदिकैः स्तवैः ।।१४
ध्यायतामत्र नियतं योगिनां शान्तचेतसाम् ।
जायते योगसंसिद्धिः सा षण्मासे न संशयः ।।१५
ब्रह्महत्यादयः पापा विनश्यन्त्यस्य पूजनात् ।
पिशाचमोचने कुण्डे स्नातस्यात्र समीपतः ।।१६
अस्मिन् क्षेत्रे पुरा विप्रास्तपस्वी शंसितव्रतः ।
शङ्कुकर्ण इति ख्यातः पूजयामास शंकरम् ।
जजाप रुद्रमनिशं प्रणवं ब्रह्मरूपिणम् ।।१७

भक्षण करने के लिये उत्तम कपर्दीश्वर के निकट आया। (४)

वह भयभीत मृगी वहाँ प्रदक्षिणा करते-करते दौड़ती हुई अत्यन्त व्यग्र होने से व्याघ्र के वशीभूत हो गयी। (५)

तीक्ष्ण नखों से उसे विदारित कर वह महाबलवान् व्याघ्र उन मुनियों को देखकर अन्य एकान्त स्थान को चला गया। (६)

कपर्दीश के सम्मुख मरते ही वह बाल्यावस्था की मृगी आकाश में सूर्यसमान तेजस्वी, महाज्वालास्वरूपा, तीन नेत्रों वाली, नीलकण्ठा, चन्द्रमा से सुशोभित मस्तक वाली एवं बैल पर आरूढ तथा उसी प्रकार के अर्थात् शिवस्वरूप-पुरुषों से युक्त होकर दिखलाई पड़ी। (७, ८)

आकाशचारी (देवादि योनियों के प्राणी) उसके सिर पर फूलों की वर्षा कर रहे थे। तदनन्तर वह स्वयं गणेश्वर होकर तत्क्षण अदृश्य हो गयी। (९)

यह महान् आश्चर्य देखकर जैमिनि प्रमुख-द्विजों ने अच्युत-स्वरूप-गुरु (व्यास) से कपर्दीश्वर का माहात्म्य पूछा। (१०)

वृषभध्वज को प्रणाम करने के उपरान्त (कपर्दीश्वर) देव के समक्ष बैठकर उन भगवान् (व्यास) ने उन लोगों को कपर्दीश का माहात्म्य बतलाया। (११)

यह महादेव का वही कपर्दीश्वर नामक उत्तम लिङ्ग है। जिसका स्मरण करने वाले का सम्पूर्ण पाप शीघ्र दूर हो जाता है। (१२)

कपर्दीश्वर का पूजन करने से वाराणसी के निवासियों के समस्त विघ्न-रूप कामक्रोधादि दोष नष्ट हो जाते हैं। (१३)

अतः सदा ही उत्तम कपर्दीश्वर का दर्शन करना चाहिये तथा वैदिक स्तुतियों से प्रयत्नपूर्वक (इनकी) पूजा एवं स्तुति करनी चाहिये। (१४)

यहाँ ध्यान करने वाले नियमित शान्तचित्त योगियों को छः महीने में निस्सन्देह योगसिद्धि प्राप्त होती है। (१५)

यहाँ समीप में स्थित पिशाचमोचन नामक कुण्ड में स्नान कर इस लिङ्ग की पूजा करने से ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं। (१६)

हे विप्रो! प्राचीन काल में शङ्कुकर्ण नाम से प्रसिद्ध कठोरव्रती तपस्वी ने इस क्षेत्र में शङ्कर की पूजा की। वह योगी सतत रुद्र ब्रह्म-स्वरूप प्रणव का जप करता था। (१७)

पुष्पधूपादिभिः स्तोत्रैर्नमस्कारैः प्रदक्षिणैः ।
उवास तत्र योगात्मा कृत्वा दीक्षां तु नैष्ठिकीम् ।।१८
कदाचिदागतं प्रेतं पश्यति स्म क्षुधान्वितम् ।
अस्थिचर्मपिनद्धाङ्गं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ।।१९
तं दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठः कृपया परया युतः ।
प्रोवाच को भवान् कस्माद् देशाद् देशमिमं श्रितः ।।२०
तस्मै पिशाचः क्षुधया पीड्यमानोऽब्रवीद् वचः ।
पूर्वजन्मन्यहं विप्रो धनधान्यसमन्वितः ।
पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तः कुटुम्बभरणोत्सुकः ।।२१
न पूजिता मया देवा गावोऽप्यतिथयस्तथा ।
न कदाचित् कृतं पुण्यमल्पं वा स्वल्पमेव वा ।।२२
एकदा भगवान् देवो गोवृषेश्वरवाहनः ।
विश्वेश्वरो वाराणस्यां दृष्टः स्पृष्टो नमस्कृतः ।।२३
तदाऽचिरेण कालेन पञ्चत्वमहमागतः ।
न दृष्टं तन्मया घोरं यमस्य वदनं मुने ।।२४
ईदृशीं योनिमापन्नः पैशाचीं क्षुधयाऽन्वितः ।
पिपासयाऽधुनाक्रान्तो न जानामि हिताहितम् ।।२५
यदि कंचित् समुद्धर्तुमुपायं पश्यसि प्रभो ।
कुरुष्व तं नमस्तुभ्यं त्वामहं शरणं गतः ।।२६
इत्युक्तः शङ्कुकर्णोऽथ पिशाचमिदमब्रवीत् ।
त्वादृशो न हि लोकेऽस्मिन् विद्यते पुण्यकृत्तमः ।।२७
यत् त्वया भगवान् पूर्वं दृष्टो विश्वेश्वरः शिवः ।
संस्पृष्टो वन्दितो भूयः कोऽन्यस्त्वत्सदृशो भुवि ।।२८
तेन कर्मविपाकेन देशमेतं समागतः ।
स्नानं कुरुष्व शीघ्रं त्वमस्मिन् कुण्डे समाहितः ।
येनेमां कुत्सितां योनिं क्षिप्रमेव प्रहास्यसि ।।२९
स एवमुक्तो मुनिना पिशाचो
दयालुना देववरं त्रिनेत्रम् ।
स्मृत्वा कपर्दीश्वरमीशितारं
चक्रे समाधाय मनोऽवगाहम् ।।३०

वह योगात्मा निष्ठापूर्वक दीक्षा धारण कर पुष्पधूपादि एवं स्तोत्र, नमस्कार और प्रदक्षिणा से (शिव की पूजा करते हुए) वहाँ रहने लगा । (१८)

(उसने) एक समय अस्थि एवं चर्म से व्याप्त शरीर वाले वारंवार निःश्वास ले रहे किसी आए हुए भूखे प्रेत को देखा । (१९)

उसे देखकर उन श्रेष्ठ मुनि ने अत्यन्त कृपा से युक्त होकर कहा "आप कौन हैं ? किस स्थान से इस स्थान पर आये हैं ? (२०)

भूख से पीड़ित हो रहे पिशाच ने उससे कहा—मैं पूर्व जन्म में धन, धान्य एवं पुत्रपौत्रादि से युक्त कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिए उत्सुक रहने वाला ब्राह्मण था । (२१)

मैंने देवों, गायों तथा अतिथियों की पूजा नहीं की । मैंने कभी भी छोटे से भी छोटा पुण्य नहीं किया । (२२)

एक वार वाराणसी में वृषवाहन भगवान् विश्वेश्वर रुद्र का दर्शन एवं स्पर्श कर उन्हें नमस्कार किया । (२३)

तदनन्तर शीघ्र ही मैं मृत्यु को प्राप्त हो गया । हे मुनि ! (इसी से) मैंने यम के उस महाभयानक मुख को नहा देखा । (२४)

इस प्रकार की पिशाच योनि प्राप्त कर भूख से पीड़ित एवं प्यास से व्याकुल हुए मुझे संप्रति हित और अहित का ज्ञान नहीं है । (२५)

हे प्रभु ! यदि कोई उद्धार करने का उपाय देखते हों तो उसे करें । आपको नमस्कार है । मैं आपकी शरण में आया हूँ । (२६)

ऐसा कहे जाने पर शंकुकर्ण ने पिशाच से यह कहा—इस लोक में तुम्हारे समान श्रेष्ठ पुण्य करने वाले नहीं हैं । (२७)

क्योंकि तुमने पूर्वकाल में भगवान् विश्वेश्वर शिव का दर्शन एवं स्पर्श कर उनको नमस्कार किया है । पृथ्वी पर तुम्हारे समान अन्य कौन है ? (२८)

उसी कर्म के परिणामस्वरूप (तुम) इस स्थान पर पहुंचे हो । तुम एकाग्रमन से शीघ्र इस कुण्ड में स्नान करो जिससे शीघ्र ही तुम इस कुत्सित योनि को छोड़ दोगे । (२९)

दयालु मुनि के ऐसा कहने पर उस पिशाच ने श्रेष्ठ त्रिलोचन नियामक देव कपर्दीश्वर का स्मरण करने के उपरान्त मन को एकाग्र कर स्नान किया । (३०)

तदाऽवगाढो मुनिसंनिधाने
ममार दिव्याभरणोपपन्नः ।
अदृश्यतार्कप्रतिमे विमाने
शशाङ्कचिह्नाङ्कितचारुमौलिः ॥३१

विभाति रुद्रैरभितो दिविस्थैः
समावृतो योगिभिरप्रमेयैः ।
सबालखिल्यादिभिरेष देवो
यथोदये भानुरशेषदेवः ॥३२

स्तुवन्ति सिद्धा दिवि देवसङ्घा
नृत्यन्ति दिव्याप्सरसोऽभिरामाः ।
मुञ्चन्ति वृष्टिं कुसुमाम्बुमिश्रां
गन्धर्वविद्याधरकिंनराद्याः ॥३३

संस्तूयमानोऽथ मुनीन्द्रसङ्घै-
रवाप्य बोधं भगवत्प्रसादात् ।
समाविशन्मण्डलमेतदग्र्यं
त्रयीमयं यत्र विभाति रुद्रः ॥३४

दृष्ट्वा विमुक्तं स पिशाचभूतं
मुनिः प्रहृष्टो मनसा महेशम् ।
विचिन्त्य रुद्रं कविमेकमग्निं
प्रणम्य तुष्टाव कपर्दिनं तम् ॥३५

शङ्कुकर्ण उवाच ।

कपर्दिनं त्वां परतः परस्ताद्
गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम् ।
व्रजामि योगेश्वरमीशितार-
मादित्यमग्निं कपिलाधिरूढम् ॥३६

त्वां ब्रह्मपारं हृदि सन्निविष्टं
हिरणमयं योगिनमादिमन्तम् ।
व्रजामि रुद्रं शरणं दिविस्थं
महामुनिं ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥३७

सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं
सहस्रबाहुं तमसः परस्तात् ।
त्वां ब्रह्मपारं प्रणमामि शंभुं
हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम् ॥३८

यतः प्रसूतिर्जगतो विनाशो
येनावृतं सर्वमिदं शिवेन ।
तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं
प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये ॥३९

तदुपरान्त स्नान कर (वह) मुनि के समीप मर गया। तत्पश्चात् सूर्य-तुल्य विमान में (वह) दिव्य आभूषणों से युक्त एवं चन्द्रमा के चिन्ह से सुशोभित सुन्दर मस्तक वाले (पुरुष के रूप में) दिखलायी पड़ा। (३१)

वह आकाश में स्थित रुद्रों, असंख्य योगियों एवं बालखिल्यादि से चतुर्दिक् आवृत होकर इस प्रकार सुशोभित होने लगा जैसे सभी के देव सूर्य उदय काल में प्रकाशित होते हैं। (३२)

आकाश में देवता एवं सिद्ध समूह (उसकी) स्तुति कर रहे थे तथा सुन्दर दिव्य अप्सरायें नृत्य कर रही थीं। गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरादि पुष्प तथा जल मिश्रित वर्षा कर रहे थे। (३३)

मुनियों के समूह से स्तुति किया जाता हुआ (वह) भगवान् की कृपा से ज्ञान प्राप्त कर उस त्रयीमय श्रेष्ठ मण्डल में प्रविष्ट हो गया जहाँ रुद्र प्रकाशित होते हैं। (३४)

पिशाच बने हुए (उस पुरुष) को मुक्त हुआ देखकर वह मुनि प्रसन्न मन से महेश का ध्यान कर एवं श्रेष्ठ आत्म-स्वरूप कवि रुद्राग्नि को नमस्कार कर उन जटा-जूटधारी (शिव) की स्तुति करने लगे। (३५)

शङ्कुकर्ण ने कहा—मैं परात्पर, अद्वितीय, रक्षक, पुराण, पुरुष, योगेश्वर, नियामक, आदित्य, अग्नि एवं कपिलारूढ़ आप कपर्दी की शरण में जाता हूं। (३६)

मैं हृदय में स्थित, हिरण्मय, आदि एवं अन्त स्वरूप, योगी, स्वर्गस्थ, महामुनि, पवित्र एवं ब्रह्मस्वरूप आप ब्रह्मपार रुद्र की शरण में जाता हूं। (३७)

मैं सहस्रों पैर, आँख एवं मस्तकों से युक्त, सहस्रों भुजाओं वाले, तमोगुण से रहित, ज्ञानातीत, हिरण्यगर्भाधिपति एवं त्रिलोचनधारी आप शम्भु को प्रणाम करता हूं। (३८)

जिससे जगत् की उत्पत्ति तथा विनाश होता है एवं जिन शिव ने इस सम्पूर्ण (विश्व) को आवृत किया है उन्हीं ज्ञानातीत भगवान् ईश को प्रणाम कर मैं उन की नित्य शरण में जाता हूँ। (३९)

अलिङ्गमालोकविहीनरूपं
स्वयंप्रभं चित्पतिमेकरुद्रम् ।
तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां
नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति ।।४०

यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगा
लब्ध्वा समाधिं परमार्थभूताः ।
पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं
तं ब्रह्मपारं भवतः स्वरूपम् ।।४१

न यत्र नामादिविशेषक्लृप्ति-
र्न संदृशे तिष्ठति यत्स्वरूपम् ।
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं
स्वयंभुवं त्वां शरणं प्रपद्ये ।।४२

यद् वेदवादाभिरता विदेहं
सब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम् ।
पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं
सब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।।४३

यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो
विवर्त्तते यं प्रणमन्ति देवाः ।
नमामि तं ज्योतिषि संनिविष्टं
कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम् ।।४४

व्रजामि नित्यं शरणं गुहेशं
स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुरारिम् ।
शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं
पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि ।।४५

स्तुत्वैवं शङ्कुकर्णोऽसौ भगवन्तं कपर्दिनम् ।
पपात दण्डवद् भूमौ प्रोच्चरन् प्रणवं परम् ।।४६

तत्क्षणात् परमं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम् ।
ज्ञानमानन्दमद्वैतं कोटिकालाग्निसन्निभम् ।।४७

शङ्कुकर्णोऽथ मुक्तात्मा तदात्मा सर्वगोऽमलः ।
निलिल्ये विमले लिङ्गे तदद्भुतमिवाभवत् ।।४८

एतद् रहस्यमाख्यातं माहात्म्यं वः कपर्दिनः ।
न कश्चिद् वेत्ति तमसा विद्वानप्यत्र मुह्यति ।।४९

य इमां शृणुयान्नित्यं कथां पापप्रणाशिनीम् ।
भक्तः पापविशुद्धात्मा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ।।५०

मै लिङ्ग-शून्य एवं आलोक-रहित रूप वाले, स्वयं-प्रभावान्, चित्पति, अद्वितीय रुद्र-स्वरूप उन ज्ञानागोचर आप परमेश्वर को नमस्कार करता हूँ जिनसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है। (४०)

सबीजयोग का त्याग करने वाले परमार्थभूत योगिजन समाधि लगाकर जिन देव का साक्षात्कार करते हैं मै आपके उसी ज्ञानागोचर स्वरूप को नित्य प्रणाम करता हूँ। (४१)

जिनमें न तो किसी नामादि विशेष (गुणों) की कोई कल्पना है, एवं जिनका न तो कोई रूप है ऐसे ब्रह्मपार (ज्ञानातीत) स्वयंभुव आपको मैं नित्य प्रणाम करता हूं तथा आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। (४२)

वैदिक सिद्धान्तों के अनुगामी आपके जिन स्वरूप को विदेह, ब्रह्मविज्ञानयुक्त, अद्वितीय एवं अभेदरूप इन अनेक प्रकारों से जानते हैं आपके उस ब्रह्मपार स्वरूप को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। (४३)

जिससे प्रकृति (प्रधान) पुराण पुरुष की प्रवृत्ति होती है तथा देवगण जिसको प्रणाम करते हैं मैं ज्योति में सन्निविष्ट कालस्वरूप आपके उस बृहत् स्वरूप को नमस्कार करता हूँ। (४४)

मैं नित्य गुहेश की शरण में जाता हूँ। मैं स्थाणु, पुरारि, गिरीश का शरणागत हूँ। मैं चन्द्रशेखर शिव की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं आप पिनाकी की शरण में जाता हूं। (४५)

इस प्रकार जटाजूटधारी भगवान् (शिव) की स्तुति कर शङ्कुकर्ण उत्कृष्ट प्रणव का उच्चारण करते हुए भूमि पर दण्डवत् गिर पड़ा। (४६)

उसी समय ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप, अद्वितीय, करोड़ों प्रलयकालीन अग्नि तुल्य शिवस्वरूप श्रेष्ठ लिङ्ग प्रकट हुआ। (४७)

तदनन्तर शङ्कुकर्ण नामक वह मुक्त आत्मा वाला निर्मल तदात्मभाव प्राप्त कर विमल लिङ्ग में विलीन हो गया। यह एक अद्भुत सी घटना हुई। (४८)

(मैंने) कपर्दी शिव का यह रहस्य एवं माहात्म्य बतलाया। इसे कोई नहीं जानता। विद्वान् भी इस विषय में अज्ञान से मोहित हो जाता है। (४९)

जो भक्त नित्य इस पापनाशिनी कथा को सुनेगा वह पाप से विमुक्त होकर रुद्र की समीपता प्राप्त करेगा। (५०)

पठेच्च सततं शुद्धो ब्रह्मपारं महास्तवम् ।
प्रातर्मध्याह्नसमये स योगं प्राप्नुयात् परम् ॥५१
इहैव नित्यं वत्स्यामो देवदेवं कपर्दिनम् ।
द्रक्ष्यामः सततं देवं पूजयामोऽथ शूलिनम् ॥५२
इत्युक्त्वा भगवान् व्यासः शिष्यैः सह महामुनिः ।
उवास तत्र युक्तात्मा पूजयन् वै कपर्दिनम् ॥५३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकत्रिंशोध्यायः ॥३१॥

३२

सूत उवाच ।
उषित्वा तत्र भगवान् कपर्दीशान्तिके पुनः ।
द्रष्टुं ययौ मध्यमेशं बहुवर्षगणान् प्रभुः ॥१
तत्र मन्दाकिनीं पुण्यामृषिसङ्घनिषेविताम् ।
नदीं विमलपानीयां दृष्ट्वा हृष्टोऽभवन्मुनिः ॥२
स तामन्वीक्ष्य मुनिभिः सह द्वैपायनः प्रभुः ।
चकार भावपूतात्मा स्नानं स्नानविधानवित् ॥३
संतर्प्य विधिवद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ।
पूजयामास लोकादिं पुष्पैर्नानाविधैर्भवम् ॥४
प्रविश्य शिष्यप्रवरैः सार्द्धं सत्यवतीसुतः ।
मध्यमेश्वरमीशानमर्चयामास शूलिनम् ॥५
ततः पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः ।
द्रष्टुं समागता रुद्रं मध्यमेश्वरमीश्वरम् ॥६
ओंकारासक्तमनसो वेदाध्ययनतत्पराः ।
जटिला मुण्डिताश्चापि शुक्लयज्ञोपवीतिनः ॥७
कौपीनवसनाः केचिदपरे चाप्यवाससः ।
ब्रह्मचर्यरताः शान्ता वेदान्तज्ञानतत्पराः ॥८

जो मनुष्य नित्य शुद्धतापूर्वक प्रातः एवं मध्याह्न समय में इस ब्रह्मपार महास्तव का पाठ करेगा उसे श्रेष्ठ योग की प्राप्ति होगी । (५१)

'मैं यहीं नित्य निवास करूँगा एवं देवाधिदेव कपर्दी त्रिशूली देव का निरन्तर दर्शन तथा पूजन करता रहूँगा ।' ऐसा कहकर महामुनि युक्तात्मा भगवान् व्यास शिष्यों के सहित कपर्दी की पूजा करते हुए वहाँ रहने लगे । (५२, ५३)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में इकतीसवाँ अध्याय समाप्त—३१.

३२

सूत ने कहा—बहुत दिनों तक कपर्दीश के निकट निवास कर पुनः भगवान् प्रभु (वेदव्यास) मध्यमेश्वर का दर्शन करने गये । (१)

वहाँ ऋषिसमूह से सेवित निर्मल जलवाली पवित्र मन्दाकिनी नदी को देखकर मुनि प्रसन्न हो गए । (२)

पवित्र हृदयवाले एवं स्नान की विधि को जानने वाले प्रभु द्वैपायन ने उसे देखकर मुनियों सहित स्नान किया । (३)

विधिपूर्वक देवों, ऋषियों एवं पितरों का तर्पण कर (उन्होंने) अनेक प्रकार के पुष्पों से लोकादि शङ्कर की पूजा की । (४)

श्रेष्ठ शिष्यों के साथ प्रवेशकर सत्यवती के पुत्र (व्यास) ने त्रिशूलधारी ईशान मध्यमेश्वर का पूजन किया । (५)

तदनन्तर शरीर में भस्म लगाये हुये शान्त पाशुपत लोग अर्थात् पशुपति के भक्तगण-ईश्वर मध्यमेश्वर रुद्र का दर्शन करते आये । (६)

उनका मन ओङ्कार के जप में लगा था तथा वे सभी वेदों के अध्ययन में तत्पर थे । वे लोग शुक्ल यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे एवं उनके मस्तक पर जटायें थीं अथवा मुण्डित थे । (७)

कुछ लोग कौपीन पहने हुए थे एवं कुछ बिना वस्त्र

दृष्ट्वा द्वैपायनं विप्राः शिष्यैः परिवृतं मुनिम् ।
पूजयित्वा यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ।।९
को भवान् कुत आयातः सह शिष्यैर्महामुने ।
प्रोचुः पैलादयः शिष्यास्तानृषीन् ब्रह्मभावितान् ।।१०
अयं सत्यवतीसूनुः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
व्यासः स्वयं हृषीकेशो येन वेदाः पृथक् कृताः ।।११
यस्य देवो महादेवः साक्षादेव पिनाकधृक् ।
अंशांशेनाभवत् पुत्रो नाम्ना शुक इति प्रभुः ।।१२
यः स साक्षान्महादेवं सर्वभावेन शंकरम् ।
प्रपन्नः परया भक्त्या यस्य तज्ज्ञानमैश्वरम् ।।१३
ततः पाशुपताः सर्वे हृष्टसर्वतनूरुहाः ।
नेमुरव्यग्रमनसः प्रोचुः सत्यवतीसुतम् ।।१४
भगवन् भवता ज्ञातं विज्ञानं परमेष्ठिनः ।
प्रसादाद् देवदेवस्य यत् तन्माहेश्वरं परम् ।।१५
तद्वदास्माकमव्यक्तं रहस्यं गुह्यमुत्तमम् ।
क्षिप्रं पश्येम तं देवं श्रुत्वा भगवतो मुखात् ।।१६
विसर्जयित्वा ताञ्छिष्यान् सुमन्तुप्रमुखांस्ततः ।
प्रोवाच तत्परं ज्ञानं योगिभ्यो योगवित्तमः ।।१७
तत्क्षणादेव विमलं संभूतं ज्योतिरुत्तमम् ।
लीनास्तत्रैव ते विप्राः क्षणादन्तरधीयत ।।१८
ततः शिष्यान् समाहूय भगवान् ब्रह्मवित्तमः ।
प्रोवाच मध्यमेशस्य माहात्म्यं पैलपूर्वकान् ।।१९
अस्मिन् स्थाने स्वयं देवो देव्या सह महेश्वरः ।
रमते भगवान् नित्यं रुद्रैश्च परिवारितः ।।२०
अत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीसुतः ।
उवास वत्सरं कृष्णः सदा पाशुपतैर्वृतः ।।२१
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राध्ययनतत्परः ।
आराधयन् हरिः शंभुं कृत्वा पाशुपतं व्रतम् ।।२२
तस्य ते बहवः शिष्या ब्रह्मचर्यपरायणाः ।
लब्ध्वा तद्वचनाज्ज्ञानं दृष्टवन्तो महेश्वरम् ।।२३

के थे। वे सभी ब्रह्मचर्ययुक्त, शान्त, एवं वेदान्त-ज्ञान परायण थे। (८)

हे विप्रो ! शिष्यों से घिरे हुए मुनि द्वैपायन को देखने के उपरान्त यथोचित रीति से उनकी पूजा कर (उन लोगों ने) यह वचन कहा— (९)

हे महामुनि ! आप कौन हैं एवं शिष्यों सहित कहाँ से आये हैं ! पैल इत्यादि शिष्यों ने उन ब्रह्मभाव प्राप्त ऋषियों से कहा— (१०)

ये सत्यवती के पुत्र मुनि कृष्णद्वैपायन व्यास हैं। ये स्वयं हृषीकेश हैं जिन्होंने वेदों को पृथक् किया। (११)

पिनाकधारी साक्षात् प्रभु महादेव अंशांशमात्र से इनके शुक नामक पुत्र हुए। (१२)

वे सम्पूर्णश्रद्धापूर्वक परा भक्ति द्वारा साक्षात् महादेव शङ्कर के शरणागत हुए हैं एवं जिन्हें ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान उपलब्ध है। (१३)

तदनन्तर वे सभी पाशुपत प्रसन्नता से रोमाञ्चित हो गए। स्थिर मन से (उन्होंने) सत्यवती के पुत्र व्यास को प्रणाम किया और कहा— (१४)

हे भगवन् ! देवाधिदेव के अनुग्रह से आप परमेष्ठी विषयक श्रेष्ठ माहेश्वर विज्ञान जानते हैं। (१५)

अतः आप हमें रूप से श्रेष्ठ अव्यक्त गोपनीय रहस्य बतलायें। आपके मुख से सुनकर शीघ्र हम उन देव का साक्षात्कार कर सकें। (१६)

तदुपरान्त उन सुमन्तु इत्यादि शिष्यों को हटा कर योगिश्रेष्ठ (व्यास) ने उन योगियों को वह श्रेष्ठ ज्ञान बतलाया। (१७)

हे विप्रो ! तत्काल ही उत्तम विमल ज्योति प्रकट हुई। क्षणमात्र में ही वे (पाशुपत गण) उसमें लीन एवं अन्तर्हित हो गये। (१८)

तदनन्तर पैल इत्यादि शिष्यों को बुलाकर श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी भगवान् (व्यास) ने उनसे मध्यमेश का माहात्म्य कहा। (१९)

इस स्थान पर रुद्रों से घिरे हुए भगवान् महेश्वर देव देवी के साथ नित्य विहार करते रहते हैं। (२०)

पूर्वकाल में पाशुपतों से आवृत, समस्त अङ्ग में भस्म लगाये हुए, रुद्र सम्बन्धी अध्ययन में तत्पर देवकी के पुत्र विश्वात्मा हृषीकेश कृष्ण हरि ने पाशुपत व्रत धारण कर शम्भु की आराधना करते हुए एक वर्ष तक यहाँ निवास किया था। (२१, २२)

उनके वचन से ज्ञान प्राप्त कर उनके अनेक ब्रह्मचर्यपरायण शिष्यों ने महेश्वर का साक्षात्कार किया। (२३)

तस्य देवो महादेवः प्रत्यक्षं नीललोहितः ।
ददौ कृष्णस्य भगवान् वरदो वरमुत्तमम् ॥२४
येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं मद्भक्ता विधिपूर्वकम् ।
तेषां तदैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति जगन्मय ॥२५
नमस्योऽर्चयितव्यश्च ध्यातव्यो मत्परैर्जनैः ।
भविष्यसि न संदेहो मत्प्रसादाद् द्विजातिभिः ॥२६
येऽत्र द्रक्ष्यन्ति देवेशं स्नात्वा रुद्रं पिनाकिनम् ।
ब्रह्महत्यादिकं पापं तेषामाशु विनश्यति ॥२७
प्राणांस्त्यजन्ति ये मर्त्याः पापकर्मरता अपि ।
ते यान्ति तत् परं स्थानं नात्र कार्या विचारणा ॥२८
धन्यास्तु खलु ते विप्रा मन्दाकिन्यां कृतोदकाः ।
अर्चयन्ति महादेवं मध्यमेश्वरमीश्वरम् ॥२९
स्नानं दानं तपः श्राद्धं पिण्डनिर्वपणं त्विह ।
एकैकशः कृतं विप्राः पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥३०
संनिहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
यत् फलं लभते मर्त्यस्तस्माद् दशगुणं त्विह ॥३१
एवमुक्त्वा महायोगी मध्यमेशान्तिके प्रभुः ।
उवास सुचिरं कालं पूजयन् वै महेश्वरम् ॥३२

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

३३

सूत उवाच ।
ततः सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्यायतनानि च ।
जगाम भगवान् व्यासो जैमिनिप्रमुखैर्वृतः ॥१
प्रयागं परमं तीर्थं प्रयागादधिकं शुभम् ।
विश्वरूपं तथा तीर्थं तालतीर्थमनुत्तमम् ॥२
आकाशाख्यं महातीर्थं तीर्थं चैवार्षभं परम् ।
स्वर्नीलं च महातीर्थं गौरीतीर्थमनुत्तमम् ॥३

साक्षात् नीललोहित वरदाता देव भगवान् महादेव ने उन कृष्ण को उत्तम वर दिया । (२४)

हे जगन्मय ! मेरे जो भक्त विधिपूर्वक गोविन्द की पूजा करेंगे उन्हें ईश्वरविषयक वह ज्ञान उत्पन्न होगा । (२५)

निस्सन्देह मेरे अनुग्रह से आप मेरे भक्त द्विजातियों के प्रणम्य, आराध्य एवं ध्येय होंगे । (२६)

स्नानोपरान्त जो यहाँ देवेश पिनाकी रुद्र का दर्शन करेंगे उनके ब्रह्महत्यादिक पाप शीघ्र नष्ट हो जायेंगे । (२७)

हे विप्रो ! पापकर्म में रत होने पर भी जो (यहाँ) प्राण-त्याग करेंगे उन्हें परम स्थान प्राप्त होगा । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए । (२८)

हे विप्रो ! वे निश्चय ही धन्य हैं, जो मन्दाकिनी में स्नान कर उत्तम मध्यमेश्वर महादेव का पूजन करते हैं । (२९)

हे विप्रो ! यहाँ पर एक बार भी किया हुआ स्नान, दान, तप, श्राद्ध एवं पिण्डदान सात पीढ़ियों तक कुल को पवित्र कर देता है । (३०)

सूर्य के राहु से ग्रस्त होने पर सन्निहती (कुरुक्षेत्र-तीर्थ) में स्नान करने से मनुष्य को जो फल प्राप्त होता है उससे दस गुना अधिक फल यहाँ होता है । (३१)

ऐसा कह कर महायोगी प्रभु (व्यास) ने बहुत समय तक महेश्वर की पूजा करते हुए मध्यमेश के समीप निवास किया । (३२)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्वविभाग में बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त—३२.

३३

सूत ने कहा—तदुपरान्त जैमिनि इत्यादि से आवृत भगवान् व्यास ने सभी गुह्य तीर्थों एवं स्थानों की यात्रा की । (१)

हे श्रेष्ठ द्विजो ! (व्यास जी आगे कहे जा रहे तीर्थों में गए) श्रेष्ठ तीर्थ प्रयाग, प्रयाग से भी अधिक शुभ तीर्थ विश्वरूप, श्रेष्ठ ताल तीर्थ, आकाश नामक महातीर्थ, श्रेष्ठ आर्षभ तीर्थ, स्वर्नील नामक महातीर्थ, अनुत्तम गौरीतीर्थ, श्रेष्ठ प्राजापत्य तीर्थ, स्वर्गद्वार, जम्बुकेश्वर,

प्राजापत्यं तथा तीर्थं स्वर्गद्वारं तथैव च ।
जम्बुकेश्वरमित्युक्तं धर्माख्यं तीर्थमुत्तमम् ।।४
गयातीर्थं महातीर्थं तीर्थं चैव महानदी ।
नारायणं परं तीर्थं वायुतीर्थमनुत्तमम् ।।५
ज्ञानतीर्थं परं गुह्यं वाराहं तीर्थमुत्तमम् ।
यमतीर्थं महापुण्यं तीर्थं संवर्तकं शुभम् ।।६
अग्नितीर्थं द्विजश्रेष्ठाः कलशेश्वरमुत्तमम् ।
नागतीर्थं सोमतीर्थं सूर्यतीर्थं तथैव च ।।७
पर्वताख्यं महागुह्यं मणिकर्णमनुत्तमम् ।
घटोत्कचं तीर्थवरं श्रीतीर्थं च पितामहम् ।।८
गङ्गातीर्थं तु देवेशं ययातेस्तीर्थमुत्तमम् ।
कापिलं चैव सोमेशं ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ।।९
अत्र लिङ्गं पुरानीय ब्रह्मा स्नातुं यदा गतः ।
तदानीं स्थापयामास विष्णुस्तल्लिङ्गमैश्वरम् ।।१०
ततः स्नात्वा समागत्य ब्रह्मा प्रोवाच तं हरिम् ।
मयानीतमिदं लिङ्गं कस्मात् स्थापितवानसि ।।११
तमाह विष्णुस्त्वत्तोऽपि रुद्रे भक्तिर्दृढा मम ।
तस्मात् प्रतिष्ठितं लिङ्गं नाम्ना तव भविष्यति ।।१२
भूतेश्वरं तथा तीर्थं तीर्थं धर्मसमुद्भवम् ।
गन्धर्वतीर्थं परमं वाह्नेयं तीर्थमुत्तमम् ।।१३
दौर्वासिकं व्योमतीर्थं चन्द्रतीर्थं द्विजोत्तमाः ।
चित्राङ्गदेश्वरं पुण्यं पुण्यं विद्याधरेश्वरम् ।।१४
केदारतीर्थमुग्राख्यं कालञ्जरमनुत्तमम् ।
सारस्वतं प्रभासं च भद्रकर्ण ह्रदं शुभम् ।।१५
लौकिकाख्यं महातीर्थं तीर्थं चैव महालयम् ।
हिरण्यगर्भं गोप्रेक्ष्यं तीर्थं चैव वृषध्वजम् ।।१६
उपशान्तं शिवं चैव व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम् ।
त्रिलोचनं महातीर्थं लोलार्कं चोत्तराह्वयम् ।।१७
कपालमोचनं तीर्थं ब्रह्महत्याविनाशनम् ।
शुक्रेश्वरं महापुण्यमानन्दपुरमुत्तमम् ।।१८
एवमादीनि तीर्थानि प्राधान्यात् कथितानि तु ।
न शक्यं विस्तराद् वक्तुं तीर्थसंख्या द्विजोत्तमाः ।।१९
तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाऽभ्यर्च्य पिनाकिनम् ।
उपोष्य तत्र तत्रासौ पाराशर्यो महामुनिः ।।२०

उत्तम धर्माख्य तीर्थ, गयातीर्थ, महातीर्थ, महानदी तीर्थ, श्रेष्ठ नारायण तीर्थ, अनुत्तम वायुतीर्थ, अत्यन्त गुह्य ज्ञानतीर्थ, उत्तम वाराह तीर्थ, अत्यन्त पवित्र यम तीर्थ, शुभ संवर्तक तीर्थ, अग्नि तीर्थ, उत्तम कलशेश्वर तीर्थ नागतीर्थ, सोमतीर्थ, सूर्यतीर्थ, अत्यन्त गुह्य पर्वतनामक तीर्थ, अनुत्तम मणिकर्ण, श्रेष्ठ घटोत्कच तीर्थ, श्री तीर्थ, पितामह तीर्थ, गंगा तीर्थ, देवेश तीर्थ, उत्तम ययाति तीर्थ, कपिल तीर्थ, सोमेश तीर्थ, अनुत्तम ब्रह्मतीर्थ । (२-९)

प्राचीन काल में जब ब्रह्मा यहाँ लिङ्ग लाकर स्नान करने चले गये थे उस समय उनके लाये हुए ईश्वर के लिङ्ग की विष्णु ने स्थापना कर दी। तदनन्तर स्नानोपरान्त आने पर ब्रह्मा ने हरि से कहा "आपने मेरे लाये इस लिङ्ग की स्थापना क्यों की"। (१०, ११)

विष्णु ने उनसे कहा—यतः रुद्र के प्रति आपसे अधिक मेरी दृढ़ भक्ति है इसलिए मैंने लिङ्ग को प्रतिष्ठित किया है। किन्तु यह आपके नाम से ही प्रसिद्ध होगा। (१२)

हे द्विजोत्तमो ! (व्यास जी पुनः आगे कहे जा रहे तीर्थों में गए) भूतेश्वर तीर्थ, धर्मसमुद्भव तीर्थ, गन्धर्व तीर्थ, उत्तम वाह्नेय तीर्थ, दौर्वासिक तीर्थ, व्योम तीर्थ, चन्द्र तीर्थ, पवित्र चित्राङ्गदेश्वर तीर्थ, पवित्र विद्याधरेश्वर तीर्थ, केदार तीर्थ, उग्र नामक तीर्थ, अनुत्तम कालञ्जर तीर्थ, सारस्वत तीर्थ, प्रभासतीर्थ, भद्रकर्णह्रद नामक शुभतीर्थ, लौकिक नामक महातीर्थ, महालयतीर्थ, हिरण्यगर्भतीर्थ, गोप्रेक्ष्य तीर्थ, वृषध्वजतीर्थ, उपशान्ततीर्थ, शिवतीर्थ, अनुत्तम व्याघ्रेश्वर तीर्थ, महातीर्थ, त्रिलोचनतीर्थ, लोलार्कतीर्थ, उत्तरनामक तीर्थ, ब्रह्महत्या विनाशक कपालमोचन तीर्थ, महापवित्र शुक्रेश्वर तीर्थ एवं उत्तम आनन्दपुर तीर्थ। (१३-१८)

प्रधानतावश इन सभी तीर्थों का वर्णन किया गया है। हे द्विजोत्तमो ! विस्तार पूर्वक तीर्थों की संख्या नहीं कहीं जा सकती। (१९)

पराशर पुत्र महामुनि (व्यास) उन सभी तीर्थों में स्नान, पिनाकधारी (शङ्कर) का पूजन, उपवास,

तर्पयित्वा पितॄन् देवान् कृत्वा पिण्डप्रदानकम् ।
जगाम पुनरेवापि यत्र विश्वेश्वरः शिवः ।।२१
स्नात्वाऽभ्यर्च्य परं लिङ्गं शिष्यैः सह महामुनिः ।
उवाच शिष्यान् धर्मात्मा स्वान् देशान् गन्तुमर्हथ।।२२
ते प्रणम्य महात्मानं जग्मुः पैलादयो द्विजाः ।
वासं च तत्र नियतो वाराणस्यां चकार सः ।।२३
शान्तो दान्तस्त्रिषवणं स्नात्वाऽभ्यर्च्य पिनाकिनम् ।
भैक्षाहारो विशुद्धात्मा ब्रह्मचर्यपरायणः ।।२४
कदाचिद् वसता तत्र व्यासेनामिततेजसा ।
भ्रममाणेन भिक्षा तु नैव लब्धा द्विजोत्तमाः ।।२५
ततः क्रोधावृततनुर्नराणामिह वासिनाम् ।
विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिर्विहीयते ।।२६
तत्क्षणे सा महादेवी शंकरार्द्धशरीरिणी ।
प्रादुरासीत् स्वयं प्रीत्या वेषं कृत्वा तु मानुषम् ।।२७
भो भो व्यास महाबुद्धे शप्तव्या भवता न हि ।
गृहाण भिक्षां मत्तस्त्वमुक्त्वैवं प्रददौ शिवा ।।२८
उवाच च महादेवी क्रोधनस्त्वं भवान् यतः ।
इह क्षेत्रे न वस्तव्यं कृतघ्नोऽसि त्वया सदा ।।२९
एवमुक्तः स भगवान् ध्यानाज्ज्ञात्वा परां शिवाम् ।
उवाच प्रणतो भूत्वा स्तुत्वा च प्रवरैः स्तवैः ।।३०
चतुर्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं देहि शांकरि ।
एवमस्त्वित्यनुज्ञाय देवी चान्तरधीयत ।।३१
एवं स भगवान् व्यासो महायोगी पुरातनः ।
ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान् सर्वान् स्थितस्तस्याथ पार्श्वतः ।।३२
एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं सेवन्ति पण्डिताः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः ।।३३

सूत उवाच ।

यः पठेदविमुक्तस्य माहात्म्यं शृणुयादपि ।

पितरों एवं देवों का तर्पण तथा पिण्डदान कर पुनः (वहाँ गये) जहाँ विश्वेश्वर शिव स्थित हैं। (२०, २१)

शिष्यों सहित महामुनि (व्यास जी) ने स्नान कर महालिङ्ग का पूजन किया। (तदुपरान्त उन्होंने) शिष्यों से कहा (अब आप लोग) यथेष्ट स्थानों को जाँय । (२२)

हे द्विजों ! महात्मा (व्यास) को प्रणाम कर वे पैल इत्यादि चले गये। वे (व्यास) नियमित रूप से वाराणसी में रहने लगे । (२३)

वे शान्त, जितेन्द्रिय, विशुद्धात्मा एवं ब्रह्मचर्यपरायण होकर तीनों सन्ध्याओं में स्नान करते तथा भिक्षा द्वारा प्राप्त आहार करते हुए पिनाकी की आराधना करने लगे । (२४)

हे द्विजोत्तमो ! वहाँ रहते समय एक दिन अमित-तेजस्वी व्यास को भ्रमण करते हुए भिक्षा नहीं मिली । (२५)

तदनन्तर उनका शरीर क्रोध से आविष्ट हो गया । (उन्होंने विचार किया कि) यहाँ रहने वाले मनुष्यों के लिये ऐसे विघ्न की सृष्टि करूँगा जिससे उनकी सिद्धि नष्ट हो जायेगी । (२६)

उसी समय शङ्कर की अर्द्धाङ्गिनी महादेवी (पार्वती) मनुष्य रूप धारण कर प्रीतिपूर्वक स्वयं प्रकट हुयीं (और कहा—) । (२७)

'हे हे महाबुद्धिमान् व्यास ! आप (महापुरी को) शाप न दें, आप मुझसे भिक्षा लें ।' ऐसा कहकर पार्वती ने भिक्षा दी । (२८)

महादेवी ने कहा 'हे मुनि ! क्योंकि आप क्रोधी एवं कृतघ्न हैं अतः आपको यहाँ सदा नहीं रहना चाहिए ।'' (२९)

ऐसा कहे जाने पर उन भगवान् (व्यास) ने ध्यान द्वारा श्रेष्ठ शिवा (पार्वती) को जानकर प्रणाम किया एवं श्रेष्ठ स्तुतियों से उनकी स्तुति कर कहा— (३०)

'हे शङ्करवल्लभा ! चतुर्दशी एवं अष्टमी को (मुझे वाराणसी में) प्रवेश करने दें । 'ऐसा ही हो' । यह कह कर देवी अन्तर्हित हो गयीं । (३१)

इस प्रकार पुरातन महायोगी वे व्यास क्षेत्र के समस्त गुणों को जानकर उस (क्षेत्र) के पार्श्व में रहने लगे । (३२)

इस प्रकार व्यास को स्थित हुआ जानकर पण्डित लोग (उस) क्षेत्र का सेवन करते हैं । अतः मनुष्य को सभी प्रयत्न कर वाराणसी में रहना चाहिए । (३३)

सूत ने कहा—जो अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य को पढ़ता, सुनता अथवा शान्तचित्त द्विजों को सुनाता है

श्रावयेद् वा द्विजान् शान्तान् सोऽपि याति परां गतिम्।३४
श्राद्धे वा दैविके कार्ये रात्रावहनि वा द्विजाः।
नदीनां चैव तीरेषु देवतायतनेषु च ।।३५
स्नात्वा समाहितमना दम्भमात्सर्यवर्जितः।
जपेदीशं नमस्कृत्य स याति परमां गतिम् ।।३६

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३३।।

३४

ऋषय ऊचुः।
माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् तदुदीरितम्।
इदानीं तु प्रयागस्य माहात्म्यं ब्रूहि सुव्रत ।।१
यानि तीर्थानि तत्रैव विश्रुतानि महान्ति वै।
इदानीं कथयास्माकं सूत सर्वार्थविद् भवान् ।।२
सूत उवाच।
शृणुध्वमृषयः सर्वे विस्तरेण ब्रवीमि वः।
प्रयागस्य च माहात्म्यं यत्र देवः पितामहः ।।३
मार्कण्डेयेन कथितं कौन्तेयाय महात्मने।
यथा युधिष्ठिरायैतत् तद्वक्ष्ये भवतामहम् ।।४
निहत्य कौरवान् सर्वान् भ्रातृभिः सह पार्थिवः।
शोकेन महताविष्टो मुमोह स युधिष्ठिरः ।।५
अचिरेणाथ कालेन मार्कण्डेयो महातपाः।
संप्राप्तो हास्तिनपुरं राजद्वारे स तिष्ठति ।।६
द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान् द्रुतम्।
मार्कण्डेयो द्रष्टुमिच्छंस्त्वामास्ते द्वार्यसौ मुनिः ।।७
त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमेत्याह तत्परम्।
स्वागतं ते महाप्राज्ञ स्वागतं ते महामुने ।।८

वह भी परम गति प्राप्त करता है। (३४)

हे द्विजो ! श्राद्ध, देवता सम्वन्धी कार्य, रात्रि या दिन में, नदियों के तीर पर तथा मन्दिरों में जो स्नानोपरान्त मनको एकाग्र कर दम्भ एवं मात्सर्य को छोड़कर नमस्कार पूर्वक ईश का जप करता है उसे परम गति प्राप्त होती है। (३५,३६)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३३।।

३४

ऋषियों ने कहा—हे सुव्रत ! अविमुक्त के उस माहात्म्य का यथोचित वर्णन (आप द्वारा) किया गया। अव प्रयाग का माहात्म्य वतलायें। (१)

हे सूत। आप समस्त अर्थो के जानकार हैं। अव (आप) हमें वहाँ के महान् तथा प्रसिद्ध समस्त तीर्थों को वतलायें। (२)

सूत ने कहा—हे ऋषियों ! आप सभी सुनें। मैं आपलोगों से विस्तार पूर्वक (उस) प्रयाग का माहात्म्य कहता हूँ जहाँ पितामह देव स्थित हैं। (३)

मार्कण्डेय ने कुन्ती के पुत्र महात्मा युधिष्ठिर से जैसे इसे कहा था मैं वही आपलोगों से कहता हूँ। (४)

सभी कौरवों को उनके भाइयों के साथ मारने के उपरान्त राजा युधिष्ठिर महान् शोक से आक्रान्त होकर मोहग्रस्त हो गए। (५)

तदनन्तर थोड़े ही समय के उपरान्त महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि हस्तिनापुर में पहुँचे और राजद्वार पर खड़े हो गए। (६)

उन्हें देखकर द्वारपाल ने भी शीघ्र राजा से (जाकर) कहा—मार्कण्डेय मुनि आप से मिलने की इच्छा से द्वार पर स्थित हैं। (७)

धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) शीघ्र तत्परता से द्वार पर गए (और द्वारपर आये हुए मुनि से) कहा—हे महा वुद्धिमान् महामुनि ! आपका स्वागत है। (८)

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम् ।
अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि तुष्टे महामुने ॥९
सिंहासनमुपस्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः ।
युधिष्ठिरो महात्मेति पूजयामास तं मुनिम् ॥१०
मार्कण्डेयस्ततस्तुष्टः प्रोवाच स युधिष्ठिरम् ।
किमर्थं मुह्यसे विद्वन् सर्वं ज्ञात्वाऽहमागतः ॥११
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्याह महामुनिम् ।
कथय त्वं समासेन येन मुच्येत किल्विषैः ॥१२
निहता बहवो युद्धे पुंसो निरपराधिनः ।
अस्माभिः कौरवैः सार्द्धं प्रसङ्गान्मुनिपुंगव ॥१३
येन हिंसासमुद्भूताज्जन्मान्तरकृतादपि ।
मुच्यते पातकादस्मात् तद् भवान् वक्तुमर्हति ॥१४

मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन् महाभाग यन्मां पृच्छसि भारत ।
प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पापनाशनम् ॥१५
तत्र देवो महादेवो रुद्रो विश्वामरेश्वरः ।
समास्ते भगवान् ब्रह्मा स्वयंभूरपि देवतैः ॥१६

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि प्रयागगमने फलम् ।
मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानामपि किं फलम् ॥१७
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां तु किं फलम् ।
भवता विदितं ह्येतत् तन्मे ब्रूहि नमोऽस्तु ते ॥१८

मार्कण्डेय उवाच ।

कथयिष्यामि ते वत्स या चेष्टा यच्च तत्फलम् ।
पुरा महर्षिभिः सम्यक् कथ्यमानं मया श्रुतम् ॥१९
एतत् प्रजापतिक्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥२०
तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति संगताः ।
बहून्यन्यानि तीर्थानि सर्वपापापहानि तु ॥२१
कथितुं नेह शक्नोमि बहुवर्षशतैरपि ।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्येह कीर्तनम् ॥२२

आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मेरा कुल तर गया। हे महामुनि! आपके सन्तुष्ट होने से आज मेरे पितृगण सन्तुष्ट हो गये। (९)

महात्मा युधिष्ठिर ने उन मुनि को सिंहासन पर बिठाकर पादप्रक्षालन तथा पूजनादि सत्कार द्वारा उनका पूजन किया। (१०)

तदनन्तर सन्तुष्ट हुए मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से कहा—हे विद्वन्! आप क्यों मोह कर रहे हैं? सभी कुछ जानकर मैं (यहाँ) आया हूँ। (११)

तदुपरान्त राजा युधिष्ठिर ने महामुनि को प्रणाम कर कहा—संक्षेप में आप (मुझे वह) बतलायें जिससे (मैं) पापों से मुक्त हो जाऊँ। (१२)

हे मुनिश्रेष्ठ! हमने (युद्ध के) प्रसङ्गवश कौरवों के साथ अनेक निरपराधियों को युद्ध में मारा है। (१३)

आप (मुझे) वह (उपाय) बतलायें जिससे हिंसा-जनित (दोष) एवं जन्मान्तर के किये गये पाप तथा इस पाप से भी (हम) मुक्त हो जायँ। (१४)

मार्कण्डेय ने कहा—हे महाभाग्यशाली राजन्! हे भारत! (आप) मुझसे जो पूछते हैं उसे सुनो (वह यह है कि) प्रयाग की यात्रा करना मनुष्यों के लिये सर्वश्रेष्ठ पापनाशक है। (१५)

हे नरेश्वर! वहाँ समस्त देवों के स्वामी महादेव रुद्र देव एवं स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा देवों के साथ रहते हैं। (१६)

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन्! प्रयाग की यात्रा का फल सुनना चाहता हूँ। वहाँ मरने वालों की कौन सी गति होती है तथा स्नान करने वालों का क्या फल होता है। (१७)

यह बतलायें कि प्रयाग में जो लोग निवास करते हैं उनको क्या फल मिलता है? आपको यह विदित है अतः मुझे वह बतलायें। आपको नमस्कार है। (१८)

मार्कण्डेय ने कहा—हे वत्स! प्राचीन काल में महर्षियों द्वारा कही गई (प्रयाग गमनकी) जिस चेष्टा एवं फल को मैंने सुना हैं वह मैं तुमसे भलीभाँति कहूँगा। (१९)

यह तीनों लोकों में प्रसिद्ध प्रजापति—क्षेत्र है। यहाँ पर स्नान करने वाले स्वर्ग जाते हैं एवं जो यहाँ मरते हैं वे पुनर्जन्म नहीं पाते हैं। (२०)

वहाँ ब्रह्मादिक देवता मिलकर रक्षा करते हैं। वहाँ समस्त पापों को दूर करने वाले अन्य अनेक तीर्थ (हैं)। मैं सैकड़ों वर्षों में भी (उनका) वर्णन नहीं कर सकता। संक्षेप में ही मैं प्रयाग (के माहात्म्य का) कीर्तन करता हूँ। (२१,२२)

षष्टिर्धनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम् ।
यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः ॥२३
प्रयागे तु विशेषेण स्वयं वसति वासवः ।
मण्डलं रक्षति हरिः सर्वदेवैश्च सम्मितम् ॥२४
न्यग्रोधं रक्षते नित्यं शूलपाणिर्महेश्वरः ।
स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम् ॥२५
स्वकर्मणावृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम् ।
स्वल्पं स्वल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप ।
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ॥२६
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्तनादपि ।
मृत्तिकालम्भनाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते ॥२७
पञ्च कुण्डानि राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नवी ।
प्रयागं विशतः पुंसः पापं नश्यति तत्क्षणात् ॥२८
योजनानां सहस्रेषु गङ्गां यः स्मरते नरः ।
अपि दुष्कृतकर्माऽसौ लभते परमां गतिम् ॥२९

साठ हजार धनुष गङ्गा की रक्षा करते हैं। सात अश्वों वाले सविता देवता सदा यमुनाकी रक्षा करते हैं। (२३)

इन्द्र स्वयं विशेषरूप से प्रयाग में रहते हैं। हरि समस्त देवों से युक्त मण्डल की रक्षा करते हैं। (२४)

शूलपाणि महेश्वर न्यग्रोध (वटवृक्ष) की नित्य रक्षा करते हैं। देवगण समस्त पापों को दूर करने वाले पवित्र स्थान की रक्षा करते हैं। (२५)

हे नराधिप ! अपने कर्मों से आवृत लोग तथा जिनका अत्यन्त अल्प भी पाप अवशिष्ट होता है (वे लोग) मोक्ष नहीं प्राप्तकर सकते। किन्तु प्रयाग का स्मरण करने वाले (पुरुष) के सभी (कर्म एवं पाप) नष्ट हो जाते हैं। (२६)

उस तीर्थ के दर्शन, नाम-कीर्तन अथवा मिट्टी का स्पर्श करने से भी मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। (२७)

हे राजेन्द्र ! (प्रयाग में) पाँच कुण्ड हैं, जिनके मध्य में जाह्नवी स्थित है। प्रयाग में प्रवेश करने वाले मनुष्य का पाप तत्क्षण नष्ट हो जाता है। (२८)

सहस्रों योजन पर भी जो मनुष्य गङ्गा का स्मरण करता है वह दुष्कृत करने वाला होने पर भी परम गति प्राप्त करता है। (२९)

कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ।
तथोपस्पृश्य राजेन्द्र स्वर्गलोके महीयते ॥३०
व्याधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो वाऽपि भवेन्नरः ।
गङ्गायमुनमासाद्य त्यजेत् प्राणान् प्रयत्नतः ॥३१
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैर्भानुवर्णिभिः ।
ईप्सिताँल्लभते कामान् वदन्ति मुनिपुंगवाः ॥३२
सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः ।
वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणः ॥३३
गीतवादित्रनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ।
यावन्न स्मरते जन्म तावत् स्वर्गे महीयते ॥३४
तस्मात् स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा नरोत्तम ।
हिरण्यरत्नसंपूर्णे समृद्धे जायते कुले ॥३५
तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात् तत्र गच्छति ।
देशस्थो यदि वाऽरण्ये विदेशे यदि वा गृहे ॥३६

इसका (नाम) कीर्तन करने से (मनुष्य) पाप से मुक्त हो जाता है एवं दर्शन करने से उसे कल्याण का साक्षात्कार होता है। हे राजेन्द्र ! (इसके जल का) आचमन करने से स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (३०)

श्रेष्ठ मुनिगण ऐसा कहते हैं कि व्याधियुक्त, दीन अथवा क्रोधी होने पर भी प्रयत्नपूर्वक गङ्गा और यमुना (के सङ्गम) पर पहुँचकर जो मनुष्य प्राण-त्याग करता है वह सूर्य-सदृश दीप्त स्वर्ण के वर्णों वाले विमानों से युक्त होकर इच्छित पदार्थ प्राप्त करता है। (३१,३२)

(गङ्गा और यमुना के सङ्गम में प्राण त्याग करने वाला) शुभ लक्षणों वाला (व्यक्ति) सभी रत्नों से युक्त अनेक प्रकार की ध्वजाओं से परिपूर्ण एवं श्रेष्ठ रमणियों से युक्त विमानों में आनन्दोपभोग करता है। (३३)

शयन करने पर वह गीत और वाद्य की ध्वनि से जगाया जाता है। (वह पुरुष) जब तक जन्म का स्मरण नहीं करता तब तक स्वर्ग में पूजित होता है। (३४)

हे पुरुष श्रेष्ठ ! कर्मों के क्षीण होने पर उस स्वर्ग से भ्रष्ट वह स्वर्ण एवं रत्न से समृद्ध कुल में उत्पन्न होता है एवं उसी तीर्थ का स्मरण करता है। स्मरण करने पर

प्रयागं स्मरमाणस्तु यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति मुनिपुंगवाः ।।३७
सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी ।
ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति ।।३८
स्त्रीसहस्राकुले रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे ।
मोदते मुनिभिः सार्द्धं स्वकृतेनेह कर्मणा ।।३९
सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते दिवि दैवतैः ।
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बुद्वीपपतिर्भवेत् ।।४०
ततः शुभानि कर्माणि चिन्तयानः पुनः पुनः ।
गुणवान् वित्तसंपन्नो भवतीह न संशयः ।
कर्मणा मनसा वाचा सत्यधर्मप्रतिष्ठितः ।।४१
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु ग्रामं प्रतीच्छति ।
सुवर्णमथ मुक्तां वा तथैवान्यान् प्रतिग्रहान् ।।४२
स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा ।
निष्फलं तस्य तत् तीर्थं यावत् तत्फलमश्नुते ।।४३
अतस्तीर्थे न गृह्णीयात् पुण्येष्वायतनेषु च ।
निमित्तेषु च सर्वेषु अप्रमत्तो द्विजो भवेत् ।।४४
कपिलां पाटलावर्णां यस्तु धेनुं प्रयच्छति ।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां चैलकण्ठां पयस्विनीम् ।।४५
यावद् रोमाणि तस्या वै सन्ति गात्रेषु सत्तम ।
तावद् वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।।४६

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

(वह पुनः) वहाँ जाता है । श्रेष्ठ मुनि लोग कहते हैं कि (अपने) देश, विदेश, अरण्य अथवा गृह में प्रयाग का स्मरण करते हुए जो प्राणों का परित्याग करता है वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है । (३५-३७)

वह (मनुष्य) उस लोक में जाता है जहाँ के सभी वृक्ष इच्छानुसार फल देते है तथा जहाँ की भूमि स्वर्णमयी है एवं जहाँ ऋषि मुनि एवं सिद्ध लोग रहते हैं । (३८)

अपने किये कर्म के कारण वह सहस्रों स्त्रियों से रमणीय मन्दाकिनी के शुभ तट पर मुनियों के साथ आनन्द प्राप्त करता है । (३९)

सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवता एवं दानव स्वर्ग में उसकी पूजा करते हैं । तदनन्तर स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर (वह पुरुष) जम्बुद्वीप का पति होता है । (४०)

तदुपरान्त बारम्बार शुभ कर्मों का चिन्तन करते हुए वह निस्सन्देह गुणी एवं धनसम्पन्न हो जाता है तथा मन, वचन और कर्म से वह सत्य धर्म में प्रतिष्ठित होता है । (४१)

जो व्यक्ति स्वकार्य, पितृकार्य या देवता की पूजा के समय गङ्गा और यमुना के मध्य में ग्राम, स्वर्ण, मुक्ता या अन्य कोई पदार्थ दान स्वरूप ग्रहण करता है उसके तीर्थ का पुण्य उस समय तक निष्फल रहता है जब तक वह उस पदार्थ का भोग करता रहता है । (४२, ४३)

अतः तीर्थ एवं पवित्र मन्दिरों में दान नहीं लेना चाहिए । द्विजों को सभी प्रकार के प्रयोजनों में सावधान रहना चाहिए । (४४)

हे श्रेष्ठ ! जो व्यक्ति (प्रयाग में) कपिल अथवा पाटल वर्ण की स्वर्णगठित शृंगों, चाँदी से मढे खुरों एव वस्त्राच्छादित कण्ठ वाली दुधारू धनु का दान करता है वह (व्यक्ति) रुद्रलोक में उतने संख्यक सहस्र वर्षों तक पूजित होता है जितने रोम उस गाय के शरीर में होते हैं । (४५,४६)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्व विभाग में चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त—३४.

३५

मार्कण्डेय उवाच ।
कथयिष्यामि ते वत्स तीर्थयात्राविधिक्रमम् ।
आर्षेण तु विधानेन यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥१
प्रयागतीर्थयात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित् ।
वलीवर्दं समारूढः शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥२
नरके वसते घोरे समाः कल्पशतायुतम् ।
ततो निवर्त्तते घोरो गवां क्रोधो हि दारुणः ।
सलिलं च न गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः ॥३
यस्तु पुत्रांस्तथा बालान् स्नापयेत् पाययेत् तथा ।
यथात्मना तथा सर्वान् दानं विप्रेषु दापयेत् ॥४
ऐश्वर्याल्लोभमोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः ।
निष्फलं तस्य तत् तीर्थं तस्माद् यानं विवर्जयेत् ॥५
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति ।
आर्षेण तु विवाहेन यथा विभवविस्तरम् ॥६
न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा ।
उत्तरान् स कुरून् गत्वा मोदते कालमक्षयम् ॥७
वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति ॥८
तत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः ।
लोकपालाश्च सिद्धाश्च पितरो लोकसंमताः ॥९
सनत्कुमारप्रमुखास्तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे ।
नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च तथा नित्यं समासते ।
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः ॥१०
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम् ।
प्रयागं राजशार्दूल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥११

३५

मार्कण्डेय ने कहा—हे वत्स! ऋषिप्रतिपादित विधान के अनुसार तीर्थयात्रा के विधानक्रम को जैसा (मैंने) देखा एवं सुना है वह तुमसे कहता हूँ। (१)

प्रयाग तीर्थ की यात्रा करने वाला कोई मनुष्य यदि बैल पर आरूढ़ होकर गमन करता है तो उसका फल सुनो। (२)

वह व्यक्ति दस सहस्र कल्प परिमित वर्ष तक घोर नरक में वास करता है तदनन्तर (उसके प्रति) गौ का अत्यन्त भयङ्कर क्रोध दूर होता है। उस मनुष्य के पितृगण उसका जल ग्रहण नहीं करते। (३)

जो सभी पुत्रों एवं बालकों को अपने सदृश यहाँ स्नान एवं जलपान कराता तथा (उनसे) ब्राह्मणों को दान दिलवाता है (उसे उत्तम गति प्राप्त होती है)। (४)

जो मनुष्य ऐश्वर्य, लोभ या मोहवश यान द्वारा (तीर्थ) में जाता है उसकी वह तीर्थयात्रा निष्फल होती है अतएव (तीर्थयात्रा में) यान का त्याग करना चाहिए।

जो व्यक्ति अपने ऐश्वर्य के अनुकूल रीति से गङ्गा और यमुना के मध्य आर्ष विवाह द्वारा कन्या का दान करता हैं वह उस कर्म के कारण उस घोर नरक का साक्षात्कार नहीं करता और उत्तर कुरु में जाकर अनन्त काल तक आनन्दोपभोग करता है! (५-७)

जो व्यक्ति (अक्षय) वट के नीचे जाकर प्राणों का परित्याग करता हैं वह सभी लोकों का अतिक्रमण कर रुद्रलोक में जाता है। (८)

वहाँ ब्रह्मादि देवगण, दिक्पालों-सहित दिशाएँ, लोकपालगण, सिद्धगण, लोक में मान्य सभी पितर लोग, सनत्कुमार इत्यादि ब्रह्मर्षिगण, नाग, सुपर्ण एवं सिद्ध लोग, भगवान् हरि एवं प्रजापति प्रभृति नित्य निवास करते हैं। (९, १०)

गङ्गा एवं यमुना के मध्य की पृथ्वी का जघन कहा गया है। हे राजशार्दूल! प्रयाग तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। (११)

तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे संशितव्रतः ।
तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ।।१२
न मातृवचनात् तात न लोकवचनादपि ।
मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागगमनं प्रति ।।१३
दश तीर्थसहस्राणि षष्टिकोटचस्तथापरे ।
तेषां सान्निध्यमत्रैव तीर्थानां कुरुनन्दन ।।१४
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः ।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसंगमे ।।१५
न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिन् यत्र तत्र युधिष्ठिर ।
ये प्रयागं न संप्राप्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।१६
एवं दृष्ट्वा तु तत् तीर्थं प्रयागं परमं पदम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा ।।१७
कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते सर्वपातकैः ।।१८
तत्र गत्वा नरः स्थानं महादेवस्य धीमतः ।
आत्मानं तारयेत् पूर्वं दशातीतान् दशापरान् ।।१९
कृत्वाऽभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाहूतसंप्लवम् ।।२०
पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रैलोक्यख्यातिमान् नृप ।
अवटः सर्वसामुद्रः प्रतिष्ठानं च विश्रुतम् ।।२१
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति ।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।२२
उत्तरेण प्रतिष्ठानं भागीरथ्यास्तु सव्यतः ।
हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।।२३
अश्वमेधफलं तत्र स्मृतमात्रात् तु जायते ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत् स्वर्गे महीयते ।।२४
उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपाण्डुरे ।
परित्यजति यः प्राणान् शृणु तस्यापि यत् फलम् ।।२५
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
आस्ते स पितृभिः सार्द्धं स्वर्गलोके नराधिप ।।२६

जो (गङ्गा यमना के) सङ्गम पर कठोर व्रत धारण कर स्नान करते हैं वे राजसूय एवं अश्वमेध के तुल्य फल प्राप्त करते हैं । (१२)

हे तात ! माता के कहने अथवा अन्य लोगों के कहने पर भी तुम्हें प्रयाग जाने का विचार नही त्यागना चाहिए । (१३)

हे कुरुनन्दन ! यहीं पर उन दश सहस्र तीर्थों एवं साठ करोड़ अन्य तीर्थों का सन्निधान है । (१४)

योगयुक्त सत्त्वगुणी मुनि को जो गति प्राप्त होती है वही गति गङ्गा और यमुना के सङ्गम में प्राण-त्याग करने वाले (व्यक्ति) को मिलती है । (१५)

ये युधिष्ठिर ! तीनों लोकों में प्रसिद्ध प्रयाग में जो नहीं पहुँचते वे इस लोक में जहाँ कहीं निवास करते हुए जीवित नहीं होते अर्थात् जीवित ही मृतक तुल्य होते हैं । (१६)

इस प्रकार श्रेष्ठ स्थान स्वरूप उस प्रयाग तीर्थ का दर्शन कर मनुष्य सभी पापों से इस प्रकार मुक्त हो जाता है जैसे चन्द्रमा राहु से मुक्त होता है । (१७)

यमुना के दक्षिण तट पर कम्वल और अश्वतर नामक दो नाग अवस्थित हैं । वहाँ स्नान करने एवं जल पीने से (मनुष्य) सभी पापों से मुक्त हो जाता है । (१८)

बुद्धिमान् महादेव के उस स्थान पर जाकर मनुष्य अपने को एवं दस पूर्व की तथा दस पश्चात् की सभी पीढ़ियों को मुक्त कर देता है । (१९)

वहाँ स्नान कर वह मनुष्य अश्वमेध का फल प्राप्त करता है एवं महाप्रलय पर्यन्त स्वर्ग-लोक प्राप्त करता है । (२०)

हे नृप ! गङ्गा के पूर्वी तट पर स्थित तीनों लोकों में प्रसिद्ध सर्वसामुद्र नामक गह्वर एवं प्रतिष्ठान नामक स्थान पर जाकर यदि मनुष्य ब्रह्मचर्य धारण कर एवं क्रोध को जीतकर तीन दिन पर्यन्त निवास करता है तो वह सभी पापों से मुक्त होकर अश्वमेध का फल प्राप्त करता है । (२१-२२)

प्रतिष्ठान नामक स्थान के उत्तर एवं भागीरथी के वामपार्श्व में तीनों लोकों में प्रसिद्ध हंसप्रपतन नामक तीर्थ है । (२३)

उसके स्मरण मात्र से अश्वमेध का फल होता है । (एवं यहाँ जाने वाला व्यक्ति) सूर्य चन्द्रमा के रहने तक स्वर्गलोक में पूजित होता है । (२४)

जो व्यक्ति रमणीक उर्वशी के हंस-सदृश श्वेत तट पर प्राणों का परित्याग करता है उसका भी जो फल होता है (वह सुनो ।) (२५)

हे नराधिप ! वह व्यक्ति साठ सहस्र एवं साठ सौ

अथ संध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
नरः शुचिरुपासीत ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।२७
कोटितीर्थं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।
कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।२८
यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्थतपोवना ।
सिद्धक्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा ।।२९
क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः ।
दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ।।३०
यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य तु ।
तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।३१
तीर्थानां परमं तीर्थं नदीनां परमा नदी ।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि ।।३२
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ।।३३
सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम् ।
गतिमन्वेषमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः ।।३४
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
माहेश्वरात् परिभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ।।३५
कृते युगे तु तीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम् ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते ।।३६
गङ्गामेव निषेवेत प्रयागे तु विशेषतः ।
नान्यत् कलियुगोद्भूतं मलं हन्तुं सुदुष्कृतम् ।।३७
अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते ।
स मृतो जायते स्वर्गे नरकं च न पश्यति ।।३८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।

वर्षपर्यन्त पितरों के सहित स्वर्गलोक में निवास करता है । (२६)

पवित्र मनुष्य एकाग्रचित्त से जितेन्द्रिय होकर ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक संध्यावट के नीचे उपासना कर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है । (२७)

जो कोटि तीर्थ में पहुँचकर प्राणों का त्याग करता है वह कोटि सहस्र वर्ष पर्यान्त स्वर्ग-लोक में पूजित होता है । (२८)

जहाँ वहुत से तीर्थो एवं तपोवनों से युक्त महाभाग्य-शालिनी गङ्गा वर्तमान हैं उस स्थान को सिद्धक्षेत्र जानना चाहिए— इसमें विचार (सन्देह) करना ठीक नहीं । (२९)

(गङ्गा) पृथ्वी पर मनुष्यों को तारती है, पाताल में नागों को तारती है एवं द्युलोक में देवों को तारती है इसीसे इसको त्रिपथगा कहा जाता है । (३०)

पुरुष की हड्डियाँ जव तक गङ्गा में रहती हैं उतने सहस्र वर्षो तक वह स्वर्ग लोक में पूजित होता है । (३१)

(गङ्गा) सभी तीर्थो में श्रेष्ठ तीर्थ एवं सभी नदियों से श्रेष्ठ नदी हैं । यह सभी महापातकी प्राणियों को भी मोक्ष देती है । (३२)

गङ्गा सर्वत्र सुलभ होने पर भी गङ्गाद्वार, प्रयाग एवं गङ्गासागर—इन तीन स्थानों पर दुर्लभ होती है । (३३)

मोक्ष के अभिलाषी पाप से आक्रान्त चित्तवाले सभी प्राणियों के लिये गङ्गा के समान दूसरी गति नहीं हैं । (३४)

यह समस्त पवित्र पदार्थो से अधिक पवित्र एवं कल्याणकारी तत्त्वों से अधिक कल्याणकारी है । महेश्वर (के मस्तक) से नीचे आने के कारण सभी पापों को दूर करने वाली एवं शुभ है । (३५)

कृत युग में अनेक तीर्थ होते हैं । त्रेता का तीर्थ श्रेष्ठ पुष्कर है । द्वापर का तीर्थ कुरुक्षेत्र है किन्तु, कलि में गङ्गा (तीर्थ) की विशिष्टता होती है । (३६)

गङ्गा की ही सेवा करनी चाहिए एवं विशेषरूप से प्रयाग में गङ्गा की सेवा करनी चाहिए । अन्य (तीर्थादि) कलियुग में उत्पन्न अत्यन्त कठिन पाप को दूर करने में समर्थ नहीं है । (३७)

इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक जो गङ्गा में मरता है वह मरने पर स्वर्ग में जाता है एवं नरक का साक्षात्कार नहीं करता । (३८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त—३५.

३६

मार्कण्डेय उवाच ।
षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च ।
माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसंगमम् ।।१
गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत् फलम् ।
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य तत् फलम् ।।२
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कार्षाग्निं यस्तु साधयेत् ।
अहीनाङ्गोऽप्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः ।।३
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु मानद ।
तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।४
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ।
स भुक्त्वा विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः ।।५
जलप्रवेशं यः कुर्यात् संगमे लोकविश्रुते ।
राहुग्रस्तो यथा सोमो विमुक्तः सर्वपातकैः ।।६
सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते ।
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च ।।७
स्वर्गतः शक्रलोकेऽसौ मुनिगन्धर्वसेवितः ।
ततो भ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले ।।८
अधःशिरास्त्वयोधारामूर्ध्वपादः पिबेन्नरः ।
शतं वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।९
तस्माद् भ्रष्टस्तु राजेन्द्र अग्निहोत्री भवेन्नरः ।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः ।।१०
यः स्वदेहं विकर्त्तेद् वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति ।

३६

मार्कण्डेय ने कहा—माघ महीने में साठ सहस्र एवं साठ सौ तीर्थ गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर जाते हैं। (१)

सौ हजार गायों का भलीभाँति दान करने से जो फल होता है वही फल माघ महीने में तीन दिन प्रयाग में स्नान करने से होता है। (२)

गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर जो करीषाग्नि का साधन करता है वह अहीनाङ्ग—अर्थात् पूर्ण शरीर वाला, निरोग एवं पञ्चेन्द्रिय से युक्त होता है। (३)

हे मान देने वाले (राजा)! उस (करीषाग्नि की साधना करने वाले पुरुष) के शरीर में जितने रोमकूप होते हैं उतने सहस्र वर्षों तक (वह पुरुष) स्वर्ग में पूजित होता है। (४)

तदनन्तर स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर वह जम्बूद्वीप का स्वामी होता है एवं विपुल भोगों का उपभोग कर पुनः उस तीर्थ को प्राप्त करता है। (५)

लोकप्रसिद्ध सङ्गम पर जो जल में प्रवेश करता है, वह राहुग्रस्त चन्द्रमा के सदृश सभी पातकों से मुक्त हो जाता है। (६)

(वह) सोमलोक में जाता और साठ सहस्र एवं साठ सौ वर्ष पर्यन्त सोम के साथ आनन्दोपभोग करता है। (७)

तदुपरान्त मुनियों एवं गन्धर्वों से सेवित वह पुरुष स्वर्ग से इन्द्रलोक में जाता है। हे राजेन्द्र! वहाँ से भ्रष्ट होने पर वह धनिक कुल में उत्पन्न होता है। (८)

जो मनुष्य मस्तक नीचे एवं पैर ऊपर करके लोहे की धारा का पान करता है वह सौ सहस्र वर्षों तक स्वर्गलोक में पूजित होता है। (९)

हे राजेन्द्र! वहाँ से भ्रष्ट होने पर मनुष्य अग्निहोत्री होता है एवं विपुल भोगों का उपभोग करने के उपरान्त पुनः उस तीर्थ की सेवा करता है। (१०)

जो अपना शरीर काटता है अथवा पक्षियों को देता है ऐसे पक्षियों द्वारा खाये गये उस पुरुष का भी फल

विहगैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत्फलम् ।।११
शतं वर्षसहस्राणि सोमलोके महीयते ।
ततस्तस्मात् परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः ।।१२
गुणवान् रूपसंपन्नो विद्वान् सुप्रियवाक्यवान् ।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः ।।१३

उत्तरे यमुनातीरे प्रयागस्य तु दक्षिणे ।
ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं तु परमं स्मृतम् ।।१४
एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणैस्तत्र प्रमुच्यते ।
सूर्यलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदा भवेत् ।।१५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

३७

मार्कण्डय उवाच ।

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा ।।१
येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुना गता ।
योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशनी ।।२
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्यासप्तमं कुलम् ।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम् ।।३
अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणं तटे ।
पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं त्वनरकं स्मृतम् ।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।।४
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नात्वा संतर्पयेच्छुचिः ।
धर्मराजं महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।५

सुनो। वह सौ हजार वर्षों तक सोमलोक में पूजित होता है। तदुपरान्त वहाँ से भ्रष्ट होने पर वह धार्मिक गुणवान्, रूपसम्पन्न, विद्वान् एवं प्रिय वोलने वाला राजा होता है। विपुल भोगों का उपभोग करने के उपरान्त वह पुनः उसी तीर्थ की सेवा करता है। (११-१३)

प्रयाग के दक्षिण में यमुना के उत्तरी तट पर ऋणप्रमोचन नामक श्रेष्ठ तीर्थ कहा गया है। वहाँ स्नान कर एक रात्रि पर्यन्त निवास करने वाला पुरुष ऋण से मुक्त हो जाता है (ऐसा करने वाला पुरुष) सूर्य लोक प्राप्त करता एवं सदा ऋण से मुक्त रहता है। (१४, १५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त—३६.

३७

मार्कण्डेय ने कहा—तीनों लोकों में प्रसिद्ध सूर्य की पुत्री महाभाग्यशालिनी देवी यमुना नदी यहाँ पर मिली है। (१)

जिस मार्ग से गङ्गा गयी हैं उसी मार्ग से यमुना भी गयी हैं। सहस्रों योजन दूर पर भी कीर्त्तन करने से (यमुना) पापों को नष्ट कर देती हैं। (२)

हे युधिष्ठिर! यमुना में स्नान करने एवं वहाँ का जल पीने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होता है एवं अपने कुल की सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है। जो वहाँ प्राणों का त्याग करता है उसे परम गति प्राप्त होती है। (३)

यमुना के दक्षिणी तट पर प्रसिद्ध अग्नितीर्थ है। यमुना के पश्चिम भाग में धर्मराज का अनरक नामक तीर्थ कहा गया है। वहाँ स्नान करने वाले स्वर्ग जाते हैं एवं जो वहाँ मरते हैं वे मुक्त हो जाते हैं। (४)

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को स्नान कर पवित्रतापूर्वक धर्मराज का तर्पण करने वाला पुरुष निस्सन्देह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (५)

दश तीर्थसहस्राणि त्रिंशत्कोटचस्तथापराः ।
प्रयागे संस्थितानि स्युरेवमाहुर्मनीषिणः ॥६
तिस्रः कोटचोऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।
दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ॥७
यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत् तपोवनम् ।
सिद्धिक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम् ॥८
यत्र देवो महादेवो देव्या सह महेश्वरः ।
आस्ते वटेश्वरो नित्यं तत् तीर्थं तत् तपोवनम् ॥९
इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य च ।
सुहृदां च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य तु ॥१०
इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं मेध्यमिदं सुखम् ।
इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम् ॥११
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रमोचनम् ।
अत्राधीत्य द्विजोऽध्यायं निर्मलत्वमवाप्नुयात् ॥१२
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः ।
जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते ॥१३
प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः ।
स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्भव ॥१४
एवमुक्त्वा स भगवान् मार्कण्डेयो महामुनिः ।
तीर्थानि कथयामास पृथिव्यां यानि कानिचित् ॥१५
भूसमुद्रादिसंस्थानं प्रमाणं ज्योतिषां स्थितम् ।
पृष्टः प्रोवाच सकलमुक्त्वाऽथ प्रययौ मुनिः ॥१६
य इदं कल्यमुत्थाय पठतेऽथ शृणोति वा ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥१७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

विद्वान् लोग ऐसा कहते हैं कि प्रयाग में दस सहस्र (मुख्य) तीर्थ एवं तीस करोड़ अन्य (अप्रधान) तीर्थ अवस्थित हैं । (६)

वायु ने कहा है कि द्युलोक, भूलोक एवं अन्तरिक्ष में तीन करोड़ एवं आधा करोड़ अर्थात् तीन करोड़ पचास लाख तीर्थ हैं । जाह्नवी उन सभी तीर्थों से युक्त कही गयी है । (७)

जहाँ महाभागा गंगा होती है वही देश है और वही तपोवन होता है । गंगा के तट पर स्थित उस स्थान को सिद्धि-क्षेत्र जानना चाहिए । (८)

जहाँ देवी के साथ वटेश्वर महादेव महेश्वर देव स्थित हैं वह स्थान तीर्थ एवं तपोवन है । (९)

इस सत्य को द्विजातियों, साधुओं, अपने पुत्र, मित्रों एवं अनुगामी शिष्य के कान में कहना चाहिए । (१०)

यह (सत्य) धन्य, स्वर्गफलप्रद, शुद्ध, सुखकारक, पवित्र, रमणीय, पावन एवं उत्तम धर्मयुक्त है । (११)

सभी पापों से मुक्त करने वाला यह महर्षियों का गोपनीय रहस्य है । यहाँ वेद का अध्ययन कर द्विज निर्मल हो जाता है । (१२)

जो व्यक्ति नित्य पवित्रतापूर्वक इस पवित्र तीर्थ का वर्णन सुनता है वह जन्मान्तर की बातों का स्मरण करने वाला हो जाता है तथा स्वर्ग लोक में आनन्द करता है । (१३)

शिष्टमार्गानुगामी सज्जन पुरुष उन तीर्थों में जाते हैं । हे कुरुवंशवर ! तीर्थों में स्नान करो । इस (विषय में) तुम्हारी बुद्धि वक्र न होवे । (१४)

ऐसा कहने के उपरान्त उन महामुनि मार्कण्डेय ने पूछे जाने पर पृथ्वी के सभी तीर्थों, पृथ्वी एवं समुद्र इत्यादि की स्थिति तथा नक्षत्रों की स्थिति का सम्पूर्ण रूप से वर्णन किया । तदनन्तर मुनि चले गए । (१५,१६)

प्रातःकाल उठकर जो इसका पाठ करता अथवा सुनता है वह सभी पापों से छूटकर रुद्रलोक में जाता है । (१७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त—३७.

३८

श्रीकूर्म उवाच ।

एवमुक्तास्तु मुनयो नैमिषीया महामतिम् ।
पप्रच्छुरुत्तरं सूतं पृथिव्यादिविनिर्णयम् ॥१

ऋषय ऊचुः ।

कथितो भवता सूत सर्गः स्वायंभुवः शुभः ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्रिलोकस्यास्य मण्डलम् ॥२
यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः ।
वनानि सरितः सूर्यग्रहाणां स्थितिरेव च ॥३
यदाधारमिदं कृत्स्नं येषां पृथ्वी पुरा त्वियम् ।
नृपाणां तत्समासेन सूत वक्तुमिहार्हसि ॥४

सूत उवाच ।

वक्ष्ये देवादिदेवाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
नमस्कृत्वाऽप्रमेयाय यदुक्तं तेन धीमता ॥५
स्वायंभुवस्य तु मनोः प्रागुक्तो यः प्रियव्रतः ।
पुत्रस्तस्याभवन् पुत्राः प्रजापतिसमा दश ॥६
अग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान् द्युतिमांस्तथा ।
मेधा मेधातिथिर्हव्यः सवनः पुत्र एव च ॥७
ज्योतिष्मान् दशमस्तेषां महाबलपराक्रमः ।
धार्मिको दाननिरतः सर्वभूतानुकम्पकः ॥८
मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभागा न राज्ये दधिरे मतिम् ॥९
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चद् वै सप्तद्वीपेषु सप्त तान् ।
जम्बुद्वीपेश्वरं पुत्रमग्नीध्रमकरोन्नृपः ॥१०
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चैव तेन मेधातिथिः कृतः ।
शाल्मलेशं वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान् ॥११

३८

श्रीकूर्म ने कहा—ऐसा कहे जाने पर नैमिषारण्य के मुनियों ने महाबुद्धिमान् सूत से पृथिव्यादि-सम्बन्धी निर्णय पूछा। (१)

ऋषियों ने कहा—हे सूत! आपने स्वायम्भुव मन्वन्तरकी सुन्दर सृष्टि का वर्णन किया। अब हम इस त्रैलोक्य के मण्डल का वर्णन सुनना चाहते हैं। (२)

जितने सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, एवं नदियाँ हैं तथा सूर्य और ग्रहों की स्थिति इन सभी (का वर्णन करें)। (३)

हे सूत! ये सभी जिसके आधार पर स्थित है तथा प्राचीनकाल में यह पृथ्वी जिन (राजाओं) के अधिकार में रही इन सभी विषयों का संक्षेप में वर्णन करें। (४)

सूत ने कहा—देवादिदेव, अप्रमेय, प्रभविष्णु विष्णु को नमस्कार कर मैं उन बुद्धिमान् द्वारा कहे गये (विषय) का वर्णन करता हूँ। (५)

पूर्व में स्वायम्भुव मनु के जिस प्रियव्रत नामक पुत्र का वर्णन हुआ है उस (प्रियव्रत) को प्रजापति के सदृश दस पुत्र हुये। (६)

अग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, हव्य, सवन एवं पुत्र तथा अत्यन्त बलवान्, पराक्रमी, धार्मिक, दानशील और सभी प्राणियों पर दया करने वाला ज्योतिष्मान् नामक दसवाँ पुत्र था (७, ८)

मेधा, अग्निबाहु एवं पुत्र ये तीनों योगपरायण थे। पूर्वजन्मों का स्मरण करने वाले इन महाभाग्यशालियों का मन राज्य के कार्य में नहीं लगा। (९)

प्रियव्रत ने सात द्वीपों में (अपने) उन सात पुत्रों को अभिषिक्त कर दिया। राजा ने अग्नीध्र नामक पुत्र को जम्बुद्वीप का स्वामी बनाया। (१०)

उन्होंने मेधातिथि को प्लक्षद्वीप का स्वामी बनाया एवं उन्होंने वपुष्मान् को शाल्मली द्वीप के स्वामी के रूप में राज्याभिषिक्त किया। (११)

ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः ।
द्युतिमन्तं च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् ॥१२
शाकद्वीपेश्वरं चापि हव्यं चक्रे प्रियव्रतः ।
पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं च प्रजापतिः ॥१३
पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत् ।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥१४
महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।
नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्डमुच्यते ॥१५
शाकद्वीपेश्वरस्याथ हव्यस्याप्यभवन् सुताः ।
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचकः ।
कुसुमोत्तरोऽथ मोदाकिः सप्तमः स्यान्महाद्रुमः ॥१६
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते ।
कुमारस्य तु कौमारं तृतीयं सुकुमारकम् ॥१७
मणीचकं चतुर्थं तु पञ्चमं कुसुमोत्तरम् ।
मोदाकं षष्ठमित्युक्तं सप्तमं तु महाद्रुमम् ॥१८
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि सुता द्युतिमतोऽभवन् ।
कुशलः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु मनोहरः ॥१९
उष्णस्तृतीयः संप्रोक्तश्चतुर्थः प्रवरः स्मृतः ।
अन्धकारो मुनिश्चैव दुन्दुभिश्चैव सप्तमः ।
तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः ॥२०
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैवासन् महौजसः ।
उद्भेदो वेणुमांश्चैवाश्वरथो लम्बनो धृतिः ।
षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्तमः कपिलः स्मृतः ॥२१
स्वनामचिह्नितान् यत्र तथा वर्षाणि सुव्रताः ।
ज्ञेयानि सप्त तान्येषु द्वीपेष्वेवं नयो मतः ॥२२
शाल्मलद्वीपनाथस्य सुताश्चासन् वपुष्मतः ।
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ।
वैद्युतो मानसश्चैव सप्तमः सुप्रभो मतः ॥२३
प्लक्षद्वीपेश्वरस्यापि सप्त मेधातिथेः सुताः ।
ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां शिशिरश्च सुखोदयः ।
आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा ॥२४

प्रभु (प्रियव्रत) ने ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप में राजा बनाया एवं द्युतिमान् को क्रौञ्चद्वीप का राजा निर्दिष्ट किया । (१२)

प्रजापति प्रियव्रत ने हव्य को शाकद्वीप का स्वामी बनाया तथा सवन को पुष्कर द्वीप का राजा बनाया । (१३)

पुष्कर द्वीप में सवन को भी महावीत एवं धातकि नामक पुत्र हुए । पुत्रवानों के पुत्रों में ये दोनों ही पुत्र श्रेष्ठ थे । (१४)

उन महात्मा (महावीत) के नाम से उस वर्ष को महावीतवर्ष कहते हैं एवं धातकि के नाम से धातकी-खण्ड कहा जाता है। (१५)

शाकद्वीप के स्वामी हव्य को भी जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुसुमोत्तर, मोदाकि एवं सप्तम महाद्रुम नामक पुत्र हुए । (१६)

जलद का जलद नामक प्रथम वर्ष कहा जाता है। कुमार का कौमार, तृतीय सुकुमारक, चतुर्थ मणीचक, पञ्चम कुसुमोत्तर, छठवाँ मोदाक एवं सातवाँ महाद्रुम नामक वर्ष है । (१७, १८)

क्रौञ्चद्वीप के स्वामी द्युतिमान् को भी पुत्र हुए। उनमें पहला कुशल, दूसरा मनोहर, तीसरा उष्ण एवं चतुर्थ प्रवर नामक पुत्र कहा गया है। अन्धकार, मुनि एवं सातवाँ दुन्दुभि नामक पुत्र था । उनके नाम से प्रसिद्ध सुन्दर देश क्रौञ्चद्वीप में हैं । (१९,२०)

कुशद्वीप में ज्योतिष्मान् को अत्यन्त ओजस्वी सात पुत्र हुए—उद्भेद, वेणुमान्, अश्वरथ, लम्बन, धृति, छठवाँ प्रभाकर एवं सातवाँ कपिल नामक पुत्र कहा गया है । (२१)

हे सुव्रतो ! इस (कुशद्वीप) में उनके नाम से युक्त वर्ष हैं। इसी प्रकार अन्यद्वीपों की भी स्थिति समझनी चाहिए । (२२)

शाल्मलद्वीप के स्वामी वपुष्मान् को भी श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस एवं सातवाँ सुप्रभ नामक पुत्र थे । (२३)

प्लक्षद्वीप के स्वामी मेधातिथि को भी सात पुत्र (हुए) । उनमें शान्तभय नामक ज्येष्ठ पुत्र था । (इसके अतिरिक्त) शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक एवं ध्रुव नामक पुत्र थे । (२४)

प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयः शाकद्वीपान्तिकेषु वै ।
वर्णाश्रमविभागेन स्वधर्मो मुक्तये द्विजाः ॥२५
जम्बुद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रास्त्वासन् महाबलाः ।
अग्नीध्रस्य द्विजश्रेष्ठास्तन्नामानि निबोधत ॥२६
नाभिः किंपुरुषश्चैव तथा हरिरिलावृतः ।
रम्यो हिरण्वांश्च कुरुर्भद्राश्वः केतुमालकः ॥२७
जम्बुद्वीपेश्वरो राजा स चाग्नीध्रो महामतिः ।
विभज्य नवधा तेभ्यो यथान्यायं ददौ पुनः ॥२८
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वं प्रददौ पुनः ।
हेमकूटं ततो वर्षं ददौ किंपुरुषाय तु ॥२९
तृतीयं नैषधं वर्षं हरये दत्तवान् पिता ।
इलावृताय प्रददौ मेरुमध्यमिलावृतम् ॥३०
नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता ।
श्वेतं यदुत्तरं वर्षं पित्रा दत्तं हिरण्वते ॥३१
यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत् कुरवे ददौ ।
मेरोः पूर्वेण यद् वर्षं भद्राश्वाय न्यवेदयत् ।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान् ॥३२
वर्षेष्वेतेषु तान् पुत्रानभिषिच्य नराधिपः ।
संसारकष्टतां ज्ञात्वा तपस्तेपे वनं गतः ॥३३
हिमाह्वयं तु यस्यैतन्नाभेरासीन्महात्मनः ।
तस्यर्षभोऽभवत् पुत्रो मरुदेव्यां महाद्युतिः ॥३४
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथिवीपतिः ।
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा तपस्तेपे यथाविधि ॥३५
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशो धमनिसंततः ।
ज्ञानयोगरतो भूत्वा महापाशुपतोऽभवत् ॥३६
सुमतिर्भरतस्याभूत् पुत्रः परमधार्मिकः ।
सुमतेस्तैजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत ॥३७
परमेष्ठी सुतस्तस्मात् प्रतीहारस्तदन्वयः ।
प्रतिहर्त्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः ॥३८

हे द्विजो ! प्लक्षद्वीप इत्यादि से तथा शाकद्वीप तक वर्ण एवं आश्रम के विभागानुसार स्वधर्म मुक्ति का साधक है। (२५)

जम्बुद्वीप के अधिपति अग्नीध्र को भी महाबलवान् पुत्र हुए। हे द्विजश्रेष्ठो ! उनके नाम सुनो। (२६)

नाभि, किंपुरुष, हरि, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व एवं केतुमालक (नामक नव पुत्र थे)। (२७)

जम्बुद्वीप के स्वामी महाबुद्धिमान् उन अग्नीध्र ने (जम्बुद्वीप को) नव भागों में विभक्तकर न्यायानुसार उन (पुत्रों) को दे दिया। (२८)

(पिता ने) नाभि को दक्षिण दिशा में स्थित हिम नामक वर्ष प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने किंपुरुष को हेमकूट वर्ष दिया। (२९)

पिता (अग्नीध्र) ने हरि को तृतीय नैषध नामक वर्ष प्रदान किया एवं इलावृत को मेरु के मध्य में स्थित इलावृत (नामक वर्ष) दिया। (३०)

पिता ने रम्य को नीलपर्वताश्रित वर्ष प्रदान किया। पिता (अग्नीध्र) ने उत्तर दिशा में स्थित श्वेत वर्ष हिरण्वान् को दिया। (३१)

कुरु को शृङ्गवान् पर्वत के उत्तर में स्थित (उत्तरकुरु नामक) वर्ष प्रदान किया एवं (उन्होंने) मेरु के पूर्व में स्थित (भद्राश्व नामक) वर्ष भद्राश्व को दिया तथा केतुमाल को गन्धमादन वर्ष प्रदान किया। (३२)

राजा (अग्नीध्र) इन वर्षों में उन पुत्रों को अभिषिक्त कर संसार के कष्ट को जानकर वन में जाकर तप करने लगे। (३३)

जिन महात्मा नाभि के पास हिम नामक वर्ष था उन्हें मरुदेवी से महातेजस्वी ऋषभ नामक पुत्र हुआ। (३४)

ऋषभ को सौ पुत्रों में ज्येष्ठ भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र भरत को अभिषिक्त करने के उपरान्त राजा ऋषभ, वानप्रस्थाश्रम में जाकर यथाविधि तप करने लगे। (३५)

तपस्या से अत्यन्त क्षीण होने के कारण वे कृश तथा दुर्बल रक्तशिराओं वाले होते गये। तदुपरान्त ज्ञान-योग-परायण होकर वे महापाशुपत हो गए। (३६)

उन भरत को भी सुमति नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। सुमति से तैजस और उस (तैजस) से इन्द्रद्युम्न की उत्पत्ति हुई। (३७)

उस (इन्द्रद्युम्न) से परमेष्ठी नामक पुत्र हुआ एवं उस (परमेष्ठी) का पुत्र प्रतीहार हुआ। उस (प्रतीहार) को प्रतिहर्त्ता नामक प्रसिद्ध पुत्र हुआ। (३८)

भवस्तस्मादथोद्गीथः प्रस्तावस्तत्सुतोऽभवत् ।
पृथुस्ततस्ततो रक्तो रक्तस्यापि गयः सुतः ॥३९
नरो गयस्य तनयस्तस्य पुत्रो विराडभूत् ।
तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत ॥४०
महान्तोऽपि ततश्चाभूद् भौवनस्तत्सुतोऽभवत् ।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्याप्यभूत् सुतः ॥४१
शतजिद् रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं द्विजाः ।
तेषां प्रधानो वलवान् विश्वज्योतिरिति स्मृतः ॥४२
आराध्य देवं ब्रह्माणं क्षेमकं नाम पार्थिवम् ।
असूत पुत्रं धर्मज्ञं महाबाहुमरिंदमम् ॥४३
एते पुरस्ताद् राजानो महासत्त्वा महौजसः ।
एषां वंशप्रसूतैश्च भुक्तेयं पृथिवी पुरा ॥४४

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

३९

सूत उवाच ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।
त्रैलोक्यस्यास्य मानं वो न शक्यं विस्तरेण तु ॥१
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्ततः ।
जनस्तपश्च सत्यं च लोकास्त्वण्डोद्भवा मताः ॥२
सूर्याचन्द्रमसोर्यावत् किरणैरवभासते ।
तावद् भूर्लोक आख्यातः पुराणे द्विजपुंगवाः ॥३
यावत्प्रमाणो भूर्लोको विस्तरात् परिमण्डलात् ।
भुवर्लोकोऽपि तावान् स्यान्मण्डलाद् भास्करस्य तु ॥४

उससे भव, (भव से) उद्गीथ तथा उस (उद्गीथ) से प्रस्ताव नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। उस (प्रस्ताव) से पृथु एवं पृथु से रक्त की उत्पत्ति हुई रक्त को भी गय नामक पुत्र हुआ। (३९)

गय का पुत्र नर तथा उस (नर) का पुत्र विराट् था। उस (विराट्) का पुत्र महावीर्य था। उस (महावीर्य) से धीमान् का जन्म हुआ। (४०)

उस (धीमान्) से महान्त की उत्पत्ति हुई। उन महान्त का पुत्र भौवन हुआ। (उसको) त्वष्टा (नामक पुत्र हुआ था)। त्वष्टा का पुत्र विरज था। उस (विरज) से रज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। (४१)

उस रजस् (को) शतजित् नामक पुत्र हुआ। हे द्विजो ! (उस शतजित्) को सौ पुत्र थे। उनमें विश्वज्योति को प्रधान तथा वलवान् कहा गया है। (४२)

देव ब्रह्मा की आराधना कर (उन विश्वज्योति ने) क्षेमक नाम के महाबाहुशाली एवं शत्रुमर्दन धर्मज्ञ राजा को पुत्र रूप से उत्पन्न किया। (४३)

पूर्वकाल में ये महासत्त्व एवं महातेजस्वी राजा थे। इनके वंश में उत्पन्न हुए लोगों ने प्राचीन काल में इस पृथ्वी का भोग किया है। (४४)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्वविभाग में अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त—३८.

३९

सूत ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! इसके पश्चात् मैं आपसे संक्षेप में इस त्रैलोक्य के परिमाण का वर्णन करूँगा। (जिसका वर्णन) विस्तार से नहीं किया जा सकता। (१)

(सृष्टि के आदि में) अण्ड से भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक एवं सत्यलोक उत्पन्न हुए। (२)

हे द्विजपुङ्गवो ! सूर्य और चन्द्रमा की किरणों के द्वारा जहाँ तक का भाग प्रकाशित होता है उतने भाग को पुराणों में भूलोक कहा गया है। (३)

सूर्य के विस्तृत परिमण्डल से भूलोक का जितना परिमाण है भुवर्लोक का भी सूर्यमण्डल से उतना ही विस्तार है। (४)

ऊर्ध्वं यन्मण्डलाद् व्योम ध्रुवो यावद् व्यवस्थितः।
स्वर्लोकः स समाख्यातस्तत्र वायोस्तु नेमयः ॥५
आवहः प्रवहश्चैव तथैवानुवहः परः।
संवहो विवहश्चाथ तदूर्ध्वं स्यात् परावहः ॥६
तथा परिवहश्चोर्ध्वं वायोर्वै सप्त नेमयः।
भूमेर्योजनलक्षे तु भानोर्वै मण्डलं स्थितम् ॥७
लक्षे दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्मृतम्।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं तल्लक्षेण प्रकाशते ॥८
द्वेलक्षे ह्युत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात्।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशनाः स्थितः ॥९
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणो व्यवस्थितः।
लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥१०
सौरिर्द्विलक्षेण गुरोर् ग्रहाणामथ मण्डलम्।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमात्रे प्रकाशते ॥११
ऋषीणां मण्डलादूर्ध्वं लक्षमात्रे स्थितो ध्रुवः।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः।
तत्र धर्मः स भगवान् विष्णुर्नारायणः स्थितः ॥१२
नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः ॥१३
द्विगुणस्तस्य विस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽधस्तात् प्रसर्पति ॥१४
उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः।
स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं तृतीयं यत् तमोमयम् ॥१५
चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते।
भार्गवात् पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ॥१६
बृहस्पतेः पादहीनौ वक्रसौरावुभौ स्मृतौ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ॥१७
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै।
बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलात् तथा ॥१८

आकाश में ऊपर की ओर जहाँ ध्रुव (तारा) स्थित है वहाँ तक के मण्डल को स्वर्लोक कहा जाता है। वहीं वायु की नेमियाँ अर्थात् वायु के भ्रमण के अरे हैं। (५)

वहीं आवह, प्रवह, अनुवह, संवह, विवह, और उसके ऊपर परावह एवं तदुपरि परिवह नामक वायु की सात नेमियाँ-अर्थात् चक्र के अरे स्थित हैं। भूमि से एक लाख योजन ऊपर सूर्य का मण्डल स्थित है। सूर्य के भी एक लक्ष (योजन) ऊपर के भाग में चन्द्रमा का मण्डल है। उसी से लक्ष योजन पर स्थित सम्पूर्ण नक्षत्र-मण्डल प्रकाशित होता है। (६-८)

हे विप्रो! नक्षत्रमण्डल से दो लाख योजन की दूरी पर बुध है। बुध से उतने ही प्रमाण की दूरी पर शुक्र स्थित है। (९)

शुक्र से उतने ही प्रमाण पर मङ्गल की स्थिति है। मङ्गल से दो लक्ष योजन की दूरी पर देवपुरोहित अर्थात् बृहस्पति स्थित हैं। (१०)

बृहस्पति से दो लक्ष योजन दूर सौरि अर्थात् शनैश्चर स्थित है। यह ग्रहों का मण्डल है। ग्रहों के उस मण्डल से लक्ष योजन दूर सप्तर्षिमण्डल प्रकाशित होता है। (११)

सप्तर्षिमण्डल से एक लक्ष योजन ऊपर ध्रुव स्थित है। ध्रुव समस्त ज्योतिश्चक्र का मेढि अर्थात् केन्द्र है। उसमें धर्मस्वरूप भगवान् विष्णु नारायण स्थित हैं। (१२)

सूर्य का विष्कम्भ अर्थात् व्यास नव सहस्र योजन का है। उस (व्यास) का तीन गुना (सूर्य के) मण्डल का परिमाण है। (१३)

सूर्य के विस्तार का दो गुना चन्द्रमा का विस्तार कहा गया है उन दोनों के तुल्य राहु उन दोनों के नीचे भ्रमण करता है। (१४)

पृथ्वी की छाया को लेकर मण्डलाकार निर्मित राहु का जो तृतीय वृहत्स्थान है, वह तमोमय है। (१५)

चन्द्रमा के (विस्तार) का सोलहवाँ भाग शुक्र का (विस्तार) है। शुक्र से चतुर्थांश कम वृहस्पति का (विस्तार) है। वृहस्पति से चतुर्थांश कम मङ्गल एवं शनि इन दोनों का मण्डल कहा गया है। उन दोनों के मण्डल तथा विस्तार से चतुर्थांश कम बुध का मण्डल है। (१६,१७)

जो तारा एवं नक्षत्र* रूपी शरीरधारी हैं वे सभी मण्डल एवं विस्तार में बुध के तुल्य हैं। (१८)

*अश्विन्यादि तथा रेवत्यन्त नक्षत्रों को नक्षत्र एवं उनसे भिन्न छोटे बड़े आकाश में दृश्य ज्योतिष्पिण्डों को तारा कहा जाता है।

तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परात् ।
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ॥१९
सर्वावरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु ।
योजनान्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥२०
उपरिष्टात् त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः ।
सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः ॥२१
तेभ्योऽधस्ताच्च चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः ।
सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः ॥२२
दक्षिणायनमार्गस्थो यदा चरति रश्मिमान् ।
तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति ॥२३
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति ॥२४
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं तु भार्गवः ।
वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः ॥२५
तस्माच्छनैश्चरोऽप्यूर्ध्वं तस्मात् सप्तर्षिमण्डलम् ।
ऋषीणां चैव सप्तानां ध्रुवश्चोर्ध्वं व्यवस्थितः ॥२६
योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव ।
ईषादण्डस्तथैव स्याद् द्विगुणो द्विजसत्तमाः ॥२७
सार्द्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि तु ।
योजनानां तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम् ॥२८
त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्णेमिन्यक्षयात्मके ।
संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम् ॥२९
चत्वारिंशत् सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वतः ।
पञ्चान्यानि तु सार्द्धानि स्यन्दनस्य द्विजोत्तमाः ॥३०
अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः ।
ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धेन ध्रुवाधारे रथस्य तु ॥३१
द्वितीयेऽक्षे तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले ।
हयाश्च सप्त छन्दांसि तन्नामानि निबोधत ॥३२
गायत्री च बृहत्युष्णिक् जगती पङ्क्तिरेव च ।
अनुष्टुप् त्रिष्टुबित्युक्ताश्छन्दांसि हरयो हरेः ॥३३

तारा एवं नक्षत्र स्वरूप (छोटे-बड़े आकाश में दृश्य ज्योतिष्पिण्ड) एक दूसरे से पाँच, चार, तीन या दो सौ योजन हीन हैं। (१९)

तारकामण्डल पहले एवं बाद समस्त (ग्रहपिण्डों) की अपेक्षा हीन हैं उनके मण्डल योजन या आधे योजन परिणाम के हैं। उनसे ह्रस्व कोई दृश्य नहीं है। (२०)

इनसे ऊपर दूरगामी शनि, बृहस्पति एवं मङ्गल ये तीन ग्रह हैं। ये सभी मन्दगति वाले ग्रह हैं। (२१)

तदनन्तर उनके निम्न भाग में सूर्य, चन्द्रमा, बुध एवं शुक्र ये चार अन्य शीघ्रगामी महाग्रह हैं। (२२)

सूर्य जब दक्षिणायन के मार्ग में विचरण करता है तो सभी ग्रहों के निम्न भाग में सूर्य की गति होती है। (२३)

उसके ऊपर विस्तीर्ण मण्डल बनाकर चन्द्रमा विचरण करता है। सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल चन्द्रमा से ऊपर के भाग में भ्रमण करता है। (२४)

नक्षत्रों से ऊपर बुध, बुध से ऊपर शुक्र, शुक्र से ऊपर मङ्गल एवं मङ्गल से ऊपर बृहस्पति हैं। (२५)

उस (बृहस्पति) से ऊपर शनैश्चर एवं उसके ऊपर सप्तर्षिमण्डल तथा सप्तर्षिमण्डल से ऊपर ध्रुव स्थित है। (२६)

सूर्य का रथ नव सहस्र योजन का है। हे द्विजश्रेष्ठो ! उसका ईषादण्ड (अर्थात् जूआ) उसी प्रकार दो गुना (अर्थात् अट्ठारह सहस्र योजन) का है। (२७)

उसका अक्ष अर्थात् धुरा-डेढ करोड़ सत्तर हजार योजन का है। उसी में चक्र-अर्थात् रथ का पहिया लगा है। (२८)

तीन नाभि, पाँच अरे एवं छः नेमियों वाले संवत्सरमय उस अक्षय चक्र में यह सम्पूर्ण कालचक्र प्रतिष्ठित है। (२९)

हे द्विजोत्तमो ! सूर्य के रथ का दूसरा अक्ष चालीस तथा साढ़े पाँच सहस्र योजन का है। (३०)

दोनों युगार्द्ध—दोनों ओर के जूआ के अर्द्धभाग का प्रमाण उस अक्ष के परिमाण के तुल्य है। रथ के ध्रुव—अर्थात् धुरा के आधार में स्थित ह्रस्व अक्ष उस युगार्द्ध के तुल्य है। (३१)

द्वितीय अक्ष में स्थित उस (रथ) का चक्र मानसाचल पर स्थित है। सात छन्द (उस रथ के) घोड़े हैं। उनके नाम सुनो। (३२)

गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, पङ्क्ति, अनुष्टुप् एवं त्रिष्टुप् छन्दों को सूर्य का घोड़ा कहा जाता है। (३३)

मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां दिशि महापुरी ।
दक्षिणेन यमस्याथ वरुणस्य तु पश्चिमे ॥३४
उत्तरेण तु सोमस्य तन्नामानि निबोधत ।
अमरावती संयमनी सुखा चैव विभा क्रमात् ॥३५
काष्ठां गतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।
ज्योतिषां चक्रमादाय देवदेवः प्रजापतिः ॥३६
दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकालं व्यवस्थितः ।
सप्तद्वीपेषु विप्रेन्द्रा निशामध्यस्य संमुखम् ॥३७
उदयास्तमने चैव सर्वकालं तु संमुखे ।
अशेषासु दिशास्वेव तथैव विदिशासु च ॥३८
कुलालचक्रपर्यन्तो भ्रमन्नेष यथेश्वरः ।
करोत्यहस्तथा रात्रिं विमुञ्चन् मेदिनीं द्विजाः ॥३९
दिवाकरकरैरेतत् पूरितं भुवनत्रयम् ।
त्रैलोक्यं कथितं सद्भिर्लोकानां मुनिपुंगवाः ॥४०
आदित्यमूलमखिलं त्रिलोकं नात्र संशयः ।
भवत्यस्मात् जगत् कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ॥४१
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राणां दिवौकसाम् ।
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्नं यत्तेजः सार्वलौकिकम् ॥४२
सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः ।
सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम् ॥४३
द्वादशान्ये तथादित्या देवास्ते येऽधिकारिणः ।
निर्वहन्ति पदं तस्य तदंशा विष्णुमूर्तयः ॥४४
सर्वे नमस्यन्ति सहस्रभानुं
गन्धर्वदेवोरगकिन्नराद्याः ।
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्द्विजेन्द्रा-
श्छन्दोमयं ब्रह्ममयं पुराणम् ॥४५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

मानसाचल पर पूर्व दिशा में महेन्द्र की महापुरी है। दक्षिण में यम की एवं पश्चिम में वरुण की (महापुरियाँ) हैं। (३४)

(उसके) उत्तर में सोम की (महापुरी) है। उन (पुरियों) के नाम सुनो—क्रमशः अमरावती, संयमनी, सुखा एवं विभा (ये ही उन पुरियों के नाम हैं)। (३५)

दक्षिण दिशा के अन्त में स्थित देवाधिदेव पितामह (सूर्य) नक्षत्रचक्र को ग्रहण कर प्रक्षिप्त वाण के समान भ्रमण करते हैं। (३६)

हे विप्रेन्द्रो ! सातों द्वीपों में दिवस के मध्य एवं रात्रि के अर्द्ध भाग में सूर्य सर्वदा (परस्पर) सम्मुख रहता है। उदय और अस्त के समय भी (सूर्य) सदा सम्मुख रहता है। हे विप्रेन्द्रो ! ईश्वर (सूर्य) कुम्हार के चक्र सदृश सभी दिशाओं एवं विदिशाओं में भ्रमण करते हैं। हे द्विजो ! पृथ्वी का त्याग करते हुए ये दिन और रात्रि की सृष्टि करते हैं। (३७-३९)

यह तोनों भुवन सूर्य की किरणों से व्याप्त है। हे मुनिपुङ्गवो ! विद्वानों ने (समस्त) लोकों (की गणना) को त्रैलोक्य के नाम से कहा है। (४०)

इसमें सन्देह नहीं कि सम्पूर्ण त्रैलोक्य के मूल कारण सूर्य है। देवता, असुर एवं मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण जगत् इन्हीं से उत्पन्न होता है। (४१)

समस्त लोकों के निमित्तस्वरूप वह तेज तेजस्वी रुद्र, इन्द्र, विष्णु, चन्द्र, श्रेष्ठ विप्रों एवं देवों का तेज है। (४२)

सूर्य ही सभी के आत्मस्वरूप, सभी लोकों के नियामक, महादेव, प्रजापति, तीनों लोकों के मूल कारण एवं उत्कृष्ट देवता हैं। (४३)

इसी प्रकार अविकारी स्वरूप जो अन्य वारह आदित्य (सूर्य) के अंश एवं विष्णु की मूर्ति स्वरूप देव हैं, वे उन्हीं के पद (सृष्टि कार्य) को सम्पादित करते हैं। (४४)

सभी गन्धर्व, देव, सर्प एवं किन्नरादि सूर्य को नमस्कार करते हैं तथा श्रेष्ठ द्विजगण अनेक प्रकार के यज्ञों से छन्द एवं ब्रह्म स्वरूप पुरातन (सूर्य देव) की उपासना करते हैं। (४५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में उन्तालिसवाँ अध्याय समाप्त—३९.

४०

सूत उवाच ।
स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्वसुभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥१
धाताऽर्यमाऽथ मित्रश्च वरुणः शक्र एव च ।
विवस्वानथ पूषा च पर्जन्यश्चांशुरेव च ॥२
भगस्त्वष्टा च विष्णुश्च द्वादशैते दिवाकराः ।
आप्याययन्ति वै भानुं वसन्तादिषु वै क्रमात् ॥३
पुलस्त्यः पुलहश्चात्रिर्वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः ।
भरद्वाजो गौतमश्च कश्यपः क्रतुरेव च ॥४
जमदग्निः कौशिकश्च मुनयो ब्रह्मवादिनः ।
स्तुवन्ति देवं विविधैश्छन्दोभिस्ते यथाक्रमम् ॥५
रथकृच्च रथौजाश्च रथचित्रः सुबाहुकः ।
रथस्वनोऽथ वरुणः सुषेणः सेनजित् तथा ॥६
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च रथजित् सत्यजित् तथा ।
ग्रामण्यो देवदेवस्य कुर्वतेऽभीशुसंग्रहम् ॥७
अथ हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा ।
सर्पो व्याघ्रस्तथापश्च वातो विद्युद् दिवाकरः ॥८
ब्रह्मोपेतश्च विप्रेन्द्रा यज्ञोपेतस्तथैव च ।
राक्षसप्रवरा ह्येते प्रयान्ति पुरतः क्रमात् ॥९
वासुकिः कङ्कनीरश्च तक्षकः सर्पपुंगवः ।
एलापत्रः शङ्खपालस्तथैरावतसंज्ञितः ॥१०
धनंजयो महापद्मस्तथा कर्कोटको द्विजाः ।
कम्बलाश्वतरश्चैव वहन्त्येनं यथाक्रमम् ॥११
तुम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूर्विश्वावसुस्तथा ।
उग्रसेनो वसुरुचिरर्वावसुरथापरः ॥१२
चित्रसेनस्तथोर्णायुर्धृतराष्ट्रो द्विजोत्तमाः ।
सूर्यवर्चा द्वादशैते गन्धर्वा गायतां वराः ।
गायन्ति विविधैर्गानैर्भानुं षड्जादिभिः क्रमात् ॥१३

४०

सूत ने कहा—देवों, आदित्यों, वसुओं, गन्धर्वों, अप्सराओं, ग्रामणी, सर्पो एवं राक्षसों सहित वे (सूर्य देव) उस रथ पर अधिष्ठित हैं। (१)

धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्ज्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा एवं विष्णु ये बारह आदित्य हैं। ये क्रमशः वसन्तादि ऋतुओं में भानु को आप्यायित करते हैं। (२, ३)

पुलस्त्य, पुलह, अत्रि, वसिष्ठ, अङ्गिरा, भृगु, भरद्वाज, गौतम, कश्यप, क्रतु, जमदग्नि एवं कौशिक ये ब्रह्मवादी मुनि अनेक प्रकार के छन्दों (वैदिक मन्त्रों) द्वारा क्रमशः (सूर्य) देव की स्तुति करते हैं। (४, ५)

रथकृत्, रथौजा, रथचित्र, सुबाहुक, रथस्वन, वरुण सुषेण, सेनजित्, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, रथजित् एवं सत्यजित् ये (द्वादश) ग्रामणी, सूर्य-रश्मि का संग्रह करते हैं। (६,७)

हे विप्रेन्द्रो! हेति, प्रहेति, पौरुषेय, वध, सर्प, व्याघ्र, अप्, वात, विद्युत्, दिवाकर, ब्रह्मोपेत एवं यज्ञोपेत ये श्रेष्ठ राक्षस क्रमशः (सूर्य देव के) आगे चलते हैं। (८, ९)

हे द्विजो! वासुकि, कङ्कनीर, तक्षक, सर्पपुङ्गव, एलापत्र, शङ्खपाल, ऐरावत, धनञ्जय, महापद्म, कर्कोटक, कम्बल एवं अश्वतर (ये नाग) क्रमशः इन सूर्य देव को ढोते हैं। (१०, ११)

हे द्विजोत्तमो! तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू, विश्वावसु, उग्रसेन, वसुरुचि, अर्वावसु, चित्रसेन, उर्णायु, धृतराष्ट्र एवं सूर्यवर्चा ये बारह श्रेष्ठ गान करने वाले गन्धर्व हैं। (ये गन्धर्व) षड्जादि स्वरयुक्त अनेक प्रकार का गान सूर्य के समीप करते हैं। (१२, १३)

क्रतुस्थलाप्सरोवर्या तथान्या पुञ्जिकस्थला ।
मेनका सहजन्या च प्रम्लोचा च द्विजोत्तमाः ।।१४
अनुम्लोचा घृताची च विश्वाची चोर्वशी तथा ।
अन्या च पूर्वचित्तिः स्यादन्या चैव तिलोत्तमा ।।१५
ताण्डवैर्विविधैरेनं वसन्तादिषु वै क्रमात् ।
तोषयन्ति महादेवं भानुमात्मानमव्ययम् ।।१६
एवं देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु ।
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेजसां निधिम् ।।१७
ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैनं नृत्यगेयैरुपासते ।।१८
ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम् ।
सर्पा वहन्ति देवेशं यातुधानाः प्रयान्ति च ।।१९
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद् रविम् ।
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीह कीर्त्तिताः ।।२०
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवि सानुगाः ।
विमाने च स्थिता नित्यं कामगे वातरंहसि ।।२१
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः ।
गोपयन्तीह भूतानि सर्वाणीहायुगक्षयात् ।।२२
एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः ।
यथायोगं यथासत्त्वं स एष तपति प्रभुः ।।२३
अहोरात्रव्यवस्थानकारणं स प्रजापतिः ।
पितृदेवमनुष्यादीन् स सदाप्याययेद् रविः ।।२४
तत्र देवो महादेवो भास्वान् साक्षान्महेश्वरः ।
भासते वेदविदुषां नीलग्रीवः सनातनः ।।२५
स एष देवो भगवान् परमेष्ठी प्रजापतिः ।
स्थानं तद् विदुरादित्यं वेदज्ञा वेदविग्रहम् ।।२६

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४०।।

हे द्विजोत्तमो ! अप्सराओं में श्रेष्ठ ऋतुस्थला, पुञ्जिकस्थला, मेनका, सहजन्या, प्रम्लोचा, अनुम्लोचा, घृताची, विश्वाची, उर्वशी, पूर्वचित्ति, अन्या (रम्भा) एवं तिलोत्तमा (ये बारह अप्सरायें) क्रमशः वसन्तादि ऋतुओं में विविध ताण्डवादि (नृत्यों) द्वारा इन अविनाशी महादेव सूर्य को सन्तुष्ट करती हैं। (१४-१६)

इस प्रकार क्रमशः दो-दो महीनों में देवगण सूर्य में रहते हुए तेजोनिधि सूर्य को (अपने) तेज से तृप्त करते हैं। (१७)

(सूर्य के समीप स्थित) मुनिगण अपने द्वारा रचित स्तुतियों से सूर्य की स्तुति करते हैं। अप्सरायें एवं गन्धर्व नृत्य एवं गान द्वारा इनकी उपासना करती हैं। (१८)

ग्रामणी, यक्ष एवं भूतगण (सूर्यदेव के) रश्मि का संग्रह करते हैं। सर्पगण देवेश (सूर्य) को ढोते हैं तथा राक्षस (उनके आगे) चलते हैं। (१९)

वालखिल्य नामक मुनिगण सूर्य को घेरकर उदयाचल से अस्ताचल तक ले जाते हैं। (पूर्व में) कहे गये ये (ये ही द्वादश आदित्य) तपते, वरसते, प्रकाश करते, वहते, एवं सृष्टि करते हैं तथा इनका कीर्तन करने पर ये प्राणियों के अशुभ कर्मों को दूर करते हैं। (२०)

ये नित्य कामचारी तथा वायु के समान गतिवाले विमान पर सूर्य के साथ अपने अनुचरों सहित आकाश में भ्रमण करते हैं। (२१)

क्रमशः वर्षा, ताप एवं प्रजा को आनन्द प्रदान करते हुए ये प्रलयपर्यन्त सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं। (२२)

ये प्रभु सूर्य इन्हीं देवों के वीर्य, तप, योग एवं सत्व के अनुसार ताप देते हैं। (२३)

वे प्रजापति (सूर्य) दिन और रात्रि की व्यवस्था के कारण हैं। वे सूर्य सदा पितरों, देवों एवं मनुष्यादि को पुष्ट करते हैं। (२४)

वेदज्ञों के सनातन, नीलग्रीव, महादेव, साक्षात् महेश्वर देव ही सूर्य के रूप में प्रकाशित होते हैं। (२५)

वेदज्ञ लोग आदित्य में जिनके वेदस्वरूप स्थान को जानते हैं वही ये भगवान् परमेष्ठी प्रजापति देव हैं। (२६)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में चालीसवाँ अध्याय समाप्त—४०.

४१

सूत उवाच ।

एवमेव महादेवो देवदेवः पितामहः ।
करोति नियतं कालं कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः ।।१
तस्य ये रश्मयो विप्राः सर्वलोकप्रदीपकाः ।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ।।२
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च ।
विश्वव्यचाः पुनश्चान्यः संयद्वसुरतः परः ।।३
अर्वावसुरिति ख्यातः स्वराडन्यः प्रकीर्तितः ।
सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु पुष्णाति शिशिरद्युतिम् ।।४
तिर्यगूर्ध्वप्रचारोऽसौ सुषुम्नः परिपठ्यते ।
हरिकेशस्तु यः प्रोक्तो रश्मिर्नक्षत्रपोषकः ।।५
विश्वकर्मा तथा रश्मिर्बुधं पुष्णाति सर्वदा ।
विश्वव्यचास्तु यो रश्मिः शुक्रं पुष्णाति नित्यदा ।।६
संयद्वसुरिति ख्यातः स पुष्णाति च लोहितम् ।
बृहस्पतिं प्रपुष्णाति रश्मिरर्वावसुः प्रभोः ।
शनैश्चरं प्रपुष्णाति सप्तमस्तु सुराट् तथा ।।७
एवं सूर्यप्रभावेन सर्वा नक्षत्रतारकाः ।
वर्धन्ते वर्धिता नित्यं नित्यमाप्याययन्ति च ।।८
दिव्यानां पार्थिवानां च नैशानां चैव सर्वशः ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसां तमसां प्रभुः ।।९
आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समंततः ।
नादेयांश्चैव सामुद्रान् कूप्यांश्चैव सहस्रदृक् ।
स्थावराञ्जङ्गमांश्चैव यच्च कुल्यादिकं पयः ।।१०
तस्य रश्मिसहस्रं तच्छीतवर्षोष्णनिस्रवम् ।
तासां चतुःशतं नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः ।।११

४१

सूत ने कहा—इस प्रकार ये महादेव कालस्वरूप ऐश्वर्यमय शरीरवाले देवाधिदेव पितामह (सूर्य) काल का नियमन करते हैं। (१)

हे विप्रो ! सभी लोकों को प्रकाशित करने वाली उनकी जो रश्मियाँ हैं उनमें ग्रहों के कारणस्वरूप सात सर्वश्रेष्ठ हैं। (२)

सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यचा, संयद्वसु, अर्वावसु एवं स्वराड् नामक (सात रश्मियाँ) कही गयी हैं। सुषुम्न नामक सूर्य की रश्मि चन्द्रमाँ को पुष्ट करती है। (३, ४)

इस सुषुम्न को तिरछे रूप से ऊपर जाने वाली कहा गया है। हरिकेश नामक जो रश्मि है उसे नक्षत्रों का पोषक कहा जाता है। (५)

विश्वकर्मा नामक रश्मि सर्वदा बुध ग्रह का पोषण करती है। विश्वव्यचा रश्मि नित्य शुक्र का पोषण करती है। (६)

जो (रश्मि) संयद्वसु के नाम से प्रसिद्ध है वह मङ्गल को पुष्ट करती है। प्रभु सूर्य की अर्वावसु नामक रश्मि बृहस्पति को पुष्ट करती है तथा सुराट् नामक सातवीं रश्मि शनैश्चर का पोषण करती है। (७)

इस प्रकार सूर्य के प्रभाव से सभी नक्षत्र एवं तारे नित्य बढ़ते हैं तथा वृद्धि प्राप्त कर (अन्यों को) आप्यायित करते हैं। (८)

द्यु लोक एवं पृथ्वी से सम्बन्धित समस्त तेज समूह तथा निशा सम्बन्धी तम का नित्य आदान-अर्थात् ग्रहण करने के कारण प्रभु (सूर्य को) आदित्य कहा जाता है। (९)

सहस्रनेत्र वे (सूर्य देव) सहस्रों नाड़ियों-अर्थात् किरणों द्वारा नदी, समुद्र, कूप स्थावर, जङ्गम एवं नहर इत्यादि का जल ग्रहण करते हैं। (१०)

उनकी सहस्रों रश्मियाँ शीत, वर्षा एवं उष्णता की सृष्टि करती हैं एवं (पूर्वोक्त) नाड़ियों में विचित्रमूर्तिवाली चार सौ नाड़ियाँ वर्षा करती हैं। (११)

वन्दनाश्चैव याज्याश्च केतना भूतनास्तथा ।
अमृता नाम ताः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ।।१२
हिमोद्वाहाश्च ता नाड्यो रश्मयस्त्रिशतं पुनः ।
रश्म्यो मेष्यश्च पौष्यश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः ।
चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीताभाः स्युर्गभस्तयः ।।१३
शुक्राश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ।
शुक्रास्ता नामतः सर्वास्त्रिविधा घर्मसर्जनाः ।।१४
समं बिभर्ति ताभिः स मनुष्यपितृदेवताः ।
मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितॄनपि ।
अमृतेन सुरान् सर्वांस्त्रिभिस्त्रींस्तर्पयत्यसौ ।।१५
वसन्ते ग्रैष्मिके चैव शतैः स तपति त्रिभिः ।
शरद्यपि च वर्षासु चतुर्भिः संप्रवर्षति ।
हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजति त्रिभिः ।।१६
वरुणो माघमासे तु सूर्यः पूषा तु फाल्गुने ।
चैत्रे मासि भवेदंशो धाता वैशाखतापनः ।।१७

वन्दना, याज्या, केतना एवं भूतना नामक सभी रश्मियाँ अमृता कही गयी हैं जो वृष्टि की सृष्टि करने वाली हैं । (१२)

नाडी स्वरूप तीन सौ रश्मियाँ हिम की सृष्टि करती हैं। मेषी, पौषी एवं ह्लादिनी नामक रश्मियाँ हिम की सृष्टि करती हैं। ये सभी चन्द्रा नामक पीतवर्ण वाली रश्मियाँ हैं। (१३)

शुक्रा, ककुभ एवं विश्वभृत नामक रश्मियाँ शुक्रा कही जाती है। ये तीनों ही रश्मियाँ त्रिविध घर्म-उष्णता की सृष्टि करती हैं। (१४)

उनके द्वारा समान रूप से मनुष्यों, पितरों एवं देवों का पोषण होता है। वे (सूर्य देव) इन किरणों के माध्यम से औषध, स्वधा एवं अमृत इन तीन (पदार्थों) द्वारा (क्रमशः) मनुष्यों, पितरों एवं देवों इन तीनों को तृप्त करते हैं। (१५)

वे प्रभु सूर्यदेव वसन्त एव ग्रीष्म ऋतु में तीन सौ (रश्मियों) से तपते हैं एवं शरद और वर्षा में चार(सौ) रश्मियों द्वारा वर्षा करते हैं तथा हेमन्त और शिशिर ऋतु में तीन (सौ) रश्मियों से हिम का त्याग करते हैं। (१६)

माघ मास में सूर्य का नाम वरुण होता है एवं

ज्येष्ठामूले भवेदिन्द्रः आषाढे सविता रविः ।
विवस्वान् श्रावणे मासि प्रौष्ठपद्यां भगः स्मृतः ।।१८
पर्जन्योऽश्वयुजि त्वष्टा कार्तिके मासि भास्करः ।
मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः ।।१९
पञ्चरश्मिसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि ।
षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवोंशः सप्तभिस्तथा ।।२०
धाताऽष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिस्तु शतक्रतुः ।
विवस्वान् दशभिः पाति पात्येकादशभिर्भगः ।।२१
सप्तभिस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाष्टभिस्तपेत् ।
अर्यमा दशभिः पाति पर्जन्यो नवभिस्तपेत् ।
षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति विश्वसृक् ।।२२
वसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसप्रभः ।
श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुरः शरदि प्रभुः ।
हेमन्ते ताम्रवर्णः स्याच्छिशिरे लोहितो रविः ।।२३

फाल्गुन मास में (वे) पूषा कहे जाते हैं। सूर्य चैत्र में अंश, वैशाख में धाता, ज्येष्ठ में इन्द्र, आषाढ में सविता, श्रावण मास में विवस्वान् एवं भाद्र पद मास में भग, कहे जाते हैं। (१७, १८)

(सूर्य) आश्विन महीने में पर्जन्य एवं कार्तिक मास में भास्कर कहे जाते हैं। (सूर्यको) मार्गशीर्ष महीने में मित्र तथा पौष मास में सनातन विष्णु कहा जाता है। (१९)

वरुण (नामक सूर्य) की पाँच सहस्र रश्मियाँ सूर्य का कार्य सम्पादन करती हैं। पूषा की छः सहस्र एवं अंश देव की सात सहस्र, धाता आठ सहस्र से, इन्द्र नव सहस्र से, विवस्वान दस सहस्र से एवं भग ग्यारह सहस्र (रश्मियों) से पालन करते हैं। (२०, २१)

मित्र (नामक सूर्य) सात सहस्र एवं त्वष्टा आठ सहस्र रश्मियों से ताप प्रदान करते हैं। अर्यमा (नामक सूर्य) दश सहस्र एवं पर्जन्य नव सहस्र (रश्मियों) से तपते हैं। विश्व की सृष्टि करने वाले विष्णु (नामक सूर्य) छः सहस्र रश्मियों से तपते हैं। (२२)

प्रभु सूर्य वसन्त ऋतु में कपिल वर्ण के, ग्रीष्म में स्वर्ण-सदृश वर्ण के, वर्षा में श्वेत, शरद में धूसर वर्ण के हेमन्त में ताम्र वर्ण के एवं शिशिर में लोहित वर्ण के होते हैं। (२३)

ओषधीषु बलं धत्ते स्वधामपि पितृष्वथ ।
सूर्योऽमरत्वममृते त्रयं त्रिषु नियच्छति ॥२४
अन्ये चाष्टौ ग्रहा ज्ञेयाः सूर्येणाधिष्ठिता द्विजाः ।
चन्द्रमाः सोमपुत्रश्च शुक्रश्चैव बृहस्पतिः ।
भौमो मन्दस्तथा राहुः केतुमानपि चाष्टमः ॥२५
सर्वे ध्रुवे निबद्धा वै ग्रहास्ते वातरश्मिभिः ।
भ्राम्यमाणा यथायोगं भ्रमन्त्यनुदिवाकरम् ॥२६
अलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरिता द्विजाः ।
यस्माद् वहति तान् वायुः प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥२७
रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः ।
वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन निशाकरः ॥२८
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि रविर्यथा ।
ह्रासवृद्धी च विप्रेन्द्रा ध्रुवाधाराणि सर्वदा ॥२९
स सोमः शुक्लपक्षे तु भास्करे परतः स्थिते ।
आपूर्यते परस्यान्तः सततं दिवसक्रमात् ॥३०

सूर्य देव ओषधियों, पितरों एवं देवों इन तीनों को क्रमशः बल, स्वधा तथा अमरत्व प्रदान करते हैं। (२४)

हे द्विजो ! अन्य आठ ग्रहों को सूर्य से अधिष्ठित हुआ जानो। चन्द्रमा, बुध, शुक्र, बृहस्पति, मङ्गल, शनि राहु एवं अष्टम केतु नामक अन्य ग्रह हैं। (२५)

वात-रश्मियों द्वारा ध्रुव में निबद्ध वे सभी ग्रह (अपनी कक्षा में) भ्रमण करते हुए यथा-स्थान सूर्य की परिक्रमा करते हैं। (२६)

हे द्विजो ! वायुचक्र से प्रेरित (ग्रहगण) अलातचक्र के सदृश भ्रमण करते हैं। क्योंकि वायु उन (ग्रहों) का वहन करता है अतः उसे 'प्रवह' कहते हैं। (२७)

सोम के रथ में तीन चक्र हैं एवं उसके वाम और दक्षिण भाग में कुन्द पुष्प के वर्णवाले दस अश्व जुते हुए हैं। इसी रथ से चन्द्रमा भी सर्वदा सूर्य के सदृश कक्षा में स्थित नक्षत्रों के मध्य परिभ्रमण करता है। हे विप्रेन्द्रो ! (चन्द्रमा के) रश्मियों की क्रमशः ह्रास और वृद्धि होती रहती है। (२८,२९)

दिन के क्रमानुसार शुक्लपक्ष में चन्द्रमा के पर भाग में स्थित सूर्य सोम को दिनों-दिनों आपूरित करता है। (३०)

हे विप्रो ! देवों से पान किये जाने के कारण क्षीण

क्षीणायितं सुरैः सोममाप्याययति नित्यदा ।
एकेन रश्मिना विप्राः सुषुम्नाख्येन भास्करः ॥३१
एषा सूर्यस्य वीर्येण सोमस्याप्यायिता तनुः ।
पौर्णमास्यां स दृश्येत संपूर्णे दिवसक्रमात् ॥३२
संपूर्णमर्धमासेन तं सोममममृतात्मकम् ।
पिबन्ति देवता विप्रा यतस्तेऽमृतभोजनाः ॥३३
ततः पञ्चदशे भागे किंचिच्छिष्टे कलात्मके ।
अपराह्णे पितृगणा जघन्यं पर्युपासते ॥३४
पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टा तस्य कला तु या ।
सुधामृतमयीं पुण्यां तामिन्दोरमृतात्मिकाम् ॥३५
निःसृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ।
मासतृप्तिमवाप्याग्र्यां पितरः सन्ति निर्वृताः ॥३६
न सोमस्य विनाशः स्यात् सुधा देवैस्तु पीयते ।
एवं सूर्यनिमित्तस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमाः ॥३७

हुए चन्द्रमा को सूर्य (अपने) सुषुम्ना नामक एक रश्मि द्वारा पुष्ट करते हैं। (३१)

सूर्य के वीर्य से सोम का शरीर पुष्ट होता है। अतएव दिन क्रमानुसार पूर्णमासी को वह (चन्द्रमा पुनः) सम्पूर्ण रूप से दिखलायी पड़ता है। (३२)

हे विप्रो ! देवगण उस अमृतात्मक सम्पूर्ण सोम का आधे महीने में पान करते हैं, क्योंकि वे (देव गण) अमृत का भोजन करने वाले होते हैं। (३३)

तदनन्तर (चन्द्रमा के) पन्द्रह भाग का क्षय होने के उपरान्त एक कलात्मक अंश शेष रहने पर अपराह्ण में पितृगण अन्तिम भाग का भोग करते हैं। (३४)

(पितृगण) दो लव परिमित काल तक उस चन्द्रमा की अवशिष्ट अमृतस्वरूपिणी पवित्र सुधा नामक कला का पान करते हैं। (३५)

अमावास्या के दिन (चन्द्रमा की) किरणों से निःसृत स्वधा नामक अमृत (का पान करने) से महीने भर के लिये तृप्ति प्राप्त कर स्वस्थ हो जाते हैं। (३६)

देवों द्वारा अमृत का पान किये जाने पर भी चन्द्रमा का विनाश नहीं होता। हे सज्जनों। इस प्रकार सूर्य के कारण चन्द्रमा के क्षय एवं वृद्धि का क्रम चलता है। (३७)

सोमपुत्रस्य चाष्टाभिर्वाजिभिर्वायुवेगिभिः ।
वारिजैः स्यन्दनो युक्तस्तेनासौ याति सर्वतः ।।३८
शुक्रस्य भूमिजैरश्वैः स्यन्दनो दशभिर्वृतः ।
अष्टाभिश्चाथ भौमस्य रथो हैमः सुशोभनः ।।३९
बृहस्पतेरथाष्टाश्वः स्यन्दनो हेमनिर्मितः ।
रथस्तमोमयोऽष्टाश्वो मन्दस्यायसनिर्मितः ।
स्वर्भानोर्भास्करारेश्च तथा षड्भिर्हयैर्वृतः ।।४०
एते महाग्रहाणां वै समाख्याता रथा नव ।
सर्वे ध्रुवे महाभागा निबद्धा वातरश्मिभिः ।।४१
ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे बद्धान्यशेषतः ।
भ्रमन्ति भ्रामयन्त्येनं सर्वाण्यनिलरश्मिभिः ।।४२

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

४२

सूत उवाच ।

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकः कोटियोजनविस्तृतः ।
कल्पाधिकारिणस्तत्र संस्थिता द्विजपुंगवाः ।।१
जनलोको महर्लोकात् तथा कोटिद्वयात्मकः ।
सनन्दनादयस्तत्र संस्थिता ब्रह्मणः सुताः ।।२
जनलोकात् तपोलोकः कोटित्रयसमन्वितः ।
वैराजास्तत्र वै देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः ।।३
प्राजापत्यात् सत्यलोकः कोटिषट्केन संयुतः ।
अपुनर्मारकास्तत्र ब्रह्मलोकस्तु स स्मृतः ।।४
अत्र लोकगुरुर्ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
आस्ते स योगिभिर्नित्यं पीत्वा योगामृतं परम् ।।५
विशन्ति यतयः शान्ता नैष्ठिका ब्रह्मचारिणः ।
योगिनस्तापसाः सिद्धा जापकाः परमेष्ठिनम् ।।६

सोम के पुत्र (बुध) के रथ में वायु सदृश वेग वाले जल से उत्पन्न आठ अश्व जुते हैं। वह (बुध) उसी (रथ) से सर्वत्र गमन करता है। (३८)

शुक्र के रथ में पृथ्वी से उत्पन्न दस घोड़े जुते हैं एवं भूमिपुत्र (मङ्गल) के स्वर्णमय सुन्दर रथ में आठ अश्व लगे हैं। (३९)

बृहस्पति के रथ में आठ अश्व जुते हैं एवं उनका वह रथ स्वर्ण का बना है। शनि का लौहनिर्मित रथ तमोमय आठ अश्वों से युक्त है। राहु एवं केतु के भी रथ छः अश्वों से युक्त हैं। (४०)

महाग्रहों के इन नव रथों का वर्णन किया गया। ये सभी महाभाग वायु की रश्मियों द्वारा ध्रुव में निबद्ध हुये हैं। सभी ग्रह, नक्षत्र एवं तारागण ध्रुव में निबद्ध हैं। वायु की रश्मि द्वारा परिचालित होकर ये सभी परिभ्रमण करते हैं। (४१, ४२)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त—४१.

४२

सूत ने कहा—ध्रुव से ऊपर एक करोड़ योजन विस्तृत महर्लोक है। हे द्विजपुङ्गवो ! वहाँ कल्प के अधिकारी गण निवास करते हैं। (१)

इसी प्रकार महर्लोक के ऊपर दो करोड़ योजन का जनलोक है। वहाँ ब्रह्मा के पुत्र शनकादि रहते हैं। (२)

जनलोक के ऊपर तीन करोड़ योजन का तपोलोक है। वहाँ दाहशून्य वैराज नामक देवगण रहते हैं। (३)

प्राजापत्य लोक-अर्थात् तपोलोक के ऊपर छः करोड़ योजन का सत्यलोक है। वहाँ अपुनर्मारक (रहते हैं) एवं इसे ब्रह्मलोक कहते हैं। (४)

श्रेष्ठ योगामृत का पान कर चारों ओर मुख वाले विश्वात्मा, लोकगुरु ब्रह्मा योगियों सहित यहाँ नित्य निवास करते हैं। (५)

यहाँ शान्त स्वभाववाले यतिगण, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, योगी, तपस्वी, सिद्ध एवं परमेष्ठी का जप करने वाले प्रवेश करते हैं। (६)

द्वारं तद्योगिनामेकं गच्छतां परमं पदम् ।
तत्र गत्वा न शोचन्ति स विष्णुः स च शंकरः ।।७
सूर्यकोटिप्रतीकाशं पुरं तस्य दुरासदम् ।
न मे वर्णयितुं शक्यं ज्वालामालासमाकुलम् ।।८
तत्र नारायणस्यापि भवनं ब्रह्मणः पुरे ।
शेते तत्र हरिः श्रीमान् मायी मायामयः परः ।।९
स विष्णुलोकः कथितः पुनरावृत्तिवर्जितः ।
यान्ति तत्र महात्मानो ये प्रपन्ना जनार्दनम् ।।१०
ऊर्ध्वं तद् ब्रह्मसदनात् पुरं ज्योतिर्मयं शुभम् ।
वह्निना च परिक्षिप्तं तत्रास्ते भगवान् भवः ।।११
देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः ।
योगिभिः शतसाहस्रैर्भूतै रुद्रैश्च संवृतः ।।१२
तत्र ते यान्ति नियता द्विजा वै ब्रह्मचारिणः ।
महादेवपराः शान्तास्तापसा ब्रह्मवादिनः ।।१३
निर्ममा निरहंकाराः कामक्रोधविवर्जिताः ।
द्रक्ष्यन्ति ब्रह्मणा युक्ता रुद्रलोकः स वै स्मृतः ।।१४
एते सप्त महालोकाः पृथिव्याः परिकीर्त्तिताः ।
महातलादयश्चाधः पातालाः सन्ति वै द्विजाः ।।१५
महातलं च पातालं सर्वरत्नोपशोभितम् ।
प्रासादैर्विविधैः शुभ्रैर्देवतायतनैर्युतम् ।।१६
अनन्तेन च संयुक्तं मुचुकुन्देन धीमता ।
नृपेण बलिना चैव पातालस्वर्गवासिना ।।१७
शैलं रसातलं विप्राः शार्करं हि तलातलम् ।
पीतं सुतलमित्युक्तं नितलं विद्रुमप्रभम् ।
सितं हि वितलं प्रोक्तं तलं चैव सितेतरम् ।।१८
सुपर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम् ।
रसातलमिति ख्यातं तथान्यैश्च निषेवितम् ।।१९
विरोचनहिरण्याक्षतक्षकाद्यैश्च सेवितम् ।
तलातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम् ।।२०

परम पद-अर्थात् मोक्ष-पद को प्राप्त करने वाले योगियों का वह एकमात्र द्वार है। वहाँ जानेवाले शोक नहीं करते। वही विष्णु और शङ्कर हैं। (७)

उन (ब्रह्मा) का करोड़ों सूर्य के तुल्य वह पुर अत्यन्त दुर्गम है। मैं अग्निशिखा के समूह से युक्त उस पुर का वर्णन नहीं कर सकता। (८)

ब्रह्मा के उस पुर में नारायण का भी भवन है। मायामय परम मायावान् श्रीमान् हरि वहाँ शयन करते हैं। (९)

उसे पुनरावृत्ति से रहित विष्णुलोक कहा जाता है। वहाँ वे महात्मागण जाते हैं, जो जनार्दन के शरणागत होते हैं। (१०)

ब्रह्मपुर से ऊपर अग्नि से व्याप्त कल्याणकारी ज्योतिर्मय पुर है। वहाँ मनीषियों, के ध्येय स्वरूप, सैकड़ों एवं सहस्रों योगियों, भूतों रुद्रों एवं देवी (पार्वती) से युक्त भगवान् महादेव भव रहते हैं। (११, १२)

वहाँ भक्ति में नियमी ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, महादेवपरायण, शान्तचित्त तपस्वी एवं ब्रह्मवादी लोग जाते हैं। (१३)

ममत्व रहित, अहङ्कारशून्य, कामक्रोधविहीन, एवं ब्रह्मज्ञानयुक्त (व्यक्ति उस लोक का) साक्षात्कार करते हैं। उस लोक को रुद्रलोक कहा गया है। (१४)

हे द्विजो! पृथ्वी के ये सात महालोक कहे जाते हैं। (पृथ्वी के) अधोभाग में महातलादि (सात) पाताल हैं। (१५)

महातल नामक पाताल सभी रत्नों से सुशोभित तथा अनेक प्रकार के प्रासादों और शुभ्र देवमन्दिरों से युक्त है। (१६)

अनन्त (नाग), बुद्धिमान् मुचुकुन्द एवं पाताल स्वर्गवासी राजा बलि (उस महातल नामक) पाताल में रहते हैं। (१७)

हे विप्रो! रसातल प्रस्तरमय अर्थात् चट्टानों से पूर्ण, तलातल शर्करामय अर्थात् बालुका से पूर्ण, सुतल पीतवर्ण, नितल मूँगे के रङ्ग का, वितल शुक्लवर्ण एवं तल नामक पाताल कृष्णवर्ण का कहा गया है। (१८)

हे मुनिश्रेष्ठो! सुपर्ण (गरुड़), वासुकि (नाग) एवं अन्यान्य (महात्मागण) रसातल नाम से प्रसिद्ध शुभ पाताल में रहते हैं। (१९)

विरोचन, हिरण्याक्ष (राक्षस) एवं तक्षकादि (नाग) सभी प्रकार की शोभा से सम्पन्न तलातल नामक पाताल में रहते हैं। (२०)

वैनतेयादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः ।
पूर्वदेवैः समाकीर्णं सुतलं च तथापरैः ॥२१
नितलं यवनाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा ।
महान्तकाद्यैर्नागैश्च प्रह्लादेनासुरेण च ॥२२
वितलं चैव विख्यातं कम्बलाहीन्द्रसेवितम् ।
महाजम्भेन वीरेण हयग्रीवेण वै तथा ॥२३
शङ्कुकर्णेन संभिन्नं तथा नमुचिपूर्वकैः ।
तथान्यैर्विविधैर्नागैस्तलं चैव सुशोभनम् ॥२४
तेषामधस्तान्नरका मायाद्याः परिकीर्त्तिताः ।
पापिनस्तेषु पच्यन्ते न ते वर्णयितुं क्षमाः ॥२५
पातालानामधश्चास्ते शेषाख्या वैष्णवी तनुः ।
कालाग्निरुद्रो योगात्मा नारसिंहोऽपि माधवः ॥२६
योऽनन्तः पठ्यते देवो नागरूपी जनार्दनः ।
तदाधारमिदं सर्वं स कालाग्निमपाश्रितः ॥२७
तमाविश्य महायोगी कालस्तद्वदनोत्थितः ।
विषज्वालामयोऽन्तेऽसौ जगत् संहरति स्वयम् ॥२८
सहस्रमायोऽप्रतिमः संहर्त्ता शंकरोद्भवः ।
तामसी शांभवी मूर्तिः कालो लोकप्रकालनः ॥२९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

४३

सूत उवाच ।
एतद् ब्रह्माण्डमाख्यातं चतुर्दशविधं महत् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्यास्य निर्णयम् ॥१
जम्बुद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मल एव च ।
कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः ॥२
एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ।

गरुडादि पक्षी एवं कालनेमि प्रभृति श्रेष्ठ असुरगण सुतल नामक पाताल में निवास करते हैं। तारक अग्निमुख इत्यादि यवन, महान्तकादि नाग एवं असुर प्रह्लाद नितल नामक पाताल में रहते हैं। (२१, २२)

कम्वल नामक श्रेष्ठ सर्प, महाजम्भ, एवं वीर हयग्रीव वितल नामक विख्यात पाताल में रहते हैं। (२३)

शङ्कुकर्ण, नमुचि (नामक दैत्यों) तथा अन्य अनेक प्रकार के नाग तल नामक सुन्दर पाताल में रहते हैं। (२४)

उन (पातालों) के नीचे मायादि नामक नरक कहे गये हैं। उन (नरकों) में पापी लोग यातना पाते हैं। उनका वर्णन नहीं हो सकता। (२५)

पाताल के नीचे शेष नामक विष्णुमूर्त्ति विद्यमान है जिसे कालाग्निरुद्र, योगात्मा, नारसिंह, माधव, अनन्त देव एवं नागरूपी जनार्दन भी कहा जाता है। यह सब उन्हीं के आधार पर है एवं वे कालाग्नि के आश्रित हैं। (२६,२७)

उनमें प्रविष्ट होकर एवं (तदनंतर) उनके मुख से उठी विष की ज्वाला-स्वरूप होकर महायोगी काल स्वयं अन्त में जगत् का संहार करता है। (२८)

सहस्रमायाविशिष्ट एवं शङ्कर से उत्पन्न अनुपम (काल) संहार करता है। काल शम्भु की तमोगुणमयी मूर्त्ति है। वह काल ही लोकों का संहार करता है। (२९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में बयालीसवाँ अध्याय समाप्त—४२.

४३

सूत ने कहा—चौदह प्रकार के महान् ब्रह्माण्ड का यह वर्णन हुआ। इसके उपरान्त इस भूलोक का निर्णय करूँगा। (१)

(भूलोक में) जम्बूद्वीप प्रधान है। (इसके अतिरिक्त) प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक एवं सातवाँ पुष्कर द्वीप है। (२)

द्वीपाद् द्वीपो महानुक्तः सागरादपि सागरः ।।३
क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदकः ।
दध्योदः क्षीरसलिलः स्वादूदश्चेति सागराः ।।४
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता ।
द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समासतः ।।५
जम्बूद्वीपः समस्तानां द्वीपानां मध्यतः शुभः ।
तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रुतः कनकप्रभः ।।६
चतुरशीतिसाहस्रो योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ।।७
मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वतः ।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकात्वेन संस्थितः ।।८
हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ।।९
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथा परे ।
सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते ।।१०

ये सात महाद्वीप सात समुद्रों से घिरे हैं। एक द्वीप से दूसरा द्वीप एवं एक सागर से दूसरा सागर महान् कहा गया है। (३)

क्षारोदक, इक्षुरसोदक, सुरोदक, घृतोदक, दध्योदक, क्षीरोदक एवं स्वादूदक नामक (सात) सागर हैं। (४)

संक्षेप में समुद्र से युक्त यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन की कही जाती है। यह चतुर्दिक् सात द्वीपों से परिवेष्टित है। (५)

सभी द्वीपों के मध्य में मंगलमय जम्बूद्वीप स्थित है। उसके मध्य में स्वर्ण के वर्ण का महामेरु पर्वत है। (६)

उसकी ऊँचाई चौरासी सहस्र योजन है। नीचे की ओर यह सोलह योजन तक प्रविष्ट है एवं ऊपर की ओर बत्तीस योजन विस्तृत है। (७)

उस पर्वत के मूल में सभी ओर सोलह योजन का विस्तार है। यह पर्वत इस पृथ्वी रूपी कमल की कर्णिका के रूप में स्थित है। (८)

इसके दक्षिण में हिमवान्, हेमकूट एवं निषध और उत्तर में नील, श्वेत एवं शृङ्गी नामक वर्ष पर्वत हैं। (९)

इनमें दो (हिमवान् एवं हेमकूट नामक वर्ष पर्वत) (एक) लक्ष योजन परिमाण के हैं एवं अन्य (वर्ष पर्वत

भारतं दक्षिणं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम् ।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजाः ।।११
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैवानुहिरण्मयम् ।
उत्तराः कुरवश्चैव यथैते भरतास्तथा ।।१२
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः ।
इलावृतं च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः ।।१३
मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रविस्तृतम् ।
इलावृतं महाभागाश्चत्वारस्तत्र पर्वताः ।
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः ।।१४
पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ।
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ।।१५
कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च ।
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महर्षयः ।।१६
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि च ।
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वतः ।।१७

इनकी अपेक्षा) दश योजन कम हैं। इनकी उच्चता दो सहस्र योजन की है एवं उनका विस्तार भी उतना ही है। (१०)

हे द्विजो! मेरु के दक्षिण में प्रथम भारतवर्ष, तदुपरान्त किंपुरुषवर्ष एवं तत्पश्चात् हरिवर्ष स्थित है। (११)

उसके उत्तर में रम्यक, हिरण्मय एवं उत्तरकुरुवर्ष स्थित हैं। ये सभी भारतवर्ष के सदृश हैं। (१२)

हे द्विजसत्तमो! इनमें प्रत्येक नव सहस्र योजन का है। इनके मध्य में इलावृत वर्ष है एवं इसके मध्य में उन्नत मेरु पर्वत है। (१३)

वहाँ मेरु के चारों ओर नव सहस्र योजन का इलावृत नामक वर्ष है। हे महाभागो। वहाँ चार वर्ष पर्वत है। मेरु का विष्कम्भ अर्थात् वृत्तव्यास के रूप में विरचित इनकी ऊँचाई दस सहस्र योजन है। (१४)

इसके पूर्व में मन्दर एवं दक्षिण में गन्धमादन पर्वत है। पश्चिम पार्श्व में विपुल पर्वत एवं उत्तर में सुपार्श्व नामक पर्वत कहा गया है। (१५)

उसमें कदम्ब, जम्बू, पिप्पल एवं वट वृक्ष हैं। हे महर्षियो! वही जम्बू जम्बूद्वीप के नाम का कारण है। (१६)

उस जम्बूवृक्ष के फल महागज के सदृश होते हैं।

रसेन तस्याः प्रख्याता तत्र जम्बूनदीति वै ।
सरित् प्रवर्त्तते चापि पीयते तत्र वासिभिः ॥१८
न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः ।
तत्पानात् सुस्थमनसां नराणां तत्र जायते ॥१९
तीरमृत्तत्र संप्राप्य वायुना सुविशोषिता ।
जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥२०
भद्राश्वः पूर्वतो मेरोः केतुमालश्च पश्चिमे ।
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये इलावृतम् ॥२१
वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणे गन्धमादनम् ।
वैभ्राजं पश्चिमे विद्यादुत्तरे सवितुर्वनम् ॥२२
अरुणोदं महाभद्रमसितोदं च मानसम् ।
सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वदा ॥२३
सितान्तश्च कुमुद्वांश्च कुररी माल्यवांस्तथा ।
वैकङ्को मणिशैलश्च ऋक्षवांश्चाचलोत्तमाः ॥२४
महानीलोऽथ रुचकः सबिन्दुर्मन्दरस्तथा ।
वेणुमांश्चैव मेघश्च निषधो देवपर्वतः ।
इत्येते देवरचिताः सिद्धावासाः प्रकीर्त्तिताः ॥२५
अरुणोदस्य सरसः पूर्वतः केसराचलः ।
त्रिकूटशिखरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा ॥२६
निषधो वसुधारश्च कलिङ्गस्त्रिशिखः शुभः ।
समूलो वसुधारश्च कुरवश्चैव सानुमान् ॥२७
ताम्रातश्च विशालश्च कुमुदो वेणुपर्वतः ।
एकशृङ्गो महाशैलो गजशैलः पिशाचकः ॥२८
पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः ।
इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः ॥२९
महाभद्रस्य सरसो दक्षिणे केसराचलः ।
शिखिवासश्च वैदूर्यः कपिलो गन्धमादनः ॥३०
जारुधिश्च सुगन्धिश्च श्रीशृङ्गश्चाचलोत्तमः ।
सुपार्श्वश्च सुपक्षश्च कङ्कः कपिल एव च ॥३१
पिञ्जरो भद्रशैलश्च सुरसश्च महाबलः ।
अञ्जनो मधुमांस्तद्वत् कुमुदो मुकुटस्तथा ॥३२
सहस्रशिखरश्चैव पाण्डुरः कृष्ण एव च ।
पारिजातो महाशैलस्तथैव कपिलोदकः ॥३३
सुषेणः पुण्डरीकश्च महामेघस्तथैव च ।
एते पर्वतराजानः सिद्धगन्धर्वसेविताः ॥३४

पर्वत के पृष्ठ पर सभी ओर विशीर्ण हो रहे जामुन के फल) गिरते हैं। (१७)

उस पर्वत पर उस (फल) के रस से जम्बूनदी प्रवाहित होती है। वहाँ के निवासी (जम्बू-नदी के जल का) पान करते हैं। (१८)

इसका पान करने से वहाँ रहने वाले स्वस्थ चित्त मनुष्यों (के शरीर में) स्वेद, दुर्गन्धि, वार्धक्य एवं इन्द्रियहीनता नहीं होती। (१९)

उसके तीर पर स्थित मृत्तिका के रस का वायु शोषण कर लेता है जिससे जाम्बूनद नामक सुवर्ण होता है। सिद्धगण उसी का आभूषण धारण करते हैं। (२०)

मेरु के पूर्व में भद्राश्व एवं पश्चिम में केतुमाल नामक दो वर्ष हैं। हे मुनिश्रेष्ठो ! उन दोनों के मध्य में इलावृत वर्ष है। (२१)

पूर्व में चैत्ररथ नामक वन, दक्षिण में गन्धमादन. पश्चिम में वैभ्राज्य एवं उत्तर में सवितृवन है। (२२)

उनमें अरुणोद, महाभद्र, असितोद एवं मानस नामक चार सरोवर हैं। देवता लोग सर्वदा इन सरोवरों का उपभोग करते हैं। (२३)

सितान्त, कुमुद्वान्, कुररी, माल्यवान्, वैकङ्क, मणिशैल, उत्तम ऋक्षवान्, महानील, रुचक, सविन्दु, मन्दर, वेणुमान्, मेघ, निषध एवं देवपर्वत इन सभी पर्वतश्रेष्ठ की रचना देवों ने की है। इन्हें सिद्धों का आवास कहा जाता है। (२४,२५)

अरुणोद सरोवर के पूर्व में केसराचल, त्रिकूट शिखर, पतङ्ग, रुचक, निषध, वसुधार, कलिङ्ग, शुभ त्रिशिख, समूल, वसुधार, कुरव पर्वत, ताम्रात, विशाल, कुमुद, वेणुपर्वत, एकशृङ्ग, महाशैल, गजशैल, पिशाचक, पञ्चशैल, कैलास एवं पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् ये सभी देवों से युक्त शैल सर्वाधिक श्रेष्ठ हैं। (२६-२९)

महाभद्र सरोवर के दक्षिण में केसराचल, शिखिवास, वैदूर्य, कपिल, गन्धमादन, जारुधि, सुगन्धि, उत्तम श्रीशृंग, सुपार्श्व, सुपक्ष, कङ्क, कपिल, पिञ्जर, भद्रशैल, सुरस, महावल, अञ्जन, मधुमान्, कुमुद, मुकुट, सहस्र-

असितोदस्य सरसः पश्चिमे केसराचलः ।
शङ्खकूटोऽथ वृषभो हंसो नागस्तथा परः ॥३५
कालाञ्जनः शुक्रशैलो नीलः कमल एव च ।
पुष्पकश्च सुमेघश्च वाराहो विरजास्तथा ।
मयूरः कपिलश्चैव महाकपिल एव च ॥३६
इत्येते देवगन्धर्वसिद्धसङ्घनिषेविताः ।
सरसो मानसस्येह उत्तरे केसराचलाः ॥३७
एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम् ।
सन्ति चैवान्तरद्रोण्यः सरांसि च वनानि च ॥३८
वसन्ति तत्र मुनयः सिद्धाश्च ब्रह्मभाविताः ।
प्रसन्नाः शान्तरजसः सर्वदुःखविवर्जिताः ॥३९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

४४

सूत उवाच ।
चतुर्दशसहस्राणि योजनानां महापुरी ।
मेरोरुपरि विख्याता देवदेवस्य वेधसः ॥१
तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः ।
उपास्यमानो योगीन्द्रैर्मुनीन्द्रोपेन्द्रशंकरैः ॥२
तत्र देवेश्वरेशानं विश्वात्मानं प्रजापतिम् ।
सनत्कुमारो भगवानुपास्ते नित्यमेव हि ॥३
स सिद्धैर्ऋषिगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरैरपि ।
समास्ते योगयुक्तात्मा पीत्वा तत्परमामृतम् ॥४
तत्र देवादिदेवस्य शंभोरमिततेजसः ।
दीप्तमायतनं शुभ्रं पुरस्ताद् ब्रह्मणः स्थितम् ॥५
दिव्यकान्तिसमायुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ।

शिखर, पाण्डुर, कृष्ण, पारिजात, महाशैल कपिलोदक, सुषेण, पुण्डरीक एवं महामेघ ये सभी पर्वतराज सिद्धों एव गन्धर्वों से सेवित हैं। (३०-३४)

असितोद नामक सरोवर के पश्चिम में केसराचल, शङ्खकूट, वृषभ, हंस, नाग, कालाञ्जन, शुक्रशैल, नील, कमल, पुष्पक, सुमेघ, वाराह, विरजा, मयूर, कपिल एवं महाकपिल ये सभी (पर्वत) देव, गन्धर्व एवं सिद्धों के समूह से सेवित हैं। इस मानस सर के उत्तर केसराचल है। (३५-३७)

इन मुख्य शैलों के मध्य क्रमानुसार घाटियाँ, सरोवर एवं वन हैं। (३८)

वहाँ प्रसन्न, रजोगुणविहीन एवं सभी दुःखों से मुक्त ब्रह्मवादी मुनि एवं सिद्धगण निवास करते हैं। (३९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में तैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त—४३.

४४

सूत ने कहा—सुमेरु पर्वत के ऊपर देवाधिदेव ब्रह्मा की चौदह सहस्र योजनों की महापुरी है। (१)

वहाँ विश्व के कारण, विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा रहते हैं। श्रेष्ठ योगी, मुनि, विष्णु एवं शङ्कर (उन ब्रह्म देव की) उपासना करते रहते हैं। (२)

वहाँ भगवान् सनत्कुमार नित्य ही नियामक देवेश्वर विश्वात्मा प्रजापति की उपासना करते हैं। (३)

परमामृत का पान कर वे योगात्मा वहाँ रहते हैं एवं सिद्ध, ऋषि, गन्धर्व एवं देवगण (उनकी) पूजा करते रहते हैं। (४)

वहाँ ब्रह्मा के सम्मुख अमित तेजस्वी देवाधिदेव शम्भु का प्रकाशमान स्वच्छ मन्दिर है। (५)

महर्षिगणसंकीर्णं ब्रह्मविद्भिर्निषेवितम् ।।६
देव्या सह महादेवः शशाङ्कार्काग्निलोचनः ।
रमते तत्र विश्वेशः प्रमथैः प्रमथेश्वरः ।।७
तत्र वेदविदः शान्ता मुनयो ब्रह्मचारिणः ।
पूजयन्ति महादेवं तापसाः सत्यवादिनः ।।८
तेषां साक्षान्महादेवो मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ।
गृह्णाति पूजां शिरसा पार्वत्या परमेश्वरः ।।९
तत्रैव पर्वतवरे शक्रस्य परमा पुरी ।
नाम्नाऽमरावती पूर्वे सर्वशोभासमन्विता ।।१०
तमिन्द्रमप्सरःसङ्घा गन्धर्वा गीततत्पराः ।
उपासते सहस्राक्षं देवास्तत्र सहस्रशः ।।११
ये धार्मिका वेदविदो यागहोमपरायणाः ।
तेषां तत् परमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ।।१२
तस्य दक्षिणदिग्भागे वह्नेरमिततेजसः ।
तेजोवती नाम पुरी दिव्याश्चर्यसमन्विता ।।१३

तत्रास्ते भगवान् वह्निर्भ्राजमानः स्वतेजसा ।
जपिनां होमिनां स्थानं दानवानां दुरासदम् ।।१४
दक्षिणे पर्वतवरे यमस्यापि महापुरी ।
नाम्ना संयमनी दिव्या सिद्धगन्धर्वसेविता ।।१५
तत्र वैवस्वतं देवं देवाद्याः पर्युपासते ।
स्थानं तत् सत्यसंधानां लोके पुण्यकृतां नृणाम् ।।१६
तस्यास्तु पश्चिमे भागे निर्ऋतेस्तु महात्मनः ।
रक्षोवती नाम पुरी राक्षसैः सर्वतो वृता ।।१७
तत्र तं निर्ऋतिं देवं राक्षसाः पर्युपासते ।
गच्छन्ति तां धर्मरता ये वै तामसवृत्तयः ।।१८
पश्चिमे पर्वतवरे वरुणस्य महापुरी ।
नाम्ना शुद्धवती पुण्या सर्वकामर्द्धिसंयुता ।।१९
तत्राप्सरोगणैः सिद्धैः सेव्यमानोऽमराधिपः ।
आस्ते स वरुणो राजा तत्र गच्छन्ति येऽम्बुदाः ।
तीर्थयात्रापरा नित्यं ये च लोकेऽघमर्षिणः ।।२०

(वह मन्दिर) स्वर्गीय कान्ति से युक्त, चार द्वारों वाला, अत्यन्त सुन्दर, महर्षियों से पूर्ण तथा ब्रह्मज्ञानियों से सेवित है। (६)

चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि स्वरूप नेत्रों वाले प्रमथों के स्वामी विश्वेश महादेव वहाँ देवी (पार्वती) एवं प्रमथगणों के साथ रमण करते हैं। (७)

वहाँ ब्रह्मचारी वेदज्ञ, शान्त सत्यवादी मुनिगण एवं तपस्वी महादेव की आराधना करते हैं। (८)

साक्षात् परमेश्वर महादेव पार्वती सहित उन ब्रह्मवादी मुनियों की पूजा शिरोधार्य करते हैं। (९)

उसी श्रेष्ठ पर्वत पर इन्द्र की सभी शोभा से युक्त अमरावती नामक श्रेष्ठ पुरी है। (१०)

वहाँ सहस्रों अप्सरायें, गीत में तत्पर गन्धर्व, एवं सहस्रों देवता सहस्रनेत्र (इन्द्र) की उपासना करते हैं। (११)

देवों को भी दुर्लभ वह श्रेष्ठ स्थान उन लोगों का है जो धार्मिक, वेदज्ञ, तथा यज्ञ एवं होम करने वाले होते हैं। (१२)

उसकी दक्षिण दिशा में अमित तेजस्वी अग्नि की दिव्य आश्चर्यों से युक्त तेजोवती नामक पुरी है। (१३)

अपने तेज से प्रकाशमान भगवान् वह्नि वहाँ निवास करते हैं। जप एवं होम करने वालों का वह स्थान दानवों को दुर्गम है। (१४)

श्रेष्ठ पर्वत पर दक्षिण भाग में यमराज की भी समस्त शोभा से युक्त तथा सिद्धों एवं गन्धर्वों से सेवित संयमनी नामक दिव्य महापुरी है। (१५)

वहाँ देवादिक विवस्वान् देव की उपासना करते हैं। वह स्थान संसार में पुण्य करने वाले सत्यव्रती मनुष्यों का है। (१६)

उसके पश्चिम भाग में महात्मा निर्ऋति की रक्षोवती नामक महापुरी है, जो राक्षसों से परिपूर्ण रहती है। (१७)

वे राक्षस वहाँ उस निर्ऋति देव की उपासना करते हैं। जो तमोगुणी स्वभाव के धार्मिक होते हैं वे वहाँ जाते हैं। (१८)

पश्चिम में श्रेष्ठ पर्वत पर सभी प्रकार की कामना विषयक सम्पत्तियों से युक्त शुद्धवती नामक वरुण की पवित्र महापुरी है। (१९)

वहाँ अप्सराओं, सिद्धों एवं देवेश्वरों से सेवित हो रहे राजा वरुण रहते हैं। वहाँ (वे लोग) जाते हैं

तस्या उत्तरदिग्भागे वायोरपि महापुरी ।
नाम्ना गन्धवती पुण्या तत्रास्तेऽसौ प्रभञ्जनः ।।२१
अप्सरोगणगन्धर्वैः सेव्यमानोऽमरप्रभुः ।
प्राणायामपरा मर्त्या स्थानं तद् यान्ति शाश्वतम् ।।२२
तस्याः पूर्वेण दिग्भागे सोमस्य परमा पुरी ।
नाम्ना कान्तिमती शुभ्रा तत्र सोमो विराजते ।।२३
तत्र ये भोगनिरता स्वधर्मं पर्युपासते ।
तेषां तद् रचितं स्थानं नानाभोगसमन्वितम् ।।२४
तस्याश्च पूर्वदिग्भागे शंकरस्य महापुरी ।
नाम्ना यशोवती पुण्या सर्वेषां सुदुरासदा ।।२५
तत्रेशानस्य भवनं रुद्रविष्णुतनोः शुभम् ।
गणेश्वरस्य विपुलं तत्रास्ते स गणैर्वृतः ।।२६
तत्र भोगाभिलिप्सूनां भक्तानां परमेष्ठिनः ।
निवासः कल्पितः पूर्वं देवदेवेन शूलिना ।।२७

विष्णुपादाद् विनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम्।
समन्ताद् ब्रह्मणः पुर्यां गङ्गा पतति वै दिवः ।।२८
सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा ह्यभवद् द्विजाः ।
सीता चालकनन्दा च सुचक्षुर्भद्रनामिका ।।२९
पूर्वेण सीता शैलात् तु शैलं यात्यन्तरिक्षतः ।
ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वेनैति चार्णवम् ।।३०
तथैवालकनन्दा च दक्षिणादेत्य भारतम् ।
प्रयाति सागरं भित्त्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः ।।३१
सुचक्षुः पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्तथा ।
पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वैति चार्णवम् ।।३२
भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून् ।
अतीत्य चोत्तराम्भोधिं समभ्येति महर्षयः ।।३३
आनीलनिषधायामौ माल्यवान् गन्धमादनः ।
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ।।३४

जो संसार में नित्य जल दान करते, तीर्थयात्रा करते एवं अघमर्षण करते हैं। (२०)

उसके उत्तर दिशा की ओर वायु की भी गन्धवती नामक पवित्र महापुरी है। वहाँ वायु रहते हैं। (२१)

अप्सरायें एवं गन्धर्वगण उन देवों के स्वामी (वायुदेव) की सेवा करते रहते हैं। प्राणायाम करने वाले मनुष्य उस शाश्वत स्थान में जाते हैं। (२२)

उसके पूर्व दिशा की ओर सोम की कान्तिमती नामक श्रेष्ठ शुभ्र पुरी है। उसमें सोम (अर्थात् चन्द्रदेव) रहते हैं। (२३)

जो भोगनिरत लोग अपने धर्म का पालन करते हैं उन्हीं के लिए वहाँ पर अनेक प्रकार के भोगों से युक्त वह स्थान बना है। (२४)

उसके पूर्व की ओर शङ्कर की यशोवती नामक पवित्र महापुरी है। वह सभी को दुर्लभ है। (२५)

वहाँ रुद्र एवं विष्णु मय शरीर वाले गणाधिपति ईशान (शङ्कर) का विशाल भवन है। गणों से आवृत (शङ्कर देव) उसमें रहते हैं। (२६)

पूर्व काल में देवाधिदेव त्रिशूली (शङ्कर) ने वहाँ पर परमेष्ठी के भोगाभिलाषी भक्तों का निवास बनाया था। (२७)

विष्णु के चरण से निकली गङ्गा चन्द्रमण्डल को आप्लावित कर चतुर्दिक् ब्रह्मपुरी में स्वर्ग से गिरती हैं। (२८)

हे द्विजो! वहाँ गिर कर वे चारों दिशाओं में सीता, अलकनन्दा, सुचक्षु एवं भद्र नाम से चार भागों में विभक्त हो गयीं। (२९)

अन्तरिक्षचारिणी सीता नामक गङ्गा एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर जाती हुई पूर्व दिशा में भद्राश्ववर्ष में प्रवाहित होती हुई समुद्र में जाती हैं। (३०)

हे द्विजोत्तमो! इसी प्रकार अलकनन्दा नामक गङ्गा दक्षिण दिशा से भारतवर्ष में आने के उपरान्त सात भागों में विभक्त होकर सागर में जाती हैं। (३१)

उसी प्रकार सुचक्षु नामक गङ्गा पश्चिम दिशा के सभी पर्वतों का अतिक्रमण करती हुई पश्चिम दिशा के केतुमाल नामक वर्ष में प्रवाहित होकर समुद्र में जाती है। (३२)

हे महर्षियो! भद्रा नामक गङ्गा उत्तर दिशा के पर्वतों एवं उत्तरकुरु वर्ष का अतिक्रमण कर उत्तर समुद्र से मिलती हैं। (३३)

माल्यवान् एवं गन्धमादन पर्वत नील तथा निषध नामक पर्वतों पर्यन्त दीर्घ है एवं उन दोनों के मध्य में कर्णिका के आकार सदृश मेरु स्थित है। (३४)

भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः ॥३५
जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ ।
दक्षिणोत्तरमायामावानीलनिषधायतौ ॥३६
गन्धमादनकैलासौ पूर्वपश्चायतावुभौ ।
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥३७
निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वताविमौ ।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथापूर्वौ तथा स्थितौ ॥३८
त्रिशृङ्गो जारुधिस्तद्वदुत्तरे वर्षपर्वतौ ।
पूर्वपश्चायतावेतौ अर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥३९
मर्यादापर्वताः प्रोक्ता अष्टाविह मया द्विजाः ।
जठराद्याः स्थिता मेरोश्चतुर्दिक्षु महर्षयः ॥४०

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायां पूर्वविभागे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

४५

सूत उवाच ।
केतुमाले नराः कालाः सर्वे पनसभोजनाः ।
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभा जीवन्ति च वर्षायुतम् ॥१
भद्राश्वे पुरुषाः शुक्लाः स्त्रियश्चन्द्रांशुसन्निभाः ।
दश वर्षसहस्राणि जीवन्ते आम्रभोजनाः ॥२
रम्यके पुरुषा नार्यो रमन्ते रजतप्रभाः ।
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जीवन्ति चैव सत्त्वस्था न्यग्रोधफलभोजनाः ॥३
हिरण्मये हिरण्याभाः सर्वे च लकुचाशनाः ।
एकादशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।

मर्यादा-अर्थात् सीमा पर स्थित (उपर्युक्त) पर्वतों के वाह्यभाग में संसार रूपी कमल के पत्रों के रूप में भारतवर्ष, केतुमाल, भद्राश्व एवं कुरुवर्ष स्थित हैं। (३५)

जठर एवं देवकूट नामक दो मर्यादापर्वत नील एवं निषध पर्वतों पर्यन्त दक्षिणोत्तर की दिशा में विस्तृत हैं। (३६)

गन्धमादन एवं कैलास नामक दो पर्वत पूर्व-पश्चिम में फैले हैं। ये अस्सी योजन तक विस्तृत हैं तथा समुद्र में स्थित है। (३७)

निषध एवं पारियात्र नामक दो मर्यादा पर्वत मेरु की पश्चिम दिशा में पूर्व के (पर्वतों के) सदृश स्थित हैं। (३८)

उसी प्रकार त्रिशृङ्ग एवं जारुधि नामक दो उत्तर में वर्ष पर्वत हैं। ये पूर्व-पश्चिम में लम्वे हैं तथा समुद्र के भीतर स्थित हैं। (३९)

हे द्विजो ! मैंने यहाँ आठ मर्यादापर्वतों का वर्णन किया। हे महर्षियो ! सुमेरु पर्वत के चारों ओर की दिशाओं में जठरादिक (वर्ष पर्वत) स्थित हैं। (४०)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के पूर्व विभाग में चौवालिसवाँ अध्याय समाप्त—४४.

४५

सूत ने कहा—केतुमाल वर्ष के पुरुष कृष्णवर्ण के तथा पनस-अर्थात् कटहल-खाने वाले होते हैं। (वहाँ की) स्त्रियाँ कमलपत्र के रङ्ग की होती हैं। वे सभी दस सहस्र वर्ष तक जीवित रहते हैं। (१)

भद्रश्व वर्ष के पुरुष शुक्ल वर्ण के एवं स्त्रियाँ चन्द्रमा की किरणों के तुल्य होती हैं। वे दस सहस्र वर्ष तक जीते एवं आम का आहार करते हैं। (२)

रम्यक वर्ष में स्त्री-पुरुष रजतवर्ण के एवं सात्त्विक होते हैं। वे लोग दस सहस्र एवं पन्द्रह सौ वर्षों तक जीते एवं न्यग्रोध-अर्थात् वटवृक्ष का फल खाते हुए आनन्द मनाते हैं। (३)

हिरण्यमयवर्ष में स्वर्ण के रङ्ग के व्यक्ति निवास

जीवन्ति पुरुषा नार्यो देवलोकस्थिता इव ॥४
त्रयोदशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च ।
जीवन्ति कुरुवर्षे तु श्यामाङ्गाः क्षीरभोजनाः ॥५
सर्वे मिथुनजाताश्च नित्यं सुखनिषेविनः ।
चन्द्रद्वीपे महादेवं यजन्ति सततं शिवम् ॥६
तथा किंपुरुषे विप्रा मानवा हेमसन्निभाः ।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्ति प्लक्षभोजनाः ॥७
यजन्ति सततं देवं चतुर्मूर्तिं चतुर्मुखम् ।
ध्याने मनः समाधाय सादरं भक्तिसंयुताः ॥८
तथा च हरिवर्षे तु महारजतसन्निभाः ।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्तीक्षुरसाशिनः ॥९
तत्र नारायणं देवं विश्वयोनिं सनातनम् ।
उपासते सदा विष्णुं मानवा विष्णुभाविताः ॥१०
तत्र चन्द्रप्रभं शुभ्रं शुद्धस्फटिकनिर्मितम् ।
विमानं वासुदेवस्य पारिजातवनाश्रितम् ॥११
चतुर्द्वारमनौपम्यं चतुस्तोरणसंयुतम् ।
प्राकारैर्दशभिर्युक्तं दुराधर्षं सुदुर्गमम् ॥१२
स्फाटिकैर्मण्डपैर्युक्तं देवराजगृहोपमम् ।
स्वर्णस्तम्भसहस्रैश्च सर्वतः समलंकृतम् ॥१३
हेमसोपानसंयुक्तं नानारत्नोपशोभितम् ।
दिव्यसिंहासनोपेतं सर्वशोभासमन्वितम् ॥१४
सरोभिः स्वादुपानीयैर्नदीभिश्चोपशोभितम् ।
नारायणपरैः शुद्धैर्वेदाध्ययनतत्परैः ॥१५
योगिभिश्च समाकीर्णं ध्यायद्भिः पुरुषं हरिम् ।
स्तुवद्भिः सततं मन्त्रैर्नमस्यद्भिश्च माधवम् ॥१६
तत्र देवादिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ।
राजानः सर्वकालं तु महिमानं प्रकुर्वते ॥१७

करते हैं। वे सभी लकुच (का फल) खाते हैं। (वहाँ के सभी) स्त्री पुरुष देवलोक के निवासियों के सदृश ग्यारह हजार पन्द्रह सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं। (४)

कुरुवर्ष में दुग्धाहार करने वाले श्यामवर्ण के (स्त्री-पुरुष) तेरह हजार पन्द्रह सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं। (५)

वे सभी लोग मैथुन से उत्पन्न होने वाले हैं तथा सुखोप भोगी होते हैं एवं चन्द्रद्वीप में निरन्तर महादेव शिव की उपासना करते रहते हैं। (६)

हे विप्रो! इसी प्रकार किंपुरुष वर्ष में प्लक्ष अर्थात् पाकड़वृक्ष का फल खाने वाले स्वर्ण वर्ण के मनुष्य निवास करते हैं। वे दस सहस्र वर्ष तक जीवित रहते हैं। (७)

वे भक्तियुक्त लोग आदरसहित मन को ध्यान में समाविस्थ कर चतुर्मूर्ति एवं चतुर्मुख देव अर्थात् ब्रह्मा की निरन्तर उपासना करते रहते हैं। (८)

हरिवर्ष के मनुष्य ईख के रस का आहार करने वाले एवं उत्तम चाँदी के रङ्ग सदृश वर्ण वाले होते हैं, वे दस सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं। (९)

(वहाँ के) विष्णुभक्त मनुष्य सदा विश्व के मूल कारण स्वरूप सनातन नारायण विष्णु देव की उपासना करते हैं। (१०)

वहाँ पारिजात के वन में शुद्ध स्फटिक का बना हुआ चन्द्रमा के सदृश कान्ति वाला वासुदेव का एक शुभ्र प्रासाद है। (११)

चार द्वारों, चार तोरणों एवं दस प्राकारों से युक्त (वह प्रासाद) अनुपम, दुराधर्ष एवं दुर्गम है। (१२)

(वह प्रासाद) स्फटिक के मण्डपों से युक्त एवं देवराज इन्द्र के गृहतुल्य है। वह सर्वत्र सहस्रों स्वर्ण स्तम्भों से सुशोभित है। (१३)

वह (प्रासाद) स्वर्ण के सोपान (सीढ़ी) से युक्त, नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित, सभी प्रकार की शोभा से समन्वित एवं दिव्य सिंहासन से युक्त है। (१४)

(वह) स्वादिष्ट जल वाले सरोवरों एवं नदियों से सुशोभित है। (वह स्थान) नारायण-परायण, पवित्र, वेदाध्ययनशील पुरुष हरि का ध्यान करने वाले, मन्त्रों द्वारा निरन्तर माधव की स्तुति करने एवं (उन्हें) नमस्कार करने वाले योगियों से व्याप्त रहता है। (१५.१६)

वहाँ राजा लोग सर्वदा देवाधिदेव अमित तेजस्वी विष्णु की महिमा का कीर्तन करते हैं। (१७)

गायन्ति चैव नृत्यन्ति विलासिन्यो मनोरमाः ।
स्त्रियो यौवनशालिन्यः सदा मण्डनतत्पराः ॥१८
इलावृते पद्मवर्णा जम्बूफलरसाशिनः ।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां वै स्थिरायुषः ॥१९
भारते तु स्त्रियः पुंसो नानावर्णाः प्रकीर्त्तिताः ।
नानादेवार्च्चने युक्ता नानाकर्माणि कुर्वते ।
परमायुः स्मृतं तेषां शतं वर्षाणि सुव्रताः ॥२०
नानाहाराश्च जीवन्ति पुण्यपापनिमित्ततः ।
नवयोजनसाहस्रं वर्षमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।
कर्मभूमिरियं विप्रा नराणामधिकारिणाम् ॥२१
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥२२
इन्द्रद्युम्नः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥२३
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥२४

वहाँ सदा शृङ्गारप्रिय, मनोहर, यौवनशालिनी एवं विलासिनी स्त्रियाँ नृत्य एवं गान करती रहती हैं। (१८)

इलावृत में जामुन के फल का रस खाने वाले पद्मवर्ण के तेरह सहस्र वर्षों की स्थिर आयु वाले व्यक्ति निवास करते हैं। (१९)

भारत में अनेक वर्ण के स्त्रियों एवं पुरुषों का वर्णन हुआ है। वे अनेक प्रकार के देवों की आराधना एवं विभिन्न कर्म करते हैं। हे सुव्रतो! उनकी परमायु सौ वर्ष की कही गयी है। (२०)

अनेक प्रकार का आहार करने वाले (भारत के निवासी) पुण्य और पाप के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। यह वर्ष नव सहस्र योजन का कहा गया है। हे विप्रो! यह अधिकारी पुरुषों की कर्मभूमि है। (२१)

यहाँ महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र नामक सात कुलपर्वत हैं। (२२)

इन्द्रद्युम्न कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गन्धर्वद्वीप, वारुणद्वीप, एवं उनमें यह नवम द्वीप सागर से वेष्टित है। यह द्वीप दक्षिणोत्तर में एक सहस्र योजन का है। (२३,२४)

पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्रास्तथैव च ॥२५
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्तयन्त्यत्र मानवाः ।
स्रवन्ते पावना नद्यः पर्वतेभ्यो विनिःसृताः ॥२६
शतद्रुश्चन्द्रभागा च सरयूर्यमुना तथा ।
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥२७
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ।
कौशिकी लोहिता चैव हिमवत्पादनिःसृताः ॥२८
वेदस्मृतिर्वेदवती व्रतघ्नी त्रिदिवा तथा ।
पर्णाशा वन्दना चैव सदानीरा मनोरमा ॥२९
चर्मण्वती तथा दूर्या विदिशा वेत्रवत्यपि ।
शिप्रुः स्वशिल्पाऽपि तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥३०
नर्मदा सुरसा शोणा दशार्णा च महानदी ।
मन्दाकिनी चित्रकूटा तामसी च पिशाचिका ॥३१
चित्रोत्पला विपाशा च मञ्जुला वालुवाहिनी ।
ऋक्षवत्पादजा नद्यः सर्वपापहरा नृणाम् ॥३२

(इसके) पूर्व में किरात लोग एवं पश्चिम की ओर यवन लोग रहते हैं। (इसके) मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र रहते हैं। (२५)

यहाँ के निवासी मनुष्य यज्ञ, युद्ध एवं वाणिज्य द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं। (यहाँ) पर्वतों से निकली हुई पवित्र नदियाँ प्रवाहित होती हैं। (२६)

शतद्रु, चन्द्रभागा, सरयू, यमुना, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी एवं लोहिता (ये सभी नदियाँ) हिमालय की तलहटी से निकली हैं। (२७,२८)

वेदस्मृति, वेदवती, व्रतघ्नी, त्रिदिवा, पर्णाशा, वन्दना, सदानीरा, मनोरमा, चर्मण्वती, दूर्या, विदिशा एवं वेत्रवती, शिप्रु एवं स्वशिल्पा (ये सभी नदियाँ) पारियात्र पर्वत के आश्रित कही गयी हैं। (२९,३०)

नर्मदा, सुरसा, शोणा, दशार्णा, महानदी, मन्दाकिनी चित्रकूटा, तामसी, पिशाचिका, चित्रोत्पला, विपाशा, मञ्जुला एवं वालुवाहिनी (ये सभी) नदियाँ ऋक्षवान् पर्वत के पादमूल से निकली हैं। ये मनुष्यों के सभी पापों का हरण करती हैं। (३१,३२)

तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या शीघ्रोदा च महानदी ।
वेण्या वैतरणी चैव बलाका च कुमुद्वती ।।३३
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ।।३४
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वर्णा च मत्सरी ।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च द्विजोत्तमाः ।
दक्षिणापथगा नद्यः सह्यपादविनिःसृताः ।।३५
ऋतुमाला ताम्रपर्णी पुष्पवत्युत्पलावती ।
मलयान्निःसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः स्मृताः ।।३६
ऋषिकुल्या त्रिसामा च मन्दगा मन्दगामिनी ।
रूपा पालासिनी चैव ऋषिका वंशकारिणी ।
शुक्तिमत्पादसंजाताः सर्वपापहरा नृणाम् ।।३७
आसां नद्युपनद्यश्च शतशो द्विजपुंगवाः ।
सर्वपापहराः पुण्याः स्नानदानादिकर्मसु ।।३८
तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः ।
पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः ।।३९
पुण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च कृत्स्नशः ।
तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूद्राभीरास्तथाऽर्बुदाः ।।४०
मालका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः ।
सौवीराः सैन्धवा हूणा शाल्वाः कल्पनिवासिनः ।।४१
मद्रा रामास्तथाऽम्बष्ठाः पारसीकास्तथैव च ।
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा ।।४२
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ।।४३
यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ महर्षयः ।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयं न च ।।४४
स्वस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्जिताः ।
रमन्ति विविधैर्भावैः सर्वाश्च स्थिरयौवनाः ।।४५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४५।।

तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, शीघ्रोदा, महानदी, वेण्या, वैतरणी, बलाका, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा एवं अन्तःशिला (ये सभी) पवित्र जल वाली कल्याण-मयी नदियाँ विन्ध्य पर्वत से निकली हैं । (३३,३४)

हे द्विजोत्तमो ! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वर्णा, मत्सरी, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा एवं कावेरी ये सभी दक्षिण पथ को जानेवाली नदियाँ सह्यपर्वत के पादमूल से निकली हैं । (३५)

ऋतुमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पवती एवं उत्पलावती ये सभी शीतल जल वाली नदियाँ मलय पर्वत से निकली हैं । (३६)

ऋषिकुल्या, त्रिसामा, मन्दगा, मन्दगामिनी, रूपा, पालासिनी, ऋषिका एवं वंशकारिणी (ये सभी) मनुष्यों का पाप हरने वाली नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से निकली हैं । (३७)

हे द्विजश्रेष्ठो ! इन (सभी महानदियों) की सैकड़ों नदियाँ एवं उपनदियाँ हैं जो स्नान एवं दानादि कर्मों में पवित्र तथा सभी पापों को हरने वाली हैं । (३८)

उनमें कुरु, पाञ्चाल, मध्यदेश एवं कामरूप के निवासी लोग (भारत वर्ष के) पूर्व देशीय पुण्ड्र, कलिङ्ग, मगध इत्यादि देशों के निवासी, समस्त दाक्षिणात्य, सौराष्ट्र, शूद्र, आभीर, अर्बुद, मालक, मालव, पारियात्र निवासी, सौवीर, सैन्धव, हूण, शाल्व, कल्पनिवासी, मद्र, राम, अम्बष्ठ एवं पारसीक (इन सभी) स्थानों के निवासी इन नदियों के तट पर रहते एवं उनका जल पीते हैं । (३९-४२)

कवियों ने भारत वर्ष में कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलिनामक चार युगों का वर्णन किया है। ये (युग) अन्यत्र कहीं नहीं होते । (४३)

हे महर्षियो ! किंपुरुषादिक जो आठ वर्ष हैं उनमें शोक, परिश्रम, उद्वेग एवं भूख का भय नहीं होता । (४४)

सभी प्रजा आतङ्करहित, समस्त दुःखों से मुक्त एवं स्थिर यौवन से सम्पन्न होकर अनेक प्रकार से रमण करती रहती है । (४५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में पैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त—४५.

४६

सूत उवाच ।
हेमकूटगिरेः शृङ्गे महाकूटैः सुशोभितम् ।
स्फाटिकं देवदेवस्य विमानं परमेष्ठिनः ॥१
अथ देवादिदेवस्य भूतेशस्य त्रिशूलिनः ।
देवाः सिद्धगणा यक्षाः पूजां नित्यं प्रकुर्वते ॥२
स देवो गिरिशः सार्द्धं महादेव्या महेश्वरः ।
भूतैः परिवृतो नित्यं भाति तत्र पिनाकधृक् ॥३
विभक्तचारुशिखरः कैलासो यत्र पर्वतः ।
निवासः कोटियक्षाणां कुबेरस्य च धीमतः ।
तत्रापि देवदेवस्य भवस्यायतनं महत् ॥४
मन्दाकिनी तत्र दिव्या रम्या सुविमलोदका ।
नदी नानाविधैः पद्मैरनेकैः समलंकृता ॥५
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसकिंनरैः ।
उपस्पृष्टजला नित्यं सुपुण्या सुमनोरमा ॥६
अन्याश्च नद्यः शतशः स्वर्णपद्मैरलंकृताः ।
तासां कूलेषु देवस्य स्थानानि परमेष्ठिनः ।
देवर्षिगणजुष्टानि तथा नारायणस्य च ॥७
सितान्तशिखरे चापि पारिजातवनं शुभम् ।
तत्र शक्रस्य विपुलं भवनं रत्नमण्डितम् ।
स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं हेमगोपुरसंयुतम् ॥८
तत्राथ देवदेवस्य विष्णोर्विश्वामरेशितुः ।
सुपुण्यं भवनं रम्यं सर्वरत्नोपशोभितम् ॥९
तत्र नारायणः श्रीमान् लक्ष्म्या सह जगत्पतिः ।
आस्ते सर्वामरश्रेष्ठः पूज्यमानः सनातनः ॥१०
तथा च वसुधारे तु वसूनां रत्नमण्डितम् ।
स्थानानामष्टकं पुण्यं दुराधर्षं सुरद्विषाम् ॥११

४६

सूत ने कहा—हेमकूटपर्वत की चोटी पर देवाधिदेव ब्रह्मा का बड़े-बड़े कंगूरों से सुशोभित स्फटिकनिर्मित एक सुन्दर विमान (मन्दिर है।) (१)

वहाँ ऋषियों-सहित देवता एवं सिद्धलोग नित्य देवाधिदेव भूतेश त्रिशूली की पूजा करते हैं। (२)

देवी सहित वे पिनाकधारी महेश्वर गिरिश भूतों से घिरे हुए वहाँ नित्य विराजते हैं। (३)

जहाँ विभक्त हुए सुन्दर शिखर वाला कैलास पर्वत स्थित है तथा जहाँ करोड़ों यक्षों एवं बुद्धिमान् कुबेर का निवास स्थान है वहीं देवाधिदेव शङ्कर का महान् मन्दिर है। (४)

वहाँ विविध प्रकार के अनेक कमलों से सुशोभित दिव्य, रमणीक एवं स्वच्छ जलवाली मन्दाकिनी नदी है। (५)

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर लोग नित्य उस अतिपवित्र मनोरम (नदी) के जल का स्पर्श (उपयोग) करते हैं। (६)

(वहाँ) स्वर्ण कमलों से सुशोभित अन्य भी सैकड़ों नदियाँ हैं। उनके तट पर देवों एवं ऋषियों से सेवित परमेष्ठी-ब्रह्मा एवं नारायण के मन्दिर हैं। (७)

उसके शुभ्र शिखर पर पारिजात का सुन्दर वन है। वहाँ इन्द्र का रत्नमण्डित, स्फटिक के स्तम्भों से युक्त एवं स्वर्ण के गोपुर से सुशोभित विशाल भवन है। (८)

वहीं पर देवादिदेव समस्त देवों के नियामक विष्णु का पवित्र एवं सभी रत्नों से सुशोभित रमणीक भवन है। (९)

वहाँ जगत्पति, सभी देवों में श्रेष्ठ, पूज्यमान, सनातन श्रीमान् नारायण लक्ष्मी-सहित निवास करते हैं। (१०)

इसी प्रकार वसुधार नामक पर्वत पर (अष्ट) वसुओं का रत्नमण्डित, असुरों द्वारा अनाक्रमणीय, स्थानों में उत्तम एवं पवित्र आठ स्थान है। (११)

रत्नधारे गिरिवरे सप्तर्षीणां महात्मनाम्।
सप्ताश्रमाणि पुण्यानि सिद्धावासयुतानि तु ॥१२
तत्र हैमं चतुर्द्वारं वज्रनीलादिमण्डितम्।
सुपुण्यं सुमहत् स्थानं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१३
तत्र देवर्षयो विप्राः सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽपरे।
उपासते सदा देवं पितामहमजं परम् ॥१४
स तैः संपूजितो नित्यं देव्या सह चतुर्मुखः।
आस्ते हिताय लोकानां शान्तानां परमा गतिः ॥१५
अथैकशृङ्गशिखरे महापद्मैरलङ्कृतम्।
स्वच्छामृतजलं पुण्यं सुगन्धं सुमहत् सरः ॥१६
जैगीषव्याश्रमं तत्र योगीन्द्रैरुपशोभितम्।
तत्रासौ भगवान् नित्यमास्ते शिष्यैः समावृतः।
प्रशान्तदोषैरक्षुद्रैर्ब्रह्मविद्भिर्महात्मभिः ॥१७
शङ्खो मनोहरश्चैव कौशिकः कृष्ण एव च।
सुमना वेदनादश्च शिष्यास्तस्य प्रधानतः ॥१८

रत्नधार नामक श्रेष्ठ पर्वत पर सिद्धों के आवास से युक्त महात्मा सप्तर्षियों के पवित्र सात आश्रम हैं। (१२)

वहाँ अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा का स्वर्ण के चार द्वारों वाला, हीरा एवं नीलमणि इत्यादि से मण्डित सुन्दर पवित्र स्थान है। (१३)

हे विप्रो! वहाँ देवर्षिगण, सिद्ध, ब्रह्मर्षि एवं अन्य लोग देवाधिदेव अजन्मा पितामह की उपासना करते हैं। (१४)

शान्त अन्तःकरण वालों के परम गति स्वरूप, सभी से पूजित चतुर्मुख ब्रह्मा संसार के हितार्थ वहाँ देवी के साथ रहते हैं। (१५)

महापद्मों से अलङ्कृत एक शृङ्ग के शिखर पर स्वच्छ अमृत तुल्य जल का एक पवित्र सुगन्धिपूर्ण महान् सरोवर है। (१६)

वहाँ जैगीषव्य का श्रेष्ठ योगियों से सेवित आश्रम है। शान्त दोषों वाले श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञ महात्मा स्वरूप समस्त शिष्यों से आवृत वे भगवान् जैगीषव्य नित्य वहाँ निवास करते हैं। (१७)

शङ्ख, मनोहर, कौशिक, कृष्ण, सुमना एवं वेदनाद नामक (उनके) प्रधान शिष्य हैं। (१८)

सर्वे योगरताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
उपासते महावीर्या ब्रह्मविद्यापरायणाः ॥१९
तेषामनुग्रहार्थाय यतीनां शान्तचेतसाम्।
सान्निध्यं कुरुते भूयो देव्या सह महेश्वरः ॥२०
अन्यानि चाश्रमाणि स्युस्तस्मिन् गिरिवरोत्तमे।
मुनीनां युक्तमनसां सरांसि सरितस्तथा ॥२१
तेषु योगरता विप्रा जापकाः संयतेन्द्रियाः।
ब्रह्मण्यासक्तमनसो रमन्ते ज्ञानतत्पराः ॥२२
आत्मन्यात्मानमाधाय शिखान्तान्तरमास्थितम्।
ध्यायन्ति देवमीशानं येन सर्वमिदं ततम ॥२३
सुमेघे वासवस्थानं सहस्रादित्यसंनिभम्।
तत्रास्ते भगवानिन्द्रः शच्या सह सुरेश्वरः ॥२४
गजशैले तु दुर्गाया भवनं मणितोरणम्।
आस्ते भगवती दुर्गा तत्र साक्षान्महेश्वरी ॥२५
उपास्यमाना विविधैः शक्तिभेदैरितस्ततः।

भस्म की धूलि धारण करने वाले, शान्त, योगरत, महाशक्तिशाली एवं ब्रह्मविद्यापरायण वे सभी (भगवान्) की उपासना करते हैं। (१९)

उन शान्त चित्त यतियों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये महेश्वर देवी के साथ (उस स्थान पर) निवास करते हैं। (२०)

उस श्रेष्ठ सुन्दर पर्वत पर योगयुक्त चित्त वाले मुनियों के अनेक आश्रम, सरोवर एवं नदियाँ हैं। (२१)

उन (आश्रमों) में योगपरायण, जप करने वाले, जितेन्द्रिय, ब्रह्मनिष्ठ मन वाले, ज्ञानतत्पर विप्रगण रमण करते हैं। (२२)

(वे लोग) मन को आत्मा में लगाकर शिर-मूल में स्थित (उन) ईशान देव का ध्यान करते हैं जिनसे इस सम्पूर्ण (जगत् का) विस्तार हुआ है। (२३)

सुन्दर मेघ (नामक पर्वत पर) सहस्र सूर्य के तुल्य इन्द्र का एक स्थान है। सुरेश्वर भगवान् इन्द्र शची के साथ वहाँ निवास करते हैं। (२४)

गजशैल पर दुर्गा का मणिमय तोरण वाला एक भवन है। साक्षात् महेश्वरी भगवती दुर्गा वहाँ निवास करती हैं। (२५)

योगामृत का पान कर एवं ऐश्वर्य युक्त साक्षात्

पीत्वा योगामृतं लब्ध्वा साक्षादानन्दमैश्वरम् ।।२६
सुनीलस्य गिरेः शृङ्गे नानाधातुसमुज्ज्वले ।
राक्षसानां पुराणि स्युः सरांसि शतशो द्विजाः ।।२७
तथा पुरशतं विप्राः शतशृङ्गे महाचले ।
स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं यक्षाणाममितौजसाम् ।।२८
श्वेतोदरगिरेः शृङ्गे सुपर्णस्य महात्मनः ।
प्राकारगोपुरोपेतं मणितोरणमण्डितम् ।।२९
स तत्र गरुडः श्रीमान् साक्षाद् विष्णुरिवापरः ।
ध्यात्वास्ते तत् परं ज्योतिरात्मानं विष्णुमव्ययम् ।।३०
अन्यच्च भवनं पुण्यं श्रीशृङ्गे मुनिपुंगवाः ।
श्रीदेव्याः सर्वरत्नाढ्यं हैमं सुमणितोरणम् ।।३१
तत्र सा परमा शक्तिर्विष्णोरतिमनोरमा ।
अनन्तविभवा लक्ष्मीर्जगत्संमोहनोत्सुका ।।३२
अध्यास्ते देवगन्धर्वसिद्धचारणवन्दिता ।
विचिन्त्य जगतो योनिं स्वशक्तिकिरणोज्ज्वला ।।३३

तत्रैव देवदेवस्य विष्णोरायतनं महत् ।
सरांसि तत्र चत्वारि विचित्रकमलाश्रया ।।३४
तथा सहस्रशिखरे विद्याधरपुराष्टकम् ।
रत्नसोपानसंयुक्तं सरोभिश्चोपशोभितम् ।।३५
नद्यो विमलपानीयाश्चित्रनीलोत्पलाकराः ।
कर्णिकारवनं दिव्यं तत्रास्ते शंकरोमया ।।३६
पारियात्रे महाशैले महालक्ष्म्याः पुरं शुभम् ।
रम्यप्रासादसंयुक्तं घण्टाचामरभूषितम् ।।३७
नृत्यद्भिरप्सरःसङ्घैरितश्चेतश्च शोभितम् ।
मृदङ्गमुरजोद्घुष्टं वीणावेणुनिनादितम् ।।३८
गन्धर्वकिंनराकीर्णं संवृतं सिद्धपुंगवैः ।
भास्वद्भित्तिसमाकीर्णं महाप्रासादसंकुलम् ।।३९
गणेश्वराङ्गनाजुष्टं धार्मिकाणां सुदर्शनम् ।
तत्र सा वसते देवी नित्यं योगपरायणा ।।४०
महालक्ष्मीर्महादेवी त्रिशूलवरधारिणी ।

आनन्द प्राप्त कर विविध प्रकार की शक्तियाँ इतस्ततः उनकी उपासना करती रहती हैं। (२६)

हे द्विजो ! सुनील पर्वत के विविध धातुओं से प्रकाशित शृङ्ग पर राक्षसों के पुर एवं सैकड़ों सरोवर हैं। (२७)

हे विप्रो ! इसी प्रकार शतशृङ्ग नामक महान् पर्वत पर अतितेजस्वी यक्षों के स्फटिक के स्तम्भों से युक्त सौ पुर हैं। (२८)

श्वेतोदर नामक पर्वत पर महात्मा गरुड का प्राकार एवं गोपुर से युक्त तथा मणिमय तोरण से मण्डित पुर हैं। (२९)

साक्षात् दूसरे विष्णु-तुल्य वे श्रीमान् गरुड आत्मा स्वरूप उस श्रेष्ठ ज्योति रूप अव्यय विष्णु का ध्यान करते हुए वहाँ (रहते हैं)। (३०)

हे मुनिपुङ्गवो ! श्रीशृङ्ग पर स्वर्ण का दूसरा भी एक श्रीदेवी का सुन्दर मणिमय तोरण वाला पवित्र एवं सभी रत्नों से पूर्ण भवन है। (३१)

अतिमनोरम, अनन्त ऐश्वर्ययुक्त, जगत् को सम्मोहित करने को उत्सुक, विष्णु की परमा शक्ति स्वरूपा देव, गन्धर्व, सिद्ध एवं चारणों से वन्दित, एवं अपनी शक्ति की किरणों से प्रकाशित लक्ष्मी जगत् के मूल कारण (विष्णु) का चिन्तन करती हुई वहाँ रहती हैं। (३२,३३)

वहीं देवाधिदेव विष्णु का महान् भवन एवं विचित्र कमलों वाले चार सरोवर हैं। (३४)

इसी प्रकार सहस्रशिखर पर विद्याधरों के रत्ननिर्मित सोपान से युक्त एवं सरोवरों से सुशोभित आठ पुर हैं। (३५)

(उस स्थान पर) नदियों में स्वच्छ जल एवं अनेक प्रकार के नील कमल हैं तथा (वहाँ) कर्णिकार का एक दिव्य वन है। उमा के साथ शङ्कर वहाँ निवास करते हैं। (३६)

पारियात्र पर्वत पर महालक्ष्मी का रमणीय प्रासाद-युक्त, घण्टा एवं चामर से अलंकृत, इतस्ततः नृत्य करती हुई अप्सराओं के समूह से सुशोभित, मृदङ्ग एवं मुरज की ध्वनि से गुञ्जित, वीणा तथा वेणु के शब्द से निनादित, गन्धर्व एवं किंनरों से व्याप्त, श्रेष्ठ सिद्धों से आवृत, प्रकाशमान दीवालों से पूर्ण महान् प्रासादों से संकुलित गणेश्वरों की पत्नियों से सेवित एवं धार्मिकों को सरलतापूर्वक प्रत्यक्ष होनेवाला सुन्दर पुर है। वहाँ वे योगपरायणा श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करने वाली, त्रिनेत्रा, सभी शक्तियों से आवृत एवं सदसन्मया महादेवी

त्रिनेत्रा सर्वशक्तीभिः संवृता सदसन्मया ।
पश्यन्ति तत्र मुनयः सिद्धा ये ब्रह्मवादिनः ।।४१
सुपार्श्वस्योत्तरे भागे सरस्वत्याः पुरोत्तमम् ।
सरांसि सिद्धजुष्टानि देवभोग्यानि सत्तमाः ।।४२
पाण्डुरस्य गिरेः शृङ्गे विचित्रद्रुमसंकुले ।
गन्धर्वाणां पुरशतं दिव्यस्त्रीभिः समावृतम् ।।४३
तेषु नित्यं मदोत्सिक्ता वरनार्यस्तथैव च ।
क्रीडन्ति मुदिता नित्यं विलासैर्भोगतत्पराः ।।४४
अञ्जनस्य गिरेः शृङ्गे नारीणां पुरमुत्तमम् ।
वसन्ति तत्राप्सरसो रम्भाद्या रतिलालसाः ।।४५
चित्रसेनादयो यत्र समायान्त्यर्थिनः सदा ।
सा पुरी सर्वरत्नाढ्या नैकप्रस्रवणैर्युता ।।४६
अनेकानि पुराणि स्युः कौमुदे चापि सुव्रताः ।
रुद्राणां शान्तरजसामीश्वरार्पितचेतसाम् ।।४७
तेषु रुद्रा महायोगा महेशान्तरचारिणः ।
समासते परं ज्योतिरारूढाः स्थानमुत्तमम् ।।४८
पिञ्जरस्य गिरेः शृङ्गे गणेशानां पुरत्रयम् ।
नन्दीश्वरस्य कपिले तत्रास्ते सुयशा यतिः ।।४९
तथा च जारुधेः शृङ्गे देवदेवस्य धीमतः ।
दीप्तमायतनं पुण्यं भास्करस्यामितौजसः ।।५०
तस्यैवोत्तरदिग्भागे चन्द्रस्थानमनुत्तमम् ।
रमते तत्र रम्योऽसौ भगवान् शीतदीधितिः ।।५१
अन्यच्च भवनं दिव्यं हंसशैले महर्षयः ।
सहस्रयोजनायामं सुवर्णमणितोरणम् ।।५२
तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा सिद्धसङ्घैरभिष्टुतः ।
सावित्र्या सह विश्वात्मा वासुदेवादिभिर्युतः ।।५३
तस्य दक्षिणदिग्भागे सिद्धानां पुरमुत्तमम् ।
सनन्दनादयो यत्र वसन्ति मुनिपुंगवाः ।।५४
पञ्चशैलस्य शिखरे दानवानां पुरत्रयम् ।
नातिदूरेण तस्याथ दैत्याचार्यस्य धीमतः ।।५५

महालक्ष्मी नित्य निवास करती हैं। वहाँ जो सिद्ध एवं ब्रह्मवादी मुनि हैं, वे (उनका) दर्शन करते हैं। (३७-४१)

सुपार्श्व के उत्तरी भाग में सरस्वती का उत्तम पुर है। हे श्रेष्ठजनो ! (उस पुर में) देवों के भोग-योग्य सिद्धों से सेवित सरोवर हैं। (४२)

पाण्डुर गिरि के विचित्र वृक्षों से पूर्ण एवं दिव्य शृङ्ग पर गन्धर्वों के दिव्य स्त्रियों से आवृत सौ पुर हैं। (४३)

वहाँ भोगपरायण एवं मदमत्त श्रेष्ठ स्त्री एवं (पुरुष) मोदपूर्वक विलासों द्वारा नित्य क्रीडा करते रहते हैं। (४४)

अञ्जन पर्वत की चोटी पर स्त्रियों का श्रेष्ठ पुर है। वहाँ रति की लालसा करने वाली रम्भा इत्यादि अप्सरायें निवास करती हैं। (४५)

चित्रसेन इत्यादि जहाँ सदा याचक के रूप में आया करते हैं। वह पुरी सभी रत्नों से सम्पन्न एवं अनेक झरनों से युक्त है। (४६)

हे सुव्रतो ! कौमुद (पर्वत) पर भी ईश्वर में आसक्त चित्तवाले एवं शान्त रजोगुण वाले रुद्रों के अनेक पुर हैं। (४७)

उनमें उत्तम परम ज्योति का साक्षात्कार करने वाले एवं महेश के भीतर विचरण करने वाले महायोगी रुद्रगण रहते हैं। (४८)

पिञ्जर नामक पर्वत के शिखर पर गणेशों के तीन पुर तथा कपिल पर नन्दीश्वर की पुरी है। वहाँ सुन्दर यशवाले यति रहते हैं। (४९)

इसी प्रकार जारुधि (पर्वत) के शिखर पर बुद्धिमान् अमित तेजस्वी देवाधिदेव भास्कर का पवित्र दीप्तिमान भवन है। (५०)

उसी के उत्तर में चन्द्रमा का श्रेष्ठ स्थान है। शान्त किरणों एवं रमणीक स्वरूप वाले भगवान् (चन्द्रमा) वहाँ रहते हैं। (५१)

हे महर्षियो ! अन्यत्र हंस पर्वत पर सहस्र योजन विस्तृत, सुवर्ण मणिमय तोरण विशिष्ट एक दिव्य भवन है। (५२)

सिद्धों के समूहों द्वारा प्रार्थित एवं वासुदेवादि से युक्त विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा सावित्री के साथ वहाँ रहते हैं। (५३)

उसके दक्षिण भाग में सिद्धों का उत्तम पुर है, जहाँ सनन्दनादि श्रेष्ठ मुनि रहते हैं। (५४)

पञ्चशैल के शिखर पर दानवों के तीन पुर हैं।

सुगन्धशैलशिखरे सरिद्भिरुपशोभितम् ।
कर्दमस्याश्रमं पुण्यं तत्रास्ते भगवानृषिः ॥५६
तस्यैव पूर्वदिग्भागे किञ्चिद् वै दक्षिणाश्रिते ।
सनत्कुमारो भगवांस्तत्रास्ते ब्रह्मवित्तमः ॥५७
सर्वेष्वेतेषु शैलेषु तथान्येषु मुनीश्वराः ।
सरांसि विमला नद्यो देवानामालयानि च ॥५८
सिद्धलिङ्गानि पुण्यानि मुनिभिः स्थापितानि तु ।
वन्यान्याश्रमवर्याणि संख्यातुं नैव शक्नुयाम् ॥५९
एष संक्षेपतः प्रोक्तो जम्बूद्वीपस्य विस्तरः ।
न शक्यं विस्तराद् वक्तुं मया वर्षशतैरपि ॥६०

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

४७

सूत उवाच ।

जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ।
संवेष्टयित्वा क्षारोदं प्लक्षद्वीपो व्यवस्थितः ॥१
प्लक्षद्वीपे च विप्रेन्द्राः सप्तासन् कुलपर्वताः ।
ऋज्वायताः सुपर्वाणः सिद्धसङ्घनिषेविताः ॥२
गोमेदः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्चन्द्र उच्यते ।
नारदो दुन्दुभिश्चैव सोमश्च ऋषभस्तथा ।
वैभ्राजः सप्तमः प्रोक्तो ब्रह्मणोऽत्यन्तवल्लभः ॥३
तत्र देवर्षिगन्धर्वैः सिद्धैश्च भगवानजः ।
उपास्यते स विश्वात्मा साक्षी सर्वस्य विश्वसृक् ॥४
तेषु पुण्या जनपदा नाधयो व्याधयो न च ।
न तत्र पापकर्त्तारः पुरुषा वा कथञ्चन ॥५
तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणां तु समुद्रगाः ।
तासु ब्रह्मर्षयो नित्यं पितामहमुपासते ॥६

उससे थोड़ी ही दूर सुगन्धशैल के शिखर पर बुद्धिमान् दैत्याचार्य कर्दम का नदियों से सुशोभित पवित्र आश्रम है। भगवान् ऋषि वहाँ निवास करते हैं। (५५,५६)

उसी के पूर्व में किञ्चित् दक्षिण की ओर श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी भगवान् सनत्कुमार वहाँ रहते हैं। (५७)

हे मुनिश्वरो ! इन सभी तथा अन्य पर्वतों पर भी सरोवर, विमल नदियाँ एवं देवालय हैं। (५८)

मुनियों द्वारा स्थापित पवित्र सिद्ध लिङ्ग एवं वन में स्थित आश्रमों की गणना मैं नहीं कर सकता। (५९)

संक्षेप में यह जम्बूद्वीप के विस्तार का वर्णन किया गया है। मैं सौ वर्ष में भी विस्तारपूर्वक इसका वर्णन नहीं कर सकता। (६०)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में छियालीसवाँ अध्याय समाप्त—४६.

४७

सूत ने कहा—जम्बूद्वीप के दुगुने विस्तार में क्षीर सागर को आवृत कर प्लक्षद्वीप स्थित है। (१)

हे विप्रेन्द्रो ! प्लक्षद्वीप में भी सीधे एवं विस्तृत एवं सुन्दर पर्वो वाले तथा सिद्धों के समूह से सेवित सात कुल-पर्वत हैं। (२)

उनमें पहला गोमेद, दूसरा चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोम, ऋषभ एवं सातवाँ ब्रह्मा को अत्यन्त प्रिय वैभ्राज (नामक पर्वत) है। (३)

वहाँ देवर्षि, गन्धर्व एवं सिद्धगण भगवान् अज (ब्रह्मा) की उपासना करते हैं। वे विश्वात्मा सभी के साक्षी एवं विश्व के स्रष्टा हैं। (४)

उन (पर्वतों) में पवित्र जनपद हैं। वहाँ कोई आधि अर्थात् मानसिक पीड़ा एवं व्याधि अर्थात् रोग नहीं है एवं वहाँ के पुरुष किसी भी प्रकार पाप (कर्म) नहीं करते। (५)

उन वर्ष पर्वतों की सात समुद्रगामिनी नदियाँ हैं।

अनुतप्ता शिखी चैव विपापा त्रिदिवा कृता ।
अमृता सुकृता चैव नामतः परिकीर्त्तिताः ।।७
क्षुद्रनद्यस्त्वसंख्याताः सरांसि सुबहून्यपि ।
न चैतेषु युगावस्था पुरुषा वै चिरायुषः ।।८
आर्यकाः कुरवाश्चैव विदशा भाविनस्तथा ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन् द्वीपे प्रकीर्त्तिताः ।।९
इज्यते भगवान् सोमो वर्णैस्तत्र निवासिभिः ।
तेषां च सोमसायुज्यं सारूप्यं मुनिपुंगवाः ।।१०
सर्वे धर्मपरा नित्यं नित्यं मुदितमानसाः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामयाः ।।११
प्लक्षद्वीपप्रमाणं तु द्विगुणेन समन्ततः ।
संवेष्टयेक्षुरसाम्भोधिं शाल्मलिः संव्यवस्थितः ।।१२
सप्त वर्षाणि तत्रापि सप्तैव कुलपर्वताः ।
ऋज्वायताः सुपर्वाणः सप्त नद्यश्च सुव्रताः ।।१३
कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च वलाहकः ।
द्रोणः कङ्कस्तु महिषः ककुद्वान् सप्त पर्वताः ।।१४
योनी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी ।
निवृत्तिश्चेति ता नद्यः स्मृता पापहरा नृणाम् ।।१५
न तेषु विद्यते लोभः क्रोधो वा द्विजसत्तमाः ।
न चैवास्ति युगावस्था जना जीवन्त्यनामयाः ।।१६
यजन्ति सततं तत्र वर्णा वायुं सनातनम् ।
तेषां तस्याथ सायुज्यं सारूप्यं च सलोकता ।।१७
कपिला ब्राह्मणाः प्रोक्ता राजानश्चारुणास्तथा ।
पीता वैश्याःस्मृताःकृष्णा द्वीपेऽस्मिन् वृषला द्विजाः१८
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ।
संवेष्ट्य तु सुरोदाब्धिं कुशद्वीपो व्यवस्थितः ।।१९
विद्रुमश्चैव हेमश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा ।
कुशेशयो हरिश्चाथ मन्दरः सप्त पर्वताः ।।२०
धुतपापा शिवा चैव पवित्रा संमता तथा ।
विद्युदम्भा मही चेति नद्यस्तत्र जलावहाः ।।२१

उनमें ब्रह्मर्षिगण नित्य पितामह की उपासना करते हैं। (६)

अनुतप्ता, शिखी, विपापा, त्रिदिवा, कृता, अमृता एवं सुकृता (ये उनके) नाम कहे गये हैं। (७)

(इनके अतिरिक्त) अनेक क्षुद्र नदियाँ एवं सरोवर भी हैं। उनमें युग की व्यवस्था नहीं है। (वहाँ के निवासी सभी) पुरुष दीर्घायु होते हैं। (८)

उस (प्लक्ष) द्वीप में आर्यक, कुरव, विदश एवं भावी नामक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कहे गये हैं। (९)

वहाँ के (विविध) वर्णों वाले निवासी भगवान् सोम की उपासना करते हैं। हे मुनिपुङ्गवो! उन्हें सोम के सायुज्य एवं सारूप्य (नामक मुक्ति) की प्राप्ति होती है। (१०)

वे सभी नित्य धर्मनिरत एवं प्रसन्नचित्त होते हैं। (वहाँ के निवासी) विना रोग के पाँच सहस्र वर्षों तक जीवित रहते हैं। (११)

प्लक्षद्वीप के दुगुने प्रमाण में चारों ओर ईक्षुरस के समुद्र को आवेष्टित कर शाल्मलिद्वीप स्थित है। (१२)

वहाँ भी सात वर्ष एवं सात ही कुल पर्वत हैं। (वे कुल पर्वत) सरल, आयत एवं सुन्दर पर्वों वाले हैं। हे सुव्रतो! (वहाँ) सात नदियाँ भी हैं। (१३)

कुमुद, उन्नत, तीसरा वलाहक, द्रोण, कङ्क, महिष एवं ककुद्वान् (नामक कुल सात पर्वत हैं)। (१४)

योनी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी एवं निवृत्ति (नामक) वे (सात) नदियाँ कही गयी हैं, जो मनुष्यों के पापों को दूर करती हैं। (१५)

हे द्विजसत्तमो! उनमें लोभ या क्रोध की स्थिति नहीं है। (वहाँ) युग की व्यवस्था भी नहीं है। वहाँ के प्राणी निरोग जीवन व्यतीत करते हैं। (१६)

वहाँ के (सभी) वर्ण सनातन वायुदेव की आराधना करते हैं। उन्हें उन (वायुदेव) का सायुज्य, सारूप्य एवं सालोक्य (नामक मोक्ष प्राप्त होता है।) (१७)

हे द्विजो! इस द्वीप में ब्राह्मण कपिल, क्षत्रिय अरुण, वैश्य पीत एवं शूद्र कृष्ण कहे गये हैं। (१८)

शाल्मलद्वीप के दुगुने विस्तार में चारों तरफ से सुरासागर को आवेष्टित कर कुशद्वीप स्थित है। (१९)

(वहाँ) विद्रुम, हेम, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि एवं मन्दर (नामक) सात पर्वत हैं। (२०)

इसी प्रकार धुतपापा, शिवा, पवित्रा, संमता, विद्युदम्भा एवं मही (नामक) जलपूर्ण नदियाँ हैं। (२१)

अन्याश्च शतशो विप्रा नद्यो मणिजलाः शुभाः ।
तासु ब्रह्माणमीशानं देवाद्याः पर्युपासते ॥२२
ब्राह्मणा द्रविणो विप्राः क्षत्रियाः शुष्मिणस्तथा ।
वैश्याः स्नेहास्तु मन्देहाःशूद्रास्तत्र प्रकीर्त्तिताः ॥२३
सर्वे विज्ञानसंपन्ना मैत्रादिगुणसंयुताः ।
यथोक्तकारिणः सर्वे सर्वे भूतहिते रताः ॥२४
यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
तेषां च ब्रह्मसायुज्यं सारूप्यं च सलोकता ॥२५
कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ।
क्रौञ्चद्वीपस्ततो विप्रा वेष्टयित्वा घृतोदधिम् ॥२६
क्रौञ्चो वामनकश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ।
देवावृच्च विविन्दश्च पुण्डरीकस्तथैव च ।
नाम्ना च सप्तमः प्रोक्तः पर्वतो दुन्दुभिस्वनः ॥२७
गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा ।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च नद्यः प्राधान्यतः स्मृताः ॥२८

हे विप्रो ! (इसके अतिरिक्त) अन्य भी सैकड़ों मणिवत् स्वच्छ जलवाली नदियाँ वहाँ हैं। उनके तट पर देवादि ईशान ब्रह्मा की उपासना करते हैं। (२२)

हे विप्रो ! वहाँ के ब्राह्मण द्रविण, क्षत्रिय शुष्मिण, वैश्य स्नेह, एवं शूद्र मन्देह कहे गये हैं। (२३)

(वहाँ के सभी) मनुष्य ज्ञान सम्पन्न एवं मैत्रादि गुणयुक्त, कहने के अनुसार कर्म करने वाले तथा सभी प्राणियों का हित करने वाले होते हैं। (२४)

वे अनेक प्रकार के यज्ञों से परमेष्ठी ब्रह्मा की पूजा करते हैं। उन्हें ब्रह्मा का सायुज्य, सारूप्य एवं सालोक्य (मोक्ष) प्राप्त होता है। (२५)

हे विप्रो ! कुशद्वीप के दुगुने विस्तार में चारों ओर घृत सागर को आवेष्टित कर क्रौञ्चद्वीप स्थित है। (२६)

(वहाँ) क्रौञ्च, वामनक, तीसरा अन्धकारक, देवावृत्, विविन्द, पुण्डरीक तथा सातवाँ दुन्दुभिस्वन् नामक पर्वत कहा गया है। (२७)

गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति एवं पुण्डरीका नामक नदियाँ प्रधान रूप से कही गयी हैं (२८)

पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तिष्यास्तस्य क्रमेण वै ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव द्विजोत्तमाः ॥२९
अर्चयन्ति महादेवं यज्ञदानसमाधिभिः ।
व्रतोपवासैर्विविधैर्होमैः स्वाध्यायतर्पणैः ॥३०
तेषां वै रुद्रसायुज्यं सारूप्यं चातिदुर्लभम् ।
सलोकता च सामीप्यं जायते तत्प्रसादतः ॥३१
क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ।
शाकद्वीपः स्थितो विप्रा आवेष्ट्य दधिसागरम् ॥३२
उदयो रैवतश्चैव श्यामाकोऽस्तगिरिस्तथा ।
आम्बिकेयस्तथा रम्यः केशरी चेति पर्वताः ॥३३
सुकुमारी कुमारी च नलिनी रेणुका तथा ।
इक्षुका धेनुका चैव गभस्तिश्चेति निम्नगाः ॥३४
आसां पिबन्तः सलिलं जीवन्ते तत्र मानवाः ।
अनामया ह्यशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिताः ॥३५
मगाश्च मगधाश्चैव मानवा मन्दगास्तथा ।

हे द्विजोत्तमो ! (वहाँ) पुष्कल, पुष्कर, धन्य एवं तिष्य नामक क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र निवास करते हैं। (२९)

(वहाँ के निवासी) यज्ञ, दान, समाधि, व्रत, उपवास, विविध होम स्वाध्याय एवं तर्पणों द्वारा महादेव की आराधना करते हैं। (३०)

उन महादेव की कृपा से उन्हें रुद्र का अत्यन्त दुर्लभ सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य एवं सामीप्य (नामक मोक्ष) प्राप्त होता है। (३१)

हे विप्रो ! क्रौञ्चद्वीप के दुगुने विस्तार में चतुर्दिक दधिसागर को आवेष्टित कर शाकद्वीप स्थित है। (३२)

(वहाँ) उदय, रैवत, श्यामाक, अस्तगिरि, आम्बिकेय रम्य एवं केशरी (नामक सात) पर्वत हैं। (३३)

सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, रेणुका, इक्षुका, धेनुका एवं गभस्ति (नामक वहाँ की सात) नदियाँ हैं। (३४)

वहाँ के मनुष्य इन (नदियों) का जल पीते एवं रोग शोक, राग और द्वेष से रहित होकर जीवन व्यतीत करते हैं। (३५)

(वहाँ के) मग, मगध, मानव एवं मन्दग (नामक

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चात्र क्रमेण तु ।।३६
यजन्ति सततं देवं सर्वलोकैकसाक्षिणम् ।
व्रतोपवासैर्विविधैर्देवदेवं दिवाकरम् ।।३७
तेषां सूर्येण सायुज्यं सामीप्यं च सरूपता ।
सलोकता च विप्रेन्द्रा जायते तत्प्रसादतः ।।३८
शाकद्वीपं समावृत्य क्षीरोदः सागरः स्थितः ।
श्वेतद्वीपश्च तन्मध्ये नारायणपरायणाः ।।३९
तत्र पुण्या जनपदा नानाश्चर्यसमन्विताः ।
श्वेतास्तत्र नरा नित्यं जायन्ते विष्णुतत्पराः ।।४०
नाधयो व्याधयस्तत्र जरामृत्युभयं न च ।
क्रोधलोभविनिर्मुक्ता मायामात्सर्यवर्जिताः ।।४१
नित्यपुष्टा निरातङ्का नित्यानन्दाश्च भोगिनः ।
नारायणपराः सर्वे नारायणपरायणाः ।।४२
केचिद् ध्यानपरा नित्यं योगिनः संयतेन्द्रियाः ।
केचिज्जपन्ति तप्यन्ति केचिद् विज्ञानिनोऽपरे ।।४३
अन्ये निर्वीजयोगेन ब्रह्मभावेन भाविताः ।
ध्यायन्ति तत् परं व्योम वासुदेवं परं पदम् ।।४४
एकान्तिनो निरालम्बा महाभागवताः परे ।
पश्यन्ति परमं ब्रह्म विष्ण्वाख्यं तमसः परं ।।४५
सर्वे चतुर्भुजाकाराः शङ्खचक्रगदाधराः ।
सुपीतवाससः सर्वे श्रीवत्साङ्कितवक्षसः ।।४६
अन्ये महेश्वरपरास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः ।
स्वयोगोद्भूतकिरणा महागरुडवाहनाः ।।४७
सर्वशक्तिसमायुक्ता नित्यानन्दाश्च निर्मलाः ।
वसन्ति तत्र पुरुषा विष्णोरन्तरचारिणः ।।४८
तत्र नारायणस्यान्यद् दुर्गमं दुरतिक्रमम् ।
नारायणं नाम पुरं व्यासाद्यैरुपशोभितम् ।।४९
हेमप्राकारसंयुक्तं स्फाटिकैर्मण्डपैर्युतम् ।

मनुष्य) क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र होते हैं। (३६)

वे सभी लोग अनेक प्रकार के व्रतों एवं उपवासों द्वारा सभी लोकों के एकमात्र साक्षी देवाधिदेव सूर्य की नित्य आराधना करते हैं। (३७)

हे विप्रेन्द्रो ! उन सूर्यदेव के अनुग्रह से उन्हें (सूर्य का) सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य एवं सालोक्य प्राप्त होता है। (३८)

शाकद्वीप को आवृत कर क्षीरसागर स्थित है। उसके मध्य में श्वेतद्वीप है। वहाँ के लोग नारायणपरायण हैं। (३९)

वहाँ के जनपद पवित्र एवं अनेक आश्चर्यों से युक्त हैं। वहाँ के मनुष्य श्वेत वर्ण के एवं नित्य विष्णु की आराधना करने वाले होते हैं। (४०)

वहाँ आधि, व्याधि, वार्द्धक्य एवं मृत्यु का भय नहीं होता। (वहाँ के निवासी) क्रोध, लोभ, माया एवं मत्सरता से रहित होते हैं। (४१)

(वहाँ) सभी लोग नारायण-परायण, नित्य पुष्ट, आतङ्करहित, नित्य आनन्दयुक्त, भोग करने वाले एवं नारायण के भक्त होते हैं। (४२)

वहाँ के कुछ निवासी इन्द्रियनिग्रहपूर्वक योग द्वारा नित्य ध्यान करते हैं, कुछ जप करते हैं, कुछ तप करते हैं एवं अन्य लोग विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करते हैं। (४३)

अन्य (कुछ लोग) निर्वीज योग द्वारा ब्रह्मभावना से पवित्र होकर उन सनातन परम व्योमस्वरूप वासुदेव का ध्यान करते हैं। (४४)

दूसरे अनन्यचेता, निराश्रय महान् भगवद्भक्तगण तमोगुणातीत विष्णु नामक उस श्रेष्ठ ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। (४५)

(वे) सभी लोग चार भुजाओं वाले, शङ्खचक्र-गदाधारी, सुन्दर पीतवस्त्र एवं वक्षःस्थल पर श्रीवत्स धारण करने वाले होते हैं। (४६)

अन्य (कुछ) लोग महेश्वर के भक्त होते हैं। वे मस्तक पर त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं। वे अपने योग से उत्पन्न तेज युक्त एवं महान् गरुड़ पर सवारी करने वाले होते हैं। (४७)

वहाँ सभी शक्तियों से युक्त नित्य आनन्दमय, निर्मल एवं विष्णु के अन्तर में विचरण करने वाले पुरुष निवास करते हैं। (४८)

वहाँ नारायण का एक अन्य दुर्गम एवं दुर्लङ्घ्य व्यासादि से सुशोभित नारायण नामक पुर है। (४९)

प्रभासहस्रकलिलं दुराधर्षं सुशोभनम् ।
हर्म्यप्राकारसंयुक्तमट्टालकसमाकुलम् ।।५०
हेमगोपुरसाहस्रैर्नानारत्नोपशोभितैः ।
शुभ्रास्तरणसंयुक्तं विचित्रैः समलंकृतम् ।।५१
नन्दनैर्विविधाकारैः स्रवन्तीभिश्च शोभितम् ।
सरोभिः सर्वतो युक्तं वीणावेणुनिनादितम् ।।५२
पताकाभिर्विचित्राभिरनेकाभिश्च शोभितम् ।
वीथीभिः सर्वतो युक्तं सोपानै रत्नभूषितैः ।।५३
नारीशतसहस्राढ्यं दिव्यगेयसमन्वितम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
चतुर्द्वारमनौपम्यमगम्यं देवविद्विषाम् ।।५४
तत्र तत्राप्सरःसङ्घैर्नृत्यद्भिरुपशोभितम् ।
नानागीतविधानज्ञैर्देवानामपि दुर्लभैः ।।५५
नानाविलाससंपन्नैः कामुकैरतिकोमलैः ।
प्रभूतचन्द्रवदनैर्नूपुरारावसंयुतैः ।।५६
ईषत्स्मितैः सुबिम्बोष्ठैर्बालमुग्धमृगेक्षणैः ।
अशेषविभवोपेतैर्भूषितैस्तनुमध्यमैः ।।५७
सुराजहंसचलनैः सुवेषैर्मधुरस्वनैः ।
संलापालापकुशलैर्दिव्याभरणभूषितैः ।।५८
स्तनभारविनम्रैश्च मदघूर्णितलोचनैः ।
नानावर्णविचित्राङ्गैर्नानाभोगरतिप्रियैः ।।५९
प्रफुल्लकुसुमोद्यानैरितश्चेतश्च शोभितम् ।
असंख्येयगुणं शुद्धमगम्यं त्रिदशैरपि ।।६०
श्रीमत्पवित्रं देवस्य श्रीपतेरमितौजसः ।
तस्य मध्येऽतितेजस्कमुच्चप्राकारतोरणम् ।।६१
स्थानं तद् वैष्णवं दिव्यं योगिनामपि दुर्लभम् ।
तन्मध्ये भगवानेकः पुण्डरीकदलद्युतिः ।
शेतेऽशेषजगत्सूतिः शेषाहिशयने हरिः ।।६२

(वह पुर) स्वर्ण के प्राकारों तथा स्फटिक के मण्डपों से युक्त, सहस्रों प्रकार की प्रभा से अलंकृत अत्यन्त सुन्दर एवं दुराधर्ष है। (वह) स्वर्ण के प्रसादों एवं महान् अट्टालिकाओं से युक्त है। (५०)

अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित स्वर्ण के सहस्रों अद्भुत गोपुरों अर्थात् मुख्य द्वारों तथा शुभ्र आस्तरण से युक्त (वह पुर) अलंकृत है। (५१)

(वह पुर) अनेक प्रकार के उद्यानों एवं नदियों से सुशोभित है तथा वह सर्वत्र सरोवरों से युक्त तथा वीणा और वंशी की ध्वनि से निनादित रहता है। (५२)

(वह पुर) अनेक प्रकार की विचित्र पताकाओं से सुशोभित है एवं (वह) चतुर्दिक वीथियों एवं रत्न-विभूपित सीढ़ियों से युक्त है। (५३)

वह सैकड़ों-सहस्रों स्त्रियों से सम्पन्न है। तथा दिव्य गान से युक्त(वह पुर) हंस एवं सारस पक्षियों से व्याप्त तथा चक्रवाक पक्षी से सुशोभित है। (वह) अनुपम (पुर) चार द्वारों से युक्त एवं देवद्वेपियों को अगम्य है। (५४)

देवों को भी दुर्लभ अनेक प्रकार के गीतविधान के मर्मज्ञ नृत्यपरायण, विविध विलाससम्पन्न अतिकोमल, नूपुर की ध्वनि से युक्त, अनेक चन्द्रवत् मुख वाले, मन्द हास्य युक्त सुन्दर विम्वोष्ठ एवं मुग्ध वाल मृग के (नेत्र) सदृश नेत्रों वाले, सम्पूर्ण ऐश्वर्य युक्त, क्षीण कटि से सुशोभित, सुन्दर राजहंस सदृश गतिवाले, सुन्दर वेषधारी, मधुरभापी, संलाप एवं आलाप में कुशल दिव्य आभूषणों से अलङ्कृत, स्तन के भार से विनम्र, मद के कारण चञ्चल नेत्रों वाले, अनेक वर्णो से सुशोभित अङ्गो वाले तथा अनेक प्रकार के भोग एवं रति के अभिलापी एवं कामुक अप्सराओं के समूहों से (वह पुर) सुशोभित रहता है। (५५-५९)

सर्वत्र खिले पुष्पों वाले उद्यानों से सुशोभित असंख्य गुणों वाला वह शुद्ध पुर देवों को भी अगम्य है। (६०)

अमित तेजस्वी लक्ष्मीपति (विष्णु) देव का वह पुर श्री सम्पन्न एवं पवित्र है। उसके मध्य में अत्यन्त तेज सम्पन्न, उच्च प्राकार एवं तोरण से युक्त, योगियों को भी दुर्लभ विष्णु का वह दिव्य स्थान है। उसके मध्य में कमल दल के सदृश शोभासम्पन्न, सम्पूर्ण जगत् के उत्पादक भगवान् हरि शेपनाग रूपी शयन पर सोते हैं। (६१,६२)

विचिन्त्यमानो योगीन्द्रैः सनन्दनपुरोगमैः ।
स्वात्मानन्दामृतं पीत्वा परं तत् तमसः परम् ॥६३
सुपीतवसनोऽनन्तो महामायो महाभुजः ।
क्षीरोदकन्यया नित्यं गृहीतचरणद्वयः ॥६४
सा च देवी जगद्वन्द्या पादमूले हरिप्रिया ।
समास्ते तन्मना नित्यं पीत्वा नारायणामृतम् ॥६५
न तत्राधार्मिका यान्ति न च देवान्तराश्रयाः ।
वैकुण्ठं नाम तत् स्थानं त्रिदशैरपि वन्दितम् ॥६६
न मेऽत्र भवति प्रज्ञा कृत्स्नशस्तन्निरूपणे ।
एतावच्छक्यते वक्तुं नारायणपुरं हि तत् ॥६७
स एव परमं ब्रह्म वासुदेवः सनातनः ।
शेते नारायणः श्रीमान् मायया मोहयञ्जगत् ॥६८
नारायणादिदं जातं तस्मिन्नेव व्यवस्थितम् ।
तमेवाभ्येति कल्पान्ते स एव परमा गतिः ॥६९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

४८

सूत उवाच ।
शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन व्यवस्थितः ।
क्षीरार्णवं समाश्रित्य द्वीपः पुष्करसंवृतः ॥१
एक एवात्र विप्रेन्द्राः पर्वतो मानसोत्तरः ।
योजनानां सहस्राणि सार्द्धं पञ्चाशदुच्छ्रितः ।
तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः ॥२
स एव द्वीपः पश्चार्द्धे मानसोत्तरसंज्ञितः ।
एक एव महासानुः संनिवेशाद् द्विधा कृतः ॥३

सनन्दन इत्यादि श्रेष्ठ योगी तमोगुणातीत श्रेष्ठ स्वात्मानन्द स्वरूप अमृत का पान कर (उन विष्णु का) ध्यान करते हैं। (६३)

पीताम्बरधारी, अनन्त महामायावी महान् भुजाओं वाले (विष्णु के सोते समय) क्षीर सागर की पुत्री (लक्ष्मी उनके) दोनों चरण नित्य पकड़े रहती हैं। (६४)

संसार की वन्दनीया हरिप्रिया वे देवी नारायणामृत का पान कर तथा उन्हीं में मन लगाकर (उनके) पादमूल में नित्य वैठी रहती हैं। (६५)

वहाँ अधार्मिक जन नहीं जा सकते। वहाँ अन्य देवों का भी स्थान नहीं है। देवों से भी वन्दनीय उस स्थान का नाम वैकुण्ठ है। (६६)

उसका सम्पूर्ण रूप से वर्णन करने में मेरी बुद्धि समर्थ नहीं है। उस नारायण पुर का इतना ही वर्णन किया जा सकता है। (६७)

वे सनातन वासुदेव परम ब्रह्म श्रीमान् नारायण माया से जगत् को मोहित करते हुए (वहाँ) शयन करते हैं। (६८)

यह (जगत्) नारायण से उत्पन्न हुआ है एवं उन्हीं में यह स्थित है। सृष्टि काल की समाप्ति होने पर (यह जगत्) उनमें आश्रित होता है। वे ही परम गति हैं। (६९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण-संहिता के पूर्व विभाग में सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त—४७.

४८

सूत ने कहा—पुष्कर नामक द्वीप शाकद्वीप की अपेक्षा दुगुने विस्तार में क्षीरसागर का आश्रय कर स्थित है। (१)

हे विप्रेन्द्रो ! यहाँ मानसोत्तर नामक एक ही पर्वत है। यह साढ़े पचास सहस्र योजन ऊँचा है एवं सभी दिशाओं में विस्तृत इसका परिमण्डल अर्थात् घेरा भी उतने ही परिमाण का है। (२)

उस द्वीप के ही पिछले भाग में मानसोत्तर नाम का

तस्मिन् द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ ।
अपरौ मानसस्याथ पर्वतस्यानुमण्डलौ ।
महावीतं स्मृतं वर्षं धातकीखण्डमेव च ।।४
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः ।
तस्मिन् द्वीपे महावृक्षो न्यग्रोधोऽमरपूजितः ।।५
तस्मिन् निवसति ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः ।
तत्रैव मुनिशार्दूलाः शिवनारायणालयः ।।६
वसत्यत्र महादेवो हरोऽर्द्धहरिरव्ययः ।
संपूज्यमानो ब्रह्माद्यैः कुमाराद्यैश्च योगिभिः ।
गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैरीश्वरः कृष्णपिङ्गलः ।।७
स्वस्थास्तत्र प्रजाः सर्वा ब्रह्मणा सदृशत्विषः ।
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिताः ।।८
सत्यानृते न तत्रास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ।
न वर्णाश्रमधर्माश्च न नद्यो न च पर्वताः ।।९
परेण पुष्करस्याथ समावृत्य स्थितो महान् ।
स्वादूदकसमुद्रस्तु समन्ताद् द्विजसत्तमाः ।।१०
परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः ।
काञ्चनी द्विगुणा भूमिः सर्वा चैव शिलोपमा ।।११
तस्याः परेण शैलस्तु मर्यादात्मात्ममण्डलः ।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते ।।१२
योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः ।
तावानेव च विस्तारो लोकालोको महागिरिः ।।१३
समावृत्य तु तं शैलं सर्वतो वै तमः स्थितम् ।
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम् ।।१४
एते सप्त महालोकाः पातालाः सप्त कीर्त्तिताः ।
ब्रह्माण्डस्यैष विस्तारः संक्षेपेण मयोदितः ।।१५
अण्डानामीदृशानां तु कोटयो ज्ञेयाः सहस्रशः ।
सर्वगत्वात् प्रधानस्य कारणस्याव्ययात्मनः ।।१६

एक ही महापर्वत विशेष स्थिति वश दो भागों में बँट गया है । (३)

उस द्वीप में दो पवित्र कल्याणमय जनपद कहे गये हैं । वे दोनों (जनपद) मानस पर्वत के अनुमण्डल हैं । (वे) महावीत एवं धातकी खण्ड नामक (दो) वर्ष कहे गये हैं । (४)

पुष्कर द्वीप सुस्वादु जल के सागर से आवृत है । उस द्वीप में देवों द्वारा पूजित एक महान् वट वृक्ष है । (५)

विश्वात्मा विश्वभावन ब्रह्मा वहीं रहते हैं । हे मुनिशार्दूलो ! वहीं पर शिवनारायण का मन्दिर है । (६)

(शरीर के) आधे भाग में हर (एवं आधे में) अव्यय हरि के रूप में महादेव यहाँ निवास करते हैं । ब्रह्मादि (देवता) कुमारादि योगी, गन्धर्व, किन्नर एवं यक्षगण (उन) कृष्ण एवं पिङ्गलवर्ण के ईश्वर की पूजा करते हैं । (७)

ब्रह्मा सदृश कान्तिविशिष्ट वहाँ की सभी प्रजा स्वस्थ रोग, शोक, राग एवं द्वेष से रहित है । (८)

वहाँ सत्य एवं अनृत अर्थात् असत्य, उत्तम, मध्यम एवं अधम (का विभाजन), वर्णाश्रमधर्म, नदियाँ एवं पर्वत नहीं है । (९)

हे द्विजसत्तमो ! पुष्कर द्वीप के अनन्तर उसे चतुर्दिक आवेष्टित कर महान् स्वादूदक सागर स्थित है । (१०)

उसके अनन्तर महती लोकस्थिति दिखलायी पड़ती है । वहाँ की द्विगुणित भूमि स्वर्णमयी एवं सर्वत्र शिला के सदृश है । (११)

उसके अनन्तर (सूर्य मण्डल की) मर्यादा स्वरूप एक पर्वत है । (उसका अर्द्धभाग) प्रकाशित (एवं दूसरा अर्द्ध भाग) अप्रकाशित रहता है । उसे लोकालोक कहते हैं । (१२)

लोकालोक नामक उस महान् पर्वत की ऊँचाई दस सहस्र योजन की है एवं उसका विस्तार भी उतना ही है । (१३)

सभी ओर अण्डकटाह द्वारा आवेष्टित अन्धकार उस पर्वत को चारो ओर से आवृत कर स्थित है । (१४)

(इस प्रकार) ये सात महालोक एवं पाताल कहे गये हैं । मैंने संक्षेप में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के विस्तार का वर्णन किया है । (१५)

प्रधान, कारणस्वरूप एवं अव्यय आत्मा के सर्वव्यापक होने से यह जानना चाहिये कि इस प्रकार के सहस्रों करोड़ ब्रह्माण्ड हैं । (१६)

अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश ।
तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा रुद्रा नारायणादयः ॥१७
दशोत्तरमथैकैकमण्डावरणसप्तकम् ।
समन्तात् संस्थितं विप्रा यत्र यान्ति मनीषिणः ॥१८
अनन्तमेकमव्यक्तमनादिनिधनं महत् ।
अतीत्य वर्त्तते सर्वं जगत् प्रकृतिरक्षरम् ॥१९
अनन्तत्वमनन्तस्य यतः संख्या न विद्यते ।
तदव्यक्तमिति ज्ञेयं तद् ब्रह्म परमं पदम् ॥२०
अनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्यते ।
तस्य पूर्वं मयाऽप्युक्तं यत्तन्माहात्म्यमव्ययम् ॥२१
गतः स एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु वर्त्तते ।
भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले ।
अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः ॥२२
तथा तमसि सत्त्वे च एष एव महाद्युतिः ।
अनेकधा विभक्ताङ्गः क्रीडते पुरुषोत्तमः ॥२३
महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम् ।
अण्डाद् ब्रह्मा समुत्पन्नस्तेन सृष्टमिदं जगत् ॥२४

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

४९

ऋषय ऊचुः ।
अतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि तु ।
तानि त्वं कथयास्माकं व्यासांश्च द्वापरे युगे ॥१
वेदशाखाप्रणयनं देवदेवस्य धीमतः ।
तथावतारान् धर्मार्थमीशानस्य कलौ युगे ॥२
कियन्तो देवदेवस्य शिष्याः कलियुगेषु वै ।

इन सभी ब्रह्माण्डों में चौदह भुवन होते हैं। उन सभी में ब्रह्मा, रुद्र एवं नारायण होते हैं। (१७)

हे विप्रो ! (ब्रह्माण्ड के) चतुर्दिक् सात आवरण हैं। वे परिमाण में क्रमशः एक दूसरे से दशगुना अधिक हैं। वहाँ ज्ञानी जन जाते हैं। (१८)

अनन्त, अद्वितीय, अव्यक्त, अनादिनिधन, महत्, जगत् के प्रकृतिस्वरूप अक्षर (ब्रह्म) इन सभी (आवरणों) का अतिक्रमण कर विराजित है। (१९)

क्योंकि इसकी संख्या नहीं है अतः इसे अनन्त कहा जाता है। इस अव्यक्त को ब्रह्म एवं परम पद जानना चाहिये। (२०)

सर्वत्र-अर्थात् सभी शास्त्रों में सभी स्थानों पर इस अनन्त (ब्रह्म का होना) कहा गया है। मैंने भी पूर्व में इसके शाश्वत माहात्म्य का वर्णन किया है। (२१)

यतः वही सभी स्थानों पर वर्तमान है। (यह अनन्त ब्रह्म) निस्सन्देह भूमि, रसातल, आकाश, पवन, अग्नि, सभी समुद्रों एवं स्वर्ग में विद्यमान है। (२२)

उसी प्रकार यही महातेजस्वी (अनन्त ब्रह्म) अन्धकार एवं (अन्य) सत्व पदार्थों में भी विराजमान है। पुरुषोत्तम अनेक प्रकार से (अपने) अङ्गों का विभाग कर क्रीडा करते हैं। (२३)

महेश्वर अव्यक्त से परवर्त्ती (तत्त्व) हैं। अण्ड अव्यक्त से उत्पन्न होता है। ब्रह्मा अण्ड से उत्पन्न हैं एवं उन्होंने इस जगत् की सृष्टि की है। (२४)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त—४८.

४९

ऋषियों ने कहा—आप हमें भूत एवं भविष्य काल के मन्वन्तरों तथा द्वापर युग के व्यास को भी बतलायें। (१)

हे सूत ! वेद की शाखाओं के प्रणयन, देवधर्म के निमित्त देवाधिदेव बुद्धिमान् नियामक (व्यास देव) के कलियुग में हुये अवतारों एवं देवाधिदेव (व्यास देव) के

एतत् सर्वं समासेन सूत वक्तुमिहार्हसि ॥३
सूत उवाच ।
मनुः स्वायंभुवः पूर्वं ततः स्वारोचिषो मनुः ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥४
षडेते मनवोऽतीताः सांप्रतं तु रवेः सुतः ।
वैवस्वतोऽयं यस्यैतत् सप्तमं वर्त्ततेऽन्तरम् ॥५
स्वायंभुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया ।
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वं मनोः स्वारोचिषस्य तु ॥६
पारावताश्च तुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे ।
विपश्चिन्नाम देवेन्द्रो बभूवासुरसूदनः ॥७
ऊर्ज्जस्तम्भस्तथा प्राणो दान्तोऽथ वृषभस्तथा ।
तिमिरश्चार्वरीवांश्च सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥८
चैत्रकिंपुरुषाद्याश्च सुताः स्वारोचिषस्य तु ।
द्वितीयमेतदाख्यातमन्तरं श्रृणु चोत्तरम् ॥९
तृतीयेऽप्यन्तरे विप्रा उत्तमो नाम वै मनुः ।
सुशान्तिस्तत्र देवेन्द्रो बभूवामित्रकर्षणः ॥१०
सुधामानस्तथा सत्याः शिवाश्चाथ प्रतर्दनाः ।
वशवर्त्तिनश्च पञ्चैते गणा द्वादशकाः स्मृताः ॥११
रजोर्ध्वश्चोर्ध्ववाहुश्च सबलश्चानयस्तथा ।
सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥१२
तामसस्यान्तरे देवाः सुरा वाहरयस्तथा ।
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणाः ॥१३
शिविरिन्द्रस्तथैवासीच्छतयज्ञोपलक्षणः ।
बभूव शंकरे भक्तो महादेवार्चने रतः ॥१४
ज्योतिर्द्धर्मा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वनकस्तथा ।
पीवरस्त्वृषयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरे ॥१५
पञ्चमे चापि विप्रेन्द्रा रैवतो नाम नामतः ।
मनुर्वसुश्च तत्रेन्द्रो बभूवासुरमर्दनः ॥१६
अमिताभा भूतरया वैकुण्ठाः स्वच्छमेधसः ।
एते देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश ॥१७
हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथैव च ।
वेदबाहुः सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ।
एते सप्तर्षयो विप्रास्तत्रासन् रैवतेऽन्तरे ॥१८

कितने शिष्य कलियुग में हुये इसका आप संक्षेप में वर्णन करें। (२, ३)

सूत ने कहा—पहले स्वायंभुव मनु थे। तदुपरान्त स्वारोचिष मनु माने जाते हैं। तदनन्तर उत्तम, तामस, रैवत एवं चाक्षुष मनु हुए। (४)

ये छः मनु भूतकाल के हैं। इस समय के मनु रवि के पुत्र वैवस्वत हैं, जिनका यह सातवाँ मन्वन्तर है। (५)

कल्प की आदि में मैंने स्वायंभुव मन्वन्तर का वर्णन किया है। इसके उपरान्त स्वारोचिष मनु का वर्णन सुनो। (६)

स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत एवं तुषित नामक देवगण और असुरों का मर्दन करने वाले विपश्चित् नामक देवराज थे। (७)

ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, दान्त, वृषभ, तिमिर एवं अर्वरीवान् ये सात सप्तर्षि थे। (८)

स्वारोचिष को चैत्र एवं किंपुरुषादिक पुत्र थे। यह द्वितीय मन्वन्तर का वर्णन हुआ। अब इसके परवर्ती (मन्वन्तर) का वर्णन सुनो। (९)

तीसरे मन्वन्तर में उत्तम नाम के मनु एवं सुशान्ति नामक शत्रुनाशक देवराज थे। (१०)

सुधामा, सत्य, शिव, प्रतर्द्दन एवं वशवर्त्ती ये पाँच द्वादश गण कहे गए हैं। (११)

रजस्, ऊर्द्ध, ऊर्द्धवाहु, सवल, अनय, सुतपा एवं शुक्र ये सात सप्तर्षि थे। (१२)

तामस मन्वन्तर में सुरा, वाहरि, सत्य एवं सुधी नामक सप्तविंशतिक गणदेवता थे। (१३)

सौ यज्ञ करने वाले शिवि इन्द्र थे। वे शङ्कर के भक्त एवं महादेव की आराधना में रत रहते थे। (१४)

उस मन्वन्तर में भी ज्योतिर्द्धर्मा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक एवं पीवर नामक ये सात ऋषि हुए। (१५)

हे विप्रेन्द्रो! पञ्चम (मन्वन्तर) में रैवत नामक मनु एवं वसु नामक असुरनाशक इन्द्र थे। (१६)

अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ एवं स्वच्छमेधा नामक चौदह प्रकार के चौदह गणदेवता थे। (१७)

हे विप्रो! रैवत मन्वन्तर में हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्ववाहु, वेदवाहु, सुधामा, पर्ज्जन्य एवं महामुनि ये (सात) सप्तर्षि थे। (१८)

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा ।
प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवः स्मृताः ।।१९
षष्ठे मन्वन्तरे चासीच्चाक्षुषस्तु मनुर्द्विजाः ।
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवानपि निबोधत ।।२०
आद्याः प्रसूता भाव्याश्च पृथुगाश्च दिवौकसः ।
महानुभावा लेख्याश्च पञ्चैते ह्यष्टका गणाः ।।२१
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो मधुः ।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्नृषयः शुभाः ।।२२
विवस्वतः सुतो विप्राः श्राद्धदेवो महाद्युतिः ।
मनुः स वर्त्तते धीमान् सांप्रतं सप्तमेऽन्तरे ।।२३
आदित्या वसवो रुद्रा देवास्तत्र मरुद्गणाः ।
पुरंदरस्तथैवेन्द्रो बभूव परवीरहा ।।२४
वसिष्ठः कश्यपश्चात्रिर्जमदग्निश्च गौतमः ।
विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ।।२५
विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थिता स्थितौ ।
तदंशभूता राजानः सर्वे च त्रिदिवौकसः ।।२६

स्वारोचिष, उत्तम, तामस एवं रैवत ये चार मनु प्रियव्रत के वंशज कहे जाते हैं। (१९)

हे द्विजो ! छठवें मन्वन्तर के मनु चाक्षुष हैं। इसी प्रकार (चाक्षुष मन्वन्तर के) इन्द्र मनोजव हैं। (इस मन्वन्तर के) देवों का भी वर्णन सुनो। (२०)

आद्य, प्रसूत, भाव्य, पृथुग एवं लेख्य ये ही पाँच महानुभाव अष्टक देवगण हैं। (२१)

सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनाम एवं सहिष्णु ये (सात) कल्याणकारी ऋषि हैं। (२२)

हे विप्रो ! इस समय के सातवें मन्वन्तर के मनु सूर्य के पुत्र बुद्धिमान् महान् तेजस्वी श्राद्धदेव हैं। (२३)

आदित्य, वसुगण, रुद्र एवं मरुद्गण (इस मन्वन्तर के) देवगण हैं। इसी प्रकार शत्रुनाशक पुरन्दर (इस मन्वन्तर के) इन्द्र हैं। (२४)

वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम विश्वामित्र एवं भरद्वाज (इस मन्वन्तर के) सात सप्तर्षि हैं। (२५)

(इस मन्वन्तर में) सत्त्वगुणमयी, अनुपम विष्णुशक्ति रक्षा के लिए स्थित है। सभी राजा एवं देवगण उसी (विष्णुशक्ति) के अंशस्वरूप हैं। (२६)

स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वमाकूत्यां मानसः सुतः ।
रुचेः प्रजापतेर्यज्ञस्तदंशेनाभवद् द्विजाः ।।२७
ततः पुनरसौ देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे ।
तुषितायां समुत्पन्नस्तुषितैः सह दैवतैः ।।२८
औत्तमेऽप्यन्तरे विष्णुः सत्यैः सह सुरोत्तमैः ।
सत्यायामभवत् सत्यः सत्यरूपो जनार्दनः ।।२९
तामसस्यान्तरे चैव संप्राप्ते पुनरेव हि ।
हर्यायां हरिभिर्देवैर्हरिरेवाभवद्धरिः ।।३०
रैवतेऽप्यन्तरे चैव संभूत्यां मानसोऽभवत् ।
संभूतो मानसैः सार्द्धं देवैः सह महाद्युतिः ।।३१
चाक्षुषेऽप्यन्तरे चैव वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः ।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्दैवतैः सह ।।३२
मन्वन्तरेऽत्र संप्राप्ते तथा वैवस्वतेऽन्तरे ।
वामनः कश्यपाद् विष्णुरदित्यां संबभूव ह ।।३३
त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना ।
पुरंदराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम् ।।३४

हे द्विजो ! स्वायम्भुव मन्वन्तर में पहले प्रजापति रुचि को आकूति में उन (विष्णु) के अंश से यज्ञ नामक मानस पुत्र हुआ। (२७)

स्वारोचिष मन्वन्तर आने पर पुनः वे देव तुषित नामक देवों के साथ तुषिता के गर्भ से उत्पन्न हुए। (२८)

औत्तम मन्वन्तर में सत्य नामक श्रेष्ठ देवों के साथ सत्यस्वरूप विष्णु जनार्दन सत्या के गर्भ से सत्य के रूप में उत्पन्न हुए। (२९)

तामस मन्वन्तर उपस्थित होने पर पुनः हरि ही हरि नामक देवगण सहित हर्या के गर्भ से हरि के रूप में उत्पन्न हुए। (३०)

रैवत मन्वन्तर में मानस देवगण सहित महातेजस्वी हरि संभूति के गर्भ से मानस के रूप में उत्पन्न हुए। (३१)

चाक्षुष मन्वन्तर में वे पुरुषोत्तम वैकुण्ठ देवों सहित विकुण्ठा के गर्भ से वैकुण्ठ नाम से उत्पन्न हुए। (३२)

वैवस्वत मन्वन्तर आने पर विष्णु वामन के रूप में अदिति के गर्भ से कश्यप के (पुत्र) हुए। (३३)

उन महात्मा ने तीन पगों में इन लोकों को जीत कर इन्द्र को निष्कण्टक त्रैलोक्य प्रदान किया था। (३४)

इत्येतास्तनवस्तस्य सप्त मन्वन्तरेषु वै ।
सप्त चैवाभवन् विप्रा याभिः संरक्षिताः प्रजाः ॥३५
यस्माद् विष्टमिदं कृत्स्नं वामनेन महात्मना ।
तस्मात् स वै स्मृतो विष्णुर्विशेर्द्धातोः प्रवेशनात् ॥३६
एष सर्वं सृजत्यादौ पाति हन्ति च केशवः ।
भूतान्तरात्मा भगवान् नारायण इति श्रुतिः ॥३७
एकांशेन जगत् सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।
चतुर्द्धा संस्थितो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽपि च ॥३८
एका भगवतो मूर्त्तिर्ज्ञानरूपा शिवाऽमला ।
वासुदेवाभिधाना सा गुणातीता सुनिष्कला ॥३९
द्वितीया कालसंज्ञाऽन्या तामसी शेषसंज्ञिता ।
निहन्ति सकलं चान्ते वैष्णवी परमा तनुः ॥४०
सत्त्वोद्रिक्ता तथैवान्या प्रद्युम्नेति च संज्ञिता ।
जगत् स्थापयते सर्वं स विष्णुः प्रकृतिर्ध्रुवा ॥४१

हे विप्रो ! सात मन्वन्तरों में उन (विष्णु) के ये ही सात शरीर उत्पन्न हुए, जिनसे प्रजा की रक्षा हुई। (३५)

क्योंकि महात्मा वामन ने सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त था अतएव "विश्" धातु के "प्रवेश" अर्थ के कारण किया उन्हें ही विष्णु कहा गया है। (३६)

ये केशव (कल्प के) प्रारम्भ में सभी की सृष्टि कर उसकी रक्षा तथा (कल्पान्त में पुनः उसका) संहार करते हैं। श्रुति में (उन केशव को) सभी प्राणियों के अन्तरात्मा भगवान् एवं नारायण कहा गया है। (३७)

नारायण सम्पूर्ण जगत् को एक अंश से व्याप्त कर स्थित हैं। वे निर्गुण होते हुए भी सगुण रूप से चार भागों में विभक्त होकर (सर्वत्र) व्याप्त हैं। (३८)

भगवान् की वासुदेव नामक एक ज्ञानस्वरूपा, कल्याणकारिणी, निर्मल, कलारहित एवं गुणातीत मूर्त्ति है। (३९)

(उनकी) अन्य एक दूसरी शेष एवं काल नामक तामसी मूर्त्ति है। विष्णु की यह श्रेष्ठ मूर्त्ति प्रलय काल में सभी का संहार करती है। (४०)

(इनकी) अन्य प्रद्युम्न नामक तीसरी मूर्त्ति सत्त्वगुणमयी है। विष्णु की वह नित्य प्रकृति समस्त जगत् की स्थापना करती है। (४१)

चतुर्थी वासुदेवस्य मूर्त्तिर्ब्राह्मीति संज्ञिता ।
राजसी चानिरुद्धाख्या प्रद्युम्नः सृष्टिकारिका ॥४२
यः स्वपित्यखिलं भूत्वा प्रद्युम्नेन सह प्रभुः ।
नारायणाख्यो ब्रह्माऽसौ प्रजासर्गं करोति सः ॥४३
या सा नारायणतनुः प्रद्युम्नाख्या मुनीश्वराः ।
तया संमोहयेद् विश्वं सदेवासुरमानुषम् ॥४४
सैव सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिः परिकीर्त्तिता ।
वासुदेवो ह्यनन्तात्मा केवलो निर्गुणो हरिः ॥४५
प्रधानं पुरुषः कालस्तत्त्वत्रयमनुत्तमम् ।
वासुदेवात्मकं नित्यमेतद् विज्ञाय मुच्यते ॥४६
एकं चेदं चतुष्पादं चतुर्द्धा पुनरच्युतः ।
विभेद वासुदेवोऽसौ प्रद्युम्नो हरिरव्ययः ॥४७
कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायणः स्वयम् ।
अपान्तरतमाः पूर्वं स्वेच्छया ह्यभवद्धरिः ॥४८

वासुदेव की चौथी ब्राह्मी मूर्त्ति अनिरुद्ध नामक है। वह राजसी मूर्त्ति एवं प्रद्युम्न नामक मूर्त्ति सृष्टि करती है। (४२)

समस्त सृष्टि का रूप धारण करने के उपरान्त प्रद्युम्न के साथ जो प्रभु शयन करते हैं नारायण नामक वे ही देव ब्रह्मा के रूप में प्रजा की सृष्टि करते हैं। (४३)

हे मुनियो ! नारायण की प्रद्युम्न नामक जो मूर्त्ति कही गयी है उसके द्वारा देवता, असुर एवं मानवों से युक्त जगत् को मोहित करते हैं। (४४)

उसी जगत् के उत्पादक को प्रकृति कहा जाता है। अनन्तात्मा वासुदेव हरि अद्वितीय एवं निर्गुण हैं। (४५)

प्रधान, पुरुष और काल ये श्रेष्ठ तत्त्व-त्रय नित्य वासुदेवमय हैं। इसका ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति होती है। (४६)

उन अच्युत वासुदेव नामक प्रद्युम्न अव्यय हरि ने चतुष्पादात्मक इस एक (वेद) को चार भागों में विभक्त किया। (४७)

पूर्व काल में स्वयं नारायण अपान्तरतमा हरि विष्णु ही स्वेच्छा से कृष्णद्वैपायन व्यास हुये हैं। (४८)

अनाद्यन्तं परं ब्रह्म न देवा नर्षयो विदुः ।
एकोऽयं वेद भगवान् व्यासो नारायणः प्रभुः ॥४९

इत्येतद् विष्णुमाहात्म्यमुक्तं वो मुनिपुंगवाः ।
एतत् सत्यं पुनः सत्यमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति ॥५०

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥४९॥

५०

सूत उवाच ।
अस्मिन् मन्वन्तरे पूर्वं वर्त्तमाने महान् विभुः ।
द्वापरे प्रथमे व्यासो मनुः स्वायंभुवो मतः ॥१
बिभेद बहुधा वेदं नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ॥२
तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे स्याद् बृहस्पतिः ।
सविता पञ्चमे व्यासः षष्ठे मृत्युः प्रकीर्त्तितः ॥३
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मतः ।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः ॥४
एकादशे तु त्रिवृषः शततेजास्ततः परः ।
त्रयोदशे तथा धर्मस्तरक्षुस्तु चतुर्दशे ॥५
त्र्यारुणिर्वै पञ्चदशे षोडशे तु धनंजयः ।
कृतंजयः सप्तदशे ह्यष्टादशे ऋतंजयः ॥६
ततो व्यासो भरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वं तु गौतमः ।
राजश्रवाश्चैकविंशस्तस्माच्छुष्मायणः परः ॥७
तृणबिन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तत्परः स्मृतः ।
पञ्चविंशे तथा शक्तिः षड्विंशे तु पराशरः ॥८

आदि एवं अन्त रहित, पूर्ण परब्रह्म को देवता एवं ऋषि भी नहीं जानते। एक मात्र प्रभु नारायण स्वरूप ये भगवान् व्यास ही (उस ब्रह्म को) जानते हैं। (४९)

हे मुनिपुङ्गवो! मैंने आपसे इस विष्णु-माहात्म्य का कथन किया। यह सत्य है एवं पुनः सत्य है। ऐसा जानने से मोह नहीं होता। (५०)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में उनचासवाँ अध्याय समाप्त—४९.

५०

सूत ने कहा—इस वर्तमान मन्वन्तर के पूर्व कालिक प्रथम द्वापर में महान् विभुस्वायम्भुव मनु को व्यास माना गया है। (१)

प्रभु ब्रह्मा के निर्देश से (उन्होंने) अनेक प्रकार से वेदों का विभाग किया। द्वितीय द्वापर में प्रजापति वेदव्यास थे। (२)

तृतीय में शुक्राचार्य एवं चतुर्थ में बृहस्पति व्यास थे। पञ्चम में सविता एवं छठवें में मृत्यु को व्यास कहा गया है। (३)

इसी प्रकार सातवें में इन्द्र एवं आठवें में वसिष्ठ को व्यास माना गया है। नवम में सारस्वत तथा दशम में त्रिधामा व्यास माने गये हैं। (४)

ग्यारहवें में त्रिवृष एवं तदुपरान्त (बारहवें में) शततेजा को व्यास कहा गया है। तेरहवें में धर्म और चौदहवें में तरक्षु व्यास होते हैं। (५)

पन्द्रहवें में त्र्यारुणि, सोलहवें में धनञ्जय, सत्रहवें में कृतञ्जय और अट्ठारहवें में ऋतञ्जय (को व्यास माना गया है)। (६)

तदुपरान्त (उन्नीसवें में) भरद्वाज व्यास थे। तत्पश्चात् (बीसवें में) गौतम व्यास हुए। इक्कीसवें (द्वापर) में राजश्रवा एवं तदनन्तर (बाइसवें) श्रेष्ठ शुष्मायण व्यास हुए। (७)

तेइसवें (द्वापर) में तृणबिन्दु एवं तत्पश्चात् (चौबीसवें में) वाल्मीकि को व्यास कहा गया है। पचीसवें में शक्ति एवं छब्बीसवें में पराशर व्यास हुए। (८)

सप्तविंशे तथा व्यासो जातूकर्णो महामुनिः ।
अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते ह्यस्मिन् वै द्वापरे द्विजाः ।
पराशरसुतो व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽभवत् ॥९
स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः ।
पाराशर्यो महायोगी कृष्णद्वैपायनो हरिः ॥१०
आराध्य देवमीशानं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम् ।
तत्प्रसादादसौ व्यासं वेदानामकरोत् प्रभुः ॥११
अथ शिष्यान् प्रजग्राह चतुरो वेदपारगान् ।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशम्पायनमेव च ।
पैलं तेषां चतुर्थं च पञ्चमं मां महामुनिः ॥१२
ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह स महामुनिः ।
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च ॥१३
जैमिनिं सामवेदस्य श्रावकं सोन्वपद्यत ।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् ।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत् ॥१४
एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ।
चातुर्होत्रमभूद् यस्मिस्तेन यज्ञमथाकरोत् ॥१५
आध्वर्यवं यजुर्भिः स्यादृग्भिर्होत्रं द्विजोत्तमाः ।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ॥१६
ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः ।
यजूंषि च यजुर्वेदं सामवेदं च सामभिः ॥१७
एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा ।
शाखानां तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत् ॥१८
सामवेदं सहस्रेण शाखानां प्रबिभेद सः ।
अथर्वाणमथो वेदं बिभेद नवकेन तु ॥१९
भेदैरष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः ।
सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेदः पूर्वं पुरातनात् ॥२०
ओङ्कारो ब्रह्मणो जातः सर्वदोषविशोधनः ।
वेदवेद्यो हि भगवान् वासुदेवः सनातनः ॥२१
स गीयते परो वेदे यो वेदैनं स वेदवित् ।
एतत् परतरं ब्रह्म ज्योतिरानन्दमुत्तमम् ॥२२

हे द्विजो ! सत्ताइसवें में महामुनि जातूकर्ण व्यास थे। तदनन्तर इस अट्ठाइसवें युग में पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। (९)

वे ही सभी वेदों एवं पुराणों के प्रदर्शक हैं। पराशर के पुत्र महायोगी प्रभु कृष्णद्वैपायन हरि ने त्रिलोचन शङ्कर देव की आराधना कर एवं अम्बिका के साथ उनका दर्शन कर उनके अनुग्रह से वेदों का विभाग किया। (१०,११)

तदनन्तर उन महामुनि ने वेदपारगामी, चार शिष्यों को लिया और जैमिनि सुमन्तु, वैशम्पायन चतुर्थ पैल को तथा पाँचवें मुझको (अपना) शिष्य वनाया। (१२)

उन महामुनि ने पैल को ऋग्वेद का पाठक, वैशम्पायन को यजुर्वेद का प्रवक्ता, जैमिनि को सामवेद का पाठक एवं ऋषिश्रेष्ठ सुमन्तु को अथर्ववेद का पाठक वनाया और इतिहास और पुराणों के प्रवचन में मुझे नियुक्त किया। (१३,१४)

(प्रारम्भ में) एक यजुर्वेद था, उसका चार भाग हुआ। इसीसे चातुर्होत्र की उत्पत्ति हुयी। तदनन्तर (उन्होंने) उससे यज्ञ किया। (१५)

हे द्विजोत्तमो ! यजुष् द्वारा आध्वर्यव (अर्थात् अध्वर्यु), ऋक् से अग्निहोत्र (अथवा होता), साम से औद्गात्र (अथवा उद्गाता) एवं अथर्व मन्त्रों द्वारा ब्रह्मत्व अथवा (ब्रह्मा) की कल्पना हुयी। (१६)

तदनन्तर प्रभु (कृष्णद्वैपायन) ने ऋचाओं को पृथक् कर ऋग्वेद का निर्माण किया। (इसी प्रकार) यजुर्मन्त्रों से यजुर्वेद का एवं साम मन्त्रों से सामवेद का (सङ्ग्रह प्रस्तुत किया)। (१७)

तदनन्तर (उन्होंने) पूर्वकाल में ऋग्वेद को इक्कीस भाग में एवं यजुर्वेद को सौ शाखाओं में विभक्त किया। (१८)

(उन्होंने) सामवेद को एक सहस्र शाखाओं में और अथर्ववेद को नव शाखाओं में विभक्त किया। (१९)

प्रभु व्यास ने अट्ठारह विभागों में पुराण की रचना की। पूर्वकाल में सभी दोषों को दूर करने वाला पुरातन चतुष्पाद ओङ्कार स्वरूप वेद ब्रह्मा से आविर्भूत हुआ था। वेदों द्वारा सनातन भगवान् वासुदेव का ज्ञान होता है। (२०,२१)

वेद उन्हीं परम पुरुष का गान करते हैं। उन्हें जानने वाला ही वेदज्ञ होता है। ये ही श्रेष्ठ ज्योति

वेदवाक्योदितं तत्त्वं वासुदेवः परं पदम् ।
वेदवेद्यमिमं वेत्ति वेदं वेदपरो मुनिः ॥२३
अवेदं परमं वेत्ति वेदनिष्ठः सदेश्वरः ।
स वेदवेद्यो भगवान् वेदमूर्त्तिर्महेश्वरः ।
स एव वेदो वेद्यश्च तमेवाश्रित्य मुच्यते ॥२४
इत्येदक्षरं वेद्यमोङ्कारं वेदमव्ययम् ।
अवेदं च विजानाति पाराशर्यो महामुनिः ॥२५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे पञ्चाशोऽध्यायः ॥५०॥

५१

सूत उवाच ।
वेदव्यासावताराणि द्वापरे कथितानि तु ।
महादेवावताराणि कलौ श्रृणुत सुव्रताः ॥१
आद्ये कलियुगे श्वेतो देवदेवो महाद्युतिः ।
नाम्ना हिताय विप्राणामभूद् वैवस्वतेऽन्तरे ॥२
हिमवच्छिखरे रम्ये छगले पर्वतोत्तमे ।
तस्य शिष्याः शिखायुक्ता बभूवुरमितप्रभाः ॥३
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः ।
चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥४
सुभानो दमनश्चाथ सुहोत्रः कङ्कणस्तथा ।
लोकाक्षिरथ योगीन्द्रो जैगीषव्यस्तु सप्तमे ॥५
अष्टमे दधिवाहः स्यान्नवमे वृषभः प्रभुः ।
भृगुस्तु दशमे प्रोक्तस्तस्मादुग्रः परः स्मृतः ॥६

एवं आनन्दस्वरूप परात्पर ब्रह्म हैं। (२२)

वासुदेव ही वेदवाक्यों द्वारा प्रतिपादित तत्त्व एवं परम पद हैं। वेदपरायण मुनि वेदों द्वारा ज्ञात होने योग्य इन्हीं (वासुदेव स्वरूप) वेद को जानते हैं। (२३)

अत्यन्त अवेद्य अर्थात् न ज्ञात होने योग्य को जानते हैं। वे वेदों द्वारा ज्ञात होने योग्य को वेदनिष्ठ, सदेश्वर, वेदमूर्ति भगवान् महेश्वर एवं वेदनिष्ठ हैं। वे (भगवान्) ही (वेदों से) वेद्य तथा वेदस्वरूप हैं। उन्हींका आश्रय ग्रहण करने पर मुक्ति होती है। (२४)

पराशर के पुत्र महामुनि वेदव्यास इस अविनश्वर जानने योग्य ओङ्कार स्वरूप अव्यय वेद एवं (पूर्वोक्त) अवेद अर्थात् न ज्ञात होने योग्य तत्त्व को भी जानते हैं। (२५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्व विभाग में पचासवाँ अध्याय समाप्त—५०.

५१

सूत ने कहा—हे सुव्रतो! द्वापर युग में (होने वाले) व्यास के अवतारों का वर्णन किया गया। अब कलियुग में होने वाले महादेव के अवतारों को सुनो। (१)

वैवस्वत मन्वन्तर के प्रथम कलियुग में विप्रों के हितार्थ अतितेजस्वी देवाधिदेव (शङ्कर) श्वेत नाम से सभी पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय के रमणीय छगल शिखर पर प्रकट हुए। उनके शिष्य शिखायुक्त तथा अमित-तेजस्वी थे। (२,३)

श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य एवं श्वेतलोहित नामक वे चार (शिष्य) वेदपारगामी महात्मा ब्राह्मण थे। (द्वितीय से षष्ठ कलियुग पर्यन्त क्रमशः) सुभान, दमन, सुहोत्र, कङ्कण एवं योगीन्द्र लोकाक्षि नामक (महादेव के अवतार) हुए। सातवें कलियुग में जैगीषव्य नामक (महादेव का अवतार हुआ)। (४,५)

आठवें में दधिवाह, नवम में प्रभु वृषभ, दशम में भृगु एवं तदुपरान्त उग्र का अवतार कहा गया है। (६)

द्वादशेऽत्रिः समाख्यातो बली चाथ त्रयोदशे ।
चतुर्दशे गौतमस्तु वेदशीर्षा ततः परम् ।।७
गोकर्णश्चाभवत् तस्माद् गुहावासः शिखण्ड्यथ ।
जटामाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली क्रमात् ।।८
श्वेतस्तथा परः शूली डिण्डी मुण्डी च वै क्रमात् ।
सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीशोऽन्तिमे प्रभुः ।।९
वैवस्वतेऽन्तरे शंभोरवतारास्त्रिशूलिनः ।
अष्टाविंशतिराख्याता ह्यन्ते कलियुगे प्रभोः ।
तीर्थे कायावतारे स्याद् देवेशो नकुलीश्वरः ।।१०
तत्र देवादिदेवस्य चत्वारः सुतपोधनाः ।
शिष्या बभूवुश्चान्येषां प्रत्येकं मुनिपुंगवाः ।।११
प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरीं भक्तिमाश्रिताः ।
क्रमेण तान् प्रवक्ष्यामि योगिनो योगवित्तमान् ।।१२
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः ।
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा ।
विकेशश्च विशोकश्च विशापश्शापनाशनः ।।१३
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः ।
सनः सनातनश्चैव कुमारश्च सनन्दनः ।।१४
दालभ्यश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः ।
सुधामा विरजाश्चैव शङ्खपात्रज एव च ।।१५
सारस्वतस्तथा मेघो घनवाहः सुवाहनः ।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखो मुनिः ।।१६
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा ।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः ।।१७
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशकः ।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सत्यस्तथैव च ।।१८
सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजास्तथा ।
अत्रिरुग्रस्तथा चैव श्रवणोऽथ श्रविष्ठकः ।।१९
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ।
कश्यपो ह्युशना चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः ।।२०
उतथ्यो वामदेवश्च महाकायो महानिलः ।
वाचश्रवाः सुपीकश्च श्यावाश्वः सपथीश्वरः ।।२१

बारहवें में अत्रि, तेरहवें में बली, चौदहवें में गौतम एवं तदुपरान्त वेदशीर्ष का अवतार कहा गया है। (७)

तदुपरान्त क्रमशः गोकर्ण, गुहावास, शिखण्डी, जटामाली, अट्टहास, दारुक एवं लाङ्गली नामक महादेव के अवतार हुए। (८)

तत्पश्चात् क्रमशः श्वेत, शूली, डिण्डी, मुण्डी सहिष्णु, सोमशर्मा एवं अन्त में प्रभु नकुलीश्वर नामक महादेव के अवतार हुए। (९)

वैवस्वत मन्वन्तर में त्रिशूलधारी प्रभु शम्भु के अट्ठाइस अवतार कहे गये हैं। अन्तिम कलियुग में कायावतार नामक तीर्थ में देवेश्वर नकुलीश्वर का अवतार होगा। (१०)

हे मुनिपुङ्गवो! उस समय देवाधिदेव के चार अत्यन्त तपस्वी शिष्य हुए। अन्यों में भी प्रत्येक को (चार शिष्य थे)। (११)

वे सभी प्रसन्नचित्त, इन्द्रियनिग्रही एवं ईश्वर की भक्ति करने वाले थे। क्रमशः उन श्रेष्ठ योगज्ञ योगियों का वर्णन करता हूँ। (१२)

श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य, श्वेतलोहित, दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान्, विकेश, विशोक, विशाप, शापनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम, दुरतिक्रम, सनक, सनातन, सनत्कुमार, सनन्दन, महायोगी दालभ्य, सुधामा, विरजा एवं शङ्खपात्रज (नामक शिष्य थे)। ये सभी महातेजस्वी तथा धर्मात्मा थे। (१३-१५)

(इसके अतिरिक्त) सारस्वत, मेघ, घनवाह, सुवाहन, कपिल, आसुरि, वोढु, मुनि पञ्चशिख, पराशर गर्ग, भार्गव, अङ्गिरा, बलबन्धु, निरामित्र, तपोधन केतुशृङ्ग, लम्बोदर, लम्ब, लम्बाक्ष, लम्बकेशक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, एवं साध्य तथा सत्य (नामक शिष्य थे)। (१६-१८)

(तथा) सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ, विरजा, अत्रि, उग्र, श्रवण, श्रविष्ठक, कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, उतथ्य, वामदेव, महाकाय, महानिल, वाचश्रवा, सुपीक, श्यावाश्व एवं सपथीश्वर (नामक शिष्य थे)। (१९-२१)

हिरण्यनाभः कौशल्यो लोकाक्षिः कुथुमिस्तथा।
सुमन्तुर्वर्चरी विद्वान् कवन्धः कुशिकन्धरः ॥२२
प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा।
भल्लापी मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोनिधिः ॥२३
उशिजो बृहदुक्थश्च देवलः कपिरेव च।
शालिहोत्रोऽग्निवेश्यश्च युवनाश्वः शरद्वसुः ॥२४
छगलः कुण्डकर्णश्च कुम्भश्चैव प्रवाहकः।
उलूको विद्युतश्चैव शाद्वलो ह्याश्वलायनः ॥२५
अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च।
कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रको ऋष्य एव च ॥२६
शिष्या एते महात्मानः सर्वावर्त्तेषु योगिनाम्।
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः ॥२७
कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां हिताय हि।
योगेश्वराणामादेशाद् वेदसंस्थापनाय वै ॥२८
ये ब्राह्मणाः संस्मरन्ति नमस्यन्ति च सर्वदा।
तर्पयन्त्यर्चयन्त्येतान् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयुः ॥२९
इदं वैवस्वतं प्रोक्तमन्तरं विस्तरेण तु।
भविष्यति च सावर्णो दक्षसावर्ण एव च ॥३०
दशमो ब्रह्मसावर्णो धर्मसावर्ण एव च।
द्वादशो रुद्रसावर्णो रोचमानस्त्रयोदशः।
भौत्यश्चतुर्दशः प्रोक्तो भविष्या मनवः क्रमात् ॥३१
अयं वः कथितो ह्यंशः पूर्वो नारायणेरितः।
भूतभव्यैर्वर्त्तमानैराख्यानैरुपबृंहितः ॥३२
यः पठेच्छृणुयाद् वापि श्रावयेद् वा द्विजोत्तमान्।
स सर्वपापनिर्मुक्तो ब्रह्मणा सह मोदते ॥३३
पठेद् देवालये स्नात्वा नदीतीरेषु चैव हि।
नारायणं नमस्कृत्य भावेन पुरुषोत्तमम् ॥३४
नमो देवादिदेवाय देवानां परमात्मने।
पुरुषाय पुराणाय विष्णवे कूर्मरूपिणे ॥३५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥५१॥

पूर्वविभागः समाप्तः

(इसी प्रकार) हिरण्यनाभ कौशल्य, लोकाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, वर्चरी, विद्वान् कवन्ध, कुशिकन्धर, प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान्, गौतम, भल्लापी, मधुपिङ्ग, तपोनिधि श्वेतकेतु, उशिज, बृहदुक्थ, देवल, कपि, शालिहोत्र, अग्निवेश्य, युवनाश्व एवं शरद्वसु (नामक शिष्य थे)। (२२-२४)

(इसके अतिरिक्त) छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भ, प्रवाहक, उलूक, विद्युत्, शाद्वल, आश्वलायन, अक्षपाद, कुमार, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक एवं ऋष्य (नामक शिष्य थे)। (२५,२६)

योगियों के समस्त आवतारों में ये ही महात्मा शिष्य होते हैं। ये सभी शुद्ध, ब्रह्ममय एवं ज्ञान योगी हैं। (२७)

योगेश्वर के आदेश से ब्राह्मणों के कल्याणों और वेदों की संस्थापना के निमित्त (ये महात्मा) अवतार ग्रहण करते हैं। (२८)

जो ब्राह्मण सर्वदा इनका स्मरण, नमस्कार तर्पण एवं पूजन करते हैं वे ब्रह्मविद्या प्राप्त करते हैं। (२९)

मैंने विस्तार पूर्वक वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन किया। सावर्ण एवं दक्षसावर्ण मन्वन्तर भविष्य में होंगे। (३०)

तदनन्तर दसवाँ ब्रह्मसावर्ण एवं ग्यारहवाँ धर्मसावर्ण नामक मन्वन्तर कहे गये हैं। बारहवाँ रुद्रसावर्ण एवं तेरहवाँ रोचमान मन्वन्तर है। भौत्य नामक चौदहवाँ मन्वन्तर कहा गया है। ये सभी क्रमानुसार भविष्य के मनु हैं। (३१)

मैंने नारायण द्वारा कहे गये भूत भविष्य और वर्तमान के आख्यान से उपबृंहित इस पूर्वभाग को आप लोगों से कहा। जो इस विवरण को पढ़ेगा अथवा श्रेष्ठद्विजों को सुनायेगा वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्म के साथ आनन्द प्राप्त करेगा। (३२,३३)

स्नानोपरान्त नदी तीर पर अथवा देवालय में भक्तिपूर्वक पुरुषोत्तम नारायण को नमस्कार कर इसका पाठ करना चाहिये। (३४)

देवों के भी देव, देवों के परमात्मा, पुराण पुरुष, कूर्मरूपी विष्णु को नमस्कार करता हूँ। (३५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के पूर्वविभाग में इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त—५१.

पूर्वविभाग समाप्त।

उपरिविभागः

१

ऋषय ऊचुः ।
भवता कथितः सम्यक् सर्गः स्वायंभुवस्ततः ।
ब्रह्माण्डस्यास्य विस्तारो मन्वन्तरविनिश्चयः ॥१
तत्रेश्वरेश्वरो देवो वर्णिभिर्धर्मतत्परैः ।
ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्यः कथितस्त्वया ॥२
तद्वदाशेषसंसारदुःखनाशमनुत्तमम् ।
ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं येन पश्येम तत्परम् ॥३
त्वं हि नारायणात्साक्षात् कृष्णद्वैपायनात् प्रभो ।
अवाप्ताखिलविज्ञानस्तत्त्वां पृच्छामहे पुनः ॥४
श्रुत्वा मुनीनां तद् वाक्यं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ।
सूतः पौराणिकः स्मृत्वा भाषितुं ह्युपचक्रमे ॥५

अथास्मिन्नन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ।
आजगाम मुनिश्रेष्ठा यत्र सत्रं समासते ॥६
तं दृष्ट्वा वेदविद्वांसं कालमेघसमद्युतिम् ।
व्यासं कमलपत्राक्षं प्रणेमुर्द्विजपुंगवाः ॥७
पपात दण्डवद् भूमौ दृष्ट्वाऽसौ रोमहर्षणः ।
प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं प्राञ्जलिः पार्श्वगोऽभवत् ॥८
पृष्टास्तेऽनामयं विप्राः शौनकाद्या महामुनिम् ।
समाश्वास्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन् ॥९
अथैतानब्रवीद् वाक्यं पराशरसुतः प्रभुः ।
कच्चिन्न तपसो हानिः स्वाध्यायस्य श्रुतस्य च ॥१०

१

ऋषियो ने कहा—आपने भली-भाँति स्वायम्भुव सर्ग, इस ब्रह्माण्ड के विस्तार एवं मन्वन्तर के भेद का वर्णन किया । (१)

उन (कालों) में धर्मपरायण ज्ञानयोगी वर्णधर्मानुयायियों के नित्य आराध्य ईश्वरेश्वर देव का भी आपने वर्णन किया । (२)

इसके अतिरिक्त आपने सम्पूर्ण संसार के दुखों को नष्ट करने वाले एक मात्र ब्रह्मविषयक तत्त्वस्वरूप उस ज्ञान का भी वर्णन किया है जिसके द्वारा हम उस परम तत्त्व का साक्षात्कार कर सकते हैं। (३)

हे प्रभु ! आपने साक्षात् नारायण प्रभु कृष्ण द्वैपायन से सम्पूर्ण विज्ञान प्राप्त किया है। अतः (हम) आपसे पुनः पूँछते हैं । (४)

मुनियों के उस वचन को सुनने के उपरान्त प्रभु कृष्णद्वैपायन का स्मरण कर पौराणिक सूत ने कहना आरम्भ किया । (५)

इसी बीच स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यास वहाँ पहुँच गए जहाँ मुनिश्रेष्ठों का यज्ञीय सत्र चल रहा था । (६)

वेदों के विद्वान् प्रलय कालीन मेघतुल्य वर्ण वाले कमलनेत्र व्यास को देखकर द्विजपुङ्गवों ने (उन्हें) प्रणाम किया । (७)

उन्हें देखकर रोमहर्षण (सूत) ने पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम किया एवं गुरु की प्रदक्षिणा करने के उपरान्त हाथ जोड़ कर वे उनके पार्श्व में स्थित हो गये । (८)

(व्यास द्वारा) आरोग्य विषयक प्रश्न पूछे जाने के उपरान्त उन शौनकादि महामुनियों ने (उचित उत्तर द्वारा उन्हें) आश्वस्त कर उनके योग्य आसन उन्हें प्रदान किया । (९)

तदनन्तर पराशर-पुत्र प्रभु (व्यास) ने उनसे पूछा कि तप, स्वध्याय एवं ज्ञान की कोई हानि तो नहीं हुई है । (१०)

ततः स सूतः स्वगुरुं प्रणम्याह महामुनिम् ।
ज्ञानं तद् ब्रह्मविषयं मुनीनां वक्तुमर्हसि ।।११
इमे हि मुनयः शान्तास्तापसा धर्मतत्पराः ।
शुश्रूषा जायते चैषां वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ।।१२
ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं यन्मे साक्षात् त्वयोदितम् ।
मुनीनां व्याहृतं पूर्वं विष्णुना कूर्मरूपिणा ।।१३
श्रुत्वा सूतस्य वचनं मुनिः सत्यवतीसुतः ।
प्रणम्य शिरसा रुद्रं वचः प्राह सुखावहम् ।।१४

व्यास उवाच ।

वक्ष्ये देवो महादेवः पृष्टो योगीश्वरैः पुरा ।
सनत्कुमारप्रमुखैः स्वयं यत्समभाषत ।।१५
सनत्कुमारः सनकस्तथैव च सनन्दनः ।
अङ्गिरा रुद्रसहितो भृगुः परमधर्मवित् ।।१६
कणादः कपिलो योगी वामदेवो महामुनिः ।
शुक्रो वसिष्ठो भगवान् सर्वे संयतमानसाः ।।१७
परस्परं विचार्यैते संशयाविष्टचेतसः ।
तप्तवन्तस्तपो घोरं पुण्ये वदरिकाश्रमे ।।१८
अपश्यंस्ते महायोगमृषिं धर्मसुतं शुचिम् ।
नारायणमनाद्यन्तं नरेण सहितं तदा ।।१९
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः सर्वे वेदसमुद्भवैः ।
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनो योगवित्तमम् ।।२०
विज्ञाय वाञ्छितं तेषां भगवानपि सर्ववित् ।
प्राह गम्भीरया वाचा किमर्थं तप्यते तपः ।।२१
अब्रुवन् हृष्टमनसो विश्वात्मानं सनातनम् ।
साक्षान्नारायणं देवमागतं सिद्धिसूचकम् ।।२२
वयं संशयमापन्नाः सर्वे वै ब्रह्मवादिनः ।
भवन्तमेकं शरणं प्रपन्नाः पुरुषोत्तमम् ।।२३
त्वं हि तद् वेत्थ परमं सर्वज्ञो भगवानृषिः ।
नारायणः स्वयं साक्षात् पुराणोऽव्यक्तपूरुषः ।।२४
नह्यन्यो विद्यते वेत्ता त्वामृते परमेश्वर ।
शुश्रूषाऽस्माकमखिलं संशयं छेत्तुमर्हसि ।।२५

तदुपरान्त अपने गुरु महामुनि (व्यास) को प्रणाम कर उन सूत ने कहा—(इन) मुनियों को उस ब्रह्मविपयक ज्ञान को वतलायें। (११)

ये शान्त, तपस्वी एवं धर्मपरायण मुनि हैं। इन्हें सुनने की इच्छा हुई है। अतः यथार्थ रूप से (उस ज्ञान) का वर्णन कीजिये। (१२)

जिस मोक्षदायक दिव्य ज्ञान का साक्षात् आपने मुझको एवं पूर्वकाल में कूर्मरूपधारी विष्णु ने मुनियों को उपदेश दिया था। (१३)

सूत के वचन सुनने के अनन्तर मस्तक द्वारा रुद्र को प्रणाम कर सत्यवती के पुत्र मुनि (व्यास) ने सुखदायक वचन कहा। (१४)

व्यास ने कहा—सनत्कुमार इत्यादि योगीश्वरों के पूछने पर प्राचीन काल में स्वयं प्रभु महादेव ने (जो) कहा था (मैं उसका) वर्णन करता हूँ। (१५)

सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, अङ्गिरा, रुद्र सहित परम धर्मज्ञ भृगु, कणाद, कपिल, योगी महामुनि वामदेव, शुक्र, एवं भगवान् वसिष्ठ इन सभी संयमित चित्त वाले मुनियों ने संशयान्वित होने पर परस्पर विचार कर पवित्र वदरिकाश्रम में घोर तप किया। (१६-१८)

उन लोगों ने आदि एवं अन्त से रहित धर्मपुत्र महायोगी नारायण नामक ऋपि का नर के साथ दर्शन किया। (१९)

समस्त वेदों से उत्पन्न विविध स्तोत्रों से स्तुति करने के उपरान्त योगियों ने भक्तिपूर्वक उन श्रेष्ठ योगी को प्रणाम किया। (२०)

उनकी अभिलापा को जानकर सर्वज्ञ भगवान् ने गम्भीर वाणी से पूछा "क्यों तप कर रहे हो ?" (२१)

प्रसन्नमन ऋपियों ने आये हुए विश्वात्मा सनातन एवं सिद्धिसूचक साक्षात् नारायण देव से कहा— (२२)

संयमशील एवं ब्रह्मवादी हम सभी लोग आप अद्वितीय पुरुपोत्तम के शरणागत हैं। (२३)

परम रहस्य को पूर्ण रूप से जानने वाले आप ऋपि स्वरूप पुरातन अव्यक्त पुरुप स्वयं साक्षात् भगवान् नारायण हैं। (२४)

आप परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई भी जानने वाला नहीं है। (हम) सुनना चाहते हैं। आप हमारे समस्त संशय का छेदन करें। (२५)

किं कारणमिदं कृत्स्नं कोऽनुसंसरते सदा ।
कश्चिदात्मा च का मुक्तिः संसारः किंनिमित्तकः ।।२६
कः संसारयतीशानः को वा सर्वं प्रपश्यति ।
किं तत् परतरं ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमर्हसि ।।२७
एवमुक्ते तु मुनयः प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम् ।
विहाय तापसं रूपं संस्थितं स्वेन तेजसा ।।२८
विभ्राजमानं विमलं प्रभामण्डलमण्डितम् ।
श्रीवत्सवक्षसं देवं तप्तजाम्बूनदप्रभम् ।।२९
शङ्खचक्रगदापाणिं शार्ङ्गहस्तं श्रियावृतम् ।
न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैव तेजसा ।।३०
तदन्तरे महादेवः शशाङ्काङ्कितशेखरः ।
प्रसादाभिमुखो रुद्रः प्रादुरासीन्महेश्वरः ।।३१
निरीक्ष्य ते जगन्नाथं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम् ।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसो भक्त्या तं परमेश्वरम् ।।३२
जयेश्वर महादेव जय भूतपते शिव ।
जयाशेषमुनीशान तपसाऽभिप्रपूजित ।।३३
सहस्रमूर्ते विश्वात्मन् जगद्यन्त्रप्रवर्त्तक ।
जयानन्त जगज्जन्मत्राणसंहारकारण ।।३४
सहस्रचरणेशान शंभो योगीन्द्रवन्दित ।
जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर ।।३५
संस्तुतो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः ।
समालिङ्ग्य हृषीकेशं प्राह गम्भीरया गिरा ।।३६
किमर्थं पुण्डरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः ।
इमं समागता देशं किं वा कार्यं मयाऽच्युत ।।३७
आकर्ण्य भगवद्वाक्यं देवदेवो जनार्दनः ।
प्राह देवो महादेवं प्रसादाभिमुखं स्थितम् ।।३८
इमे हि मुनयो देव तापसाः क्षीणकल्मषाः ।
अभ्यागता मां शरणं सम्यग्दर्शनकाङ्क्षिणः ।।३९
यदि प्रसन्नो भगवान् मुनीनां भावितात्मनाम् ।
सन्निधौ मम तज्ज्ञानं दिव्यं वक्तुमिहार्हसि ।।४०
त्वं हि वेत्थ स्वमात्मानं न ह्यन्यो विद्यते शिव ।
ततस्त्वमात्मनात्मानं मुनीन्द्रेभ्यः प्रदर्शय ।।४१

इस सम्पूर्ण (दृश्य जगत्) का कारण क्या है? कौन नित्य गतिशील रहता है? आत्मा कौन है? मुक्ति क्या है? एवं संसार का निमित्त क्या है? (२६)

कौन नियामक सभी को गतिशील करता है अथवा संसारचक्र में डालता है? सभी को देखता कौन है? वह परात्पर ब्रह्म क्या है? (आप) हमें यह सब बतलायें। (२७)

ऐसा कहने के उपरान्त मुनियों ने तापस वेष का त्याग कर अपने तेज से स्थित प्रकाशशील, विमल, तेजोमण्डल से सुशोभित, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स धारण करने वाले, तप्तस्वर्ण-सदृश कान्तियुक्त, हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले, लक्ष्मी से युक्त पुरुषोत्तम का दर्शन किया। उस समय उन्हीं के तेज के कारण नर नहीं दिखलायी पड़ रहे थे। (२८-३०)

उसी समय शशाङ्कशेखर रुद्र महादेव महेश्वर प्रसन्नतापूर्वक प्रकट हुए। (३१)

चन्द्रभूषण जगन्नाथ त्रिलोचन को देखकर वे सभी प्रसन्न हो गए एवं भक्तिपूर्वक उन देव की स्तुति करने लगे— (३२)

ईश्वर, महादेव, भूतपति शिव की जय हो। सभी मुनियों के स्वामी एवं तपस्या द्वारा पूजित होने वाले देव की जय हो। (३३)

सहस्रमूर्त्ति, विश्वात्मा, जगत् रूपी यन्त्र के प्रवर्त्तक, संसार के जन्म, रक्षा एवं संहार के कर्त्ता की जय हो। (३४)

सहस्रचरण वाले, ईशान, शम्भु, योगीन्द्रवन्दित, अम्बिकापति परमेश्वरदेव को नमस्कार है। (३५)

स्तुति किए जाने के उपरान्त भक्तवत्सल भगवान् त्र्यम्बक ईश ने हृषीकेश का आलिङ्गन कर गम्भीर वाणी से कहा— (३६)

हे पुण्डरीकाक्ष! ये ब्रह्मवादी श्रेष्ठ मुनि यहाँ क्यों आये हैं? हे अच्युत! मैं क्या करूँ? (३७)

उनके उस वचन को सुनकर देवाधिदेव जनार्दन देव ने प्रसन्नतापूर्वक सम्मुख स्थित महादेव से कहा— (३८)

हे देव! ये सभी मुनि तपस्वी एवं पापरहित हैं। ये लोग भलीभाँति दर्शन (ज्ञान) की इच्छा से मेरी शरण में आए हैं। (३९)

हे भगवन्! यदि आप प्रसन्न हों तो मेरे निकट इन भावनामय मुनियों को वह दिव्य ज्ञान बतलायें। (४०)

हे शिव! आप अपने आपको जानते हैं। (आपको जानने वाला) अन्य कोई नहीं है। अतः आप स्वयं इन मुनीन्द्रों को अपना स्वरूप दिखलायें। (४१)

एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रोवाच मुनिपुंगवान् ।
प्रदर्शयन् योगसिद्धिं निरीक्ष्य वृषभध्वजम् ।।४२
संदर्शनान्महेशस्य शंकरस्याथ शूलिनः ।
कृतार्थं स्वयमात्मानं ज्ञातुमर्हथ तत्त्वतः ।।४३
प्रष्टुमर्हथ विश्वेशं प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् ।
ममैव सन्निधावेष यथावद् वक्तुमीश्वरः ।।४४
निशम्य विष्णुवचनं प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
सनत्कुमारप्रमुखाः पृच्छन्ति स्म महेश्वरम् ।।४५
अथास्मिन्नन्तरे दिव्यमासनं विमलं शिवम् ।
किमप्यचिन्त्यं गगनादीश्वरार्हं समुद्बभौ ।।४६
तत्रासासाद योगात्मा विष्णुना सह विश्वकृत् ।
तेजसा पूरयन् विश्वं भाति देवो महेश्वरः ।।४७
तं ते देवादिदेवेशं शंकरं ब्रह्मवादिनः ।
विभ्राजमानं विमले तस्मिन् ददृशुरासने ।।४८
यं प्रपश्यन्ति योगस्थाः स्वात्मन्यात्मानमीश्वरम् ।
अनन्यतेजसं शान्तं शिवं ददृशिरे किल ।।४९
यतः प्रसूतिर्भूतानां यत्रैतत् प्रविलीयते ।
तमासनस्थं भूतानामीशं ददृशिरे किल ।।५०
यदन्तरा सर्वमेतद् यतोऽभिन्नमिदं जगत् ।
स वासुदेवमासीनं तमीशं ददृशुः किल ।।५१
प्रोवाच पृष्टो भगवान् मुनीनां परमेश्वरः ।
निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षं स्वात्मयोगमनुत्तमम् ।।५२
तच्छृणुध्वं यथान्यायमुच्यमानं मयाऽनघाः ।
प्रशान्तमानसाः सर्वे ज्ञानमीश्वरभाषितम् ।।५३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

ऐसा कहने के उपरान्त हृषीकेश ने वृषभध्वज को देखकर योगसिद्धि का प्रदर्शन करते हुए मुनिपुङ्गवों से कहा—त्रिशूलधारी महेश शङ्कर के दर्शन से वस्तुतः (आप लोग) अपने आपको कृतार्थ समझें । (४२,४३)

सम्मुख स्थित प्रत्यक्ष देवेश से (आपलोग) पूछें। मेरी उपस्थिति में ही वे यथावत् (ज्ञान का) वर्णन करने में समर्थ हैं । (४४)

विष्णु का वचन सुनने के उपरान्त वृषभध्वज को प्रणाम कर सनत्कुमार इत्यादि ने महेश्वर से पूछा । (४५)

इसी बीच ईश्वर के उपयुक्त आकाश से एक अचिन्त्नीय दिव्य विमल आसन प्रकट हुआ । (४६)

महेश्वर देव विष्णु के सहित उस पर बैठकर विश्व को तेज से पूरित करने लगे । विश्व को अपने तेज से पूरित करते हुए विश्वकर्त्ता योगात्मा देव महेश्वर, विष्णु सहित उस (आसन) पर बैठ गये । (४७)

तदनन्तर ब्रह्मवादियों ने उस विमल आसन पर (आसीन) प्रकाशमान देवाधिदेव शंकर को देखा । (४८)

योगयुक्त (लोग) अपनी आस्था में जिन योगस्वरूप ईश्वर का वर्णन करते हैं (मुनियों ने) उन अनुपम तेजस्वी शान्त शिव को देखा । (४९)

(उनलोगों ने) आसन पर आसीन उन भूतों के ईश को देखा जिनसे सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है एवं जिनमें (सभी का) लय होता है । (५०)

(उन लोगों ने) वासुदेव सहित उन परमेश्वर का दर्शन किया जिनके भीतर यह संपूर्ण संसार है एवं यह जगत् जिससे अभिन्न है । (५१)

(मुनियों के) पूछने पर परमेश्वर भगवान पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) की ओर देखकर मुनियों से अपने श्रेष्ठ योग का वर्णन करने लगे । (५२)

हे पाप रहित सभी (मुनिजन) ! आपलोग सुनें, मैं ईश्वर द्वारा कहे गये का वर्णन यथोचित रूप से कर रहा हूँ । (५३)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत) प्रथम अध्याय समाप्त—१.

२

ईश्वर उवाच ।

अवाच्यमेतद् विज्ञानमात्मगुह्यं सनातनम् ।
यन्न देवा विजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः ।।१
इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्रह्मभूता द्विजोत्तमाः ।
न संसारं प्रपद्यन्ते पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः ।।२
गुह्याद् गुह्यतमं साक्षाद् गोपनीयं प्रयत्नतः ।
वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माकं ब्रह्मवादिनाम् ।।३
आत्मा यः केवलः स्वस्थः शान्तः सूक्ष्मः सनातनः ।
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ।।४
सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः ।
स कालोऽग्निस्तदव्यक्तं स एवेदमिति श्रुतिः ।।५
अस्माद् विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते ।
स मायी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः ।।६
न चाप्ययं संसरति न च संसारयेत् प्रभुः ।
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः ।।७
न प्राणो न मनोऽव्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च ।
न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्त्ता न वागपि ।।८
न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः ।
न कर्त्ता न च भोक्ता वा न च प्रकृतिपूरुषौ ।
न माया नैव च प्राणश्चैतन्यं परमार्थतः ।।९
यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते ।
तद्वदैक्यं न संबन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः ।।१०
छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ ।
तद्वत् प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौ परमार्थतः ।।११
यद्यात्मा मलिनोऽस्वस्थो विकारी स्यात् स्वभावतः ।
नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि ।।१२

२

ईश्वर ने कहा—हे द्विजो ! देवता लोग यत्न करने पर भी जिसे नहीं जान पाते ऐसा मेरा यह रहस्यमय सनातन विज्ञान (किसी को) बतलाने योग्य नहीं है। (१)

इस ज्ञान का आश्रय ग्रहण कर श्रेष्ठ द्विजों ने ब्रह्म-भाव की प्राप्ति की है। (इस ज्ञान के फलस्वरूप) पूर्वकाल के भी ब्रह्मवादियों को संसार में नहीं आना पड़ता। (२)

गुह्य से भी अत्यन्त गुह्य इस साक्षात् ज्ञान को प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिए। आज मैं भक्तियुक्त आप ब्रह्मवादियों को (वह ज्ञान) बतलाऊँगा। (३)

जो आत्मा अद्वितीय, स्वस्थ, शान्त, सूक्ष्म, सनातन, सभी का अन्तर्यामी, साक्षात् चिन्मात्र एवं तमोगुण से परे रहने वाला है। (४)

वही (आत्मा) अन्तर्यामी, पुरुष, प्राण महेश्वर, काल, अग्नि एवं वही अव्यक्त है। ऐसा श्रुति का मत है। (५)

विश्व इसीसे उत्पन्न एवं इसी में लीन होता है। वह मायी माया से युक्त होकर विविध शरीरों को उत्पन्न करता है। (६)

यह प्रभु आत्मा गतिशील एवं गतिप्रेरक नहीं हैं। यह पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश नहीं है। (७)

यह प्राण, मन, अव्यक्त, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, अहङ्कारी एवं वाणी भी नहीं है। (८)

हे द्विजोत्तमो ! (यह आत्मा) हाथ, पैर, गुदा एवं लिङ्ग भी नहीं है। यह कर्त्ता, भोक्ता, प्रकृति अथवा पुरुष भी नहीं हैं। यह माया, प्राण एवं परमार्थतः चैतन्य भी नहीं है। (९)

जिस प्रकार प्रकाश एवं अन्धकार का ऐक्य नहीं हो सकता उसी प्रकार प्रपञ्च और परमात्मा का भी संबन्ध नहीं हो सकता। (१०)

लोक में जैसे छाया एवं धूप एक दूसरे से विलक्षण हैं उसी प्रकार परमार्थतः प्रपञ्च और पुरुष भी परस्पर भिन्न हैं। (११)

यदि आत्मा स्वभावतः मलिन, अस्वस्थ एवं विकारी होता तो उसकी मुक्ति सैकड़ों जन्मान्तरों में भी नहीं होती। (१२)

पश्यन्ति मुनयो युक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः ।
विकारहीनं निर्दुःखमानन्दात्मानमव्ययम् ।।१३
अहं कर्त्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मतिः।
सा चाहंकारकर्तृत्वादात्मन्यारोप्यते जनैः ।।१४
वदन्ति वेदविद्वांसः साक्षिणं प्रकृतेः परम् ।
भोक्तारमक्षरं शुद्धं सर्वत्र समवस्थितम् ।।१५
तस्मादज्ञानमूलो हि संसारः सर्वदेहिनाम् ।
अज्ञानादन्यथा ज्ञानं तच्च प्रकृतिसंगतम् ।।१६
नित्योदितः स्वयं ज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः ।
अहंकाराविवेकेन कर्त्ताहमिति मन्यते ।।१७
पश्यन्ति ऋषयोऽव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधानं प्रकृतिं बुद्ध्वा कारणं ब्रह्मवादिनः ।।१८
तेनायं संगतो ह्यात्मा कूटस्थोऽपि निरञ्जनः ।
स्वात्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्येत तत्त्वतः ।।१९

योगयुक्त मुनिजन परमार्थतः अपने विकारहीन, निर्द्वन्द्व आनन्दस्वरूप एवं अव्यय आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। (१३)

मैं कर्त्ता, सुखी, दुःखी, कृश एवं स्थूल हूँ। (इस प्रकार की भावना करने वाली) जो मति है उसे मनुष्यों ने अहङ्कारवश आत्मा में आरोपित किया है। (१४)

वेदों के विद्वान् लोग (आत्मा को) साक्षी, प्रकृति से परे, भोक्ता, अक्षर, शुद्ध एवं सर्वत्र समभाव से स्थित कहते हैं। (१५)

अतएव सभी प्राणियों का यह संसार अज्ञानमूलक है। अज्ञान से अन्यथाज्ञान होता है एवं वही प्रकृतिसङ्गत होता है। (१६)

अहङ्कारमूलक अविवेक के कारण स्वयंज्योति, सर्वव्यापक एवं परम पुरुष यह मानता है कि मैं कर्त्ता हूँ। (१७)

ब्रह्मवादी ऋषि लोग प्रधान प्रकृति स्वरूप कारण को जानकर सत् एवं असत् स्वरूप अव्यक्त एवं नित्य (तत्त्व) का साक्षात्कार करते हैं। (१८)

कूटस्थ एवं निरञ्जन होते हुए भी यह आत्मा उस (प्रधान तत्त्व) से सङ्गत होकर यथार्थ रूप से स्वात्मस्वरूप अक्षर ब्रह्म का ज्ञान नहीं कर पाता। (१९)

अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद् दुःखं तथेतरम् ।
रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनिबन्धनाः ।।२०
कर्मण्यस्य भवेद् दोषः पुण्यापुण्यमिति स्थितिः ।
तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः ।।२१
नित्यः सर्वत्रगो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः ।
एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः ।।२२
तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः ।
भेदो व्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया ।।२३
यथा हि धूमसंपर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत् ।
अन्तःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्न लिप्यते ।।२४
यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोऽमलः ।
उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते ।।२५
ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद् विचक्षणाः ।
अर्थस्वरूपमेवाज्ञाः पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः ।।२६

अनात्मा में आत्मविषयक विज्ञान से ही दुःख होता है। इसी प्रकार भ्रान्ति के कारण ही सभी राग एवं द्वेष आदिक दोष उत्पन्न होते हैं। (२०)

इसके कर्म में दोष रहता है (इन्हीं कर्मों के कारण) पुण्य और पाप होते हैं। उन्हीं के कारण सभी के देह की उत्पत्ति होती है। (२१)

नित्य सर्वव्यापी, कूटस्थ एवं दोषवर्जित अद्वितीय आत्मा शक्ति के स्वरूप मायावश भिन्न (प्रतीत) होता है। स्वभावतः उसमें भेद नहीं होता है। (२२)

अतएव मुनिजन आत्मा को परमार्थतः अद्वितीय कहते हैं। व्यक्त के स्वभाववश उत्पन्न भेद आत्माश्रित माया है। (२३)

धूम के सम्पर्क से जैसे आकाश मलिन नहीं होता उसी प्रकार अन्तःकरण से उत्पन्न होने वाले भावों से आत्मा लिप्त नहीं होता। (२४)

एकमात्र शुद्ध स्फटिक प्रस्तर जैसे अपनी प्रभा से प्रकाशित होता है उसी प्रकार उपाधि रहित शुद्ध आत्मा प्रकाशित होता है। (२५)

विद्वज्जन इस जगत् को ज्ञानस्वरूप ही कहते हैं। किन्तु कुत्सित ज्ञानवाले दूसरे लोग इसे अर्थ स्वरूप मानते हैं। (२६)

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः ।
दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्भ्रान्तिदृष्टिभिः ।।२७
यथा संलक्ष्यते रक्तः केवलः स्फटिको जनैः ।
रक्तिकाद्युपधानेन तद्वत् परमपूरुषः ।।२८
तस्मादात्माऽक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽव्ययः ।
उपासितव्यो मन्तव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः ।।२९
यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा ।
योगिनोऽव्यवधानेन तदा संपद्यते स्वयम् ।।३०
यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म संपद्यते तदा ।।३१
यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति ।
एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः ।।३२
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः ।
तदाऽसावमृतीभूतः क्षेमं गच्छति पण्डितः ।।३३

भ्रान्तदृष्टियों वाले पुरुष स्वभावतः कूटस्थ, निर्गुण, व्यापी एवं चैतन्य आत्मा को अर्थस्वरूप देखते हैं। (२७)

जिस प्रकार गुञ्जा इत्यादि रक्तवर्ण की उपाधि के कारण शुद्ध स्फटिक प्रस्तर रक्तवर्ण का दिखलाई पड़ता है उसी प्रकार परम पुरुष भी (मायोपहित प्रतीत होता) है। (२८)

अतएव मोक्षार्थियों को अक्षर, शुद्ध नित्य, सर्वव्यापी एवं अव्यय (आत्मा) की उपासना, उसका श्रवण एवं मनन करना चाहिए। (२९)

श्रद्धावान् योगी के मन में जब सदा सर्वव्यापी चैतन्य का प्रकाश होता है उस समय (वह योगी) व्यवधानरहित आत्मभाव प्राप्त कर लेता है। (३०)

(योगी) जिस समय अपने आत्मा में ही सभी भूतों को एवं सभी भूतों में अपने आत्मा को देखता है उस समय उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है। (३१)

योगी जब समाधिस्थ होकर सभी भूतों को नहीं देखता तब उस पर केवल तत्व से तादात्म्य की स्थिति प्राप्त हो जाती है। (३२)

इस (योगी) के हृदय में स्थित सभी कामनाएँ जब समाप्त हो जाती हैं उस समय वह पण्डित अमृत स्वरूप होकर कल्याण प्राप्त करता है। (३३)

(योगी) जब समस्त भिन्न-भिन्न भूतों की एक

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ।।३४
यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः ।
मायामात्रं जगत् कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतः ।।३५
यदा जन्मजरादुःखव्याधीनामेकभेषजम् ।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः ।।३६
यथा नदीनदा लोके सागरेणैकतां ययुः ।
तद्वदात्माऽक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत् ।।३७
तस्माद् विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संसृतिः ।
अज्ञानेनावृतं लोको विज्ञानं तेन मुह्यति ।।३८
तज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम् ।
अज्ञानमितरत् सर्वं विज्ञानमिति मे मतम् ।।३९
एतद् वः परमं सांख्यं भाषितं ज्ञानमुत्तमम् ।
सर्ववेदान्तसारं हि योगस्तत्रैकचित्तता ।।४०

(तत्व) में स्थिति एवं उसी से उनके विस्तार का होना देखता है उस समय उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। (३४)

(योगी) जब पारमार्थिक रूप में केवल अद्वितीय आत्मा का साक्षात्कार करता एवं सम्पूर्ण जगत् को मायामात्र समझने लगता है उस समय वह शान्त हो जाता है। (३५)

योगी को जब जन्म, ज़रा, दुःख एवं व्याधियों की एकमात्र औषध स्वरूप अद्वितीय ब्रह्मविज्ञान की प्राप्ति हो जाती है उस समय वह शिव बन जाता है। (३६)

संसार में जिस प्रकार नद एवं नदियाँ सागर से एकता प्राप्त करती हैं उसी प्रकार आत्मा निष्फल अक्षर (ब्रह्म) से एकत्व प्राप्त करता है। (३७)

अतएव विज्ञान का ही अस्तित्व है। प्रपञ्च एवं संसृति अर्थात् संसार एवं उसकी सिद्धि का कोई अस्तित्व नहीं है। विज्ञान अज्ञान से आवृत रहता है। उसी से संसार मोहित होता है। (३८)

वह विज्ञान निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प एवं अव्यय है। अज्ञान से भिन्न सभी विज्ञान है ऐसा मेरा मत है। (३९)

आप लोगों को यह सांख्य नामक उत्तम ज्ञान बतलाया गया। सम्पूर्ण वेदान्त का सार है। इसमें चित्त की एकाग्रता का होना योग कहलाता है। (४०)

योगात् संजायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्त्तते ।
योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित् ॥४१
यदेव योगिनो यान्ति सांख्यैस्तदधिगम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स तत्त्ववित् ॥४२
अन्ये च योगिनो विप्रा ऐश्वर्यासक्तचेतसः ।
मज्जन्ति तत्र तत्रैव न त्वात्मैषामिति श्रुतिः ॥४३
यत्तत् सर्वगतं दिव्यमैश्वर्यमचलं महत् ।
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात् ॥४४
एष आत्माऽहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः ।
कीर्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः ॥४५
सर्वकामः सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोऽमरः ।
सर्वतः पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातनः ॥४६
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः ।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्णः शृणोम्यहम् ॥४७
वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन ।
प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः ॥४८
पश्यन्ति ऋषयो हेतुमात्मनः सूक्ष्मदर्शिनः ।
निर्गुणामलरूपस्य यत्तदैश्वर्यमुत्तमम् ॥४९
यन्न देवा विजानन्ति मोहिता मम मायया ।
वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः ॥५०
नाहं प्रशास्ता सर्वस्य मायातीतः स्वभावतः ।
प्रेरयामि तथापीदं कारणं सूरयो विदुः ॥५१
यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिनः ।
प्रविष्टा मम सायुज्यं लभन्ते योगिनोऽव्ययम् ॥५२
तेषां हि वशमापन्ना माया मे विश्वरूपिणी ।
लभन्ते परमां शुद्धिं निर्वाणं ते मया सह ॥५३

योग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है एवं ज्ञान से योग की प्रवृत्ति होती है। योग एवं ज्ञान से युक्त (पुरुष) को कुछ प्राप्त करना (शेष) नहीं रह जाता। (४१)

योगी लोग जहाँ जाते हैं सांख्यानुयायी भी वहीं जाते हैं। सांख्य एवं योग को जो एक रूप से जानता है वह तत्त्वज्ञानी होता है। (४२)

हे विप्रो! ऐश्वर्य में आसक्त अन्य योगीजन वहीं डूबते रहते हैं, किन्तु उन्हें आत्मा की उपलब्धि नहीं होती ऐसा श्रुति का मत है। (४३)

किन्तु, ज्ञानयोग से युक्त (व्यक्ति) देहान्त होने पर सर्वव्यापक, दिव्य, अचल एवं महान् ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। (४४)

समस्त वेदों में सर्वात्मा एवं सर्वतोमुख के रूप में प्रतिपादित मायावी, अव्यक्त, परमेश्वर स्वरूप मैं ही यह आत्मा हूँ। (४५)

सनातन अन्तर्यामी मैं सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर, एवं सभी ओर हाथ एवं पैर वाला हूँ। (४६)

हाथ एवं पैर के बिना मैं गति करने एवं ग्रहण करने वाला हूँ। (मैं सभी प्राणियों के) हृदय में स्थित हूँ। मैं विना नेत्रों के देखता एवं विना कानों के सुनता भी हूँ। (४७)

मैं इस सम्पूर्ण (जगत्) को जानता हूँ। किन्तु मुझे कोई नहीं जानता। तत्त्वदर्शी लोग मुझे अद्वितीय महान् पुरुष कहते हैं। (४८)

सूक्ष्मदर्शी ऋषिगण निर्गुण एवं मलरहित आत्मा के हेतुस्वरूप श्रेष्ठ ऐश्वर्य का साक्षात्कार करते हैं। (४९)

हे ब्रह्मवादियों! मेरी माया से मोहित देवगण जो नहीं जानते मैं (वही तत्व) आप लोगों से कह रहा हूँ। आपलोग एकाग्र होकर सुनें। (५०)

मायातीत मैं स्वभावतः सबका प्रशासक नहीं हूँ। तथापि मैं इस (जगत्) को प्रेरित करता हूँ। विद्वान् लोग इसका कारण जानते हैं। (५१)

तत्त्वदर्शी योगीजन मेरी सर्वव्यापक गुह्यतम देह में प्रविष्ट होते हैं। मेरा अविनश्वर सायुज्य (नामक मोक्ष) प्राप्त होता है। (५२)

मेरी विश्वरूपिणी माया उनके वश में होती है। वे परम शुद्धि एवं मेरे साथ निर्वाण प्राप्त करते हैं। (५३)

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ।
प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद् वेदानुशासनम् ।।५४

नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दातव्यं ब्रह्मवादिभिः ।
मदुक्तमेतद् विज्ञानं सांख्ययोगसमाश्रयम् ।।५५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

३

ईश्वर उवाच ।

अव्यक्तादभवत् कालः प्रधानं पुरुषः परः ।
तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्माद् ब्रह्ममयं जगत् ।।१

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।२

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वाधारं सदानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम् ।।३

सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम् ।
निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामृतम् ।।४

अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
निर्गुणं परमं व्योम तज्ज्ञानं सूरयो विदुः ।।५

स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यन्तरः परः ।
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ।।६

मया ततमिदं विश्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेद स वेदवित् ।।७

प्रधानं पुरुषं चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम् ।
तयोरनादिरुद्दिष्टः कालः संयोजकः परः ।।८

मेरे अनुग्रह से सैकड़ों करोड़ों कल्पों में भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता। हे योगीन्द्रों! यही वेदों का अनुशासन है। (५४)

ब्रह्मवादि लोग मेरा कहा यह योगयुक्त सांख्य नामक विज्ञान (अपने) पुत्रों, शिष्यों एवं योगियों के अतिरिक्त अन्य किसी को न प्रदान करें। (५५)

छः सहस्र श्लोकों वाले श्री कूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत) द्वितीय अध्याय समाप्त—२.

३

ईश्वर ने कहा—अव्यक्त से काल, प्रधान और परम पुरुष की उत्पत्ति हुई। उन (कालादि) से इस समस्त (जगत्) की उत्पत्ति हुई है। अतएव जगत् ब्रह्ममय है। (१)

जिसके हाथ और पैर का प्रसार सर्वत्र है जिसके नेत्र, मस्तक, मुख एवं कर्ण सर्वत्र वर्तमान है एवं जो समस्त (विश्व) को आवृत कर स्थित है (वही ब्रह्म) है। (२)

समस्त इन्द्रियों के गुणों के आभासस्वरूप सभी इन्द्रियों रहित, सभी के आधार स्वरूप, द्वैत रहित, सत् एवं आनन्द स्वरूप, अव्यक्त, समस्त उपमाओं से रहित प्रमाणों द्वारा ज्ञात न होने योग्य, निर्विकल्प, निराभास, सभी के आवास स्वरूप, उत्कृष्ट अमृतात्मक, अभिन्न, भिन्न रूप से स्थित, शाश्वत, ध्रुव, अव्यय, निर्गुण एवं परम व्योम एवं ज्ञान स्वरूप ब्रह्म को सूरी अर्थात् विद्वान् लोग जानते हैं। (३-५)

वह सभी प्राणियों की आत्मा एवं बाहर और भीतर व्याप्त रहने वाला परम तत्त्व है। मैं वही सर्वव्यापी ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हूँ। (६)

मैंने अव्यक्त रूप से स्थावर-जंगात्मक इस विश्व का विस्तार किया है। सभी प्राणी मुझमें स्थित हैं। जो उसे जानता है वह वेदज्ञ होता है। (७)

प्रधान और पुरुष नामक दो तत्त्व कहे गए हैं। अनादि उत्कृष्ट काल को उनका संयोजक कहा गया है। (८)

अयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम् ।
तदात्मकं तदन्यत् स्यात् तद्रूपं मामकं विदुः ॥९
महदाद्यं विशेषान्तं संप्रसूतेऽखिलं जगत् ।
या सा प्रकृतिरुद्दिष्टा मोहिनी सर्वदेहिनाम् ॥१०
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते यः प्राकृतान् गुणान् ।
अहंकारविमुक्तत्वात् प्रोच्यते पञ्चविंशकः ॥११
आद्यो विकारः प्रकृतेर्महानात्मेति कथ्यते ।
विज्ञानशक्तिर्विज्ञाता ह्यहंकारस्तदुत्थितः ॥१२
एक एव महानात्मा सोऽहंकारोऽभिधीयते ।
स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः ॥१३
तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ।
स विज्ञानात्मकस्तस्य मनः स्यादुपकारकम् ॥१४
तेनाविवेकतस्तस्मात् संसारः पुरुषस्य तु ।
स चाविवेकः प्रकृतौ सङ्गात् कालेन सोऽभवत् ॥१५

अनादि एवं अनन्त ये तीनों तत्त्व अव्यक्त में स्थित हैं। (किन्तु, पण्डितजन) मेरे तदात्मक एवं तद्भिन्न रूप को जानते हैं। (९)

जो महत् (तत्त्व) से विशेष पर्यन्त समस्त जगत् को उत्पन्न करती है वह सभी प्राणियों को मोहित करने वाली प्रकृति कही जाती है। (१०)

जो प्रकृतिस्थ होकर प्रकृति के गुणों का भोग करता है वह पुरुष है। अहङ्कार से विमुक्त होने के कारण उसे पच्चीसवाँ (तत्त्व) कहा जाता है। (११)

प्रकृति के आदि विकार को महान् आत्मा कहते हैं। किन्तु विज्ञान की शक्ति से सम्पन्न विज्ञाता अहङ्कार उससे उत्पन्न होता है। (१२)

एक मात्र महान् ही आत्मा है। उसे अहङ्कार कहते हैं। तत्त्वचिन्तक लोग उसे जीव और अन्तरात्मा कहते हैं। (१३)

वह (अहङ्कार) जीवन में सम्पूर्ण सुख और दुःख का ज्ञान कराता है। वह विज्ञानस्वरूप है। मन (उस अहङ्कार का) उपकारक होता है। (१४)

उसके कारण अविवेक तथा अविवेक होने से पुरुष का संसार (संघटित) होता है। प्रकृति में काल का सम्पर्क होने से उस अविवेक की उत्पत्ति हुई। (१५)

कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ।
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद् वशे ॥१६
सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः ।
प्रोच्यते भगवान् प्राणः सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः ॥१७
सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः ।
मनसश्चाप्यहंकारमहंकारान्महान् परः ॥१८
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषाद् भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥१९
प्राणात् परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः ।
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ।
नास्ति मत्तः परं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते ॥२०
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम् ।
ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम् ॥२१

काल प्राणियों की सृष्टि एवं काल ही प्रजा का संहार करता है। सभी काल के वशवर्ती हैं, किन्तु काल किसी के वश में नहीं हैं। (१६)

वह सनातन (काल) भीतर प्रविष्ट होकर इस सम्पूर्ण (विश्व का) नियन्त्रण करता है। (इस काल को) भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ एवं पुरुषोत्तम कहते हैं। (१७)

विद्वान् लोग मन को सभी इन्द्रियों से उत्कृष्ट कहते हैं। मन से (उत्कृष्ट) अहङ्कार एवं अहङ्कार से उत्कृष्ट महान् होता है। (१८)

महान् से उत्कृष्ट अव्यक्त एवं अव्यक्त से उत्कृष्ट पुरुष होता है। पुरुष से उत्कृष्ट भगवान् प्राण हैं। सम्पूर्ण जगत् उसी (प्राण) का है। (१९)

प्राण से उत्कृष्ट व्योम है एवं व्योम से उत्कृष्ट ईश्वर अग्नि है। मैं सर्वव्यापी ज्ञानस्वरूप शान्त परमेश्वर ब्रह्म हूँ। मेरी अपेक्षा उत्कृष्टतर कोई तत्त्व नहीं है। मेरा ज्ञान प्राप्त करने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है। (२०)

इस जगत् में मुझ व्योमस्वरूप अव्यक्त महेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई स्थावर जङ्गमात्मक नित्य तत्त्व नहीं है। (२१)

सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत् ।
मायी मायामयो देवः कालेन सह सङ्गतः ॥२२

मत्सन्निधावेष कालः करोति सकलं जगत् ।
नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद् वेदानुशासनम् ॥२३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

४

ईश्वर उवाच ।

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः ।
माहात्म्यं देवदेवस्य येनेदं संप्रवर्त्तते ॥१
नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया ।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥२
अहं हि सर्वभावानामन्तस्तिष्ठामि सर्वगः ।
मां सर्वसाक्षिणं लोको न जानाति मुनीश्वराः ॥३
यस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वान्तरः परः ।
सोऽहं धाता विधाता च कालोऽग्निर्विश्वतोमुखः ॥४
न मां पश्यन्ति मुनयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः ।
ब्रह्मा च मनवः शक्रो ये चान्ये प्रथितौजसः ॥५
गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम् ।
यजन्ति विविधैरग्निं ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः ॥६
सर्वे लोका नमस्यन्ति ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम् ॥७
अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः ।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंस्थितः ॥८
मां पश्यन्तीह विद्वांसो धार्मिका वेदवादिनः ।
तेषां सन्निहितो नित्यं ये भक्त्या मामुपासते ॥९

काल के संसर्ग से मायी एवं मायामय देवस्वरूप मैं ही सदा सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि और संहार करता हूँ। (२२)

मेरे सन्निधान में यह काल सम्पूर्ण जगत् की रचना करता है। वेदों का कथन है कि अनन्तात्मा उस (काल) को (इस कार्य में) नियोजित करता है। (२३)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत) तृतीय अध्याय समाप्त—३.

४

ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मवादियो ! आपलोग एकाग्रमन से सुनें। मैं देवाधिदेव के माहात्म्य का वर्णन कर रहा हूँ, जिससे सभी की प्रवृत्ति होती है। (१)

मनुष्य श्रेष्ठ भक्ति के विना अनेक प्रकार के तप, दान एवं यज्ञों द्वारा मुझे नहीं जान सकता। (२)

मैं व्यापक रूप से सभी पदार्थों के भीतर स्थित रहता हूँ। हे मुनीश्वरो ! लौकिक प्राणी मुझ सर्वसाक्षी को नहीं जानते। (३)

जिसके भीतर यह सम्पूर्ण (विश्व) स्थित है एवं जो परम तत्त्व सभी के भीतर वर्तमान है वही मैं धाता, विधाता, काल, अग्नि एवं सभी ओर मुख वाला हूँ। (४)

सभी मुनिजन, देवता, ब्रह्मा, मनु, इन्द्र एवं अन्य अतितेजस्वी लोग भी मुझे नहीं देख पाते। (५)

वेद निरन्तर मुझ अद्वितीय परमेश्वर की स्तुति करते हैं। ब्राह्मण अनेक प्रकार के वैदिक यज्ञों द्वारा अग्नि स्वरूप मेरा पूजन करते हैं। (६)

लोकपितामह ब्रह्मा एवं सम्पूर्ण लोक मुझे नमस्कार करते हैं। योगी लोग (मुझ) भूताधिपति ईश्वर देव का ध्यान करते रहते हैं। (७)

सर्वात्मा एवं सर्वव्यापी मैं ही सभी देवों का शरीर ग्रहण कर सम्पूर्ण हवियों का भोग करने वाला एवं सभी फल को देने वाला हूँ। (८)

वेदवादी धार्मिक विद्वान् मेरा साक्षात्कार करते हैं। जो भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं (मैं) नित्य उनके निकट रहता हूँ। (९)

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते ।
तेषां ददामि तत् स्थानमानन्दं परमं पदम् ॥१०
अन्येऽपि ये विकर्मस्थाः शूद्राद्या नीचजातयः ।
भक्तिमन्तः प्रमुच्यन्ते कालेन मयि संगताः ॥११
न मद्भक्ता विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः ।
आदावेतत् प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति ॥१२
यो वै निन्दति तं मूढो देवदेवं स निन्दति ।
यो हि तं पूजयेद् भक्त्या स पूजयति मां सदा ॥१३
पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात् ।
यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः ॥१४
अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
विधाय दत्तवान् वेदानशेषानात्मनिःसृतान् ॥१५
अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः ।
धार्मिकाणां च गोप्ताऽहं निहन्ता वेदविद्विषाम् ॥१६
अहं वै सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह ।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः ॥१७
अहमेव हि संहर्त्ता स्रष्टाऽहं परिपालकः ।
मायावी मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी ॥१८
ममैव च परा शक्तिर्या सा विद्येति गीयते ।
नाशयामि तया मायां योगिनां हृदि संस्थितः ॥१९
अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ।
आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च ॥२०
एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधं जगत् ।
आस्थाय ब्रह्मणो रूपं मन्मयी मदधिष्ठिता ॥२१
अन्या च शक्तिर्विपुला संस्थापयति मे जगत् ।
भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मयः ॥२२
तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलं जगत् ।
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी ॥२३

धार्मिक ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य जन मेरी उपासना करते हैं। (मैं) उन्हें उत्कृष्ट आनन्दमय स्थान प्रदान करता हूँ। (१०)

शूद्रादि नीच जातियों के अन्य लोग भी जो नीच कर्मों में स्थित हैं भक्तियुक्त होने पर मुक्त होते हैं और वे यथा समय मुझ में लीन हो जाते हैं। (११)

मेरे भक्तों का विनाश नहीं होता। मेरे भक्त निष्पाप हो जाते हैं। प्रारम्भ में ही मैंने प्रतिज्ञा की है कि मेरे भक्त नष्ट नहीं होते। (१२)

जो उस (भक्त) की निन्दा करता है वह मूढ़ देवाधिदेव का निन्दक होता है। जो भक्तिपूर्वक उस (भक्त) की पूजा करता है वह सदा मेरी पूजा करता है। (१३)

मेरी आराधना के लिए जो नियमपूर्वक पत्र, पुष्प, फल एवं जल प्रदान करता है वह मेरा भक्त एवं प्रिय होता है। (१४)

मैंने ही संसार (की सृष्टि के) प्रारम्भ में परमेष्ठी ब्रह्मा की सृष्टि की एवं (उन्हें) आत्म-निःसृत वेदों को प्रदान किया। (१५)

मैं ही सभी योगियों का अविनश्वर गुरु, धार्मिकों का रक्षक एवं वेदों के विद्वेषियों को नष्ट करने वाला हूँ। (१६)

मैं ही योगियों को समस्त संसार से मुक्त करने वाला हूँ। मैं ही संसार का कारण एवं सम्पूर्ण संसार से विवर्जित हूँ। (१७)

मैं ही सृष्टि, पालन एवं संहार करने वाला मायावी हूँ। मेरी शक्ति माया है। (यह मेरी) माया लोक को विमोहित करती है। (१८)

मेरी ही पराशक्ति को विद्या कहते हैं। (मैं) योगियों के हृदय में रहते हुए उस माया को नष्ट करता हूँ (१९)

मैं ही सम्पूर्ण शक्तियों का प्रवर्त्तक और निवर्त्तक हूँ। मैं सभी का आधार और अमृत का निधान हूँ। (२०)

मुझसे अधिष्ठित एवं मेरी स्वरूपभूता सर्वान्तर्गामिनी मेरी एक शक्ति ब्रह्मा का रूप धारण कर विविध जगत् की सृष्टि करती है। (२१)

अनन्त, जगन्मय, जगन्नाथ, नारायण का रूप धारण कर मेरी अन्य विपुल शक्ति जगत् की प्रतिष्ठा (रक्षा) करती है। (२२)

रुद्रस्वरूपिणी मेरी काल नामक तीसरी महती तामसी शक्ति सम्पूर्ण जगत् का संहार करती है। (२३)

ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे ।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे ।।२४
सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम ।
यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ।।२५
अन्ये च ये त्रयो भक्ता मदाराधनकाङ्क्षिणः ।
तेऽपि मां प्राप्नुवन्त्येव नावर्त्तन्ते च वै पुनः ।।२६
मया ततमिदं कृत्स्नं प्रधानपुरुषात्मकम् ।
मय्येव संस्थितं विश्वं मया संप्रेर्यते जगत् ।।२७
नाहं प्रेरयिता विप्राः परमं योगमाश्रितः ।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नमेतद्यो वेद सोऽमृतः ।।२८
पश्याम्यशेषमेवेदं वर्त्तमानं स्वभावतः ।
करोति कालो भगवान् महायोगेश्वरः स्वयम् ।।२९
योगः संप्रोच्यते योगी माया शास्त्रेषु सूरिभिः ।
योगेश्वरोऽसौ भगवान् महादेवो महान् प्रभुः ।।३०
महत्त्वं सर्वतत्त्वानां परत्वात् परमेष्ठिनः ।
प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मा महान् ब्रह्ममयोऽमलः ।।३१
यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम् ।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।।३२
सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रितः ।
नृत्यामि योगी सततं यस्तद् वेद स वेदवित् ।।३३
इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निष्ठितम् ।
प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिकायाहिताग्नये ।।३४

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

कुछ लोग ध्यान द्वारा, अन्य लोग ज्ञान द्वारा, दूसरे लोग भक्तियोग से एवं अन्य कुछ लोग कर्मयोग के द्वारा मेरा साक्षात्कार करते हैं। (२४)

जो किसी अन्य प्रकार से नहीं अपितु ज्ञान द्वारा नित्य मेरी आराधना करता है वही सभी भक्तों में मेरा सर्वाधिक प्रिय भक्त होता है। (२५)

मेरी आराधना करनेवाले अन्य भी जो तीन (प्रकार के) भक्त हैं वे भी मुझे प्राप्त करते हैं एवं उनका पुनर्जन्म नहीं होता। (२६)

प्रधान एवं पुरुष स्वरूप यह सम्पूर्ण विश्व मेरे द्वारा व्याप्त है। यह विश्व मुझ में ही स्थित है। मैं जगत् को प्रेरित करता हूँ। (२७)

हे विप्रो ! श्रेष्ठ योग का आश्रय करने वाला मैं प्रेरक नहीं हूँ। किन्तु मैं सम्पूर्ण जगत् को प्रेरित करता हूँ। इस (रहस्य) को जो जानता है वह अमर हो जाता है। (२८)

(मैं) इस सम्पूर्ण (विश्व) को स्वभावतः प्रवृत्त हुआ मानता हूँ। महायोगेश्वर भगवान् काल स्वयं (जगत् की) सृष्टि करते हैं। (२९)

विद्वज्जन शास्त्रों में जिसे योग, योगी एवं माया कहते हैं वही प्रभु महादेव भगवान् महायोगेश्वर हैं। (३०)

परमेष्ठी की उत्कृष्टता के कारण सम्पूर्ण तत्त्वों के महत्त्व को महाब्रह्ममय निर्मल भगवान् ब्रह्मा कहते हैं। (३१)

जो महायोगीश्वरों के ईश्वर मुझको इस प्रकार जानता है वह निस्सन्देह निर्विकल्प (समाधि) योग से युक्त होता है। (३२)

परमानन्द का आश्रयण करने वाला वही मैं प्रेरणा करने वाला देवता हूँ। निरन्तर मैं योगी नृत्य करता रहता हूँ। जो यह जानता है वह वेदवित् है। (३३)

सभी वेदों में अवस्थित यह अत्यन्त गुह्य ज्ञान है। यह ज्ञान प्रसन्नचित्त, धार्मिक एवं अग्निहोत्री को प्रदान करना चाहिए। (३४)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत) चौथा अध्याय समाप्त—४.

५

व्यास उवाच ।

एतावदुक्त्वा भगवान् योगिनां परमेश्वरः ।
ननर्त्त परमं भावमैश्वरं संप्रदर्शयन् ॥१
तं ते ददृशुरीशानं तेजसां परमं निधिम् ।
नृत्यमानं महादेवं विष्णुना गगनेऽमले ॥२
यं विदुर्योगतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः ।
तमीशं सर्वभूतानामाकाशे ददृशुः किल ॥३
यस्य मायामयं सर्वं येनेदं प्रेर्यते जगत् ।
नृत्यमानः स्वयं विप्रैर्विश्वेशः खलु दृश्यते ॥४
यत् पादपङ्कजं स्मृत्वा पुरुषोऽज्ञानजं भयम् ।
जहाति नृत्यमानं तं भूतेशं ददृशुः किल ॥५
यं विनिद्रा जितश्वासाः शान्ता भक्तिसमन्विताः ।
ज्योतिर्मयं प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल ॥६
योऽज्ञानान्मोचयेत् क्षिप्रं प्रसन्नो भक्तवत्सलः ।
तमेव मोचकं रुद्रमाकाशे ददृशुः परम् ॥७
सहस्रशिरसं देवं सहस्रचरणाकृतिम् ।
सहस्रबाहुं जटिलं चन्द्रार्धकृतशेखरम् ॥८
वसानं चर्म वैयाघ्रं शूलासक्तमहाकरम् ।
दण्डपाणिं त्रयीनेत्रं सूर्यसोमाग्निलोचनम् ॥९
ब्रह्माण्डं तेजसा स्वेन सर्वमावृत्य च स्थितम् ।
दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१०
अण्डस्थं चाण्डबाह्यस्थं बाह्यमभ्यन्तरं परम् ।
सृजन्तमनलज्वालं दहन्तमखिलं जगत् ।
नृत्यन्तं ददृशुर्देवं विश्वकर्माणमीश्वरम् ॥११

५

व्यास ने कहा—इतना कहकर योगियों के परमेश्वर भगवान् श्रेष्ठ ऐश्वर्यमय भाव का प्रदर्शन करते हुए नृत्य करने लगे । (१)

उन (मुनियों) ने निर्मल आकाश में विष्णु सहित परम तेजोनिधि उन महादेव ईशान को नृत्य करते हुए देखा । (२)

योग का तत्त्व जानने वाले संयतचित्त योगी लोग जिन्हें जानते हैं, सभी प्राणियों के उन ईश को मुनियों ने आकाश में देखा । (३)

यह (सम्पूर्ण जगत्) जिसकी माया से निर्मित एवं जिसके द्वारा प्रेरित है विप्रों ने (उन्हीं) विश्वेश को नृत्य करते हुए देखा । (४)

जिसके चरणकमल का स्मरण कर पुरुष अज्ञान से उत्पन्न होने वाले भय का परित्याग करता है (ब्राह्मणों ने उन्हीं) भूतेश को नृत्य करते हुए देखा । (५)

निद्रारहित एवं श्वास को जीतने वाले भक्तियुक्त शान्तचित्त व्यक्ति जिन ज्योतिर्मय का दर्शन करते हैं (ब्राह्मणों को) वही योगी दिखलायी पड़े । (६)

जो भक्तवत्सल (देव) प्रसन्न होने पर शीघ्र अज्ञान से मुक्त कर देते हैं, (ब्राह्मणों ने) उन्हीं (बन्धन से) मुक्त करने वाले श्रेष्ठ रुद्र को आकाश में देखा । (७)

(मुनियों ने) सहस्र शिरवाले, सहस्र चरणों की आकृति से सम्पन्न, सहस्रबाहु, जटाधारी, मस्तक पर अर्द्धचन्द्र धारण करने वाले, व्याघ्र के चर्म का वस्त्र धारण करने वाले, महान् भुजा में त्रिशूल धारण करने वाले, दण्डपाणि, त्रयी अर्थात् ऋग्, यजुः एवं सामवेद-स्वरूप नेत्र वाले, सूर्य, सोम एवं अग्नि स्वरूप नेत्रधारी, अपने तेज से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आवृत कर स्थित हुए, भयङ्कर दाढ़ों वाले, दुर्द्धर्ष, करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी, अण्ड के भीतर एवं अण्ड के बाहर स्थित, श्रेष्ठ बाह्य एवं अभ्यन्तर स्वरूप वाले, अग्नि की ज्वाला उत्पन्न करने वाले एवं सम्पूर्ण जगत् को जलाने वाले विश्वकर्मा देव को नृत्य करते हुये देखा । (८-११)

महादेवं महायोगं देवानामपि दैवतम् ।
पशूनां पतिमीशानं ज्योतिषां ज्योतिरव्ययम् ।।१२
पिनाकिनं विशालाक्षं भेषजं भवरोगिणाम् ।
कालात्मानं कालकालं देवदेवं महेश्वरम् ।।१३
उमापतिं विरूपाक्षं योगानन्दमयं परम् ।
ज्ञानवैराग्यनिलयं ज्ञानयोगं सनातनम् ।।१४
शाश्वतैश्वर्यविभवं धर्माधारं दुरासदम् ।
महेन्द्रोपेन्द्रनमितं महर्षिगणवन्दितम् ।।१५
आधारं सर्वशक्तीनां महायोगेश्वरेश्वरम् ।
योगिनां परमं ब्रह्म योगिनां योगवन्दितम् ।
योगिनां हृदि तिष्ठन्तं योगमायासमावृतम् ।।१६
क्षणेन जगतो योनिं नारायणमनामयम् ।
ईश्वरेणैकतापन्नमपश्यन् ब्रह्मवादिनः ।।१७
दृष्ट्वा तदैश्वरं रूपं रुद्रनारायणात्मकम् ।
कृतार्थं मेनिरे सन्तः स्वात्मानं ब्रह्मवादिनः ।।१८
सनत्कुमारः सनको भृगुश्च
सनातनश्चैव सनन्दनश्च ।

ब्रह्मवादी मुनियों ने महायोग स्वरूप, देवो के भी देव, महादेव, पशुपति, ईशान, ज्योतियों के भी अविनश्वर ज्योतिस्वरूप, पिनाकी, विशालाक्ष, भवरोगियों के औषध, कालात्मा, काल के भी काल, देवाधिदेव, महेश्वर, उमापति, विरूपाक्ष, श्रेष्ठ योगानन्दमय, ज्ञान और वैराग्य के आश्रय स्वरूप, ज्ञानयोगस्वरूप, सनातन, शाश्वत ऐश्वर्य एवं विभवस्वरूप, धर्म के आधार, दुरासद, महेन्द्र एवं उपेन्द्र-अर्थात् विष्णु-द्वारा नमस्कृत, महर्षिगण से अभिवन्दित, सभी शक्तियों के आधार स्वरूप, महायोगेश्वरेश्वर, योगियों के परम ब्रह्म, योगियों के योग द्वारा अभिवन्दित, योगियों के हृदय में स्थित, योगमाया से समावृत, जगत् के मूल कारण, अनामय नारायण (विष्णु) को क्षणमात्र में ईश्वर अर्थात् शंकर से एकाकार होते हुए देखा। (१२-१७)

नारायणात्मक रुद्र के उस ऐश्वर्यमय रूप को देख कर ब्रह्मवादी सन्तों ने अपने आपको कृतार्थ हुआ माना। (१८)

सनत्कुमार, सनक, भृगु, सनातन, सनन्दन

रुद्रोऽङ्गिरा वामदवोऽथ शुक्रो
महर्षिरत्रिः कपिलो मरीचिः ।।१९
दृष्ट्वाऽथ रुद्रं जगदीशितारं
तं पद्मनाभाश्रितवामभागम् ।
ध्यात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
बद्ध्वाञ्जलिं स्वेषु शिरःसु भूयः ।।२०
ओङ्कारमुच्चार्य विलोक्य देव-
मन्तःशरीरे निहितं गुहायाम् ।
समस्तुवन् ब्रह्ममयैर्वचोभि-
रानन्दपूर्णायतमानसास्ते ।।२१

मुनय ऊचुः ।

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं
प्राणेश्वरं रुद्रमनन्तयोगम् ।
नमाम सर्वे हृदि सन्निविष्टं
प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम् ।।२२
त्वां पश्यन्ति मुनयो ब्रह्मयोनिं
दान्ताः शान्ता विमलं रुक्मवर्णम् ।
ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे
कविं परेभ्यः परमं तत्परं च ।।२३

रुद्र, अङ्गिरा, वामदेव, शुक्र, महर्षि अत्रि, कपिल एवं मरीचि ने पद्मनाभ-विष्णु जिनके वाम भाग में स्थित हैं, उन जगन्नियामक रुद्र का दर्शन करने के उपरान्त हृदय में स्थित (उनके रूप) का ध्यान किया एवं मस्तक से प्रणाम कर पुनः अपने मस्तक पर अञ्जलिबद्ध प्रणाम किया। (१९,२०)

ओङ्कार का उच्चारण करने के उपरान्त शरीर के भीतर (हृदयरूपी) गुहा में स्थित देव का दर्शन कर आनन्दपूर्ण विस्तृत आत्मावाले (मुनिगण) ब्रह्ममय अर्थात् वैदिक वचनों से (उन देव की) स्तुति करने लगे। (२१)

मुनियों ने कहा—हम सभी आप अद्वितीय, पुराण पुरुष, प्राणेश्वर, हृदय में स्थित, ब्रह्ममय, पवित्र, प्रचेता एवं अनन्तयोगी रुद्र ईश को नमस्कार करते हैं। (२२)

इन्द्रियों का दमन करनेवाले, शान्त चित्त मुनिगण ध्यान धारण कर अपने शरीर में हृदयस्थ, अचल, निर्मल, स्वर्ण सदृश वर्ण वाले, ब्रह्मयोनि, उत्कृष्ट से भी अत्यन्त उत्कृष्ट आप कवि का साक्षात्कार करते हैं। (२३)

त्वत्तः प्रसूता जगतः प्रसूतिः
सर्वात्मभूस्त्वं परमाणुभूतः ।
अणोरणीयान् महतो महीयां-
स्त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः ।।२४

हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा
त्वत्तोऽधिजातः पुरुषः पुराणः ।
संजायमानो भवता विसृष्टो
यथाविधानं सकलं ससर्ज ।।२५

त्वत्तो वेदाः सकलाः संप्रसूता-
स्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभन्ते ।
पश्यामस्त्वां जगतो हेतुभूतं
नृत्यन्तं स्वे हृदये सन्निविष्टम् ।।२६

त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रं
मायावी त्वं जगतामेकनाथः ।
नमामस्त्वां शरणं संप्रपन्ना
योगात्मानं चित्पतिं दिव्यनृत्यम् ।।२७

पश्यामस्त्वां परमाकाशमध्ये
नृत्यन्तं ते महिमानं स्मरामः ।
सर्वात्मानं बहुधा सन्निविष्टं
ब्रह्मानन्दमनुभूयानुभूय ।।२८

ॐकारस्ते वाचको मुक्तिबीजं
त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम् ।
तत्त्वां सत्यं प्रवदन्तीह सन्तः
स्वयंप्रभं भवतो यत्प्रकाशम् ।।२९

स्तुवन्ति त्वां सततं सर्ववेदा
नमन्ति त्वामृषयः क्षीणदोषाः ।
शान्तात्मानः सत्यसंधा वरिष्ठं
विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः ।।३०

एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्तस्
त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम् ।
वेद्यं त्वां शरणं ये प्रपन्ना-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ।।३१

भवानीशोऽनादिमांस्तेजोराशि-
र्ब्रह्मा विश्वं परमेष्ठी वरिष्ठः ।
स्वात्मानन्दमनुभूयाधिशेते
स्वयं ज्योतिरचलो नित्यमुक्तः ।।३२

आप से जगत् की उत्पत्ति हुई है। आप सभी के आत्मा रूप, एवं परमाणु स्वरूप हैं। सन्त लोग आपको सूक्ष्म से भी सूक्ष्म एवं महान् से भी महान् कहते हैं। (२४)

जगत् के अन्तरात्मा स्वरूप हिरण्यगर्भ पुराण पुरुष आपसे उत्पन्न हुए हैं। आप द्वारा उत्पन्न किए गये उस (पुराण पुरुष) ने उत्पन्न होते ही यथाविधि सम्पूर्ण संसार की सृष्टि की। (२५)

सभी वेद आपसे ही उत्पन्न हुये हैं एवं, प्रलय काल में (वे) आप में ही स्थिति पाते हैं। (हम सभी) अपने हृदय में स्थित जगत् के कारण-स्वरूप आपको नृत्य करते हुये देख रहे हैं। (२६)

आप ही इस ब्रह्मचक्र को घुमाते हैं। आप मायावी एवं जगत् के एकमात्र स्वामी हैं। आपकी शरण में आये हुये हम सभी दिव्य नृत्य करने वाले आप योगात्मा चित्पति को नमस्कार करते हैं। (२७)

परमाकाश में नृत्य कर रहे आपका हम दर्शन करते एवं आपकी महिमा का स्मरण करते हैं। हम अनेक रूप में स्थित सर्वात्मा ब्रह्मानन्द का बारम्बार अनुभव कर रहे हैं (और नमस्कार करते हैं)। (२८)

ओङ्कार आपका वाचक एवं मुक्ति का बीज है। आप अक्षर एवं प्रकृति में गूढ रूप से स्थित हैं। अतएव सन्तजन आपको सत्यस्वरूप एवं आपके प्रभाव को स्वयमेव प्रकाशशील कहते हैं। (२९)

सभी वेद निरन्तर आपकी स्तुति करते हैं एवं दोष-रहित ऋषिगण आपको नमस्कार करते हैं। शान्तचित्त, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यसन्ध योगीलोग आप सर्वश्रेष्ठ में प्रविष्ट होते हैं। (३०)

अनेक शाखाओं वाला एक अनन्त वेद एकरूप अद्वितीय आपका बोध कराते हैं। जो विप्र आप वेद्य (जानने योग्य) की शरण में आते हैं उन्हें शाश्वत शान्ति प्राप्ति होती है, अन्यों को नहीं (प्राप्त होती)। (३१)

आप ईश, आदिरहित, तेजोराशि, ब्रह्मा, विश्वरूप, परमेष्ठी एवं वरिष्ठ हैं। नित्यमुक्त एवं स्वयं ज्योति-स्वरूप अचल (योगी) स्वात्मानन्द का अनुभव कर (आप में) प्रविष्ट होते हैं। (३२)

एको रुद्रस्त्वं करोषीह विश्वं
त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपः ।
त्वामेवान्ते निलयं विन्दतीदं
नमामस्त्वां शरणं संप्रपन्नाः ।।३३
त्वामेकमाहुः कविमेकरुद्रं
प्राणं बृहन्तं हरिमग्निमीशम् ।
इन्द्रं मृत्युमनिलं चेकितानं
धातारमादित्यमनेकरूपम् ।।३४
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि ।।३५
त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं
त्वमेव रुद्रो भगवानधीशः ।
त्वं विश्वनाभिः प्रकृतिः प्रतिष्ठा
सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि ।।३६
त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराण-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
चिन्मात्रमव्यक्तमचिन्त्यरूपं
खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिं निर्गुणं च ।।३७
यदन्तरा सर्वमिदं विभाति
यदव्ययं निर्मलमेकरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमेतत्
तदन्तरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम् ।।३८
योगेश्वरं रुद्रमनन्तशक्तिं
परायणं ब्रह्मतनुं पवित्रम् ।
नमाम सर्वे शरणार्थिनस्त्वां
प्रसीद भूताधिपते महेश ।।३९
त्वत्पादपद्मस्मरणादशेष-
संसारबीजं विलयं प्रयाति ।
मनो नियम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादयामो वयमेकमीशम् ।।४०
नमो भवायास्तु भवोद्भवाय
कालाय सर्वाय हराय तुभ्यम् ।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्दिने ते
नमोऽग्नये देव नमः शिवाय ।।४१

आप अद्वितीय रुद्र इस विश्व की रचना करते हैं। विश्वरूप आप सम्पूर्ण विश्व का पालन करते है। (सम्पूर्ण विश्व) प्रलय के समय आप में ही विलीन होता है। (हम सभी) आपको नमस्कार करते एवं आपके शरणागत हैं। (३३)

आपको अद्वितीय कवि, एक रुद्र, प्राण, वृहत्, हरि, अग्नि, ईश, इन्द्र, मृत्यु, वायु, चेकितान, धाता, आदित्य एवं अनेकरूप कहते हैं। (३४)

अविनश्वर एवं श्रेष्ठ आप ज्ञान के विषय हैं। आप इस विश्व के उत्कृष्ट आश्रय हैं। आप अव्यय, नित्य धर्मरक्षक, सनातन एवं पुरुषोत्तम हैं। (३५)

आप ही विष्णु, चतुरानन (ब्रह्मा) एवं भगवान् ईश रुद्र हैं। आप विश्वनाभि, प्रकृति, प्रतिष्ठा, सर्वेश्वर एवं परमेश्वर हैं। (३६)

आपको अद्वितीय, पुराण पुरुष, आदित्यवर्ण, तमोगुणातीत, चिन्मात्र, अव्यक्त, अचिन्त्यरूप, आकाश, ब्रह्म, शून्य, प्रकृति एवं निर्गुण कहते हैं। (३७)

जिसके भीतर यह सम्पूर्ण (विश्व) प्रकाशित होता है तथा जो अद्वितीय रूप निर्मल एवं विकार रहित है आपका वह रूप अचिन्त्य है एवं उसके भीतर (सम्पूर्ण) तत्त्व प्रतीत होते हैं। (३८)

हम सभी अनन्त शक्ति रुद्र, उत्कृष्ट आश्रयस्वरूप पवित्र ब्रह्ममूर्त्ति, योगेश्वर को नमस्कार करते हैं। हे भूताधिपति महेश ! (हम सभी) आपकी शरण चाहते हैं। (आप) प्रसन्न हों। (३९)

आपके चरण कमल का स्मरण करने से सम्पूर्ण संसार का वीज अर्थात् कर्म नष्ट हो जाता है। शरीर को संयमित एवं मन को नियन्त्रित कर हम सभी अद्वितीय ईश को प्रसन्न करते हैं। (४०)

भव, भवोद्भव, काल, सर्व एवं हर स्वरूप आपको नमस्कार है। आप जटाधारी रुद्र को नमस्कार है। अग्निस्वरूप देव एवं शिव को नमस्कार है। (४१)

ततः स भगवान् देवः कपर्दी वृषवाहनः ।
संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवद् भवः ।।४२
ते भवं भूतभव्येशं पूर्ववत् समवस्थितम् ।
दृष्ट्वा नारायणं देवं विस्मिता वाक्यमब्रुवन् ।।४३
भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन ।
दृष्ट्वा ते परमं रूपं निर्वृताः स्म सनातन ।।४४
भवत्प्रसादादमले परस्मिन् परमेश्वरे ।
अस्माकं जायते भक्तिस्त्वय्येवाव्यभिचारिणी ।।४५
इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं तव शंकर ।
भूयोऽपि तव यन्नित्यं याथात्म्यं परमेष्ठिनः ।।४६
स तेषां वाक्यमाकर्ण्य योगिनां योगसिद्धिदः ।
प्राहः गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम् ।।४७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

६

ईश्वर उवाच ।
शृणुध्वमृषयः सर्वे यथावत् परमेष्ठिनः ।
वक्ष्यामीशस्य माहात्म्यं यत्तद्वेदविदो विदुः ।।१
सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता ।
सर्वलोकैकसंहर्त्ता सर्वात्माऽहं सनातनः ।।२
सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी पिता ह्यहम् ।
मध्ये चान्तः स्थितं सर्वं नाहं सर्वत्र संस्थितः ।।३
भवद्भिरद्भुतं दृष्टं यत्स्वरूपं तु मामकम् ।
ममैषा ह्युपमा विप्रा मायया दर्शिता मया ।।४

तदनन्तर प्रसन्न होकर भगवान वृषवाहन जटाधारी देव भव ने अपने उत्कृष्ट रूप को हटा लिया एवं प्रकृतिस्थ हो गए । (४२)

उनलोगो ने पूर्व के सदृश स्थित भूत तथा भव्य के ईश भव एवं नारायण देव को देखकर आश्चर्यपूर्वक कहा— (४३)

हे भूतभव्येश ! हे गोवृषाङ्कितशासन ! हे सनातन भगवन् ! आपका श्रेष्ठ रूप देखकर हम सभी विरक्त हो गये हैं । (४४)

आपके अनुग्रह से हम सभी को शुद्ध परात्पर परमेश्वर स्वरूप आपमें ही अव्यभिचारिणी भक्ति उत्पन्न हुई है । (४५)

हे शंकर ! अब हमलोग आप परमेष्ठी के माहात्म्य एवं यथार्थस्वरूप का पुनः पुनः वर्णन सुनना चाहते हैं । (४६)

उन योगियों का वचन सुनकर योगसिद्धि के दाता उन्होंने माधव की ओर देखकर गम्भीर वाणी में कहा । (४७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत) पाँचवाँ अध्याय समाप्त—५.

६

ईश्वर ने कहा—हे सभी ऋषियो ! सुनो । मैं यथावत् ईश परमेष्ठी के उस माहात्म्य का वर्णन कर रहा हूँ जिसे वेदज्ञ लोग जानते हैं । (१)

मैं सनातन, सर्वात्मा, सभी लोकों का एकमात्र निर्माणकर्त्ता सभी लोकों का अद्वितीय रक्षक एवं सभी लोकों का एकमात्र संहारकर्त्ता हूँ । (२)

मैं सभी वस्तुओं का अन्तर्यामी एवं पिता हूँ । मध्य अर्थात् सृष्टि के अनन्तर तथा प्रलयकाल में सभी कुछ मुझमें ही स्थित होता है । किन्तु मैं सर्वत्र नहीं स्थित हूँ । (३)

हे विप्रो ! आपलोगों ने मेरे जिस अद्भुत रूप को देखा है वह केवल मेरी उपमा है जिसे मैंने (अपनी) माया से दिखलाया है । (४)

सर्वेषामेव भावानामन्तरा समवस्थितः ।
प्रेरयामि जगत् कृत्स्नं क्रियाशक्तिरियं मम ॥५
ययेदं चेष्टते विश्वं तत्स्वभावानुवर्त्ति च ।
सोऽहं कालो जगत् कृत्स्नं प्रेरयामि कलात्मकम् ॥६
एकांशेन जगत् कृत्स्नं करोमि मुनिपुंगवाः ।
संहराम्येकरूपेण द्विधाऽवस्था ममैव तु ॥७
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्त्वप्रवर्त्तकः ।
क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ ॥८
ताभ्यां संजायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम् ।
महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृम्भते ॥९
यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्त्तकः ।
हिरण्यगर्भो मार्त्तण्डः सोऽपि मद्देहसंभवः ॥१०
तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम् ।
दत्तवानात्मजान् वेदान् कल्पादौ चतुरो द्विजाः ॥११
स मन्नियोगतो देवो ब्रह्मा मद्भावभावितः ।

सभी पदार्थों के भीतर स्थित हुआ मैं सम्पूर्ण संसार को प्रेरित करता हूँ। यह मेरी क्रियाशक्ति है। (५)

यह विश्व जिससे चेष्टा करता है एवं जिसके स्वभाव का अनुसरण करता है काल स्वरूप वही मैं सम्पूर्ण कलात्मक जगत् को प्रेरित करता हूँ। (६)

हे मुनिश्रेष्ठो! मैं एक अंश से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता हूँ एवं एक रूप से संहार करता हूँ। मेरी ही दो प्रकार की अवस्था होती है। (७)

आदि, मध्य और अन्त से रहित एवं माया को प्रेरित करने वाला मैं सृष्टि के प्रारम्भ में प्रधान और पुरुष इन दोनों को क्षुब्ध करता हूँ। (८)

उन दोनों के परस्पर संयोग से विश्व उत्पन्न होता है। महत्तत्वादि के क्रम से मेरा ही तेज विस्तृत होता है। (९)

जो सम्पूर्ण जगत् के साक्षी एवं कालचक्र को प्रवर्तित करने वाले हिरण्यगर्भ मार्त्तण्ड (सूर्य) हैं वे भी मेरे ही शरीर से उत्पन्न हुए हैं। (१०)

हे द्विजो! मैंने कल्प के प्रारम्भ में उन्हें अपना ऐश्वर्ययुक्त ज्ञानयोग एवं अपने से उत्पन्न चारों वेद प्रदान किया। (११)

मेरी भक्ति से पूर्ण देव ब्रह्मा मेरे आदेश से मेरे उस

दिव्यं तन्मामकैश्वर्यं सर्वदा वहति स्वयम् ॥१२
स सर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेन सर्ववित् ।
भूत्वा चतुर्मुखः सर्गं सृजत्येवात्मसंभवः ॥१३
योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवाव्ययः ।
ममैव परमा मूर्तिः करोति परिपालनम् ॥१४
योऽन्तकः सर्वभूतानां रुद्रः कालात्मकः प्रभुः ।
मदाज्ञयाऽसौ सततं संहरिष्यति मे तनुः ॥१५
हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ।
पाकं च कुरुते वह्निः सोऽपि मच्छक्तिचोदितः ॥१६
भुक्तमाहारजातं च पचते तदहर्निशम् ।
वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः ॥१७
योऽपि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुंगवः ।
सोऽपि संजीवयेत् कृत्स्नमीशस्यैव नियोगतः ॥१८
योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां बहिर्देवः प्रभञ्जनः ।
मदाज्ञयाऽसौ भूतानां शरीराणि बिभर्ति हि ॥१९

दिव्य ऐश्वर्य को स्वयं सर्वदा शिरोधार्य करते हैं। (१२)

मेरे निर्देश से सभी लोकों का निर्माण करने वाले वे सर्वज्ञ चतुर्मुख होकर आत्मजन्मा सृष्टि की रचना करते हैं। (१३)

जो लोकों के उत्पादक अव्यय अनन्त नारायण हैं (वे भी) मेरी श्रेष्ठ मूर्त्ति हैं। (वे नारायण जगत् का) परिपालन करते हैं। (१४)

जो सभी भूतों का संहार करने वाले कालस्वरूप प्रभु रुद्र हैं वे मेरी आज्ञा से (संसार का) संहार करते हैं। वे भी मेरी मूर्त्ति हैं। (१५)

देवों को हव्य तथा कव्यभोगियों (पितरों) को कव्य पहुँचाने वाले वह्निदेव मेरी शक्ति से प्रेरित होकर पाक-कर्म करते हैं। (१६)

वे भगवान् वैश्वानर अग्नि ईश्वर के निर्देश से दिन-रात खाये हुए आहार को पचाते रहते हैं। (१७)

सम्पूर्ण जल के मूल कारणस्वरूप जो देवश्रेष्ठ वरुण हैं वे भी ईश्वर के निर्देश से सम्पूर्ण (विश्व) को जीवन प्रदान करते हैं। (१८)

जो प्राणियों के भीतर और बाहर वर्त्तमान रहनेवाले वायुदेव हैं वे भी मेरी आज्ञा से प्राणियों के शरीर की पूर्ति करते हैं। (१९)

योऽपि संजीवनो नृणां देवानाममृताकरः ।
सोमः स मन्नियोगेन चोदितः किल वर्त्तते ।।२०
यः स्वभासा जगत् कृत्स्नं प्रकाशयति सर्वदा ।
सूर्यो वृष्टिं वितनुते शास्त्रेणैव स्वयंभुवः ।।२१
योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः ।
यज्वनां फलदो देवो वर्त्ततेऽसौ मदाज्ञया ।।२२
यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्त्तते नियमादिह ।
यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगतः ।।२३
योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां संप्रदायकः ।
सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्त्तते सदा ।।२४
यः सर्वरक्षसां नाथस्तामसानां फलप्रदः ।
मन्नियोगादसौ देवो वर्त्तते निर्ऋतिः सदा ।।२५
वेतालगणभूतानां स्वामी भोगफलप्रदः।
ईशानः किल भक्तानां सोऽपि तिष्ठन्ममाज्ञया ।।२६

मनुष्यों को जीवन प्रदान करनेवाले जो देवों के अमृताकर सोम (चन्द्र) देव हैं वे मेरे निर्देश से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। (२०)

जो अपने तेज से सदा सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं वे सूर्यदेव भी स्वयम्भू (परमेश्वर) की आज्ञा से (अपने किरणों द्वारा) वृष्टि का विस्तार करते हैं। (२१)

जो सम्पूर्ण जगत् के शासक, सभी देवों के स्वामी एवं यज्ञ करने वालों को फल देनेवाले इन्द्र देव हैं वे भी मेरी आज्ञा से प्रवृत्त होते हैं। (२२)

जो असाधुओं के प्रशासक तथा नियम के अनुसार व्यवहार करने वाले विवस्वान् के पुत्र यम देव हैं वे भी देवाधिदेव के निर्देश से व्यवहार करते हैं। (२३)

जो सभी प्रकार के धनों के अध्यक्ष एवं धन देने वाले कुबेर हैं वे भी ईश्वर के निर्देश से प्रवृत्त होते हैं। (२४)

जो सभी राक्षसों के स्वामी एवं तमोगुणियों को फल प्रदान करने वाले निर्ऋति देव हैं वे भी सदा मेरे आदेश से व्यवहार करते हैं। (२५)

जो वेतालों एवं भूतों के स्वामी तथा भक्तों को भोग सम्बन्धी फल देनेवाले ईशान देव हैं वे भी मेरी आज्ञा से स्थित हैं। (२६)

यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः ।
रक्षको योगिनां नित्यं वर्त्ततेऽसौ मदाज्ञया ।।२७
यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्त्तते विघ्नकारकः ।
विनायको धर्मनेता सोऽपि मद्वचनात् किल ।।२८
योऽपि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः ।
स्कन्दोऽसौ वर्त्तते नित्यं स्वयंभूर्विधिचोदितः ।।२९
ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्या महर्षयः ।
सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः ।।३०
या च श्रीः सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम् ।
पत्नी नारायणस्यासौ वर्त्तते मदनुग्रहात् ।।३१
वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती ।
साऽपीश्वरनियोगेन चोदिता संप्रवर्त्तते ।।३२
याऽशेषपुरुषान् घोरान्नरकात् तारयिष्यति ।
सावित्री संस्मृता देवी देवाज्ञाऽनुविधायिनी ।।३३

जो अङ्गिरा के शिष्य, रुद्रगण में प्रधान एवं योगियों के रक्षक वामदेव हैं वे भी मेरी आज्ञा से कार्य करते हैं। (२७)

जो सम्पूर्ण जगत् के पूज्य विघ्नकारक धर्मनेता विनायक हैं वे भी मेरे आदेश से (व्यवहार करते) हैं। (२८)

जो ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ एवं देवों के सेनापति स्वयम्भू प्रभु कार्तिकेय हैं वे भी नित्य विधि की प्रेरणा से प्रवृत्त होते हैं। (२९)

जो मरीचि आदि महर्षि प्रजापति हैं, वे भी परात्पर (देव) के आदेश से विविध लोक की सृष्टि करते हैं। (३०)

जो नारायण की पत्नी श्री सभी प्राणियों को अत्यधिक सम्पत्ति प्रदान करती हैं वे भी मेरे अनुग्रह से कार्य करती हैं। (३१)

जो देवी सरस्वती प्रचुर वाणी प्रदान करती हैं वे भी ईश्वर के निर्देश से प्रेरित होकर कार्य करती हैं। (३२)

स्मरण करने से सभी पुरुषों को घोर नरक से तारने वाली सावित्री देवी भी (मुझ) देव की आज्ञा का अनुसरण करती हैं। (३३)

पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी ।
याऽपि ध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा ।।३४
योऽनन्तमहिमाऽनन्तः शेषोऽशेषामरप्रभुः ।
दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगतः ।।३५
योऽग्निः संवर्त्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः ।
पिवत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगतः ।।३६
ये चतुर्दश लोकेऽस्मिन् मनवः प्रथितौजसः ।
पालयन्ति प्रजाः सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगतः ।।३७
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाऽश्विनौ ।
अन्याश्च देवताः सर्वा मच्छास्त्रेणैव धिष्ठिताः ।।३८
गन्धर्वा गरुडा ऋक्षाः सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रे स्वयंभुवः ।।३९
कलाकाष्ठानिमेषाश्च मुहूर्त्ता दिवसाः क्षपाः ।
ऋतवः पक्षमासाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापतेः ।।४०
युगमन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने ।
पराश्चैव परार्धाश्च कालभेदास्तथा परे ।।४१
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
नियोगादेव वर्त्तन्ते देवस्य परमात्मनः ।।४२
पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् ।
ब्रह्माण्डानि च वर्त्तन्ते सर्वाण्येव स्वयंभुवः ।।४३
अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डानि ममाज्ञया ।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समन्ततः ।।४४
ब्रह्माण्डानि भविष्यन्ति सह वस्तुभिरात्मगैः ।
वहिष्यन्ति सदैवाज्ञां परस्य परमात्मनः ।।४५
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगे मम वर्त्तते ।।४६
याऽशेषजगतां योनिर्मोहिनी सर्वदेहिनाम् ।
माया विवर्त्तते नित्यं सापीश्वरनियोगतः ।।४७
यो वै देहभृतां देवः पुरुषः पठ्यते परः ।
आत्माऽसौ वर्त्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगतः ।।४८

ध्यान करने से ब्रह्म-विद्या प्रदान करने वाली जो श्रेष्ठ पार्वती देवी हैं वे भी विशेषरूप से मेरे वचन का पालन करती हैं। (३४)

अनन्त महिमावाले एवं सम्पूर्ण देवों के प्रभु जो अनन्त शेष देव हैं वे भी देव की आज्ञा से अपने शिर पर संसार को धारण करते हैं। (३५)

जो संवर्त्तक अग्नि वडवा के रूप में स्थित है वह भी ईश्वर के निर्देश से नित्य सम्पूर्ण सागर को पीता रहता है। (३६)

इस लोक में जो अत्यन्त ओजस्वी चौदह मनु हैं वे भी उस ईश्वर के निर्देश से सम्पूर्ण प्रजा का पालन करते हैं। (३७)

आदित्य, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमार एवं अन्य सभी देवता मेरी ही आज्ञा से अधिष्ठित हुए हैं। (३८)

जो गन्धर्व, गरुड, ऋक्ष, सिद्ध, साध्यगण, चारण, यक्ष राक्षस एवं पिशाच हैं वे सभी स्वयम्भू के शासन में स्थित हैं। (३९)

कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त्त, दिवस, रात्रि, ऋतु, पक्ष एवं मास-ये सभी प्रजापति के शासन में स्थित हैं। (४०)

युग, मन्वन्तर, पर, परार्द्ध एवं अन्य कालभेद भी मेरे शासन में स्थित हैं। (४१)

(स्वेदजादि) चार प्रकार के प्राणी एवं (सम्पूर्ण) चराचर जगत् परमात्मा देव के निर्देश से प्रवृत्त है। (४२)

सभी पाताल, भुवन एवं सभी ब्रह्माण्ड स्वयम्भू-परमेश्वर की आज्ञा से कार्यरत हैं। (४३)

भूतकाल के असंख्य ब्रह्माण्ड पदार्थ समूह के साथ सर्वत्र मेरी आज्ञा से कार्यशील थे। (४४)

आत्मगत वस्तुओं के साथ (भविष्य में) उत्पन्न होने वाले ब्रह्माण्ड भी परात्पर परमात्मा की आज्ञा का पालन करेंगे। (४५)

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, भूतों का प्रारम्भिक स्वरूप (अहङ्कार) एवं आदि प्रकृति ये सभी मेरी आज्ञा से कार्य करते हैं। (४६)

जो सम्पूर्ण जगत् की योनि एवं सभी देहधारियों को मोहित करनेवाली माया है वह भी ईश्वर के आदेश से प्रवृत्त होती है। (४७)

जो देहधारियों के आत्मास्वरूप परात्पर पुरुष देव कहे जाते हैं वे भी ईश्वर के आदेश से कार्य करते हैं। (४८)

विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत् पदम् ।
साऽपि विद्या महेशस्य नियोगवशवर्त्तिनी ।।४९
बहुनाऽत्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत् ।।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं मय्येव प्रलयं व्रजेत् ।।५०
अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः ।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते ।।५१
इत्येतत् परमं ज्ञानं युष्माकं कथितं मया ।
ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ।।५२

इति श्रीकूर्मपुराणे पट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

जिस (बुद्धि) से मोहरूपी कल्मष को दूर कर उत्कृष्ट तत्त्व का साक्षात्कार होता है वह विद्या भी महेश के आदेश की अनुगामिनी है । (४९)

अधिक क्या कहा जाय, यह जगत् मेरी शक्तिमय है । यह संपूर्ण जगत् मुझसे प्रेरित होता है तथा मुझमें ही लीन हो जाता है । (५०)

मैं स्वयं प्रकाश, परात्पर परमात्मा भगवान्, ईश एवं सनातन ब्रह्म हूँ । मुझसे भिन्न कुछ नहीं है । (५१)

मैंने आप लोगों से यह श्रेष्ठ ज्ञान कहा । इसे जानकर प्राणी जन्म एवं सम्पूर्ण सासारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। (५२)

छः सहस्र श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीताके अन्तर्गत) छठवां अध्याय समाप्त—६.

७

ईश्वर उवाच ।
शृणुध्वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः ।
यं ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न संसारे पतेत् पुनः ।।१
परात् परतरं ब्रह्म शाश्वतं निष्कलं ध्रुवम् ।
नित्यानन्दं निर्विकल्पं तद्धाम परमं मम ।।२
अहं ब्रह्मविदां ब्रह्मा स्वयंभूर्विश्वतोमुखः ।
मायाविनामहं देवः पुराणो हरिरव्ययः ।।३
योगिनामस्म्यहं शंभुः स्त्रीणां देवी गिरीन्द्रजा ।
आदित्यानामहं विष्णुर्वसूनामस्मि पावकः ।।४
रुद्राणां शंकरश्चाहं गरुडः पततामहम् ।
ऐरावतो गजेन्द्राणां रामः शस्त्रभृतामहम् ।।५
ऋषीणां च वसिष्ठोऽहं देवानां च शतक्रतुः ।
शिल्पिनां विश्वकर्माऽहं प्रह्लादोऽस्म्यमरद्विषाम् ।।६
मुनीनामप्यहं व्यासो गणानां च विनायकः ।
वीराणां वीरभद्रोऽहं सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।७

७

ईश्वर ने कहा—सभी ऋषियों ! परमेष्ठी का प्रभाव सुनो, जिसे जानकर पुरुष मुक्त हो जाता है एवं पुनः संसार में नहीं गिरता । (१)

जो परात्परतर, शाश्वत, निष्कल, ध्रुव, नित्यानन्द, निर्विकल्प ब्रह्म है वही मेरा परम धाम है । (२)

मैं ब्रह्मज्ञानियों में विश्वतोमुख स्वयम्भू ब्रह्मा एवं मायावियों में अव्यय पुराण हरि हूँ । (३)

मैं योगियो में शम्भु, स्त्रियों में देवी पार्वती, आदित्यों में विष्णु एवं वसुओं में पावक हूँ । (४)

मैं रुद्रों में शङ्कर, पक्षियों में गरुड़, गजेन्द्रों में ऐरावत एवं शस्त्रधारियों में राम हूँ । (५)

मैं ऋषियों में वसिष्ठ, देवों में इन्द्र, शिल्पियों में विश्वकर्मा एवं सुरविद्वेषी-असुरों में प्रह्लाद हूँ । (६)

मैं मुनियों में व्यास, गणों में विनायक, वीरों में वीरभद्र एवं सिद्धों में कपिल मुनि हूँ । (७)

पर्वतानामहं मेरुर्नक्षत्राणां च चन्द्रमाः ।
वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमस्म्यहम् ।।८
अनन्तो भोगिनां देवः सेनानीनां च पावकिः ।
आश्रमाणां च गार्हस्थमीश्वराणां महेश्वरः ।।९
महाकल्पश्च कल्पानां युगानां कृतमस्म्यहम् ।
कुबेरः सर्वयक्षाणां गणेशानां च वीरकः ।।१०
प्रजापतीनां दक्षोऽहं निर्ऋतिः सर्वरक्षसाम् ।
वायुर्बलवतामस्मि द्वीपानां पुष्करोऽस्म्यहम् ।।११
मृगेन्द्राणां च सिंहोऽहं यन्त्राणां धनुरेव च ।
वेदानां सामवेदोऽहं यजुषां शतरुद्रियम् ।।१२
सावित्री सर्वजप्यानां गुह्यानां प्रणवोऽस्म्यहम् ।
सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठसाम च सामसु ।।१३
सर्ववेदार्थविदुषां मनुः स्वायंभुवोऽस्म्यहम् ।
ब्रह्मावर्त्तस्तु देशानां क्षेत्राणामविमुक्तकम् ।।१४
विद्यानामात्मविद्याऽहं ज्ञानानामैश्वरं परम् ।
भूतानामस्म्यहं व्योम सत्त्वानां मृत्युरेव च ।।१५

मैं पर्वतों में मेरु, नक्षत्रों में चन्द्रमा, शस्त्रों में वज्र एवं व्रतों में सत्य हूँ । (८)

मैं सर्पों में देव अनन्त, सेनानियों में कार्त्तिकेय, आश्रमों में गृहस्थ एवं ईश्वरों में महेश्वर हूँ । (९)

मैं कल्पों में महाकल्प, युगों में सत्ययुग, सम्पूर्ण यक्षों में कुबेर एवं गणेशों में वीरक हूँ । (१०)

मैं प्रजापतियों में दक्ष, सम्पूर्ण राक्षसों में निर्ऋति, वलवानों में वायु एवं द्वीपों में पुष्कर हूँ । (११)

मैं मृगेन्द्रों में सिंह, यन्त्रों में धनुष, वेदों में सामवेद एवं यजुर्मन्त्रों में शतरुद्रिय हूँ । (१२)

मैं सभी जप करने योग्य मन्त्रों में सावित्री, गुह्यों में प्रणव, सूक्तों में पुरुषसूक्त एवं साममन्त्रों में ज्येष्ठसाम हूँ । (१३)

मैं सभी वेदार्थ के ज्ञानियों में स्वायम्भुव मनु, देशों में ब्रह्मावर्त्त एवं क्षेत्रों में अविमुक्त क्षेत्र हूँ । (१४)

मैं विद्याओं में आत्मविद्या, ज्ञानों में श्रेष्ठ ईश्वरीय ज्ञान, भूतों में व्योम एवं सत्त्वों में मृत्यु हूँ । (१५)

मैं पाशों में माया, संहार करने वालों में काल, गतियों में मुक्ति एवं उत्कृष्टों में परमेश्वर हूँ । (१६)

पाशानामस्म्यहं माया कालः कलयतामहम् ।
गतीनां मुक्तिरेवाहं परेषां परमेश्वरः ।।१६
यच्चान्यदपि लोकेऽस्मिन् सत्त्वं तेजोबलाधिकम् ।
तत्सर्वं प्रतिजानीध्वं मम तेजोविजृम्भितम् ।।१७
आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्त्तिनः ।
तेषां पतिरहं देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः ।।१८
मायापाशेन बध्नामि पशूनेतान् स्वलीलया ।
मामेव मोचकं प्राहुः पशूनां वेदवादिनः ।।१९
मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते ।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम् ।।२०
चतुर्विंशतितत्त्वानि माया कर्म गुणा इति ।
एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्च पशुबन्धनाः ।।२१
मनो बुद्धिरहंकारः खानिलाग्निजलानि भूः ।
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे ।।२२
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चैव तु पञ्चमम् ।
पायूपस्थं करौ पादौ वाक् चैव दशमी मता ।।२३

इस लोक में अन्य भी जो कुछ अधिक तेज एवं वल वाले हैं उन सभी को मेरे तेज से युक्त जानो । (१७)

संसार में वर्त्तमान सभी जीवों को पशु कहा जाता है ज्ञानी लोग उन (जीवरूपी पशुओं) के पति स्वरूप मुझको पशुपति कहते हैं । (१८)

मैं अपनी लीलावश इन पशुओं को माया रूपी पाश से वाँधता हूँ । वेदवादी लोग मुझे हा पशुओं को मुक्त करने वाला कहते हैं । (१९)

मुझ अव्यय भूताधिपति परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी माया रूपी पाश में बँधे हुए लोगों को मुक्त करने वाला नहीं है । (२०)

चौवीस (प्रकृति एवं महदादि) तत्त्व माया, कर्म, गुण—ये पशुपति के पाश एवं (जीवनरूपी) पशुओं को वाँधने वाले क्लेश हैं । (२१)

मन, बुद्धि, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी ये आठ प्रकृतियाँ हैं एवं (संसार के, अन्य) समस्त पदार्थ, विकार हैं । (२२)

कान, त्वक्, नेत्र, जिह्वा एवं पाँचवीं नासिका तथा गुदा, लिङ्ग, दोनों हाथ, दोनों पैर एवं दसवीं इन्द्रिय

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ।
त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानि प्राकृतानि तु ॥२४
चतुर्विंशकमव्यक्तं प्रधानं गुणलक्षणम् ।
अनादिमध्यनिधनं कारणं जगतः परम् ॥२५
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयमुदाहृतम् ।
साम्यावस्थितिमेतेषामव्यक्तं प्रकृतिं विदुः ॥२६
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रजो मिश्रमुदाहृतम् ।
गुणानां बुद्धिवैषम्याद् वैषम्यं कवयो विदुः ॥२७
धर्माधर्माविति प्रोक्तौ पाशौ द्वौ बन्धसंज्ञितौ ।
मय्यर्पितानि कर्माणि निबन्धाय विमुक्तये ॥२८
अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं चाभिनिवेशकम् ।
क्लेशाख्यानचलान् प्राहुः पाशानात्मनिबन्धनान् ॥२९
एतेषामेव पाशानां माया कारणमुच्यते ।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति ॥३०
स एव मूलप्रकृतिः प्रधानं पुरुषोऽपि च ।
विकारा महदादीनि देवदेवः सनातनः ॥३१
स एव बन्धः स च बन्धकर्त्ता
स एव पाशः पशवः स एव ।
स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥३२

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

८

ईश्वर उवाच ।

अन्यद् गुह्यतमं ज्ञानं वक्ष्ये ब्राह्मणपुंगवाः ।
येनासौ तरते जन्तुर्घोरं संसारसागरम् ॥१
अहं ब्रह्ममयः शान्तः शाश्वतो निर्मलोऽव्ययः ।
एकाकी भगवानुक्तः केवलः परमेश्वरः ॥२

वाणी और शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—ये तेइस तत्त्व प्राकृत अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। (२३, २४)

आदि, मध्य एवं अन्त से रहित, जगत् का परम कारणस्वरूप एवं (सत्त्वादि) गुणों से लक्षित होने वाला अव्यक्त प्रधान चौवीसवाँ तत्त्व है। (२५)

सत्त्व, रज एवं तम ये तीन गुण कहे गये हैं। इनकी साम्यावस्था को अव्यक्त प्रकृति कहा जाता है। (२६)

सत्त्वगुण को ज्ञानस्वरूप, तमोगुण को अज्ञानस्वरूप एवं रजोगुण को मिश्रस्वरूप अर्थात् ज्ञान एवं अज्ञान इन दोनों से युक्त कहा गया है। विद्वान् लोग यह जानते हैं कि बुद्धि की विषमता से गुणों का वैषम्य होता है। (२७)

बन्ध नामक दो पाशों को धर्म और अधर्म कहा जाता है। मुझे अर्पित किये गये कर्म बन्धन नहीं करते। उनसे मुक्ति होती है। (२८)

आत्मा का बन्धन करने के कारण क्लेश नामक अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश इन अचल तत्त्वों को पाश कहा जाता है। (२९)

माया को इन पाँचो पाशों का कारण कहा जाता है। वह अव्यक्त मूलप्रकृतिस्वरूप शक्ति मुझमें रहती है। (३०)

वही मूलप्रकृति प्रधान एवं पुरुष है। महत्तत्व आदि विकार हैं। देवाधिदेव सनातन हैं। (३१)

वे ही बन्धन, बन्धन करने वाले, वे ही पाश एवं वे ही पशु हैं। वे सभी कुछ जानते हैं, किन्तु इनको जानने वाला कोई नहीं है। उन्हें आदि पुराण पुरुष कहा जाता है। (३२)

छः सहस्रश्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत) सातवाँ अध्याय समाप्त—७.

८

ईश्वर ने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! मैं एक दूसरा अत्यन्त गोपनीय ज्ञान बतलाता हूँ जिससे यह प्राणी घोर संसार-सागर के पार चला जाता है। (१)

मुझ ब्रह्मस्वरूप भगवान् को शान्त, शाश्वत, निर्मल, अव्यय एकाकी, केवल एवं परमेश्वर कहते हैं। (२)

मम योनिर्महद् ब्रह्म तत्र गर्भं दधाम्यहम् ।
मूलं मायाभिधानं तु ततो जातमिदं जगत् ॥३
प्रधानं पुरुषो ह्यात्मा महान् भूतादिरेव च ।
तन्मात्राणि महाभूतानीन्द्रियाणि च जज्ञिरे ॥४
ततोऽण्डमभवद्धैमं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
तस्मिन् जज्ञे महाब्रह्मा मच्छक्त्या चोपबृंहितः ॥५
ये चान्ये बहवो जीवा मन्मयाः सर्व एव ते ।
न मां पश्यन्ति पितरं मायया मम मोहिताः ॥६
याश्च योनिषु सर्वासु संभवन्ति हि मूर्त्तयः ।
तासां माया परा योनिर्मामेव पितरं विदुः ॥७
यो मामेवं विजानाति बीजिनं पितरं प्रभुम् ।
स धीरः सर्वलोकेषु न मोहमधिगच्छति ॥८
ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः ।
ओङ्कारमूर्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः ॥९
समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥१०

महद्ब्रह्म हमारी योनि है। मैं उसमें मूलमाया नामक गर्भ धारण करता हूँ। उससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है। (३)

उसी से प्रधान, पुरुष, आत्मा, महत्तत्त्व, आदिभूत, तन्मात्राएँ, महाभूत, एवं इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई। (४)

उससे करोड़ों सूर्य के तुल्य प्रकाशमय हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हुआ। उसमें मेरी शक्ति से उपबृंहित महाब्रह्मा उत्पन्न हुए। (५)

जो अन्य अनेक जीव हैं वे सभी मेरे स्वरूप है। वे सभी मेरी माया से मोहित होने के कारण पितामह-स्वरूप मुझको नहीं देख पाते। (६)

सभी योनियों में जो मूर्त्तियाँ उत्पन्न होती हैं उनकी योनि परामाया है एवं मुझे (उनका) पितृस्वरूप जानते हैं। (७)

जो इस प्रकार मुझे बीजधारी पितृस्वरूप प्रभु को जानता है वह समस्त लोकों में वीर होता है एवं मोह को नहीं प्राप्त होता। (८)

मैं सभी विद्याओं का नियामक, प्राणियों का परमेश्वर ओङ्कारमूर्त्ति प्रजापति भगवान् ब्रह्मा हूँ। (९)

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥१
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं च महेश्वरम् ।
प्रधानविनियोगज्ञः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा
षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥१
तन्मात्राणि मन आत्मा च तानि
सूक्ष्माण्याहुः सप्त तत्त्वात्मकानि ।
या सा हेतुः प्रकृतिः सा प्रधानं
बन्धः प्रोक्तो विनियोगोऽपि तेन ॥१४
या सा शक्तिः प्रकृतौ लीनरूपा
वेदेषूक्ता कारणं ब्रह्मयोनिः ।
तस्या एकः परमेष्ठी परस्ता-
न्महेश्वरः पुरुषः सत्यरूपः ॥१५

जो सभी भूतों में समानरूप से स्थित एवं विनष्ट होने वालों में भी विनष्ट न होने वाले परमेश्वर को देखता है वही साक्षात्कार करने वाला होता है। (१०)

(जो) सर्वत्र समान रूप से स्थित ईश्वर को समान भाव से देखता है वह अपने से अपना पतन नहीं करता एवं इस प्रकार वह परम गति प्राप्त करता है। (११)

सात सूक्ष्म तत्त्वों एवं षडङ्ग महेश्वर को जानकर प्रधान विनियोग को जानने वाला परमब्रह्म को प्राप्त करता है। (१२)

विभु की सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि ज्ञान, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्तशक्ति एवं अनन्त शक्ति को महेश्वर का षडङ्ग कहते हैं इसे जानकर (प्राणी को परम गति प्राप्त होती है)। (१३)

पञ्च तन्मात्राओं, मन एवं आत्मा इन्हीं सात तत्त्वों को सूक्ष्म कहा जाता है। जो हेतुस्वरूपा प्रकृति है वही प्रधान है। उससे होने वाले बन्धन को ही विनियोग कहते हैं। (१४)

प्रकृति में लीन रहने वाली जो शक्ति है उसे वेदों में ब्रह्मयोनि एवं कारणस्वरूप कहा गया है। अद्वितीय, आदिस्वरूप परमेष्ठी सत्यरूप महेश्वर ही उसके पुरुष हैं। (१५)

ब्रह्मा योगी परमात्मा महीयान्
व्योमव्यापी वेदवेद्यः पुराणः ।
एको रुद्रो मृत्युरव्यक्तमेकं
बीजं विश्वं देव एकः स एव ॥१६
तमेवैकं प्राहुरन्येऽप्यनेकं
त्वेकात्मानं केचिदन्यत्तथाहुः ।
अणोरणीयान् महतोऽसौ महीयान्
महादेवः प्रोच्यते वेदविद्भिः ॥१७
एवं हि यो वेद गुहाशयं परं
प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम् ।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति ॥१८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

९

ऋषय ऊचुः ।
निष्कलो निर्मलो नित्यो निष्क्रियः परमेश्वरः ।
तन्नो वद महादेव विश्वरूपः कथं भवान् ॥१
ईश्वर उवाच ।
नाहं विश्वो न विश्वं च मामृते विद्यते द्विजाः ।
मायानिमित्तमत्रास्ति सा चात्मानमपाश्रिता ॥२
अनादिनिधना शक्तिर्मायाऽव्यक्तसमाश्रया ।
तन्निमित्तः प्रपञ्चोऽयमव्यक्तादभवत् खलु ॥३
अव्यक्तं कारणं प्राहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम् ।
अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते ॥४
तस्मान्मे विश्वरूपत्वं निश्चितं ब्रह्मवादिभिः ।
एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ॥५

वही अद्वितीय देव ब्रह्मा, योगी, परमात्मा, महीयान्, व्योमव्यापी, वेदों से ज्ञात होने योग्य, पुराण पुरुष, अद्वितीय रुद्र, मृत्यु, अव्यक्त, एक बीज एवं विश्व है । (१६)

उसे ही कोई एक एवं कोई अनेक कहता है। दूसरे लोग उसे ही अद्वितीय आत्मा कहते हैं। वेदज्ञ लोग महादेव को सूक्ष्म (अणु) से भी सूक्ष्म एवं महान् से भी महान् कहते हैं । (१७)

जो पुराण पुरुष, विश्वरूप, हिरण्मय, गुहाशय, श्रेष्ठ, बुद्धिमानों की परम गति, प्रभु को इस प्रकार जानता है वह बुद्धिमान् पुरुष बुद्धि को पार कर जाता है । (१८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत)
आठवाँ अध्याय समाप्त—८.

९

ऋषियों ने कहा—हे महादेव ! हम लोगों को यह बतलाइये कि आप परमेश्वर निष्कल, निर्मल, नित्य एवं निष्क्रिय होते हुये भी किस प्रकार विश्वरूप हैं । (१)

ईश्वर ने कहा—हे द्विजो ! मैं विश्व नहीं हूँ । किन्तु मेरे अतिरिक्त विश्व भी नहीं है । यहाँ माया (इसका) निमित्तमात्र है और वह भी आत्मा में आश्रित है । (२)

आदि और अन्त-रहित शक्ति स्वरूपा माया अव्यक्त में आश्रित है । उसी के कारण अव्यक्त से यह संसार उत्पन्न हुआ है । (३)

(मुझ)अव्यक्त को कारण कहा जाता है । मैं ही आनन्द एवं ज्योति स्वरूप अविनश्वर परम ब्रह्म हूँ । मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । (४)

इसी से ब्रह्मवादियों ने मेरे विश्वरूपत्व का निश्चय किया है । एकता एवं पृथकता के विषय में इस उदाहरण का वर्णन किया गया । (५)

अहं तत् परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः ।
अकारणं द्विजाः प्रोक्तो न दोषो ह्यात्मनस्तथा ।।६
अनन्ता शक्तयोऽव्यक्ते मायाद्याः संस्थिता ध्रुवाः ।
तस्मिन् दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम् ।।७
याभिस्तल्लक्ष्यते भिन्नमभिन्नं तु स्वभावतः ।
एकया मम सायुज्यमनादिनिधनं ध्रुवम् ।।८
पुंसोऽभूदन्यया भूतिरन्यया तत्तिरोहितम् ।
अनादिमध्यं तिष्ठन्तं युज्यतेऽविद्यया किल ।।९
तदेतत् परमं व्यक्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ।
तदक्षरं परं ज्योतिस्तद् विष्णोः परमं पदम् ।।१०
तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत् ।
तदेव च जगत् कृत्स्नं तद् विज्ञाय विमुच्यते ।।११
यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् विभेति न कुतश्चन ।।१२
वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तद् विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्
नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ।।१३
यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्
यज्ज्योतिषां ज्योतिरेकं दिविस्थम् ।
तदेवात्मानं मन्यमानोऽथ विद्वा-
नात्मानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ।।१४
तदव्ययं कलिलं गूढदेहं
ब्रह्मानन्दममृतं विश्वधाम ।
वदन्त्येवं ब्राह्मणा ब्रह्मनिष्ठा
यत्र गत्वा न निवर्त्तेत भूयः ।।१५
हिरण्मये परमाकाशतत्त्वे
यदर्चिषि प्रविभातीव तेजः ।
तद्विज्ञाने परिपश्यन्ति धीरा
विभ्राजमानं विमलं व्योम धाम ।।१६
ततः परं परिपश्यन्ति धीरा
आत्मन्यात्मानमनुभूयानुभूय ।

मैं कारण रहित सनातन, परमात्मास्वरूप परम ब्रह्म हूँ। अतः हे द्विजो ! मुझमें कोई दोष नहीं कहा गया है। (६)

माया इत्यादि अनन्त, एवं ध्रुव शक्तियाँ अव्यक्त में स्थित हैं। उस आकाश में (दिव्य तत्त्व में) स्थित केवल अव्यक्त नित्य प्रकाशित होता है। (७)

जिन (शक्तियों) से स्वभावतः अभिन्न तत्त्व भिन्न स्वरूप से लक्षित होता है (उसमें) एक शक्ति से आदि एवं अन्तरहित मेरा शाश्वत सायुज्य प्राप्त होता है। (८)

पुरुष की अन्य (शक्ति) द्वारा भूति की उत्पत्ति तथा दूसरी से उसका लोप होता है। आदि एवं मध्य रहित (पुरुष) अविद्या से युक्त होता है। (९)

प्रभामण्डल से मण्डित, श्रेष्ठ व्यक्त, अनश्वर एवं परम ज्योति स्वरूप यह तत्त्व विष्णु का परम पद है। (१०)

यह सम्पूर्ण जगत् उसमें ओतप्रोत है। सम्पूर्ण जगत् वही है। उसे जान लेने पर मुक्ति प्राप्त होती है। (११)

मन के सहित वाणी जिसे न पाकर लौट आती है उस आनन्द स्वरूप ब्रह्म को जानने वाला कहीं भयभीत नहीं होता। (१२)

मैं आदित्य के समान वर्ण वाले तमोगुण से रहित इस महान् पुरुष को जानता हूँ। उसे जानने के उपरान्त विद्वान् नित्य आनन्दयुक्त, ब्रह्म-स्वरूप एवं मुक्त हो जाता है। (१३)

इससे श्रेष्ठ या भिन्न कुछ भी नही है। द्युलोक में स्थित जो सभी ज्योतियों का अद्वितीय प्रकाशक है उसी को आत्मा मानने वाला विद्वान् आत्मानन्दी एवं ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। (१४)

ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण लोग उसे अव्यय, कलिल, गूढ़देह वाला, ब्रह्मानन्द, अमृत एवं विश्वधाम कहते हैं। वहाँ पहुँच जाने पर पुनः लौटना नहीं पड़ता। (१५)

धीर जन (आत्मस्थ) विज्ञान में उस प्रकाशशील विमल व्योमधाम का दर्शन करते हैं जो तेज हिरण्मय परम आकाशस्वरूप द्युलोक में अतीव प्रकाशित होता है। (१६)

तदनन्तर (अपने) आत्मा में आत्मा का साक्षात् अनुभव करने के उपरान्त धीरजनों को यह ज्ञान होता है

स्वयंप्रभः परमेष्ठी महीयान्
ब्रह्मानन्दी भगवानीश एषः ॥१७
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
तमेवैकं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥१८
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी च भगवान् न तस्मादन्यदिष्यते ॥१९
इत्येतदैश्वरं ज्ञानमुक्तं वो मुनिपुंगवाः ।
गोपनीयं विशेषेण योगिनामपि दुर्लभम् ॥२०

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) नवमोऽध्यायः ॥९॥

१०

ईश्वर उवाच ।
अलिङ्गमेकमव्यक्तं लिङ्गं ब्रह्मेति निश्चितम् ।
स्वयंज्योतिः परं तत्त्वं परे व्योम्नि व्यवस्थितम् ॥१
अव्यक्तं कारणं यत्तदक्षरं परमं पदम् ।
निर्गुणं शुद्धविज्ञानं तद् वै पश्यन्ति सूरयः ॥२
तन्निष्ठाः शान्तसंकल्पा नित्यं तद्भावभाविताः ।
पश्यन्ति तत् परं ब्रह्म यत्तल्लिङ्गमिति श्रुतिः ॥३
अन्यथा नहि मां द्रष्टुं शक्यं वै मुनिपुंगवाः ।
नहि तद् विद्यते ज्ञानं यतस्तज्ज्ञायते परम् ॥४
एतत्तत्परमं ज्ञानं केवलं कवयो विदुः ।
अज्ञानमितरत् सर्वं यस्मान्मायामयं जगत् ॥५
यज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम् ।
ममात्माऽसौ तदेवेदमिति प्राहुर्विपश्चितः ॥६

कि यही (आत्मतत्त्व) स्वयं प्रकाशमान, परमेष्ठी, महान्, ब्रह्मानन्द स्वरूप स्वयम् प्रभु भगवान् ईश है। (१७)

सभी प्राणियों के अन्तरात्मा स्वरूप एक (ही) सर्वव्यापी देव सभी प्राणियों में छिपा हुआ है। जो धीरजन एकमात्र उसी (देव) का साक्षात्कार करते हैं उन्हें ही शाश्वत् शान्ति (प्राप्त होती) है, दूसरों को नहीं। (१८)

वे भगवान् सर्वत्र मुख, शिर एवं ग्रीवा वाले, सभी प्राणियों के हृदय में स्थित एवं सर्वव्यापी हैं। उनसे भिन्न कुछ नहीं है। (१९)

हे श्रेष्ठ मुनियो ! (मैंने) आपलोगों से योगियों को भी दुर्लभ एवं विशेष गोपनीय इस ईश्वरीय ज्ञान का वर्णन किया है। (२०)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत) नवाँ अध्याय समाप्त—९.

१०

ईश्वर ने कहा—अलिङ्ग (चिह्न-रहित), अद्वितीय, अव्यक्त लिङ्ग को ब्रह्म कहा गया है, वह स्वयं ज्योति, परम तत्त्व-स्वरूप एवं परमाकाश में प्रतिष्ठित है। (१)

विद्वान् लोग उस परम पद का साक्षात्कार करते हैं जो निर्गुण, शुद्धविज्ञानस्वरूप, अविनश्वर एवं अव्यक्त कारणस्वरूप है। (२)

शान्त सङ्कल्पों वाले, तत्परायण एवं उसकी नित्य भक्ति करने वाले (मनुष्य) उस परम ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं जिसे श्रुति में 'तल्लिङ्ग' अर्थात् हेतु स्वरूप कहा गया है। (३)

हे मुनिपुङ्गवो ! अन्य किसी प्रकार से मेरा साक्षात्कार नहीं हो सकता। ऐसा कोई ज्ञान भी नहीं है जिससे उस परम तत्त्व को जाना जा सके। (४)

केवल विद्वान् लोग इस उत्कृष्ट ज्ञान को जानते हैं। इसके अतिरिक्त सभी कुछ अज्ञान स्वरूप है जिसके कारण मायामय जगत् है। (५)

जो निर्मल, शुद्ध, निर्विकल्प एवं अव्यय ज्ञान है वही मेरा स्वरूप है—विद्वान् लोग ऐसा कहते हैं। (६)

येऽप्यनेकं प्रपश्यन्ति तेऽपि पश्यन्ति तत्परम् ।
आश्रिताः परमां निष्ठां बुद्ध्वैकं तत्त्वमव्ययम् ॥७
ये पुनः परमं तत्त्वमेकं वानेकमीश्वरम् ।
भक्त्या मां संप्रपश्यन्ति विज्ञेयास्ते तदात्मकाः ॥८
साक्षादेव प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम् ।
नित्यानन्दं निर्विकल्पं सत्यरूपमिति स्थितिः ॥९
भजन्ते परमानन्दं सर्वगं यत्तदात्मकम् ।
स्वात्मन्यवस्थिताः शान्ताः परेऽव्यक्ते परस्य तु ॥१०
एषा विमुक्तिः परमा मम सायुज्यमुत्तमम् ।
निर्वाणं ब्रह्मणा चैक्यं कैवल्यं कवयो विदुः ॥११
तस्मादनादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमं शिवम् ।
स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय विमुच्यते ॥ १२
न तत्र सूर्यः प्रविभातीह चन्द्रो
न नक्षत्राणि तपनो नोत विद्युत् ।
तद्भासेदमखिलं भाति नित्यं
तन्नित्यभासमचलं सद्विभाति ॥१३
नित्योदितं संविदा निर्विकल्पं
शुद्धं बृहन्तं परमं यद्विभाति ।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदोऽथ नित्यं
पश्यन्ति तत्त्वमचलं यत् स ईशः ॥१४
नित्यानन्दममृतं सत्यरूपं
शुद्धं वदन्ति पुरुषं सर्ववेदाः ।
तमोमिति प्रणवेनेशितारं
ध्यायन्ति वेदार्थविनिश्चितार्थाः ॥१५
न भूमिरापो न मनो न वह्निः
प्राणोऽनिलो गगनं नोत बुद्धिः ।
न चेतनोऽन्यत् परमाकाशमध्ये
विभाति देवः शिव एव केवलः ॥१६

जो लोग उस परम तत्त्व को अनेक रूप से देखते हैं वे भी उत्कृष्ट भक्ति का आश्रय ग्रहण कर अद्वितीय अव्यय तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त उसी तत्त्व को देखते हैं। तथा जो लोग पुनः एक या अनेक रूपों में परम तत्त्वस्वरूप ईश्वर का भक्ति द्वारा साक्षात्कार करते हैं उन्हें तत्स्वरूप अर्थात् ब्रह्मस्वरूप जानना चाहिए। (७, ८)

वे वस्तुतः नित्यानन्द स्वरूप, निर्विकल्प-सत्यस्वरूप साक्षात् परमेश्वर देव को अपनी आत्मा के रूप में देखते हैं। (९)

अपनी अव्यक्त, उत्कृष्ट आत्मा में अवस्थित शान्त चित्तवाले (योगी) श्रेष्ठ, परतत्त्व के परमानन्द-स्वरूप, सर्वव्यापी तदात्मक तत्त्व की उपासना करते हैं। (१०)

यही परम मुक्ति है। पण्डितजन (इसे) मेरा उत्तम सायुज्य, निर्वाण, ब्रह्मैक्यभाव एवं कैवल्य स्वरूप जानते हैं। (११)

अतएव परम शिव आदि, मध्य एवं अन्त से रहित अद्वितीय तत्त्वस्वरूप हैं। वे महादेव ईश्वर हैं। उन्हें जान लेने पर मुक्ति प्राप्त होती है। (१२)

वहाँ सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रगण, तपन (अग्नि ?) एवं विजलियों का प्रकाश नहीं होता। उसी के प्रकाश से समस्त (विश्व) नित्य प्रकाशित होता है। वह नित्य प्रकाशस्वरूप अचल रूप से प्रकाशित होता है। (१३)

जो परम बृहत् शुद्ध तत्त्व निर्विकल्प ज्ञानस्वरूप एवं नित्य उदित हुआ प्रकाशित होता है उसी में ब्रह्मज्ञानी लोग जिस नित्य अचल तत्त्व का दर्शन करते हैं वही ईश है। (१४)

सभी वेद पुरुष को नित्यानन्दस्वरूप, अमृत, शुद्ध एवं सत्यरूप कहते हैं। वेदों द्वारा अर्थ का निश्चय किये हुए (विद्वान् लोग) 'ॐ' इस प्रणव द्वारा ईश्वर का ध्यान करते हैं। (१५)

परमाकाश के मध्य में भूमि, जल, मन, अग्नि, प्राण, वायु, आकाश, बुद्धि एवं अन्य चेतन नहीं हैं। (वहाँ) एकमात्र अद्वितीय शिव प्रकाशित होते हैं। (१६)

इत्येतदुक्तं परमं रहस्यं
ज्ञानामृतं सर्ववेदेषु गूढम् ।
जानाति योगी विजनेऽथ देशे
युञ्जीत योगं प्रयतो ह्यजस्रम् ।।१७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) दशमोऽध्यायः ।।१०।।

११

ईश्वर उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम् ।
येनात्मानं प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम् ।।१
योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम् ।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम् ।।२
योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्त्तते ।
योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः ।।३
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा ।
ये युञ्जन्तीह मद्योगं ते विज्ञेया महेश्वराः ।।४
योगस्तु द्विविधो ज्ञेयो ह्यभावः प्रथमो मतः ।
अपरस्तु महायोगः सर्वयोगोत्तमोत्तमः ।।५
शून्यं सर्वनिराभासं स्वरूपं यत्र चिन्त्यते ।
अभावयोगः स प्रोक्तो येनात्मानं प्रपश्यति ।।६
यत्र पश्यति चात्मानं नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।
मयैक्यं स महायोगो भाषितः परमेश्वरः ।।७
ये चान्ये योगिनां योगाः श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरे ।
सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।८
यत्र साक्षात् प्रपश्यन्ति विमुक्ता विश्वमीश्वरम् ।
सर्वेषामेव योगानां स योगः परमो मतः ।।९
सहस्रशोऽथ शतशो ये चेश्वरवहिष्कृताः ।
न ते पश्यन्ति मामेकं योगिनो यतमानसाः ।।१०

सभी वेदों में निहित परम रहस्यस्वरूप इस ज्ञानामृत को (मैंने) कहा । एकान्त स्थान में निरन्तर प्रयत्न पूर्वक योग की साधना करनेवाला योगी ही इस ज्ञान को जानता है । (१७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत) दसवाँ अध्याय समाप्त—१०.

११

ईश्वर ने कहा—इसके पश्चात् मैं उस परम दुर्लभ योग का वर्णन करता हूँ जिसके द्वारा सूर्य सदृश ईश्वरस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार होता है। (१)

योगाग्नि शीघ्र सम्पूर्ण पापपञ्जर को भस्म कर देता है और साक्षात् मुक्ति स्वरूप सिद्धि प्रदान करनेवाला निर्मल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । (२)

योग से ज्ञान उत्पन्न होता है एवं ज्ञान से योग की प्रवृत्ति होती है । योग एवं ज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति पर महेश्वर प्रसन्न होते हैं । (३)

जो नित्य एक समय, दो समय या तीन समय मेरे योग का साधन करते हैं उन्हें महेश्वर जानना चाहिये । (४)

योग दो प्रकार का जानना चाहिए। प्रथम को अभाव योग माना जाता है एवं दूसरा सभी योगों में उत्तम महायोग नामक योग है । (५)

जिसमें सभी आभासों से रहित शून्यमय स्वरूप का चिन्तन होता है एवं जिसके द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है उसे अभावयोग कहते हैं । (६)

जिसमें नित्यानन्दस्वरूप निरञ्जन आत्मा एवं मुझसे अभेद की प्रतीति होती है उसे परमेश्वर स्वरूप महायोग कहा गया है । (७)

अनेक ग्रन्थों में योगियों के जो अन्य (अनेक) योग सुने जाते हैं वे सभी ब्रह्मयोग की सोलहवीं कला के भी तुल्य नहीं होते । (८)

विमुक्त (पुरुष) जिस (योग) में विश्वको साक्षात् ईश्वर के रूप में देखते हैं वह योग सभी योगों में श्रेष्ठ माना जाता है । (९)

जो (अन्य) अनेक प्रकार के सैकड़ों-सहस्रों मन को नियन्त्रित करनेवाले ईश्वरवहिष्कृत योगी हैं वे मुझ अद्वितीय को नहीं देखते । (१०)

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठा यमो नियम आसनम् ।।११
मय्येकचित्ततायोगो वृत्त्यन्तरनिरोधतः ।
तत्साधनान्यष्टधा तु युष्माकं कथितानि तु ।।१२
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
यमाः संक्षेपतः प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम् ।।१३
कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ।
अक्लेशजननं प्रोक्तं त्वहिंसा परमर्षिभिः ।।१४
अहिंसायाः परो धर्मो नास्त्यहिंसा परं सुखम् ।
विधिना या भवेद्धिंसा त्वहिंसैव प्रकीर्त्तिता ।।१५
सत्येन सर्वमाप्नोति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यथार्थकथनाचारः सत्यं प्रोक्तं द्विजातिभिः ।।१६
परद्रव्यापहरणं चौर्याद् वाऽथ बलेन वा ।
स्तेयं तस्यानाचरणादस्तेयं धर्मसाधनम् ।।१७
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ।।१८
द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि यथेच्छया ।
अपरिग्रह इत्याहुस्तं प्रयत्नेन पालयेत् ।।१९
तपःस्वाध्यायसंतोषाः शौचमीश्वरपूजनम् ।
समासान्नियमाः प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिनः ।।२०
उपवासपराकादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम् ।।२१
वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः ।
सत्त्वशुद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते ।।२२
स्वाध्यायस्य त्रयो भेदा वाचिकोपांशुमानसाः ।
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः ।। २३
यः शब्दबोधजननः परेषां शृण्वतां स्फुटम् ।
स्वाध्यायो वाचिकः प्रोक्त उपांशोरथ लक्षणम् ।।२४
ओष्ठयोः स्पन्दमात्रेण परस्याशब्दबोधकः ।
उपांशुरेष निर्दिष्टः साहस्रो वाचिकाज्जपः ।।२५

हे मुनिश्रेष्ठो ! प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, समाधि, यम, नियम, आसन एवं अन्तर्वृत्तियों के निरोध द्वारा मुझमें चित्त की एकाग्रता स्वरूप जो योग तथा आठ प्रकार के उसके साधनों को आप लोगों को बतलाया (जाता है) । (११,१२)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, एवं अपरिग्रह को संक्षेप रूप से यम कहा गया है। (ये) मनुष्यों के चित्त की शुद्धि करनेवाले हैं। (१३)

श्रेष्ठ मुनियों ने कर्म, मन एवं वाणी द्वारा सर्वदा सभी प्राणियों को क्लेश न देने को अहिंसा कहा है। (१४)

अहिंसा से श्रेष्ठ (कोई) धर्म एवं अहिंसा से उत्तम (कोई) सुख नहीं है। विधिपूर्वक होने वाली हिंसा को भी अहिंसा ही कहाजाता है। (१५)

सत्य द्वारा सभी कुछ प्राप्त होता है। सत्य में सभी कुछ प्रतिष्ठित है। द्विजातियों ने यथार्थ कथनरूपी व्यवहारको सत्य कहा है। (१६)

चोरी से अथवा बलपूर्वक दूसरे के द्रव्य का अपहरण करना स्तेय होता है। उस (स्तेय) का आचरण न करना अस्तेय स्वरूप धर्मका साधन होता है। (१७)

सर्वदा सभी अवस्थाओं में कर्म, मन एवं वाणी द्वारा मैथुन का त्याग करने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। (१८)

आपत्ति में भी इच्छापूर्वक द्रव्य का ग्रहण न करना अपरिग्रह कहा जाता है। प्रयत्नपूर्वक उसका पालन करना चाहिये। (१९)

संक्षेप में तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच एवं ईश्वर के पूजन को नियम कहा गया है। (ये) योग की सिद्धि देनेवाले हैं। (२०)

तपस्वियों ने उपवास, पराक एवं कृच्छ्रचान्द्रायणादि (व्रतों) द्वारा शरीर के शोषण को उत्तम तप कहा है। (२१)

विद्वान् लोग वेदान्त, शतरुद्रीय एवं प्रणव इत्यादि के जप को सत्त्वसिद्धिदायक स्वाध्याय कहते हैं। (२२)

वाचिक, उपांशु एवं मानस के भेद से स्वाध्याय के तीन भेद हैं। वेदार्थ के ज्ञाता उत्तरोत्तर प्रकार के (स्वाध्याय) को श्रेष्ठ कहते हैं। (२३)

दूसरे सुननेवालों को स्पष्टतया शब्द का ज्ञान उत्पन्न करानेवाले स्वाध्याय को वाचिक कहा जाता है। अब उपांशु स्वाध्याय का लक्षण (बतलाता हूँ)। (२४)

ओठों में केवल स्पन्दन होने के कारण दूसरे को शब्द का ज्ञान न करानेवाले स्वाध्याय को उपांशु कहा गया है। यह वाचिक जप से सहस्र गुना (उत्तम) है। (२५)

यत्पदाक्षरसङ्गत्या परिस्पन्दनवर्जितम् ।
चिन्तनं सर्वशब्दानां मानसं तं जपं विदुः ॥२६
यदृच्छालाभतो नित्यमलं पुंसो भवेदिति ।
या धीस्तामृषयः प्राहुः संतोषं सुखलक्षणम् ॥२७
वाह्यमाभ्यन्तरं शौचं द्विधा प्रोक्तं द्विजोत्तमाः ।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं वाह्यं मनः शुद्धिरथान्तरम् ॥२८
स्तुतिस्मरणपूजाभिर्वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
सुनिश्चला शिवे भक्तिरेतदीश्वरपूजनम् ॥२९
यमाः सनियमाः प्रोक्ताः प्राणायामं निवोधत ।
प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् ॥३०
उत्तमाधममध्यत्वात् त्रिधाऽयं प्रतिपादितः ।
स एव द्विविधः प्रोक्तः सगर्भोऽगर्भ एव च ॥३१
मात्राद्वादशको मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ।
मध्यमः प्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रिकोत्तमः ॥३२
प्रस्वेदकम्पनोत्थानजनकत्वं यथाक्रमम् ।
मन्दमध्यममुख्यानामानन्दादुत्तमोत्तमः ॥३३
सगर्भमाहुः सजपमगर्भं विजपं वुधाः ।
एतद् वै योगिनामुक्तं प्राणायामस्य लक्षणम् ॥३४
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥३५
रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः ।
प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः ॥३६
रेचकोऽजस्रनिश्वासात् पूरकस्तन्निरोधतः ।
साम्येन संस्थितिर्या सा कुम्भकः परिगीयते ॥३७
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः ।
निग्रहः प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तु सत्तमाः ॥३८

विना किसी प्रकार के स्पन्दन के पद एवं अक्षर की सङ्गति के अनुसार सम्पूर्ण शब्दों के चिन्तन को मानस स्वाध्याय कहा जाता जाता है । (२६)

ऋषिगण पुरुष की यत्किञ्चित् लाभ को भी पर्याप्त मानने वाली बुद्धि को नित्य सुखस्वरूप प्रशस्त सन्तोष कहते है । (२७)

हे द्विजोत्तमो ! वाह्य एवं आभ्यन्तर भेद से शौच दो प्रकार का होता है। मिट्टी एवं जल द्वारा वाह्य (शौच) एवं मन की शुद्धि को आभ्यन्तर (शौच) (कहते हैं) । (२८)

वाणी, मन एवं कर्म द्वारा स्तुति, स्मरण एवं पूजा करते हुए शिव में (होने वाली) निश्चल भक्ति को ईश्वर का पूजन कहा जाता है । (२९)

यमों और नियमों का वर्णन हो चुका । अब प्राणायाम का (वर्णन) सुनो । अपनी देह से उत्पन्न होने वाले वायु को प्राण कहते हैं । उसके निरोध को आयाम कहते हैं । (३०)

उत्तम, मध्यम एवं अधम के भेद से यह तीन प्रकार का कहा गया है । वही सगर्भ एवं अगर्भ भेद से दो प्रकार का है । (३१)

द्वादशमात्रा-अर्थात् प्रणवादि का बारह वार जप करने तक-के प्राणनिरोध को मन्द, चौवीस मात्रा के (प्राणनिरोध) को मध्यम एवं छत्तीस मात्रा के (प्राणसंरोध) को उत्तम कहा जाता है । (३२)

मन्द, मध्यम एवं मुख्य नामक ये (तीनों प्रकार के प्राणायाम) क्रमशः स्वेद, कम्पन एवं उत्थान को उत्पन्न करते हैं । (इनके कारण) मनुष्यों को आनन्दपूर्वक उत्तमोत्तम (तत्त्व) का संयोग प्राप्त होता है । (३३)

पण्डितगण जपयुक्त प्राणायाम को सगर्भ एवं जपरहित को अगर्भ कहते हैं । योगियों के प्राणायाम का यही लक्षण कहा गया है । (३४)

प्राणधारणपूर्वक व्याहृति, प्रणव एवं शीर्षमन्त्र सहित गायत्री का तीन वार जप करने को (सगर्भ) प्राणायाम कहा जाता है । (३५)

मन का नियन्त्रण करने वाले योगियों ने शास्त्रों में रेचक, पूरक एवं कुम्भक प्राणायाम का वर्णन किया है । (३६)

(वायु को) सतत बाहर निकालने को रेचक, उसके निरोध को पूरक एवं साम्य भाव से अर्थात् निश्वास निकालते या या ग्रहण न करते हुए स्थित रहने को कुम्भक कहा जाता है । (३७)

हे श्रेष्ठ मुनियो ! विद्वान् लोग स्वभावतः विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों के निग्रह को प्रत्याहार कहते हैं । (३८)

हृत्पुण्डरीके नाभ्यां वा मूर्ध्नि पर्वतमस्तके ।
एवमादिषु देशेषु धारणा चित्तबन्धनम् ।।३९
देशावस्थितिमालम्ब्य बुद्धेर्या वृत्तिसंततिः ।
वृत्त्यन्तरैरसंसृष्टा तद्ध्यानं सूरयो विदुः ।।४०
एकाकारः समाधिः स्याद् देशालम्बनवर्जितः ।
प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगसाधनमुत्तमम् ।।४१
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणाः ।
ध्यानं द्वादशकं यावत् समाधिरभिधीयते ।।४२
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनं तथा ।
साधनानां च सर्वेषामेतत्साधनमुत्तमम् ।।४३
ऊर्वोरुपरि विप्रेन्द्राः कृत्वा पादतले उभे ।
समासीतात्मनः पद्ममेतदासनमुत्तमम् ।।४४
एकं पादमथैकस्मिन् विन्यस्योरुणि सत्तमाः ।
आसीतार्द्धासनमिदं योगसाधनमुत्तमम् ।।४५

हृदयकमल, नाभिप्रदेश, मूर्द्धा, पर्वतशिखर अथवा पर्व अर्थात् सन्धि स्थानों तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों पर चित्त के वन्धन को धारणा कहा जाता है। (३९)

पूर्वोक्त स्थानों पर (चित्त की एकाग्रता रूप) स्थिरता प्राप्त करने के उपरान्त अन्य किसी प्रत्यय से संसृष्ट न होते हुए चित्त की वृत्ति के सतत प्रवाह को विद्वान् लोग ध्यान कहते हैं। (४०)

देशालम्वनरहित (चित्त की) एकाकारता समाधि होती है। (इसमें) अर्थमात्र से (होने वाला) प्रत्यय (होता है)। यह श्रेष्ठ योगशासन है। (४१)

वारह प्राणायाम पर्यन्त (चित्त के निरोध को) धारणा, वारह धारणा पर्यन्त ध्यान एवं द्वादश ध्यान पर्यन्त (चित्त के निरोध को) समाधि कहा जाता है। (४२)

स्वस्तिकासन, पद्मासन एवं अर्द्धासन भेद से आसन (तीन प्रकार का) कहा गया है। सभी साधनों में यह उत्तम साधन है। (४३)

हे विप्रेन्द्रो! अपने दोनों ऊरुओं-अर्थात् रानों के ऊपर दोनों पैरों को रखकर वैठने को उत्तम पद्मासन कहा जाता है। (४४)

उभे कृत्वा पादतले जानूर्वोरन्तरेण हि ।
समासीतात्मनः प्रोक्तमासनं स्वस्तिकं परम् ।।४६
अदेशकाले योगस्य दर्शनं हि न विद्यते ।
अग्न्यभ्यासे जले वाऽपि शुष्कपर्णचये तथा ।।४७
जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।
सशब्दे सभये वाऽपि चैत्यवल्मीकसंचये ।।४८
अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते ।
नाचरेद् देहबाधे वा दौर्मनस्यादिसंभवे ।।४९
सुगुप्ते सुशुभे देशे गुहायां पर्वतस्य तु ।
नद्यास्तीरे पुण्यदेशे देवतायतने तथा ।।५०
गृहे वा सुशुभे रम्ये विजने जन्तुवर्जिते ।
युञ्जीत योगी सततमात्मानं मत्परायणः ।।५१
नमस्कृत्य तु योगीन्द्रान् सशिष्यांश्च विनायकम् ।
गुरुं चैवाथ मां योगी युञ्जीत सुसमाहितः ।।५२

हे मुनिश्रेष्ठो! एक पैर को अन्य ऊरु-अर्थात् जांघ पर रख कर वैठने को अर्धासन कहा जाता है। यह उत्तम योग सावन है। (४५)

दोनों पैरों को जानुओं एवं ऊरुओं के भीतर करके वैठने को श्रेष्ठ स्वास्तिकासन कहा जाता है। (४६)

विरुद्ध देश और काल में योगसाधन नहीं होता। अग्नि के समीप, जल में, सूखे पत्तों के ढेर के मध्य, जन्तुओं से भरे स्थान, श्मशान, टूटे-फूटे घर, चौराहा, शव्द एवं भय युक्त स्थान, चैत्य के समीप, दीमकों से पूर्ण स्थान, अशुभ स्थान, दुर्जनों से आक्रान्त एवं मच्छड़ इत्यादि से परिपूर्ण स्थानों में तथा देह सम्वन्धी कष्ट एवं मन की अस्वस्थता की दशा में योगसाधन नहीं करना चाहिए। (४७-४९)

भलीभाँति सुरक्षित, सुन्दर पवित्र स्थान, पर्वत की गुफा, नदी के तट, पवित्र देश, देवमन्दिर, सुन्दर पवित्र गृह एवं जन्तुओं से रहित स्थानों में मेरा भक्त अपनी आत्मा को योगयुक्त करे। (५०-५१)

श्रेष्ठ योगियों, (उन योगियों के) शिष्यों, गणेश, गुरु एवं मुझ को नमस्कार करने के उपरान्त योगी को सावधानतापूर्वक योगानुष्ठान करना चाहिए। (५२)

आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्द्धमथापि वा ।
नासिकाग्रे समां दृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः ॥५३
कृत्वाऽथ निर्भयः शान्तस्त्यक्त्वा मायामयं जगत् ।
स्वात्मन्यवस्थितं देवं चिन्तयेत् परमेश्वरम् ॥५४
शिखाग्रे द्वादशाङ्गुल्ये कल्पयित्वाऽथ पङ्कजम् ।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम् ॥५५
ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम् ।
चिन्तयेत् परमं कोशं कर्णिकायां हिरण्मयम् ॥५६
सर्वशक्तिमयं साक्षाद् यं प्राहुर्दिव्यमव्ययम् ।
ओंकारवाच्यमव्यक्तं रश्मिजालसमाकुलम् ॥५७
चिन्तयेत् तत्र विमलं परं ज्योतिर्यदक्षरम् ।
तस्मिन् ज्योतिषि विन्यस्य स्वात्मानं तदभेदतः ॥५८
ध्यायीताकाशमध्यस्थमीशं परमकारणम् ।
तदात्मा सर्वगो भूत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥५९
एतद् गुह्यतमं ध्यानं ध्यानान्तरमथोच्यते ।
चिन्तयित्वा तु पूर्वोक्तं हृदये पद्ममुत्तमम् ॥६०
आत्मानमथ कर्त्तारं तत्रानलसमत्विषम् ।
मध्ये वह्निशिखाकारं पुरुषं पञ्चविंशकम् ॥६१
चिन्तयेत् परमात्मानं तन्मध्ये गगनं परम् ।
ओंकारबोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम् ॥६२
अव्यक्तं प्रकृतौ लीनं परं ज्योतिरनुत्तमम् ।
तदन्तः परमं तत्त्वमात्माधारं निरञ्जनम् ॥६३
ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूपं महेश्वरम् ।
विशोध्य सर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुनः ॥६४
संस्थाप्य मयि चात्मानं निर्मले परमे पदे ।
प्लावयित्वात्मनो देहं तेनैव ज्ञानवारिणा ॥६५
मदात्मा मन्मयो भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम् ।
तेनोद्धृत्य तु सर्वाङ्गमग्निरित्यादिमन्त्रतः ।
चिन्तयेत् स्वात्मनीशानं परं ज्योतिःस्वरूपिणम् ॥६६
एष पाशुपतो योगः पशुपाशविमुक्तये ।
सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रममिति श्रुतिः ॥६७

स्वस्तिक, पद्म अथवा अर्द्धासन बाँधकर नासिका के अग्रभाग में किञ्चित् खुली हुयी दृष्टि को स्थिर करके निर्भयतापूर्वक शान्त चित्त से मायामय जगत् का त्याग कर अपने आत्मा में स्थित देव परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए । (५३,५४)

शिखा के अग्रभाग में बारह अंगुल के प्रदेश में धर्म-स्वरूप कन्द से उत्पन्न, ज्ञान रूपी नाल वाले, ऐश्वर्य स्वरूप आठ पत्रों वाले, वैराग्य स्वरूप कर्णिका वाले, अत्यन्त श्वेत एवं सुन्दर कमल की कल्पना करे एवं (उस कमल की) कर्णिका में हिरण्मय परम कोश का चिन्तन करे । (५५,५६)

उस (कोश) में सर्वशक्तिमय, दिव्य, अविनश्वर, ओङ्कारवाच्य, अव्यक्त, रश्मिजाल से आपूर्ण एवं अत्यन्त विमल, अक्षर ज्योति का चिन्तन करे । उस ज्योति में अपने आत्मा की अभेद भावना कर आकाश के मध्य में स्थित परम कारण स्वरूप परमेश्वर का ध्यान करे एवं तादात्म्य भाव से सर्वव्यापी बनकर अन्य किसी वस्तु का चिन्तन न करे । (५७-५९)

यह अत्यन्त गुह्य ध्यान है । अब अन्य ध्यान बतलाता हूँ । (अपने) हृदय में पूर्वोक्त उत्तम पद्म का चिन्तन कर के उस पद्म के भीतर अग्नि तुल्य तेजस्वी, कर्त्ता स्वरूप अग्निशिखा के आकार वाले (सांख्य इत्यादि शास्त्रों में प्रतिपादित प्रकृत्यादि) पच्चीस पदार्थों में परिगणित पच्चीसवें (परम) पुरुषात्मक परमात्मा स्वरूप आत्मा का चिन्तन करना चाहिए । उसके मध्य में परमाकाश होता है । ओङ्कार से अभिहित शाश्वत तत्त्व को अच्युत शिव कहा जाता है । तन्मयतापूर्वक उसके मध्य में परम तत्त्व स्वरूप, आत्मा के आधार, प्रकृति में लीन उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप, अव्यक्त, निरञ्जन, नित्य एवं एकरूप महेश्वर का ध्यान करना चाहिए । अथवा प्रणव द्वारा समस्त तत्त्वों का विशोधन कर निर्मल परम पद स्वरूप मुझमें आत्मा की स्थापना करे एवं उसी ज्ञानरूपी जल से अपने शरीर को आप्लावित कर मुझमें चित्त आसक्त कर एवं मत्परायण होकर अग्नि-होत्र का भस्म ग्रहण करे और "अग्नि" इत्यादि मन्त्र द्वारा अपने सम्पूर्ण शरीर को लिप्त कर परम ज्योति-स्वरूप, अपने आत्मा रूपी ईशान का चिन्तन करे । (६०-६६)

पशु-अर्थात् जीव-के पाश-अर्थात् जन्ममरण स्वरूप सांसारिक कर्मबन्धन-से मुक्ति प्राप्त करने-के लिये यह

एतत् परतरं गुह्यं मत्सायुज्योपपादकम् ।
द्विजातीनां तु कथितं भक्तानां ब्रह्मचारिणाम् ।।६८
ब्रह्मचर्यमहिंसा च क्षमा शौचं तपो दमः ।
संतोषः सत्यमास्तिक्यं व्रताङ्गानि विशेषतः ।।६९
एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमस्य तु लुप्यते ।
तस्मादात्मगुणोपेतो मद्व्रतं वोढुमर्हति ।।७०
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः ।।७१
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
ज्ञानयोगेन मां तस्माद् यजेत परमेश्वरम् ।।७२
अथवा भक्तियोगेन वैराग्येण परेण तु ।
चेतसा बोधयुक्तेन पूजयेन्मां सदा शुचिः ।।७३

पाशुपत योग कहा गया है। श्रुति के अनुसार यह मार्ग सभी वेदान्त का सार स्वरूप एवं सभी आश्रमों में श्रेष्ठ है। (६७)

इस (मार्ग) को अत्यन्त गोपनीय एवं ब्रह्मचर्य युक्त भक्त द्विजातियों को मेरा सायुज्य देने वाला कहा गया है। (६८)

ब्रह्मचर्य, अहिंसा, क्षमा, शौच, तप, दम, सन्तोष, सत्य एवं आस्तिक्य ये सभी (इस) व्रत के विशेष अङ्ग हैं। (६९)

(उपर्युक्त व्रत के अङ्गों में से) एक के भी न होने से (साधक का) व्रत लुप्त हो जाता है। अतः (उपर्युक्त) आत्मिक गुणों से युक्त मनुष्य (ही) मेरा व्रत धारण करने का अधिकारी होता है। (७०)

राग, भय एवं क्रोध से रहित, मत्परायण एवं मेरे आश्रित अनेक लोग इस योग द्वारा मेरा भाव प्राप्त कर पवित्र हो चुके हैं। (७१)

जो लोग जिस प्रकार से मेरे पास आते हैं मैं भी उसी प्रकार उन्हें स्वीकार करता हूँ। अतएव ज्ञानयोग द्वारा मुझ परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये। (७२)

अथवा भक्तियोग, उत्कृष्ट वैराग्य एवं ज्ञानयुक्त चित्त द्वारा पवित्रता पूर्वक मेरी पूजा करनी चाहिये। (७३)

सर्वकर्माणि संन्यस्य भिक्षाशी निष्परिग्रहः ।
प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम् ।।७४
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारो यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।७५
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनो बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।७६
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स हि मे प्रियः ।।७७
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ।।७८
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्मद्भक्तो मामुपैष्यति ।।७९

सभी कर्मों का त्याग कर भिक्षा (द्वारा प्राप्त आहार) ग्रहण करते हुए एवं कुछ भी संग्रह न करते हुए (मेरी आराधना करने वाला व्यक्ति) मेरा सायुज्य प्राप्त करता है। मैंने (आप लोगों को) यह गोपनीय तत्त्व बतलाया है। (७४)

सभी प्राणियों से द्वेष न करने वाला, मैत्री करने वाला, करुणायुक्त एवं ममता रहित जो मेरा निरहङ्कारी भक्त होता है वह मुझे प्रिय होता है। (७५)

सन्तुष्ट, सतत योगानुष्ठान करने वाला, संयमितचित्त, दृढनिश्चयी एवं मुझको अपना मन और बुद्धि अर्पित करने वाला जो मेरा भक्त होता है वह मुझे प्रिय होता है। (७६)

जिसके कारण लोक उद्विग्न नहीं होता एवं जो लोक से उद्विग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष एवं भय से होने वाले उद्वेगों से मुक्त होता है वह मुझे प्रिय होता है। (७७)

(कोई) अपेक्षा न रखने वाला, पवित्र, आलस्य रहित, उदासीन, व्यथाशून्य एवं सभी प्रकार के आरम्भों का परित्याग करने वाला भक्तियुक्त जो है, वह मुझे प्रिय होता है। (७८)

निन्दा और स्तुति में समान भाव रखने वाला, मौन व्रतधारी, यत्किञ्चित् (उपलब्ध पदार्थ) से सन्तुष्ट रहने वाला, गृहरहित एवं स्थिर बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझे प्राप्त करता है। (७९)

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मत्परायणः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं परमं पदम् ।।८०
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा मामेकं शरणं व्रजेत् ।।८१
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव तेन निबध्यते ।।८२
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति तत्पदम् ।।८३
यदृच्छालाभतुष्टस्य द्वन्द्वातीतस्य चैव हि ।
कुर्वतो मत्प्रसादार्थं कर्म संसारनाशनम् ।।८४
मन्मना मन्नमस्कारो मद्याजी मत्परायणः ।
मामुपैष्यति योगीशं ज्ञात्वा मां परमेश्वरम् ।।८५
मद्बुद्धयो मां सततं बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं मम सायुज्यमाप्नुयुः ।।८६
एवं नित्याभियुक्तानां मायेयं कर्मसान्वगम् ।
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन भास्वता ।।८७
मद्बुद्धयो मां सततं पूजयन्तीह ये जनाः ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।८८
येऽन्ये च कामभोगार्थं यजन्ते ह्यन्यदेवताः ।
तेषां तदन्तं विज्ञेयं देवतानुगतं फलम् ।।८९
ये चान्यदेवताभक्ताः पूजयन्तीह देवताः ।
मद्भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि भावतः ।।९०
तस्मादनीश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवानशेषतः ।
मामेव संश्रयेदीशं स याति परमं पदम् ।।९१
त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निःशोको निष्परिग्रहः ।
यजेच्चामरणाल्लिङ्गे विरक्तः परमेश्वरम् ।।९२

सदा सभी कर्मों को करने वाला मत्परायण व्यक्ति भी मेरे अनुग्रह से शाश्वत परम पद को प्राप्त करता है । (८०)

चित्त से सम्पूर्ण कर्मों को मुझे अर्पित करने के उपरान्त आशा और ममता का त्याग कर मत्परायण व्यक्ति को एकमात्र मेरी शरण में आना चाहिये । (८१)

नित्यतृप्त आश्रय रहित पुरुष कर्मफल की आसक्ति छोड़कर कर्म करते रहने पर भी उस कर्म के बन्धन में नहीं पड़ता । (८२)

आशारहित, संयतचित्त एवं सभी पदार्थों का त्याग करने वाला व्यक्ति केवल शारीरिक कर्म करते हुए उस (मोक्ष) पद को प्राप्त कर लेता है । (८३)

अकस्मात् प्राप्त होने वाले पदार्थों से तृप्त रहने वाले (सुख-दुःख आदि) द्वन्द्वों से परे पुरुष द्वारा मेरी प्रसन्नता के लिए किये जा रहे कर्म संसार (के बन्धन) का नाश करते हैं । (८४)

मुझ में मन लगाने वाला, मुझे नमस्कार करने वाला एवं मेरी आराधना करने वाला मत्परायण व्यक्ति मुझ योगीश परमेश्वर को जानकर मुझे प्राप्त करता है । (८५)

मुझे जानने वाले (पुरुष) परस्पर एक दूसरे को (मेरा स्वरूप) समझाते हुए एवं मेरा वर्णन करते हुए सायुज्य प्राप्त करते हैं । (८६)

इस प्रकार मैं नित्य योगयुक्त पुरुष के इस कर्मानुसारिणी माया एवं तमोगुणात्मक सम्पूर्ण (अज्ञान) को जाज्वल्यमान ज्ञानरूपी दीपक द्वारा नष्ट कर देता हूँ । (८७)

इस संसार में जो मनुष्य मुझ में चित्त लगाकर मेरा पूजन करते हैं उन नित्य योगयुक्त पुरुषों के योगक्षेम का मैं निर्वाह करता हूँ । (८८)

अन्य लोग जो भोग एवं कर्म के प्रयोजन से दूसरे देवों की आराधना करते हैं उनका परिणाम भी वैसा ही समझना चाहिए । क्योंकि देवता के अनुसार ही फल होता है । (८९)

दूसरे देवों के भक्त जो लोग मेरी भावना से युक्त होकर देवों की पूजा करते हैं वे भी भाव के कारण मुक्त हो जाते हैं । (९०)

अतएव अन्य सभी असमर्थ देवों को त्याग कर जो मुझ ईश का ही ग्रहण करता है वह परम गति प्राप्त करता है । (९१)

पुत्रादिकों के प्रति स्नेह का परित्याग कर तथा शोकरहित एवं अपरिग्रही होकर विरक्त पुरुष को मरणपर्यन्त लिङ्गस्वरूप परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये । (९२)

येऽर्चयन्ति सदा लिङ्गं त्यक्त्वा भोगानशेषतः ।
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमैश्वरम् ॥९३
परानन्दात्मकं लिङ्गं केवलं सन्निरञ्जनम् ।
ज्ञानात्मकं सर्वगतं योगिनां हृदि संस्थितम् ॥९४
ये चान्ये नियता भक्ता भावयित्वा विधानतः ।
यत्र क्वचन तल्लिङ्गमर्चयन्ति महेश्वरम् ॥९५
जले वा वह्निमध्ये वा व्योम्नि सूर्येऽथ वाऽन्यतः ।
रत्नादौ भावयित्वेशमर्चयेल्लिङ्गमैश्वरम् ॥९६
सर्वं लिङ्गमयं ह्येतत् सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम् ।
तस्माल्लिङ्गेऽर्चयेदीशं यत्र क्वचन शाश्वतम् ॥९७
अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम् ।
काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गं तु योगिनाम् ॥९८
यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः ।
यावज्जीवं जपेद् युक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः ॥९९

सम्पूर्ण भोगों को त्यागकर जो सदा लिङ्ग की पूजा करते हैं (मैं) उन्हें एक ही जन्म में परम ऐश्वर्य प्रदान करता हूँ। (९३)

परमानन्द स्वरूप, अद्वितीय, सत्स्वरूप, निरञ्जन ज्ञानात्मक एवं सर्वव्यापी लिङ्ग सदा योगियों के हृदय में स्थित रहता है। (९४)

नियमपूर्वक भक्ति करने वाले दूसरे लोग विधान के अनुसार जहाँ कहीं भी उन लिङ्गस्वरूप महेश्वर की पूजा करते हैं। (९५)

जल, अग्नि, आकाश, सूर्य अथवा रत्न इत्यादि अन्य कहीं भी ईश्वरीय लिङ्ग की भावना करके ईश की अर्चना करनी चाहिए। (९६)

यह (सम्पूर्ण जगत्) लिंगमय है एवं यह (सम्पूर्ण संसार) लिङ्ग में ही प्रतिष्ठित है। अतएव जहाँ कहीं भी लिङ्ग स्वरूप में, शाश्वत ईश की आराधना करनी चाहिए। (९७)

क्रियाशीलों का (लिङ्ग) अग्नि में, मनीषियों का जल, आकाश एवं सूर्य में, मूर्खों का काष्टादि में तथा योगियों का लिङ्ग हृदय में स्थित होता है। (९८)

जिसे ज्ञान नहीं हुआ है उस पुरुष को वैराग्य एवं प्रीतिपूर्वक जीवनपर्यन्त एकाग्र मन से ब्रह्म के शरीर स्वरूप प्रणव का जप करना चाहिए। (९९)

अथवा शतरुद्रीयं जपेदामरणाद् द्विजः ।
एकाकी यतचित्तात्मा स याति परमं पदम् ॥१००
वसेद् वामरणाद् विप्रो वाराणस्यां समाहितः ।
सोऽपीश्वरप्रसादेन याति तत् परमं पदम् ॥१०१
तत्रोत्क्रमणकाले हि सर्वेषामेव देहिनाम् ।
ददाति तत् परं ज्ञानं येन मुच्येत बन्धनात् ॥१०२
वर्णाश्रमविधिं कृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायणः ।
तेनैव जन्मना ज्ञानं लब्ध्वा याति शिवं पदम् ॥१०३
येऽपि तत्र वसन्तीह नीचा वा पापयोनयः ।
सर्वे तरन्ति संसारमीश्वरानुग्रहाद् द्विजाः ॥१०४
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम् ।
धर्मं समाश्रयेत् तस्मान्मुक्तये नियतं द्विजाः ॥१०५
एतद् रहस्यं वेदानां न देयं यस्य कस्य चित् ।
धार्मिकायैव दातव्यं भक्ताय ब्रह्मचारिणे ॥१०६

अथवा संयतचित्त वाले एकाकी द्विजों को मरण पर्यन्त शतरुद्रिय का जप करना चाहिए। (ऐसा करने से) वह परम पद प्राप्त करता है। (१००)

हे विप्रो! जो पुरुष एकाग्र मन से मरण पर्यन्त वाराणसी में निवास करता है उसे भी ईश्वर के अनुग्रह से वह परम पद प्राप्त होता है। (१०१)

वहाँ अर्थात् वाराणसी में प्राण निकलने के समय (महेश्वर) सभी प्राणियों को श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करते हैं जिससे (प्राणी) वन्धन से मुक्त हो जाता है। (१०२)

मेरा भक्त सम्पूर्ण वर्णाश्रम विधि का पालन करते हुए उसी जन्म में ज्ञान प्राप्त कर कल्याणमय पद प्राप्त करता है। (१०३)

हे द्विजो! नीच एवं पापयोनियों के भी प्राणी जो वहाँ निवास करते हैं वे ईश्वर के अनुग्रह से संसार से तर जाते हैं। (१०४)

किन्तु पापाक्रान्त चित्त वाले मनुष्यों को (वहाँ निवास करने में) विघ्न होते हैं। अतएव हे द्विजो! मुक्ति के लिये निरन्तर धर्म आचरण करना चाहिए। (१०५)

वेदों का यह रहस्य जिस किसी को नहीं वतलाना चाहिए। धार्मिक ब्रह्मचारी भक्त को ही (इस रहस्य का ज्ञान) प्रदान करना चाहिए। (१०६)

व्यास उवाच ।

इत्येतदुक्त्वा भगवानात्मयोगमनुत्तमम् ।
व्याजहार समासीनं नारायणमनामयम् ॥१०७
मयैतद् भाषितं ज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनाम् ।
दातव्यं शान्तचित्तेभ्यःशिष्येभ्यो भवता शिवम्॥१०८
उक्त्वैवमथ योगीन्द्रानब्रवीद् भगवानजः ।
हिताय सर्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः ॥१०९
भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं शिष्याणां विधिपूर्वकम्।
उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम ॥११०
अयं नारायणो योऽहमीश्वरो नात्र संशयः ।
नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदं परम् ॥१११
ममैषा परमा मूर्त्तिर्नारायणसमाह्वया ।
सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसंज्ञिता ॥११२
ये त्वन्यथा प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जनाः ।
न ते मां संप्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः ॥११३
ये त्विमं विष्णुमव्यक्तं मां वा देवं महेश्वरम् ।
एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः ॥११४
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम् ।
मामेव संप्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव हि ॥११५
येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति मत्वेमं देवतान्तरम् ।
ते यान्ति नरकान् घोरान् नाहं तेषु व्यवस्थितः॥११६
मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम् ।
मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम् ॥११७
तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः ।
अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय हि ॥११८
एवमुक्त्वा समालिङ्ग्य वासुदेवं पिनाकधृक् ।
अन्तर्हितोऽभवत् तेषां सर्वेषामेव पश्यताम् ॥११९
नारायणोऽपि भगवांस्तापसं वेषमुत्तमम् ।
जग्राह योगिनः सर्वांस्त्यक्त्वा वै परमं वपुः ॥१२०

व्यास ने कहा—इस प्रकार उत्तम आत्मयोग का वर्णन करने के उपरान्त सनातन भगवान् ने बैठे हुए निर्दोष नारायण से कहा— (१०७)

मैंने ब्रह्मज्ञानियों के कल्याणार्थ यह ज्ञान कहा है। आप (यह) कल्याणकारी (ज्ञान) शान्तचित्त शिष्यों को प्रदान करो। (१०८)

अजन्मा भगवान् ने ऐसा कहने के अनन्तर (उन) श्रेष्ठ योगियों से कहा। हे द्विजोत्तमो! सभी भक्त द्विजातियों के हितार्थ आप लोग भी मेरे आदेश से सभी भक्त शिष्यों को विधिपूर्वक मेरे ज्ञान का उपदेश करेंगे। (१०९, ११०)

जो ये नारायण हैं वह मैं ईश्वर ही हूँ इसमें सन्देह नहीं। जो मनुष्य (मुझमें और इनमें कोई) अन्तर नहीं देखते उन्हें यह श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करना चाहिए।(१११)

नारायण नामक शान्त एवं अक्षर नामक मेरी यह श्रेष्ठ मूर्त्ति सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहती है। (११२)

संसार में भेदबुद्धि रखने वाले जो लोग अन्य प्रकार से मेरा ज्ञान करते हैं वे मुझे नहीं देख पाते एवं उन्हें पुनः-पुनः जन्म लेना पड़ता है। (११३)

जो लोग इन अव्यक्त विष्णु और मुझ महेश्वर देव को एक भाव से देखते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता।(११४)

अतः आदि और अन्तरहित आत्मस्वरूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और उसी प्रकार पूजा करो। (११५)

जो लोग इन विष्णु को (मुझसे भिन्न) दूसरा देवता मानकर मेरा भिन्न रूप से साक्षात्कार करते हैं वे घोर नरकों में जाते हैं। मैं उन लोगों में व्यवस्थित नहीं हूँ। (११६)

(मैं) अपने आश्रित मूर्ख या पण्डित, ब्राह्मण अथवा चाण्डाल को मुक्त कर देता हूँ। किन्तु, नारायण की निन्दा करने वाले को नहीं (मुक्त करता)। (११७)

अस्तु, मेरी प्रीति उत्पन्न करने के लिये मेरे भक्त महायोगियों को इन पुरुषोत्तम की पूजा एवं वन्दना करनी चाहिये। (११८)

ऐसा कहने के उपरान्त वासुदेव का आलिंगन कर वे पिनाकधारी (शिव) उन सभी लोगों के देखते ही देखते अन्तर्हित हो गए। (११९)

भगवान् नारायण ने भी अपने पारमार्थिक शरीर का त्यागकर उत्तम तपस्वी का वेष धारण किया और सभी योगियों से कहा। (१२०)

ज्ञातं भवद्भिरमलं प्रसादात् परमेष्ठिनः ।
साक्षादेव महेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम् ।।१२१
गच्छध्वं विज्वराः सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः ।
प्रवर्त्तयध्वं शिष्येभ्यो धार्मिकेभ्यो मुनीश्वराः।।१२२
इदं भक्ताय शान्ताय धार्मिकायाहिताग्नये ।
विज्ञानमैश्वरं देयं ब्राह्मणाय विशेषतः ।।१२३
एवमुक्त्वा स विश्वात्मा योगिनां योगवित्तमः ।
नारायणो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम् ।।१२४
तेऽपि देवादिदेवेशं नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
नारायणं च भूतादिं स्वानि स्थानानि भेजिरे ।।१२५
सनत्कुमारो भगवान् संवर्त्ताय महामुनिः ।
दत्तवानैश्वरं ज्ञानं सोऽपि सत्यव्रताय तु ।।१२६
सनन्दनोऽपि योगीन्द्रः पुलहाय महर्षये ।
प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापतिः ।।१२७
अङ्गिरा वेदविदुषे भरद्वाजाय दत्तवान् ।
जैगीषव्याय कपिलस्तथा पञ्चशिखाय च ।।१२८
पराशरोऽपि सनकात् पिता मे सर्वतत्त्वदृक् ।
लेभे तत्परमं ज्ञानं तस्माद् वाल्मीकिराप्तवान् ।।१२९
ममोवाच पुरा देवः सतीदेहभवाङ्गजः ।
वामदेवो महायोगी रुद्रः किल पिनाकधृक् ।।१३०
नारायणोऽपि भगवान् देवकीतनयो हरिः ।
अर्जुनाय स्वयं साक्षात् दत्तवानिदमुत्तमम् ।।१३१
यदहं लब्धवान् रुद्राद् वामदेवादनुत्तमम् ।
विशेषाद् गिरिशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत् ।।१३२
शरण्यं शरणं रुद्रं प्रपन्नोऽहं विशेषतः ।
भूतेशं गिरिशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशूलिनम् ।।१३३
भवन्तोऽपि हि तं देवं शंभुं गोवृषवाहनम् ।
प्रपद्यध्वं सपत्नीकाः सपुत्राः शरणं शिवम् ।।१३४
वर्त्तध्वं तत्प्रसादेन कर्मयोगेन शंकरम् ।
पूजयध्वं महादेवं गोपतिं भूतिभूषणम् ।।१३५

परमेष्ठी (शङ्कर) के अनुग्रह से आप लोगों को साक्षात् देव महेश्वर का संसार नाशक निर्मल ज्ञान प्राप्त हुआ है। (१२१)

अतएव हे मुनीश्वरो ! सन्ताप को छोड़कर आप सभी लोग जाँय और धार्मिक शिष्यों को परमेष्ठी का ज्ञान प्रदान करें। (१२२)

यह ईश्वरीय ज्ञान विशेषरूप से धार्मिक अग्निहोत्री शान्तचित्त ब्राह्मण भक्त को प्रदान करना चाहिए। (१२३)

ऐसा कहने के उपरान्त योगियों में श्रेष्ठ योगी वे विश्वात्मा महायोगी नारायण स्वयं अन्तर्हित हो गए। (१२४)

वे (ऋषि) लोग भी देवाधिदेव महेश्वर एवं भूतादि नारायण को नमस्कार कर अपने स्थानों पर चले गए। (१२५)

महामुनि भगवान् सनत्कुमार ने संवर्त्त को ईश्वरीय ज्ञान प्रदान किया और उन्होंने भी सत्यव्रत को (उपदेश दिया)। योगीन्द्र सनन्दन ने महर्षि पुलह को एवं तदनन्तर प्रजापति पुलह ने गौतम को (वह ज्ञान) प्रदान किया। (१२६,१२७)

अङ्गिरा ने वेदों के विद्वान् भरद्वाज को (वह ज्ञान) प्रदान किया। कपिल ने जैगीषव्य एवं पञ्चशिख को (ईश्वरीय ज्ञान प्रदान किया)। (१२८)

सनक (मुनि) से सभी तत्त्वों के द्रष्टा मेरे पिता पराशर ने एवं उनसे वाल्मीकि ने उस श्रेष्ठ (ईश्वरीय) ज्ञान को प्राप्त किया। (१२९)

प्राचीन काल में पार्वती के पुत्र कार्त्तिकेय के शरीर से उत्पन्न महायोगी पिनाकधारी कालरूपी रुद्रस्वरूप वामदेव ने मुझसे (वह ज्ञान) कहा था। (१३०)

देवकीपुत्र साक्षात् नारायण भगवान् हरि ने स्वयं अर्जुन को यह उत्तम ज्ञान प्रदान किया था। (१३१)

मैंने वामदेव रुद्र से जब श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त किया उसी समय से शङ्कर में मुझे विशेष भक्ति उत्पन्न हुयी। मैं शरणागतों के हितकारी गिरीश, आश्रयस्वरूप रुद्र, भूतेश, स्थाणु, एवं देवाधिदेव त्रिशूली (शङ्कर) का शरणागत हुआ हूँ। (१३२, १३३)

आप सभी लोग भी पत्नी और पुत्रों सहित उन गोवृषवाहन, शरणदाता कल्याणस्वरूप शम्भु देव के शरणागत हो जाँय। (१३४)

उनके अनुग्रह से कर्मयोग का आचरण करें एवं भूतिभूषण गोपति महादेव शङ्कर की पूजा करें। (१३५)

एवमुक्तेऽथ मुनयः शौनकाद्या महेश्वरम् ।
प्रणेमुः शाश्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवतीसुतम् ।।१३६
अब्रुवन् हृष्टमनसः कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ।
साक्षादेव हृषीकेशं सर्वलोकमहेश्वरम् ।।१३७
भवत्प्रसादादचला शरण्ये गोवृषध्वजे ।
इदानीं जायते भक्तिर्या देवैरपि दुर्लभा ।।१३८
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ कर्मयोगमनुत्तमम् ।
येनासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः ।।१३९
त्वत्संनिधावेष सूतः शृणोतु भगवद्वचः ।
तद्वदाखिललोकानां रक्षणं धर्मसंग्रहम् ।।१४०
यदुक्तं देवदेवेन विष्णुना कूर्मरूपिणा ।
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं शक्रेणामृतमन्थने ।।१४१
श्रुत्वा सत्यवतीसूनुः कर्मयोगं सनातनम् ।
मुनीनां भाषितं कृष्णः प्रोवाच सुसमाहितः ।।१४२
य इमं पठते नित्यं संवादं कृत्तिवाससः ।
सनत्कुमारप्रमुखैः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१४३
श्रावयेद् वा द्विजान् शुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान् ।
यो वा विचारयेदर्थं स याति परमां गतिम् ।।१४४
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।१४५
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः ।
श्रोतव्यश्चाथ मन्तव्यो विशेषाद् ब्राह्मणैः सदा ।।१४६

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे (ईश्वरगीतासु) एकादशोऽध्यायः ।।११।।

(ईश्वरगीता समाप्ता)

ऐसा कहे जाने पर उन शौनक इत्यादि (महर्षियों) ने पुनः शाश्वत स्थाणु महेश्वर एवं सत्यवती के पुत्र व्यास को प्रणाम किया । (१३६)

प्रसन्न मन से (उन लोगों ने) साक्षात् देव हृषीकेश सर्वलोकमहेश्वर प्रभु कृष्णद्वैपायन से कहा । (१३७)

आपकी कृपा से (हमें) अब शरणागत हितकारी गोवृषभध्वज (शङ्कर) में देवों को भी दुर्लभ एवं अचल भक्ति प्राप्त हुयी । (१३८)

हे मुनिश्रेष्ठ ! (आप उस) कर्मयोग का वर्णन करें जिसके द्वारा मोक्षार्थी लोग इन भगवान् ईश की आराधना करते हैं । (१३९)

आपकी उपस्थिति में ये सूत (आप) भगवान् के वचन को श्रवण करें । अतः आप सम्पूर्ण लोकों की रक्षा करने वाले धर्म-संग्रह का वर्णन करें । (१४०)

अमृतमन्थन के समय इन्द्र एवं मुनियों के पूछने पर कूर्मरूपधारी देवाधिदेव विष्णु ने जिसका वर्णन किया था (आप उसी कर्मयोग का वर्णन करें) । (१४१)

(मुनियों के वचन को) सुनकर सत्यवती के पुत्र कृष्णद्वैपायन ने एकाग्रचित्त से मुनियों को सनातन कर्मयोग बतलाया । (१४२)

सनत्कुमार इत्यादि मुनियों से हुए कृत्तिवास (शङ्कर) के इस संवाद को जो नित्य पढ़ता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है । (१४३)

जो ब्रह्मचर्यपरायण शुद्ध द्विजों को यह सुनाता अथवा इसके अर्थ का विचार करता है उसे परम गति प्राप्त होती है । (१४४)

जो दृढ़व्रती भक्तियुक्त व्यक्ति नित्य इसे सुनता है वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है । (१४५)

अतएव विशेषरूप से बुद्धिमान् ब्राह्मणों को नित्य इसका पाठ, श्रवण एवं मनन करना चाहिए । (१४६)

छः सहस्त्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में (ईश्वरगीता के अन्तर्गत) ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त—११.

(ईश्वर गीता समाप्त)

१२

व्यास उवाच ।
श्रृणुध्वमृषयः सर्वे वक्ष्यमाणं सनातनम् ।
कर्मयोगं ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम् ॥१
आम्नायसिद्धमखिलं ब्रह्मणानुप्रदर्शितम् ।
ऋषीणां श्रृण्वतां पूर्वं मनुराह प्रजापतिः ॥२
सर्वपापहरं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ।
समाहितधियो यूयं श्रृणुध्वं गदतो मम ॥३
कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमाः ।
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥४
दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनधरो मुनिः ।
भिक्षाहारो गुरुहितो वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥५
कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा ।
ब्राह्मणानां त्रिवित् सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा ॥६
सदोपवीती चैव स्यात् सदा बद्धशिखो द्विजः ।
अन्यथा यत् कृतं कर्म तद् भवत्ययथाकृतम् ॥७
वसेदविकृतं वासः कार्पासं वा कषायकम् ।
तदेव परिधानीयं शुक्लमच्छिद्रमुत्तमम् ॥८
उत्तरं तु समाख्यातं वासः कृष्णाजिनं शुभम् ।
अभावे गव्यमजिनं रौरवं वा विधीयते ॥९
उद्धृत्य दक्षिणं बाहुं सव्ये बाहौ समर्पितम् ।
उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतं कण्ठसज्जने ॥१०
सव्यं बाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजाः ।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि योजयेत् ॥११

१२

व्यास ने कहा—हे सभी ऋषियो ! ब्राह्मणों को मोक्षप्रद सनातन कर्मयोग का वर्णन सुनो—जिसका वर्णन किया जा रहा है। (१)

पूर्वकाल में प्रजापति मनु ने सुनने वाले ऋषियों को ब्रह्मा द्वारा प्रदर्शित वेद-विहित, समस्त पापों को दूर करने वाले एवं ऋषि समूह से सेवित इस कर्मयोग को बतलाया था। आपलोग एकाग्रचित्त से मेरे द्वारा कहे जा रहे (इस कर्मयोग को) सुनें। (२, ३)

हे द्विजोत्तमो ! गर्भ से अष्टम अथवा अष्टम वर्ष की आयु में अपने अपने गृह्यसूत्रोक्त विधान के अनुसार उपनयन संस्कार से युक्त होकर दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत एवं कृष्णमृगचर्मधारी होकर मननशील व्यक्ति को भिक्षा से प्राप्त आहार करते हुए गुरु के हित में तत्पर रहकर गुरु का मुख देखते हुए वेदाध्ययन करना चाहिए। (४, ५)

प्राचीनकाल में ब्रह्मा ने यज्ञोपवीत के लिए कपास का निर्माण किया था। ब्राह्मणों का (यज्ञोपवीत) त्रिवृत् अर्थात् तिहरा होना चाहिये। वह कुश का हो या वस्त्र का हो। (६)

द्विज को सदा यज्ञोपवीत धारण किये एवं शिखा बाँधे रहना चाहिए। अन्यथा (वह) जो कर्म करता है वह निष्फल होता है। (७)

कपास या रेशम का बना हुआ विकार-रहित वस्त्र धारण करना चाहिए। स्वच्छ एवं छिद्ररहित वही (वस्त्र) उत्तम होता है। (८)

ऊपर के वस्त्र के लिए कृष्णसार मृग के शुभ चर्म का विधान किया गया है। उसके अभाव में गाय के चर्म या रुरु नामक मृग के चर्म का (उत्तरीय) बनाना चाहिए। (९)

दाहिना हाथ उठा कर बायें हाथ के ऊपर स्थापित यज्ञसूत्र को उपवीत कहा जाता है एवं कण्ठ में लटके रहने पर उसको निवीत कहा जाता है। (१०)

हे द्विजो ! बायाँ हाथ बाहर निकालकर दाहिने बाहु के ऊपर रखे हुए (यज्ञसूत्र) को प्राचीनावीत कहा जाता है। इसका प्रयोग पितृकर्म में करना चाहिए। (११)

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे होमे जप्ये तथैव च ।
स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानां च सन्निधौ ।।१२
उपासने गुरूणां च संध्ययोः साधुसंगमे ।
उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः ।।१३
मौञ्जी त्रिवृत् समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
मुञ्जाभावे कुशेनाहुर्ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः ।।१४
धारयेद् वैल्वपालाशौ दण्डौ केशान्तकौ द्विजः ।
यज्ञार्हवृक्षजं वाऽथ सौम्यमव्रणमेव च ।।१५
सायं प्रातर्द्विजः संध्यामुपासीत समाहितः ।
कामाल्लोभाद् भयान्मोहात् त्यक्तेन पतितो भवेत् ।।१६
अग्निकार्यं ततः कुर्यात् सायं प्रातः प्रसन्नधीः ।
स्नात्वा संतर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ।।१७
देवताभ्यर्चनं कुर्यात् पुष्पैः पत्रेण वाऽम्बुभिः ।
अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धेषु धर्मतः ।।१८
असावहं भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम् ।
आयुरारोग्यसिद्धयर्थं तन्द्रादिपरिवर्जितः ।।१९
आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ।।२०
न कुर्याद् योऽभिवादस्य द्विजः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ।।२१
व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः ।।२२
लौकिकं वैदिकं चापि तथाध्यात्मिकमेव वा ।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ।।२३
नोदकं धारयेद् भैक्षं पुष्पाणि समिधस्तथा ।
एवंविधानि चान्यानि न दैवाद्येषु कर्मसु ।।२४
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव तु ।।२५

यह सनातन विधि है कि यज्ञशाला, गोशाला, होम एवं जप सम्बन्धी कर्म, स्वाध्याय, भोजन, ब्राह्मणों की सन्निधि, गुरुओं के समीप बैठने, दोनों सन्ध्याओं एवं साधु समागम के काल में नित्य उपवीत युक्त रहना चाहिए । (१२, १३)

ब्राह्मण को मूँज की त्रिवृत् अर्थात् तिहरी, बराबर तथा चिकनी मेखला बनानी चाहिए । अथवा हे विप्रो ! (मूँज के अभाव में) कुश की एक ग्रन्थि अथवा तीन ग्रन्थियों से युक्त मेखला बनानी चाहिए । (१४)

द्विज को केशान्त तक के परिमाण का बेल, पलाश अथवा किसी यज्ञीय वृक्ष का सुन्दर एवं छिद्ररहित अर्थात् बिना फटा हुआ दण्ड धारण करना चाहिए । (१५)

द्विज को एकाग्रतापूर्वक सायं एवं प्रातःकाल सन्ध्या करनी चाहिए । काम, लोभ, भय अथवा मोह से इसका त्याग करने से (द्विज) पतित हो जाता है । (१६)

तदनन्तर प्रसन्न चित्त से सायं एवं प्रातःकाल अग्निकार्य अर्थात् हवन करना चाहिए । स्नान के उपरान्त देवों, ऋषियों एवं पितरों का तर्पण करना चाहिए । (१७)

पुष्प, पत्र एवं जल के द्वारा देवताओं का पूजन करना चाहिये । आयु एवं आरोग्य की प्राप्ति के लिये आलस्य आदि का परित्याग कर प्रणाम करते हुये 'यह मैं अमुक नाम का हूँ ।' (यह कहकर) धर्मपूर्वक वृद्धों का नित्य अभिवादन करना चाहिए । (१८, १९)

अभिवादन करने पर विप्र के लिये कहना चाहिए 'हे सौम्य ! तुम आयुष्मान् होओ ।' उस (अभिवादक) के नाम के अन्त में अकार एवं उसके पूर्व के वर्ण को प्लुत स्वर में बोलना चाहिए । (२०)

जो द्विज अभिवादन का (उत्तर) प्रत्यभिवादन से नहीं करता, विद्वान् को उसका अभिवादन नहीं करना चाहिए । क्योंकि वह (द्विज) शूद्र के तुल्य होता है । (२१)

गुरु के चरणों का स्पर्श व्यत्यस्तपाणि होकर—अर्थात् दोनों हाथों को एक दूसरे के ऊपर रख कर करना चाहिए । इस प्रकार बायें हाथ से बायें पैर और दाहिने हाथ से दाहिने पैर का स्पर्श करना चाहिए । (२२)

सर्वप्रथम उसका अभिवादन करना चाहिए जिससे लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो । (२३)

देवादि कर्मों में उदक, पुष्प, समिधा एवं इसी प्रकार के अन्य पदार्थ भिक्षा में प्राप्तकर नहीं धारण करना चाहिए । (२४)

(परस्पर मिलने पर) ब्राह्मण से कुशल क्षत्रिय से अनामय अर्थात् रोगराहित्य, वैश्य से क्षेम एवं शूद्र से आरोग्य (विषयक) प्रश्न करना चाहिए । (२५)

उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः ।
मातुलः श्वशुरस्त्राता मातामहपितामहौ ।
वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च पुंसोऽत्र गुरवः स्मृताः ।।२६
माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः ।
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्त्रियः ।।२७
इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतो द्विजाः ।
अनुवर्त्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः ।।२८
गुरुं दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
नैतैरुपविशेत् सार्द्धं विवदेन्नात्मकारणात् ।।२९
जीवितार्थमपि द्वेषाद् गुरुभिर्नैव भाषणम् ।
उदितोऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यधः ।।३०
गुरूणामपि सर्वेषां पूज्याः पञ्च विशेषतः ।
तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता ।।३१
यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते ।
ज्येष्ठो भ्राता च भर्त्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः ।।३२
आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः ।
पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता ।।३३
यावत् पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ ।
तावत् सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात् तत्परायणः ।।३४
पिता माता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि ।
स पुत्रः सकलं धर्ममाप्नुयात् तेन कर्मणा ।।३५
नास्ति मातृसमं दैवं नास्ति पितृसमो गुरुः ।
तयोः प्रत्युपकारोऽपि न कथञ्चन विद्यते ।।३६
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा ।
न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ।।३७
वर्जयित्वा मुक्तिफलं नित्यं नैमित्तिकं तथा ।
धर्मसारः समुद्दिष्टः प्रेत्यानन्तफलप्रदः ।।३८

उपाध्याय, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, महीपति, मामा, श्वसुर, रक्षक, मातामह, पितामह, अपने से श्रेष्ठ वर्ण का व्यक्ति एवं चाचा ये पुरुप गुरु कहे गये हैं । (२६)

माता, मातामही, गुरुपत्नी, पिता एवं माता की वहन, सास, पितामही एवं ज्येष्ठ धात्री-अर्थात् दायी (ये सभी) स्त्रियाँ गुरु हैं । (२७)

हे द्विजो ! माता एवं पिता के सम्वन्ध से यह गुरुवर्ग कहा गया है । मन, वाणी, शरीर और कर्म द्वारा इनका अनुसरण करना चाहिए । (२८)

गुरु को देखने के उपरान्त अभिवादन कर हाथ जोड़े हुए खड़ा हो जाना चाहिए । इनके साथ (एक आसन पर) न वैठे एवं अपने लिये इनसे विवाद न करे । (२९)

जीवन के लिए भी गुरुजनों से द्वेपवश वार्ता न करे । अन्य गुणों के कारण उन्नत व्यक्ति भी गुरुजनों का द्वेषी होने पर अध:पतित हो जाता है । (३०)

सभी गुरुओं में भी पाँच गुरुजनों की विशेप पूजा करनी चाहिए । उन-पाँचों में भी प्रथम तीन श्रेष्ठ होते हैं । उनमें भी माता अधिक पूजनीय होती है । (३१)

जन्म का कारण (अर्थात् पिता), जन्म देनेवाली (माता), विद्या का उपदेश करनेवाला (गुरु), ज्येष्ठ भ्राता एवं भर्त्ता—अर्थात् भरण-पोपण करनेवाला स्वामी ये पाँच (मुख्य) गुरुजन कहे गये हैं । (३२)

(अपना) कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को अपने सभी प्रयत्नों यहाँ तक कि प्राणत्याग द्वारा भी इन पाँच गुरुजनों की विशेष पूजा करनी चाहिए । (३३)

पिता और माता ये दो जवतक निर्विकारी (दोष-रहित) रहें तवतक सव कुछ छोड़कर पुत्र को उनकी सेवा करनी चाहिए । (३४)

यदि माता और पिता पुत्र के गुणों से प्रसन्न रहते हैं तो वह पुत्र (अपने) इस कर्म से सम्पूर्ण धर्म को प्राप्त करता है । (३५)

न तो माता के तुल्य कोई देवता है और न पिता के समान कोई गुरु है । इन दोनों (के उपकार) का किसी प्रकार प्रत्युपकार (वदला) नहीं है । (३६)

कर्म, मन और वाणी द्वारा उन दोनों को नित्य प्रिय करना चाहिए । उनकी आज्ञा के विना मोक्ष-साधक एवं नित्य-नैमित्तिक कर्मों को छोड़कर अन्य कोई धर्म-कार्य न करना चाहिए । (माता एवं पिता के पूजन को) धर्म का सार एवं मृत्यु के उपरान्त मोक्षफल देनेवाला कहा गया है । (३७,३८)

सम्यगाराध्य वक्तारं विसृष्टस्तदनुज्ञया ।
शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य चापद्यते दिवि ।।३९
यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूर्खोऽवमन्यते ।
तेन दोषेण स प्रेत्य निरयं घोरमृच्छति ।।४०
पुंसा वर्त्मनिविष्टेन पूज्यो भर्त्ता तु सर्वदा ।
याति दातरि लोकेऽस्मिन् उपकाराद्धि गौरवम् ।।४१
ये नरा भर्त्तृपिण्डार्थं स्वान् प्राणान् संत्यजन्ति हि ।
तेषामथाक्षयाँल्लोकान् प्रोवाच भगवान् मनुः ।।४२
मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ।
असावहमिति ब्रूयुः प्रत्युत्थाय यवीयसः ।।४३
अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ।
भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ।।४४
अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसा वन्द्य एव च ।

गुरु की भलीभाँति आराधना करने के उपरान्त उनकी आज्ञा से (प्रेषित गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाला) शिष्य विद्या के फल का भोग करता है एवं मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग में जाता है। (३९)

जो मूर्ख मनुष्य पितातुल्य ज्येष्ठ भ्राता का अपमान करता है वह उस दोष के कारण मरने पर घोर नरक में पड़ता है। (४०)

सन्मार्ग में स्थित पुरुष के लिए भर्त्ता (भरण-पोषण करने वाला) सदा पूजनीय होता है। इस लोक में उपकार के कारण दाता में अधिक गौरव होता है। (४१)

जो लोग स्वामी से प्राप्त जीविका के वदले अपने प्राणों का परित्याग करते हैं उनके लिये भगवान् मनु ने अक्षय लोकों का वर्णन किया है। (४२)

(अपनी अपेक्षा) अल्प अवस्था के मामा, चाचा, श्वसुर, पुरोहित एवं गुरुजनों के प्रति प्रत्युत्थानपूर्वक "मैं अमुक हूँ" इस प्रकार कहना चाहिए। (४३)

(अपनी अपेक्षा) अल्पावस्थावाले व्यक्ति को भी (यज्ञार्थ दीक्षित होने पर नाम लेकर) न सम्बोधित करना चाहिए। धर्मज्ञ पुरुष को 'भो भवत्' अर्थात् 'आप' शब्द का प्रयोग कर (अपने से छोटे दीक्षित पुरुष से) संभाषण करना चाहिए। (४४)

ऐश्वर्याभिलाषी क्षत्रियादिकों को सदा आदर पूर्वक

ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा ।।४५
नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथञ्चन ।
ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः ।।४६
ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति स्थितिः ।
सवर्णेषु सवर्णानां कार्यमेवाभिवादनम् ।।४७
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः ।।४८
विद्या कर्म वयो बन्धुर्वित्तं भवति पञ्चमम् ।
मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात् ।।४९
पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि बलवन्ति च ।
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ।।५०
पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे ।
वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च ।।५१

ब्राह्मणों का अभिवादन, पूजन एवं सिर झुका कर वन्दना करनी चाहिए। (४५)

ब्राह्मण को कभी भी ज्ञान, कर्म एवं गुण से सम्पन्न, बहुश्रुत तथा यज्ञ करने वाले भी क्षत्रियादकों का अभिवादन नहीं करना चाहिए। (४६)

यह विधान है कि ब्राह्मण को (क्षत्रियादि) सभी वर्णों के प्रति "स्वस्ति"—अर्थात् कल्याणसूचक आशीर्वचन कहना चाहिए। समानवर्णों में उसी वर्ण के व्यक्तियों को परस्पर अभिवादन करना चाहिए। (४७)

द्विजातियों का गुरु अग्नि एवं सभी वर्णों का गुरु ब्राह्मण होता है। स्त्रियों का गुरु एकमात्र पति है तथा अभ्यागत सर्वत्र गुरु होता है। (४८)

विद्या, कर्म, वय, वन्धु एवं पाँचवाँ वन—ये पाँच मान्यता के स्थान होते हैं। इनमें उत्तर की अपेक्षा पूर्व की गुरुता होती है। (४९)

(ब्राह्मणादि) तीनों वर्णों के जिस व्यक्ति में ये (गुण) अधिक बलवान् हों वह माननीय होता है। दशमी *अथवा-अर्थात् नब्बे वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लेने वाला* अथवा मृत्यु की अवस्था को प्राप्त शूद्र भी माननीय हो जाता है। (५०)

ब्राह्मण, स्त्री, राजा, नेत्रहीन व्यक्ति, वृद्ध, भार से पीड़ित व्यक्ति, रोगी एवं दुर्बल पुरुष के लिये मार्ग छोड़ देना चाहिए। (५१)

भिक्षामाहृत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद् वाग्यतस्तदनुज्ञया ॥५२
भवत्पूर्वं चरेद् भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ।
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥५३
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत् ॥५४
सजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा ।
भैक्ष्यस्य चरणं प्रोक्तं पतितादिषु वर्जितम् ॥५५
वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ।
ब्रह्मचर्याहरेद् भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥५६
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ।
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥५७
सर्वं वा विचरेद् ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे ।
नियम्य प्रयतो वाचं दिशस्त्वनवलोकयन् ॥५८
समाहृत्य तु तद् भैक्षं यावदर्थममायया ।
भुञ्जीत प्रयतो नित्यं वाग्यतोऽनन्यमानसः ॥५९
भैक्ष्येण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद् व्रती ।
भैक्ष्येण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥६०
पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् ।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥६१
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत्परिवर्जयेत् ॥६२
प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ।
नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः ॥६३
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत् ।
शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत् ॥६४

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन शिष्ट पुरुषों के गृह से भिक्षा लाने के उपरान्त गुरु को निवेदित कर उनकी आज्ञा से मौन धारण कर भोजन करना चाहिए। (५२)

उपनयन संस्कार होने पर ब्राह्मण को पूर्व में 'भवत्' शव्द का प्रयोग कर भिक्षा माँगनी चाहिए। क्षत्रिय को मध्य में तथा वैश्य को अन्त में 'भवत्' शव्द का प्रयोग करना चाहिए। (५३)

पहले अपनी माता, वहन, मौसी अथवा जो इस (ब्रह्मचारी) की अवमानना न करे (ऐसी किसी अन्य स्त्री) से भिक्षा माँगनी चाहिए। (५४)

अपनी जातिवालों के गृह में अथवा सभी वर्णवालों से भिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। किन्तु, पतितादि पुरुषों से (भिक्षा ग्रहण करना) वर्जित है। (५५)

ब्रह्मचारी प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक ऐसे व्यक्तियों के घरों से भिक्षा ग्रहण करे जिनके वेद एवं यज्ञ का लोप न हुआ हो (तथा) जो अपने कर्मों से प्रशंसनीय हों। (५६)

गुरु के कुल, (अपनी) जाति के कुल एवं वान्धवों के कुल में भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए। दूसरों का घर न मिलने पर पूर्व-पूर्व का त्याग करना चाहिए। (५७)

अथवा पूर्वोक्त प्रकार के (कुलों का मिलना) असम्भव होने पर प्रयत्न पूर्वक वाणी को नियन्त्रित कर दिशाओं में न देखते हुए सम्पूर्ण ग्राम में भिक्षा हेतु घूमना चाहिये। (५८)

वाणी को संयमित कर एकाग्रता पूर्वक निष्कपट भाव से नित्य प्रयत्नपूर्वक प्रयोजनानुसार उस भिक्षा को एकत्रित कर भोजन करना चाहिये। (५९)

वह नित्य भिक्षा द्वारा जीविका का निर्वाह करे। व्रती अर्थात् ब्रह्मचारी को नित्य एक अन्न नहीं खाना चाहिये। भिक्षा द्वारा निर्वाह करने वाले पुरुष की वृत्ति उपवास के तुल्य कही गयी है। (६०)

नित्य अन्न का पूजन करे एवं निन्दा न करते हुए उसका भोजन करे (अन्न को) देखने के उपरान्त हर्ष एवं प्रसन्नता पूर्वक सर्वथा आनन्दित होना चाहिए। (६१)

अति भोजन आरोग्य, आयुष्य स्वर्ग एवं पुण्य का नाशक तथा लोक में द्वेष उत्पन्न करने वाला होता है अतः उसका त्याग करना चाहिए। (६२)

यह सनातन विधि है कि नित्य पूर्व की ओर मुख करके अथवा सूर्य की ओर मुख करके भोजन करे एवं उत्तर की ओर मुख कर भोजन न करे। (६३)

दोनों हाथों एवं पैरों को धोने के उपरान्त भोजन करते हुये दो वार आचमन करे। पवित्र स्थान में वैठ कर भोजन करने के उपरान्त दो वार आचमन करना चाहिए। (६४)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में वारहवाँ अध्याय समाप्त—१२.

१३

व्यास उवाच ।

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे ।
ओष्ठावलमोकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ॥१
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽयुक्तभाषणे ।
ष्ठीवित्वाऽध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ॥२
चत्वरं वा श्मशानं वा समाक्रम्य द्विजोत्तमः ।
संध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत् पुनः ॥३
चण्डालम्लेच्छसंभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।
उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविधम् ।
आचामेदश्रुपाते वा लोहितस्य तथैव च ॥४
भोजने संध्ययोः स्नात्वा पीत्वा मूत्रपुरीषयोः ।
आचान्तोऽप्याचमेत् सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यतः ॥५

अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव वा ।
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे नीवीं वा परिधाय च ॥६
उपस्पृशेज्जलं वार्द्रं तृणं वा भूमिमेव वा ।
केशानां चात्मनः स्पर्शे वाससोऽक्षालितस्य च ॥७
अनुष्णाभिरफेनाभिरदुष्टाभिश्च धर्मतः ।
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदासीनः प्रागुदङ्मुखः ॥८
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा ।
अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥९
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी वाचमेद् बुधः ।
न चैव वर्षधाराभिर्न तिष्ठन् नोद्धृतोदकैः ॥१०
नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुनः ।
न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुरथापि वा ॥११

१३

व्यास ने कहा—भोजन, पान, शयन, एवं स्नान करने के उपरान्त तथा मार्ग में गमन करने के बाद, रोमरहित दोनों ओष्ठों को स्पर्श कर, वस्त्र धारण कर, शुक्र-मूत्र एवं मल का त्यागकर, अनुपयुक्त भाषण करने के अनन्तर, थूकने के उपरान्त, अध्ययन आरम्भ करने के समय, खाँसी या श्वास आने पर, चत्वर (चौराहा) अथवा श्मशान में जाने पर एवं इसी प्रकार दोनों सन्ध्याओं के समय श्रेष्ठ द्विज को आचमन किये रहने पर भी पुनः आचमन करना चाहिए। (१-३)

चाण्डाल एवं म्लेच्छ से वार्त्ता करने और और स्त्री, शूद्र एवं उच्छिष्ठ (अर्थात् जूठे मुखवाले व्यक्ति) से बातचीत करने के उपरान्त, उच्छिष्ठ अर्थात् जूठे मुख-वाले पुरुष एवं इसी प्रकार उच्छिष्ठ भोजन का स्पर्श होने पर, अश्रु एवं रुधिर गिरने पर, भोजन के समय, दोनों सन्ध्याओं एवं स्नान के समय और पान कर लेने पर तथा मलमूत्र का त्याग करने पर, आचमन किये रहने पर भी आचमन करना चाहिए। सोने के उपरान्त एक बार आचमन करना चाहिए तथा अन्य प्रसङ्गों पर अनेक बार आचमन करना चाहिये। (४,५)

अग्नि (के प्रज्वलित करने), गवालम्भन करने एवं विशेष परिश्रम करनेवाले पुरुष का स्पर्श होने पर, स्त्रियों एवं अपनी नीवी अर्थात् शरीर के निम्न भाग का स्पर्श होने तथा वस्त्र धारण करने पर एवं अपने केशों और बिना धोए वस्त्र का स्पर्श होने पर जल, आर्द्र तृण या भूमि का स्पर्श करना चाहिए। (६,७)

सर्वदा पूर्व या उत्तर मुख बैठ कर शौचाभिलाषी पुरुष को शीतल एवं फेनरहित विशुद्ध जल से आचमन करना चाहिए। (८)

शिर या कण्ठ को ढकने एवं शिखा अथवा कच्छ मुक्त करने पर बिना पैरों को धोये आचमन करने पर भी (मनुष्य) अशुचि रहता है। (९)

जूता पहने हुए, जल में स्थिर होने पर अथवा उष्णीष अर्थात् पगड़ी इत्यादि धारण किए हुए बुद्धिमान् व्यक्ति को आचमन नहीं करना चाहिए। वर्षा के जल से, खड़े हुए, उठाये हुए जल से, एक हाथ से दिए हुए जल से, बिना यज्ञोपवीत के, पादुकासन पर बैठे हुए अथवा जानुओं के बाहर हाथ निकाले हुए (आचमन नहीं करना चाहिए)। (१०,११)

न जल्पन् न हसन् प्रेक्षन् शयानः प्रह्व एव च ।
नावीक्षिताभिः फेनाद्यैरुपेताभिरथापि वा ॥१२
शूद्राशुचिकरोन्मुक्तैर्न क्षाराभिस्तथैव च ।
न चैवाङ्गुलिभिः शब्दं न कुर्वन् नान्यमानसः ॥१३
न वर्णरसदुष्टाभिर्न चैव प्रदरोदकैः ।
न पाणिक्षुभिताभिर्वा न बहिष्कक्ष एव वा ॥१४
हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठ्याभिः क्षत्रियः शुचिः ।
प्राशिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽन्ततः ॥१५
अङ्गुष्ठमूलान्तरतो रेखायां ब्राह्ममुच्यते ।
अन्तराङ्गुष्ठदेशिन्यो पितॄणां तीर्थमुत्तमम् ॥१६
कनिष्ठामूलतः पश्चात् प्राजापत्यं प्रचक्षते ।
अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दैवं तदेवार्षं प्रकीर्त्तितम् ॥१७
मूले वा दैवमार्षं स्यादाग्नेयं मध्यतः स्मृतं ।
तदेव सौमिकं तीर्थमेतज्ज्ञात्वा न मुह्यति ॥१८

बात करते, हँसते, देखते, सोते एवं नमित होकर आचमन नहीं करना चाहिए। बिना देखे हुए अथवा फेन इत्यादि से युक्त जल से आचमन नहीं करना चाहिए। (१२)

शूद्र या अपवित्र व्यक्ति द्वारा दिए हुए एवं खारे (जल से) अङ्गुलि के अग्रभाग में स्पृष्ट (जल द्वारा), शब्द करते हुए तथा मन के एकाग्र न होने पर (आचमन) नहीं करना चाहिए। (१३)

विकृत वर्ण एवं रस वाले तथा अपर्याप्त जल से आचमन नहीं करना चाहिए। कच्छ बाहर किए हुए तथा हाथों से क्षुभित जल से भी (आचमन नहीं करना चाहिए)। (१४)

ब्राह्मण हृदय तक पहुँचने वाले, क्षत्रिय कण्ठ तक जाने वाले एवं वैश्य मुख में प्रविष्ट जल से शुद्ध होते हैं। स्त्री एवं शूद्र जल के स्पर्श मात्र से शुद्ध होते हैं। (१५)

अँगूठे के मूल की रेखा में ब्राह्म तीर्थ, अँगूठे एवं प्रदेशिनी के मध्य में उत्तम पितृतीर्थ एवं कनिष्ठा के मूल में प्राजापत्य तीर्थ कहा जाता है। अंगुलि के अग्रभाग में दैवतीर्थ कहा जाता है। उसे ही आर्षतीर्थ कहा गया है। (१६, १७)

अथवा (अंगुलियों) के मूल को दैवतीर्थ एवं मध्य भाग को आग्नेयतीर्थ कहा जाता है। उस (आग्नेय तीर्थ) को ही सौमिक तीर्थ कहा जाता है। इन विधान को जानने वाला मोहित नहीं होता। (१८)

ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ।
कायेन वाऽथ दैवेन न तु पित्र्येण वै द्विजाः ॥१९
त्रिः प्राश्नीयादपः पूर्वं ब्राह्मणः प्रयतस्ततः ।
संमृज्याङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत् ॥२०
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ॥२१
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत् ।
सर्वासामथ योगेन हृदयं तु तलेन वा ।
संस्पृशेद् वा शिरस्तद्वदङ्गुष्ठेनाथवा द्वयम् ॥२२
त्रिःप्राश्नीयाद् यदम्भस्तु सुप्रीतास्तेन देवताः ।
ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुमः ॥२३
गङ्गा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनात् ।
संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्करौ ॥२४

हे द्विजो ! द्विज को नित्य ब्राह्म तीर्थ से ही आचमन करना चाहिए। अथवा कायतीर्थ-अर्थात् प्राजापत्य या दैवतीर्थ से आचमन करना चाहिये किन्तु पितृतीर्थ से (आचमन नहीं करना चाहिये)। (१९)

ब्राह्मण को संयमी होकर पहले तीन बार जल का आचमन करना चाहिए। तदनन्तर मुड़े हुए अँगूठे के मूल से मुख का स्पर्श करने के उपरान्त आचमन करना चाहिये। (२०)

तदुपरान्त अँगुष्ठ और अनामिका से दोनों नेत्रों को स्पर्श करना चाहिए। तदुपरान्त तर्जनी और अङ्गुष्ठ को मिलाकर नासिका के दोनों पुटों का स्पर्श करे। (२१)

कनिष्ठा और अङ्गुष्ठ के योग से दोनों कानों का स्पर्श करना चाहिए। सभी अङ्गुलियों को मिलाकर हथेली से हृदय का एवं उसी प्रकार शिर को अथवा अँगूठों से दोनों अर्थात् (हृदय एवं मस्तक) का स्पर्श करना चाहिए। (२२)

हमने ऐसा सुना है कि जल का तीन बार आचमन करने से ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश (ये तीनों) देवता अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। (२३)

परिमार्जन करने से गङ्गा और यमुना प्रसन्न होती हैं। दोनों नेत्रों का स्पर्श करने से चन्द्रमा और सूर्य प्रसन्न होते हैं। (२४)

नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये ।
कर्णयोः स्पृष्टयोस्तद्वत् प्रीयेते चानिलानलौ ।।२५
संस्पृष्टे हृदये चास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः ।
मूर्ध्नि संस्पर्शनादेकः प्रीतः स पुरुषो भवेत् ।।२६
नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गं नयन्ति याः।
दन्तवद् दन्तलग्नेषु जिह्वास्पर्शेऽशुचिर्भवेत् ।।२७
स्पृशन्ति विन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
भूमिगैस्ते समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ।।२८
मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे ।
फलमूले चेक्षुदण्डे न दोषं प्राह वै मनुः ।।२९
प्रचरंश्चान्नपानेषु द्रव्यहस्तो भवेन्नरः ।
भूमौ निक्षिप्य तद् द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत् तु तत् ।।३०
तैजसं वै समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद् द्विजः ।
भूमौ निक्षिप्य तद् द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत् तु तत् ।।३१

नासापुटों का स्पर्श करने से दोनों नासत्य और दस्र प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार कानों का स्पर्श करने से वायु एवं अग्नि प्रसन्न होते हैं। (२५)

हृदय का स्पर्श होने पर सभी देवता प्रसन्न होते हैं। मस्तक का स्पर्श होने से वे अद्वितीय पुरुष प्रसन्न हो जाते हैं। (२६)

(आचमन आदि करने के समय) अङ्ग पर गिरे हुए जलकणों से शरीर उच्छिष्ट नहीं होता। दाँतों के भीतर स्थित पदार्थ दाँतों के ही तुल्य होता है। किन्तु जिह्वा स्पर्श होने पर व्यक्ति अपवित्र है। (२७)

आचमन करने के समय दूसरों के पैरों पर गिरे हुए जल को भूमि के तुल्य समझना चाहिए। उससे मनुष्य अपवित्र नहीं होता। (२८)

मधुपर्क, सोम, ताम्बूल, फल, मूल एवं ईख का भक्षण करने पर मनु ने कोई दोष नहीं कहा है। (२९)

चलते समय यदि मनुष्य के हाथ में अन्न पान आदि द्रव्य हो तो ब्राह्मण उस प्रचुर अन्न एवं जलपात्र द्रव्य को भूमि पर रखने के उपरान्त आचमन करके उस वस्तु का अभ्युक्षण करे। (३०)

अथवा तैजस पदार्थ लिए हुए यदि ब्राह्मण उच्छिष्ट हो जाय तो उस द्रव्य को पृथ्वी पर रखने के उपरान्त

यद्यमत्रं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः ।
अनिधायैव तद् द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ।।
वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात् तत्संस्पृष्ट्वाचमेदिह ।।३२
अरण्येऽनुदके रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि ।
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति ।।३३
निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः ।
अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद् दक्षिणामुखः ।।३४
अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्ठतृणेन वा ।
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद् विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ।।३५
छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भःपथि भस्मसु ।
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रे न समाचरेत् ।।३६
न गोमये न कृष्टे वा महावृक्षे न शाड्वले ।
न तिष्ठन् वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके ।।३७

आचमन करके उसका अभ्युक्षण करे। (३१)

यदि अमत्र अर्थात् बरतन या बासन लिए हुए मनुष्य उच्छिष्ट हो जाय तो उस वस्तु को (भूमि पर) बिना रखे आचमन करके (मनुष्य) शुद्ध हो जाता है। किन्तु वस्त्रादि के विषय में विकल्प है। उसका स्पर्श होने पर आचमन करना चाहिये। (३२)

जङ्गल, जलहीन स्थान, रात्रि, चोर एवं व्याघ्रादि-पूर्ण मार्ग में मलमूत्र का त्याग करने पर भी हाथ में द्रव्य ग्रहण करने वाला व्यक्ति दोषयुक्त नहीं होता। (३३)

दाहिने कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाकर दिन में उत्तर मुख एवं रात्रि में दक्षिणमुख होकर मलमूत्र का त्याग करना चाहिए। (३४)

भूमि को काष्ठ, पत्र, लोष्ठ अथवा तृण से ढँक कर तथा शिर को आवृत कर मलमूत्र का त्याग करना चाहिए। (३५)

छाया, कूप, नदी, गोशाला, चैत्य, जल, मार्ग, भस्म, अग्नि, एवं श्मशान में मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। (३६)

गोबर पर, जुती हुई भूमि में, महान् वृक्ष के नीचे हरियाली और पर्वत की चोटी पर खड़े या नग्न अवस्था में मलमूत्र का त्याग करना चाहिए। (३७)

न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ।
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन् वा समाचरेत् ।।३८
तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च ।
न क्षेत्रे न विले वाऽपि न तीर्थे न चतुष्पथे ।।३९
नोद्यानोदसमीपे वा नोषरे न पराशुचौ ।
न सोपानत्पादुको वा छत्री वा नान्तरिक्षके ।।४०
न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम् ।
न देवदेवालययोरपामपि कदाचन ।।४१

न ज्योतींषि निरीक्षन् वा न संध्याभिमुखोऽपि वा ।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च ।।४२
आहृत्य मृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षणम् ।
कुर्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः ।।४३
नाहरेन्मृत्तिकां विप्रः पांशुलान्न च कर्दमात् ।
न मार्गान्नोषराद् देशाच्छौचशिष्टां परस्य च ।।४४
न देवायतनात् कूपाद् ग्रामान्न च जलात् तथा ।
उपस्पृशेत् ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः ।।४५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

१४

व्यास उवाच ।
एवं दण्डादिभिर्युक्तः शौचाचारसमन्वितः ।
आहूतोऽध्ययनं कुर्याद् वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।।१

नित्यमुद्यतपाणिः स्यात् साध्वाचारः सुसंयतः ।
आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः ।।२
प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत् ।

जीर्ण मन्दिर, वल्मीक-अर्थात् दीमक की बाँवी, जीव-युक्त गड्ढा एवं चलते हुए मलमूत्र का विर्सजन नहीं करना चाहिए । (३८)

भूँसी, अङ्गार एवं कपाल के ऊपर, राजमार्ग, शुद्ध क्षेत्र, विल, तीर्थ, चौराहा, उद्यान, (जल) के समीप ऊसर भूमि एवं अत्यन्त अपवित्र स्थान में मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए । जूता या खड़ाऊँ पहने हुए, छाता लिये हुये, आकाशचारी यान द्वारा यात्रा करते हुये एवं स्त्री, गुरु ब्राह्मण और गौ के सम्मुख एवं देवाधिदेव के मन्दिर में तथा जल में तो कभी भी (मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये) । (३९-४१)

नक्षत्रों को देखते हुए या सन्ध्याभिमुख होने पर तथा सूर्य, अग्नि एवं चन्द्रमा की ओर मुख करके (मल मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए) । (४२)

आलस्य त्यागकर तट से मिट्टी लेकर (मलमूत्र के) लेप और गन्ध को दूर करने योग्य निकाले हुए शुद्ध जल द्वारा शौच करना चाहिए । (४३)

विप्र को धूलि एवं कीचड़ युक्त स्थान, मार्ग, ऊसर, भूमि एवं दूसरे के शौच से अवशिष्ट, मन्दिर, कूप, ग्राम एवं जल के भीतर से मिट्टी न लेनी चाहिए । (शौच के उपरान्त) नित्य पूर्वोक्त विधान से आचमन करना चाहिए । (४४, ४५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में तेरहवाँ अध्याय समाप्त—१३.

१४

व्यास ने कहा—इस प्रकार दण्डादि से युक्त तथा शौचाचार से सम्पन्न (ब्रह्मचारी) बुलाये जाने पर गुरु का मुख देखते हुए अध्ययन करे । (१)

नित्य सदाचार एवं संयम से युक्त (ब्रह्मचारी) नित्य हाथ उठाये हुए (गुरु द्वारा) बैठने के लिये कहे जाने पर गुरु के सम्मुख बैठे । (२)

सोते, बैठे, खाते, खड़े होते तथा गुरु की ओर पीठ किये हुए उनकी किसी आज्ञा का ग्रहण या उनसे संभाषण नहीं

नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ।।३
नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ।।४
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषणचेष्टितम् ।।५
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा चापि प्रवर्त्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ।।६
दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ।
न चैवास्योत्तरं ब्रूयात् स्थितो नासीत सन्निधौ ।।७
उदकुम्भं कुशान् पुष्पं समिधोऽस्याहरेत् सदा ।
मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वै समाचरेत् ।।८
नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि ।
आक्रमेदासनं चास्य छायादीन् वा कदाचन ।।९

करना चाहिए। (३)

गुरु के समीप शिष्य की शय्या एवं आसन सदैव नीचा रहना चाहिए। गुरु के देखते रहने पर मनमाने ढँग पर नहीं बैठना चाहिए। (४)

परोक्ष में भी उन (गुरु) का केवल नाम नहीं लेना चाहिए एवं उनकी चाल, बोलने के ढँग तथा (शारीरिक) चेष्टा का अनुकरण नहीं करना चाहिए। (५)

जहाँ गुरु का परीवाद अर्थात् उनके मतादि का खण्डन एवं निन्दा होती हो वहाँ या तो दोनों कानों को बन्द कर लेना चाहिए अथवा वहाँ से अन्यत्र चले जाना चाहिए। (६)

(गुरु के) दूर रहने पर, क्रोधयुक्त होने पर एवं स्त्री के समीप रहने पर (अभिवादनादि द्वारा) उनकी अर्चना नहीं करनी चाहिए। गुरु की बात का उत्तर नहीं देना चाहिए एवं उनके निकट रहने पर बैठना भी नहीं चाहिए। (७)

उनके लिए सर्वदा जल का घड़ा, कुशा, पुष्प एवं समिधा लाना चाहिए। नित्य उनके अङ्गों का मार्जन एवं (गन्धादि द्वारा) लेपन करना चाहिए। (८)

उनके निर्माल्य, शय्या, खड़ाऊँ, जूता, आसन एवं छाया इत्यादि का कभी भी लंघन नहीं करना चाहिए। (९)

साधयेद् दन्तकाष्ठादीन् लब्धं चास्मै निवेदयेत् ।
अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत् प्रियहिते रतः ।।१०
न पादौ सारयेदस्य संनिधाने कदाचन ।
जृम्भितं हसितं चैव कण्ठप्रावरणं तथा ।
वर्जयेत् सन्निधौ नित्यमवस्फोटनमेव च ।।११
यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः ।
आसीताधो गुरोः कूर्चे फलके वा समाहितः ।।१२
आसने शयने याने नैव तिष्ठेत् कदाचन ।
धावन्तमनुधावेत गच्छन्तमनुगच्छति ।।१३
गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च ।
आसीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलकनौषु च ।।१४
जितेन्द्रियः स्यात् सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः ।
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम् ।।१५

(गुरु के लिये) दन्तकाष्ठ इत्यादि लाना चाहिए एवं अपने द्वारा प्राप्त किये पदार्थों को उन्हें समर्पित करना चाहिए। (गुरु से) विना पूछे (कहीं) नहीं जाना चाहिए एवं गुरु के प्रिय तथा हितकारी काम में लगा रहना चाहिए। (१०)

गुरु के समीप कभी पैर नहीं फैलाना चाहिए। उनके समीप रहने पर जम्हाई एवं हँसी इत्यादि, कण्ठ का आच्छादन एवं ताल ठोंकने की ध्वनि इत्यादि का नित्य त्याग करना चाहिए। (११)

यथासमय तबतक अध्ययन करना चाहिए जबतक गुरु वेमन न हो जायँ। (ब्रह्मचारी को) सावधानतापूर्वक गुरु के नीचे कुशासन या पट्ट पर बैठना चाहिए। (१२)

आसन, शय्या एवं किसी सवारी पर (गुरु के साथ) कभी नहीं बैठना चाहिए। गुरु के दौड़ते रहने पर उनके पीछे दौड़ना चाहिए एवं चलने पर उनसे पीछे-पीछे चलना चाहिए। (१३)

बैल, अश्व एवं ऊँट की सवारी, प्रासाद, प्रस्तर, चटाई, शिलाखण्ड एवं नौका पर गुरु के साथ बैठना चाहिए। (१४)

(ब्रह्मचारी को) निरन्तर जितेन्द्रिय, वश्यात्मा, क्रोधशून्य एवं शुचि रहना चाहिए तथा सदा हितकारी एवं मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए। (१५)

गन्धमाल्यं रसं कल्यां शुक्तं प्राणिविहिंसनम् ।
अभ्यङ्गं चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च ॥१६
कामं लोभं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्त्तनम् ।
आतर्जनं परीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा ।
परोपघातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥१७
उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान् ।
आहरेद् यावदर्थानि भैक्ष्यं चाहरहश्चरेत् ॥१८
कृतं च लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्युषितं च यत् ।
अनृत्यदर्शी सततं भवेद् गीतादिनिःस्पृहः ॥१९
नादित्यं वै समीक्षेत न चरेद् दन्तधावनम् ।
एकान्तमशुचिस्त्रीभिः शूद्रान्त्यैरभिभाषणम् ॥२०
गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत न कामतः ।
मलापकर्षणस्नानं नाचरेद्धि कदाचन ॥२१

(ब्रह्मचारी को) प्रयत्नपूर्वक (सुन्दर) गन्ध, माला, रस एवं शुक्त अर्थात् गुड़ तथा शहद इत्यादि के मिश्रण से प्रस्तुत तीक्ष्ण पदार्थ विशेष (का प्रयोग), कल्या अर्थात् मदिरा, प्राणियों की हिंसा, तैल मर्दन, अञ्जन, जूता एवं छत्र का धारण करना, काम, लोभ, भय, निद्रा, गाना, वजाना, नाचना, डाँट-फटकार करना, लोगों के दोष का कहना, स्त्रियों को देखना एवं उनका स्पर्शादि करना, दूसरों को पीटना एवं चुगुलखोरी का त्याग करना चाहिए। (१६-१७)

जल का घड़ा, पुष्प, गोवर, मिट्टी एवं कुशा इन सभी पदार्थों का उतना संग्रह करना चाहिए जितने का प्रयोजन हो तथा नित्य भिक्षा माँगनी चाहिए। (१८)

कृत्रिम लवण एवं समस्त पर्युपित (वासी) वस्तुओं का त्याग करना चाहिए। (ब्रह्मचारी को) नृत्य नहीं देखना चाहिए तथा गान इत्यादि के प्रति निःस्पृह रहना चाहिए। (१९)

(ब्रह्मचारी को) सूर्य की ओर नहीं देखना चाहिए एवं दन्तों का धावन नहीं करना चाहिए। (उसे) एकान्त में अशुचि स्त्रियों, शूद्रों एवं अन्त्यजों के साथ वातचीत नहीं करनी चाहिए। (२०)

औषध के लिये गुरु के उच्छिष्ट का प्रयोग करना चाहिए; अपनी इच्छा से नहीं। कभी भी मैल को दूर करते हुए स्नान नहीं करना चाहिए। (२१)

न कुर्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्यागे कदाचन ।
मोहाद् वा यदि वा लोभात् त्यक्तेन पतितो भवेत् ॥२२
लौकिकं वैदिकं चापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
आददीत यतो ज्ञानं न तं द्रुह्येत् कदाचन ॥२३
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत् ॥२४
गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद् भक्तिमाचरेत् ।
न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान् गुरूनभिवादयेत् ॥२५
विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु ।
प्रतिषेधत्सु चाधर्माद्धितं चोपदिशत्स्वपि ॥२६
श्रेयस्सु गुरुवद् वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ।
गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥२७
बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ।

विप्र को कभी गुरु को छोड़ने का विचार नहीं करना चाहिए। मोह अथवा लोभ से इनका त्याग करने पर पतित हो जाता है। (२२)

जिससे लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान ग्रहण करे उससे कभी भी द्रोह नहीं करना चाहिए। (२३)

मनु ने गर्वयुक्त, कार्य और अकार्य को न जानने वाले एवं कुमार्गगामी गुरु का भी त्याग करने को कहा है। (२४)

गुरु के गुरु की सन्निधि में गुरु के तुल्य भक्ति करनी चाहिए। गुरु की अनुमति के विना अपने (माता-पितादि) गुरुजनों का अभिवादन नहीं करना चाहिए। (२५)

विद्या (दाता उपाध्यायादि) गुरुओं, अपने जन्म के कारण स्वरूप (मातापितादि), गुरुजनों, अधर्म से रोकने वालों एवं हितकारी उपदेश देने वालों के प्रति नित्य इसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। (२६)

श्रेयस्कर कार्यों, गुरु के पुत्रों, स्त्रियों एवं गुरु के स्वकीय वान्धवों के प्रति नित्य गुरु के समान ही व्यवहार करना चाहिए। (२७)

गुरुपुत्र के वालक-अर्थात् अपने से अल्पायु, सम-वयस्क एवं यज्ञ कर्म में (अपना) शिष्य होने पर भी

अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥२८
उत्सादनं वै गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने ।
न कुर्याद् गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च ॥२९
गुरुवत् परिपूज्यास्तु सवर्णा गुरुयोषितः ।
असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥३०
अभ्यञ्जनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेव च ।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥३१
गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाद्येह पादयोः ।
कुर्वीत वन्दनं भूम्यामसावहमिति ब्रुवन् ॥३२
विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् ।
गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥३३
मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूश्चाथ पितृष्वसा ।
संपूज्या गुरुपत्नीव समास्ता गुरुभार्यया ॥३४

यदि (वह वेदादिका) अध्यापन करता हो तो गुरु के तुल्य ही उसका सम्मान करना चाहिए। (२८)

किन्तु, (गुरु के सदृश) गुरुपुत्र के शरीर की मालिश, (उसे) स्नान कराना, (उसके) उच्छिष्ट का भोजन एवं (उसके) पैरों के धोने आदि का कार्य नहीं करना चाहिए। (२९)

गुरु की समानवर्णवाली पत्नियों की गुरु के तुल्य ही सेवा करनी चाहिए। किन्तु, असवर्णा (गुरुपत्नियों) का प्रत्युत्थान एवं अभिवादन द्वारा आदर करना चाहिए। (३०)

गुरु की पत्नी के शरीर में उवटन लगाना, स्नान कराना, मालिश करना एवं (उनके) केशों के सँवारने का कार्य नहीं करना चाहिए। (३१)

गुरु की युवती पत्नी के चरणों में प्रणाम नहीं करना चाहिए। 'मैं अमुक हूँ' इस प्रकार कहते हुए पृथ्वी पर प्रणाम करना चाहिए। (३२)

गुरुपत्नियों के प्रवास से आने के अनन्तर सज्जनों के धर्म का स्मरण करते हुए उनका पादग्रहण एवं नित्य (उन्हें) प्रणाम करना चाहिए। (३३)

मौसी, मामी, सास एवं फूआ की गुरुपत्नी के सदृश पूजा करनी चाहिए। ये सभी गुरुपत्नी के समान होती हैं। (३४)

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि ।
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसंबन्धियोषितः ॥३५
पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ।
मातृवद् वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥३६
एवमाचारसंपन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम् ।
वेदमध्यापयेद् धर्मं पुराणाङ्गानि नित्यशः ॥३७
संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन् ।
हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः ॥३८
आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ।
शक्तोऽन्नदोऽर्थी स्वस्साधुरध्याप्या दश धर्मतः ॥३९
कृतज्ञश्च तथाऽद्रोही मेधावी शुभकृन्नरः ।
आप्तः प्रियोऽथ विधिवत् षडध्याप्या द्विजातयः ।
एतेषु ब्रह्मणो दानमन्यत्र तु यथोदितान् ॥४०

भाई की सवर्णा पत्नी को प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए। बाहर से आने पर अपनी जाति के सम्बन्धियों की स्त्रियों का भी अभिवादन करना चाहिये। (३५)

माता एवं पिता की बहन तथा अपनी ज्येष्ठा बहन के प्रति भी माता के तुल्य व्यवहार करना चाहिए। (परन्तु) उनकी अपेक्षा माता श्रेष्ठ होती है। (३६)

इस प्रकार के आचरण से युक्त, आत्मवान् एवं दम्भरहित (व्यक्ति को) नित्य वेद, धर्मशास्त्र, पुराण तथा वेदाङ्ग पढ़ाना चाहिए। (३७)

एक वर्षतक (गुरु के समीप) रहने वाले शिष्य को ज्ञानका उपदेश न करने वाला गुरु (अपने समीप) रहने वाले उस शिष्य के पाप का हरण करता है अर्थात् भागी होता है। (३८)

आचार्य के पुत्र, सेवाशुश्रूषा करने वाला, ज्ञान प्रदान करने वाला, धार्मिक, पवित्र, शक्तिसम्पन्न, अन्नदाता, धनी, साधु एवं आत्मीय (पुत्रादि) इन दस प्रकार के लोगों को धर्मानुसार पढ़ाना चाहिए। (३९)

कृतज्ञ, अद्रोही, मेधावी, कल्याणकारक, विश्वस्त एवं प्रिय इन छः प्रकार के द्विजातियों को विधिवत् पढ़ाना चाहिए। इन (पूर्वोक्त प्रकार के) लोगों को वेद सम्बन्धी एवं अन्यत्र कहे गए (शास्त्रों का ज्ञान) प्रदान करना चाहिए। (४०)

आचम्य संयतो नित्यमधीयीत उदङ्मुखः ।
उपसंगृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद् विरामोऽस्त्विति चारमेत् ।।४१
प्राक्कूलान् पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति ।।४२
ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादन्ते च विधिवद् द्विजः ।
कुर्यादध्ययनं नित्यं स ब्रह्माञ्जलिपूर्वतः ।।४३
सर्वेषामेव भूतानां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अधीयीताप्ययं नित्यं ब्राह्मण्याच्च्यवतेऽन्यथा ।।४४
योऽधीयीत ऋचो नित्यं क्षीराहुत्या स देवताः ।
प्रीणाति तर्पयन्त्येनं कामैस्तृप्ताः सदैव हि ।।४५
यजूंष्यधीते नियतं दध्ना प्रीणाति देवताः ।
सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम् ।।४६

आचमन करके संयमपूर्वक उत्तराभिमुख होकर नित्य अध्ययन करना चाहिए। उन (गुरु) के चरणों की वन्दना करने के उपरान्त उनके मुख की ओर देखते हुए (गुरु द्वारा) 'पढ़ो' कहने पर अध्ययन प्रारम्भ करे एवं 'विराम होवे' ऐसा कहने पर अध्ययन समाप्त कर देना चाहिए। (४१)

समीप में सम्मुख वैठ कर पवित्रकुशों को धारण करके एवं तीन प्राणायामों द्वारा पवित्र होकर ओङ्कार का उच्चारण करना चाहिए। (४२)

ब्राह्मण को स्वाध्याय के (आरम्भ और) अन्त में विधिपूर्वक प्रणव का उच्चारण करना चाहिए। उसे नित्य अञ्जलिवद्ध होकर अध्ययन करना चाहिए। (४३)

वेद सभी प्राणियों का शाश्वत नेत्र है। (ब्राह्मण को) इसका नित्य अध्ययन करना चाहिए। अन्यथा (ब्राह्मण) ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है। (४४)

जो नित्य ऋग्वेद के मन्त्रों का अध्ययन करता है एवं (इन मन्त्रों के) देवों को क्षीर की आहुति से प्रसन्न करता है वे तृप्त देवता सदैव उसे कामनाओं से तृप्त करते हैं। (४५)

नियमपूर्वक यजुर्वेद का अध्ययन करे एवं दही द्वारा (मन्त्रवोधित) देवों को प्रसन्न करे। सामवेद के मन्त्रों का अध्ययन करने वाले मनुष्य को नित्य घृत की आहुति से (मन्त्र प्रतिपादित) देवों को प्रसन्न करना चाहिए। (४६)

अथर्वाङ्गिरसो नित्यं मध्वा प्रीणाति देवताः ।
धर्माङ्गानि पुराणानि मांसैस्तर्पयते सुरान् ।।४७
अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमाश्रितः ।
गायत्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः ।।४८
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपयज्ञः प्रकीर्त्तितः ।।४९
गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलयाऽतोलयत् प्रभुः ।
एकतश्चतुरो वेदान् गायत्रीं च तथैकतः ।।५०
ओंकारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम् ।
ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः ।।५१
पुराकल्पे समुत्पन्ना भूर्भुवःस्वः सनातनाः ।
महाव्याहृतयस्तिस्रः सर्वाशुभनिबर्हणाः ।।५२

अथर्ववेद का अध्ययन करने वाला नित्य मधु (की आहुति) से देवगण को प्रसन्न करता है। धर्मशास्त्रों, वेदाङ्गों एवं पुराणों का अध्ययन करने वाले को मांस (की आहुति से) देवों को तृप्त करना चाहिए। (४७)

नित्यकर्म की विधि का पालन करने वाला (व्यक्ति) वन में जाकर सावधानतापूर्वक जल के समीप नियमित रूप से गायत्री का भी अध्ययन (जप) करे। (४८)

गायत्री मन्त्र का सहस्र वार जप करना श्रेष्ठ, सौ वार का जप मध्यम एवं दस वार का जप अवर (निम्न) कोटि का होता है। (इसमें किसी प्रकार की) गायत्री का जप नित्य करना चाहिए। इसीको जपयज्ञ कहा गया है। (४९)

परमेश्वर ने गायत्री और वेदों को तुला से तौला (उन्होंने) तुला में एक ओर चारों वेद एवं एक ओर गायत्री को रखा (एवं दोनों को एक समान पाया)। (५०)

आदि में ओङ्कार एवं तदनन्तर (भूर्भुवः स्वः रूप) महाव्याहृतियों की स्थापना कर श्रद्धापूर्वक एकाग्रमन से गायत्री का जप करना चाहिए। (५१)

कल्पारम्भ (प्राचीन काल) में सम्पूर्ण अशुभों को विनष्ट करने वाली 'भूर्भुवः स्वः' ये तीन शाश्वत व्याहृतियाँ उत्पन्न हुई थीं। (५२)

प्रधानं पुरुषः कालो विष्णुर्ब्रह्मा महेश्वरः ।
सत्त्वं रजस्तमस्तिस्रः क्रमाद् व्याहृतयः स्मृताः ।।५३
ओंकारस्तत् परं ब्रह्म सावित्री स्यात् तदक्षरम् ।
एष मन्त्रो महायोगः सारात् सार उदाहृतः ।।५४
योऽधीतेऽहन्यहन्येतां गायत्रीं वेदमातरम् ।
विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम् ।।५५
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी ।
न गायत्र्याः परं जप्यमेतद् विज्ञाय मुच्यते ।।५६
श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमाः ।
आषाढ्यां प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम् ।।५७
उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान् विप्रोऽर्द्धपञ्चमान् ।
अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः ।।५८
पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद् बहिरुत्सर्जनं द्विजः ।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ।।५९
छन्दांस्यूर्ध्वमथोभ्यस्येच्छुक्लपक्षेषु वै द्विजः ।
वेदाङ्गानि पुराणानि कृष्णपक्षे च मानवम् ।।६०
इमान् नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् ।
अध्यापनं च कुर्वाणो ह्यभ्यस्यन्नपि यत्नतः ।।६१
कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांशुसमूहने ।
विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे ।
आकालिकमनध्यायमेतेष्वाह प्रजापतिः ।।६२
एतानभ्युदितान् विद्याद् यदा प्रादुष्कृताग्निषु ।
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ।।६३
निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ।
एतानाकालिकान् विद्यादनध्यायानृतावपि ।।६४
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने ।
सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषरात्रौ यथा दिवा ।।६५

ये तीनों व्याहृतियाँ क्रमशः प्रधान, पुरुष एवं काल तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर और सत्त्व, रज तथा तमोगुण मानी जाती हैं । (५३)

ओङ्कार परम ब्रह्मस्वरूप एवं गायत्री भी अविनश्वर ब्रह्मस्वरूप है । इस मन्त्र को महायोग एवं सारों का भी सारतत्त्व कहा गया है । (५४)

जो ब्रह्मचारी अर्थ को जानकर प्रतिदिन वेदमाता गायत्री का जप करता है उसे परमगति प्राप्त होती है । (५५)

गायत्री वेदों की माता एवं लोक को पवित्र करने वाली है । गायत्री से श्रेष्ठ कोई जप योग्य (मन्त्रादि) नहीं है । इसको जानने से मुक्ति होती है । (५६)

हे द्विजोत्तमो ! श्रावण, आषाढ़ अथवा भाद्रपद की पूर्णमासी में (अपने-अपने गृह्यसूत्रानुसार) वेदों का उपाकर्म करना कहा गया है । (५७)

(तदनन्तर) ग्राम एवं नगर को छोड़कर ब्रह्मचारी ब्राह्मण को एकाग्रचित से पवित्र स्थान में साढ़े पाँच महीने तक (वेदों का) अध्ययन करना चाहिए । (५८)

हे द्विजो ! (पौष मास के) पुष्य नक्षत्र में अथवा माघ मास के शुक्लपक्ष के प्रथम दिन के पूर्वाह्ण में (ग्रामके) बाहर वेदों का उत्सर्जन करना चाहिए । (५९)

हे द्विजो ! मनुष्य को शुक्ल पक्ष में वेदों का एवं कृष्णपक्ष में वेदाङ्गों, पुराणों एवं मानव (आदि) धर्मशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए । (६०)

(वेदादि) का नित्य अध्ययन करने वाले मनुष्य को इन (अधोनिर्दिष्ट) अनध्यायों का त्याग करना चाहिए । इसी प्रकार अध्यापन एवं अभ्यास करने वाले को भी यत्न पूर्वक अनध्यायों का परित्याग करना चाहिए । (६१)

प्रजापति ने कहा है कि रात्रि में कानों से सुने जाने योग्य वायु का प्रवाह होने, दिन में (वायु द्वारा) धूलिकणों के व्याप्त होने, विद्युत् की चमक एवं (मेघ) गर्जन के साथ वर्षा होने एवं महान् उल्कापात होने की अवस्था में आकालिक-अर्थात् अनिश्चित समय में अनध्याय होता है । (६२)

जब प्रज्वलित अग्नि की अवस्था में ये सभी (उपद्रव) एक साथ प्रगट हों एवं बिना ऋतु के मेघ दिखलाई पड़े तो अनध्याय समझना चाहिये । (६३)

वज्रपात होने, भूकम्प होने, सूर्य एवं चन्द्र का ग्रहण होने पर ऋतु होने पर भी आकालिक अनध्याय होना है । (६४)

अग्नि के प्रकट होने, बिना ऋतु के विद्युत् की चमक एवं (मेघ) गर्जन का शब्द होने पर (सूर्यादि ज्योति) ज्योति के रहते हुये भी अनध्याय होता है । दिन के ही सदृश रात्रि में भी अनध्याय होता है । (६५)

नित्यानध्याय एव स्याद् ग्रामेषु नगरेषु च ।
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च नित्यशः ।।६६
अन्तःशवगते ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ ।
अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ।।६७
उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रे च विसर्जने ।
उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसाऽपि न चिन्तयेत् ।।६८
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोदिष्टस्य केतनम् ।
त्र्यहं न कीर्त्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ।।६९
यावदेकोऽनुदिष्टस्य स्नेहो गन्धश्च तिष्ठति ।
विप्रस्य विदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्त्तयेत् ।।७०
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् ।
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ।।७१
नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरुभयोरपि ।
अमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषु च ।।७२
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ।
अष्टकासु त्वहोरात्रं ऋत्वन्त्यासु च रात्रिषु ।।७३
मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च ।
तिस्रोऽष्टकाः समाख्याता कृष्णपक्षे तु सूरिभिः ।।७४
श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च ।
कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः ।।७५
समानविद्ये च मृते तथा सब्रह्मचारिणि ।
आचार्ये संस्थिते वाऽपि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ।।७६
छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्तिताः ।
हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान् विवर्जयेत् ।।७७

धर्म विषयक निपुणता की इच्छा करने वालों के लिये नगर, ग्राम एवं नित्य दुर्गन्धि युक्त स्थान में नित्य अनध्याय ही होता है। (६६)

ग्राम में शव पड़े रहने, शूद्र के समीप रहने, रुदन होने एवं मनुष्यों का समूह एकत्रित होने पर अनध्याय होता है। (६७)

जल में, मध्य रात्रि में, मलमूत्र का परित्याग करने के समय, उच्छिष्ट अवस्था में एवं श्राद्ध में भोजन करने पर मन से भी (वेदादि) का चिन्तन नहीं करना चाहिये। (६८)

एकोद्दिष्ट का निमन्त्रण स्वीकार कर तथा राजकीय अशौच एवं राहु (के कारण होने वाले ग्रहण विषयक) सूतक में तीन दिनों तक वेद का अध्ययन नहीं करना चाहिये। (६९)

विद्वान् ब्राह्मण के शरीर में जबतक एकोदिष्ट श्राद्ध सम्बन्धी भोजन के समय का (घृत आदि) स्निग्ध द्रव्य एवं (कुंकुमादि सुगन्धित द्रव्य का) लेप रहे तबतक वेदाध्ययन नहीं करना चाहिए। (७०)

शयन करते हुए, प्रौढपाद-अर्थात् उकडूँ बैठे हुए, अवसक्थिका करके-अर्थात् दोनों जानुओं को वस्त्रादि से बाँधे हुए, मांस एवं सूतकादि सम्बन्धी अन्न खाकर, कुहरा पड़ने, बाण का शब्द होने एवं दोनों संध्या काल में, अमावास्या, चतुर्दशी, पौर्णमासी एवं अष्टमी की तिथियों में अनध्याय होता है। (७१,७२)

उपाकर्म और उत्सर्ग नामक कर्म करने के उपरान्त तीन रात पर्यन्त क्षपण अर्थात् अशौच (अनध्याय) कहा गया है। तीन अष्टकाओं* में एक दिन एवं रात्रि पर्यन्त तथा ऋतु की अन्तिम रात्रियों में (अनध्याय होता है)। (७३)

विद्वानों ने अगहन, पूस और माघ मास के कृष्ण-पक्ष में तीन अष्टकाओं का वर्णन किया है। (७४)

श्लेष्मातक अर्थात् लिसोढ़ा, शाल्मलि अर्थात् सेमल, महुआ, कोविदार और कपित्थ अर्थात् कैथ की छाया में कभी भी अध्ययन नहीं करना चाहिए। (७५)

अपने समान विद्या का अध्ययन करने वाले एवं वेदा-ध्ययन काल में समान व्रतधारी सहपाठी की मृत्यु होने पर अथवा आचार्य के (अपने यहाँ) आने पर तीन रात्रि तक अनध्याय कहा गया है। (७६)

जो अनध्याय बतलाये गये हैं वे विप्रों के छिद्र हैं। उन अवसरों पर राक्षस प्रहार करते हैं। अतएव उनका त्याग कर देना चाहिए। (७७)

---

* अगहन, पौष और माघ मासों में कृष्णपक्ष की सप्तमी, अष्टमी और नवमी—इन तीन तिथियों के समुदाय को अष्टका कहा जाता है।

नैत्यके नास्त्यनध्यायः संध्योपासन एव च ।
उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि ॥७८
एकामृचमथैकं वा यजुः सामाथवा पुनः ।
अष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चातिवायति ॥७९
अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ।
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत् ॥८०
एष धर्मः समासेन कीर्त्तितो ब्रह्मचारिणाम् ।
ब्रह्मणाऽभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ॥८१
योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः ।
स संमूढो न संभाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः ॥८२
न वेदपाठमात्रेण संतुष्टो वै भवेद् द्विजः ।
पाठमात्रावसन्नस्तु पङ्के गौरिव सीदति ॥८३
योऽधीत्य विधिवद् वेदं वेदार्थं न विचारयेत् ।
ससान्वयः शूद्रकल्पः पात्रतां न प्रपद्यते ॥८४
यदि त्वात्यन्तिकं वासं कर्त्तुमिच्छति वै गुरौ ।
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ॥८५
गत्वा वनं वा विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ।
अधीयीत सदा नित्यं ब्रह्मनिष्ठः समाहितः ॥८६
सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदान्तांश्च विशेषतः ।
अभ्यसेत् सततं युक्तो भस्मस्नानपरायणः ॥८७

एतद् विधानं परमं पुराणं
वेदागमे सम्यगिहेरितं वः ।
पुरा महर्षिप्रवराभिपृष्टः
स्वायंभुवो यन्मनुराह देवः ॥८८
एवमीश्वरसमर्पितान्तरो
योऽनुतिष्ठति विधिं विधानवित् ।
मोहजालमपहाय सोऽमृतो
याति तत् पदमनामयं शिवम् ॥८९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

नित्यकर्म, सन्ध्योपासन, उपाकर्म, (आरम्भ किये) कार्य की परिसमाप्ति एवं होममन्त्र में अनध्याय नहीं होता। (७८)

अष्टकाओं (अर्थात् अगहन आदि तीन मासों के कृष्णपक्ष की सप्तमी, अष्टमी, नवमी रात्रियों) एवं प्रबल वायु के बहने पर भी ऋग्वेद, यजुर्वेद अथवा सामवेद के एक मन्त्र का अध्ययन करना चाहिए। (७९)

वेद के (शिक्षा इत्यादि छः) अङ्गों एवं इतिहास और पुराण के अध्ययन एवं अन्यान्य धर्मशास्त्रों के अध्ययन में अनध्याय नहीं होता। किन्तु पर्वो में इनका त्याग करना चाहिए। (८०)

संक्षेप में यह ब्रह्मचारियों का धर्म बतलाया गया। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने शुद्धात्मा ऋषियों को यह बतलाया था। (८१)

जो द्विज व्यक्ति श्रुति का अध्ययन न कर अन्यत्र प्रयत्न करता है उस वेदबाह्य अत्यन्त मूढ व्यक्ति से द्विजातियों को संभाषण नहीं करना चाहिए। (८२)

द्विज को वेद के पाठमात्र से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। पाठ (पढ़ने या याद करने) मात्र से वेदाध्ययन को समाप्त करने वाला पुरुष पङ्क में फँसी गौ के तुल्य कष्ट पाता है। (८३)

जो व्यक्ति विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन कर वेदार्थ का विचार नहीं करता वह वंश सहित शूद्र-तुल्य होता है। उसमें (धर्मादि) की पात्रता नहीं होती। (८४)

यदि जीवनपर्यन्त गुरु के यहाँ रहने की इच्छा हो तो शरीरान्त होने तक सावधानतापूर्वक उनकी सेवा करनी चाहिए। (८५)

अथवा वन में जाकर विधिपूर्वक अग्नि में आहुति दे एवं एकाग्रचित्त से ब्रह्मनिष्ठ होकर नित्य वेदाभ्यास करे। (८६)

नित्य भस्मस्नान करते हुए गायत्री शतरुद्री एवं वेदान्तों का विशेषरूप से अध्ययन करना चाहिए। (८७)

प्राचीन काल में श्रेष्ठ महर्षियों के पूछने पर देव स्वायम्भुव मनु ने जिसका वर्णन किया था वही यह वेदज्ञान की प्राप्ति का परम प्राचीन विधान आपलोगों को भलीभाँति बतलाया गया। (८८)

इस प्रकार अपना अन्तःकरण ईश्वर को समर्पित कर विधान को जानने वाला जो पुरुष इस विधि का अनुष्ठान करता है वह अमर होकर तथा मोह-जाल को छोड़कर उस आरोग्यमय तथा कल्याणमय पद को प्राप्त करता है। (८९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में चौदहवाँ अध्याय समाप्त—१४.

१५

व्यास उवाच ।

वेदं वेदौ तथा वेदान् वेदान् वा चतुरो द्विजाः ।
अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमः ॥१
गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
चीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा सशक्तः स्नातुमर्हति ॥२
वैणवीं धारयेद् यष्टिमन्तर्वासस्तथोत्तरम् ।
यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम् ॥३
छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ ।
रौक्मे च कुण्डले वेदं कृत्तकेशनखः शुचिः ॥४
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् बहिर्माल्यं न धारयेत् ।
अन्यत्र काञ्चनाद् विप्रो न रक्तां बिभृयात् स्रजम् ॥५
शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः ।
न जीर्णमलवद्वासा भवेद् वै विभवे सति ॥६
न रक्तमुल्वणं चान्यधृतं वासो न कुण्डिकाम् ।
नोपानहौ स्रजं चाथ पादुके च प्रयोजयेत् ॥७
उपवीतमलंकारं दर्भान् कृष्णाजिनानि च ।
नापसव्यं परीदध्याद् वासो न विकृतं वसेत् ॥८
आहरेद् विधिवद् दारान् सदृशानात्मनः शुभान् ।
रूपलक्षणसंयुक्तान् योनिदोषविवर्जितान् ॥९
अमातृगोत्रप्रभवामसमानर्षिगोत्रजाम् ।
आहरेद् ब्राह्मणो भार्यां शीलशौचसमन्विताम् ॥१०
ऋतुकालाभिगामी स्याद् यावत् पुत्रोऽभिजायते ।

१५

व्यास ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! एक वेद, दो वेद, (तीन) वेद, अथवा चारों वेदों का अध्ययन एवं उनके अर्थ का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त (समावर्त्तन) स्नान करना चाहिए । (१)

गुरु को वर (दक्षिणा) प्रदान कर उनकी आज्ञा से (समावर्तन) स्नान करे । व्रतानुष्ठान समाप्त करने के उपरान्त एकाग्रचित्त समर्थ पुरुष (समावर्तन) स्नान का अधिकारी होता है । (२)

स्नातक को वाँस का दण्ड, अन्तर्वास-अर्थात् भीतरी वस्त्र एवं उत्तरीय—अर्थात् ऊपरी चादर, दो यज्ञोपवीत जलयुक्त कमण्डलु, छाता, स्वच्छ पगड़ी, एक जोड़ा खड़ाऊँ, एक जोड़ा जूता, दो स्वर्ण कुण्डल एवं वेद धारण करना चाहिए तथा केश और नखों को कटवाकर शुद्ध होना चाहिए । (३,४)

(स्नातक को) नित्य वेदाध्ययन करना चाहिए एवं वाहरी माला नहीं धारण करना चाहिए । सोने की माला को छोड़कर ब्राह्मण को रक्तवर्ण की माला नहीं धारण करनी चाहिए । (५)

नित्य शुक्ल वस्त्र एवं सुगन्ध धारण कर (दूसरों के) देखने में प्रिय (वनना चाहिए) । सम्पत्ति रहते फटे एवं मैले वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए । (६)

अधिक लाल, एवं दूसरों का धारण किया हुआ वस्त्र (नहीं धारण करना चाहिए) । (दूसरे का) कमण्डलु, जूता, माला एवं खड़ाऊँ का प्रयोग नहीं करना चाहिए । (७)

(इसी प्रकार दूसरों द्वारा प्रयुक्त) उपवीत, अलङ्कार कुश एवं कृष्णमृग के चर्मो का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए । अपसव्य नहीं रहना चाहिए एवं विकृत वस्त्र नहीं धारण करना चाहिए । (८)

अपने समान (वर्ण की) कल्याणी, रूप एवं लक्षण से युक्त तथा योनि सम्वन्धी दोष से रहित पत्नी को विधिपूर्वक ग्रहण करना चाहिए । (९)

ब्राह्मण को शील और शौच से युक्त ऐसी भार्या ग्रहण करनी चाहिए जो मातृकुल के गोत्र अथवा अपने (अर्थात् वर के) ऋषि और गोत्र में न उत्पन्न हुई हो । (१०)

पुत्र की उत्पत्ति होने तक ऋतुकाल में स्त्री से

वर्जयेत् प्रतिषिद्धानि प्रयत्नेन दिनानि तु ।।११
षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशीं द्वादशीं च चतुर्दशीम् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्वज्जन्मत्रयाहनि ।।१२
आदधीतावसथ्याग्निं जुहुयाज्जातवेदसम् ।
व्रतानि स्नातको नित्यं पावनानि च पालयेत् ।।१३
वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
अकुर्वाणः पतत्याशु नरकानतिभीषणान् ।।१४
अभ्यसेत् प्रयतो वेदं महायज्ञान् न हापयेत् ।
कुर्याद् गृह्याणि कर्माणि संध्योपासनमेव च ।।१५
सख्यं समाधिकैः कुर्यादुपेयादीश्वरं सदा ।
दैवतान्यपि गच्छेत कुर्याद् भार्याभिपोषणम् ।।१६
न धर्मं ख्यापयेद् विद्वान् न पापं गूहयेदपि ।
कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पकः ।।१७

सहवास करना चाहिए। किंतु प्रयत्नपूर्वक निषिद्ध दिनों का त्याग करना चाहिए। (११)

(ब्राह्मण को) नित्य षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी एवं पञ्चदशी—अर्थात् पूर्णिमा को तथा जन्म दिन से तीन दिन पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए। (१२)

स्नातक को नित्य आवसथ्याग्नि ग्रहण करना एवं अग्नि में हवन करना चाहिए तथा पवित्र व्रतों का पालन करना चाहिए। (१३)

नित्य विना आलस्य के (स्नातक को) वेद में विहित अपने कर्म का पालन करना चाहिए। (वेद विहित अपने कर्म को) न करने वाला (पुरुष) शीघ्र अति भीषण नरकों में जाता है। (१४)

प्रयत्नपूर्वक वेदों का अभ्यास करना चाहिए एवं (दैवादि पञ्च) महायज्ञों का त्याग नहीं करना चाहिए। गृह्यसूत्रों में प्रतिपादित कर्मों एवं सन्ध्योपासन को करना चाहिए। (१५)

अपने तुल्य एवं अधिक (गुणादियुक्त व्यक्ति) से मित्रता करे तथा सदा ईश्वर (समर्थ) की आराधना करे। (स्नातक को) देवों की पूजा करनी चाहिए एवं भार्या का पोषण करना चाहिए। (१६)

(अपने) धर्म का कथन (प्रसिद्धि) नहीं करनी चाहिए एवं पाप को छिपाना नहीं चाहिए। नित्य सभी

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन् विचरेत् सदा ।।१८
श्रुतिस्मृत्युदितः सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः ।
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित् ।।१९
येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यति ।।२०
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् ।
सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।२१
संध्यास्नानपरो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः ।
अनसूयी मृदुर्दान्तो गृहस्थः प्रेत्य वर्द्धते ।।२२
वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जितः ।
सावित्रीजाप्यनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही ।।२३
मातापित्रोर्हिते युक्तो गोब्राह्मणहिते रतः ।

प्राणियों पर दया करते हुए अपने हित का साधन करना चाहिए। (१७)

सर्वदा (अपनी) अवस्था, कर्म, सम्पत्ति, ज्ञान, कुल के अनुरूप वेष, वाणी एवं बुद्धि का आचार व्यवहार करना चाहिए। (१८)

उसी आचार का पालन भलीभाँति करना चाहिये जो श्रुति एवं स्मृति से प्रतिपादित तथा सज्जनों से सेवित हो। कभी भी अन्य किसी आचार-विचार के पालन की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए। (१९)

माता-पिता एवं पितामहादि (पूर्व पुरुषों) ने जिस मार्ग का अवलम्बन किया हो उसी मार्ग से चलना चाहिए। यही सज्जनों का मार्ग है। उससे जाने वाला (मनुष्य) पतित नहीं होता। (२०)

नित्य स्वाध्यायरत रहना एवं यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। क्रोध को जीतने वाला तथा सत्यवादी पुरुष ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है। (२१)

नित्य स्नान और संध्या करने वाला, ब्रह्मयज्ञपरायण, ईर्ष्यारहित, कोमलचित्त एवं जितेन्द्रिय गृहस्थ परलोक में वृद्धि प्राप्त करता है। (२२)

राग, भय, क्रोध से रहित लोभ एवं मोह से शून्य, गायत्री जप में लीन रहने वाला एवं श्राद्ध करने वाला गृहस्थ मुक्त हो जाता है। (२३)

माता, पिता, गौ एवं ब्राह्मण का हित करने वाला,

दान्तो यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।२४
त्रिवर्गसेवी सततं देवतानां च पूजनम् ।
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत् प्रयतः सुरान् ।।२५
विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः ।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत् ।।२६
क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः ।
अध्यात्मनिरतं ज्ञानमेतद् ब्राह्मणलक्षणम् ।।२७
एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः ।
यथाशक्ति चरन् कर्म निन्दितानि विवर्जयेत् ।।२८
विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम् ।
गृहस्थो मुच्यते बन्धात् नात्र कार्या विचारणा ।।२९
विगर्हातिक्रमाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम् ।
अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा ।।३०
स्वदुःखेष्विव कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदात् ।
दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य साधनम् ।।३१
चतुर्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः ।
विज्ञानमिति तद् विद्याद् येन धर्मो विवर्द्धते ।।३२
अधीत्य विधिवद् विद्यामर्थं चैवोपलभ्य तु ।
धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद् विज्ञानमिष्यते ।।३३
सत्येन लोकाञ्जयति सत्यं तत्परमं पदम् ।
यथाभूतप्रवादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः ।।३४
दमः शरीरोपरमः शमः प्रज्ञाप्रसादजः ।
अध्यात्ममक्षरं विद्याद् यत्र गत्वा न शोचति ।।३५
यया स देवो भगवान् विद्यया वेद्यते परः ।
साक्षाद् देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम् ।।३६
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनः शुचिः ।
महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम् ।।३७

जितेन्द्रिय, यज्ञशील देवभक्त (पुरुष) ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। (२४)

सर्वदा (धर्म, अर्थ एवं काम स्वरूप) त्रिवर्ग का साधन (सिद्ध करना), देवों का पूजन तथा उन्हें नम्रतापूर्वक नित्य नमस्कार करना चाहिए। (२५)

सर्वदा (दान द्वारा अपनी सम्पत्ति का) विभाजन करने वाला, क्षमायुक्त एवं दयालु (व्यक्ति) गृहस्थ कहलाता है। गृह के होने से (ही कोई व्यक्ति) गृही नहीं होता। (२६)

क्षमा, दया, विज्ञान, सत्य, दम, शम एवं अध्यात्म में निरत होना यही ब्राह्मण का लक्षण है। (२७)

(मानव को तथा) विशेष रूप से द्विजोत्तम को इन गुणों के विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। यथाशक्ति (विहित) कर्मों का पालन एवं निन्दित कर्मों का त्याग करना चाहिए। (२८)

मोह रूपी कल्मष को दूरकर एवं श्रेष्ठ योग की प्राप्ति कर गृहस्थ बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसमें संदेह नहीं करना चाहिए। (२९)

अन्य पुरुष के क्रोध से उत्पन्न अपने निन्दा, अनादर, दोषारोपण, हिंसा, बन्धन एवं ताड़न स्वरूप दोषों का सहना ही क्षमा है। (३०)

सौहार्दवश अपने दुःख के सदृश दूसरों के दुःख में करुणा करने को मुनियों ने दया कहा है। यह धर्म का साक्षात् साधन स्वरूप है। (३१)

यथार्थ रूप से चौदह विद्याओं का धारण करना ही विज्ञान है। उनका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इससे धर्म की वृद्धि होती है। (३२)

विधिपूर्वक विद्या का अध्ययन एवं उनके अर्थों का भी ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त यदि धर्म-सम्बन्धी कार्यों का अनुष्ठान नहीं किया जाता तो (उक्त अध्ययनादि को) विज्ञान नहीं कहा जा सकता। (३३)

सत्य से ही लोकों का जय होता है। सत्य ही वह परम पद है। विद्वानों ने यथार्थ तथ्य के कथन को सत्य कहा है। (३४)

(तपस्यादि द्वारा) शरीर की विश्रान्ति को दम (कहा जाता है)। बुद्धि की प्रसन्नता से शम की उत्पत्ति होती है। (उसे) अध्यात्म अक्षर (तत्त्व) समझना चाहिए जहाँ जाकर शोक नहीं होता। (३५)

जिस विद्या द्वारा साक्षात् उत्कृष्ट देव महादेव भगवान् का ज्ञान होता है उसी को ज्ञान कहा गया है। (३६)

भगवान् की भक्ति करने वाला, तत्परायण, क्रोधशून्य, पवित्र एवं नित्य महायज्ञों का अनुष्ठान करने वाला विद्वान् विप्र उस उत्कृष्ट (ब्रह्मस्वरूप तत्त्व) को प्राप्त करता है। (३७)

धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं परिपालयेत् ।
न हि देहं विना रुद्रः पुरुषैर्विद्यते परः ।।३८
नित्यधर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः ।
न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ।।३९
सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत् ।
धर्मो हि भगवान् देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु ।।४०
भूतानां प्रियकारी स्यात् न परद्रोहकर्मधीः ।
न वेददेवतानिन्दां कुर्यात् तैश्च न संवसेत् ।।४१
यस्त्विमं नियतं विप्रो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः ।
अध्यापयेत् श्रावयेद् वा ब्रह्मलोके महीयते ।।४२

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

१६

व्यास उवाच ।
न हिंस्यात् सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत् क्वचित् ।
नाहितं नाप्रियं वाक्यं न स्तेनः स्याद् कदाचन ।।१
तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव वा ।
परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते ।।२
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रपतितादपि ।
न चान्यस्मादशक्तश्च निन्दितान् वर्जयेद् बुधः ।।३
नित्यं याचनको न स्यात् पुनस्तं नैव याचयेत् ।
प्राणानपहरत्येवं याचकस्तस्य दुर्मतिः ।।४
न देवद्रव्यहारी स्याद् विशेषेण द्विजोत्तमः ।
ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापद्यपि कदाचन ।।५
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ।

यत्नपूर्वक धर्म के आयतन स्वरूप शरीर का पालन करना चाहिए। विना देह के मनुष्य परम पुरुष स्वरूप रुद्र को नहीं जान सकता। (३८)

द्विज को नित्य धर्म, अर्थ एवं काम की पूर्ति में नियमपूर्वक लगे रहना चाहिए। धर्म से रहित काम या अर्थ का मन से भी विचार नहीं करना चाहिए। (३९)

धर्म के कारण कष्ट पाते हुए भी अधर्म का आचरण नहीं करना चाहिए। देवस्वरूप धर्म ही सभी प्राणियों का भगवान् एवं गति है। (४०)

प्राणियों का प्रिय करना चाहिए एवं दूसरों से द्रोह करने का विचार नहीं करना चाहिए। वेदों तथा देवों की निन्दा नहीं करनी चाहिए एवं उन (वेदादि के निन्दकों) के साथ निवास नहीं करना चाहिये। (४१)

जो विप्र पवित्रतापूर्वक इस धर्माध्याय का अध्ययन, अध्यापन या उपदेश करेगा उसे ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। (४२)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त—१५.

१६

व्यास ने कहा—किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए एवं कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए। अहित एवं अप्रिय भाषण नहीं करना चाहिए तथा किसी भी समय चोर नहीं होना चाहिए। (१)

दूसरे के तृण, शाक, मिट्टी या जल का अपहरण करने वाला प्राणी नरक में जाता है। (२)

राजा, शूद्र या पतित व्यक्ति से दान नहीं लेना चाहिए। असमर्थ होने पर भी अन्य व्यक्ति से भी याचना नहीं करनी चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्ति को निन्दितों का त्याग करना चाहिये। (३)

नित्य याचना करने वाला नहीं होना चाहिये एवं पुनः एक ही व्यक्ति से नहीं माँगना चाहिए। (एक ही व्यक्ति से) पुनः याचना करने वाला दुर्बुद्धि व्यक्ति (दाता के) प्राणों का अपहरण करता है। (४)

आपत्ति पड़ने पर भी कभी (किसी व्यक्ति को और) विशेष रूप से श्रेष्ठ ब्राह्मण को देव-सम्बन्धी द्रव्य का अपहरण नहीं करना चाहिए और न तो कभी ब्राह्मण के धन का अपहरण करना चाहिये। (५)

विष को विष नहीं कहते अपितु ब्राह्मण का धन विष होता है। और देवधन का भी यत्नपूर्वक सदा त्याग करना

देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत् ततः ।।६
पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूले फले तृणे ।
अदत्तादानमस्तेयं मनुः प्राह प्रजापतिः ।।७
ग्रहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजाः ।
नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम् ।।८
तृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाशं वै हरेद् बुधः ।
धर्मार्थं केवलं विप्रा ह्यन्यथा पतितो भवेत् ।।९
तिलमुद्गयवादीनां मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः ।
क्षुधार्तैर्नान्यथा विप्रा धर्मविद्भिरिति स्थितिः ।।१०
न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् ।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् ।।११
प्रेत्येह चेदृशो विप्रो गर्ह्यते ब्रह्मवादिभिः ।
छद्मनाचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ।।१२

चाहिए । (६)

प्रजापति मनु ने पुष्प, शाक, जल, काष्ठ, मूल, फल एवं तृण इन सभी द्रव्यों को (उनके स्वामी द्वारा) विना दिये ग्रहण करने को अस्तेय कहा है । (७)

हे द्विजो ! देवपूजा के निमित्त पुष्प ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु, विना अनुमति के केवल एक ही स्थान से नित्य (पुष्प) ग्रहण नहीं करना चाहिए। (८)

हे विप्रो ! वुद्धिमान् मनुष्य केवल धर्म के लिये तृण, काष्ठ, फल एवं पुष्प प्रकट रूप से ग्रहण कर सकता है। अन्य प्रकार से ग्रहण करने पर (वह व्यक्ति) पतित हो जाता है। (९)

हे विप्रो ! धर्मज्ञों ने यह नियम प्रतिपादित किया है कि क्षुधा से पीड़ित मार्ग में स्थित पथिक मुट्ठीभर तिल, मूंग एवं यव आदि ले सकते हैं। अन्य किसी अवस्था में (ऐसा नहीं करना चाहिए) । (१०)

पाप करने के उपरान्त धर्म के व्याज से किसी व्रत का अनुष्ठान नहीं करना चाहिए। व्रत द्वारा पाप को छिपाकर जो व्यक्ति स्त्री और शूद्रों का प्रवञ्चन करता है, इस प्रकार के विप्र की इहलोक और परलोक में ब्रह्मवादी व्यक्ति निन्दा करते हैं। कपटपूर्वक किया गया व्रत राक्षसों को प्राप्त होता है। (११, १२)

यदि (वर्णाश्रमानुसार विहित दण्ड-यज्ञो-पवीतादि) लिङ्ग का अनधिकारी व्यक्ति (तत्तद्वर्णाश्रमानुकूल)

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति ।
स लिङ्गिनां हरेदेनस्तिर्यग्योनौ च जायते ।।१३
बैडालव्रतिनः पापा लोके धर्मविनाशकाः ।
सद्यः पतन्ति पापेषु कर्मणस्तस्य तत् फलम् ।।१४
पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वामाचारांस्तथैव च ।
पञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ।।१५
वेदनिन्दारतान् मर्त्यान् देवनिन्दारतांस्तथा ।
द्विजनिन्दारतांश्चैव मनसापि न चिन्तयेत् ।।१६
याजनं योनिसंबन्धं सहवासं च भाषणम् ।
कुर्वाणः पतते जन्तुस्तस्माद् यत्नेन वर्जयेत् ।।१७
देवद्रोहाद् गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः ।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात् कोटिगुणाधिकम् ।।१८
गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्या राजोपसेवया ।

लिङ्ग धारण कर जीविका का निर्वाह करता है तो वह उन चिह्नों को धारण करने वाले (वर्णाश्रमानुसारी) व्यक्तियों के पापों का भागी होता है एवं जन्मान्तर में उसे तिर्यग्योनि की प्राप्ति होती है। (१३)

लोक में धर्म का विनाश करने वाले वैडालव्रतिक (ढोंगी) पापी लोग तत्काल (अनेक प्रकार के) पाप में रत होते हैं। उनके उस (पाप) कर्म का वही फल होता है। (१४)

पाषण्डी, विकृत कर्म करने वाले, वाममार्गी, पञ्चरात्र एवं पाशुपत मतानुयायियों का वाणी से भी सत्कार नहीं करना चाहिए। (१५)

वेद, देवता एवं द्विजों की निन्दा करने वालों का मन से भी चिन्तन नहीं करना चाहिए। (१६)

(उपर्युक्त प्रकार के पतित व्यक्तियों से) यज्ञ कराने, (विवाहादि) योनिसम्बन्ध करने एवं सहवास करने वाला तथा भाषण करने वाला व्यक्ति पतित हो जाता है। अतएव यत्नपूर्वक इनका त्याग करना चाहिए। (१७)

देवद्रोह की अपेक्षा गुरुद्रोह कोटि-कोटि गुना अधिक दोषपूर्ण होता है। उस (गुरुद्रोह) की अपेक्षा ज्ञानापवाद (ज्ञान की निन्दा) एवं नास्तिकता कोटिगुना अधिक (दोषपूर्ण) है। (१८)

जो धर्म की दृष्टि से हीन हैं ऐसी वृत्तियों जैसे गो (ग्रास का ग्रहण), देवता, ब्राह्मण, कृषि एवं राजा की सेवा द्वारा

कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि धर्मतः ।।१९
कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।।२०
अनृतात् पारदार्याच्च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात् ।
अश्रौतधर्माचरणात् क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ।।२१
अश्रोत्रियेषु वै दानाद् वृषलेषु तथैव च ।
विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ।।२२
नाधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ।
न शूद्रराज्ये निवसेन्न पाषण्डजनैर्वृते ।।२३
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पूर्वपश्चिमयोः शुभम् ।
मुक्त्वा समुद्रयोर्देशं नान्यत्र निवसेद् द्विजः ।।२४
कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः ।
पुण्याश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद् द्विजः ।।२५
अर्द्धक्रोशान्नदीकूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तमः ।

जीविका निर्वाह करने वाले व्यक्तियों के कुल दोषपूर्ण हो जाते हैं। (१९)

कुविवाह, (धार्मिक) क्रिया के लोप, वेदों का अध्ययन न करने एवं ब्राह्मण का अनादर करने से कुल दोषयुक्त हो जाते हैं। (२०)

असत्यभाषण, परस्त्रीगमन, अभक्ष्य के भक्षण एवं श्रुतिविरुद्ध धर्माचरण से कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। (२१)

अश्रोत्रिय एवं विहित आचार से विहीन (द्विज) एवं शूद्र को दान देने से शीघ्र ही कुल का नाश हो जाता है। (२२)

अधार्मिकों एवं पाषण्डियों से युक्त तथा अत्यधिक रोगपूर्ण ग्राम में और शूद्र के राज्य में नहीं रहना चाहिए। (२३)

द्विज को हिमालय एवं विन्ध्य पर्वत के मध्य के देश एवं पूर्व और पश्चिम दिशा के समुद्र के तीरवर्त्ती प्रदेश को छोड़ कर अन्यत्र नहीं रहना चाहिए। (२४)

अथवा जहाँ स्वभावतः नित्य कृष्ण मृग विचरण करते हों या जहाँ पवित्र तथा (लोक-प्रसिद्ध) नदियाँ हों वहाँ द्विज को निवास करना चाहिए। (२५)

श्रेष्ठ द्विज को नदी के तट से आधे कोस की दूरी तक की भूमि का परित्याग कर अन्य किसी पवित्र स्थान

नान्यत्र निवसेत् पुण्यं नान्त्यजग्रामसन्निधौ ।।२६
न संवसेच्च पतितैर्न चण्डालैर्न पुक्कसैः ।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ।।२७
एकशय्यासनं पङ्क्तिर्भाण्डपक्वान्नमिश्रणम् ।
याजनाध्यापने योनिस्तथैव सहभोजनम् ।।२८
सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च ।
एकादश समुद्दिष्टा दोषाः साङ्कर्यसंज्ञिताः ।।२९
समीपे वा व्यवस्थानात् पापं संक्रमते नृणाम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साङ्कर्यं परिवर्जयेत् ।।३०
एकपङ्क्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम् ।
भस्मना कृतमर्यादा न तेषां संकरो भवेत् ।।३१
अग्निना भस्मना चैव सलिलेनावसेकतः ।
द्वारेण स्तम्भमार्गेण षड्भिः पङ्क्तिर्विभिद्यते ।।३२
न कुर्याच्छुष्कवैराणि विवादं न च पैशुनम् ।

में नहीं रहना चाहिए। तथा (चाण्डालादि) अन्त्यज जनों के ग्राम के समीप नहीं रहना चाहिए। (२६)

पतित, चाण्डाल, पुक्कस, मूर्ख, अभिमानी अन्त्यज (श्वपचादि) एवं अन्त्यावसाइयों (नीचों) के साथ नहीं रहना चाहिए। (२७)

(इनके साथ) एक शय्या (पर सोना), एक आसन (पर बैठना), एक पङ्क्ति (में बैठकर भोजनादि करना), वर्त्तनों एवं पक्वान्न का मिश्रण, यज्ञ करना, अध्यापन, इनके साथ विवाहादि सम्बन्ध करना, एक साथ भोजन करना एवं दसवाँ एक साथ अध्ययन करना तथा एक साथ यज्ञ कराना ये ग्यारह साङ्कर्य नामक दोष बतलाये गये हैं। (२८, २९)

अथवा (उपर्युक्त साङ्कर्य दोषों से युक्त व्यक्ति के) समीप रहने से मनुष्यों में पाप का संक्रमण होता है। अतः सभी प्रकार का प्रयत्न कर साङ्कर्य नामक दोषों का परित्याग करना चाहिए। (३०)

जो लोग एक पंक्ति में बैठे होने पर भी एक दूसरे का स्पर्श न करते हों एवं भस्म की सीमा रेखा बनाये हों उनमें साङ्कर्यनामक दोष नहीं उत्पन्न होता। (३१)

अग्नि, भस्म, जल के सेचन, द्वार, स्तम्भ-मार्ग इन छः पदार्थों से पंक्ति का भेद हो जाता है। (३२)

निष्प्रयोजन शत्रुता, विवाद और चुगुलखोरी नहीं

परक्षेत्रे गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ।
न संवदेत् सूतके च न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत् ।।३३
न सूर्यपरिवेषं वा नेन्द्रचापं शवाग्निकम् ।
परस्मै कथयेद् विद्वान् शशिनं वा कदाचन ।।३४
न कुर्याद् बहुभिः सार्द्धं विरोधं बन्धुभिस्तथा ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।३५
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयात् न नक्षत्राणि निर्दिशेत् ।
नोदक्यामभिभाषेत नाशुचिं वा द्विजोत्तमः ।।३६
न देवगुरुविप्राणां दीयमानं तु वारयेत् ।
न चात्मानं प्रशंसेद् वा परनिन्दां च वर्जयेत् ।
वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।।३७
यस्तु देवानृषीन् विप्रान् वेदान् वा निन्दति द्विजः ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीश्वराः ।।३८
निन्दयेद् वै गुरुं देवं वेदं वा सोपबृंहणम् ।
कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः ।।३९
तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किंचिदुत्तरम् ।
कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैतानवलोकयेत् ।।४०
वर्जयेद् वै रहस्यानि परेषां गूहयेद् बुधः ।
विवादं स्वजनैः सार्द्धं न कुर्याद् वै कदाचन ।।४१
न पापं पापिनां ब्रूयादपापं वा द्विजोत्तमाः ।
स तेन तुल्यदोषः स्यान्मिथ्या द्विर्दोषवान् भवेत् ।।४२
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात् ।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम् ।।४३
ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेयगुर्वङ्गनागमे ।
दृष्टं विशोधनं वृद्धैर्नास्ति मिथ्याभिशंसने ।।४४
नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनं चानिमित्ततः ।

करनी चाहिए एवं दूसरे के खेत में चरती हुई गाय किसी को न बतलाना चाहिए। सूतक में (पड़े व्यक्ति से) वार्त्ता नहीं करनी चाहिए एवं किसी के मर्म का स्पर्श न करे। (३३)

विद्वान् दूसरों को सूर्य-मण्डल, इन्द्रधनुप, शवाग्नि एवं चन्द्रमा (के परिवेश) का कभी भी निर्देश न करें। (३४)

वहुमत एवं वन्धुओं से विरोध नहीं करना चाहिये। तथा स्वयं को प्रतिकूल प्रतीत होने वाला व्यवहार दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए। (३५)

पक्ष की तिथि को न कहे और न तो नक्षत्रों का ही निर्देश करे। श्रेष्ठ द्विज को रजस्वला एवं अपवित्र व्यक्ति से वार्त्तालाप नहीं करना चाहिए। (३६)

देवता, गुरु एवं ब्राह्मण को दी जाती हुई (कोई वस्तु) नहीं रोकना चाहिए। अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए और परनिन्दा को रोकना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक वेदनिन्दा एवं देवनिन्दा को छोड़ देना चाहिए। (३७)

हे मुनीश्वरो! जो द्विज देवता, ऋषि, ब्राह्मण अथवा वेदों की निन्दा करता है शास्त्रों में उसका इस लोक में प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है। (३८)

गुरु, देवता एवं उपबृंहण (इतिहासपुराण) युक्त वेदों की निन्दा करने वाला व्यक्ति सौ करोड़ कल्पों से भी अधिक समय तक रौरव नरक में कष्ट भोगता है। (३९)

(किसी के द्वारा देवादि की) निन्दा होने पर चुपचाप बैठे रहना एवं कोई उत्तर न देना चाहिए। निन्दा वाले स्थान से) कान वन्द कर चले जाना चाहिए एवं उन (निन्दकों) को न देखना चाहिए। (४०)

बुद्धिमान् व्यक्ति को दूसरों के रहस्य जानने का प्रयास नहीं करना चाहिए और (ज्ञात होने पर) उसे गुप्त रखना चाहिए। स्वजनों के साथ कभी भी विवाद नहीं करना चाहिए। (४१)

हे द्विजोत्तमो! पापयुक्त अथवा निष्पाप व्यक्ति को 'पापी' नहीं कहना चाहिए। क्योंकि (पापी व्यक्ति को पापी कहने से) वह उसके तुल्य दोषयुक्त हो जाता है एवं (निष्पाप को पापी कहने से) मिथ्याभिभाषण रूप दो दोषों से युक्त होता है। (४२)

मिथ्यादोषारोपण युक्त व्यक्तियों के रोने से जो आँसू गिरते हैं वे मिथ्या दोषारोपण करने वाले व्यक्ति के पुत्रों और पशुओं को विनष्ट करते हैं। (४३)

(ज्ञान-) वृद्धों ने ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी एवं गुरुपत्नी के साथ समागम (स्वरूप महापापों) की शुद्धि होते देखा है किन्तु मिथ्यादोषारोपण की कोई शुद्धि नहीं है। (४४)

विना प्रयोजन उदय हो रहे सूर्य और चन्द्रमा को न

नास्तं यान्तं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम् ।
तिरोहितं वाससा वा नादर्शान्तरगामिनम् ॥४५
न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन ।
न च मूत्रं पुरीषं वा न च संस्पृष्टमैथुनम् ।
नाशुचिः सूर्यसोमादीन् ग्रहानालोकयेद् बुधः ॥४६
पतितव्यङ्गचण्डालानुच्छिष्टान् नावलोकयेत् ।
नाभिभाषेत च परमुच्छिष्टो वाऽवगुण्ठितः ॥४७
न पश्येत् प्रेतसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम् ।
न तैलोदकयोश्छायां न पत्नीं भोजने सति ।
नामुक्तबन्धनाङ्गां वा नोन्मत्तं मत्तमेव वा ॥४८
नाश्नीयात् भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् ।
क्षुवन्तीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम् ॥४९
नोदके चात्मनो रूपं न कूलं श्वभ्रमेव वा ।
न लङ्घयेच्च मूत्रं वा नाधितिष्ठेत् कदाचन ॥५०
न शूद्राय मतिं दद्यात् कृशरं पायसं दधि ।
नोच्छिष्टं वा मधु घृतं न च कृष्णाजिनं हविः ॥५१
न चैवास्मै व्रतं दद्यान्न च धर्मं वदेद् बुधः ।
न च क्रोधवशं गच्छेद् द्वेषं रागं च वर्जयेत् ॥५२
लोभं दम्भं तथा यत्नादसूयां ज्ञानकुत्सनम् ।
ईर्ष्यां मदं तथा शोकं मोहं च परिवर्जयेत् ॥५३
न कुर्यात् कस्यचित् पीडां सुतं शिष्यं च ताडयेत् ।
न हीनानुपसेवेत न च तीक्ष्णमतीन् क्वचित् ॥५४
नात्मानं चावमन्येत दैन्यं यत्नेन वर्जयेत् ।
न विशिष्टानसत्कुर्य्यात् नात्मानं वा शपेद् बुधः ॥५५
न नखैर्विलिखेद् भूमिं गां च संवेशयेन्न हि ।
न नदीषु नदीं ब्रूयात् पर्वतेषु च पर्वतान् ॥५६

देखना चाहिए। (इसी प्रकार अकारण) अस्त गमन कर रहे, आकाशमध्यस्थ, जल में प्रतिबिम्बित, ग्रहणयुक्त वस्त्राच्छादित अथवा दर्पण में प्रतिबिम्बित (सूर्य एवं चन्द्रमा) को न देखना चाहिए। (४५)

कभी भी नग्न स्त्री अथवा पुरुष को न देखना चाहिए मूत्र, मल एवं मैथुनासक्त (व्यक्ति को नहीं देखना चाहिए)। बुद्धिमान् व्यक्ति को अपवित्र अवस्था में होकर सूर्यचन्द्रादि ग्रहों की ओर नहीं देखना चाहिए। (४६)

पतित, विकलाङ्ग, चाण्डाल एवं उच्छिष्ट (मुख वाले) व्यक्ति को नहीं देखना चाहिए। उच्छिष्ट मुख अथवा मुख ढँके हुये होकर दूसरे से संभाषण नहीं करना चाहिये। (४७)

शव का स्पर्श किये हुए व्यक्ति, क्रुद्ध गुरु का मुख, तैल या जल में पड़ने वाली छाया एवं भोजन करते समय पत्नी, खुले अङ्गों वाली स्त्री, पागल एवं मतवाले व्यक्ति को नहीं देखना चाहिए। (४८)

पत्नी के साथ भोजन नहीं करना चाहिए एवं उसे भोजन करते नहीं देखना चाहिये। छींकने, जम्हाई, लेने अथवा यथेच्छ भाव से आसन पर बैठे (रहने के समय) पत्नी की ओर नही देखना चाहिए। (४९)

जल में अपना रूप न (देखना चाहिए)। (नदी आदि के) कूल तथा गर्त्त, को नहीं देखना चाहिये। मूत्र को नहीं लाँघना चाहिए तथा मूत्र पर कभी स्थित नहीं होना चाहिए। (५०)

शूद्र को ज्ञानोपदेश नहीं देना चाहिए तथा (शूद्र को) कृशर-अर्थात् तिल-तण्डुल-पक्व वस्तु, पायस, दही, घृत मधु, कृष्णमृगचर्म, हवि एवं उच्छिष्ट नहीं देना चाहिए। (५१)

बुद्धिमान् व्यक्ति शूद्र को व्रत एवं धर्म सम्बन्धी उपदेश न दें। क्रोधाभिभूत नहीं होना चाहिए। राग और द्वेष का त्याग करना चाहिए। (५२)

लोभ, दम्भ, असूया, ज्ञान की निन्दा, ईर्ष्या, मद, शोक एवं मोह का त्याग यत्नपूर्वक करना चाहिए। (५३)

किसी को पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिए। पुत्र एवं शिष्य का ताड़न करना चाहिए। कहीं भी हीन अथवा तीक्ष्णबुद्धि वाले (अर्थात् उग्र) पुरुषों का आश्रय ग्रहण नहीं करना चाहिए। (५४)

अपना अपमान नहीं करना चाहिए। यत्नपूर्वक दीनता का परित्याग करना चाहिए। विशिष्ट (व्यक्तियों का) निरादर नहीं करना चाहिए एवं स्वयं को शाप न देना चाहिये। (५५)

नख से भूमि पर नहीं लिखना चाहिए एवं गाय को नहीं पकड़ना चाहिए। किसी एक नदी के समीप दूसरी नदियों की एवं किसी एक पर्वत पर अन्य पर्वतों की चर्चा नहीं करनी चाहिए। (५६)

आवासे भोजने वाऽपि न त्यजेत् सहयायिनम् ।
नावगाहेदपो नग्नो वह्निं नातिव्रजेत् पदा ।।५७
शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत् ।
न सर्पशस्त्रैः क्रीडेत स्वानि खानि न संस्पृशेत् ।
रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेन सह व्रजेत् ।।५८
न पाणिपादवाङ्नेत्रचापल्यं समुपाश्रयेत् ।
न शिश्नोदरचापल्यं न च श्रवणयोः क्वचित् ।।५९
न चाङ्गनखवादं वै कुर्यान्नाञ्जलिना पिबेत् ।
नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन ।।६०
न शातयेदिष्टकाभिः फलानि न फलेन च ।
न म्लेच्छभाषां शिक्षेत नाकर्षेच्च पदासनम् ।।६१
न भेदनमवस्फोटं छेदनं वा विलेखनम् ।
कुर्याद् विमर्दनं धीमान् नाकस्मादेव निष्फलम् ।।६२

भोजन या निवास (विश्राम) के समय सहयात्री का त्याग नहीं करना चाहिए । नग्न होकर जल में स्नान नहीं करना चाहिए तथा पैर से अग्नि का उल्लंघन नहीं करना चाहिए । (५७)

शिर पर लगाने के अनन्तर बचा हुआ तैल शरीर में नहीं लगाना चाहिए । शस्त्र एवं सर्प से खेलना नहीं चाहिए, अपनी इन्द्रियों, एवं गुप्तस्थान के रोम का भी स्पर्श नहीं करना चाहिए। अशिष्ट व्यक्ति के साथ (कहीं) नहीं जाना चाहिए । (५८)

कहीं भी हाथ, पैर, वाणी एवं नेत्र सम्बन्धी चपलता नहीं करनी चाहिए । लिङ्ग, उदर एवं कर्ण सम्बन्धी चपलता भी नहीं करनी चाहिए । (५९)

अङ्ग एवं नख को नहीं बजाना चाहिए । अञ्जलि द्वारा (जलादि) नहीं पीना चाहिए। कभी भी पैर या हाथ से जल का ताड़न नहीं करना चाहिए । (६०)

ईंट अथवा फल के द्वारा फलों को नहीं तोड़ना चाहिए । म्लेच्छभाषा की शिक्षा नहीं देनी चाहिए । पैर से आसन को नहीं खींचना चाहिए। (६१)

(नख द्वारा किसी वस्तु को) काटना, छेदना एवं फोड़ना नहीं चाहिए तथा (नख से भूमि इत्यादि पर) नहीं लिखना चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति को अकस्मात् निष्प्रयोजन (शरीर आदि) का मर्दन नहीं करना चाहिए। (६२)

नोत्सङ्गे भक्षयेद् भक्ष्यं वृथा चेष्टां च नाचरेत् ।
न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ।।६३
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ।
न लौकिकैः स्तवैर्देवांस्तोषयेद् बाह्यजैरपि ।।६४
नाक्षैः क्रीडेन्न धावेत नाप्सु विण्मूत्रमाचरेत् ।
नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत् ।।६५
न गच्छेन्न पठेद् वाऽपि न चैव स्वशिरः स्पृशेत् ।
न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात् सुप्तं न बोधयेत् ।।६६
न बालातपमासेवेत् प्रेतधूमं विवर्जयेत् ।
नैकः सुप्याच्छून्यगृहे स्वयं नोपानहौ हरेत् ।।६७
नाकारणाद् वा निष्ठीवेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ।
न पादक्षालनं कुर्यात् पादेनैव कदाचन ।।६८
नाग्नौ प्रतापयेत् पादौ न कांस्ये धावयेद् बुधः ।

कोई पदार्थ गोद में रख कर नहीं खाना चाहिए एवं व्यर्थ की चेष्टा नहीं करनी चाहिए । नृत्य, गान एवं वादन नहीं करना चाहिए । (६३)

दोनों हाथों से अपना शिर नहीं खुजलाना चाहिए । लौकिक एवं (देव भाषा से) बाह्य भाषा की स्तुतियों से देवों को सन्तुष्ट (करने का प्रयास) नहीं करना चाहिए । (६४)

अक्ष अर्थात् पासों द्वारा (जूआ) नहीं खेलना चाहिए । दौड़ना नहीं चाहिए । जल में मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए । जूठे मुख नहीं बैठना चाहिए। नित्य नंगे होकर स्नान नहीं करना चाहिए । (६५)

(नग्न अवस्था में) कहीं जाना, पढ़ना अथवा अपने शिर का स्पर्श नहीं करना चाहिए । दाँत द्वारा नख या रोम को नहीं काटना चाहिए तथा सोये (व्यक्ति) को नहीं जगाना चाहिए । (६६)

बालातप-अर्थात् तत्काल उदित हुए सूर्य के धूप का सेवन नहीं करना चाहिए । चिता के धूम्र का त्याग करना चाहिए । शून्य गृह में एकाकी नहीं सोना चाहिए । स्वयं अपने जूतों को नहीं ढोना चाहिए । (६७)

अकारण नहीं थूकना चाहिए एवं बाहु द्वारा नदी को पार नहीं करना चाहिए । कभी भी पैर द्वारा पैर को नहीं धोना चाहिए । (६८)

बुद्धिमान् व्यक्ति को अग्नि से पैर नहीं सेंकना चाहिए एवं काँसे के पात्र में पैर नहीं धोना चाहिए । देवता,

नाभिप्रसारयेद् देवं ब्राह्मणान् गामथापि वा ।
वाय्वग्निगुरुविप्रान् वा सूर्यं वा शशिनं प्रति ॥६९
अशुद्धः शयनं यानं स्वाध्यायं स्नानवाहनम् ।
बहिर्निष्क्रमणं चैव न कुर्वीत कथञ्चन ॥७०
स्वप्नमध्ययनं स्नानमुद्वर्त्तं भोजनं गतिम् ।
उभयोः संध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने चैव वर्जयेत् ॥७१
न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ।
न चासनं पदा वाऽपि न देवप्रतिमां स्पृशेत् ॥७२
नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान् कीर्त्तयेदृषीन् ।
नावगाहेदगाधाम्बु धारयेन्नानिमित्ततः ॥७३
न वामहस्तेनोद्धृत्य पिबेद् वक्त्रेण वा जलम् ।
नोत्तरेदनुपस्पृश्य नाप्सु रेतः समुत्सृजेत् ॥७४
अमेध्यलिप्तमन्यद् वा लोहितं वा विषाणि वा ।
व्यतिक्रमेन्न स्रवन्तीं नाप्सु मैथुनमाचरेत् ।

ब्राह्मण, गाय, वायु, अग्नि, गुरु, (वेदज्ञ) ब्राह्मण, सूर्य एवं चन्द्रमा की ओर पैर नहीं फैलाना चाहिए । (६९)

कभी भी अशुद्ध अवस्था में शयन, सवारी करना, स्वाध्याय, स्नान, वाहन एवं बाहर निकलने का कार्य नहीं करना चाहिए । (७०)

दोनों सन्ध्या एवं मध्याह्न के समय शयन, अध्ययन, स्नान, उबटन का लगाना, भोजन एवं गमन का नित्य त्याग करना चाहिए । (७१)

ब्राह्मण को जूठे मुंह हाथ से गौ, ब्राह्मण, अग्नि, देवप्रतिमा एवं आसन का स्पर्श नहीं करना चाहिए । पैर द्वारा भी (उपर्युक्त पदार्थों का) स्पर्श नहीं करना चाहिए। (७२)

अशुद्ध अवस्था में अग्नि की परिचर्या एवं देवता और ऋषियों के (नाम का) कीर्त्तन नहीं करना चाहिए । अथाह जल में स्नान नहीं करना चाहिए एवं बिना कारण (मलमूत्रादि का वेग) नहीं रोकना चाहिए । (७३)

बायें हाथ से उठाकर अथवा (पशुवत्) मुख द्वारा जल नहीं पीना चाहिए । बिना आचमन किये उत्तर नहीं देना चाहिए एवं जल में वीर्य का त्याग नहीं करना चाहिए । (७४)

अशुद्ध अथवा रुधिर युक्त पदार्थ, विष तथा वेगवती नदी का उल्लंघन एवं जल में मैथुन नहीं करना चाहिए ।

चैत्यं वृक्षं न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमाचरेत् ॥७५
नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान् ।
तुषाङ्गारकरीषं वा नाधितिष्ठेत् कदाचन ॥७६
न चाग्निं लङ्घयेद् धीमान् नोपदध्यादधः क्वचित् ।
न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद् बुधः ॥७७
न कूपमवरोहेत नावेक्षेताशुचिः क्वचित् ।
अग्नौ न च क्षिपेदग्निं नाद्भिः प्रशमयेत् तथा ॥७८
सुहृन्मरणमार्ति वा न स्वयं श्रावयेत् परान् ।
अपण्यं कूटपण्यं वा विक्रये न प्रयोजयेत् ॥७९
न वह्निं मुखनिश्वासैर् ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः ।
पुण्यस्थानोदकस्थाने सीमान्तं वा कृषेन्न तु ॥८०
न भिन्द्यात् पूर्वसमयमभ्युपेतं कदाचन ।
परस्परं पशून् व्यालान् पक्षिणो नावबोधयेत् ॥८१
परबाधं न कुर्वीत जलवातातपादिभिः ।

महान् अथवा चौराहे पर स्थित वृक्ष को नहीं काटना चाहिए तथा जल में नहीं थूकना चाहिए । (७५)

अस्थि, भस्म, कपाल, केश, कण्टक, भूंसी, अग्नि एवं शुष्क गोबर के ऊपर कभी भी नहीं खड़ा होना चाहिए । (७६)

बुद्धिमान् पुरुष को कभी भी अग्नि का लङ्घन नहीं करना चाहिए । कभी (अग्नि को शय्यादि के) नीचे नहीं रखना चाहिए । इसे पैर की ओर नहीं रखना चाहिए एवं बुद्धिमान् को अग्नि मुख से नहीं फूंकना चाहिए । (७७)

कभी कूएँ में नहीं उतरना चाहिए एवं अपवित्र अवस्था में (अग्नि को) नहीं देखना चाहिए । अग्नि में अग्नि नहीं फेंकना चाहिए एवं जल द्वारा (अग्नि) नहीं बुझाना चाहिए । (७८)

दूसरों से मित्र का मरण एवं दुःख स्वयं नहीं कहना चाहिए । विक्रय में बिकने योग्य पदार्थ का अथवा छल द्वारा विक्रय नहीं करना चाहिए । (७९)

बुद्धिमान् व्यक्ति को मुख के निःश्वास से अग्नि नहीं प्रज्वलित करना चाहिए । अपवित्र अवस्था में स्नान के लिए पवित्र तीर्थ के जल में नहीं जाना चाहिए । सीमान्त की भूमि को नहीं जोतना चाहिए । (८०)

कभी भी सत्य प्रतिज्ञा द्वारा किये हुए किसी पूर्व के समझौते को भङ्ग नहीं करना चाहिए । पशु, सर्प एवं

कारयित्वा स्वकर्माणि कारून् पश्चान्न वञ्चयेत् ।
सायंप्रातर् गृहद्वारान् भिक्षार्थं नावघट्टयेत् ॥८२
बहिर्माल्यं बहिर्गन्धं भार्यया सह भोजनम् ।
विगृह्य वादं कुद्वारप्रवेशं च विवर्जयेत् ॥८३
न खादन् ब्राह्मणस्तिष्ठेन्न जल्पेद् वा हसन् बुधः ।
स्वमग्निं नैव हस्तेन स्पृशेन्नाप्सु चिरं वसेत् ॥८४
न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना ।
मुखे नैव धमेदग्निं मुखादग्निरजायत ॥८५
परस्त्रियं न भाषेत नायाज्यं याजयेद् द्विजः ।
नैकश्चरेत् सभां विप्रः समवायं च वर्जयेत् ॥८६
न देवायतनं गच्छेत् कदाचिद् वाऽप्रदक्षिणम् ।
न वीजयेद् वा वस्त्रेण न देवायतने स्वपेत् ॥८७
नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्मिकजनैः सह ।
न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैः पतितेन वा ॥८८
नोपानद्वर्जितो वाऽथ जलादिरहितस्तथा ।
न रात्रौ नारिणा सार्द्धं न विना च कमण्डलुम् ।
नाग्निगोब्राह्मणादीनामन्तरेण व्रजेत् क्वचित् ॥८९
न वत्सतन्त्रीं विततामतिक्रामेत् क्वचिद् द्विजः ।
न निन्देद् योगिनः सिद्धान् व्रतिनो वा यतींस्तथा ॥९०
देवतायतनं प्राज्ञो देवानां चैव सत्रिणाम् ।
नाक्रामेत् कामतश्छायां ब्राह्मणानां च गोरपि ॥९१
स्वां तु नाक्रमयेच्छायां पतिताद्यैर्न रोगिभिः ।
नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत् कदाचन ॥९२
वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम् ।
न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयं च पिबेद् द्विजः ॥९३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

पक्षियों को परस्पर (युद्ध हेतु) उत्तेजित नहीं करना चाहिए । (८१)

जल, वायु एवं धूप आदि के द्वारा दूसरों को वाधा नहीं पहुँचाना चाहिए । अपना कार्य कराने के उपरान्त शिल्पियों को (उनके पारिश्रमिक से) वञ्चित नहीं करना चाहिए । भिक्षा के लिये प्रातः एवं सायंकाल गृह के द्वारों को नहीं पीटना चाहिए । (८२)

दूसरों द्वारा उपभोग की हुई माला एवं गन्ध, भार्या के साथ भोजन, विग्रहपूर्वक विवाद एवं कुत्सित द्वार में प्रवेश करने का त्याग करना चाहिए । (८३)

बुद्धिमान् ब्राह्मण को खाते हुये नहीं खड़ा होना एवं हँसते हुये नहीं वोलना चाहिए । अपने हाथ द्वारा अपनी अग्नि को स्पर्श नहीं करना चाहिए । चिरकाल तक जल में नहीं रहना चाहिए । (८४)

पङ्खा, सूप एवं हाथ से अग्नि नहीं प्रज्वलित करना चाहिए । मुख से अग्नि को नहीं फूँकना चाहिए, क्योंकि अग्नि मुख से उत्पन्न हुआ है । (८५)

द्विज को दूसरे की स्त्री से संभाषण एवं यज्ञ करने के अयोग्य पुरुष का यज्ञ नहीं कराना चाहिए । विप्र को सभा में एकाकी नहीं जाना चाहिए एवं समूह का त्याग करना चाहिए । (८६)

विना प्रदक्षिणा किये देवमन्दिर में नहीं जाना चाहिए । वस्त्र द्वारा पङ्खा नहीं झलना चाहिए एवं देवमन्दिर में शयन नहीं करना चाहिए । (८७)

एकाकी मार्ग में नहीं चलना चाहिये एवं न तो अधार्मिक व्यक्तियों के साथ ही मार्ग में चलना चाहिए । रोगग्रस्त, शूद्र एवं पतित व्यक्तियों के साथ (मार्ग में नहीं जाना चाहिए) । (८८)

जूता एवं जलादि के विना मार्ग में नहीं चलना चाहिए । रात्रि के समय, शत्रु के साथ एवं विना कमण्डलु के (रास्ता नहीं चलना चाहिए) । अग्नि, गौ, एवं ब्राह्मण के मध्य से कहीं नहीं जाना चाहिए । (८९)

द्विज वछड़े में अति-आसक्त (पिन्हायी) हुई गाय को बाँधने वाली फैली हुई रस्सी (या पूंछ) का अतिक्रमण न करे । योगियों, सिद्धों, व्रत करने वालों तथा यतियों की निन्दा नहीं करनी चाहिए । (९०)

बुद्धिमान् व्यक्ति को मन्दिरों को, देवों, यज्ञ करने वालों, ब्राह्मणों एवं गायों की छाया का इच्छापूर्वक उल्लंघन नहीं करना चाहिए । (९१)

पतितादिकों एवं रोगी पुरुषों से अपनी छाया का उल्लङ्घन नहीं होने देना चाहिए । अङ्गार, केश एवं भस्मादि पर कभी भी नहीं ठहरना चाहिए । (९२)

झाड़ू की धूल, स्नान, वस्त्रप्रक्षालन एवं घड़े के (स्नानावशिष्ट) जल का छींटा वचाना चाहिए । द्विज को अभक्ष्य वस्तु नहीं खाना चाहिए एवं पीने के अयोग्य पदार्थ नहीं पीना चाहिए । (९३)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में सोलहवाँ अध्याय समाप्त—१६.

१७

व्यास उवाच ।

नाद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद् वा यदि वाऽन्यतः ।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुङ्क्ते ह्यनापदि ॥१
षण्मासान् यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम् ।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥२
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वराः ।
यस्यान्नेनोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात् ॥३
राजान्नं नर्त्तकान्नं च तक्षणोऽन्नं चर्मकारिणः ।
गणान्नं गणिकान्नं च षण्ढान्नं चैव वर्जयेत् ॥४
चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा ।
गान्धर्वलोहकारान्नं सूतकान्नं च वर्जयेत् ॥५
कुलालचित्रकर्मान्नं वार्धुषेः पतितस्य च ।
पौनर्भवच्छत्रिकयोरभिशस्तस्य चैव हि ॥६
सुवर्णकारशैलूषव्याधबद्धातुरस्य च ।
चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डिकस्य च ॥७
स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च ।
सोमविक्रयिणश्चान्नं श्वपाकस्य विशेषतः ॥८
भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिर्गृहे ।
उत्सृष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः ॥९
अपाङ्क्त्यान्नं च सङ्घान्नं शस्त्राजीवस्य चैव हि ।
क्लीबसंन्यासिनोश्चान्नं मत्तोन्मत्तस्य चैव हि ।
भीतस्य रुदितस्यान्नमवक्रुष्टं परिक्षुतम् ॥१०
ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं सूतकस्य च ।
वृथापाकस्य चैवान्नं शावान्नं श्वशुरस्य च ॥११

१७

व्यास ने कहा—ब्राह्मण को मोह अथवा अन्य किसी कारण से शूद्र का अन्न नहीं खाना चाहिए। आपत्काल के अतिरिक्त जो (शूद्र का अन्न) खाता है उसे शूद्रयोनि प्राप्त होती है। (१)

जो द्विज छः मास तक शूद्र का निन्दित अन्न खाता है वह जीते ही शूद्र हो जाता है एवं मरने पर उसे कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है। (२)

हे मुनीश्वरो ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में जिसका अन्न उदर में रहते हुए व्यक्ति की मृत्यु होती है उसी की योनि उसको प्राप्त होती है। (३)

राजा, नर्त्तक, बढ़ई, चर्मकार, गण—अर्थात् सामूहिक अन्नवितरण-स्थान, गणिका एवं षण्ढ के अन्नों का त्याग करना चाहिए। (४)

चक्रोपजीवी-अर्थात् कुम्हार (या तेली), धोबी, चोर, कलवार, कत्थक, लोहार एवं सूतक के अन्न का परित्याग करना चाहिए। (५)

कुम्भकार, चित्रकार, बढ़ई, पतित, विधवा के पुनर्विवाह के अनन्तर उत्पन्न पुरुष, छत्रिक (छाता धारण करने वाला नौकर) एवं शापग्रस्त व्यक्ति का अन्न नहीं खाना चाहिये। (६)

सुनार, नट, बहेलिया, बन्धन प्राप्त, रोगी, चिकित्सक, व्यभिचारिणी स्त्री एवं दण्ड देने वाले (जल्लाद आदि) व्यक्ति का अन्न नहीं खाना चाहिए। (७)

चोर, नास्तिक, देवता के निन्दक, सोमविक्रयी एवं विशेषकर चाण्डाल का अन्न नहीं खाना चाहिए। (८)

स्त्रीजित एवं जिसके गृह में उसकी स्त्री का उपपति हो, (समाज से) बहिष्कृत, कायर एवं जूठन खाने वाले का अन्न (नहीं खाना चाहिए)। (९)

पंक्तिबहिष्कृत, सङ्घ एवं शस्त्रजीवी के अन्न का त्याग करना चाहिए। नपुंसक, संन्यासी, मतवाला, पागल, भयभीत एवं रोते हुए व्यक्ति के अन्न का एवं निन्दित (या शप्त) तथा छिक्का ग्रस्त अन्न का त्याग करना चाहिए। (१०)

ब्राह्मणद्वेषी, पापबुद्धि, वृथा पाका, श्राद्ध तथा अशौच सम्बन्धी अन्न और शव सम्बन्धी एवं श्वशुर का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए। (११)

अप्रजानां तु नारीणां भृतकस्य तथैव च।
कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा ।।१२
शौण्डान्नं घाटिकान्नं च भिषजामन्नमेव च।
विद्धप्रजननस्यान्नं परिवित्त्यन्नमेव च ।।१३
पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपतेः।
अवज्ञातं चावधूतं सरोषं विस्मयान्वितम्।
गुरोरपि न भोक्तव्यमन्नं संस्कारवर्जितम् ।।१४
दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम्।
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्।।१५
आर्द्धिकः कुलमित्रश्च स्वगोपालश्च नापितः।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ।।१६
कुशीलवः कुम्भकारः क्षेत्रकर्मक एव च।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना दत्त्वा स्वल्पं पणं बुधैः ।।१७

निःसन्तान स्त्री, भृत्य, कारीगर एवं शस्त्र का विक्रय करने वालों के अन्न का विशेष रूप से त्याग करना चाहिए। (१२)

मद्यप (या कलवार), घाटिया, चिकित्सक, विद्धलिङ्गी एवं परिवित्ती—अर्थात् वह ज्येष्ठ भ्राता जिसके अविवाहित रहते छोटे भाई ने विवाह कर लिया हो—का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए। (१३)

पुनर्भू—अर्थात् विधवा से विवाह करने वाले व्यक्ति, दिधिषूपति—अर्थात् पत्नी के जीवित रहते ही परस्त्री का स्वामी वनने वाले व्यक्ति का अन्न विशेष रूप से (त्याग करना चाहिए)। अनादरपूर्वक प्रदत्त, अवधूत अर्थात् चरणादि से संस्पृष्ट, रोष एवं विस्मयपूर्वक दिये हुए अन्न का त्याग करना चाहिए। गुरु के अन्न तथा संस्कार रहित अन्न को भी नहीं खाना चाहिए। (१४)

मनुष्य का सम्पूर्ण दुष्कर्म (पाप) अन्न में स्थित रहता है। जो जिसका अन्न खाता है वह उसके पाप का भक्षण करता है। (१५)

शूद्रों में आर्द्धिक अर्थात् कृषि करनेवाले, कुल के मित्र, अपनी गायों का पालन करनेवाले, नाऊ एवं स्वयं को निवेदित करने वाले अर्थात् अपने दासके अन्न का भोजन किया जा सकता है। (१६)

बुद्धिमान् व्यक्ति को शूद्रों में कुशीलव अर्थात् नाटकादि करके अपनी जीविका चलानेवालों, कुम्हार एवं खेत में काम करने वालों का अन्न अल्प मूल्य देकर खाना चाहिए। (१७)

पायसं स्नेहपक्वं यद् गोरसं चैव सक्तवः।
पिण्याकं चैव तैलं च शूद्राद् ग्राह्यं द्विजातिभिः ।।१८
वृन्ताकं नालिकाशाकं कुसुम्भाश्मन्तकं तथा।
पलाण्डुं लशुनं शुक्तं निर्यासं चैव वर्जयेत् ।।१९
छत्राकं विड्वराहं च शेलुं पेयूषमेव च।
विलयं सुमुखं चैव कवकानि च वर्जयेत् ।।२०
गृञ्जनं किंशुकं चैव ककुभाण्डं तथैव च।
उदुम्बरमलाबुं च जग्ध्वा पतति वै द्विजः ।।२१
वृथा कृशरसंयावं पायसापूपमेव च।
अनुपाकृतमांसं च देवान्नानि हवींषि च ।।२२
यवागूं मातुलिङ्गं च मत्स्यानप्यनुपाकृतान्।
नीपं कपित्थं प्लक्षं च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।।२३
पिण्याकं चोद्धृतस्नेहं देवधान्यं तथैव च।

पायस अर्थात् दुग्ध में वने खीर आदि, घृत में पके पदार्थ, गोरस, सत्तू, पिण्याक (केसर, हींग, शिलाजीत या खली) एवं तैल ये सभी पदार्थ शूद्रों से द्विज ग्रहण कर सकते हैं। (१८)

वैगन, नालिका साग, कुसुम्भ, अश्मन्तक, प्याज, लशुन, शुक्त एवं वृक्ष की गोंद का त्याग करना चाहिए। (१९)

छत्राक अर्थात् कुकुरमुत्ता, विड्वराह अर्थात् ग्राम्य-शूकर, शेलु, पेयूष अर्थात् सात दिन के भीतर की प्रसूता गौ का दूध, विलय, सुमुख, कवक, गाजर, किंशुक, ककुभाण्ड, उदुम्वर एवं अलावु अर्थात् लौकी खाने से द्विज पतित हो जाता है। (२०, २१)

निष्प्रयोजन अर्थात् देवादि कार्य के विना कृशर, (तिल एवं तण्डुल से वनी वस्तु) संयाव अर्थात् दूध और गुड़ से युक्त गेहूँ का चूर्ण, पायस अर्थात् खीर और अपूप अर्थात् मालपूआ, अनुपाकृत अर्थात् मन्त्र द्वारा असंस्कृत मांस, देवान्न, घृतादि हवनीय द्रव्य, यवागू एवं मातुलिङ्ग, असंस्कृत मछली, कदम्व, कपित्थ एवं प्लक्ष का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए। (२२,२३)

स्नेह निकाला हुआ पिण्याक अर्थात् खली, देवता का धान्य एवं रात्रि में तिल तथा दही का प्रयत्नपूर्वक परित्याग करना

रात्रौ च तिलसंबद्धं प्रयत्नेन दधि त्यजेत् ।।२४
नाश्नीयात् पयसा तक्रं न बीजान्युपजीवयेत् ।
क्रियादुष्टं भावदुष्टमसत्संसर्गि वर्जयेत् ।।२५
केशकीटावपन्नं च सहृल्लेखं च नित्यशः ।
श्वाघ्रातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेक्षितं तथा ।।२६
उदक्यया च पतितैर्गवा चाघ्रातमेव च ।
अनर्चितं पर्युषितं पर्यायान्नं च नित्यशः ।।२७
काककुक्कुटसंस्पृष्टं कृमिभिश्चैव संयुतम् ।
मनुष्यैरप्यवघ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च ।।२८
न रजस्वलया दत्तं न पुंश्चल्या सरोषया ।
मलवद्वाससा वापि परवासोऽथ वर्जयेत् ।।२९
विवत्सायाश्च गोः क्षीरमौष्ट्रं वानिर्दशं तथा ।
आविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनुरब्रवीत् ।।३०
बलाकं हंसदात्यूहं कलविङ्कं शुकं तथा ।
कुररं च चकोरं च जालपादं च कोकिलम् ।।३१
वायसं खञ्जरीटं च श्येनं गृध्रं तथैव च ।
उलूकं चक्रवाकं च भासं पारावतानपि ।
कपोतं टिट्टिभं चैव ग्रामकुक्कुटमेव च ।।३२
सिंहव्याघ्रं च मार्जारं श्वानं शूकरमेव च ।
शृगालं मर्कटं चैव गर्दभं च न भक्षयेत् ।।३३
न भक्षयेत् सर्वमृगान् पक्षिणोऽन्यान् वनेचरान् ।
जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनश्चेति धारणा ।।३४
गोधा कूर्मः शशः श्वाविच्छल्यकश्चेति सत्तमाः ।
भक्ष्याः पञ्चनखा नित्यं मनुराह प्रजापतिः ।।३५
मत्स्यान् सशल्कान् भुञ्जीयान् मांसं रौरवमेव च ।
निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तु नान्यथा ।।३६
मयूरं तित्तिरं चैव कपोतं च कपिञ्जलम् ।
वाध्रीणसं बकं भक्ष्यं मीनहंसपराजिताः ।।३७

चाहिए। (२४)

दुग्ध के साथ मट्ठे का सेवन नहीं करना चाहिए। बीजों द्वारा जीविका का निर्वाह नहीं करना चाहिए। विचार से दूषित एवं कर्म से दूषित तथा असत्सङ्गति से युक्त वस्तुओं का परित्याग करना चाहिए। (२५)

केश एवं कीट से युक्त, संदेहास्पद, कुत्ते द्वारा सूँघा हुआ, एक बार पकाये जाने के उपरान्त पुनः पकाया गया, चाण्डाल, रजस्वला स्त्री एवं पतित व्यक्तियों द्वारा देखा गया तथा गाय द्वारा सूँघा गया अन्न नहीं खाना चाहिए। अनादरपूर्वक दिया हुआ अन्न, पर्युषित अर्थात् बासी अन्न एवं *पर्यायान्न का त्याग करना चाहिए। (२६, २७)

कौआ एवं मुर्गा से स्पृष्ट, कृमियुक्त, मनुष्यों द्वारा सूँघे गए एवं कोढ़ी से छुए गये अन्न का त्याग करना चाहिये। (२८)

रजस्वला एवं क्रोध-युक्त व्यभिचारिणि स्त्री के दिये हुए, मलिनवस्त्र धारण करने वाले व्यक्ति के (दिये अन्न) एवं दूसरे के वस्त्र का त्याग करना चाहिए। (२९)

मनु ने कहा है कि बछड़ा-रहित गौ, ऊँटनी एवं दस दिनों के भीतर ब्यायी हुई (गौ इत्यादि) का दूध भेड़ी एवं सन्धिनी अर्थात् गर्भिणी गौ का दूध नहीं पीना चाहिए। (३०)

बगुला, हँस, दात्यूह, कलविंक-अर्थात् गौरैया, सुग्गा, कुररपक्षी, चकोर, जालपाद, कोयल, कौआ, खञ्जरीट, बाज, गिद्ध, उलूक, चक्रवाक, भासपक्षी, पारावत, कपोत, टिट्टिभ, ग्रामकुक्कुट, सिंह, व्याघ्र, बिल्ली, कुत्ता, सूअर, शृगाल, बन्दर, एवं गधा इन सभी का (मांस) नहीं खाना चाहिए। (३१-३३)

नियमतः (आगे कहे गये पशुपक्षियों से भिन्न) समस्त अरण्यचारी पशुपक्षी, जलचर एवं स्थलचारी प्राणियों का (मांस) नहीं खाना चाहिए। (३४)

हे श्रेष्ठ ऋषियो! प्रजापति मनु ने कहा है कि गोह, कछुआ, खरगोश, श्वावित् एमं शल्यकी (ये पाँच ही) पाँच नखों वाले प्राणी भक्षणीय हैं। (३५)

देवता एवं ब्राह्मणों को बिना निवेदित किये शल्कयुक्त (अर्थात् चोंइयाँ वाली) मछली एवं रुरुमृग का मांस खाना चाहिए। (३६)

मयूर, तीतर, कपोत, कपिञ्जल, वाध्रीणस, बगुला, मछली, हंस एवं पराजिता का मांस भक्षणीय होता है। (३७)

*एक पंक्ति में बैठ कर भोजन करने वालों में किसी एक के उठकर आचमन कर लेने के उपरान्त सभी भोजन करने वालों के अन्न को पर्यायान्न कहा जाता है।

शफरं सिंहतुण्डं च तथा पाठीनरोहितौ ।
मत्स्याश्चैते समुद्दिष्टा भक्षणाय द्विजोत्तमाः ।।३८
प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसं च द्विजकाम्यया ।
यथाविधि नियुक्तं च प्राणानामपि चात्यये ।।३९
भक्षयेन्नैव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते ।
औषधार्थमशक्तौ वा नियोगाद् यज्ञकारणात् ।।४०
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत् ।
यावन्ति पशुरोमाणि तावतो नरकान् व्रजेत् ।।४१

अदेयं चाप्यपेयं च तथैवास्पृश्यमेव च ।
द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः ।।४२
तस्मात् सर्वप्रकारेण मद्यं नित्यं विवर्जयेत् ।
पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसंभाष्यो भवेद् द्विजः ।।४३
भक्षयित्वा ह्यभक्ष्याणि पीत्वाऽपेयान्यपि द्विजः ।
नाधिकारी भवेत् तावद् यावद् तन्न जहात्यधः ।।४४
तस्मात् परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः ।
अपेयानि च विप्रो वै तथा चेद् याति रौरवम् ।।४५

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

१८

ऋषय ऊचुः ।
अहन्यहनि कर्त्तव्यं ब्राह्मणानां महामुने ।
तदाचक्ष्वाखिलं कर्म येन मुच्येत बन्धनात् ।।१

व्यास उवाच ।
वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं गदतो मम ।
अहन्यहनि कर्तव्यं ब्राह्मणानां क्रमाद् विधिम् ।।२

हे द्विजोत्तमो ! मछलियों में शफर अर्थात् सौरी मछली, सिंहतुण्ड, पाठीन एवं रोहित (नामक मछलियों) को खाने योग्य बतलाया गया है । (३८)

द्विज को इच्छा होने पर एवं प्राण जाने की स्थिति होने पर इन निर्दिष्ट (पशु इत्यादि) के मांस को यथाविधि मन्त्रोच्चारपूर्वक जल द्वारा अभिसिञ्चित करने के उपरान्त भक्षण करना चाहिए । (३९)

मांस नहीं ही खाना चाहिये । किन्तु (यज्ञादि कर्म में) अवशिष्ट मांस के खाने वाले को (पाप) नहीं लगता । (इसी प्रकार) औषध के लिये, शक्ति हीनता की अवस्था में आमन्त्रित होने पर अथवा यज्ञ के निमित्त मांस खाना चाहिए । (४०)

श्राद्ध या देवता सम्बन्धी कार्य में निमन्त्रित होने पर मांस का त्याग करने वाला उतनी बार नरक में जाता है जितने रोम पशु के शरीर में होते हैं । (४१)

यह नियम है कि द्विजों को मद्य दान देने, पीने, स्पर्श करने एवं देखने के योग्य नहीं है । (४२)

अतः सभी प्रकार से मद्य का नित्य परित्याग करना चाहिए । मद्य पीने से द्विज अपने कर्म से पतित एवं संभाषण के अयोग्य हो जाता है । (४३)

अभक्ष्य का भक्षण करने एवं पीने के अयोग्य पदार्थ का पान करने के उपरान्त द्विज तबतक (अपने कर्म का) अधिकारी नहीं होता जबतक उसका पाप नहीं दूर हो जाता । (४४)

हे विप्रो ! अतः प्रयत्नपूर्वक नित्य अभक्ष्य एवं अपेय का परित्याग करना चाहिए अन्यथा (उसे) रौरव नरक में जाना पड़ता है । (४५)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त—१७.

१८

ऋषियों ने कहा—हे महामुनि ! आप ब्राह्मणों के प्रतिदिन के कर्त्तव्य कर्म का जिसके द्वारा बन्धन से मुक्ति प्राप्त होती है पूर्णरूप से वर्णन करें । (१)

व्यास ने कहा—मैं बतला रहा हूँ । आप लोग सावधान होकर मेरे द्वारा कहे जा रहे ब्राह्मणों के प्रतिदिन के कर्त्तव्य एवं विधि को क्रमशः सुनें । (२)

ब्राह्मे मुहूर्ते तूत्थाय धर्ममर्थं च चिन्तयेत् ।
कायक्लेशं तदुद्भूतं ध्यायीत मनसेश्वरम् ॥३
उषःकालेऽथ संप्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः ।
स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि ॥४
प्रातः स्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥५
प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं शुभम् ।
ऋषीणामृषिता नित्यं प्रातःस्नानान्न संशयः ॥ ६
मुखे सुप्तस्य सततं लाला याः संस्रवन्ति हि ।
ततो नैवाचरेत् कर्म अकृत्वा स्नानमादितः ॥७
अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ।
प्रातःस्नानेन पापानि पूयन्ते नात्र संशयः ॥८
न च स्नानं विना पुंसां पावनं कर्म सुस्मृतम् ।
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥९

ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर धर्म और अर्थ तथा उससे होनेवाले शारीरिक कष्ट का चिन्तन तथा मन में ईश्वर का ध्यान करना चाहिए । (३)

उषाकाल होने पर बुद्धिमान् व्यक्ति को आवश्यक कर्म करने के उपरान्त विधिपूर्वक शौचकर्म कर शुद्ध नदी में स्नान करना चाहिए । (४)

प्रातः स्नान से पाप कर्म करनेवाले मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं । अतः सभी प्रकार का प्रयत्न कर प्रातः स्नान करना चाहिए । (५)

दृष्ट और अदृष्ट फल देनेवाले प्रातः स्नान की (सभी लोग) प्रशंसा करते हैं । निस्सन्देह प्रातःस्नान के कारण ऋषियों का ऋषित्व होता है । (६)

क्योंकि सोए हुए व्यक्ति के मुख से निरन्तर लार बहता रहता है अतः सर्वप्रथम बिना स्नान किए कोई कर्म नहीं करना चाहिए । (७)

प्रातः स्नान से अलक्ष्मी, कालकर्णी, दुःस्वप्न, दुर्विचार एवं अन्य पाप दूर होते हैं, इसमें सन्देह नहीं । (८)

बिना स्नान के मनुष्यों को पवित्र करने वाला कोई कर्म नही बतलाया गया है । अतः होम जप के समय विशेष रूप से स्नान करना चाहिए । (९)

अशक्तावशिरस्कं वा स्नानमस्य विधीयते ।
आर्द्रेण वाससा वाऽथ मार्जनं कापिलं स्मृतम् ॥१०
असामर्थ्ये समुत्पन्ने स्नानमेवं समाचरेत् ।
ब्राह्मादीनि यथाशक्तौ स्नानान्याहुर्मनीषिणः ॥११
ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुणं यौगिकं तद्वत् षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥१२
ब्राह्मं तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः ।
आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद्देहधूननम् ॥१३
गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् ।
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद् दिव्यमुच्यते ॥१४
वारुणं चावगाहस्तु मानसं त्वात्मवेदनम् ।
यौगिकं स्नानमाख्यातं योगो विष्णुविचिन्तनम् ॥१५
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ।
मनःशुचिकरं पुंसां नित्यं तत् स्नानमाचरेत् ॥१६

असमर्थ व्यक्ति के लिए मस्तक छोड़कर स्नान करने का विधान किया गया है । अथवा भींगे वस्त्र से शरीर के मार्जन को कपिल स्नान कहा गया है । (१०)

शक्ति न होने पर ऐसा ही स्नान करना चाहिए । विद्वानों ने शक्ति के अनुसार ब्राह्म इत्यादि स्नान का विधान किया है । (११)

संक्षेप में ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण एवं यौगिक छः प्रकार के स्नान कहे गये हैं । (१२)

मन्त्र और जलबिन्दु युक्त कुशा से मार्जन करना ब्राह्म स्नान होता है । मस्तक से पैर तक भस्म लगाने से आग्नेय स्नान होता है । (१३)

गायों की धूल से सम्पन्न उत्तम स्नान को वायव्य कहा जाता है । धूपयुक्त वर्षा द्वारा सम्पन्न उत्तम स्नान को दिव्य कहा जाता है । (१४)

(जल में) अवगाहन करने को वारुण स्नान कहा जाता है । मन द्वारा आत्म ज्ञान करने को यौगिक स्नान कहा जाता है । विष्णु का चिंतन करना ही योग है । (१५)

ब्रह्मवादियों द्वारा सेवित (इस स्नानको) आत्मतीर्थ कहा गया है । यह मनुष्यों के मन की शुद्धि करता है । अतः वह यौगिक स्नान नित्य करना चाहिए । (१६)

शक्तश्चेद् वारुणं विद्वान् प्राजापत्यं तथैव च ।
प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं वै भक्षयित्वा विधानतः ।।१७
आचम्य प्रयतो नित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत् ।
मध्याङ्गुलिसमस्थौल्यं द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ।।१८
सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात् तदग्रेण तु धावयेत् ।
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसंभवं शुभम् ।
अपामार्गं च बिल्वं च करवीरं विशेषतः ।।१९
वर्जयित्वा निन्दितानि गृहीत्वैकं यथोदितम् ।
परिहृत्य दिनं पापं भक्षयेद् वै विधानवित् ।।२०
नोत्पाटयेद् दन्तकाष्ठं नाङ्गुल्या धावयेत् क्वचित् ।
प्रक्षाल्य भङ्क्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः ।।२१
स्नात्वा संतर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ।
आचम्य मन्त्रवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ।।२२
संमार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः ।
आपो हि ष्ठा व्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः ।।२३
ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम् ।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद् भास्करं प्रति तन्मनाः ।।२४
प्राक्कूलेषु समासीनो दर्भेषु सुसमाहितः ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत् संध्यामिति श्रुतिः ।।२५
या संध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला ।
ऐश्वरी तु पराशक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ।।२६
ध्यात्वाऽर्कमण्डलगतां सावित्रीं वै जपन् बुधः ।
प्राङ्मुखः सततं विप्रः संध्योपासनमाचरेत् ।।२७
संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदन्यत् कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलमाप्नुयात् ।।२८
अनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपास्य विधिवत् संध्यां प्राप्ताः पूर्वं परां गतिम् ।।२९
योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः ।

विद्वान् को समर्थ होने पर वारुण एवं प्राजापत्य स्नान करना चाहिए। दन्तकाष्ठ को धोने के उपरान्त विधिपूर्वक भक्षण (चर्वण) करना चाहिए। (१७)

(तदनन्तर) आचमन कर नित्य प्रातः काल स्नान करना चाहिए। मध्यमा अंगुली के सदृश मोटा एवं बारह अंगुल का (लम्बा) त्वचायुक्त दन्तकाष्ठ लेकर उसके अग्रभाग से मुखशुद्धि करनी चाहिए। विशेष रूप से क्षीर (दूध वाले) वृक्ष, मालती, अपामार्ग, बेल एवं कनेर वृक्ष का दन्तकाष्ठ होता है। (१८, १९)

दोषपूर्ण दिनों को छोड़कर विधानवेत्ता पुरुष को निन्दित दन्तकाष्ठों का परित्याग कर विधानानुसार एक दन्त धावन करना चाहिए। (२०)

दन्तकाष्ठ को उखाड़ना नहीं चाहिए एवं कभी उसे अँगुली से दन्तधावन नहीं करना चाहिए। (मुख) धोने के उपरान्त उसे तोड़कर सावधानी के साथ पवित्र स्थान में रख देना चाहिए। (२१)

स्नानोपरान्त मन्त्रवेत्ता व्यक्ति आचमन करके देवता, ऋषि एवं पितरों का तर्पण करे। (तदनन्तर) मौन-धारण करके पुनः आचमन करे। (२२)

(तदुपरान्त) "आपो हि ष्ठा" इत्यादि मन्त्र, व्याहृतियों, गायत्री अथवा वरुणसम्बन्धी शुभ मन्त्रों का पाठ करते हुए कुश के जलबिन्दुओं से (अपना) मार्जन करना चाहिए। (२३)

ओंकार एवं व्याहृतियों से युक्त वेदमाता गायत्री का जपकर तन्मयतापूर्वक सूर्य को जलाञ्जलि देना चाहिए। (२४)

तदनन्तर पूर्व की ओर बिछे हुए कुशासन पर एकाग्रतापूर्वक बैठकर तीन प्राणायाम करना चाहिए। तत्पश्चात् सन्ध्या का ध्यान करना चाहिए। यही श्रुति का विधान है। (२५)

जो यह सन्ध्या है वही जगत् को उत्पन्न करने वाली, मायातीता, निष्कला और तीन तत्त्वों से उत्पन्न होने वाली ईश्वर की अद्वितीय शक्ति है। (२६)

विद्वान् विप्र को पूर्वमुख होकर सूर्यमण्डलगत सावित्री का ध्यान करने के उपरान्त गायत्री का जप करते हुए सन्ध्योपासन करना चाहिए। (२७)

सन्ध्या से रहित व्यक्ति नित्य अशुचि एवं सभी कर्मों का अनधिकारी होता है। ऐसा व्यक्ति जो भी कोई कार्य करता है उसे उसका फल नहीं प्राप्त होता। (२८)

प्राचीन काल में वेदपारगामी शान्त ब्राह्मणों ने अनन्यमन से विधिपूर्वक सन्ध्योपासना करके उत्कृष्ट गति प्राप्त की। (२९)

जो द्विजोत्तम सन्ध्योपासना छोड़कर अन्य धर्मकार्य

विहाय संध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम् ।।३०
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन संध्योपासनमाचरेत् ।
उपासितो भवेत् तेन देवो योगतनुः परः ।।३१
सहस्रपरमां नित्यं शतमध्यां दशावराम् ।
सावित्रीं वै जपेद् विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः स्थितः ।।३२
अथोपतिष्ठेदादित्यमुदयन्तं समाहितः ।
मन्त्रैस्तु विविधैः सौरैर्ऋग्यजुःसामसंभवैः ।।३३
उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम् ।
कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्ध्ना तेनैव मन्त्रतः ।।३४
ओं खखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामि चात्मानं नमस्ते ज्ञानरूपिणे ।
नमस्ते घृणिने तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे ।।३५
त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योती रसोऽमृतम् ।
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः सर्वे रुद्राः सनातनाः ।
पुरुषः सन्महोऽतस्त्वां प्रणमामि कपर्दिनम् ।।३६
त्वमेव विश्वं बहुधा सदसत् सूयते च यत् ।
नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं शरणं गतः ।।३७
प्रचेतसे नमस्तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय ते ।
नमो नमस्ते रुद्राय त्वामहं शरणं गतः ।।३८
हिरण्यबाहवे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः ।
अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाः पतये नमः ।।३९
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने ।
विलोहिताय भर्गाय सहस्राक्षाय ते नमः ।।४०
नमो हंसाय ते नित्यमादित्याय नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमोऽस्तु ते ।।४१
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम् ।
हिरण्मयं गृहे गुप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।।४२
नमस्यामि परं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वां परां गतिम् ।
विश्वं पशुपतिं भीमं नरनारीशरीरिणम् ।।४३
नमः सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्ठिने ।

में प्रयत्न करता है वह सहस्रों नरकों में जाता है। (३०)

अतएव सभी प्रकार का प्रयत्नकर सन्ध्योपासन करना चाहिए। उससे योगात्मा परम देव की उपासना होती है। (३१)

विद्वान् व्यक्ति को सावधानी के साथ पूर्वाभिमुख बैठकर गायत्री का जप करना चाहिए। सहस्र वार का जप उत्कृष्ट, सौ वार का जप मध्यम एवं दस वार का जप निकृष्ट होता है। (३२)

तदनन्तर सावधानी पूर्वक ऋग्, यजुः एवं सामवेद के सूर्यसम्बन्धी अनेक मन्त्रों द्वारा उदय कालीन आदित्य की उपासना करनी चाहिए। (३३)

महायोगस्वरूप देवाधिदेव सूर्य की उपासना करने के उपरान्त उसी मन्त्र द्वारा पृथ्वी पर मस्तक झुकाकर प्रणाम करना चाहिए (और निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिये)। (३४)

मैं खखोल्क, शान्त, कारणत्रय के हेतुस्वरूप (सूर्य के प्रति) स्वयं को निवेदित करता हूँ। हे ज्ञानस्वरूप! आप को नमस्कार है। हे घृणी ब्रह्मरूपी सूर्य! आपको नमस्कार है। (३५)

आप ही परम ब्रह्म, अप्, ज्योति, रस एवं अमृत स्वरूप हैं। आप भूः, भुवः, स्वः, ओङ्कार एवं सभी सनातन रुद्र हैं। आप सत् एवं तेजस्वरूप पुरुष हैं। अतः आप कपर्दी को मैं प्रणाम करता हूँ। (३६)

आप ही अनेक रूपों वाले समस्त सत् एवं असत् स्वरूप विश्व को उत्पन्न करते हैं। सूर्यस्वरूप रुद्र को नमस्कार है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। (३७)

आप प्रचेता एवं मीढुष्टम को नमस्कार है। रुद्र को बारम्बार नमस्कार है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। (३८)

आप हिरण्यबाहु एवं हिरण्यपति को नमस्कार है। आप अम्बिकापति एवं उमापति को नमस्कार है। (३९)

आप नीलग्रीव एवं पिनाकी को नमस्कार है। आप विलोहित, भर्ग एवं सहस्राक्ष को नमस्कार है। (४०)

आप हंस को नित्य नमस्कार है। आप आदित्य को नमस्कार है। आप वज्रहस्त एवं त्र्यम्बक को नमस्कार है। (४१)

मैं आप विरूपाक्ष महान् परमेश्वर की शरण लेता हूँ। सभी देहधारियों के (शरीर रूपी) गृह में गुप्त आप हिरण्मय आत्मा हैं। (४२)

मैं परम ज्योतिस्वरूप, ब्रह्मा, परम गति स्वरूप, नरनारीशरीरधारी, विश्वात्मक, भीम एवं पशुपति आप को नमस्कार करता हूँ। (४३)

प्रकाशशील सूर्यस्वरूप परमेष्ठी रुद्र को नमस्कार है।

उग्राय सर्वभक्ताय त्वां प्रपद्ये सदैव हि ॥४४
एतद् वै सूर्यहृदयं जप्त्वा स्तवमनुत्तमम् ।
प्रातः कालेऽथ मध्याह्ने नमस्कुर्याद् दिवाकरम् ॥४५
इदं पुत्राय शिष्याय धार्मिकाय द्विजातये ।
प्रदेयं सूर्यहृदयं ब्रह्मणा तु प्रदर्शितम् ॥४६
सर्वपापप्रशमनं वेदसारसमुद्भवम् ।
ब्राह्मणानां हितं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥४७
अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि ।
प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥४८
ऋत्विक्पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वाऽपि सहोदरः ।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयुर्वा यथाविधि ॥४९
पवित्रपाणिः पूतात्मा शुक्लाम्बरधरोत्तरः ।
अनन्यमानसो वह्निं जुहुयात् संयतेन्द्रियः ॥५०
विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः ।

मैं सदा ही सर्वभक्त, (विभाग शक्ति) उग्रस्वरूप आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। (४४)

सूर्यहृदय नामक इस श्रेष्ठ स्तोत्र का जप करने के उपरान्त प्रातःकाल एवं मध्याह्न में सूर्य को नमस्कार करना चाहिए। (४५)

ब्रह्मा द्वारा प्रदर्शित वेदों के सार से प्रकट हुआ, तथा समस्त पापों को नष्ट करनेवाला यह सूर्यहृदय नामक स्तोत्र द्विजाति-कुलोत्पन्न धार्मिक पुत्र एवं शिष्य को प्रदान करना चाहिए। ऋषि समूहों ने ब्राह्मणों के हितकारी इस पवित्र स्तोत्र का सेवन किया है। (४६, ४७)

तदुपरान्त घर आकर ब्राह्मण को यथाविधि आचमन कर एवं विधिवत् अग्नि प्रज्वलित कर हवन करना चाहिए। (४८)

अथवा विशेषरूप से आज्ञा प्राप्तकर पुरोहित, पुत्र, पत्नी, शिष्य या सहोदर भाई यथाविधि हवन करें। (४९)

हाथ में पवित्री एवं शुक्लवर्ण का वस्त्र एवं उत्तरीय धारण किये हुए पवित्र हृदय एवं एकाग्र मन से इन्द्रियों को संयमित कर हवन करना चाहिए। (५०)

कुशा अथवा यज्ञोपवीत के विना जो कर्म किया जाता है वह सम्पूर्ण कर्म राक्षसी हो जाता है। वह कर्म इहलोक

राक्षसं तद्भवेत् सर्वं नामुत्रेह फलप्रदम् ॥५१
दैवतानि नमस्कुर्याद् देयसारान्निवेदयेत् ।
दद्यात् पुष्पादिकं तेषां वृद्धांश्चैवाभिवादयेत् ॥५२
गुरुं चैवाप्युपासीत हितं चास्य समाचरेत् ।
वेदाभ्यासं ततः कुर्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः ॥५३
जपेदध्यापयेच्छिष्यान् धारयेच्च विचारयेत् ।
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तमः ।
वैदिकांश्चैव निगमान् वेदाङ्गानि विशेषतः ॥५४
उपेयादीश्वरं चाथ योगक्षेमप्रसिद्धये ।
साधयेद् विविधानर्थान् कुटुम्बार्थे ततो द्विजः ॥५५
ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।
पुष्पाक्षतान् कुशतिलान् गोमयं शुद्धमेव च ॥५६
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च ।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥५७

या परलोक में कोई फल नहीं प्रदान करता। (५१)

देवों को नमस्कार करना चाहिए एवं उन्हें देय पदार्थों में उत्कृष्टतम पदार्थों को निवेदित करना चाहिए। उन (देवों) को पुष्पादिक प्रदान करना चाहिए तथा वृद्धों को प्रणाम करना चाहिए। (५२)

गुरु की सेवा तथा उनके हित का साधन करना चाहिए। तदुपरान्त द्विज को यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक वेदाभ्यास करना चाहिए। (५३)

द्विजोत्तम को (मन्त्रादि का) जप करना चाहिए एवं शिष्यों को (शास्त्र) पढ़ाना चाहिए। (उन्हें पढ़े हुए शास्त्रों का) धारण एवं तत्सम्बन्धी विचार करना चाहिए। शास्त्र के अनुसार धर्मादि विषयक (तत्त्वों) एवं विशेषकर वैदिक शास्त्रों तथा वेदाङ्गों का चिन्तन करना चाहिए। (५४)

तदनन्तर द्विज को योगक्षेम की सिद्धि के लिए समर्थ पुरुष (राजा) के समीप जाना चाहिये एवं कुटुम्ब के लिए अनेक प्रकार के अर्थों का साधन करना चाहिए। (५५)

तदनन्तर मध्याह्न के समय स्नान के लिए मिट्टी, पुष्प, अक्षत, कुश, तिल एवं शुद्ध गोबर लेना चाहिए। (५६)

नदी, देव द्वारा खने गये अर्थात् नैसर्गिक जलस्थान (खाड़ी), तड़ाग, सरोवर, झरना अथवा बावली इत्यादि में नित्य स्नान करना चाहिये। (५७)

परकीयनिपानेषु न स्नायाद् वै कदाचन ।
पञ्चपिण्डान् समुद्धृत्य स्नायाद् वाऽसंभवे पुनः ॥५८
मृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि ।
अधश्च तिसृभिः कार्यं पादौ षड्भिस्तथैव च ॥५९
मृत्तिका च समुद्दिष्टा त्वार्द्रामलकमात्रिका ।
गोमयस्य प्रमाणं तत् तेनाङ्गं लेपयेत् ततः ॥६०
लेपयित्वा तु तीरस्थस्तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः ।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत् ततः स्नायात् समाहितः ॥६१
अभिमन्त्र्य जलं मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्वारुणैः शुभैः ।
भावपूतस्तदव्यक्तं ध्यायन् वै विष्णुमव्ययम् ॥६२
आपो नारायणोद्भूतास्ता एवास्यायनं पुनः ।
तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद् बुधः ॥६३
प्रोच्य सोंकारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये ।
आचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥६४
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतो मुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥६५
द्रुपदां वा त्रिरभ्यस्येद् व्याहृतिप्रणवान्विताम् ।
सावित्रीं वा जपेद् विद्वान् तथा चैवाघमर्षणम् ॥६६
ततः संमार्जनं कुर्यादापो हि ष्ठा मयोभुवः ।
इदमापः प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च ॥६७
ततोऽभिमन्त्र्य तत् तीर्थमापो हि ष्ठादिमन्त्रकैः ।
अन्तर्जलगतो मग्नो जपेत् त्रिरघमर्षणम् ॥६८
त्रिपदां वाऽथ सावित्रीं तद्विष्णोः परमं पदम् ।
आवर्त्तयेद् वा प्रणवं देवं वा संस्मरेद्धरिम् ॥६९
द्रुपदादिव यो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठितः ।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७०

दूसरों के तालाब इत्यादि में कभी भी स्नान नहीं करना चाहिए। अथवा असम्भव होने पर (उसमें से मिट्टी के) पाँच पिण्ड निकालकर पुनः स्नान करना चाहिए। (५८)

मिट्टी से एक बार शिर धोकर दो बार नाभि के ऊपर (का अङ्ग) धोना चाहिए एवं तीन बार (नाभि के) नीचे का शरीर तथा छः बार पैरों को धोना चाहिए। (५९)

आँवले के बराबर गीली मिट्टी लेने का विधान किया गया है। उसी के बराबर गोमय अर्थात् गोबर लेकर पुनः उससे शरीर पर लेप करना चाहिए। (६०)

तीर पर बैठे हुए तद्विषयक मन्त्र द्वारा लेप करने के उपरान्त विधिपूर्वक प्रक्षालन एवं आचमन करके एकाग्रतापूर्वक स्नान करना चाहिए। (६१)

तद्विषयक शुभ वारुण मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित कर पवित्र भाव से उस अव्यक्त अव्यय विष्णु का ध्यान करना चाहिए। (६२)

नारायण से "अप्" अर्थात् 'जल' की उत्पत्ति हुई है। पुनः वही (जल) उन (नारायण) का "अयन" (निवास) है। अतएव स्नान के समय बुद्धिमान् व्यक्ति को नारायण देव का स्मरण करना चाहिए। (६३)

ओंकार सहित आदित्य (के मन्त्र) का उच्चारण कर जल के भीतर तीन बार डुबकी लगानी चाहिए। आचमन किए रहने पर भी पुनः मन्त्रज्ञ व्यक्ति को ("अन्तश्चरसि" इत्यादि अधोनिर्दिष्ट) मन्त्र द्वारा आचमन करना चाहिए। (६४)

"(हे देव !) आप सभी भूतों (प्राणियों) के भीतर विचरण करते हैं। विश्वतोमुख आप सभी के हृदय रूपी गुहा में स्थित हैं। आप ही यज्ञ, वषट्कार, जल, ज्योति, रस, एवं अमृत तत्त्व हैं।" (६५)

अथवा विद्वान् व्यक्ति को तीन बार द्रुपदा या व्याहृति अथवा प्रणवयुक्त गायत्री और अघमर्षण मन्त्र का जप करना चाहिए। (६६)

तदनन्तर 'आपो हि ष्ठा मयोभुवः' इत्यादि मन्त्र, 'इदमापः प्रवहत' इत्यादि मन्त्र तथा व्याहृतियों द्वारा मार्जन करना चाहिए। (६७)

"आपो हि ष्ठा" इत्यादि मन्त्रों से उस जल को अभिमन्त्रित करने के उपरान्त जल के भीतर डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जप करना चाहिए। (६८)

अथवा "त्रिपदा" गायत्री मन्त्र, "तद्विष्णोः परमं पदं" इत्यादि मन्त्र या प्रणव का जप करे। अथवा देव हरि का स्मरण करे। (६९)

जल के भीतर यजुर्वेद में प्रतिष्ठित "द्रुपदादिव" इत्यादि मन्त्र की तीन बार आवृत्ति करने से समस्त पापों से छुटकारा हो जाता है। (७०)

अपः पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते ।
विन्यस्य मूर्ध्नि तत् तोयं मुच्यते सर्वपातकैः ॥७१
यथाऽश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥७२
अथोपतिष्ठेदादित्यं मूर्ध्नि पुष्पान्विताञ्जलिम् ।
प्रक्षिप्यालोकयेद् देवमुद्वयं तमसस्परि ॥७३
उदुत्यं चित्रमित्येते तच्चक्षुरिति मन्त्रतः ।
हंसः शुचिषदेतेन सावित्र्या च विशेषतः ॥७४
अन्यैश्च वैदिकैर्मन्त्रैः सौरैः पापप्रणाशनैः ।
सावित्रीं वै जपेत् पश्चाज्जपयज्ञः स वै स्मृतः ॥७५
विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च ।
शतरुद्रीयमथर्वशिरः सौरांश्च शक्तितः ॥७६
प्राक्कूलेषु समासीनः कुशेषु प्राङ्मुखः शुचिः ।
तिष्ठंश्चेदीक्षमाणोऽर्कं जप्यं कुर्यात् समाहितः ॥७७

मार्जन करने के उपरान्त हाथ में जल लेकर मन्त्र-जापपूर्वक उस जल को मस्तक पर रखने से (मनुष्य) समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (७१)

जैसे यज्ञों में राजा-तुल्य अश्वमेध यज्ञ समस्त पापों को दूर करता है उसी प्रकार अघमर्षण सूक्त को समस्त पापों को दूर करने वाला कहा गया है। (७२)

तदनन्तर सूर्योपस्थान करना चाहिए। पुष्प युक्त अञ्जलि मस्तक से लगाने के उपरान्त (पुष्पादि को) ऊपर की ओर फेंककर तमस् से परवर्त्ती उदित सूर्य को देखना चाहिए। (७३)

"उदुत्यं", "चित्रं", "तच्चक्षुः", "हंसः शुचिपद" एवं विशेषरूप से 'सावित्री' मन्त्र तथा सूर्य-विषयक अन्यान्य पापनाशक वैदिक मन्त्रों द्वारा सूर्योपस्थान करना चाहिए तत्पश्चात् सावित्री (गायत्री) मन्त्र का जप करना चाहिए। इसे ही जपयज्ञ कहा गया है। (७४,७५)

तदुपरान्त विविध पवित्र मन्त्र, गुह्यविद्या, शतरुद्रिय, अथर्वशिरस् मन्त्र एवं सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों का यथाशक्ति जप करना चाहिए। (७६)

पूर्वी तट पर कुशासन के ऊपर पवित्रतापूर्वक पूर्व की ओर मुख करके बैठना चाहिए एवं सूर्य की ओर देखते हुए एकाग्रतापूर्वक जप करना चाहिए। (७७)

स्फटिक, इन्द्राक्ष, रुद्राक्ष अथवा पुत्रजीव की अक्ष-

स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः ।
कर्तव्या त्वक्षमाला स्यादुत्तरादुत्तमा स्मृता ॥७८
जपकाले न भाषेत नान्यानि प्रेक्षयेद् बुधः ।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥७९
गुह्यका राक्षसा सिद्धा हरन्ति प्रसभं यतः ।
एकान्ते सुशुभे देशे तस्माज्जप्यं समाचरेत् ॥८०
चण्डालाशौचपतितान् दृष्ट्वाचम्य पुनर्जपेत् ।
तैरेव भाषणं कृत्वा स्नात्वा चैव जपेत् पुनः ॥८१
आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने ।
सौरान् मन्त्रान् शक्तितो वै पावमानीस्तु कामतः ॥८२
यदि स्यात् क्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतो जपेत् ।
अन्यथा तु शुचौ भूम्यां दर्भेषु सुसमाहितः ॥८३
प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्वा ततः क्षितौ ।
आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् ॥८४

माला बनानी चाहिए। इसमें उत्तरोत्तर की अक्षमाला उत्तम कही गयी है। (७८)

बुद्धिमान् व्यक्तिको जप के समय बोलना नहीं चाहिए एवं अन्य (किसी वस्तु की) ओर नहीं देखना चाहिए। मस्तक एवं ग्रीवा नहीं कपाना चाहिए और दाँतों को प्रकाशित नहीं करना चाहिए। (७९)

क्योंकि (जप के समय निषिद्ध कार्यों को करने से) गुह्यक, राक्षस, एवं सिद्ध बलात् (जप के फल का) हरण कर लेते है अतः एकान्त में रमणीय (मङ्गलमय) स्थान पर जप करना चाहिए। (८०)

(जप के समय) चण्डाल, अशौचयुक्त व्यक्ति एवं पतित को देखने पर आचमन कर पुनः जप करना चाहिए। उनके साथ भाषण करने पर पुनः स्नान करके जप करना चाहिए। (८१)

अशुचि पदार्थ को देखने पर आचमन करके प्रयत्न-पूर्वक यथाशक्ति नित्य सौरमन्त्र और पावमानी मन्त्र का इच्छानुसार जप करना चाहिए। (८२)

(जपकर्त्ता) यदि भींगा हुआ वस्त्र पहने हो तो जल में रहकर जप करना चाहिए। अन्यथा पवित्र भूमि पर कुशासन के ऊपर एकाग्रतापूर्वक बैठकर (जप करना चाहिए)। (८३)

(तदनन्तर) प्रदक्षिणा करने के उपरान्त पृथ्वी पर

ततः संतर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ।
आदावोङ्कारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि वः ॥८५
देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः ।
तिलोदकैः पितॄन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥८६
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ।
देवर्षींस्तर्पयेद् धीमानुदकाञ्जलिभिः पितॄन् ॥८७
यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे ।
प्राचीनावीती पित्र्ये तु स्वेन तीर्थेन भावतः ॥८८
निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु समाचम्य च वाग्यतः ।
स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैरथाम्बुभिः ॥८९
ब्रह्माणं शंकरं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् ।
अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनोऽत्वरः ॥९०
प्रदद्याद् वाऽथ पुष्पाणि सूक्तेन पौरुषेण तु ।
आपो वा देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिताः ॥९१
ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै दैवतानि समाहितः ।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद् वै पृथक् पृथक् ॥९२
न विष्ण्वाराधनात् पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम् ॥९३
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु ।
नैताभ्यां सदृशो मन्त्रो वेदेषूक्तश्चतुर्ष्वपि ॥९४
निवेदयेत स्वात्मानं विष्णावमलतेजसि ।
तदात्मा तन्मनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ॥९५
अथवा देवमीशानं भगवन्तं सनातनम् ।
आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम् ॥९६

नमस्कार एवं आचमनकर शास्त्रानुसार यथाशक्ति स्वाध्याय करना चाहिए । (८४)

तत्पश्चात् देवों, ऋषियों एवं पितरों का तर्पण करना चाहिए । प्रारम्भ में ओंकार का उच्चारण एवं अन्त में "नमः" कहकर 'आपका तर्पण करता हूँ' (वः तर्पयामि) यह कहना चाहिए । (८५)

देवों एवं ब्रह्मर्षियों का तर्पण अक्षत एवं जल द्वारा करना चाहिए । (तदनन्तर) अपने गृह्यसूत्र में कहे गये विधानानुसार तिल और जल से भक्तिपूर्वक पितरों का तर्पण करना चाहिए । (८६)

बुद्धिमान् व्यक्ति को अन्वारब्ध मन्त्र द्वारा सव्यावस्था में दाहिने हाथ से देवों एवं ऋषियों का एवं जलाञ्जलि द्वारा पितरों का तर्पण करना चाहिए । (८७)

यज्ञोपवीती अवस्था में—अर्थात् वाम स्कन्ध से दाहिने पार्श्व में यज्ञोपवीत धारण किये हुए देवों का तर्पण करना चाहिए तथा निवीती अवस्था में अर्थात् कण्ठ में माला के सदृश यज्ञोपवीत धारण करके ऋषियों का तर्पण करना चाहिए । प्राचीनावीती अवस्था में अर्थात् दाहिने कन्धे से वाम पार्श्व में यज्ञोपवीत धारण किये हुए भक्तिपूर्वक अपने तीर्थ द्वारा पितरों का तर्पण करना चाहिए । (८८)

स्नान के वस्त्र को निचोड़ने के उपरान्त आचमन करके मौनावलम्बन पूर्वक तत्तद् देवों के मन्त्रों द्वारा पत्र, पुष्प एवं जल से (तत्तद्) देवों का पूजन करना चाहिए । (८९)

क्रोध एवं शीघ्रता का त्यागकर भक्तिपूर्वक ब्रह्मा, शङ्कर, सूर्य, मधुसूदन एवं अन्य इष्ट देवों की पूजा करनी चाहिए । (९०)

पुरुष सूक्त से पुष्प समर्पित करना चाहिए । अथवा जल समस्त देव स्वरूप होता है अतः उसके द्वारा सभी देव भलीभाँति पूजित होते हैं । (९१)

एकाग्रतापूर्वक प्रणव का उच्चारण कर देवों का ध्यान करना चाहिए एवं नमस्कारकर पृथक् पृथक् देवों पर पुष्प चढ़ाना चाहिए । (९२)

क्योंकि विष्णु की आराधना से अधिक पवित्र कोई वैदिक कर्म नहीं है अतः आदि, मध्य, और अन्तरहित हरि की नित्य आराधना करनी चाहिए । (९३)

एकाग्रतापूर्वक 'तद्विष्णोः' इस मन्त्र एवं पुरुष सूक्त द्वारा (विष्णु की आराधना करनी चाहिए) । चारों वेदों में भी उन दोनों (मन्त्रों) के सदृश अन्य कोई मन्त्र नहीं कहा गया है । (९४)

शान्तिपूर्वक तन्मय होकर एवं तत्स्वरूप होकर 'तद्विष्णोः' इस मन्त्र द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध तेजस्वरूप विष्णु में निवेदित करना चाहिए । (९५)

अथवा पवित्र भाव से सनातन भगवान् ईशान महेश्वर देव महादेव का पूजन करना चाहिए । (९६)

मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः ।
ईशानेनाथ वा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहितः ॥९७
पुष्पैः पत्रैरथाद्भिर्वा चन्दनाद्यैर्महेश्वरम् ।
उक्त्वा नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन योजयेत् ॥९८
नमस्कुर्यान्महादेवं ऋतं सत्यमितीश्वरम् ।
निवेदयीत स्वात्मानं यो ब्रह्माणमितीश्वरम् ॥९९
प्रदक्षिणं द्विजः कुर्यात् पञ्च ब्रह्माणि वै जपन् ।
ध्यायीत देवमीशानं व्योममध्यगतं शिवम् ॥१००
अथावलोकयेदर्कं हंसः शुचिषदित्यृचा ।
कुर्यात् पञ्च महायज्ञान् गृहं गत्वा समाहितः ॥१०१
देवयज्ञं पितृयज्ञं भूतयज्ञं तथैव च ।
मानुष्यं ब्रह्मयज्ञं च पञ्च यज्ञान् प्रचक्षते ॥१०२
यदि स्यात् तर्पणादर्वाक् ब्रह्मयज्ञः कृतो न हि ।
कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै ततः स्वाध्यायमाचरेत् ॥१०३

एकाग्रचित्त से रुद्रगायत्री, प्रणव, ईशानमन्त्र, शतरुद्र अथवा त्र्यम्बक मन्त्र एवं पुष्प, पत्र, जल तथा चन्दनादि द्वारा महेश्वर की आराधना करनी चाहिए। 'नमः शिवाय' मन्त्र का उच्चारण कर (पूजन सम्बन्धी सभी कर्म में) इस मन्त्र की योजना करनी चाहिए। (९७, ९८)

तदनन्तर ऋत एवं सत्यस्वरूप—अर्थात् गति एवं सत्तास्वरूप ईश्वर महादेव को नमस्कार करे एवं 'यो ब्रह्माणं' इत्यादि मन्त्र द्वारा उन्हें आत्मसमर्पण करे। (९९)

द्विज को 'पञ्च ब्रह्म' मन्त्र का जप करते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिए। आकाश के मध्य में स्थित ईशान देव शिव का ध्यान करना चाहिए। (१००)

तदुपरान्त 'हँसः शुचिपद्' इस मन्त्र से सूर्य का अवलोकन करे एवं घर जाकर एकाग्रतापूर्वक पञ्च महायज्ञ करे। (१०१)

देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मानुषयज्ञ एवं ब्रह्मयज्ञ ये पाँच (महा) यज्ञ कहे जाते हैं। (१०२)

यदि तर्पण के पूर्व ब्रह्मयज्ञ न किया हो तो मनुष्ययज्ञ करके तत्पश्चात् स्वाध्याय अर्थात् वेदाध्ययन करना चाहिए। (१०३)

अग्नेः पश्चिमतो देशे भूतयज्ञान्त एव वा ।
कुशपुञ्जे समासीनः कुशपाणिः समाहितः ॥१०४
शालाग्नौ लौकिके वाऽग्नौ जले भूम्यामथापि वा ।
वैश्वदेवं ततः कुर्याद् देवयज्ञः स वै स्मृतः ॥१०५
यदि स्याल्लौकिके पक्वं ततोऽन्नं तत्र हूयते ।
शालाग्नौ तत्र देवान्नं विधिरेष सनातनः ॥१०६
देवेभ्यस्तु हुतादन्नाच्छेषाद् भूतबलिं हरेत् ।
भूतयज्ञः स वै ज्ञेयो भूतिदः सर्वदेहिनाम् ॥१०७
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ।
दद्याद् भूमौ बलिं त्वन्नं पक्षिभ्योऽथ द्विजोत्तमः॥१०८
सायं चान्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ।
भूतयज्ञस्त्वयं नित्यं सायं प्रातर्विधीयते ॥१०९
एकं तु भोजयेद् विप्रं पितॄनुद्दिश्य सत्तमम् ।
नित्यश्राद्धं तदुद्दिष्टं पितृयज्ञो गतिप्रदः ॥११०

अथवा भूतयज्ञ के अन्त में एकाग्रचित्त से हाथ में कुश धारण कर अग्नि के पश्चिम की दिशा में कुशासन पर बैठे हुए शालाग्नि, लौकिकाग्नि अथवा जल में अथवा भूमि पर वैश्वदेव करना चाहिए। उसे ही देवयज्ञ कहा जाता है। (१०४,१०५)

यदि लौकिकाग्नि पर अन्न पकाया गया हो तो उसी (लौकिकाग्नि) में हवन किया जाता है यदि शालाग्नि में अन्न पकाया गया हो तो शालाग्नि में ही वैश्वदेव होम करना चाहिये। यही सनातन विधि है। (१०६)

वैश्वदेव होम के उपरान्त अवशिष्ट अन्न द्वारा भूतबलि कर्म करना चाहिये। उसे भूतयज्ञ कहते हैं। वह सभी प्राणियों को ऐश्वर्य प्रदान करता है। (१०७)

द्विजश्रेष्ठ को (गृह के बाहर) भूमि पर कुत्ता, चाण्डाल, पतित आदि मनुष्यों एवं पक्षियों को अन्न बलि देना चाहिए। (१०८)

सायंकाल पत्नी विना मन्त्रोच्चारण के पके अन्न की बलि प्रदान करे। नित्य प्रातः एवं सायंकाल यथाविधि यह भूतयज्ञ करना चाहिए। (१०९)

प्रतिदिन पितरों के उद्देश्य से एक श्रेष्ठ ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। उसे नित्यश्राद्ध कहा गया है। यह पितृयज्ञ मोक्ष प्रदान करता है। (११०)

उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ॥१११
पूजयेदतिथिं नित्यं नमस्येदर्च्चयेद् द्विजम् ।
मनोवाक्कर्मभिः शान्तमागतं स्वगृहं ततः ॥११२
हन्तकारमथाग्रं वा भिक्षां वा शक्तितो द्विजः ।
दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम् ॥११३
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमग्रं तस्याश्चतुर्गुणम् ।
पुष्कलं हन्तकारं तु तच्चतुर्गुणमुच्यते ॥११४
गोदोहमात्रं कालं वै प्रतीक्ष्यो ह्यतिथिः स्वयम् ।
अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथिं यथा ॥११५
भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद् विधिवद् ब्रह्मचारिणे ।
दद्यादन्नं यथाशक्ति त्वर्थिभ्यो लोभवर्जितः ॥११६
सर्वेषामप्यलाभे तु अन्नं गोभ्यो निवेदयेत् ।
भुञ्जीत बन्धुभिः सार्द्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥११७
अकृत्वा तु द्विजः पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमाः ।
भुञ्जीत चेत् स मूढात्मा तिर्यग्योनिं स गच्छति ॥११८
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ।
नाशयत्याशु पापानि देवानामर्चनं तथा ॥११९
यो मोहादथवालस्यादकृत्वा देवतार्चनम् ।
भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरेष्वभिजायते ॥१२०
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कृत्वा कर्माणि वै द्विजाः ।
भुञ्जीत स्वजनैः सार्द्धं स याति परमां गतिम् ॥१२१

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथवा यथाशक्ति कुछ अन्न लेकर वेद के तत्त्वार्थ को जानने वाले ब्राह्मण को प्रदान करना चाहिए। (१११)

तदनन्तर अपने घर आये हुए शान्त द्विज अतिथि का मन, वचन और कर्म द्वारा नित्य पूजन करना चाहिए। (११२)

द्विज नित्य अतिथि को यथाशक्ति 'हन्तकार', 'अग्र', एवं भिक्षा प्रदान करे तथा उसे परमेश्वरस्वरूप समझे। (११३)

ग्रासमात्र (अन्न) को भिक्षा एवं उसके चौगुने अर्थात् चार ग्रास (तुल्य अन्न) को अग्र कहा जाता है तथा उसके चौगुने अर्थात् सोलह ग्रास (तुल्य) पर्याप्त अन्न को हन्तकार कहा जाता है। (११४)

गोदोहन काल पर्यन्त अतिथि की स्वयं प्रतीक्षा करनी चाहिए। यथाशक्ति अभ्यागतों की अतिथि के सदृश पूजा करनी चाहिए। (११५)

विधिपूर्वक ब्रह्मचारी भिक्षुक को भिक्षा प्रदान करे तथा लोभरहित होकर यथाशक्ति याचकों को अन्न प्रदान करे। (११६)

इन सभी के न मिलने पर गौवों को अन्न प्रदान करे। (तदनन्तर) मौन धारण करके अन्न की निन्दा न करते हुए बान्धवों के साथ भोजन करना चाहिए। (११७)

हे द्विजोत्तमो ! द्विज यदि पञ्च महायज्ञों को बिना किए भोजन करता है तो वह मूढ़ात्मा तिर्यग्योनि प्राप्त करता है। (११८)

प्रतिदिन यथाशक्ति किया गया वेदाभ्यास, महायज्ञ-कर्म, क्षमा एवं देवों का पूजन शीघ्र पापों को नष्ट करता है। (११९)

जो व्यक्ति मोह अथवा आलस्यवश बिना देवार्चन किए भोजन करता है वह नरक में जाता है एवं (तदनन्तर) शूकर की योनि में जाता है। (१२०)

हे द्विजो ! अतएव सभी प्रकार के प्रयत्न द्वारा (नित्य) कर्मों को करने के उपरान्त स्वजनों के साथ भोजन करना चाहिए। ऐसा करने वाले को परम गति प्राप्त होती है। (१२१)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त—१८.

१९

व्यास उवाच ।

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ।
आसीनस्त्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ निधाय तु ।।१
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ् मुखः ।।२
पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्याद् भूमौ पात्रं निधाय तु ।
उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः ।।३
उपलिप्ते शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वै करौ ।
आचम्यार्द्राननोऽक्रोधः पञ्चार्द्रो भोजनं चरेत् ।।४
महाव्याहृतिभिस्त्वन्नं परिधायोदकेन तु ।
अमृतोपस्तरणमसीत्यापोशानक्रियां चरेत् ।।५
स्वाहाप्रणवसंयुक्तां प्राणायाद्याहुतिं ततः ।
अपानाय ततो हुत्वा व्यानाय तदनन्तरम् ।।६
उदानाय ततः कुर्यात् समानायेति पञ्चमीम् ।
विज्ञाय तत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनि द्विजः ।।७
शेषमन्नं यथाकामं भुञ्जीतव्यं जनैर्युतम् ।
ध्यात्वा तन्मनसा देवमात्मानं वै प्रजापतिम् ।।८
अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पिबेत् ।
आचान्तः पुनराचामेदायं गौरिति मन्त्रतः ।।९
द्रुपदां वा त्रिरावर्त्य सर्वपापप्रणाशनीम् ।
प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यालभेद् हृदयं ततः ।।१०

१९

व्यास ने कहा—शुद्ध आसन पर बैठे हुए एवं भूमि पर पैर रखकर पूर्व की ओर अथवा सूर्य की ओर मुख कर भोजन करना चाहिए । (१)

पूर्वाभिमुख भोजन करने से दीर्घायु, दक्षिणाभिमुख भोजन करने से यश, पश्चिमाभिमुख भोजन करने से सम्पत्ति एवं उत्तर की ओर मुख कर भोजन करने से सत्य की प्राप्ति होती है । (२)

(शरीर के) पाँच अङ्गों (दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मुख) का प्रक्षालन कर एवं पात्र को भूमि पर रखकर भोजन करना चाहिए । प्रजापति मनु ने इस प्रकार के भोजन को उपवास के तुल्य कहा है । (३)

(गोबर इत्यादि से) लीपे हुये पवित्र स्थान पर दोनों हाथ पैर एवं मुख प्रक्षालन करने के उपरान्त आचमन कर (उपर्युक्त) पाँच अंगों को आर्द्र किये हुये क्रोध-रहित होकर भोजन करना चाहिए । (४)

महाव्याहृतियों का उच्चारण करते हुए जल से अन्न को परिवेष्ठित कर "अमृतोपस्तरणमसि' इस मन्त्र का पाठ कर आपोशान क्रिया अर्थात् भोजन के पूर्व जल के साथ मंत्र पाठ की क्रिया करनी चाहिए । (५)

तदनन्तर 'स्वाहा' एवं 'प्रणव' के साथ 'प्राणाय' इत्यादि का उच्चारण कर आहुति देनी चाहिए। तदुपरान्त 'ॐ अपानाय स्वाहा' एवं 'ॐ व्यानाय स्वाहा' कह कर आहुति प्रदान करे । (६)

तत्पश्चात् 'ॐ उदानाय स्वाहा' एवं 'ॐ समानाय स्वाहा' कहकर पांचवीं आहुति देनी चाहिये । इनका तत्त्व जानकर द्विज को आत्मा में आहुति देनी चाहिए । (७)

देव, प्रजापति एवं आत्मा का ध्यान कर शेष अन्न का परिजनों के साथ इच्छानुसार भोजन करना चाहिए । (८)

(भोजन के उपरान्त) "अमृतापिधानमसि" यह मंत्र पढ़कर जल पीना चाहिए । आचमन के उपरान्त पुनः "आयं गौः" इत्यादि मन्त्र पढ़कर आचमन करना चाहिए । (९)

तदनन्तर तीन वार सर्वपापनाशिनी द्रुपदा का पाठ कर 'प्राणानां ग्रन्थिरसि' इत्यादि मन्त्र से हृदय का स्पर्श करना चाहिए । (१०)

आचम्याङ्गुष्ठमात्रेति पादाङ्गुष्ठेऽथ दक्षिणे ।
निःस्रावयेद् हस्तजलमूर्द्ध्वहस्तः समाहितः ।।११
हुतानुमन्त्रणं कुर्यात् श्रद्धायामिलि मन्त्रतः ।
अथाक्षरेण स्वात्मानं योजयेद् ब्रह्मणेति हि ।।१२
सर्वेषामेव यागानामात्मयागः परः स्मृतः ।
योऽनेन विधिना कुर्यात् स याति ब्रह्मणः क्षयम् ।।१३
यज्ञोपवीती भुञ्जीत स्रग्गन्धालंकृतः शुचिः ।
सायंप्रातर्नान्तिरा वै संध्यायां तु विशेषतः ।।१४
नाद्यात् सूर्यग्रहात् पूर्वमह्नि सायं शशिग्रहात् ।
ग्रहकाले च नाश्नीयात् स्नात्वाऽश्नीयात् तु मुक्तयोः ।।१५
मुक्ते शशिनि भुञ्जीत यदि न स्यान्महानिशा ।
अमुक्तयोरस्तंगतयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि ।।१६
नाश्नीयात् प्रेक्षमाणानामप्रदायैव दुर्मतिः ।
न यज्ञशिष्टादन्यद् वा न क्रुद्धो नान्यमानसः ।।१७
आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम् ।
वृत्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम् ।।१८
यद् भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यच्च भुङ्क्ते उदङ्मुखः ।
सोपानत्कश्च यद् भुङ्क्ते सर्वं विद्यात् तदासुरम् ।।१९
नार्द्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक् ।
न च भिन्नासनगतो न शयानः स्थितोऽपि वा ।।२०
न भिन्नभाजने चैव न भूम्यां न च पाणिषु ।
नोच्छिष्टो घृतमादद्यान्न मूर्द्धानं स्पृशेदपि ।।२१
न ब्रह्म कीर्तयन् वापि न निःशेषं न भार्यया ।
नान्धकारे न चाकाशे न च देवालयादिषु ।।२२
नैकवस्त्रस्तु भुञ्जीत न यानशयनस्थितः ।
न पादुकानिर्गतोऽथ न हसन् विलपन्नपि ।।२३

ऊपर हाथ किये हुए सावधान चित्त से आचमन कर 'अंगुष्ठमात्रेति' इस मन्त्र द्वारा दाहिने पैर के अँगूठे पर हाथ का जल गिराना चाहिए। (११)

"श्रद्धायाम्" इस मन्त्र से हुतानुमन्त्रण करना चाहिए। तदुपरान्त "ब्रह्मणा" इत्यादि मन्त्र से अपनी आत्मा का अक्षरतत्त्व से योग करना चाहिए। (१२)

सभी यागों में आत्मयाग को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। जो इस विधि से (आत्मयाग) करता है वह ब्रह्मधाम में जाता है। (१३)

यज्ञोपवीत धारणकर पवित्रतापूर्वक सुगन्धि तथा माला से अलंकृत होकर भोजन करना चाहिए। प्रातः या सायङ्काल तथा मध्य एवं विशेषतः सन्ध्याकाल में भोजन नहीं करना चाहिए। (१४)

सूर्यग्रहण के पूर्व दिन में, चन्द्रग्रहण के पूर्व सायङ्काल एवं ग्रहणकाल में भोजन नहीं करना चाहिए। ग्रहण की मुक्ति हो जाने पर स्नानोपरान्त भोजन करना चाहिए। (१५)

चन्द्रमा के ग्रहण से मुक्त होने पर यदि अर्द्धरात्रि न हो तो भोजन करना चाहिए। बिना ग्रहण से मुक्त हुए (चन्द्रमा और सूर्य के) अस्त हो जाने पर दूसरे दिन उनका दर्शन कर भोजन करना चाहिए। (१६)

देखने वालों (भूखे व्यक्तियों) को बिना दिए हुए तथा दुर्मना होकर भोजन नहीं करना चाहिए। यज्ञ शिष्ट पदार्थ से भिन्न (पदार्थ न खाना चाहिए) अन्यत्र चित्त कर तथा क्रोध करते हुए भोजन नहीं करना चाहिए। (१७)

जिसका भोजन अपने लिए, जिसका मैथुन रति के लिए एवं जिसका अध्ययन जीविका के लिए होता है उसका जीवन निष्फल होता है। (१८)

जो मस्तक ढँककर भोजन करता है एवं जो उत्तर की ओर मुख करके भोजन करता है एवं जो जूता पहने हुए भोजन करता है उस समस्त प्रकार के भोजन को आसुरी समझना चाहिए। (१९)

अर्द्धरात्रि में, मध्याह्न में, अजीर्ण होने पर, गीला वस्त्र धारण किये रहने पर, टूटे आसन पर बैठे होने पर, सोये हुये अथवा खड़े होकर भोजन नहीं करना चाहिये। (२०)

टूटे, फूटे पात्र में, भूमि पर या हाथ पर भोजन नहीं करना चाहिए। उच्छिष्टावस्था में घृत ग्रहण या मस्तक का स्पर्श नहीं करना चाहिये। (२१)

(भोजन करते समय) वेद का उच्चारण नहीं करना चाहिये। बिना कुछ छोड़े हुये अर्थात् पूर्ण भोजन नहीं करना चाहिए। भार्या के साथ, अन्धकार में, आकाश में एवं देवालय इत्यादि में भोजन नहीं करना चाहिए। (२२)

एक वस्त्र धारण किये हुये अथवा सवारी या शय्या पर बैठकर भोजन नहीं करना चाहिये। खड़ाऊँ पहने हुये अथवा हँसते या रोते हुए भोजन नहीं करना चाहिए। (२३)

भुक्त्वैवं सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् ।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थानुपबृंहयेत् ॥२४
ततः संध्यामुपासीत पूर्वोक्तविधिना द्विजः ।
आसीनस्तु जपेद् देवीं गायत्रीं पश्चिमां प्रति ॥२५
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नास्ते संध्यां तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रेण समो लोके सर्वधर्मविवर्जितः ॥२६
हुत्वाऽग्निं विधिवन्मन्त्रैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम् ।
सभृत्यबान्धवजनः स्वपेच्छुष्कपदो निशि ॥२७
नोत्तराभिमुखः स्वप्यात् पश्चिमाभिमुखो न च ।
न चाकाशे न नग्नो वा नाशुचिर्नासने क्वचित् ॥२८
न शीर्णायां तु खट्वायां शून्यागारे न चैव हि ।
नानुवंशं न पालाशे शयने वा कदाचन ॥२९
इत्येतदखिलेनोक्तमहन्यहनि वै मया ।
ब्राह्मणानां कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम् ॥३०
नास्तिक्यादथवालस्यात् ब्राह्मणो न करोति यः ।
स याति नरकान् घोरान् काकयोनौ च जायते ॥३१
नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाश्रमविधिं स्वकम् ।
तस्मात् कर्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः ॥३२

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

भोजनोपरान्त सुखपूर्वक बैठकर उस अन्न को पचाना चाहिए एवं इतिहास और पुराणों द्वारा वेद के अर्थों का उपबृंहण करना चाहिए। (२४)

तदुपरान्त द्विज को पवित्रतापूर्वक पूर्वोक्त विधि से सन्ध्योपासना करनी चाहिये। (आसन पर) बैठे हुये पश्चिम की ओर मुखकर गायत्री देवी का जप करना चाहिये। (२५)

जो व्यक्ति प्रातः या सायङ्काल की सन्ध्या नहीं करता वह लोक में शूद्र के तुल्य समस्त धर्म से विवर्जित होता है। (२६)

अग्नि में मन्त्रों के द्वारा विधिवत् हवन करने के उपरान्त भृत्यों एवं बान्धवों सहित यज्ञ से अवशिष्ट अन्न का भोजन कर रात्रि में सूखे पैर सोना चाहिए। (२७)

उत्तर या पश्चिम की ओर शिर कर नहीं सोना चाहिये। खुले आकाश के नीचे, नग्नावस्था में अथवा अशुचि अवस्था में तथा बैठने के आसन पर भी कभी शयन नहीं करना चाहिये। (२८)

टूटी-फूटी चारपाई पर, सूने घर में, बाँस या पलाश की बनी खाट पर कभी नहीं सोना चाहिये। (२९)

इस प्रकार मैंने ब्राह्मणों के मोक्षदायक दैनिक कर्म का सम्पूर्ण रूप से वर्णन किया। (३०)

नास्तिकता अथवा आलस्य के कारण जो ब्राह्मण (इन कर्मों को) नहीं करता वह घोर नरकों में जाता है तथा काकयोनि में जन्म लेता है। (३१)

अपने आश्रमविधि को छोड़कर अन्य कोई विमुक्ति का मार्ग नहीं है। अतः परमेष्ठी की प्रसन्नता के लिये (विहित) कर्मों को करना चाहिये। (३२)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त—१९.

२०

व्यास उवाच ।

अथ श्राद्धममावास्यां प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः ।
पिण्डान्वाहार्यकं भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ।
अपराह्ने द्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेण च ॥२
प्रतिपत्प्रभृति ह्यन्यास्तिथयः कृष्णपक्षके ।
चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रशस्ता ह्युत्तरोत्तराः ॥३
अमावास्याष्टकास्तिस्रः पौषमासादिषु त्रिषु ।
तिस्रश्चान्वष्टकाः पुण्या माघी पञ्चदशी तथा ॥४
त्रयोदशी मघायुक्ता वर्षासु तु विशेषतः ।
शस्यपाकश्राद्धकाला नित्याः प्रोक्ता दिने दिने ॥५
नैमित्तिकं तु कर्तव्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
वान्धवानां च मरणे नारकी स्यादतोऽन्यथा ॥६
काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु ।
अयने विषुवे चैव व्यतीपातेऽप्यनन्तकम् ॥७
संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि ।
नक्षत्रेषु च सर्वेषु कार्यं काम्यं विशेषतः ॥८
स्वर्गं च लभते कृत्वा कृत्तिकासु द्विजोत्तमः ।
अपत्यमथ रोहिण्यां सौम्ये तु ब्रह्मवर्चसम् ॥९
रौद्राणां कर्मणां सिद्धिमार्द्रायां शौर्यमेव च ।
पुनर्वसौ तथा भूमिं श्रियं पुष्ये तथैव च ॥१०
सर्वान् कामांस्तथा सार्पे पित्र्ये सौभाग्यमेव च ।

२०

व्यास ने कहा—अमावस्या की प्राप्ति होने पर श्रेष्ठ द्विजों को भक्तिपूर्वक भोग और मोक्ष देने वाला पिण्डान्वाहार्यक नामक श्राद्ध करना चाहिए। (१)

द्विजातियों का चन्द्रमा के क्षीण होने पर अर्थात् अमावस्या तिथि के अपराह्नकाल में प्रशस्त आमिष द्वारा पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करना प्रशस्त होता है। (२)

(श्राद्ध के लिए) कृष्णपक्ष में चतुर्दशी को छोड़कर प्रतिपदादि अन्य तिथियाँ उत्तरोत्तर प्रशस्त हैं। (३)

पौष, माघ एवं फाल्गुन इन तीन मासों की तीन अष्टकायें (कृष्णाष्टमी) एवं अमावस्या (श्राद्ध करने की प्रशस्त तिथियाँ हैं)। वे तीनों अष्टकायें (अष्टमियाँ) एवं माघ मास की पूर्णिमा तिथि (श्राद्ध के लिए) पुण्य तिथियाँ हैं। (४)

वर्षाकाल में मघा नक्षत्रयुक्त त्रयोदशी एवं अनाज के पकने का समय विशेष रूप से श्राद्ध करने का काल होता है। उपर्युक्त सभी श्राद्ध नित्य एवं प्रतिदिन किया जाने वाला श्राद्ध है। (५)

चन्द्र और सूर्य का ग्रहण होने एवं बान्धवों के मरने पर नैमित्तिक श्राद्ध करना चाहिए। ऐसा न करने पर (मनुष्य को) नारकीय गति की प्राप्ति होती है। (६)

(चन्द्र और सूर्य के) ग्रहण इत्यादि के समय काम्य श्राद्ध करना चाहिए। उत्तरायण एवं दक्षिणायन होने के समय, विषुव एवं व्यतीपात योग में किया हुआ श्राद्ध अनन्त फलप्रद होता है। (७)

संक्रान्ति एवं जन्म के दिन किया गया श्राद्ध अक्षय होता है। सभी नक्षत्रों में विशेष प्रयोजनवश काम्य श्राद्ध करना चाहिए। (८)

श्रेष्ठ द्विज कृत्तिका नक्षत्र में श्राद्ध कर स्वर्ग प्राप्त करता है। रोहिणी में (श्राद्ध करने से) सन्तान तथा मृगशिरा में (श्राद्ध करने से) ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती है। (९)

आर्द्रा में (श्राद्ध करने से) रौद्र कर्मों की सिद्धि तथा शौर्य की प्राप्ति होती है। पुनर्वसु में (श्राद्ध करने से) भूमि एवं पुष्य नक्षत्र में (श्राद्ध करने से) लक्ष्मी की प्राप्ति ही होती है। (१०)

आश्लेषा नक्षत्र में (श्राद्ध करने से) सभी कामनाओं की पूर्ति तथा मघा नक्षत्र में (श्राद्ध करने से) सौभाग्य

अर्यम्णे तु धनं विन्द्यात् फाल्गुन्यां पापनाशनम् ॥११
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं तथा हस्ते चित्रायां च बहून् सुतान् ।
वाणिज्यसिद्धिं स्वातौ तु विशाखासु सुवर्णकम् ॥१२
मैत्रे बहूनि मित्राणि राज्यं शाक्रे तथैव च ।
मूले कृषिं लभेद् यानसिद्धिमाप्ये समुद्रतः ॥१३
सर्वान् कामान् वैश्वदेवे श्रैष्ठ्यं तु श्रवणे पुनः ।
श्रविष्ठायां तथा कामान् वारुणे च परं बलम् ॥१४
अजैकपादे कुप्यं स्यादहिर्बुध्ने गृहं शुभम् ।
रेवत्यां बहवो गावो ह्यश्विन्यां तुरगांस्तथा ।
याम्येऽथ जीवनं तत् स्याद्यदि श्राद्धं प्रयच्छति ॥१५
आदित्यवारे त्वारोग्यं चन्द्रे सौभाग्यमेव च ।
कौजे सर्वत्र विजयं सर्वान् कामान् बुधस्य तु ॥१६

की प्राप्ति होती है। पूर्वाफाल्गुनी में (श्राद्ध करने से) धन की प्रप्ति होती है तथा उत्तराफाल्गुनी में (श्राद्ध करने से) पाप का नाश होता है। (११)

हस्त नक्षत्र में श्राद्ध करने से अपनी जाति में श्रेष्ठता एवं चित्रा में (श्राद्ध करने से) अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है। स्वाती में (श्राद्ध करने से) वाणिज्य की सिद्धि एवं विशाखा नक्षत्र में (श्राद्ध करने से) सुवर्ण की प्राप्ति होती है। (१२)

अनुराधा में (श्राद्ध करने से) अनेक मित्रों तथा ज्येष्ठा में (श्राद्ध करने से) राज्य की प्राप्ति होती है। मूल नक्षत्र में (श्राद्ध करने से) कृपि, पूर्वाषाढ़ा में (श्राद्ध करने से) समुद्र से यान की सिद्धि होती है। (१३)

उत्तराषाढ़ा में (श्राद्ध करने से) सभी कामनाओं की पूर्त्ति तथा श्रवण नक्षत्र में (श्राद्ध करने से) श्रेष्ठता प्राप्त होती है। धनिष्ठा में (श्राद्ध करने से) कामना की पूर्ति तथा शतभिषा में (श्राद्ध करने से) उत्कृष्ट वल की प्राप्ति होती है। (१४)

पूर्वाभाद्रपद में (श्राद्ध करने से) कुप्य-अर्थात् सोना-चाँदी से भिन्न धातुयें एवं उत्तराभाद्रपद में (श्राद्ध करने से) उत्तम गृह की प्राप्ति होती है। रेवती नक्षत्र में (श्राद्ध करने से) वहुत सी गायों एवं अश्विनी नक्षत्र में श्राद्ध करने से घोड़ों की प्राप्ति होती है। यदि भरणी नक्षत्र में श्राद्ध किया जाय तो आयु की प्राप्ति होती है। (१५)

रविवार को (श्राद्ध करने से) आरोग्य एवं सोमवार

विद्यामभीष्टां जीवे तु धनं वै भार्गवे पुनः ।
शनैश्चरे लभेदायुः प्रतिपत्सु सुतान् शुभान् ॥१७
कन्यकां वै द्वितीयायां तृतीयायां तु वन्दिनः ।
पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यां शोभनान् सुतान् ॥१८
षष्ट्यां द्यूतं कृषिं चापि सप्तम्यां लभते नरः ।
अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदः सदा ॥१९
स्यान्नवम्यामेकखुरं दशम्यां द्विखुरं बहु ।
एकादश्यां तथा रूप्यं ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥२०
द्वादश्यां जातरूपं च रजतं कुप्यमेव च ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तु कुप्रजाः ।
पञ्चदश्यां सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा ॥२१

को सौभाग्य प्राप्त होता है। मङ्गल को (श्राद्ध करने से) सर्वत्र विजय एवं बुध के दिन (श्राद्ध करने से) सभी कामनाओं की प्राप्ति होती। (१६)

वृहस्पति को (श्राद्ध करने से) अभीष्टविद्या, शुक्र को धन तथा शनैश्चर को (श्राद्ध करने से) आयु की प्राप्ति होती है। प्रतिपदा को (श्राद्ध करने से) कल्याण-कारी पुत्रों की प्राप्ति होती है। (१७)

द्वितीया को (श्राद्ध करने से) कन्या तथा तृतीया को (श्राद्ध करने से) वन्दीजनों की प्राप्ति होती है। चतुर्थी को (श्राद्ध करने से) क्षुद्र पशु एवं पञ्चमी को (श्राद्ध करने से) सुन्दर पुत्र प्राप्त होते हैं। (१८)

मनुष्य को षष्ठी के दिन (श्राद्ध करने से) द्यूत (में विजय) एवं सप्तमी में श्राद्ध करने से कृषि तथा अष्टमी के दिन श्राद्ध करने वाले को सदा वाणिज्य की प्राप्ति होती है। (१९)

नवमी को (श्राद्ध करने से) एक खुर वाले पशु एवं दशमी को (श्राद्ध करने से) दो खुरों वाले वहुत पशुओं का लाभ होता है। एकादशी को श्राद्ध करने से रौप्य (रजत-पदार्थ) से एवं ब्रह्मतेज युक्त पुत्रों की प्राप्ति होती है। (२०)

द्वादशी को (श्राद्ध करने से) स्वर्ण, रजत एवं अन्य धातुओं का लाभ होता है। त्रयोदशी को (श्राद्ध करने से अपनी) जाति में श्रेष्ठता एवं चतुर्दशी को श्राद्ध करने से कुप्रजा की प्राप्ति होती है। पञ्चदशी को श्राद्ध करने वाला सदा समस्त अभिलषित पदार्थ प्राप्त

तस्माच्छ्राद्धं न कर्त्तव्यं चतुर्दश्यां द्विजातिभिः ।
शस्त्रेण तु हतानां वै तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत् ।।२२
द्रव्यब्राह्मणसंपत्तौ न कालनियमः कृतः ।
तस्माद् भोगापवर्गार्थं श्राद्धं कुर्युर्द्विजातयः ।।२३
कर्मारम्भेषु सर्वेषु कुर्यादाभ्युदयं पुनः ।
पुत्रजन्मादिषु श्राद्धं पार्वणं पर्वणि स्मृतम् ।।२४
अहन्यहनि नित्यं स्यात् काम्यं नैमित्तिकं पुनः ।
एकोद्दिष्टादि विज्ञेयं वृद्धिश्राद्धं तु पार्वणम् ।।२५
एतत् पञ्चविधं श्राद्धं मनुना परिकीर्तितम् ।
यात्रायां षष्ठमाख्यातं तत्प्रयत्नेन पालयेत् ।।२६
शुद्धये सप्तमं श्राद्धं ब्रह्मणा परिभाषितम् ।
दैविकं चाष्टमं श्राद्धं यत्कृत्वा मुच्यते भयात् ।।२७
संध्यारात्र्योर्न कर्त्तव्यं राहोरन्यत्र दर्शनात् ।
देशानां च विशेषेण भवेत् पुण्यमनन्तकम् ।।२८
गङ्गायामक्षयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकण्टके ।
गायन्ति पितरो गाथां कीर्त्तयन्ति मनीषिणः ।।२९
एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः ।
तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।।३०
गयां प्राप्यानुषङ्गेण यदि श्राद्धं समाचरेत् ।
तारिताः पितरस्तेन स याति परमां गतिम् ।।३१
वराहपर्वते चैव गङ्गायां वै विशेषतः ।
वाराणस्यां विशेषेण यत्र देवः स्वयं हरः ।।३२
गङ्गाद्वारे प्रभासे च बिल्वके नीलपर्वते ।
कुरुक्षेत्रे च कुब्जाम्रे भृगुतुङ्गे महालये ।।३३
केदारे फल्गुतीर्थे च नैमिषारण्य एव च ।
सरस्वत्यां विशेषेण पुष्करेषु विशेषतः ।।३४
नर्मदायां कुशावर्त्ते श्रीशैले भद्रकर्णके ।
वेत्रवत्यां विपाशायां गोदावर्यां विशेषतः ।।३५
एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च ।
नदीनां चैव तीरेषु तुष्यन्ति पितरः सदा ।।३६

करता है। (२१)

अतएव द्विजातियों को चतुर्दशी के दिन श्राद्ध नहीं करना चाहिए। शस्त्र से मारे गये मनुष्यों का श्राद्ध उस दिन अर्थात् चतुर्दशी को करना चाहिए। (२२)

द्रव्य एवं ब्राह्मण की प्राप्ति होने पर (कभी भी श्राद्ध किया जा सकता है इसके लिए) काल-सम्बन्धी नियम नहीं किया गया है। अतएव द्विजातियों को भोग और अपवर्ग की सिद्धि-हेतु श्राद्ध करना चाहिए। (२३)

सभी कर्मों के आरम्भ में तथा पुत्र जन्मादि होने पर आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिए। पर्व के दिन पार्वण श्राद्ध करना चाहिए। (२४)

मनु ने प्रतिदिन किये जाने वाले नित्य श्राद्ध, काम्य श्राद्ध, एकोद्दिष्टादि नैमित्तिक श्राद्ध, वृद्धि श्राद्ध एवं पार्वण श्राद्ध, इन पाँच प्रकार के श्राद्धों का वर्णन किया है। (तीर्थ) यात्रा में छठवाँ श्राद्ध कहा गया है। प्रयत्न पूर्वक उसका पालन करना चाहिये। (२५, २६)

ब्रह्मा ने शुद्धि के लिये सातवें श्राद्ध का वर्णन किया है। दैविक नामक आठवाँ श्राद्ध है जिसको करने से भय से छुटकारा होता है। (२७)

सन्ध्या अथवा रात्रि काल में श्राद्ध नहीं करना चाहिये। किंतु चन्द्र अथवा सूर्य के राहु अथवा केतु द्वारा ग्रस्त होने पर संध्या और रात्रि में श्राद्ध किया जा सकता है। देश की विशिष्टता के कारण (उन उन स्थानों पर किये गये श्राद्ध से) अनन्त पुण्य उत्पन्न होता है। (२८)

गङ्गा, प्रयाग एवं अमरकण्टक में किया गया श्राद्ध अक्षय फल प्रदान करता है। पितृगण इस गाथा का गान करते हैं एवं विद्वान् लोग यह कीर्त्तन करते रहते हैं कि गुण एवं शीलयुक्त अनेक पुत्रों की इच्छा करनी चाहिये। क्योंकि उनमें से कोई एक भी (श्राद्ध के हेतु) गया जा सकता है। (२९, ३०)

यदि (मनुष्य) किसी भी प्रसंगवश गया जाकर श्राद्ध करे तो वह पितरों को तार देगा एवं स्वयं परम गति प्राप्त करेगा। (३१)

वाराह पर्वत, विशेषरूप से गङ्गा, देव हर के विशिष्ट निवास स्थान वाराणसी, गङ्गाद्वार, प्रभास, बिल्वक तीर्थ, नीलपर्वत, कुरुक्षेत्र, कुब्जाम्र, भृगुतुङ्ग, महालय, केदार, फल्गुतीर्थ, नैमिषारण्य, विशेषतः सरस्वतीतीर, विशेषतः पुष्करक्षेत्र, नर्मदातीर, कुशावर्त, श्रीशैल, भद्रकर्णक, वेत्रवती, विपाशा एवं विशेषतः गोदावरी के तीर पर तथा अन्य तीर्थों, पुलिनों एवं नदियों के तट पर श्राद्ध करने से पितृगण सदा सन्तुष्ट होते हैं। (३२-३६)

व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा।
श्यामाकैश्च यवैः शाकैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः।
गोधूमैश्च तिलैर्मुद्‌गैर्मासं प्रीणयते पितॄन् ॥३७
आम्रान् पानेरतानिक्षून् मृद्वीकांश्च सदाडिमान्।
विदार्यांश्च भरण्डाश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत् ॥३८
लाजान् मधुयुतान् दद्यात् सक्तून् शर्करया सह।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन श्रृङ्गाटककशेरुकान् ॥३९
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनेह पञ्च तु ॥४०
षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेनाथ सप्त वै।
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु ॥४१
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मयोर्मांसेन मासानेकादशैव तु ॥४२
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन तु।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥४३
कालशाकं महाशल्कं खड्गलोहामिषं मधु।
आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥४४
क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाऽथ मृतानाहृत्य वा द्विजः।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षयमुच्यते ॥४५
पिप्पलीं क्रमुकं चैव तथा चैव मसूरकम्।
कूष्माण्डालाबुवार्त्ताकान् भूस्तृणं सुरसं तथा ॥४६
कुसुम्भपिण्डमूलं वै तन्दुलीयकमेव च।
राजमाषांस्तथा क्षीरं माहिषं च विवर्जयेत् ॥४७
कोद्रवान् कोविदारांश्च पालक्यान् मरिचांस्तथा।
वर्जयेत् सर्वयत्नेन श्राद्धकाले द्विजोत्तमः ॥४८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

व्रीहि, जौ, उड़द, जल, मूल, फल, श्यामाक अर्थात् साँवा, यव, साग, नीवार, प्रियङ्गु, गोधूम, तिल, एवं मूंग द्वारा किया हुआ श्राद्ध पितरों को एक मास तक प्रसन्न करता है। (३७)

श्राद्ध के समय आम, पानेरा अर्थात् करमईद, ईख, द्राक्षा, अनार, विदारी एवं भरण्ड प्रदान करना चाहिए। (३८)

श्राद्ध में प्रयत्नपूर्वक मधुयुक्त लाजा, शर्करायुक्त सत्तू, सिंघाड़ा एवं कसेरू प्रदान करना चाहिए। (३९)

मछली के मांस से श्राद्ध करने से दो महीने तक, हरिण के मांस से तीन महीने तक, मेष के मांस से चार मास तक एवं पक्षियों के मांस से पाँच मास तक पितृगण तृप्त होते हैं। (४०)

बकरे के मांस से छः महीने तक एवं पृषत नामक हरिण के मांस से श्राद्ध करने से सात महीने तक तृप्त होते हैं। एण नामक मृग के मांस से आठ महीने तक, रुरु नामक मृग के मांस से नव मास तक, तृप्त होते हैं। (४१)

सूकर तथा महिष के मांस से दस महीने तक पितृगण तृप्त होते हैं। खरगोश एवं कछुये के मांस से ग्यारह महीने तक पितृगण तृप्त होते हैं। (४२)

गौ के दूध तथा खीर से श्राद्ध करने से पितृगण एक वर्ष पर्यन्त सन्तुष्ट रहते हैं। वाध्रीणस अर्थात् गैंड़े के मांस से श्राद्ध करने से पितृगण बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं। (४३)

कालशाक नामक साग, महाशल्क नामक मत्स्य, खड्ग अर्थात् गैंड़ा नामक पशु का रक्तवर्ण का मांस, मधु एवं मुनियों के अन्न श्राद्ध में प्रदान करने से पितृगण अनन्त काल तक तृप्त रहते हैं। (४४)

द्विज के द्वारा खरीदा हुआ, दान में प्राप्त एवं स्वयं मरे हुए पशु का मांस प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध में प्रदान करना चाहिए। उसका अक्षय फल कहा है। (४५)

श्राद्ध में पिप्पली, क्रमुक अर्थात् सुपारी, मसूर, कूष्माण्ड, लौकी, बैंगन तथा रसयुक्त भूस्तृण, कुसुम्भ, पिण्डमूल, तन्दुलीयक, राजमाष एवं भैंस के दूध का परित्याग करना चाहिए। (४६,४७)

श्रेष्ठ द्विज को श्राद्ध में कोदो, कोविदार, पालक साग एवं मरिच का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए। (४८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में बीसवाँ अध्याय समाप्त—२०.

२१

व्यास उवाच ।

स्नात्वा यथोक्तं संतर्प्य पितृँश्चन्द्रक्षये द्विजः ।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात् सौम्यमनाः शुचिः ॥१
पूर्वमेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
तीर्थं तद् हव्यकव्यानां प्रदाने चातिथिः स्मृतः ॥२
ये सोमपा विरजसो धर्मज्ञाः शान्तचेतसः ।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः ॥३
पञ्चाग्निरप्यधीयानो यजुर्वेदविदेव च ।
बह्वृचश्च त्रिसौपर्णस्त्रिमधुर्वाऽथ यो भवेत् ॥४
त्रिणाचिकेतच्छन्दोगो ज्येष्ठसामग एव च ।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषतः ॥५
अग्निहोत्रपरो विद्वान् न्यायविच्च षडङ्गवित् ।
मन्त्रब्राह्मणविच्चैव यश्च स्याद् धर्मपाठकः ॥६
ऋषिव्रती ऋषीकश्च तथा द्वादशवार्षिकः ।
ब्रह्मदेयानुसंतानो गर्भशुद्धः सहस्रदः ॥७
चान्द्रायणव्रतचरः सत्यवादी पुराणवित् ।
गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः ॥८
विमुक्तः सर्वतो धीरो ब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः ।
महादेवार्चनरतो वैष्णवः पङ्क्तिपावनः ॥९
अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा ।
सत्रिणो दाननिरता विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥१०
युवानः श्रोत्रियाः स्वस्था महायज्ञपरायणाः ।

२१

व्यास ने कहा—चन्द्रमा का क्षय होने पर अर्थात् अमावास्या को स्नानोपरान्त यथोक्त रीति से पितरों का तर्पण कर ब्राह्मण को पवित्रतापूर्वक शान्तचित्त से पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करना चाहिये । (१)

सर्वप्रथम वेदपारगामी ब्राह्मण की परीक्षा करनी चाहिये । उसे हव्य, कव्य, तीर्थ एवं दान का (अधिकारी) अतिथि कहा गया है । (२)

सोमपायी, रजोगुणहीन, धर्मज्ञ, शान्तचित्त, व्रती, नियमस्थ एवं ऋतुकालाभिगामी (ब्राह्मण पंक्तिपावन होता है) । (३)

जो (ब्राह्मण) पञ्चाग्निहोमकर्त्ता, अध्ययनशील, यजुर्वेद जानने वाला, बह्वृच्, त्रिसौपर्ण एवं त्रिमधु अर्थात् ऋग्वेद के अंश विशेष का अध्येता होता है (उसे पंक्तिपावन कहा जाता है) । (४)

त्रिणाचिकेत अर्थात् यजुर्वेद के अंश विशेष का अध्येता, सामवेदाध्यायी, ज्येष्ठसामका-अर्थात् सामवेद के आरण्यक का गायक, अथर्ववेद का अध्येता एवं विशेषरूप से रुद्राध्यायी (का अध्ययन करने वाले ब्राह्मण को पंक्तिपावन कहा जाता है) । (५)

अग्निहोत्रपरायण, विद्वान्, न्यायवेत्ता, (वेद के शिक्षा कल्पादि) छःअङ्गों को जानने वाला, मन्त्र एवं ब्राह्मणभाग का ज्ञाता तथा धर्मशास्त्र पढ़ने वाला (ब्राह्मण पंक्तिपावन कहलाता है) । (६)

ऋषियों के व्रत का पालन करने वाला, ऋषीक, बारह वर्षों तक चलने वाले यज्ञ का करने वाला, ब्राह्म-विवाह द्वारा विवाहित स्त्री में उत्पन्न सन्तान, गर्भाधानादि संस्कार से विशुद्ध एवं सहस्रों का दान करने वाला (ब्राह्मण पंक्तिपावन होता है) । (७)

चान्द्रायण व्रत का पालन करनेवाला, सत्यवादी, पुराणवेत्ता, गुरु, देवता एवं अग्नि की पूजा में लगा रहने वाला तथा ज्ञानपरायण (ब्राह्मण पंक्तिपावन होता है) । (८)

सर्वथा विमुक्त अर्थात् विधिनिषेधातीत, सर्वथा धीर, ब्रह्मज्ञानी, महादेव की पूजा करनेवाला एवं विष्णु का भक्त उत्तम द्विज पंक्तिपावन होता है । (९)

नित्य अहिंसा का पालन करने वाला, दान न लेने वाला, यज्ञकर्त्ता एवं दान करने वाले (ब्राह्मणों को) पंक्तिपावन जानना चाहिए । (१०)

श्रोत्रिय, महायज्ञपरायण, गायत्री मन्त्र का जप

सावित्रीजापनिरता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥११
कुलीनाः श्रुतवन्तश्च शीलवन्तस्तपस्विनः ।
अग्निचित्स्नातका विप्रा विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥१२
मातापित्रोर्हिते युक्तः प्रातःस्नायी तथा द्विजः ।
अध्यात्मविन्मुनिर्दान्तो विज्ञेयः पङ्क्तिपावनः ॥१३
ज्ञाननिष्ठो महायोगी वेदान्तार्थविचिन्तकः ।
श्रद्धालुः श्राद्धनिरतो ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥१४
वेदविद्यारतः स्नातो ब्रह्मचर्यपरः सदा ।
अथर्वणो मुमुक्षुश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥१५
असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च ।
असंबन्धी च विज्ञेयो ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः ॥१६
भोजयेद् योगिनं पूर्वं तत्त्वज्ञानरतं यतिम् ।
अलाभे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकं तथा ॥१७
तदलाभे गृहस्थं तु मुमुक्षुं सङ्गवर्जितम् ।
सर्वालाभे साधकं वा गृहस्थमपि भोजयेत् ॥१८
प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञो यस्याश्नाति यतिर्हविः ।
फलं वेदविदां तस्य सहस्रादतिरिच्यते ॥१९
तस्माद् यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम् ।
भोजयेद् हव्यकव्येषु अलाभादितरान् द्विजान् ॥२०
एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥२१
मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥२२
न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।
पैशाची दक्षिणा सा हि नैवामुत्र फलप्रदा ॥२३
कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ।

करने वाले स्वस्थ युवक ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं। (११)

कुलीन, ज्ञानवान्, शीलसम्पन्न, तपस्वी, अग्नि का चयन करने वाले स्नातक विप्र पंक्तिपावन होते है। (१२)

माता और पिता के हित करने में लगे हुए, प्रातः स्नान करने वाले, अध्यात्मवेत्ता, इन्द्रियजयी एवं मननशील (ब्राह्मण को) पंक्तिपावन जानना चाहिए। (१३)

ज्ञाननिष्ठ, महायोगी, वेदान्त के अर्थ का विशेष चिन्तन करने वाला, श्रद्धालु एवं श्राद्धनिरत ब्राह्मण पंक्तिपावन होता है। (१४)

सर्वदा वेदविद्या में रत, समावर्तन स्नान करने वाला, ब्रह्मचर्यपरायण, अथर्ववेद का अध्ययन करने वाला मोक्षार्थी ब्राह्मण पंक्तिपावन होता है। (१५)

असमान प्रवर, असगोत्र एवं असम्बन्धी ब्राह्मण को पंक्तिपावन जानना चाहिए। (१६)

सर्वप्रथम तत्त्वज्ञानरत संयमी योगी को भोजन कराना चाहिये। (उस प्रकार के ब्राह्मण का) अभाव होने पर उपकुर्वाणक (गार्हस्थ्य में आने का इच्छुक ब्रह्मचारी) इन्द्रियजयी एवं नैष्ठिक ब्राह्मण को खिलाना चाहिए। (१७)

उसका (भी) अभाव होने पर कुसङ्गरहित मोक्षार्थी गृहस्थ (को भोजन कराना चाहिए)। अथवा सभी का अभाव होने पर साधक गृहस्थ को ही भोजन कराना चाहिये। (१८)

प्रकृति के गुण एवं तत्त्व को जानने वाला यति जिस (व्यक्ति) का भोजन करता है उसे वेद के ज्ञानी (को भोजन कराने वाले की अपेक्षा) सहस्रगुना अधिक फल मिलता है। (१९)

अतएव यत्नपूर्वक ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान में तत्पर श्रेष्ठ योगी को देव एवं पितृकार्य में भोजन कराना चाहिए और इनकी प्राप्ति न होने पर दूसरे ब्राह्मणों को खिलाना चाहिए। (२०)

हव्य और कव्य प्रदान करने में यह मुख्य कल्प है। (इसकी प्राप्ति न होने पर) सदा सज्जनों से अनुष्ठित इस (अग्रिम) अनुकल्प को जानना चाहिए। (२१)

मातामह (नाना), मामा, भागिनेय (भाँजा), श्वसुर, गुरु, दौहित्र (नाती), जामाता, बन्धु, पुरोहित एवं यजमान को खिलाना चाहिए। (२२)

श्राद्ध में मित्र को नहीं खिलाना चाहिए। इन (मित्रों) का संग्रह धन द्वारा करना चाहिए। ऐसी दक्षिणा पैशाची होती है। वह इस लोक या परलोक में कोई फल नहीं देती। (२३)

(पूर्वोक्त व्यक्तियों की प्राप्ति न होने पर) श्राद्ध में भले ही मित्र का सत्कार करे किन्तु पात्र होने पर भी (श्राद्ध में) शत्रु का सत्कार नहीं करना

द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥२४
ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥२५
यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ।
तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥२६
यावतो ग्रसते पिण्डान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलांस्त्वयोगुडान् ॥२७
अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमाः ।
यत्रैते भुञ्जते हव्यं तद् भवेदासुरं द्विजाः ॥२८
यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम् ।
स वै दुर्ब्राह्मणो नार्हः श्राद्धादिषु कदाचन ॥२९
शूद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषलो ग्रामयाजकः ।
बधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धवः ॥३०
दत्तानुयोगान् वृत्यर्थं पतितान् मनुरब्रवीत् ।
वेदविक्रयिणो ह्येते श्राद्धादिषु विगर्हिताः ॥३१
श्रुतिविक्रयिणो ये तु परपूर्वासमुद्भवाः ।
असमानान् याजयन्ति पतितास्ते प्रकीर्तिताः ॥३२
असंस्कृताध्यापका ये भृत्या वाऽध्यापयन्ति ये ।
अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्तिताः ॥३३
वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाः पञ्चरात्रविदो जनाः ।
कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डा ये च तद्विधाः ॥३४
यस्याश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः ।
न तस्य तद् भवेच्छ्राद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम् ॥३५
अनाश्रमी यो द्विजः स्यादाश्रमी वा निरर्थकः ।
मिथ्याश्रमी च ते विप्रा विज्ञेयाः पङ्क्तिदूषकाः ॥३६
दुश्चर्मा कुनखी कुष्ठी श्वित्री च श्यावदन्तकः ।

चाहिये। द्वेषी का खाया हुआ हवि परलोक में निष्फल होता है। (२४)

(वेद का) अध्ययन न करने वाला ब्राह्मण तृणाग्नि के सदृश शान्त हो जाता है। उसे हव्य नहीं देना चाहिये। क्योंकि भस्म में हवन नहीं किया जाता। (२५)

जिस प्रकार बोने वाला ऊसर में बीज बोकर फल नहीं पाता उसी प्रकार ऋचा (वेद) न जानने वाले (ब्राह्मण) को हवि देने से दाता को (दान करने का) कोई फल नहीं प्राप्त होता। (२६)

वह मन्त्र को न जानने वाला (ब्राह्मण) देव एवं पितृ सम्बन्धी कार्य में जितने पिण्ड खाता है मरने के उपरान्त (वह) उतने ही प्रज्वलित स्थूल लौहपिण्ड का भक्षण करता है। (२७)

हे द्विजो! विद्या सम्पन्न एवं सत्कुलोत्पन्न होने पर भी आचारहीन नीच मनुष्य जिस (दैव-पित्र्य कार्य) में हव्य आदि का भोजन करते हैं उसमें प्रयुक्त भोज्य द्रव्य आसुरी हो जाता है। (२८)

तीन पीढ़ी तक जिसके वेद एवं वेदी अर्थात् यज्ञशाला का विच्छेद हो जाता है वह दुर्ब्राह्मण होता है। वह कभी भी श्राद्धादि कार्य के योग्य नहीं रहता। (२९)

शूद्र का नौकर, राजा से वेतन लेने वाला, पतित, ग्रामयाजक एवं वध तथा बन्धन द्वारा जीविका चलाने वाले-ये छः प्रकार के ब्राह्मण ब्रह्मबन्धु होते हैं। (३०)

मनु ने जीविका के लिए दान लेने वालों को पतित कहा है। ये सभी एवं वेद का विक्रय करने वाले (ब्राह्मण) श्राद्धादि कार्यों में निन्दित हैं। (३१)

वेद का विक्रय करने वाले, हीन अथवा उच्चवर्ण की स्त्री से उत्पन्न एवं असमान वर्णों का यज्ञ कराने वाले ये सभी पतित कहे गये हैं। (३२)

संस्कृत से भिन्न भाषा पढ़ाने वाले, वेतन के लिये अध्यापन तथा वेदाध्ययन करने वाले पतित कहे गये हैं। वृद्धश्रावक अर्थात् बौद्ध, निर्ग्रन्थ अर्थात् जैन, पाञ्चरात्र के ज्ञाता, कापालिक, पाशुपत एवं उसी प्रकार के पाषण्डी तमोगुणी, दुरात्मा व्यक्ति जिसके हविष्यान्न का भक्षण करते हैं उसका किया हुआ वह श्राद्ध लोक एवं परलोक में फलदायक नहीं होता। (३३-३५)

जो द्विज अनाश्रमी (आश्रम-धर्म-रहित), निरर्थक आश्रम का अवलम्बन करने वाले एवं मिथ्याश्रमी अर्थात् धूर्ततावश किसी आश्रम के अवलम्बन का ढोंग करने वाले होते हैं उन्हें पंक्तिदूषक जानना चाहिये। (३६)

विकारयुक्त चर्म एवं नखवाले, कुष्ठ रोगी, श्वित्ररोग (श्वेत कुष्ठ) से पीड़ित, काले दाँतों वाले, विद्धलिङ्ग वाले अर्थात् जिनके लिङ्ग का छेदन हुआ हो, चोर,

विद्धप्रजननश्चैव स्तेनः क्लीबोऽथ नास्तिकः ।।३७

मद्यपो वृषलीसक्तो वीरहा दिधिषूपतिः ।
आगारदाही कुण्डाशी सोमविक्रयिणो द्विजाः ।।३८

परिवेत्ता तथा हिंस्रः परिवित्तिर्निराकृतिः ।
पौनर्भवः कुसीदी च तथा नक्षत्रदर्शकः ।।३९

गीतवादित्रनिरतो व्याधितः काण एव च ।
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णिस्तथैव च ।।४०

कन्यादूषी कुण्डगोलौ अभिशस्तोऽथ देवलः ।
मित्रध्रुक् पिशुनश्चैव नित्यं भार्यानुवर्त्तकः ।।४१

मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च ।
गोत्रभिद् भ्रष्टशौचश्च काण्डस्पृष्टस्तथैव च ।।४२

अनपत्यः कूटसाक्षी याचको रङ्गजीवकः ।
समुद्रयायी कृतहा तथा समयभेदकः ।।४३

देवनिन्दापरश्चैव वेदनिन्दारतस्तथा ।
द्विजनिन्दारतश्चैते वर्ज्याः श्राद्धादिकर्मसु ।।४४

कृतघ्नः पिशुनः क्रूरो नास्तिको वेदनिन्दकः ।
मित्रध्रुक् कुहकश्चैव विशेषात् पङ्क्तिदूषकाः ।।४५

सर्वे पुनरभोज्यान्नास्त्वदानार्हाश्च कर्मसु ।
ब्रह्मभावनिरस्ताश्च वर्जनीयाः प्रयत्नतः ।।४६

शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः संध्योपासनवर्जितः ।
महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः ।।४७

नपुंसक एवं नास्तिकों (को श्राद्धादि कार्य में त्याग देना चाहिये) । (३७)

मद्यप, शूद्रा स्त्री में आसक्त, वीरघाती अर्थात् पुत्र या मित्र की हत्या करने वाला, विधवा स्त्री से विवाह करने वाला, घर को जलाने वाला, कुण्डाशी अर्थात् पति के जीवित रहते अन्य पुरुष से उत्पन्न सन्तान एवं सोम का विक्रय करने वाले द्विजों का (श्राद्धादि कार्यों में त्याग करना चाहिये।) (३८)

परिवेत्ता अर्थात् ज्येष्ठ भ्राता के अविवाहित अथवा अनग्निक रहते हुये विवाह अथवा अग्नि स्वीकार करने वाला कनिष्ठ भ्राता, हिंसक, परिवित्ति अर्थात् कनिष्ठ भ्राता के विवाहित होने के पूर्व अविवाहित रहने वाला, निराकृति अर्थात् पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान न करने वाला, पुनर्भू अर्थात् पति की मृत्यु के उपरान्त अन्य व्यक्ति से विवाह करने वाली स्त्री से उत्पन्न सन्तान, सूदखोर एवं नक्षत्रदर्शक का श्राद्धादि में त्याग करना चाहिए। (३९)

गाने-बजाने का व्यसनी, रोगी, काना, हीन एवं अधिक अङ्ग वाले तथा अवकीर्णी अर्थात् ब्रह्मचर्यादि व्रत को भङ्ग करने वाले व्यक्तियों (का श्राद्धादि कार्यों में त्याग करना चाहिए) । (४०)

कन्या को दूषित करने वाला, कुण्ड अर्थात् पति के जीवित रहते अन्य जार के संयोग से उत्पन्न सन्तान, गोलक अर्थात् पति की मृत्यु के उपरान्त उपपति द्वारा उत्पन्न सन्तान, अभिशस्त अर्थात् अपवादग्रस्त, देवल अर्थात् मन्दिरादि में देव प्रतिमा की पूजा से जीविकोपार्जन करने वाले ब्राह्मण, मित्रद्रोही, पिशुन अर्थात् चुगलखोर एवं भार्यानुगामी व्यक्तियों का नित्य (श्राद्धादि कार्यों में वहिष्कार करना चाहिए) । (४१)

माता, पिता, गुरु एवं पत्नी का त्याग करने वाले, सगोत्र में भेद उत्पन्न करने वाले, शौचरहित एवं काण्ड स्पृष्ट अर्थात् शस्त्रजीवी व्यक्तियों का (श्राद्धादि कार्यों में वहिष्कार करना चाहिए)। (४२)

सन्तानहीन, कूटसाक्षी अर्थात् झूठी गवाही देने वाले, याचक, रङ्ग द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले, समुद्र की यात्रा करने वाले, कृतघ्न तथा समझौते को भङ्ग करने वाले व्यक्तियों का (श्राद्धादि में त्याग करना चाहिए) । (४३)

देवता, वेद एवं द्विज की निन्दा करने वाले व्यक्तियों का श्राद्धादि कर्मों में त्याग करना चाहिए। (४४)

कृतघ्न, चुगुलखोर, क्रूर, नास्तिक, वेदनिन्दक, मित्र-द्रोही एवं ऐन्द्रजालिक विशेष रूप से पंक्तिदूषक होते हैं। (४५)

(उपर्युक्त) सभी प्रकार के व्यक्ति अभोज्यान्न अर्थात् श्राद्ध में खिलाने के अयोग्य होते हैं। वे सभी प्रकार के कर्मों में दान के अयोग्य होते हैं। ब्रह्मभाव से शून्य अर्थात् ब्राह्मणत्व से गिरे हुए (पूर्वोक्त) व्यक्तियों का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए। (४६)

शूद्र के अन्न एवं रस से पुष्ट हुए अङ्गों वाला, सन्ध्यो-

अधीतनाशनश्चैव स्नानहोमविवर्जितः ।
तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः ॥४८

बहुनाऽत्र किमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते ।
निन्दितानाचरन्त्येते वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥४९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकविंशोऽध्याय ॥२१॥

२२

व्यास उवाच ।

गोमयेनोदकैर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः ।
संनिपात्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः संनिमन्त्रयेत् ॥१
श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिपूज्य च ।
असंभवे परेद्युर्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतान् ॥२
तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम् ।
अन्योन्यं मनसा ध्यात्वा संपतन्ति मनोजवाः ॥३
ब्राह्मणैस्ते सहाश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः ।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम् ॥४
आमन्त्रिताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते ।
वसेयुर्नियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः ॥५
अक्रोधनोऽत्वरोऽमत्तः सत्यवादी समाहितः ।
भारं मैथुनमध्वानं श्राद्धकृद् वर्जयेज्जपम् ॥६
आमन्त्रितो ब्राह्मणो वा योऽन्यस्मै कुरुते क्षणम् ।

पासना से रहित एवं महायज्ञविहीन ब्राह्मण पंक्तिदूषक होता है । (४७)

अध्ययन किये हुए शास्त्रादि का विस्मरण करने वाला, स्नान एवं होम से रहित, तमोगुणी तथा रजोगुणी ब्राह्मण पंक्तिदूषक होता है । (४८)

अधिक कहने से क्या लाभ? जो विहित कर्मों को नहीं करते तथा निन्दित कर्मों का आचरण करते हैं वे लोग श्राद्ध में प्रयत्नपूर्वक त्याग किये जाने योग्य होते हैं । (४९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त—२१.

२२

व्यास ने कहा—सावधानीपूर्वक गोबर और जल से भूमि को शुद्धकर (पूर्वोक्त) सभी विहित प्रकार से ब्राह्मणों को बैठाकर सज्जन पुरुषों द्वारा उन्हें निमन्त्रित करे । (१)

पूर्व के दिन (ब्राह्मणों की) पूजाकर उनसे कहना चाहिए कि "कल हमारे यहाँ श्राद्ध होगा" असंभव होने पर दूसरे ही दिन यथोक्त लक्षणों से युक्त ब्राह्मणों को निमन्त्रित करना चाहिए । (२)

उस (श्राद्ध करने वाले पुरुष) के मन के समान वेग वाले पितृगण श्राद्ध के समय को उपस्थित हुआ सुनकर परस्पर एक दूसरे का मन से ध्यानकर आते हैं । (३)

अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले पितृगण उन ब्राह्मणों के साथ भोजन करते हैं । वे पितृगण वायु-रूप में स्थिर रहते हैं एवं भोजनोपरान्त परम गति प्राप्त करते हैं । (४)

श्राद्ध का समय उपस्थित होने पर उन सभी आमन्त्रित ब्राह्मणों को नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करना चाहिए । (५)

श्राद्धकर्ता को क्रोध, उतावलापन एवं प्रमाद का त्यागकर सावधानीपूर्वक सत्य बोलना चाहिए तथा भार का ढोना, मैथुन, मार्गगमन एवं जप का त्याग करना चाहिए । (६)

(किसी एक श्राद्धकर्ता द्वारा) निमन्त्रित हुआ ब्राह्मण यदि अन्य (व्यक्ति) के यहाँ निमंत्रण स्वीकार करता है

स याति नरकं घोरं सूकरत्वं प्रयाति च ।।७
आमन्त्रयित्वा यो मोहादन्यं चामन्त्रयेद् द्विजम् ।
स तस्मादधिकः पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते ।।८
श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽधिगच्छति ।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनौ च जायते ।।९
निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः ।
भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं पांशुभोजनाः ।।१०
निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे प्रकुर्यात् कलहं द्विजः ।
भवन्ति तस्य तन्मासं पितरो मलभोजनाः ।।११
तस्मान्निमन्त्रितः श्राद्धे नियतात्मा भवेद् द्विजः ।
अक्रोधनः शौचपरः कर्ता चैव जितेन्द्रियः ।।१२
श्वोभूते दक्षिणां गत्वा दिशं दर्भान् समाहितः ।
समूलानाहरेद् वारि दक्षिणाग्रान् सुनिर्मलान् ।।१३
दक्षिणाप्रवणं स्निग्धं विभक्तं शुभलक्षणम् ।
शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत् ।।१४
नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ चैव सानुषु ।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ।।१५
पारक्ये भूमिभागे तु पितॄणां नैव निर्वपेत् ।
स्वामिभिस्तद् विहन्येत मोहाद् यत् क्रियते नरैः ।।१६
अटव्यः पर्वताः पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च ।
सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः ।।१७
तिलान् प्रविकिरेत् तत्र सर्वतो बन्धयेदजान् ।
असुरोपहतं सर्वं तिलैः शुद्ध्यत्यजेन वा ।।१८
ततोऽन्नं बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनमच्युतम् ।
चोष्यपेयसमृद्धं च यथाशक्त्या प्रकल्पयेत् ।।१९
ततो निवृत्ते मध्याह्ने लुप्तलोमनखान् द्विजान् ।
अभिगम्य यथामार्गं प्रयच्छेद् दन्तधावनम् ।।२०

तो वह घोर नरक में जाता है एवं उसे सूकर की योनि प्राप्त होती है। (७)

(किसी एक) ब्राह्मण को निमन्त्रित कर मोहवश अन्य को निमन्त्रित करने वाला (श्राद्धकर्त्ता, श्राद्ध में निमन्त्रित होने पर भी अन्यत्र जाने वाले) उस व्यक्ति से भी अधिक पापी होता है। वह विष्ठा का कीट होकर उत्पन्न होता है। (८)

श्राद्ध में निमन्त्रित हुआ जो ब्राह्मण मैथुन करता है उसे ब्रह्महत्या का पाप होता है तथा उसे तिर्यग्योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है। (९)

(श्राद्ध में) निमन्त्रित ब्राह्मण यदि दुर्बुद्धिवश मार्ग गमन करता है तो उसके पितर उस महीने भर धूलि का भक्षण करते हैं। (१०)

जो द्विज श्राद्ध में निमन्त्रित होने पर कलह करता है उसके पितर उस महीने भर मल का भक्षण करते हैं। (११)

अतएव श्राद्ध में निमन्त्रित होने पर ब्राह्मण को नियतात्मा, अक्रोधी एवं शौचपरायण रहना चाहिए तथा श्राद्धकर्त्ता को भी जितेन्द्रिय होना चाहिए। (१२)

दूसरे दिन समाहित चित्त से दक्षिण दिशा की ओर जाकर सुनिर्मल, समूल और दक्षिणाग्र अर्थात् दक्षिण की ओर झुके हुये कुश एवं जल लाना चाहिये। (१३)

दक्षिण की ओर अवनत, स्निग्ध (चिकने), विभक्त अर्थात् अन्य के सम्बन्ध से रहित, शुभलक्षण-सम्पन्न, पवित्र एवं एकान्त स्थान को गोमय से लीपना चाहिये। (१४)

नदीतीर, तीर्थ, अपनी भूमि, पर्वत के शिखर एवं एकान्त स्थानों पर देने से (अर्थात् श्राद्ध करने से) पितृगण सदा सन्तुष्ट होते हैं। (१५)

दूसरे की भूमि में पितरों का श्राद्ध नहीं करना चाहिये। मोहवश मनुष्य जो (श्राद्ध कर्म परकीय भूमि में) करता है उस (कर्म को) भूमि का स्वामी नष्ट कर देता है। (१६)

जङ्गल, पर्वत, पुण्य-स्थान एवं तीर्थ और देव स्थान ये सभी स्थान अस्वामिक कहे जाते हैं। इनका परिग्रह (स्वामित्व) नहीं होता। (१७)

(श्राद्धसंबन्धी भूमि में) सर्वत्र तिल विकीर्ण कर बकरे बाँधने चाहिये। तिल और अज (बकरा) द्वारा असुरोपहत सम्पूर्ण (श्राद्ध) शुद्ध हो जाता है। (१८)

तदनन्तर यथाशक्ति चोष्य, पेयादि संमृद्ध अनेक प्रकार के शुद्ध व्यञ्जनों को बनाना चाहिये। (१९)

तदुपरान्त मध्याह्न निवृत्त होने पर नख और रोम कटाये हुए द्विजों को मार्ग में मिलकर उन्हें दन्तधावन दे। (२०)

तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयं च पृथग्विधम् ।
पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद् वैश्वदैवत्यपूर्वकम् ।।२१
ततःस्नात्वा निवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
पाद्यमाचमनीयं च संप्रयच्छेद् यथाक्रमम् ।।२२
ये चात्र विश्वेदेवानां विप्राः पूर्वं निमन्त्रिताः ।
प्राङ्मुखान्यासनान्येषां त्रिदर्भोपहितानि च ।।२३
दक्षिणामुखयुक्तानि पितॄणामासनानि च ।
दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः ।।२४
तेषूपवेशयेदेतानासनं स्पृश्य स द्विजम् ।
आसध्वमिति संजल्पन् आसनास्ते पृथक् पृथक् ।।२५
द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ पित्र्ये त्रयश्चोदङ्मुखास्तथा ।
एकैकं वा भवेत् तत्र देवमातामहेष्वपि ।।२६
सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदम् ।
पञ्चैतान् विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ।।२७

अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
श्रुतशीलादिसंपन्नमलक्षणविवर्जितम् ।।२८
उद्धृत्य पात्रे चान्नं तत् सर्वस्मात् प्रकृतात् पुनः ।
देवतायतने चास्मै निवेद्यान्यत्प्रवर्त्तयेत् ।।२९
प्रास्येदग्नौ तदन्नं तु दद्याद् वा ब्रह्मचारिणे ।
तस्मादेकमपि श्रेष्ठं विद्वांसं भोजयेद् द्विजम् ।।३०
भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः ।
उपविष्टेषु यः श्राद्धे कामं तमपि भोजयेत् ।।३१
अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रशस्यते ।
तस्मात् प्रयत्नाच्छ्राद्धेषु पूज्या ह्यतिथयो द्विजैः ।।३२
आतिथ्यरहिते श्राद्धे भुञ्जते ये द्विजातयः ।
काकयोनिं व्रजन्त्येते दाता चैव न संशयः ।।३३
हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी व्रणी पुक्कसनास्तिकौ ।
कुक्कुटाः शूकराः श्वानो वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः ।।३४

(तदनन्तर) वैश्वदैवत्य मन्त्र का उच्चारणकर उन्हें उदुम्बर के पात्रों द्वारा अभ्यञ्जनोपयोगी (मालिश योग्य) तैल, स्नान के योग्य वस्त्र एवं जल प्रदान करना चाहिए। (२१)

तदुपरान्त उनके स्नान कर लेने पर हाथ जोड़कर उनके पास जाकर क्रमशः पाद्य एवं आचमन देना चाहिए। (२२)

विश्वेदेवों के निमित्त जो ब्राह्मण पहले निमन्त्रित हैं उन्हें तीन कुशा रखकर पूर्वाभिमुख आसन प्रदान करना चाहिए। (२३)

पितृ ब्राह्मणों को दक्षिणाग्र कुश के ऊपर तिलोदक से प्रोक्षित कर दक्षिणाभिमुख आसन प्रदान करना चाहिए। (२४)

'आसध्वम् अर्थात् बैठिये' ऐसा कहकर वह (श्राद्ध-कर्त्ता) द्विज एवं आसन का स्पर्श करते हुए उन्हें उन आसनों पर बैठाये। वे सभी पृथक्-पृथक् बैठें। (२५)

दैव सम्बन्धी दो (ब्राह्मणों) को पूर्वाभिमुख, पितृ-सम्बन्धी तीन (ब्राह्मणों) को उत्तराभिमुख बैठाना चाहिए। उनमें देवसम्बन्धी एक ब्राह्मण को मातामह के भी निमित्त (नियोजित करना चाहिए)। (२६)

(श्राद्ध में) सत्कार, देश, काल, शौच एवं ब्राह्मण-सम्पद् इन पाँच विषयों (का विचार करना चाहिए। (अधिक) विस्तार इन पाँचों) को विनष्ट करता है। अतः विस्तार की इच्छा नहीं करनी चाहिए। (२७)

अथवा श्रुतशीलादि से युक्त कुलक्षण-रहित एक ही वेदपारगामी ब्राह्मण को खिलाना चाहिए। (२८)

किसी पात्र में समस्त प्रकृत वस्तुओं से अन्न निकाल-कर देवमन्दिर में उसे निवेदित करने के उपरान्त अन्य कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। (२९)

उस (श्राद्धीय) अन्न को अग्नि में डालना अथवा ब्रह्मचारी को प्रदान करना चाहिए। अतः एक भी श्रेष्ठ विद्वान् द्विज को भोजन कराना चाहिये। (३०)

(श्राद्ध के समय) (निमन्त्रित ब्राह्मणों के बैठ जाने पर) भोजन के निमित्त आकर बैठे हुए भिक्षुक या ब्राह्मण को भी खिलाना चाहिए। (३१)

जिसके श्राद्ध में अतिथि भोजन नहीं करता उसका श्राद्ध प्रशंसित नहीं होता। अतएव द्विजों को प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध में अतिथि का पूजन करना चाहिये। (३२)

जो द्विज आतिथ्यरहित श्राद्ध में भोजन करते हैं वे सभी तथा दाता भी निःसन्देह काकयोनि प्राप्त करते हैं। (३३)

श्राद्ध में हीनाङ्ग, पतित, कुष्ठरोगी, व्रणयुक्त व्यक्ति, शूद्र स्त्री में उत्पन्न निषाद की सन्तान, कुक्कुट, शूकर एवं कुत्तों को दूर से ही हटा देना चाहिये। (३४)

बीभत्सुमशुचिं नग्नं मत्तं धूर्तं रजस्वलाम् ।
नीलकाषायवसनं पाषण्डांश्च विवर्जयेत् ।।३५
यत् तत्र क्रियते कर्म पैतृकं ब्राह्मणान् प्रति ।
तत्सर्वमेव कर्त्तव्यं वैश्वदैवत्यपूर्वकम् ।।३६
यथोपविष्टान् सर्वांस्तानलंकुर्याद् विभूषणैः ।
स्रग्दामभिः शिरोवेष्टैर्धूपवासोऽनुलेपनैः ।।३७
ततस्त्वावाहयेद् देवान् ब्राह्मणानामनुज्ञया ।
उदङ्मुखो यथान्यायं विश्वे देवास इत्यृचा ।।३८
द्वे पवित्रे गृहीत्वाऽथ भाजने क्षालिते पुनः ।
शं नो देव्या जलं क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा ।।३९
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते त्वर्घं विनिक्षिपेत् ।
प्रदद्याद् गन्धमाल्यानि धूपादीनि च शक्तितः ।।४०
अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणां दक्षिणामुखः ।
आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुधः ।।४१
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तु नस्ततः ।
शं नो देव्योदकं पात्रे तिलोऽसीति तिलांस्तथा ।।४२
क्षिप्त्वा चार्घं यथापूर्वं दत्त्वा हस्तेषु वै पुनः ।
संस्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात् समाहितः ।
पितृभ्यः स्थानमेतेन न्युब्जं पात्रं निधापयेत् ।।४३
अग्नौ करिष्येत्यादाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतवान् ।।४४
यज्ञोपवीतिना होमः कर्त्तव्यः कुशपाणिना ।
प्राचीनावीतिना पित्र्यं वैश्वदेवं तु होमवत् ।।४५
दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान् परिचरन् पुमान् ।
पितॄणां परिचर्यासु पातयेदितरं तथा ।।४६
सोमाय वै पितृमते स्वधा नम इति ब्रुवन् ।
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधेति जुहुयात् ततः ।।४७

बीभत्स, अपवित्र, नग्न, मत्त, धूर्त, रजस्वला, नील एवं काषाय रङ्ग का वस्त्र धारण करने वाले व्यक्तियों एवं पाखण्डियों का परित्याग करना चाहिए। (३५)

श्राद्ध में ब्राह्मणों के प्रति जो कर्म किया जाता है वह सभी वैश्वदेव कर्म के उपरान्त करना चाहिये। (३६)

यथाविधि बैठे हुये उन सभी (ब्राह्मणों) को अलङ्कार, माला, सूत्र, शिरोवेष्टन, धूपवास एवं अनुलेपन द्वारा अलंकृत करना चाहिये। (३७)

तदनन्तर ब्राह्मणों की आज्ञा से उत्तराभिमुख होकर 'विश्वे देवास' इत्यादि ऋचा द्वारा देवों का आवाहन करना चाहिये। (३८)

तदुपरान्त दो पवित्री ग्रहणकर "शन्नो देवी" यह मन्त्र पढ़कर प्रक्षालित पात्र में जल डाले एवं 'यवोऽसीति' मन्त्र से (उस पात्र में) यव (जौ) डाले। (३९)

"या दिव्या" इस मन्त्र से (ब्राह्मण के) हाथ पर अर्घ प्रदान करना चाहिए। यथाशक्ति सुगन्धि, माला तथा धूपादि भी देना चाहिए। (४०)

तदनन्तर बुद्धिमान् व्यक्ति को अपसव्य एवं दक्षिणाभिमुख होकर "उशन्तस्त्वा" इस ऋचा से पितरों का आवाहन करना चाहिए। (४१)

आवाहन के उपरान्त उनकी आज्ञा से 'आयन्तु नः' इस मन्त्र का जप करना चाहिए। तदनन्तर "शन्नो देवी" इस मन्त्र से पात्र में जल तथा 'तिलोऽसीति' इस मन्त्र से तिल डालना चाहिए। (४२)

यथापूर्व अर्घ देकर अथवा (ब्राह्मणों के) हाथ पर (जलादि) प्रदानकर एकाग्रचित्त से पात्र में संस्रव अर्थात् अर्घ का अवशिष्ट जल रखना चाहिए। तदनन्तर "पितृभ्यः स्थानम्" इसमन्त्र का पाठकर न्युब्जपात्र अर्थात् झुका हुआ पात्र रखना चाहिए। (४३)

तदुपरान्त घृतयुक्त अन्न लेकर (ब्राह्मणों से) "अग्नौ करिष्ये" ऐसा कहे एवं (उन ब्राह्मणों द्वारा) 'कुरुष्व अर्थात् करो" ऐसा कहे जाने पर उपवीती होकर हवन करे। (४४)

हाथ में कुशा लेकर एवं यज्ञोपवीती होकर होम करना चाहिए। पितृसम्बन्धी कार्य प्राचीनावीती होकर करना चाहिए एवं वैश्वदेव सम्बन्धी कार्य होम के सदृश अर्थात् उपवीती होकर करना चाहिये। (४५)

पुरुषों को दाहिना जानु गिराकर परिचर्या करनी चाहिए एवं पितरों की परिचर्या में वाम जानु गिराना चाहिए। (४६)

तदनन्तर "सोमाय वै पितृमते स्वधा नमः" इस मन्त्र

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।
महादेवान्तिके वाऽथ गोष्ठे वा सुसमाहितः ॥४८
ततस्तैरभ्यनुज्ञातो गत्वा वै दक्षिणां दिशम् ।
गोमयेनोपलिप्योर्वीं स्थानं कृत्वा तु सैकतम् ॥४९
मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणावनतं शुभम् ।
त्रिरुल्लिखेत् तस्य मध्यं दर्भेणैकेन चैव हि ॥५०
ततः संस्तीर्य तत्स्थाने दर्भान् वै दक्षिणाग्रकान् ।
त्रीन् पिण्डान् निर्वपेत् तत्र हविःशेषात्समाहितः ॥५१
न्युप्य पिण्डांस्तु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम् ।
तेषु दर्भेष्वथाचम्य त्रिरायम्य शनैरसून् ।
तदन्नं तु नमस्कुर्यात् पितॄनेव च मन्त्रवित् ॥५२
उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ।
अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः ॥५३
अथ पिण्डावशिष्टान्नं विधिना भोजयेद् द्विजान् ।
मांसान्यपूपान् विविधान् दद्यात् कृसरपायसम् ॥५४
सूपशाकफलानीक्षून् पयो दधि घृतं मधु ।
अन्नं चैव यथाकामं विविधं भक्ष्यपेयकम् ॥५५
यद् यदिष्टं द्विजेन्द्राणां तत्सर्वं विनिवेदयेत् ।
धान्यांस्तिलांश्च विविधान् शर्करा विविधास्तथा ॥५६
उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता ।
अन्यत्र फलमूलेभ्यः पानकेभ्यस्तथैव च ॥५७
नाश्रूणि पातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ।
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् ॥५८
क्रोधेन चैव यद् दत्तं यद् भुक्तं त्वरया पुनः ।
यातुधाना विलुम्पन्ति जल्पता चोपपादितम् ॥५९
स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत सन्निधौ तु द्विजन्मनाम् ।
न चात्र श्येनकाकादीन् पक्षिणः प्रतिषेधयेत् ।
तद्रूपाः पितरस्तत्र समायान्ति बुभुक्षवः ॥६०

का उच्चारण कर "अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा" इस मन्त्र से हवन करना चाहिए। (४७)

अग्नि का अभाव होने पर एकाग्रतापूर्वक ब्राह्मण के ही हाथपर, महादेव के समीप अथवा गोष्ठ में (हवनीय द्रव्य) रखना चाहिए। (४८)

तदुपरान्त उनकी आज्ञा प्राप्तकर दक्षिण दिशा में जाकर गोबर से लीपकर स्थान को वालुकायुक्त बनाये। (४९)

तत्पश्चात् उस स्थान पर दक्षिण की ओर झुका हुआ मण्डलाकार या चतुष्कोण पवित्र स्थान बनाये। उसके मध्य में एक कुशा से तीन रेखा खींचे। (५०)

तदनन्तर उस स्थान पर दक्षिणाग्र कुशों को बिछाकर एकाग्रचित्त से हवि के अवशिष्टांश से उस पर तीन पिण्ड प्रदान करे। (५१)

पिण्डदानोपरान्त लेपभोजी पितृगण के निमित्त उन कुशों के ऊपर उस हाथ को धोये। तदनन्तर आचमन कर धीरे-धीरे तीन बार प्राणायाम करने के उपरान्त मन्त्रज्ञ व्यक्ति उस अन्न तथा पितरों को नमस्कार करे। (५२)

पुनः पिण्ड के समीप धीरे-धीरे अवशिष्ट जल ले जाय। (तत्पश्चात्) सावधानी के साथ क्रमानुसार रखे गये पिण्डों को सूंघना चाहिये। (५३)

तदुपरान्त पिण्डदान से बचा हुआ अन्न विधिपूर्वक ब्राह्मणों को खिलाना चाहिये। श्राद्ध योग्य अनेक प्रकार के मांस, पूआ, कृसर (अर्थात् खिचड़ी) एवं खीर का भोजन कराना चाहिए। (५४)

(उन ब्राह्मणों को) सूप अर्थात् दाल इत्यादि रसदार पदार्थ, साग, फल, इक्षु, दुग्ध, दधि, घृत, मधु, अन्न एवं अनेक प्रकार के खाने और पीने योग्य पदार्थ यथेच्छ खिलाना चाहिए। (५५)

श्रेष्ठ ब्राह्मणों को जो अभीष्ट हो वह सब देना चाहिए। (उन ब्राह्मणों को) अनेक प्रकार के धान्य, तिल और शर्करा का दान करना चाहिए। (५६)

कल्याण चाहने वाला व्यक्ति फल, मूल एवं पीने योग्य पदार्थों को छोड़कर अन्य सभी अन्न उष्ण अवस्था में ब्राह्मणों को प्रदान करे। (५७)

कभी अश्रुपात न करे, न क्रोध करे एवं न अनृत भाषण करे। पैर से अन्न का स्पर्श न करे और (पैरों को) न हिलाये। (५८)

क्रोधपूर्वक एवं शीघ्रतापूर्वक खाये गये तथा बोलते हुये खाये गये पदार्थ को राक्षस लोग हर लेते हैं। (५९)

ब्राह्मणों के समीप स्वेदयुक्त शरीर से न रहे। (श्राद्ध के स्थल से) काक इत्यादि पक्षियों को न हटाना चाहिये। उसी रूप में पितृगण वहाँ खाने की इच्छा से आते हैं। (६०)

न दद्यात् तत्र हस्तेन प्रत्यक्षलवणं तथा ।
न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः ॥६१
काञ्चनेन तु पात्रेण राजतौदुम्बरेण वा ।
दत्तमक्षयतां याति खड्गेन च विशेषतः ॥६२
पात्रे तु मृण्मये यो वै श्राद्धे भोजयते पितॄन् ।
स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधसः ॥६३
न पङ्क्त्यां विषमं दद्यान्न याचेन्न च दापयेत् ।
याचिता दापिता दाता नरकान् यान्ति दारुणान् ॥६४
भुञ्जीरन् वाग्यताः शिष्टा न ब्रूयुः प्राकृतान् गुणान् ।
तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥६५
नाग्रासनोपविष्टस्तु भुञ्जीत प्रथमं द्विजः ।
बहूनां पश्यतां सोऽज्ञः पङ्क्त्या हरति किल्बिषम् ॥६६

न किञ्चिद् वर्जयेच्छ्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तमः ।
न मांसं प्रतिषेधेत न चान्यस्यान्नमीक्षयेत् ॥६७
यो नाश्नाति द्विजो मांसं नियुक्तः पितृकर्मणि ।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥६८
स्वाध्यायं श्रावयेदेषां धर्मशास्त्राणि चैव हि ।
इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पांश्च शोभनान् ॥६९
ततोऽन्नमुत्सृजेद् भुक्ते अग्रतो विकिरन् भुवि ।
पृष्ट्वा तृप्ताः स्थ इत्येवं तृप्तानाचामयेत् ततः ॥७०
आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति ।
स्वधाऽस्त्विति च तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥७१
ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु वै द्विजैः ॥७२

वहाँ हाथ द्वारा प्रत्यक्ष लवण नहीं देना चाहिये। लौह पात्र द्वारा एवं अश्रद्धापूर्वक कोई वस्तु नहीं देना चाहिए। (६१)

स्वर्ण, रजत या उदुम्वर के पात्र द्वारा तथा विशेषरूप से गैड़े के चर्मपात्र द्वारा दिया हुआ पदार्थ अक्षय होता है। (६२)

जो व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर पितरों को मिट्टी के पात्र में भोजन कराता है वह घोर नरक में जाता है। (भोजन कराने वाले श्राद्धकर्त्ता के अतिरिक्त उस श्राद्ध में) भोजन करने वाले ब्राह्मण एवं पुरोहित भी घोर नरक में जाते हैं। (६३)

एक पंक्ति में (बैठकर भोजन करने वालों को) विषम रूप से अर्थात् किसी को अधिक और किसी को अल्प अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार का भोज्य पदार्थ नहीं देना चाहिए। (खाने वालों को) माँगना नहीं चाहिए एवं (किसी खाने वाले को अल्प या अधिक भोज्य पदार्थ) नहीं दिलाना चाहिए। माँगने वाला, दिलवाने वाला और देने वाला ये तीनों ही भीषण नरकों में जाते हैं। (६४)

(प्रथम) शिष्ट लोगों को मौन धारण कर खाना चाहिए। (पक्वान्न के) प्राकृत गुणों का वर्णन नहीं करना चाहिये। पितृगण तभी तक भोजन करते हैं जब तक भोज्यपदार्थ के गुणों का वर्णन नहीं होता। (६५)

अग्रासन पर बैठे द्विज को पहले भोजन नहीं करना चाहिए। (क्योंकि ऐसा करने से वह) अज्ञानी द्विज पंक्ति में बैठे हुए देखने वालों के पाप का भागी होता है। (६६)

श्राद्ध में नियुक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण को किसी वस्तु का बहिष्कार नहीं करना चाहिये। (मांस भक्षण का अन्यत्र निषेध होने पर भी) श्राद्ध में मांस का बहिष्कार नहीं करना चाहिए। (श्राद्ध में भोजन करने वाले को) अन्य व्यक्ति के अन्न की ओर नहीं देखना चाहिए। (६७)

पितृकार्य में नियुक्त जो ब्राह्मण मांस नहीं खाता वह इक्कीस जन्म पर्यन्त पशुत्व प्राप्त करता है। (६८)

(श्राद्ध में भोजन करने वाले) इन (ब्राह्मणों) को वेद, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण एवं सुन्दर श्राद्धकल्प सुनाना चाहिए। (६९)

तदनन्तर (ब्राह्मणों के) भोजन कर लेने पर उनसे "क्या आपलोग तृप्त हो गये" इस प्रकार पूछने के उपरान्त उनके अग्रभाग में विकीर्ण करते हुए अन्न का उत्सर्ग करना चाहिए। तत्पश्चात् तृप्त ब्राह्मणों को आचमन कराना चाहिए। (७०)

आचमन कर लेने पर उन्हें चतुर्दिक रमण करने को कहना चाहिए। तदुपरान्त ब्राह्मण लोग उस (श्राद्धकर्त्ता) से "स्वधाऽस्तु" इस प्रकार कहें। (७१)

उनके खाने से बचे हुये अन्न को उनसे निवेदित करना चाहिए। वे ब्राह्मण जैसा कहें वैसा ही उनकी अनुमति से करना चाहिए। (७२)

पित्र्ये स्वदित इत्येव वाक्यं गोष्ठेषु सूनृतम् ।
संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रोचत इत्यपि ।।७३
विसृज्य ब्राह्मणांस्तान् वै दैवपूर्वं तु वाग्यतः ।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् याचेतेमान् वरान् पितॄन् ।।७४
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः संततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्त्विति ।।७५
पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात् पत्नी सुतार्थिनी ।।७६
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातीन् शेषेण तोषयेत् ।
ज्ञातिष्वपि च तुष्टेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत् ततः ।
पश्चात् स्वयं च पत्नीभिः शेषमन्नं समाचरेत् ।।७७
नोद्वासयेत् तदुच्छिष्टं यावन्नास्तंगतो रविः ।
ब्रह्मचारी भवेतां तु दम्पती रजनीं तु ताम् ।।७८

पितृश्राद्ध में "स्वदित", गोष्ठश्राद्ध में "सूनृतम्", आभ्युदयिक कार्य में "सम्पन्नं" एवं दैव कार्य में 'रोचत' कहना चाहिए। (७३)

उन ब्राह्मणों को विदाकर मौन धारणकर दैवकार्य करके दक्षिणाभिमुख होकर पितरों से इन वरों की याचना करनी चाहिए— (७४)

हमारे दाता, वेद और सन्तति की वृद्धि हो। मेरी श्रद्धा न हटे। मेरे पास बहुत देने योग्य पदार्थ हों। (७५)

(श्राद्ध सम्बन्धी) पिण्ड गाय, बकरा या विप्र को देना चाहिए अथवा उसे जल या अग्नि में डाल देना चाहिए। पुत्र की अभिलाषिणी (श्राद्धकर्त्ता) की पत्नी को मध्यम पिण्ड का भक्षण करना चाहिए। (७६)

हाथों को धोने और आचमन करने के उपरान्त अवशिष्ट भोज्य पदार्थ से अपने जातीय बान्धवों को सन्तुष्ट करना चाहिए। जातीय बान्धवों के सन्तुष्ट हो जाने के उपरान्त अपने भृत्यों को भोजन कराना चाहिए, तत्पश्चात् स्वयं पत्नियों के सहित शेष अन्न का भोजन करना चाहिए। (७७)

(श्राद्धस्थल से) उच्छिष्ट अन्न तब तक नहीं हटाना चाहिए जबतक सूर्यास्त न हो जाय। (श्राद्ध करने वाले) पति और पत्नी को उस रात्रि में ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिए। (७८)

दत्त्वा श्राद्धं तथा भुक्त्वा सेवते यस्तु मैथुनम् ।
महारौरवमासाद्य कीटयोनिं व्रजेत् पुनः ।।७९
शुचिरक्रोधनः शान्तः सत्यवादी समाहितः ।
स्वाध्यायं च तथाऽध्वानं कर्त्ता भोक्ता च वर्जयेत् ।।८०
श्राद्धं भुक्त्वा परश्राद्धं भुञ्जते ये द्विजातयः ।
महापातकिभिस्तुल्या यान्ति ते नरकान् बहून् ।।८१
एष वो विहितः सम्यक् श्राद्धकल्पः सनातनः ।
आमेन वर्त्तयेन्नित्यमुदासीनोऽथ तत्त्ववित् ।।८२
अनग्निरध्वगो वाऽपि तथैव व्यसनान्वितः ।
आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद् विधिज्ञः श्रद्धयान्वितः ।
तेनाग्नौ करणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् ।।८३
योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्यात् संयतमानसः ।
व्यपेतकल्मषो नित्यं योगिनां वर्त्तते पदम् ।।८४

श्राद्धकरने के अनन्तर कर्ता तथा श्राद्ध में भोजन करने के उपरान्त (नियन्त्रित) जो व्यक्ति मैथुन करता है वह महा रौरव नरक में जाकर पुनः कीट योनि प्राप्त करता है। (७९)

श्राद्धकर्त्ता तथा श्राद्ध में भोजन करने वाले व्यक्ति को पवित्र, अक्रोधी, शान्त, सत्यवादी एवं एकाग्रचित्त होना चाहिए। उन्हें स्वाध्याय तथा मार्गगमन नहीं करना चाहिए। (८०)

जो ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन करने के उपरान्त दूसरे श्राद्ध में भोजन करते हैं वे महापातकियों के तुल्य होते हैं। उन्हें अनेक नरकों में जाना पड़ता है। (८१)

मैंने इस प्रकार आप लोगों से सनातन श्राद्धकल्प का सम्यक् रूप से वर्णन किया। उदासीन तत्त्ववेत्ता को नित्य अपक्व अन्न से (श्राद्ध का) निर्माण करना चाहिए। (८२)

अग्नि-रहित, पथिक तथा व्यसनग्रस्त श्रद्धालु विधिज्ञ द्विज को आमश्राद्ध करना चाहिए। उसी आमान्न अर्थात् अपक्व अन्न से अग्नि में हवन एवं पिंड दान करना चाहिए। (८३)

जो शान्तचित्त मनुष्य इस विधि से नित्य श्राद्ध करता है वह निष्पाप होकर यतियों का पद प्राप्त करता है। (८४)

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद् द्विजोत्तमः ।
आराधितो भवेदीशस्तेन सम्यक् सनातनः ।।८५
अपि मूलैर्फलैर्वाऽपि प्रकुर्यान्निर्धनो द्विजः ।
तिलोदकैस्तर्पयेद् वा पितृन् स्नात्वा समाहितः ।।८६
न जीवत्पितृको दद्याद्धोमान्तं चाभिधीयते ।
येषां वापि पिता दद्यात् तेषां चैके प्रचक्षते ।।८७
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
यो यस्य म्रियते तस्मै देयं नान्यस्य तेन तु ।।८८
भोजयेद् वापि जीवन्तं यथाकामं तु भक्तितः ।
न जीवन्तमतिक्रम्य ददाति श्रूयते श्रुतिः ।।८९
द्व्यामुष्यायणिको दद्याद् वीजिक्षेत्रिकयोः समम् ।
ऋक्थयादर्द्ध समादद्यान्नियोगोत्पादितो यदि ।।९०
अनियुक्तः सुतो यश्च शुल्कतो जायते त्विह ।
प्रदद्याद् वीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततोऽन्यथा ।।९१
द्वौ पिण्डौ निर्वपेत् ताभ्यां क्षेत्रिणे वीजिने तथा ।
कीर्त्तयेदथ चैकस्मिन् वीजिनं क्षेत्रिणं ततः ।।९२
मृताहनि तु कर्त्तव्यमेकोदिष्टं विधानतः ।
अशौचे स्वे परिक्षीणे काम्यं वै कामतः पुनः ।।९३
पूर्वाह्णे चैव कर्त्तव्यं श्राद्धमभ्युदयार्थिना ।
देववत्सर्वमेव स्याद् यवैः कार्या तिलक्रिया ।।९४
दर्भाश्च ऋजवः कार्या युग्मान् वै भोजयेद् द्विजान् ।
नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत् ।।९५
मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितृणां स्यादनन्तरम् ।
ततो मातामहानां तु वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ।।९६

अतः श्रेष्ठ द्विज को सभी प्रकार के प्रयत्नों द्वारा श्राद्ध करना चाहिए। उस श्राद्ध के द्वारा सनातन ईश्वर भली-भाँति पूजित होते हैं। (८५)

निर्धन होने पर द्विज को मूल अथवा फल से श्राद्ध करना चाहिए अथवा स्नानकर एकाग्रचित्त तिलोदक से पितरों का तर्पण करना चाहिए। (८६)

जिसका पिता जीवित हो उसे श्राद्ध नहीं करना चाहिए अथवा उसे होम पर्यन्त कर्म करने का विधान है। दूसरे लोगों का कहना है कि जिनके पिता पिण्डदान करते हों उन्हें पिण्डदान करना चाहिए। (८७)

पिता, पितामह एवं प्रपितामह में जिसकी मृत्यु हुई हो उसी के निमित्त श्राद्धकर्त्ता को पिण्डदान करना चाहिए न कि अन्य किसी (जीवित व्यक्ति) के निमित्त। (८८)

अथवा पवित्र प्रयत्नशील (श्राद्धकर्त्ता) व्यक्ति (पिता पितामह एवं प्रपितामह में) जीवित पुरुष को भक्ति-पूर्वक भोजन कराये। श्रुति में कहा है कि (पितादि में) जीवित व्यक्ति का अतिक्रमण कर पिण्डदान नहीं किया जाता। (८९)

द्व्यामुष्यायणिक अर्थात् दो पिता वाला पुत्र यदि नियोग द्वारा अर्थात् सन्तानोत्पादन में पिता के असमर्थ होने पर उसकी पत्नी में अन्य व्यक्ति द्वारा उत्पन्न किया किया गया हो तो वह वीज एवं क्षेत्र के अधिकारी दोनों प्रकार के पिताओं को पिण्डदान का अधिकारी होता है। नियोग द्वारा उत्पन्न पुरुष सम्पत्ति का अर्द्ध भाग ले सकता है। (९०)

अनियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र शुल्क देकर जिसके वीर्य से उत्पन्न होता है वह उसी वीजाधिकारी को पिण्डदान करने का अधिकारी होता है। क्षेत्राधिकारी पिता के निमित्त उसे अधिकार नहीं होता। (९१)

(नियोगोत्पादित पुत्र को) क्रमशः क्षेत्राधिकारी एवं वीजाधिकारी—अर्थात् पत्नी एवं वीर्य के अधिकारी पिताओं के लिये दो पिण्डों का प्रदान करना चाहिये तथा एक-एक पिण्ड में क्रमशः एक-एक का नामोल्लेख करना चाहिए। (९२)

उनके मृत्यु के दिन विधानानुसार एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए। अपना अशौच दूर होने पर पुनः इच्छानुसार काम्य श्राद्ध किया जा सकता है। (९३)

अभ्युदय की कामना करने वाले व्यक्ति को पूर्वाह्ण में ही श्राद्ध करना चाहिए (ऐसे अवसर पर) सभी कार्य देव-कार्य के सदृश करना चाहिए और यव द्वारा तिल की क्रिया करनी चाहिए। (९४)

इसमें सीधे कुशों का प्रयोग करना चाहिए तथा दो ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। "नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्ताम्—अर्थात् नान्दीमुखनामक पितृगण तृप्त हों" इस वाक्य का उच्चारण करना चाहिए। (९५)

प्रथम मातृश्राद्ध एवं तदुपरान्त पितृश्राद्ध होना चाहिए। तत्पश्चात् मातामहादि का श्राद्ध होता है। वृद्धि श्राद्ध में इन्हीं तीन प्रकार के श्राद्धों का वर्णन हुआ है। (९६)

देवपूर्वं प्रदद्याद् वै न कुर्यादप्रदक्षिणम् ।
प्राङ्मुखो निर्वपेत् पिण्डानुपवीती समाहितः ।।९७
पूर्वं तु मातरः पूज्या भक्त्या वै सगणेश्वराः ।
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु ।।९८
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि ।
पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः ।।९९
अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत् ।
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः ।।१००

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

२३

व्यास उवाच ।
दशाहं प्राहुराशौचं सपिण्डेषु विपश्चितः ।
मृतेषु वाऽथ जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमाः ।।१
नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः ।
न कुर्याद् विहितं किञ्चित् स्वाध्यायं मनसाऽपि च ।।२
शुचीनक्रोधनान् भूम्यान् शालाग्नौ भावयेद् द्विजान् ।
शुष्कान्नेन फलैर्वापि वैतानं जुहुयात् तथा ।।३
न स्पृशेयुरिमानन्ये न च तेभ्यः समाहरेत् ।
चतुर्थे पञ्चमे वाऽह्नि संस्पर्शः कथितो बुधैः ।।४
सूतके तु सपिण्डानां संस्पर्शो न प्रदुष्यति ।
सूतकं सूतिकां चैव वर्जयित्वा नृणां पुनः ।।५
अधीयानस्तथा यज्वा वेदविच्च पिता भवेत् ।
संस्पृश्याः सर्व एवैते स्नानान्माता दशाहतः ।।६
दशाहं निर्गुणे प्रोक्तमशौचं चातिनिर्गुणे ।

देव-कार्य करने के उपरान्त पिण्डदान करना चाहिए । विना प्रदक्षिणा किये (श्राद्ध) नहीं करना चाहिए। एकाग्रचित्ततापूर्वक उपवीती एवं पूर्वाभिमुख होकर पिण्डदान करना चाहिये । (९७)

प्रथम भक्ति सहित गणेश्वर युक्त (षोडश) मातृकाओं की पूजा करनी चाहिए । विचित्र स्थण्डिल, प्रतिमा अथवा ब्राह्मणों में पुष्प, धूप, नैवेद्य एवं अलङ्कारों द्वारा (मातृकादि) पूजन करना चाहिए । मातृकाओं की पूजा करने के उपरान्त ब्राह्मण को तीनों श्राद्ध करना चाहिए । (९८,९९)

मातृकाओं की विना पूजा किये जो श्राद्ध करता है क्रोधयुक्त मातृकायें उसकी हिंसा की इच्छा करती हैं । (१००)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में बाइसवाँ अध्याय समाप्त—२२.

२३

व्यास ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! विद्वानों ने सपिण्ड (मनुष्यों के) मरने या उत्पन्न होने पर ब्राह्मणों के लिये दस दिनों का अशौच कहा है । (१)

(अशौच के समय) विशेषरूप से विहित नित्य एवं काम्य कर्म नहीं करना चाहिए । (अशौच काल में) मन से भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए । (२)

यज्ञशाला की अग्नि सम्बन्धी कार्य के निमित्त पृथ्वी पर प्रसिद्ध पवित्र एवं अक्रोधी ब्राह्मणों को नियुक्त करना चाहिए शुष्कान्न अथवा फल द्वारा यज्ञाग्नि में हवन करना चाहिए । (३)

अन्य लोगों को अशौचयुक्त व्यक्तियों का स्पर्श नहीं करना चाहिए एवं उनसे कोई वस्तु न लेनी चाहिए । विद्वानों ने चौथे अथवा पाँचवें (दिन उन अशौचयुक्त व्यक्तियों के) स्पर्श का विधान किया है । (४)

जननाशौच में सपिण्ड व्यक्तियों के स्पर्श में दोष नहीं है । किन्तु, तत्कालोत्पन्न बालक और प्रसूता का स्पर्श नहीं करना चाहिये । (५)

वेदाध्यायी, यागकर्त्ता एवं वेदज्ञ पिता तथा (अन्य जन) स्नान करने से स्पर्श योग्य हो जाते हैं । माता दस दिनों के उपरान्त (स्पर्श योग्य होती है) । (६)

निर्गुण अथवा अतिनिर्गुण (व्यक्तियों के लिये) दस दिनों के अशौच का विधान हुआ है । एक, दो अथवा

एकद्वित्रिगुणैर्युक्तं चतुस्त्र्येकदिनैः शुचिः ।।७
दशाहात् तु परं सम्यगधीयीत जुहोति च ।
चतुर्थे तस्य संस्पर्शं मनुराह प्रजापतिः ।।८
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च ।
यथेष्टाचरणस्याहुर्मरणान्तमशौचकम् ।।९
त्रिरात्रं दशरात्रं वा ब्राह्मणानामशौचकम् ।
प्राक्संस्कारात् त्रिरात्रं स्यात् तस्मादूर्ध्वं दशाहकम्।।१०
ऊनद्विवार्षिके प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते ।
त्रिरात्रेण शुचिस्त्वन्यो यदि ह्यत्यन्तनिर्गुणः ।।११
अदन्तजातमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते ।
जातदन्ते त्रिरात्रं स्याद् यदि स्यातां तु निर्गुणौ ।।१२
आदन्तजननात् सद्य आचौलादेकरात्रकम् ।
त्रिरात्रमौपनयनात् सपिण्डानामुदाहृतम् ।।१३

जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः ।
मातुश्च सूतकं तत् स्यात् पिता स्यात् स्पृश्य एव च ।।१४
सद्यः शौचं सपिण्डानां कर्त्तव्यं सोदरस्य च ।
ऊर्ध्वं दशाहादेकाहं सोदरो यदि निर्गुणः ।।१५
अथोर्ध्वं दन्तजननात् सपिण्डानामशौचकम् ।
एकरात्रं निर्गुणानां चौलादूर्ध्वं त्रिरात्रकम् ।।१६
अदन्तजातमरणं संभवेद् यदि सत्तमाः ।
एकरात्रं सपिण्डानां यदि तेऽत्यन्तनिर्गुणाः ।।१७
व्रतादेशात् सपिण्डानामर्वाक् स्नानं विधीयते ।
सर्वेषामेव गुणिनामूर्ध्वं तु विषमं पुनः ।।१८
अर्वाक् षण्मासतः स्त्रीणां यदि स्याद् गर्भसंस्रवः ।
तदा माससमैस्तासामशौचं दिवसैः स्मृतम् ।।१९
तत ऊर्ध्वं तु पतने स्त्रीणां द्वादशरात्रिकम् ।

तीन गुणों से युक्त (व्यक्तियों के लिये) चार, तीन या एक दिन में शुचि हो जाने का विधान है। (७)

दस दिन व्यतीत हो जाने पर भलीभाँति अध्ययन एवं हवन करना चाहिए। प्रजापति मनु ने चतुर्थ दिन उस (अशौचयुक्त पुरुष) के स्पर्श का विधान किया है। (८)

क्रियाहीन, मूर्ख, महारोगी एवं यथेष्टाचारी व्यक्तियों का अशौच मरण-पर्यन्त कहा गया है। (९)

ब्राह्मणों का अशौच तीन रात्रि अथवा दस रात्रि का होता है। संस्कार होने के पूर्व (मृत्यु होने पर) तीन रात्रि का तथा तदुपरान्त दस रात्रि का अशौच होता है। (१०)

दो वर्ष से कम अवस्था (के बालक की) मृत्यु होने पर माता-पिता को उपर्युक्त तीन रात्रि का ही अशौच होता है। अत्यन्त निर्गुण (सपिण्ड की मृत्यु होने पर) तीन रात्रि का अशौच होता है। (११)

बिना दाँत वाले शिशु का मरण होने पर मातापिता को एक दिन का अशौच होता है। यदि मातापिता निर्गुण हों तो दाँत उत्पन्न हुए शिशु की मृत्यु होने पर उन्हें तीन रात्रि का अशौच होता है। (१२)

दाँत उत्पन्न होने के पूर्व तक बालक की मृत्यु होने पर सद्यः शौच, चूड़ाकरण संस्कार के पूर्व तक एकरात्रि का एवं उपनयन के पूर्व तक सपिण्ड के मरने पर तीन रात्रि का अशौच कहा गया है। (१३)

उत्पन्न होते ही बालक की मृत्यु होने पर पिता और माता को अशौच होता है किन्तु पिता स्पर्श योग्य रहता है। (१४)

सपिण्डों एवं सहोदर भाई की (जन्म से) दस दिनों के भीतर मृत्यु होने पर सद्यः शौच होता है। यदि सहोदर निर्गुण हो तो दस दिन के पश्चात् (मृत्यु होने पर) एक दिन का अशौच होता है। (१५)

तदुपरान्त दाँत निकलने तक निर्गुण सपिण्डों का एक रात्रि का अशौच होता है। चौलकर्म के उपरान्त (सपिण्डों के मरने पर) तीन रात्रि का अशौच होता है। (१६)

हे मुनिश्रेष्ठो! यदि सपिण्ड अत्यन्त निर्गुण हों तो बिना दाँत निकले उनकी मृत्यु होने पर एक रात्रि का अशौच होता है। (१७)

सपिण्डों की उपनयन के पूर्व (मृत्यु होने पर) सभी गुणवानों के लिए तत्काल स्नान का विधान है। किन्तु उपनयन के उपरान्त (मृत्यु होने पर) भिन्न स्थिति होती है। (१८)

छः महीने के पूर्व स्त्रियों का गर्भस्राव होने पर जितने महीने का (गर्भ होता है) उसी के तुल्य दिनों तक का अशौच कहा गया है। (१९)

तदुपरान्त गर्भस्राव होने पर स्त्रियों के लिए बारह

सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च वा ततः ।।२०
गर्भच्युतावहोरात्रं सपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे ।
यथेष्टाचरणे ज्ञातौ त्रिरात्रमिति निश्चयः ।।२१
यदि स्यात् सूतके सूतिर्मरणे वा मृतिर्भवेत् ।
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे त्रिरात्रकम् ।।२२
मरणोत्पत्तियोगे तु मरणाच्छुद्धिरिष्यते ।
अघवृद्धिमदाशौचमूर्ध्वं चेत् तेन शुध्यति ।।२३
अथ चेत् पञ्चमीरात्रिमतीत्य परतो भवेत् ।
अघवृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुध्यति ।।२४
देशान्तरगतं श्रुत्वा सूतकं शावमेव तु ।
तावदप्रयतो मर्त्यो यावच्छेषः समाप्यते ।।२५
अतीते सूतके प्रोक्तं सपिण्डानां त्रिरात्रकम् ।
तथैव मरणे स्नानमूर्ध्वं संवत्सराद् यदि ।।२६
वेदान्तविच्चाधीयानो योऽग्निमान् वृत्तिकर्षितः ।
सद्यः शौचं भवेत् तस्य सर्वावस्थासु सर्वदा ।।२७
स्त्रीणामसंस्कृतानां तु प्रदानात् पूर्वतः सदा ।
सपिण्डानां त्रिरात्रं स्यात् संस्कारे भर्त्तुरेव हि ।।२८
अहस्त्वदत्तकन्यानामशौचं मरणे स्मृतम् ।
ऊनद्विवर्षान्मरणे सद्यः शौचमुदाहृतम् ।।२९
आदन्तात् सोदरे सद्य आचौलादेकरात्रकम् ।
आप्रदानात् त्रिरात्रं स्याद् दशरात्रमतः परम् ।।३०
मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम् ।
एकोदकानां मरणे सूतके चैतदेव हि ।।३१

रात्रियों का तथा सपिण्डों का सद्यः शौच का विधान है। (२०)

गर्भस्राव तथा अत्यन्त निर्गुण सपिण्ड की मृत्यु में एक अहोरात्र का एवं यथेष्टाचारी ज्ञाति बान्धव के (गर्भस्राव में) त्रिरात्र अशौच निश्चय हुआ है। (२१)

यदि जननाशौच के मध्य अन्य जननाशौच हो जाय अथवा मरणाशौच के मध्य अन्य मरणाशौच हो जाय तो (प्रथम अशौच के) जितने दिन शेष होते हैं उतने ही दिनों में शुद्धि हो जाती है। (किन्तु, पूर्व के अशौच में) एक दिन शेष रहने पर (दूसरा अशौच होने से) त्रिरात्राशौच होता है। (२२)

मरणोत्पत्ति का योग होने से अर्थात् मरणाशौच में जननाशौच होने पर अथवा जननाशौच में मरणाशौच होने पर मरणाशौच द्वारा ही दोनों अशौच की समाप्ति होती है। यदि पूर्व का अशौच वृद्धिमद् अशौच हो तो पूर्व के अशौच की शुद्धि से ही दोनों अशौचों की शुद्धि हो जाती है। (२३)

यदि पाँचवीं रात्रि के व्यतीत हो जाने पर वृद्धिमद् अशौच हो तो दूसरे अशौच की शुद्धि पूर्व के ही अशौच से होती है। (२४)

देशान्तर में रहते हुए जननाशौच या मरणाशौच सम्बन्धी समाचार सुनने के उपरान्त उतने समय तक संयम करना चाहिए जबतक शेष दिन समाप्त न हो जाय। (२५)

(वर्ष के अंतर्गत) बीते हुए मरणाशौच का समाचार सुनने पर सपिण्डों के लिये त्रिरात्र का अशौच होता है। यदि एक वर्ष के पश्चात् समाचार प्राप्त हो तो मरणाशौच में स्नान करना चाहिए। (२६)

वेदार्थवेत्ता, अध्ययनकर्त्ता, अग्निहोत्री एवं वृत्तिहीन व्यक्तियों के लिये सर्वदा सभी प्रकार के अशौच में सद्यः-शौच होता है। (२७)

असंस्कृत अर्थात् अविवाहित स्त्रियों की प्रदान के पूर्व मृत्यु होने पर सपिण्डों के निमित्त सदा त्रिरात्राशौच होता है। विवाह-संस्कार के उपरान्त स्त्री की मृत्यु होने पर केवल पति अर्थात् पति एवं पतिकुल के लोगों को ही अशौच होता है। (२८)

वाग्दान के पूर्व स्त्रियों की मृत्यु होने पर एक दिन का अशौच होता है। दो वर्ष से कम अवस्था की कन्या की मृत्यु होने पर सद्यः शौच कहा गया है। (२९)

दन्तोत्पत्ति के पूर्व कन्या की मृत्यु होने पर भाई को सद्यः शौच एवं चूड़ाकरण के काल तक कन्या की मृत्यु होने पर एक रात्रि का अशौच होता है। कन्यादान के समय तक स्त्री की मृत्यु होने पर त्रिरात्राशौच होता है एवं विवाहोपरान्त (पति एवं पतिकुल को) दस दिनों का अशौच होता है। (३०)

मातामह के मरने पर (दौहित्र को) त्रिरात्राशौच होता है। समानोदकों के मरण या जन्म में भी यह त्रिरात्र अशौच होता है। (३१)

पक्षिणी योनिसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च ।
एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणि ॥३२
प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद् विषये स्थितिः ।
गृहे मृतासु दत्तासु कन्यकासु त्र्यहं पितुः ॥३३
परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च ।
त्रिरात्रं स्यात् तथाचार्ये स्वभार्यास्वन्यगासु च ॥३४
आचार्यपुत्रे पत्न्यां च अहोरात्रमुदाहृतम् ।
एकाहं स्यादुपाध्याये स्वग्रामे श्रोत्रियेऽपि च ॥३५
त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च ।
एकाहं चास्ववर्ये स्यादेकरात्रं तदिष्यते ॥३६
त्रिरात्रं श्वश्रूमरणे श्वशुरे वै तदेव हि ।
सद्यः शौचं समुद्दिष्टं सगोत्रे संस्थिते सति ॥३७
शुद्ध्येद् विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥३८
क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य बान्धवाः ।
तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥३९
राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु ।
स्वमेव शौचं कुर्यातां विशुद्ध्यर्थमसंशयम् ॥४०
सर्वे तूत्तरवर्णानामशौचं कुर्युरादृताः ।
तद्वर्णविधिदृष्टेन स्वं तु शौचं स्वयोनिषु ॥४१
षड्रात्रं वा त्रिरात्रं स्यादेकरात्रं क्रमेण हि ।
वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमेव तु ॥४२
अर्द्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुंगवाः ।
शूद्रक्षत्रियविप्राणां वैश्येष्वाशौचमिष्यते ॥४३

योनिसम्बन्ध वाले—अर्थात् भान्जा इत्यादि सम्बन्ध वाले व्यक्तियों एवं बान्धवों की मृत्यु होने पर पक्षिणी अर्थात् एक रात्रि एवं उसके पूर्व तथा पश्चात् का दिन अथवा दो दिनों की रात्रि एवं उसके मध्य के दिन तक का—अशौच होता है। गुरु एवं सब्रह्मचारी—अर्थात् एक ही गुरु के शिष्य की मृत्यु होने पर एकरात्राशौच होता है। (३२)

मनुष्य जिस देश में निवास करता हो उसके राजा की मृत्यु होने पर सज्योति (अर्थात् दिन का प्रकाश रहने तक का) अशौच होता है। विवाहित कन्या की पिता के गृह में मृत्यु होने पर पिता को त्रिरात्राशौच होता है। (३३)

पूर्व में अन्य की भार्या रहने वाली स्त्री, उसके पुत्र तथा कृतक अर्थात् दत्तक पुत्र का मरण होने पर भी (त्रिरात्राशौच) होता है। इसी प्रकार एवं परपुरुषगामिनी अपनी भार्या के मरण में भी त्रिरात्राशौच होता है। (३४)

आचार्य के पुत्र एवं पत्नी की मृत्यु होने पर अहोरात्र का अशौच होता है। उपाध्याय एवं अपने ग्राम में श्रोत्रिय की मृत्यु होने पर भी एक दिन का अशौच होता है। (३५)

अपने गृह में रहने वाले असपिण्ड की मृत्यु होने पर त्रिरात्राशौच होता है एवं अपने गृह में रहने वाले अन्य किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर एक दिन का अशौच होता है (?)। (३६)

सास एवं ससुर के मरने पर त्रिरात्राशौच होता है। (अपने गृह में) स्थित अपने गोत्र के व्यक्ति की मृत्यु होने पर सद्यःशौच होता है। (३७)

ब्राह्मण को शुद्धि दस दिनों में एवं क्षत्रिय बारह दिनों में शुद्ध होता है। वैश्य पन्द्रह दिनों में एवं शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है। (३८)

क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न बान्धवों की मृत्यु होने पर ब्राह्मण की शुद्धि दस दिनों में होती है। (३९)

क्षत्रिय और वैश्य को भी हीन वर्ण की स्त्रियों में (उत्पन्न बान्धवों की मृत्यु होने पर) निस्सन्देह विशुद्धि के हेतु अपने वर्ण के हेतु विहित शौच की विधि का पालन करना चाहिए। (४०)

सभी वर्ण के व्यक्तियों को अपने-अपने वर्ण की अपेक्षा अपकृष्ट वर्णीय सपिण्ड का जन्म या मरण होने पर तत्तद् वर्ण के लिये निर्दिष्ट विधि के अनुसार आदरपूर्वक अशौच का पालन करना चाहिए। किन्तु, अपने वर्ण की स्त्री से उत्पन्न बन्धु की मृत्यु होने पर अपने ही वर्ण के अनुसार शौच का पालन करना चाहिए। (४१)

शूद्रसपिण्ड की मृत्यु या जन्म होने पर वैश्य, क्षत्रिय एवं ब्राह्मण को क्रमशः छः रात्रि, तीन रात्रि एवं एक रात्रि का अशौच होता है। (४२)

हे द्विजश्रेष्ठो ! वैश्यसपिण्ड की जन्म या मरण होने पर शूद्र, क्षत्रिय एवं ब्राह्मण को क्रमशः अर्द्धमास, षड्रात्र एवं त्रिरात्र का अशौच होता है। (४३)

षड्रात्रं वै दशाहं च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः ।
अशौचं क्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेण द्विजपुंगवाः ।।४४
शूद्रविट्क्षत्रियाणां तु ब्राह्मणे संस्थिते सति ।
दशरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलोद्भवः ।।४५
असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुध्यति ।।४६
यद्यन्नमत्ति तेषां तु त्रिरात्रेण ततः शुचिः ।
अनदन्नन्नमह्नैव न च तस्मिन् गृहे वसेत् ।।४७
सोदकेष्वेतदेव स्यान्मातुराप्तेषु बन्धुषु ।
दशाहेन शवस्पर्शे सपिण्डश्चैव शुध्यति ।।४८
यदि निर्हरति प्रेतं प्रलोभाक्रान्तमानसः ।
दशाहेन द्विजः शुध्येद् द्वादशाहेन भूमिपः ।।४९
अर्द्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति ।
षड्रात्रेणाथवा सर्वे त्रिरात्रेणाथवा पुनः ।।५०
अनाथं चैव निर्हृत्य ब्राह्मणं धनवर्जितम् ।
स्नात्वा संप्राश्य तु घृतं शुध्यन्ति ब्राह्मणादयः ।।५१
अवरश्चेद् वरं वर्णमवरं वा वरो यदि ।
अशौचे संस्पृशेत् स्नेहात् तदाशौचेन शुध्यति ।।५२
प्रेतीभूतं द्विजं विप्रो योऽनुगच्छेत कामतः ।
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति ।।५३
एकाहात् क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये स्याच्च द्व्यहेन तु ।
शूद्रे दिनत्रयं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः ।।५४
अनस्थिसंचिते शूद्रे रौति चेद् ब्राह्मणः स्वकैः ।
त्रिरात्रं स्यात् तथाशौचमेकाहं त्वन्यथा स्मृतम् ।।५५
अस्थिसंचयनादर्वागेकाहं क्षत्रवैश्ययोः ।
अन्यथा चैव सज्योतिर्ब्राह्मणे स्नानमेव तु ।।५६

हे द्विजपुङ्गवो ! क्षत्रिय सपिण्ड के जन्म या मरण में क्रमशः ब्राह्मण को छः दिन का एवं वैश्य और शूद्र को दस दिनों का अशौच होता है । (४४)

इसी प्रकार ब्राह्मण (सपिण्ड) का (जन्म या मरण होने पर) शूद्र, वैश्य एवं क्षत्रिय की शुद्धि दस रात्रि में होती है । ऐसा कमलोद्भव अर्थात् ब्रह्मा ने कहा है । (४५)

असपिण्ड द्विजकी मृत्यु होने पर बन्धुवत् उसके प्रेत-कर्म में सम्मिलित होकर भोजन एवं निवास करने वाला ब्राह्मण दस रात्रि में शुद्ध होता है । (४६)

(मृत व्यक्ति का) अन्न खाने वालों की शुद्धि तीन रात्रि में होती है । अन्न न खाने वाले व्यक्ति की उसी दिन शुद्धि हो जाती है । किन्तु, (मृतक के) गृह में नहीं रहना चाहिए । (४७)

समानोदक एवं माता के श्रेष्ठ बान्धवों के मरण में शववहन करने वाला सपिण्ड व्यक्ति दस दिनों में शुद्ध होता है । (४८)

यदि कोई व्यक्ति लोभवश शव को ढ़ोता है तो ब्राह्मण दस दिनों में, क्षत्रिय बारह दिनों में, वैश्य अर्द्धमास में एवं शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है । अथवा सभी वर्ण के व्यक्ति छः रात्रि या तीन रात्रि में ही शुद्ध हो जाते हैं । (४९, ५०)

धन-रहित अनाथ ब्राह्मण के शव का वहन इत्यादि कर्म करने वाले ब्राह्मणादि स्नानोपरान्त घृत का प्राशन करके शुद्ध हो जाते हैं । (५१)

यदि स्नेहवश हीनवर्ण के व्यक्ति उच्च वर्ण के व्यक्ति का एवं उच्च वर्ण के व्यक्ति हीन वर्ण के शव का स्पर्श करते हैं तो वे मृत व्यक्ति के वर्ण के हेतु निर्धारित शौच से शुद्ध होते हैं । (५२)

यदि अपनी इच्छा से ब्राह्मण मृतक द्विज का अनुगमन करता है तो वस्त्र-सहित स्नान करने के उपरान्त अग्नि का स्पर्श एवं घृतप्राशन करने से शुद्ध होता है । (५३)

(द्विज के शव का अनुगमन करने पर) क्षत्रिय की शुद्धि एक दिन में, वैश्य की दो दिन में एवं शूद्र की शुद्धि तीन दिनों में कही गयी है । (किन्तु, इसके अतिरिक्त सभी को) सौ बार प्राणायाम करना चाहिए । (५४)

यदि ब्राह्मण शूद्र का अस्थिसञ्चय होने के पूर्व (उसके घर जाकर) स्ववर्गीयों के साथ विलाप करता है तो उसे तीन रात्रि का अशौच होता है । अन्यत्र (विलाप करने से) एक रात्रि का अशौच होता है । (५५)

अस्थिसञ्चय के पूर्व (शूद्र के घर विलाप करने वाले) क्षत्रिय एवं वैश्य को एक दिन का एवं अन्य अवस्था में सज्योति अर्थात् दिन का प्रकाश रहने तक का अशौच होता है । ब्राह्मण के अस्थिसञ्चय के पूर्व विलाप करने से क्षत्रिय एवं वैश्य का स्नान मात्र से शुद्धि होती है । (५६,५७)

अनस्थिसंचिते विप्रे ब्राह्मणो रौति चेत् तदा ।
स्नानेनैव भवेच्छुद्धिः सचैलेन न संशयः ।।५७
यस्तैः सहाशनं कुर्याच्छयनादीनि चैव हि ।
बान्धवो वाऽपरो वाऽपि स दशाहेन शुध्यति ।।५८
यस्तेषामन्नमश्नाति सकृदेवापि कामतः ।
तदाशौचे निवृत्तेऽसौ स्नानं कृत्वा विशुध्यति ।।५९
यावत्तदन्नमश्नाति दुर्भिक्षोपहतो नरः ।
तावन्त्यहान्यशौचं स्यात् प्रायश्चित्तं ततश्चरेत् ।।६०
दाहाद्यशौचं कर्त्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणाम् ।
सपिण्डानां तु मरणे मरणादितरेषु च ।।६१
सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते ।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ।।६२
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
लेपभाजस्त्रयश्चात्मा सापिण्डयं साप्तपौरुषम् ।।६३
अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्डयं साप्तपौरुषम् ।
ऊढानां भर्तृसापिण्डयं प्राह देवः पितामहः ।।६४
ये चैकजाता बहवो भिन्नयोनय एव च ।
भिन्नवर्णास्तु सापिण्डयं भवेत् तेषां त्रिपूरुषम् ।।६५
कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च ।
दातारो नियमी चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ ।।६६
सत्रिणो व्रतिनस्तावत् सद्यःशौचा उदाहृताः ।
राजा चैवाभिषिक्तश्च प्राणसत्रिण एव च ।।६७
यज्ञे विवाहकाले च देवयागे तथैव च ।
सद्यःशौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे ।।६८
डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजैः ।
सद्यःशौचं समाख्यातं सर्पादिमरणे तथा ।।६९
अग्नौ मरुप्रपतने वीराध्वन्यप्यनाशके ।
ब्राह्मणार्थे च संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ।।७०
नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
नाशौचं कीर्त्यते सद्भिः पतिते च तथा मृते ।।७१

अशौचयुक्त व्यक्तियों के साथ भोजन एवं शयनादि करनेवाला बान्धव अथवा अन्य व्यक्ति दस दिनों में शुद्ध होता है। (५८)

इच्छापूर्वक उन (अशौची व्यक्तियों) के साथ एक वार भी भोजन करने वाला अशौच दूर होने पर स्नान कर शुद्ध हो जाता है। (५९)

दुर्भिक्ष-पीड़ित मनुष्य जब तक अशौच-ग्रस्त व्यक्ति का अन्न खाता है उतने दिनों तक का अशौच होता है। तदुपरान्त प्रायश्चित्त करना चाहिए। (६०)

अग्निहोत्री द्विजों का दाहादि अशौच करना चाहिए। सपिण्ड के मरण एवं जन्म में भी अशौच का पालन करना चाहिए। (६१)

सातवीं पीढ़ी में पुरुष की सपिण्डता समाप्त हो जाती है। (स्वकीय वंश के) प्रवर्त्तक पुरुष का नाम ज्ञात न होने पर समानोदकता नष्ट हो जाती है। (६२)

पिता, पितामह एवं प्रपितामह ये तीनों लेपभागी एवं आत्मस्वरूप होते हैं। सात पुरुषों तक सापिण्डय होता है। (६३)

प्रजापति देव ने कहा है कि अदत्ता कन्या की (उसके पिता के) सात पुरुषों के साथ सपिण्डता होती है एवं (प्रदत्ता कन्या का) सापिण्डय पतिकुल के पुरुषों में ही होती है। (६४)

एक पुरुष द्वारा भिन्न वर्ण की स्त्रियों से उत्पन्न पुत्रों की सपिण्डता तीन पीढ़ी तक होती है। (६५)

बढ़ई, शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, दाता, व्रतधारी, ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मचारी, यज्ञकर्ता एवं व्रतानुष्ठानकर्त्ता व्यक्तियों को सद्यः शौच कहा गया है। (इसी प्रकार) अभिषिक्त राजा एवं अन्नदाता को भी सद्यः शौच होता है। (६६, ६७)

यज्ञारम्भ, विवाहारम्भ, देवपूजन का आरम्भ हो जाने पर तथा दुर्भिक्ष एवं उपद्रव की स्थिति में भी सद्यः शौच होता है। (६८)

क्षत्रियों या ब्राह्मणों के साथ विना शस्त्र की लड़ाई में मरनेवालों तथा विद्युत् एवं सर्पादि के कारण मरनेवालों के निमित्त सद्यः शौच होता है। (६९)

अग्नि में गिरकर अथवा मरुभूमि में मरने पर तथा दुर्गम मार्ग में गमन एवं आकस्मिक मृत्यु होने पर, ब्राह्मण के निमित्त मृत्यु होने पर तथा संन्यासी होने के उपरान्त मृत्यु होने पर सद्यः शौच का विधान है। (७०)

विद्वानों ने नैष्ठिक अर्थात् जीवन भर ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करने वाले, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ धर्मावलम्वी, यति एवं ब्रह्मचारी की मृत्यु होने पर तथा पतितावस्था में मृत्यु होने पर अशौच नहीं कहा है। (७१)

पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसंचयः ।
न चाश्रुपातपिण्डौ वा कार्यं श्राद्धादि कंक्वचित् ।।७२
व्यापादयेत् तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः ।
विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम् ।।७३
अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः ।
तस्याशौचं विधातव्यं कार्यं चैवोदकादिकम् ।।७४
जाते कुमारे तदहः कामं कुर्यात् प्रतिग्रहम् ।
हिरण्यधान्यगोवासस्तिलान्नगुडसर्पिषाम् ।।७५
फलानि पुष्पं शाकं च लवणं काष्ठमेव च ।
तोयं दधि घृतं तैलमौषधं क्षीरमेव च ।
आशौचिनां गृहाद् ग्राह्यं शुष्कान्नं चैव नित्यशः ।।७६
आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ।
अनाहिताग्निर्गृह्येण लौकिकेनेतरो जनः ।।७७
देहाभावात् पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृतिं पुनः ।

पतित मनुष्यों का दाह, अन्त्येष्टि, अस्थिसञ्चय, अश्रुपात, पिण्डदान एवं श्राद्धादिक कार्य कभी नहीं करना चाहिए। (७२)

जो व्यक्ति अग्नि एवं विषादि के द्वारा स्वयं अपनी हत्या करता है उसके निमित्त अशौच, अग्नि एवं जलादि दान का विधान नहीं है। (७३)

यदि किसी प्रमादवश कोई अग्नि एवं विषादि द्वारा मर जाय तो उसके निमित्त अशौच एवं जलदानादि की क्रिया नहीं करनी चाहिए। (७४)

पुत्र का जन्म होने पर उस दिन हिरण्य, धान्य, गाय, वस्त्र, तिल, अन्न, गुड़ एवं घृत इन वस्तुओं का इच्छापूर्वक प्रतिग्रह करना चाहिए। (७५)

अशौची व्यक्ति के गृह से नित्य फल, पुष्प, शाक, लवण, काष्ठ, तक्र, दधि, घृत, तैल, औषध, दुग्ध एवं शुष्कान्न ग्रहण किया जा सकता है। (७६)

आहिताग्नि श्रोत्रिय का दाह संस्कार विधिवत् दक्षिणाग्नि इत्यादि तीनों अग्नियों से करना चाहिए। अनाहिताग्नि का दाह गृह्याग्नि से करना चाहिए। एवं अन्य मनुष्यों का दाह संस्कार लौकिक अग्नि से करना चाहिए। (७७)

(मृतक के) देह का अभाव होने पर पलाश पत्र से

दाहः कार्यो यथान्यायं सपिण्डैः श्रद्धयान्वितैः ।।७८
सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः ।
दशाहं बान्धवैः सार्धं सर्वे चैवार्द्रवाससः ।।७९
पिण्डं प्रतिदिनं दद्युः सायं प्रातर्यथाविधि ।
प्रेताय च गृहद्वारि चतुर्थे भोजयेद् द्विजान् ।।८०
द्वितीयेऽहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म सबान्धवैः ।
चतुर्थे बान्धवैः सर्वैरस्थ्नां संचयनं भवेत् ।
पूर्वं तु भोजयेद् विप्रानयुग्मान् श्रद्धया शुचीन् ।।८१
पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि ।
अयुग्मान् भोजयेद् विप्रान् नवश्राद्धं तु तद्विदुः ।।८२
एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः ।
द्वादशे वाऽथ कर्त्तव्यमनिन्द्ये त्वथवाऽहनि ।
एकं पवित्रमेकोऽर्घः पिण्डपात्रं तथैव च ।।८३
एवं मृताह्नि कर्त्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् ।
सपिण्डीकरणं प्रोक्तं पूर्णे संवत्सरे पुनः ।।८४

उसकी प्रतिकृति बना कर सपिण्ड जनों को श्रद्धापूर्वक विधि के अनुसार दाह संस्कार करना चाहिए। (७८)

सभी बान्धवों को संयमपूर्वक दस दिनों तक (मृतक के) नाम एवं गोत्र का उच्चारणकर एक बार जलदान एवं श्राद्ध करना चाहिए। (७९)

प्रेत के निमित्त विधिपूर्वक सायं एवं प्रातःकाल प्रतिदिन पिण्डदान करना चाहिए एवं चतुर्थ दिन गृह के द्वार पर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। (८०)

दूसरे दिन सभी बान्धवों सहित क्षौरकर्म करना चाहिए एवं चतुर्थ दिन अस्थिसञ्चय करना चाहिए। इससे पूर्व श्रद्धापूर्वक दो से अधिक पूर्वाभिमुख पवित्र ब्राह्मणों को खिलाना चाहिए। (८१)

पाँचवें, नौवें एवं ग्यारहवें दिन अयुग्म अर्थात् दो से अधिक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इसे नवश्राद्ध कहा जाता है। (८२)

ग्यारहवें, बारहवें अथवा अनिन्दित दिन प्रेत के उद्देश्य से श्राद्ध करना चाहिये। इस श्राद्ध में एक पवित्र, एक अर्घ्य एवं एक पिण्ड देना चाहिये। (८३)

एक वर्ष तक प्रत्येक महीने में मरने के दिन इसी प्रकार (श्राद्ध) करना चाहिये। वर्ष पूर्ण होने पर सपिण्डीकरण का विधान किया गया है। (८४)

कुर्याच्चत्वारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्तमाः ।
प्रेतार्थं पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत् ततः ।।८५
ये समाना इति द्वाभ्यां पिण्डानप्येवमेव हि ।
सपिण्डीकरणं श्राद्धं देवपूर्वं विधीयते ।।८६
पितॄनावाहयेत् तत्र पुनः प्रेतं च निर्दिशेत् ।
ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषां स्यात् पृथक्क्रियाः ।
यस्तु कुर्यात् पृथक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते ।।८७
मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डमब्दं समाचरेत् ।
दद्याच्चान्नं सोदकुम्भं प्रत्यहं प्रेतधर्मतः ।।८८
पार्वणेन विधानेन सांवत्सरिकमिष्यते ।
प्रतिसंवत्सरं कार्यं विधिरेष सनातनः ।।८९
मातापित्रोः सुतैः कार्यं पिण्डदानादिकं च यत् ।
पत्नी कुर्यात् सुताभावे पत्न्यभावे सहोदरः ।।९०
अनेनैव विधानेन जीवन् वा श्राद्धमाचरेत् ।
कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्तः समाहितः ।।९१
एष वः कथितः सम्यग् गृहस्थानां क्रियाविधिः ।
स्त्रीणां तु भर्त्तृशुश्रूषा धर्मो नान्य इहेष्यते ।।९२
स्वधर्मपरमो नित्यमीश्वरार्पितमानसः ।
प्राप्नोति तत् परं स्थानं यदुक्तं वेदवादिभिः ।।९३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

हे द्विजोत्तमो ! प्रेतादि—अर्थात् प्रेत, पितामह, प्रपितामह एवं वृद्ध प्रपितामह के उद्देश्य से चार अर्घ्यपात्र वनाना चाहिए। तदुपरान्त पितृपात्रों में प्रेतपात्र का अर्घ डालना चाहिये । इसी प्रकार— (८५)

"ये समानाः" इन दो मन्त्रों का उच्चारण कर पितामहादि के पिण्डों में प्रेतपिण्ड को मिश्रित करना चाहिए। देवश्राद्ध करने के उपरान्त सपिण्डीकरण श्राद्ध करना चाहिए। (८६)

तदनन्तर पितरों का आवाहन कर प्रेत का आवाहन करना चाहिए। जिन मृतकों का सपिण्डीकरण हो चुका है उनकी श्राद्ध क्रिया पृथक् नहीं होती। जो (सपिण्डीकृत प्रेत का) पृथक् पिण्डदान करता है वह पितृघाती होता है। (८७)

पिता के मर जाने पर वर्षपर्यन्त पिण्डदान करना चाहिए एवं प्रतिदिन प्रेतधर्मानुसार जल युक्त घड़े एवं अन्न का दान करना चाहिए। (८८)

प्रतिसम्वत्सर पार्वण-विधान के अनुसार साम्वत्सरिक श्राद्ध करना चाहिए। यह सनातन विधि है। (८९)

पुत्रों को माता एवं पिता का पिण्डदानादिकार्य करना चाहिए। पुत्र का अभाव होने पर पत्नी को एवं पत्नी के अभाव में सहोदर भाई को (पिण्डदानादि) कार्य करना चाहिए। (९०)

मनुष्य को एकाग्रचित्त से श्रद्धापूर्वक सभी दानादि कार्य करने के उपरान्त इसी विधान के अनुसार जीवित अवस्था में श्राद्ध करना चाहिए। (९१)

मैंने आपलोगों से भलीभाँति गृहस्थों की यह क्रियाविधि कही। स्त्रियों का धर्म पतिसेवा है। उनका अन्य कोई धर्म नहीं कहा गया है। (९२)

अपने धर्म में नित्य तत्पर रहने वाले ईश्वरार्पितचित्त मनुष्य वेदवादियों से कहे श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करते हैं। (९३)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में तेइसवाँ अध्याय समाप्त—२३.

२४

व्यास उवाच ।
अग्निहोत्रं तु जुहुयादाद्यन्तेऽहर्निशोः सदा ।
दर्शेन चैव पक्षान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥१
शस्यान्ते नवशस्येष्टया तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ।
पशुना त्वयनस्यान्ते समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥२
नानिष्ट्वा नवशस्येष्टया पशुना वाऽग्निमान् द्विजः ।
नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥३
नवेनान्नेन चानिष्ट्वा पशुहव्येन चाग्नयः ।
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगृद्धिनः ॥४
सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात् पर्वसु नित्यशः ।
पितृंश्चैवाष्टकास्वर्च्चन् नित्यमन्वष्टकासु च ॥५
एष धर्मः परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते ।
त्रयाणामिह वर्णानां गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥६
नास्तिक्यादथवालस्याद् योऽग्नीन् नाधातुमिच्छति ।
यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान् वहून् ॥७
तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ।
कुम्भीपाकं वैतरणीमसिपत्रवनं तथा ॥८
अन्यांश्च नरकान् घोरान् संप्राप्यान्ते सुदुर्मतिः ।
अन्त्यजानां कुले विप्राः शूद्रयोनौ च जायते ॥९
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः ।
आधायाग्निं विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम् ॥१०
अग्निहोत्रात् परो धर्मो द्विजानां नेह विद्यते ।
तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम् ॥११
यश्चाधायाग्निमालस्यान्न यष्टुं देवमिच्छति ।

२४

व्यास ने कहा—सायं एवं प्रातःकाल सदैव अग्निहोत्र होम करना चाहिए। पक्ष के अन्त में अमावस्या और पूर्णमासी को (हवन करना चाहिए)। (१)

द्विज को अनाज कट जाने पर नवशस्येष्टि एवं ऋतु का अन्त होने पर यज्ञ, अयन के अन्त अर्थात् छः २ मास पर पशुयाग एवं वर्ष के अन्त में सौमिक (सोमरस संबधी) यज्ञ करना चाहिए। (२)

दीर्घायु के अभिलाषी साग्निक द्विज को नवशस्येष्टि या विना पशुयाग किये नया अन्न या मांस नहीं खाना चाहिए। (३)

नवीन अन्न एवं पशु द्वारा अग्नि में हवन किये विना नवान्न या मांस खाने का इच्छुक व्यक्ति अपने प्राणों को ही खाना चाहता है। (४)

प्रति पर्वों में नियमपूर्वक सावित्री होम एवं शान्ति अष्टकाओं, पितृतर्पण वाले तीन महीने की अष्टमी की तिथियों एवं पौष्य, माघ और फाल्गुन के कृष्णपक्ष की नवमी की तिथियों में नियमपूर्वक पितरों का अर्चन करना चाहिए। (५)

गृहस्थाश्रमवासी तीनों वर्णों का यह श्रेष्ठ धर्म है। इससे भिन्न (धर्मो) को अपधर्म कहते हैं। (६)

नास्तिकता अथवा आलस्य के कारण जो अग्नि का आधान एवं यज्ञ नहीं करना चाहता वह अनेक नरकों में जाता है। (७)

हे विप्रो ! अग्न्याधानादि कृत्य न करने वाला दुर्मति तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुम्भीपाक, वैतरणी, असिपत्रवन एवं अन्य घोर नरकों में जाता है तथा अन्त्यजों के कुल एवं शूद्रयोनि में जन्म लेता है। (८, ९)

अतएव विशेषरूप से ब्राह्मणों को सभी प्रकार के प्रयत्न द्वारा अग्नि का आधान कर शुद्ध चित्त से परमेश्वर की आराधना करनी चाहिए। (१०)

द्विजों के लिए अग्निहोत्र से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है। अतएव अग्निहोत्र द्वारा शाश्वत (पुरुष) की नित्य आराधना करनी चाहिए। (११)

जो अग्नि का आधान कर आलस्यवश यज्ञ द्वारा देव

सोऽसौ मूढो न संभाष्यः किं पुनर्नास्तिको जनः ॥१२
यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ।
अधिकं चापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥१३
एष वै सर्वयज्ञानां सोमः प्रथम इष्यते ।
सोमेनाराधयेद् देवं सोमलोकमहेश्वरम् ॥१४
न सोमयागादधिको महेशाराधने क्रतुः ।
समो वा विद्यते तस्मात् सोमेनाभ्यर्चयेत् परम् ॥१५
पितामहेन विप्राणामादावभिहितः शुभः ।
धर्मो विमुक्तये साक्षाच्छ्रौतः स्मार्त्तो द्विधा पुनः ॥१६
श्रौतस्त्रेताग्निसंबन्धात् स्मार्त्तः पूर्वं मयोदितः ।
श्रेयस्करतमः श्रौतस्तस्माच्छ्रौतं समाचरेत् ॥१७
उभावभिहितौ धर्मौ वेदादेव विनिःसृतौ ।
शिष्टाचारस्तृतीयः स्याच्छ्रुतिस्मृत्योरलाभतः ॥१८
धर्मेणाभिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः ।
ते शिष्टा ब्राह्मणाः प्रोक्ता नित्यमात्मगुणान्विताः ॥१९
तेषामभिमतो यः स्याच्चेतसा नित्यमेव हि ।
स धर्मः कथितः सद्भिर्नान्येषामिति धारणा ॥२०
पुराणं धर्मशास्त्रं च वेदानामुपबृंहणम् ।
एकस्माद् ब्रह्मविज्ञानं धर्मज्ञानं तथैकतः ॥२१
धर्मं जिज्ञासमानानां तत्प्रमाणतरं स्मृतम् ।
धर्मशास्त्रं पुराणं तद् ब्रह्मज्ञाने परा प्रमा ॥२२
नान्यतो जायते धर्मो ब्रह्मविद्या च वैदिकी ।
तस्माद् धर्मं पुराणं च श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः ॥२३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

की आराधना नहीं करना चाहता वह व्यक्ति मूढ़ होता है उससे वार्ता नहीं करना चाहिए । अधिक क्या वह मनुष्य नास्तिक होता है (अथवा नास्तिक से भी वार्ता नहीं करनी चाहिये) । (१२)

जिसके पास भृत्यों के पोषणार्थ तीन वर्ष के लिए पर्याप्त अथवा अधिक आहार सामग्री हो वह सोमपान का अधिकारी होता है । (१३)

सभी यज्ञों में सोमयज्ञ सर्वश्रेष्ठ है । सोम द्वारा सोमलोक स्थित महेश्वर देव की आराधना करनी चाहिए । (१४)

महेश्वर की आराधना हेतु सोमयाग से श्रेष्ठ अथवा उसके समान कोई अन्य यज्ञ नहीं है । अतएव सोमयाग द्वारा श्रेष्ठ देव की आराधना करनी चाहिए । (१५)

सृष्टि के आदि में साक्षात् पितामह ब्रह्मा ने विप्रों की मुक्ति हेतु कल्याणकारी धर्म का विधान किया है । वह श्रौत एवं स्मार्त नाम से दो प्रकार का है । (१६)

तीन अग्नियों के सम्बन्ध से श्रौत-धर्म सम्पन्न होता है एवं स्मार्त्त-धर्म का मैंने पूर्व में वर्णन किया है । श्रौत-धर्म अधिक श्रेयस्कर है अतः श्रौत-धर्म का पालन करना चाहिए । (१७)

बतलाये गये दोनों प्रकार के धर्म वेद से ही प्रगट हुए हैं । श्रुति एवं स्मृति के अभाव में शिष्टाचार ही तीसरा धर्म होता है । (१८)

धर्मपूर्वक (इतिहास पुराण रूपी) परिबृंहण सहित वेदों का ज्ञान प्राप्त करने वाले आत्मिक गुणों से सम्पन्न ब्राह्मणों को शिष्ट कहा जाता है । (१९)

उन्हें अर्थात् शिष्टों को निरन्तर विचार द्वारा जो अभिमत होता है सज्जन व्यक्ति उसको धर्म कहते हैं । अन्य लोगों के अभिमत को धर्म नहीं कहा जाता । यही निश्चित सिद्धान्त है । (२०)

पुराण एवं धर्मशास्त्र वेदों के उपबृंहण हैं । एक से ब्रह्मज्ञान होता है एवं दूसरे से धर्मज्ञान की प्राप्ति होती है । (२१)

धर्म की जिज्ञासा करने वालों के लिए धर्मशास्त्र श्रेष्ठ प्रमाण है । एवं पुराण ब्रह्मज्ञान लिये उत्कृष्ट प्रमाण है । (२२)

वेद के अतिरिक्त अन्य कहीं से धर्म एवं वैदिक ब्रह्मज्ञान नहीं होता । अतएव बुद्धिमानों को धर्मशास्त्र एवं पुराण के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए । (२३)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त—२४.

२५

व्यास उवाच ।

एष वोऽभिहितः कृत्स्नो गृहस्थाश्रमवासिनः ।
द्विजातेः परमो धर्मो वर्त्तनानि निबोधत ॥१
द्विविधस्तु गृही ज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः ।
अध्यापनं याजनं च पूर्वस्याहुः प्रतिग्रहम् ।
कुसीदकृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीतास्वयंकृतम् ॥२
कृषेरभावाद् वाणिज्यं तदभावात् कुसीदकम् ।
आपत्कल्पो ह्ययं ज्ञेयः पूर्वोक्तो मुख्य इष्यते ॥३
स्वयं वा कर्षणं कुर्याद् वाणिज्यं वा कुसीदकम् ।
कष्टा पापीयसी वृत्तिः कुसीदं तद् विवर्जयेत् ॥४
क्षात्रवृत्तिं परां प्राहुर्न स्वयं कर्षणं द्विजैः ।
तस्मात् क्षात्रेण वर्त्तेत वर्त्तनेनापदि द्विजः ॥५
तेन चावाप्यजीवंस्तु वैश्यवृत्तिं कृषिं व्रजेत् ।
न कथंचन कुर्वीत ब्राह्मणः कर्म कर्षणम् ॥६
लब्धलाभः पितॄन् देवान् ब्राह्मणांश्चापि पूजयेत् ।
ते तृप्तास्तस्य तं दोषं शमयन्ति न संशयः ॥७
देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्याद् भागं तु विंशकम् ।
त्रिंशद्भागं ब्राह्मणानां कृषिं कुर्वन् न दुष्यति ॥८
वणिक् प्रदद्याद् द्विगुणं कुसीदी त्रिगुणं पुनः ।
कृषीवलो न दोषेण युज्यते नात्र संशयः ॥९
शिलोञ्छं वाप्याददीत गृहस्थः साधकः पुनः ।
विद्याशिल्पादयस्त्वन्ये बहवो वृत्तिहेतवः ॥१०

२५

व्यास ने कहा—(मैंने) आप लोगों से गृहस्थाश्रमी द्विज के श्रेष्ठ धर्म का यह पूर्ण वर्णन किया। (अब उनकी) वृत्तिका वर्णन सुनो। (१)

साधक एवं असाधक भेद से गृही दो प्रकार के जानना चाहिए। प्रथम (प्रकार के गृहस्थ अर्थात् साधक गृहस्थ की जीविका का साधन) अध्यापन, याजन एवं प्रतिग्रह है। इसके अतिरिक्त वे अपने द्वारा न किया हुआ कुसीद अर्थात् सूदी व्यवहार, कृषि एवं वाणिज्य भी कर सकते हैं। (२)

कृषि के अभाव में वाणिज्य, उसके अर्थात् वाणिज्य के अभाव में कुसीद का आवलम्बन कर सकते हैं। इसे आपत्कालीन विकल्प जानना चाहिए। पूर्वोक्त अर्थात् अध्यापनादि ही मुख्य वृत्ति कही गई है। (३)

अथवा स्वयं भी कृषि, वाणिज्य या कुसीद का व्यवहार करे कुसीद अर्थात् सूदखोरी अत्यन्त कष्टकारक पापपूर्ण वृत्ति है अतएव उसका त्याग करना चाहिए। (४)

क्षात्रवृत्ति अर्थात् शस्त्र जीविका को भी श्रेष्ठ कहा गया है। किन्तु द्विजों को स्वयं कर्षण नहीं करना चाहिए। अतएव द्विज को आपत्ति में क्षात्र धर्म से जीविका निर्वाह करना चाहिए। (५)

उस क्षात्र-वृत्ति द्वारा भी निर्वाह न होने पर कृषि स्वरूप वैश्यवृत्ति का अवलम्बन करना चाहिए। किन्तु ब्राह्मण को कभी भी खेत जोतने का कार्य नहीं करना चाहिए। (६)

लाभ प्राप्त होने पर पितृगण, देवता एवं ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए। वे सभी तृप्त होने पर निस्सन्देह उस (गृहस्थ) के उस (कर्मजन्य) दोषों को नष्ट कर देते हैं। (७)

देवों एवं पितरों के निमित्त (कृषि से प्राप्त लाभ का) बीसवाँ भाग (अर्थात् ५ प्रतिशत भाग) एवं ब्राह्मणों के निमित्त तीसवाँ भाग (अर्थात् ३⅓ प्रतिशत भाग) देना चाहिए। ऐसी अवस्था में कृषि कर्म करने वाला दोषभागी नहीं होता। (८)

वाणिज्य करने पर (उक्त कृषिजन्य लाभ का) दूना (अर्थात् वाणिज्य से प्राप्त लाभ का दस एवं ६⅔) एवं कुसीद अर्थात् सूदी व्यवहार में (उक्त कृषिजन्य लाभ का) तीन गुना (क्रमशः १५ एवं १० प्रतिशत) दान करना चाहिए। ऐसा करने से कृषक को निस्सन्देह दोष नहीं लगता। (९)

अथवा साधक गृहस्थ को शिलोञ्छवृत्ति अङ्गीकार करनी चाहिए। विद्या एवं शिल्पादि भी अन्य अनेक जीविका के साधन हैं। (१०)

असाधकस्तु यः प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः ।
शिलोञ्छे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभिः ।।११
अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवा यदि ।
अयाचितं स्यादमृतं मृतं भैक्षं तु याचितम् ।।१२
कुशूलधान्यको वा स्यात् कुम्भीधान्यक एव वा ।
त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव च ।।१३
चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ।
श्रेयान् परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ।।१४
षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्त्तते ।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ।।१५
वर्त्तयंस्तु शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ।
इष्टीः पार्वायणान्तीयाः केवला निर्वपेत् सदा ।।१६
न लोकवृत्तिं वर्त्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद् ब्राह्मणजीविकाम् ।।१७
याचित्वा वाऽपि सद्भ्योऽन्नं पितॄन्देवांस्तु तोषयेत् ।
याचयेद् वा शुचिं दान्तं न तृप्येत स्वयं ततः ।।१८
यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा गृहस्थस्तोषयेन्न तु ।
देवान् पितॄंश्च विधिना शुनां योनिं व्रजत्यसौ ।।१९
धर्मश्चार्थश्च कामश्च श्रेयो मोक्षश्चतुष्टयम् ।
धर्माविरुद्धः कामः स्याद् ब्राह्मणानां तु नेतरः ।।२०
योऽर्थो धर्माय नात्मार्थः सोऽर्थोऽनर्थस्तथेतरः ।
तस्मादर्थं समासाद्य दद्याद् वै जुहुयाद् यजेत् ।।२१

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

गृहस्थाश्रम में रहने वाला जो असाधक नामक गृहस्थ कहा गया है श्रेष्ठ महर्षियों ने उसकी शिलोञ्छ एवं उञ्छ (शिलोञ्छ का अर्थ कटे खेत में दानों को बीनकर जीवन यापन करना है) नामक दो वृत्तियों का विधान किया है। (११)

अमृत अथवा मृत साधन द्वारा जीवन-निर्वाह करना चाहिए। अयाचित वस्तु अमृत तथा याचना द्वारा भिक्षा स्वरूप प्राप्त वस्तु मृत होती है। (१२)

कुशूलधान्यक, कुम्भीधान्यक, तीन आह्निक अथवा अश्वस्तनिक होना चाहिए।* (१३)

उन कुशूलधान्यकादि चार प्रकार के गृहस्थों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है। वह धर्म द्वारा श्रेष्ठ लोकजयी होता है। (१४)

उनमें (अधिक पोष्यवर्ग सम्पन्न) द्विज (अध्ययनाध्यापनादि) छः कर्मों द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। (उनकी अपेक्षा कम पोष्य वर्ग वाले) तीन साधनों से निर्वाह करते हैं। अन्य कुछ लोग दो साधनों से एवं (सबसे कम पोष्य वर्ग वाले) चौथे प्रकार के ब्राह्मण अध्ययनादि ब्रह्मयज्ञ द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। (१५)

शिलोञ्छ द्वारा निर्वाह करने वाले ब्राह्मण को सदा देवता अग्निहोत्र, पर्वकालीन यज्ञ एवं अयनान्त समय का अर्थात् पौर्णमास यज्ञ करना चाहिए। (१६)

जीविका के लिये (सामान्यजनों द्वारा व्यवहृत मिथ्याकथनादि) लोकव्यवहार नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण को कुटिलता एवं छल से रहित शुद्ध जीविका का अवलम्बन करना चाहिए। (१७)

सज्जनों से अन्न मांग कर पितरों एवं देवों को सन्तुष्ट करना चाहिए। अथवा पवित्र इन्द्रियनिग्रही व्यक्तियों से याचना करे। किन्तु, उससे अपनी तृप्ती नहीं करनी चाहिए। (१८)

जो गृहस्थ द्रव्योपार्जन करने के उपरान्त विधिपूर्वक देवों एवं पितरों को सन्तुष्ट नहीं करता वह कुत्ते की योनि प्राप्त करता है। (१९)

धर्म, अर्थ, काम एवं कल्याणकारी मोक्ष नामक चार पुरुषार्थ हैं। ब्राह्मणों का काम (नामक तृतीय पुरुषार्थ) धर्माविरोधी होना चाहिए। इसके विपरीत नहीं होना चाहिए। (२०)

जो अर्थ धर्म के लिए होता है न कि अपने लिये वही अर्थ है। इससे भिन्न प्रकार का अर्थ अनर्थ होता है। अतः अर्थ प्राप्त करने के उपरान्त दान, हवन एवं यज्ञ करना चाहिए। (२१)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त—२५.

* तीन वर्षों के लिए पर्याप्त धान्य के सञ्चयी को कुशूलधान्यक, एक वर्ष के लिए सञ्चय करने वाले को कुम्भीधान्यक, तीन दिनों के लिए पर्याप्त धान्य के सञ्चयी को त्रैहिक एवं आगामी दिन के लिए भी सञ्चय न करने वाले को अश्वस्तनिक कहते हैं।

२६

व्यास उवाच ।
अथातः संप्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् ।
ब्रह्मणाऽभिहितं पूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम् ॥१
अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥२
यद् ददाति विशिष्टेभ्यः श्रद्धया परया युतः ।
तद् वै वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ॥३
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते ।
चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥४
अहन्यहनि यत् किंचिद् दीयतेऽनुपकारिणे ।
अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यकम् ॥५
यत् तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे ।
नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥६
अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत् प्रदीयते ।
दानं तत् काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥७
यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते ।
चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद् विमलं शिवम् ॥८
दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तितः ।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत् तारयति सर्वतः ॥९
कुटुम्बभक्तवसनाद् देयं यदतिरिच्यते ।
अन्यथा दीयते यद्धि न तद् दानं फलप्रदम् ॥१०
श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने ।
वृत्तस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम् ॥११
यस्तु दद्यान्महीं भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्नये ।

२६

व्यास ने कहा—इसके उपरान्त (मैं) श्रेष्ठ दान धर्म का वर्णन करूँगा (इसे) पहले ब्रह्माजी ने ब्रह्मवादी ऋषियों से कहा था। (१)

उदित अर्थात् वेदावेदाङ्गाध्ययन करने वाले प्रशस्त पात्र में अर्थ के श्रद्धापूर्वक प्रतिपादन को दान कहा गया है। यह भुक्ति और मुक्ति का देने वाला होता है। (२)

श्रद्धापूर्वक विशिष्ट सदाचार-सम्पन्न व्यक्तियों को जो धन प्रदान किया जाता है उसे मैं वित्त मानता हूँ। तदतिरिक्त अवशिष्ट धन (का संग्रह करने वाला व्यक्ति) किसी अन्य (के ही धन की) रक्षा करता है। (३)

नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य भेद से दान तीन प्रकार का कहा जाता है। चतुर्थ विमल नामक दान सभी दानों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। (४)

प्रतिदिन विना किसी उद्देश्य के जो दान अनुपकारी ब्राह्मण को दिया जाता है उसे नित्य दान कहते हैं। (५)

पाप की शान्ति के लिए विद्वान् के हाथ में दिया जाने वाला दान नैमित्तिक कहलाता है। सज्जन लोग इसका अनुष्ठान करते हैं। (६)

सन्तान, विजय, ऐश्वर्य एवं स्वर्ग के लिए जो दान दिया जाता है उस दान को धर्मचिन्तक ऋषियों ने काम्य दान कहा है। (७)

धर्मयुक्त मन से ईश्वर की प्रसन्नता हेतु जो दान ब्रह्मवेत्ताओं को दिया जाता है वह कल्याणकारी दान विमल दान होता है। (८)

सत्पात्र की प्राप्ति होने पर यथाशक्ति दानधर्म का पालन करना चाहिए। क्योंकि (कभी) ऐसा पात्र प्रकट हो सकता है (जो दाता का) सभी प्रकार निस्तार करते हैं। (९)

कुटुम्ब के भरण पोषण से अधिक अवशिष्ट पदार्थ का दान करना चाहिए। इससे भिन्न प्रकार का दिया जाने वाला दान फलप्रद नहीं होता। (१०)

श्रोत्रिय, कुलीन, विनीत, तपस्वी, सदाचारी एवं दरिद्र (ब्राह्मण) के निमित्त भक्तिपूर्वक दान करना चाहिए। (११)

जो भक्तिपूर्वक आहिताग्नि ब्राह्मण को भूमि का दान

स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥१२
इक्षुभिः संततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।
ददाति वेदविदुषे यः स भूयो न जायते ॥१३
गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमिं संप्रयच्छति ।
ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४
भूमिदानात् परं दानं विद्यते नेह किञ्चन ।
अन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम् ॥१५
यो ब्राह्मणाय शान्ताय शुचये धर्मशालिने ।
ददाति विद्यां विधिना ब्रह्मलोके महीयते ॥१६
दद्यादहरहस्त्वन्नं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः स्थानमाप्नुयात् ॥१७
गृहस्थायान्नदानेन फलं प्राप्नोति मानवः ।
आममेवास्य दातव्यं दत्त्वाप्नोति परां गतिम् ॥१८
वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा ।
उपोष्य विधिना शान्तः शुचिः प्रयतमानसः ॥१९
पूजयित्वा तिलैः कृष्णैर्मधुना च विशेषतः ।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वाचयेद् वा स्वयं वदेत् ॥२०
प्रीयतां धर्मराजेति यद् वा मनसि वर्त्तते ।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२१
कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी ।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥२२
कृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां च विशेषतः ।
निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ॥२३
सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा ।
तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥२४
माघमासे तु विप्रस्तु द्वादश्यां समुपोषितः ।
शुक्लाम्बरधरः कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम् ॥२५
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु तिलानेव समाहितः ।
जन्मप्रभृति यत्पापं सर्वं तरति वै द्विजः ॥२६

करता है वह (उस) श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है जहाँ जाने पर शोक नहीं करना पड़ता। (१२)

जो ईख, यव एवं गेहूँ से युक्त भूमि वेदज्ञ ब्राह्मण को प्रदान करता है वह (इस संसार में) पुनः जन्म नहीं ग्रहण करता। (१३)

अथवा जो गोचर्म तुल्य भी भूमि दरिद्र ब्राह्मण को प्रदान करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (१४)

इस संसार में भूमि दान की अपेक्षा उत्तम कोई दान नहीं है। उसके तुल्य ही अन्न दान होता है। किन्तु, विद्या दान उससे अधिक होता है। (१५)

जो शान्त, धार्मिक एवं पवित्र ब्राह्मण को विधिपूर्वक विद्या प्रदान करता है वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है। (१६)

प्रतिदिन ब्रह्मचारी के निमित्त श्रद्धापूर्वक अन्नदान करना चाहिए। (ऐसा करने वाला) सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। (१७)

गृहस्थ को अन्नदान करने से मनुष्य को फल प्राप्त होता है। (गृहस्थ को) आमान्न-अर्थात् अपक्व अन्न ही दान करना चाहिए। आमान्न का दान करने से मनुष्य परम गति प्राप्त करता है। (१८)

वैशाख मास की पूर्णमासी को सावधान मन से उपवास कर सात या पाँच ब्राह्मणों की विधिपूर्वक काले तिलों एवं विशेषकर मधु तथा गन्धादि द्वारा पूजनकर उन ब्राह्मणों से "प्रीयतां धर्मराज इति—अर्थात् धर्मराज प्रसन्न हों" यह वाक्य अथवा मन में जो सङ्कल्प हो वह कहलाये अथवा स्वयं कहे। ऐसा करने से सम्पूर्ण जीवन का किया पाप तत्क्षण नष्ट हो जाता है। (१९-२१)

कृष्णमृग के चर्म में तिल, स्वर्ण, मधु एवं घृत रखकर जो ब्राह्मण को देता है वह सभी पापों से पार हो जाता है। (२२)

विशेषरूप से वैशाख मास की पूर्णिमा को धर्मराज के उद्देश्य से ब्राह्मण को कृतान्न—अर्थात् पक्वान्न (सत्तू) इत्यादि एवं जलपूर्ण घट देने से भय से मुक्ति होती है। (२३)

सुवर्ण एवं तिल युक्त जल के पात्रों के दान से सात या पाँच ब्राह्मणों को तृप्त करने वाला ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। (२४)

माघ मास की (कृष्ण) द्वादशी को उपवास करते हुये शुक्ल वस्त्र धारण कर एवं काले तिलों से अग्नि में हवन कर एकाग्रतापूर्वक ब्राह्मणों को तिल ही प्रदान करे। ऐसा करने से द्विज जन्मकाल से आरम्भ कर किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है। (२५, २६)

अमावस्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने ।
यत्किंचिद् देवदेवेशं दद्याच्चोद्दिश्य शंकरम् ।।२७
प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः ।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।।२८
यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम् ।
आराधयेद् द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः ।।२९
कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये ।
स्नात्वाऽभ्यर्च्य यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः ।।३०
प्रीयतां मे महादेवो दद्याद् द्रव्यं स्वकीयकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम् ।।३१
द्विजैः कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषतः ।
अमावास्यायां भक्तैस्तु पूजनीयस्त्रिलोचनः ।।३२
एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमम् ।
अर्चयेद् ब्राह्मणमुखे स गच्छेत् परमं पदम् ।।३३

अमावस्या आने पर देवाधिदेव शङ्कर के उद्देश्य से "प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः—अर्थात् सनातन ईश्वर सोम महादेव प्रसन्न हों" यह वाक्य उच्चारण कर तपस्वी ब्राह्मण को जो कुछ भी दान किया जाता है उससे तत्काल सात जन्मों का किया पाप नष्ट हो जाता है। (२७,२८)

कृष्णचतुर्दशी को स्नानोपरान्त जो व्यक्ति ब्राह्मण के मुख से अर्थात् ब्राह्मण को भोजन कराकर शङ्कर देव की आराधना करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता। (२९)

विशेषरूप से कृष्णाष्टमी के दिन स्नानोपरान्त "प्रीयतां मे महादेवो—महादेव मुझ पर प्रसन्न हों" यह उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक पादप्रक्षालनादि द्वारा ब्राह्मण की पूजाकर उसे अपना धन प्रदान करना चाहिए। ऐसा करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर परम गति प्राप्त करता है। (३०, ३१)

भक्त द्विजों को कृष्णचतुर्दशी, विशेषकर कृष्णाष्टमी एवं अमावस्या को त्रिलोचन-महादेव की पूजा करनी चाहिए। (३२)

जो एकादशी को निराहार रहकर द्वादशी के दिन ब्राह्मण के मुख में अर्थात् ब्राह्मण को भोजन कराकर पुरुषोत्तम की पूजा करता है उसे परम पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। (३३)

एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद् द्वादशी शुक्लपक्षके ।
तस्यामाराधयेद् देवं प्रयत्नेन जनार्दनम् ।।३४
यत्किञ्चिद् देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ ।
दीयते विष्णवे वापि तदनन्तफलप्रदम् ।।३५
यो हि यां देवतामिच्छेत् समाराधयितुं नरः ।
ब्राह्मणान् पूजयेद् यत्नात् स तस्यां तोषयेत् ततः ।।३६
द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ।
पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित् ।।३७
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत् तत् फलमभीप्सता ।
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः ।।३८
विभूतिकामः सततं पूजयेद् वै पुरंदरम् ।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुकः ।।३९
आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम् ।
कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद् वै विनायकम् ।।४०

शुक्ल पक्ष की यह द्वादशी तिथि वैष्णवी तिथि होती है। उस तिथि में प्रयत्नपूर्वक जनार्दन देव की आराधना करनी चाहिए। (३४)

शङ्कर देव अथवा विष्णु को उद्देश्य कर पवित्र ब्राह्मण को जो कुछ भी दिया जाता है वह अनन्त फल प्रदान करता है। (३५)

जो मनुष्य जिस किसी देवता की आराधना करना चाहता है उसे यत्नपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर उसी ब्राह्मणपूजन में वह देवता को सन्तुष्ट करे। (३६)

देवता सदैव ब्राह्मणों के शरीर का आश्रय ग्रहण कर रहते हैं। कभी ब्राह्मणों की प्राप्ति न होने पर प्रतिमा इत्यादि में उन देवों की पूजा की जाती है। (३७)

अतएव विभिन्न प्रकार के फलाभिलाषियों को सभी प्रकार के प्रयत्नपूर्वक नित्य ब्राह्मणों में देवता को विशेषरूप से पूजा करनी चाहिए। (३८)

ऐश्वर्य के अभिलाषी को सर्वदा इन्द्र की पूजा करनी चाहिए। ब्रह्मतेज एवं ब्रह्म-प्राप्ति के इच्छुक को ब्रह्मा की आराधना करनी चाहिए। (३९)

आरोग्य के अभिलाषी को सूर्य की एवं धनाभिलाषी को अग्नि की पूजा करनी चाहिए। कर्म की सिद्धि के इच्छुक को विनायक (गणेश) की पूजा करनी चाहिए। (४०)

भोगकामस्तु शशिनं बलकामः समीरणम् ।
मुमुक्षुः सर्वसंसारात् प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम् ॥४१
यस्तु योगं तथा मोक्षमन्विच्छेज्ज्ञानमैश्वरम् ।
सोऽर्चयेद् वै विरूपाक्षं प्रयत्नेनेश्वरेश्वरम् ॥४२
ये वाञ्छन्ति महायोगान् ज्ञानानि च महेश्वरम् ।
ते पूजयन्ति भूतेशं केशवं चापि भोगिनः ॥४३
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥४४
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥४५
वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुदः श्रियं पुष्टां गोदो व्रध्नस्य विष्टपम् ॥४६

भोग की कामना वाले को चन्द्रमा की तथा बल के अभिलाषी को वायु की आराधना करनी चाहिए। समस्त संसार से मुक्ति के अभिलाषी को प्रयत्नपूर्वक हरि की पूजा करनी चाहिए। (४१)

जो योग, मोक्ष एवं ईश्वर विषयक ज्ञान का इच्छुक हो उसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वरों के स्वामी विरूपाक्ष (महादेव) की पूजा करनी चाहिए। (४२)

जो महायोग एवं ज्ञान के अभिलाषी होते हैं वे भूताधिपति महेश्वर की एवं योगीजन केशव की आराधना करते हैं। (४३)

जल का दान करने वालों को तृप्ति की प्राप्ति होती है। अन्न दान करने वाले को अक्षय सुख प्राप्त होता है। तिलदाता को इच्छित सन्तान तथा दीप का दान करने वाले को उत्तम नेत्र की प्राप्ति होती है। (४४)

भूमिदाता को सभी पदार्थों की प्राप्ति होती है। सुवर्ण दान करनेवाले को दीर्घायु प्राप्त होता है। गृह का दान करने वाले को अट्टालिका प्राप्त होती है एवं रूप्य अर्थात् चाँदी के दाता को उत्तम रूप की प्राप्ति होती है। (४५)

वस्त्र का दान करने वाले को चन्द्रलोक का निवास एवं अश्व का दान करने वाले को अश्विनीकुमारों के लोक का निवास प्राप्त होता है। बैल का दान करनेवाले को पुष्ट लक्ष्मी तथा गाय का दान करने वाले को ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है। (४६)

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसात्म्यताम् ॥४७
धान्यान्यपि यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥४८
गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः ॥४९
फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविधानि च ।
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदा युक्तः सदा भवेत् ॥५०
औषधं स्नेहमाहारं रोगिणे रोगशान्तये ।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥५१
असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितम् ।
तीव्रतापं च तरति छत्रोपानत्प्रदो नरः ॥५२
यद् यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे ।

यान (सवारी) और शय्या का दान करने वाले को भार्या एवं अभय-दान करने वाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है। धान्य का दान करने वाले को शाश्वत सौख्य एवं ब्रह्म-अर्थात् वेद का दान करने वाले को ब्रह्मस्वरूपत्व की प्राप्ति होती है। (४७)

यथाशक्ति विशिष्ट वेदज्ञ ब्राह्मणों को धान्य प्रदान करना चाहिये। (ऐसा करने से) मरणोपरान्त स्वर्ग की प्राप्ति होती है। (४८)

गौओं को घास प्रदान करने से समस्त पापों से मुक्ति होती है। इन्धन का दान करने से मनुष्य प्रदीप्त अग्नि के तुल्य हो जाता है। (४९)

ब्राह्मणों को फल, मूल, शाक, एवं विविध प्रकार का भोज्य पदार्थ दान करना चाहिए। (ऐसा करने से) मनुष्य सदा आनन्द युक्त होता है। (५०)

रोग की शान्ति हेतु रोगी को औषध, स्नेह (स्निग्ध पदार्थ अथवा तेल या घृत) एवं आहार का दान करने वाला रोगरहित, सुखी एवं दीर्घायु होता है। (५१)

छाता एवं जूता का दान करने वाला मनुष्य तीव्र ताप एवं छुरे की धार से पूर्ण असिपत्रवन-अर्थात् जीव के पर-लोक गमन के समय प्राप्त होने वाले कठिन मार्ग-को पार कर लेता है। (५२)

(अभीष्ट पदार्थ की) अक्षयता चाहने वाले पुरुष को संसार में जो-जो अत्यन्त अभीष्ट एवं गृह में जो अत्यन्त

तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥५३
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ॥५४
प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च ।
दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च ॥५५
दानधर्मात् परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते ।
तस्माद् विप्राय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः ॥५६
स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये ।
मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तथाऽन्वहम् ॥५७
दीयमानं तु यो मोहाद् गोविप्राग्निसुरेषु च ।
निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनिं व्रजेत् तु सः ॥५८
यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेद् ब्राह्मणान् सुरान् ।
सर्वस्वमपहृत्यैनं राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत् ॥५९
यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति ।
म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्राह्मणः स तु गर्हितः ॥६०
न तस्मात् प्रतिगृह्णीयुर्न विशेयुश्च तेन हि ।
अङ्कयित्वा स्वकाद् राष्ट्रात् तं राजा विप्रवासयेत् ॥६१
यस्त्वसद्भ्यो ददातीह स्वद्रव्यं धर्मसाधनम् ।
स पूर्वाभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः ॥६२
स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः ।
सत्यसंयमसंयुक्तास्तेभ्यो दद्याद् द्विजोत्तमाः ॥६३
सुभुक्तमपि विद्वांसं धार्मिकं भोजयेद् द्विजम् ।
न तु मूर्खमवृत्तस्थं दशरात्रमुपोषितम् ॥६४
सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति ।
स तेन कर्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम् ॥६५
यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम् ।
तस्मै यत्नेन दातव्यं अतिक्रम्यापि सन्निधिम् ॥६६

प्रिय वस्तु हो उसे गुणवान् ब्राह्मण को दान करना चाहिए । (५३)

अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन), विषुव (मेष और तुला संक्रान्ति), चन्द्र और सूर्य के ग्रहण और संक्रांति के कालों में दिया हुआ दान अक्षय होता है । (५४)

प्रयागादि तीर्थों, पवित्र मन्दिरों, नदियों के तट तथा (नैमिष आदि) वन में दिया दान अक्षय (फलवाला) होता है । (५५)

इस संसार में प्राणियों के लिये दान से बढ़कर कोई अन्य धर्म नहीं है । अतः द्विजातियों को चाहिए कि वे श्रोत्रिय ब्राह्मण के निमित्त दान करें । (५६)

स्वर्ग, आयु एवं ऐश्वर्य के अभिलाषी, पाप की शान्ति के इच्छुक तथा मोक्षार्थी पुरुष को प्रतिदिन ब्राह्मणों के निमित्त दान करना चाहिए । (५७)

जो व्यक्ति मोहवश गौ, ब्राह्मण, अग्नि एवं देवता के निमित्त दिये जा रहे दान को रोकता है वह तिर्यग्योनि (पशु-पक्षी) में जाता है । (५८)

द्रव्योपार्जन करने के उपरान्त जो ब्राह्मणों एवं देवों की अर्चना नहीं करता राजा को उसका सर्वस्व छीन कर उसे राष्ट्र से बाहर निकाल देना चाहिए । (५९)

जो व्यक्ति दुर्भिक्ष के समय मरणप्राय विप्रों को अन्नादि नहीं देता वह ब्राह्मण गर्हित होता है । (६०)

उससे न दान लेना चाहिए और न उसके साथ सम्पर्क करना चाहिए । राजा भी उस को चिह्नित कर अपने राष्ट्र से बहिष्कृत कर दे । (६१)

जो धर्म के साधन स्वरूप अपने द्रव्य का असज्जनों को दान करता है वह मनुष्य पूर्व से भी अधिक पापी होता है एवं नरक में पड़ता है । (६२)

हे श्रेष्ठ द्विजो ! स्वाध्यायशील, विद्वान्, जितेन्द्रिय एवं सत्य तथा संयम से युक्त ब्राह्मणों के निमित्त दान करना चाहिए । (६३)

भली भाँति खाये होने पर भी धार्मिक विद्वान् ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये । किन्तु, मूर्ख एवं आचार-हीन ब्राह्मण को दस दिनों का भूखा रहने पर भी नहीं खिलाना चाहिये । (६४)

जो समीप के श्रोत्रिय का अतिक्रमण कर (अन्य ब्राह्मण को) दान देता है वह अपने उस पाप के कारण सातवीं पीढ़ी तक को दग्ध करता है । (६५)

यदि कोई ब्राह्मण अपने शील एवं विद्यादि के कारण अधिक गुण-सम्पन्न हो तो निकट के ब्राह्मण का अतिक्रमण कर के भी उसे दान देना चाहिये । (६६)

येोऽर्चितं प्रतिगृह्णीयाद् दद्यादर्चितमेव च ।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ।।६७

न वार्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हैतुकेऽपि च ।
पाषण्डेषु च सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित् ।।६८

अपूपं च हिरण्यं च गामश्वं पृथिवीं तिलान् ।
अविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति काष्ठवत् ।।६९

द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत् प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः ।
अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात् कथञ्चन ।।७०

वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरम् ।
धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते ।।७१

वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः ।
न तां गतिमवाप्नोति सङ्कोचाद् यामवाप्नुयात् ।।७२

प्रतिग्रहरुचिर्न स्यात् यात्रार्थं तु समाहरेत् ।
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ।।७३

यस्तु याचनको नित्यं न स स्वर्गस्य भाजनम् ।
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः ।।७४

गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षुरर्चिष्यन् देवतातिथीन् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत् स्वयं ततः ।।७५

एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवताऽतिथिपूजकः ।
वर्त्तमानः संयतात्मा याति तत् परमं पदम् ।।७६

पुत्रे निधाय वा सर्वं गत्वाऽरण्यं तु तत्त्ववित् ।
एकाकी विचरेन्नित्यमुदासीनः समाहितः ।।७७

एष वः कथितो धर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः ।
ज्ञात्वाऽनुतिष्ठेन्नियतं तथाऽनुष्ठापयेद् द्विजान् ।।७८

आदर पूर्वक दिये हुए दान को लेने वाले एवं आदर पूर्वक दान देने वाले दोनों ही प्रकार के पुरुष स्वर्ग में जाते हैं किन्तु इसका उलटा होने पर (अर्थात् अनादर पूर्वक दिए दान को लेने और देने वालों को) नरक में जाना पड़ता है। (६७)

धर्मज्ञ को नास्तिक, हैतुक (कुतर्की), सभी पाषण्डियों एवं वेदज्ञान-रहित व्यक्ति के निमित्त जल का भी दान नहीं करना चाहिए। (६८)

अपूप (पुआ), स्वर्ण, गौ, अश्व, पृथ्वी एवं तिल का दान ग्रहण करने वाला अविद्वान् व्यक्ति काष्ठ के तुल्य भस्म हो जाता है। (६९)

श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रशस्त द्विजातियों से धन लेने की इच्छा करनी चाहिए अथवा अपनी जाति वालों से ही धन ग्रहण करना चाहिए। किन्तु, शूद्र से कभी भी धन की लिप्सा नहीं करनी चाहिये। (७०)

ब्राह्मण को वृत्ति के सङ्कोच की अभिलाषा करनी चाहिए। उसे धन को बढ़ाने की इच्छा नहीं करनी चाहिये। धन के लोभ में आसक्त व्यक्ति ब्राह्मणत्व से ही हीन हो जाता है। (७१)

समस्त वेदों का अध्ययन करने अथवा समस्त यज्ञों को करने से भी वह गति नहीं प्राप्त होती जो (वृत्ति का) सङ्कोच करने से प्राप्त होती है। (७२)

दान ग्रहण करने की इच्छा न करनी चाहिए। जीवन-निर्वाह मात्र के लिए धन ग्रहण करना चाहिए। अपनी स्थिति के लिए अपेक्षित धन से अधिक ग्रहण करने वाला ब्राह्मण अधोगति प्राप्त करता है। (७३)

जो नित्य याचना करता है वह स्वर्ग का भागी नहीं होता। वह प्राणियों को उद्विग्न करता है एवं वह चोर ही के सदृश होता है। (७४)

गुरुओं एवं भृत्यों का उद्धार करने की इच्छा वाला तथा देवता एवं अतिथियों की आराधना करने वाले व्यक्ति को सभी से दान ग्रहण करना चाहिए। किन्तु, उस दान से अपनी तृप्ति नहीं करनी चाहिए। (७५)

इस प्रकार संयतचित्त, देवता एवं अतिथियों की पूजा करने वाला योग-युक्त गृहस्थ परम पद प्राप्त करता है। (७६)

अथवा अपना सर्वस्व पुत्र को देने के उपरान्त तत्त्व ज्ञानी पुरुष को वन में जाकर नित्य संयतचित्त होकर एवं उदासीनता पूर्वक एकाकी विचरण करना चाहिए। (७७)

हे द्विजोत्तमो ! मैंने आपलोगों से गृहस्थों का यह धर्म कहा—इसे जानकर इसका नियमपूर्वक स्वयं अनुष्ठान करना चाहिए एवं अन्य द्विजों से इसका अनुष्ठान करवाना चाहिए। (७८)

इति देवमनादिमेकमीशं
गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम् ।
समतीत्य स सर्वभूतयोनिं
प्रकृतिं याति परं न याति जन्म ।।७९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

इस प्रकार गृहस्थ धर्मद्वारा अद्वितीय अनादि देव ईश्वर की सतत आराधना करनी चाहिए। (ऐसा करने वाला) वह व्यक्ति समस्त भूतों के मूल कारण प्रकृति का अतिक्रमण कर परम पद को प्राप्त कर लेता है एवं उसका पुनर्जन्म नहीं होता। (७९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त—२६.

२७

व्यास उवाच ।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा द्वितीयं भागमायुषः ।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत् सदारः साग्निरेव च ।।१
निक्षिप्य भार्यां पुत्रेषु गच्छेद् वनमथापि वा ।
दृष्ट्वाऽपत्यस्य चापत्यं जर्जरीकृतविग्रहः ।।२
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे प्रशस्ते चोत्तरायणे ।
गत्वाऽरण्यं नियमवांस्तपः कुर्यात् समाहितः ।।३
फलमूलानि पूतानि नित्यमाहारमाहरेत् ।
यताहारो भवेत् तेन पूजयेत् पितृदेवताः ।।४
पूजयित्वाऽतिथिं नित्यं स्नात्वा चाभ्यर्चयेत् सुरान् ।
गृहादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः ।।५
जटाश्च बिभृयान्नित्यं नखरोमाणि नोत्सृजेत् ।
स्वाध्यायं सर्वदा कुर्यान्नियच्छेद् वाचमन्यतः ।।६
अग्निहोत्रं च जुहुयात् पञ्चयज्ञान् समाचरेत् ।
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ।।७
चीरवासा भवेन्नित्यं स्नायात् त्रिषवणं शुचिः ।
सर्वभूतानुकम्पी स्यात् प्रतिग्रहविवर्जितः ।।८

२७

व्यास ने कहा—इस प्रकार आयु के द्वितीय भाग पर्यन्त गृहस्थाश्रम में रहने के उपरान्त (तृतीय भाग में) अग्नि एवं भार्या के सहित वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। (१)

अथवा पुत्र के पुत्र को देखने के उपरान्त शरीर के जर्जर हो जाने पर (अपनी) भार्या (के भरण-पोषण) का उत्तरदायित्व पुत्रों को समर्पित कर वन में जाना चाहिए। (२)

प्रशस्त उत्तरायण के समय शुक्लपक्ष के पूर्वाह्ण में वन में जाने के उपरान्त एकाग्रतापूर्वक नियम धारण कर तप करना चाहिए। (३)

नित्य पवित्र फलों एवं मूलों का आहार जुटाना चाहिए। उसी से नियमित आहार करते हुए पितरों एवं देवों का पूजन करना चाहिए। (४)

नित्य स्नानोपरान्त अतिथियों का पूजन कर देवों का पूजन करना चाहिये। (अथवा) गृह से लाकर एकाग्रतापूर्वक आठ ग्रास का भक्षण करना चाहिये। (५)

नित्य जटा धारण करे एवं नख और रोम का त्याग न करे। नित्य स्वाध्याय करे एवं अन्य विषयों से वाणी को रोके। (६)

अग्निहोत्र सम्बन्धी हवन एवं वन में उपलब्ध मुनियों के विविध पवित्र अन्नों तथा शाक, मूल और फलों से पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए। (७)

नित्य चीरवसन धारण करे तथा तीनों संध्याओं में पवित्रतापूर्वक स्नान करे। सभी प्राणियों पर अनुकम्पा करनी चाहिए एवं प्रतिग्रह (दान लेना) का त्याग करना चाहिये। (८)

दर्शेन पौर्णमासेन यजेत नियतं द्विजः ।
ऋक्षेष्वाग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् ।
उत्तरायणं च क्रमशो दक्षस्यायनमेव च ॥९
वासन्तैः शारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत् पृथक् ॥१०
देवताभ्यश्च तद् हुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ।
शेषं समुपभुञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम् ॥११
वर्जयेन्मधुमांसानि भौमानि कवकानि च ।
भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥१२
न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित् ।
न ग्रामजातान्यार्त्तोऽपि पुष्पाणि च फलानि च ॥१३
श्रावणेनैव विधिना वह्नि परिचरेत् सदा ।
न द्रुह्येत् सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत् ॥१४

(वानप्रस्थी) द्विज को नियमित रूप से क्रमशः दर्श पौर्णमास नक्षत्रयाग, नवशस्येष्टि एवं चातुर्मास याग करना चाहिए। उत्तरायण एवं दक्षिणायन याग करना चाहिये। (९)

स्वयं लाते हुए वसन्त एवं शरद् काल में उत्पन्न (नीवारादि) पवित्र मुनियों के अन्न से पुरोडाश एवं चरु पृथक् पृथक् बनाकर (देवता एवं पितृगण को) वह पवित्र वनोत्पन्न हवि प्रदान करना चाहिए। तदुपरान्त (उस) अवशिष्ट वन्य पवित्र हवि को लवण मिलाकर स्वयं खाना चाहिए। (१०, ११)

मधु मांस, भूमि पर उत्पन्न कवक अर्थात् कुकुरमुत्ता, भूस्तृण अर्थात् मालव देशीय शाकविशेष, शिग्रुक अर्थात् सहिजन एवं श्लेष्मातक अर्थात् लिसोडा के फल का वर्जन करना चाहिए। (१२)

हल से जोती हुई भूमि में उत्पन्न एवं किसी के उत्सृष्ट (त्यक्त वा प्रदत्त) पदार्थ का भी भक्षण नहीं करना चाहिए। ग्राम में उत्पन्न पुष्प और फल का आर्त्त होने पर भी भक्षण नहीं करना चाहिये। (१३)

सर्वदा श्रावणी विधि के अनुसार वह्नि की परिचर्या करनी चाहिये। समस्त प्राणियों से द्रोह नहीं करना चाहिये। निर्द्वन्द्व एवं निर्भय होना चाहिए। (१४)

न नक्तं किंचिदश्नीयाद् रात्रौ ध्यानपरो भवेत् ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं न पत्नीमपि संश्रयेत् ॥१५
यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत् ।
तद् व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥१६
तत्र यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो द्विजातिभिः ।
न हि वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेप्येवमेव हि ॥१७
अधः शयीत सततं सावित्रीजाप्यतत्परः ।
शरण्यः सर्वभूतानां संविभागपरः सदा ॥१८
परिवादं मृषावादं निद्रालस्यं विवर्जयेत् ।
एकाग्निरनिकेतः स्यात् प्रोक्षितां भूमिमाश्रयेत् ॥१९
मृगैः सह चरेद् वासं तैः सहैव च संवसेत् ।
शिलायां शर्करायां वा शयीत सुसमाहितः ॥२०

रात्रि में कुछ भी भोजन नहीं करना चाहिए एवं रात्रि में ध्यान-परायण होना चाहिए। नित्य जितेन्द्रिय, क्रोधरहित, तत्त्वज्ञान का विचारक एवं ब्रह्मचारी होना चाहिए। पत्नी का भी आश्रय नहीं लेना चाहिए। (१५)

जो वन में जाने के उपरान्त कामवश पत्नी से साथ मैथुन करता है उसका वह व्रत लुप्त हो जाता है एवं (ऐसा) द्विज प्रायश्चित्त का भागी होता है। (१६)

वानप्रस्थाश्रम में गर्भ से उत्पन्न होनेवाला द्विज स्पर्श के योग्य नहीं होता। उसका वेद में भी अधिकार नहीं होता। उसके वंश में भी इसी प्रकार की अवस्था रहती है। (१७)

सावित्री (गायत्री) के जप में तत्पर रहते हुए नीचे (भूमि पर) शयन करना चाहिए। सदा सभी प्राणियों को शरण देने वाला एवं दानशील रहना चाहिए। (१८)

परिवाद, असत्य भाषण, निद्रा एवं आलस्य का त्याग करना चाहिए। एकाग्नि एवं गृहशून्य होना चाहिए। एवं प्रोक्षित भूमि पर रहना चाहिए। (१९)

मृगों के साथ विचरण करना एवं उन्हीं के साथ रहना चाहिये। सावधानी के साथ शिला या बालू के ऊपर शयन करना चाहिए। (२०)

सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि वा।
षण्मासनिचयो वा स्यात् समानिचय एव वा ।।२१
त्यजेदाश्वयुजे मासि संपन्नं पूर्वसंचितम् ।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ।।२२
दन्तोलूखलिको वा स्यात् कापोतीं वृत्तिमाश्रयेत् ।
अश्मकुट्टो भवेद् वाऽपि कालपक्वभुगेव वा ।।२३
नक्तं चान्नं समश्नीयाद् दिवा चाहृत्य शक्तितः ।
चतुर्थकालिको वा स्यात् स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ।।२४
चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्त्तयेत् ।
पक्षे पक्षे समश्नीयाद् यवागूं क्वथितां सकृत् ।।२५
पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्त्तयेत् सदा ।
स्वाभाविकैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ।।२६

तत्काल समाप्त होने योग्य फलमूलादि का संग्रह करने वाला होना चाहिए अथवा एक मास, छः मास या एक वर्ष तक के उपयोग के मात्र (फलमूलादि) का संग्रह करना चाहिए । (२१)

आश्विन मास में पूर्व के सञ्चित पदार्थों, जीर्ण वस्त्रों, शाक और फलमूलादि का त्याग करना चाहिये । (२२)

कपोत के सदृश दाँत को ही उलूखल मूसर बनना चाहिए । (अर्थात् कच्चे अनाज की भूंसी इत्यादि दाँतों से ही पृथक् कर खाना चाहिए) । अथवा पत्थर से कूटकर (अनाज इत्यादि का) भक्षण करे या समयानुसार पके हुए (फलमूलादि) का भक्षण करे । (२३)

यथाशक्ति दिन में अन्न (फलमूलादि) लाकर रात्रि में भक्षण करना चाहिए। अथवा एक दिन उपवास के अनन्तर द्वितीय दिन रात्रि में भोजन करना चाहिए। अथवा तीन दिन उपवास के उपरान्त चतुर्थ रात्रि में भोजन करना चाहिए । (२४)

अथवा शुक्ल और कृष्ण पक्ष में चान्द्रायण व्रत की विधि से निर्वाह करना चाहिए । अथवा प्रत्येक पक्ष में एक बार उबाली हुई यवागू का भक्षण करना चाहिए । (२५)

अथवा वैखानस व्रत का पालन करते हुए स्वाभाविक रीति से अपने आप शीर्ण हुए पुष्प, मूल और फलों से सर्वदा निर्वाह करना चाहिये । (२६)

भूमौ वा परिवर्त्तेत तिष्ठेद् वा प्रपदैर्दिनम् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेन्न क्वचिद् धैर्यमुत्सृजेत् ।।२७
ग्रीष्मे पञ्चतपाश्च स्याद् वर्षास्वभ्रावकाशकः ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयंस्तपः ।।२८
उपस्पृश्य त्रिषवणं पितृदेवांश्च तर्पयेत् ।
एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन् वा पिबेत् तदा ।।२९
पञ्चाग्निर्धूमपो वा स्यादुष्मपः सोमपोऽपि वा ।
पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे तु गोमयम् ।
शीर्णपर्णाशिनो वा स्यात् कृच्छ्रैर्वा वर्त्तयेत् सदा ।।३०
योगाभ्यासरतश्च स्याद् रुद्राध्यायी भवेत् सदा ।
अथर्वशिरसोऽध्येता वेदान्ताभ्यासतत्परः ।।३१
यमान् सेवेत सततं नियमांश्चाप्यतन्द्रितः ।
कृष्णाजिनी सोत्तरीयः शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।।३२

भूमि पर लोटना एवं रहना चाहिये । दिन में पैरों द्वारा ही उठते एवं बैठते हुए आवागमन करना चाहिए । कभी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए । (२७)

क्रमशः तप को बढ़ाते हुए ग्रीष्म काल में पञ्चाग्नि का तप करे, वर्षा के दिनों में मुक्त आकाश के नीचे रहे एवं हेमन्त में गीले वस्त्र धारण करे (इस प्रकार क्रमशः तप की वृद्धि करनी चाहिए) । (२८)

आचमन कर तीनों संध्याओं में स्नान एवं देवता तथा पितरों का तर्पण करना चाहिये । एक पैर पर खड़ा रहना चाहिए अथवा सदा किरणों का पान करना चाहिए । (२९)

पञ्चाग्नि का सेवन, धूम्रपान, ऊष्मपान अथवा सोमपान करना चाहिए। शुक्लपक्ष में दुग्धपान एवं कृष्णपक्ष में गोमय पान करना चाहिए । अथवा गिरे हुए पत्तों का भक्षण करना चाहिए अथवा सर्वदा कृच्छ्र व्रत का पालन करना चाहिए । (३०)

सर्वदा रुद्राध्याय का अध्ययन एवं योगाभ्यास करना चाहिए । अथर्ववेद का अध्ययन एवं वेदान्त का अभ्यास करना चाहिए। (३१)

आलस्यरहित होकर निरन्तर यमों एवं नियमों का पालन करना चाहिये । कृष्ण मृगचर्म, उत्तरीय एवं शुक्ल यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये । (३२)

अथ चाग्नीन् समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्परः ।
अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मोक्षपरो भवेत् ॥३३
तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥३४
ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान् वने वसन् ।
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥३५
विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत् ।
विद्याविशेषान् सावित्रीं रुद्राध्यायं तथैव च ॥३६
महाप्रास्थानिकं चासौ कुर्यादनशनं तु वा ।
अग्निप्रवेशमन्यद् वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थितः ॥३७
यस्तु सम्यगिममाश्रमं शिवं
संश्रयेदशिवपुञ्जनाशनम् ।
तापसः स परमैश्वरं पदं
याति यत्र जगतोऽस्य संस्थितिः ॥३८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

२८

व्यास उवाच ।
एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं संन्यासेन नयेत् क्रमात् ॥१
अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ।
योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ॥२
यदा मनसि संजातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु ।
तदा संन्यासमिच्छेच्च पतितः स्याद् विपर्यये ॥३
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा पुनः ।
दान्तः पक्वकषायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत् ॥४
ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् वेदसंन्यासिनः परे ।

तदनन्तर अग्नियों को अपनी आत्मा में आरोपित कर ध्यान करना चाहिए। अग्नि एवं गृह का त्याग कर मुनिव्रत द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। (३३)

तपस्वी विप्रों से ही अपने निर्वाह योग्य भिक्षा की याचना करनी चाहिए। अथवा अन्य गृहस्थों तथा वनवासी द्विजों से भिक्षा लेनी चाहिए। (३४)

अथवा वन में रहते हुए ग्राम से लाकर आठ ग्रास खाना चाहिए। पत्तों के दोने, हाथ अथवा कसोरे इत्यादि के टुकड़े में ही (आहार) ग्रहण (भक्षण) करना चाहिये। (३५)

आत्मज्ञान की सिद्धि हेतु अनेक प्रकार के उपनिषदों का जप करना चाहिए। इसी प्रकार विशेष विद्याओं, गायत्री एवं रुद्राध्याय का जप करना चाहिए। (३६)

अथवा ब्रह्मार्पण विधि का पालन करते हुए महाप्रस्थानिक—अर्थात् मृत्यु पथ का आश्रयी होकर अनशन या अग्निप्रवेश करना चाहिए। (३७)

जो तपस्वी अकल्याण को दूर करने वाले इस कल्याणकारी आश्रम का भलीभाँति अवलम्वन करता है वह उस ईश्वरीय स्थान को प्राप्त करता है जहाँ यह जगत् स्थित है। (३८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त—२७.

२८

व्यास ने कहा :—

इस प्रकार आयु के तीसरे भाग में वन में रहने के उपरान्त क्रमशः आयु के चतुर्थ भाग को संन्यास द्वारा व्यतीत करना चाहिए। (१)

अग्नियों को आत्मा में स्थापित कर योगाभ्यास में तत्पर, शान्त एवं ब्रह्मविद्यापरायण द्विज को संन्यास ग्रहण करना चाहिए। (२)

मन में जब सभी वस्तुओं के प्रति वितृष्णा उत्पन्न हो जाय उसी समय संन्यास की इच्छा करनी चाहिए। इसके विपरीत व्यवहार करने से मनुष्य पतित हो जाता है। (३)

प्राजापत्य अथवा आग्नेय याग करने के उपरान्त इन्द्रियनिग्रही एवं पूर्ण वैराग्य युक्त (द्विज) को ब्रह्माश्रम में प्रवेश करना चाहिए। (४)

कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीर्तिताः ।।५
यः सर्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः ।
प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी स्वात्मन्येव व्यवस्थितः ।।६
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निराशी निष्परिग्रहः ।
प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः ।।७
यस्त्वग्नीनात्मसात्कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः ।
ज्ञेयः स कर्मसंन्यासी महायज्ञपरायणः ।।८
त्रयाणामपि चैतेषां ज्ञानी त्वभ्यधिको मतः ।
न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्गं वा विपश्चितः ।।९
निर्ममो निर्भयः शान्तो निर्द्वन्द्वः पर्णभोजनः ।
जीर्णकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ।।१०
ब्रह्मचारी मिताहारो ग्रामादन्नं समाहरेत् ।
अध्यात्ममतिरासीत निरपेक्षो निरामिषः ।।११
आत्मनैव सहायेन सुखार्थं विचरेदिह ।
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।।१२
कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा ।
नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कदाचन ।
एवं ज्ञात्वा परो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।१३
एकवासाऽथवा विद्वान् कौपीनाच्छादनस्तथा ।
मुण्डी शिखी वाऽथ भवेत् त्रिदण्डी निष्परिग्रहः ।
काषायवासाः सततं ध्यानयोगपरायणः ।।१४
ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद् देवालयेऽपि वा ।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
भैक्ष्येण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेत् क्वचित् ।।१५
यस्तु मोहेन वालस्यादेकान्नादी भवेद् यतिः ।
न तस्य निष्कृतिः काचिद् धर्मशास्त्रेषु कथ्यते ।।१६
रागद्वेषविमुक्तात्मा समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनी स्यात् सर्वनिस्पृहः ।।१७

कुछ लोग ज्ञानसंन्यासी होते हैं, कुछ लोग वेदसंन्यासी होते हैं एवं कुछ लोग कर्मसंन्यासी होते हैं। इस प्रकार तीन प्रकार के संन्यासी कहे गये हैं। (५)

जो सभी प्रकार के सङ्गों से मुक्त, निर्द्वन्द्व, निर्भय एवं अपनी आत्मा में ही स्थित होता है उसे ज्ञानसंन्यासी कहा जाता है। (६)

जो मोक्षार्थी, विजितेन्द्रिय, निष्परिग्रही एवं आशा रहित मनुष्य नित्य वेद का ही अभ्यास करता है उसे वेदसंन्यासी कहा जाता है। (७)

जो द्विज अग्नियों को आत्मसात् करने के उपरान्त ब्रह्मार्पणतत्पर होता है उस महायज्ञपरायण द्विज को कर्म-संन्यासी जानना चाहिये। (८)

इन तीनों में ज्ञानी को श्रेष्ठ माना गया है। उस ज्ञानी का कोई कर्त्तव्य या लिङ्ग (चिह्न) नहीं होता (९)

ममता रहित निर्भय, शान्त, निर्द्वन्द्व, पत्ते का भोजन करने वाले ध्यानपरायण संन्यासी को जीर्ण कौपीन धारण करना चाहिए अथवा नग्न रहना चाहिये। (१०)

ब्रह्मचारी एवं परिमित आहार करने वाला संन्यासी ग्राम से अन्न माँग कर लाये। उसे निरामिषाहारी, निरपेक्ष बैठे हुए अध्यात्म सम्बन्धी विचार करना चाहिए (११)

अपनी ही सहायता से सुख के लिये इस संसार में विचरण करना चाहिए। मृत्यु या जीवन का अभिनन्दन नहीं करना चाहिए। (१२)

जैसे भृत्य (स्वामी के) निर्देश की प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए। कभी भी अध्ययन, प्रवचन या श्रवण नहीं करना चाहिए। ऐसा ज्ञान रखने पर श्रेष्ठ योगी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। (१३)

विद्वान् संन्यासी को एक वस्त्र अथवा कौपीन धारण करना चाहिए। संन्यासी को मुण्डित शिर अथवा जटाधारी, त्रिदण्डी, निष्परिग्रही, काषायवस्त्रधारी एवं निरन्तर ध्यानयोगपरायण होना चाहिए। (१४)

शत्रु, मित्र, मान एवं अपमान में समभाव रखते हुये ग्राम की सीमा पर, वृक्ष के नीचे अथवा देवालय में निवास करना चाहिए। नित्य भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करना चाहिए। कभी भी किसी एक ही (व्यक्ति) का अन्न खाने वाला नहीं होना चाहिए। (१५)

जो संन्यासी मोह या आलस्यवश किसी एक (व्यक्ति) का अन्न खाता है धर्मशास्त्र में उस संन्यासी की मुक्ति का वर्णन नहीं है। (१६)

(संन्यासी को) रागद्वेषशून्य, स्वर्ण और कंकड़ में समानभाव रखने वाला, प्राणियों की हिंसा से निवृत्त, सभी से निःस्पृह एवं मौनधारण करने वाला होना चाहिए। (१७)

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद् वाणीं मनःपूतं समाचरेत् ॥१८
नैकत्र निवसेद् देशे वर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः ।
स्नानशौचरतो नित्यं कमण्डलुकरः शुचिः ॥१९
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं वनवासरतो भवेत् ।
मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मसूत्री जितेन्द्रियः ॥२०
दम्भाहंकारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः ।
आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षमवाप्नुयात् ॥२१
अभ्यसेत् सततं वेदं प्रणवाख्यं सनातनम् ।
स्नात्वाचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु ॥२२
यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः ।
धौतकाषायवसनो भस्मच्छन्नतनूरुहः ॥२३
अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च ।
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥२४
पुत्रेषु वाऽथ निवसन् ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः ।
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम् ॥२५
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तपः परम् ।
क्षमा दया च सन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः ॥२६
वेदान्तज्ञाननिष्ठो वा पञ्च यज्ञान् समाहितः ।
कुर्यादहरहः स्नात्वा भिक्षान्नेनैव तेन हि ॥२७
होममन्त्राञ्जपेन्नित्यं काले काले समाहितः ।
स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात् सावित्रीं संध्ययोर्जपेत् ॥२८
ध्यायीत सततं देवमेकान्ते परमेश्वरम् ।
एकान्नं वर्ज्जयेन्नित्यं कामं क्रोधं परिग्रहम् ॥२९
एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान् ।
कमण्डलुकरो विद्वान् त्रिदण्डी याति तत्परम् ॥३०

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

दृष्टि से देखकर पैर रखना चाहिए, वस्त्र से छानकर जल पीना चाहिए, सत्य से शुद्ध वाणी बोलनी चाहिए एवं मन से शुद्ध आचरण करना चाहिए। (१८)

वर्षाकाल को छोड़कर संन्यासी को एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए। (संन्यासी को) नित्य स्नान एवं शौच में तत्पर, हाथ में कमण्डलु धारण करने वाला एवं पवित्र होना चाहिये। (१९)

(सन्यासी को) नित्य ब्रह्मचर्यव्रतधारी, वनवासी, मोक्षशास्त्रपरायण, ब्रह्मसूत्र का अध्येता एवं जितेन्द्रिय होना चाहिये। (२०)

दम्भ एवं अहङ्कार से शून्य, निन्दा एवं चुगुलखोरी से रहित एवं आत्मज्ञान सम्बन्धी गुणों से युक्त संन्यासी मोक्ष प्राप्त करता है। (२१)

विधानपूर्वक स्नानोपरान्त आचमन कर पवित्रतापूर्वक देवालयादि में प्रणवनामक सनातन वेदमन्त्र का अभ्यास करना चाहिए। (२२)

(संन्यासी को) यज्ञोपवीती, शान्तात्मा, हाथ में कुशाधारण करने वाला, एकाग्रचित्त, धुला हुआ काषायवस्त्र धारण करने वाला तथा शरीर में भस्म धारण करने वाला होना चाहिये। (२३)

संन्यासी को निरन्तर वेदान्तप्रतिपादित अधियज्ञ, आधिदैविक अथवा आध्यात्मिक ब्रह्म (मन्त्र) का जप करना चाहिए। (२४)

अथवा मननशील, एवं ब्रह्मचारी यति को पुत्रों के मध्य रहते हुए नित्य वेद का ही अभ्यास करना चाहिए। (ऐसा करने वाला यति) परम गति प्राप्त करता है। (२५)

इस (सन्यासी के) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, श्रेष्ठ तप, क्षमा, दया एवं सन्तोष विशेष व्रत हैं। (२६)

वेदान्तज्ञान में तत्पर यति को एकाग्रचित्त से भिक्षा में स्नानोपरान्त प्राप्त अन्न से ही पञ्च यज्ञों का सम्पादन करना चाहिए। (२७)

(सन्यासी को) एकाग्रतापूर्वक नित्य यथासमय होममन्त्रों का जप, प्रतिदिन वेदों का अध्ययन एवं दोनों सन्ध्याओं में गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए। (२८)

एकान्त में उस परमेश्वर देव का ध्यान करना चाहिए एवं नित्य एक व्यक्ति के अन्न, काम-क्रोध और परिग्रह का त्याग करना चाहिए। (२९)

एक वस्त्र, अथवा दो वस्त्र धारण करने वाला, शिखाधारी, यज्ञोपवीती, कमण्डलु एवं त्रिदण्डधारण करने वाला विद्वान् (यति) परम पद प्राप्त करता है। (३०)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरि विभाग में अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त—२८.

२९

व्यास उवाच ।

एवं स्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम् ।
भैक्षेण वर्त्तनं प्रोक्तं फलमूलैरथापि वा ।।१
एककालं चरेद् भैक्षं न प्रसज्येत विस्तरे ।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ।।२
सप्तागारं चरेद् भैक्षमलाभात् तु पुनश्चरेत् ।
प्रक्षाल्य पात्रे भुञ्जीयादद्भिः प्रक्षालयेत् तु तत् ।।३
अथवाऽन्यदुपादाय पात्रे भुञ्जीत नित्यशः ।
भुक्त्वा तत् संत्यजेत् पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः ।।४
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ।।५
गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुखः ।
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत् तूष्णीमश्नीयाद् वाग्यतः शुचिः ।।६
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च समाचम्य यथाविधि ।
आदित्ये दर्शयित्वान्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखोत्तरः ।।७
हुत्वा प्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहितः ।
आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम् ।।८
अलाबुं दारुपात्रं च मृण्मयं वैणवं ततः ।
चत्वारि यतिपात्राणि मनुराह प्रजापतिः ।।९
प्रागरात्रे पररात्रे च मध्यरात्रे तथैव च ।
संध्यास्वह्नि विशेषेण चिन्तयेन्नित्यमीश्वरम् ।।१०

२९

व्यास ने कहा—इस प्रकार अपने आश्रम में स्थित नियतात्मा यतियों के लिये भिक्षा अथवा फलमूल द्वारा जीवन-निर्वाह करना कहा गया है। (१)

एक समय ही भिक्षा करनी चाहिये। (भिक्षा का) विस्तार करने में आसक्त नहीं होना चाहिए। क्योंकि भिक्षा (के विस्तार में) आसक्त यति विषयों में भी आसक्त हो जाता है। (२)

सात घरों में भिक्षा माँगनी चाहिए। (उन सात घरों से भिक्षा) न मिलने पर पुनः भिक्षा माँगनी चाहिए। (पात्र को) धोकर उसमें भोजन करना चाहिए एवं भोजनोपरान्त पुनः (पात्र को) धोना चाहिए। (३)

अथवा विना लोभ के जीवन यात्रा हेतु प्रतिदिन नवीन पात्र लाकर उसमें भोजन करना चाहिए एवं भोजनोपरान्त उस पात्र को त्याग देना चाहिए। (४)

गृहस्थ का घर धूमरहित, मूसल के शब्द से शून्य एवं अङ्गारविहीन हो जाने पर तथा घर के सभी लोगों के भोजन करने के उपरान्त और शराव—अर्थात् कसोरे एवं पत्रादि का ढेर लग जाने पर यति को नित्य भिक्षा माँगनी चाहिए। (५)

एक बार "भिक्षा" यह शब्द कह कर भिक्षा माँगने वाले यति को मुख नीचा किये हुये उतने समय तक (भिक्षा के हेतु) ठहरना चाहिये जितनी देर में गाय दुही जाती है। (भिक्षा प्राप्त होने पर) पवित्रतापूर्वक मौनावलम्बन कर भोजन करना चाहिए। (६)

यथाविधि हाथों एवं पैरों को धोने के उपरान्त आचमन कर एवं अन्न को सूर्य की ओर दिखा कर पवित्रतापूर्वक पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख भोजन करना चाहिए। (७)

("प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्रोच्चारण द्वारा) पाँच प्राणाहुति देने के उपरान्त एकाग्रतापूर्वक आठ ग्रास भोजन करना चाहिए। तदुपरान्त आचमन कर परमेश्वर ब्रह्म देव का ध्यान करना चाहिये। (८)

प्रजापति मनु ने (संन्यासी के लिये) लौकी, लकड़ी, मिट्टी एवं बाँस इन चार पदार्थों से बने पात्रों का विधान किया है। (९)

रात्रि के प्रथम भाग, अन्तिम भाग एवं मध्य रात्रि, संध्याओं तथा दिन में विशेष रूप से नित्य ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए। (१०)

कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसंभवम् ।
आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात् तमसः स्थितम् ॥११
सर्वस्याधारभूतानामानन्दं ज्योतिरव्ययम् ।
प्रधानपुरुषातीतमाकाशं दहनं शिवम् ॥१२
तदन्तः सर्वभावानामीश्वरं ब्रह्मरूपिणम् ।
ध्यायेदनादिमद्वैतमानन्दादिगुणालयम् ॥१३
महान्तं परमं ब्रह्म पुरुषं सत्यमव्ययम् ।
सितेतरारुणाकारं महेशं विश्वरूपिणम् ॥१४
ओंकारान्तेऽथ चात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि ।
आकाशे देवमीशानं ध्यायीताकाशमध्यगम् ॥१५
कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम् ।
पुराणं पुरुषं शंभुं ध्यायन् मुच्येत बन्धनात् ॥१६
यद्वा गुहायां प्रकृतौ जगत्संमोहनालये ।
विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारणम् ॥१७
जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते ।

हृदय कमल रूपी आश्रम में विश्वनामक, संसार के उत्पादक, सभी भूतों के आत्मा स्वरूप, तमोगुण के पारगामी, सभी के आधारस्वरूप, प्राणियों को आनन्द देने वाले, ज्योतिस्वरूप, अव्यय, प्रधान एवं पुरुष को अतिक्रमण करने वाले, आकाश, अग्नि एवं शिव स्वरूप, सभी भाव पदार्थों के अन्तस्तत्त्व स्वरूप, ब्रह्मरूपी, आदि रहित, अद्वितीय, आनन्द इत्यादि गुणों के आलय, महान् पुरुष स्वरूप, सत्य, शाश्वत, परम ब्रह्म, स्वरूप कृष्ण एवं अरुण वर्ण वाले विश्वरूपी महेश ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। (११-१४)

ओङ्कार का उच्चारण कर आत्मा को परमात्मा में संस्थापित करने के उपरान्त आकाश मध्यस्थित देव महेश्वर का आकाश में ध्यान करना चाहिए। (१५)

समस्त भाव पदार्थों के कारण स्वरूप, आनन्द के एक मात्र आश्रय, पुराण पुरुष शम्भु का ध्यान करने वाला बन्धन से मुक्त हो जाता है। (१६)

अथवा जगत् के सम्मोहनालय स्वरूप मूलप्रकृति रूपी गुहा में परम व्योम स्वरूप, सभी भूतों के एक मात्र कारण, सभी प्राणियों के जीवन स्वरूप एवं समस्त लोक

आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत् पश्यन्ति मुमुक्षवः ॥१८
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम् ।
अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत संयतः ॥१९
गुह्याद् गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम् ।
योऽनुतिष्ठेन्महेशेन सोऽश्नुते योगमैश्वरम् ॥२०
तस्माद् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ।
ज्ञानं समभ्यसेद् ब्राह्मं येन मुच्येत बन्धनात् ॥२१
मत्वा पृथक् स्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम् ।
आनन्दमजरं ज्ञानं ध्यायीत च पुनः परम् ॥२२
यस्मात् भवन्ति भूतानि यद् गत्वा नेह जायते ।
स तस्मादीश्वरो देवः परस्माद् योऽधितिष्ठति ॥२३
यदन्तरे तद् गगनं शाश्वतं शिवमव्ययम् ।
यदंशस्तत्परो यस्तु स देवः स्यान्महेश्वरः ॥२४
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥२५

का ध्यान कर) उसके मध्य में निहित शुद्ध ज्ञान स्वरूप, अनन्त, सत्य एवं ईशान स्वरूप ब्रह्म का चिन्तन करते हुए संयमपूर्वक बैठना चाहिये। (१७-१९)

यतियों का यह गुह्य से भी अत्यन्त गुह्य ज्ञान बतलाया गया। जो इसका अनुष्ठान करता है उसे महेश द्वारा (प्रदत्त) ईश्वर सम्बन्धी योग प्राप्त होता है। (२०)

अतएव नित्य ध्यानरत एवं आत्मविद्यापरायण होकर ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान को अभ्यास करना चाहिए। जिसके कारण बन्धन से मुक्ति होती है। (२१)

अपनी आत्मा को सम्पूर्ण पदार्थों से पृथक् जानकर अद्वितीय, अजर, आनन्दस्वरूप श्रेष्ठ ज्ञान का निरन्तर ध्यान करना चाहिए। (२२)

जिससे प्राणियों की उत्पत्ति होती है एवं जिसे प्राप्त करने के उपरान्त इस संसार में जन्म नहीं होता, उस परम तत्त्व से भी उत्कृष्ट जिसका स्थान है वही देव ईश्वर है। (२३)

जिसके भीतर नित्य अविनाशी कल्याणमय, अंशस्वरूप आकाश स्थित है वही देव महेश्वर हैं। (२४)

भिक्षुओं के जो व्रत एवं उपव्रत हैं उनमें एक का

उपेत्य च स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं समाहितः ।
प्राणायामसमायुक्तं कुर्यात् सांतपनं शुचिः ॥२६
ततश्चरेत नियमात् कृच्छ्रं संयतमानसः ।
पुनराश्रममागम्य चरेद् भिक्षुरतन्द्रितः ॥२७
न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः ।
तथापि च न कर्त्तव्यं प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ॥२८
एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा ।
उक्त्वाऽनृतं प्रकर्तव्यं यतिना धर्मलिप्सुना ॥२९
परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमन्यतः ।
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः ।
हिंसा चैषापरा दिष्टा या चात्मज्ञाननाशिका ॥३०
यदेतद् द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः ।
स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥३१
एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युतः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥३२
विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद् भिक्षुरतन्द्रितः ॥३३
अकस्मादेव हिंसां तु यदि भिक्षुः समाचरेत् ।
कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रं तु चान्द्रायणमथापि वा ॥३४
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ।
दिवास्कन्दे त्रिरात्रं स्यात् प्राणायामशतं तथा ॥३५
एकान्ने मधुमांसे च नवश्राद्धे तथैव च ।
प्रत्यक्षलवणे चोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ॥३६
ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम् ।
तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत् ॥३७
यद् ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमद्वयम् ।
योऽन्तराऽत्र परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः ॥३८

कामवश स्त्रीप्रसङ्ग करने पर एकाग्रचित्त से प्राणायाम कर पवित्रतापूर्वक सान्तपन नामक व्रत करना चाहिए । (२६)

तदनन्तर नियमानुसार संयतचित्त से कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। तदुपरान्त भिक्षु को आश्रम में आकर बिना आलस्य के अपना कर्म करना चाहिए । (२७)

यद्यपि बुद्धिमानों का यह कहना है कि धर्मयुक्त असत्य से व्रतभङ्ग नहीं होता तथापि यह नहीं करना चाहिए। क्योंकि इसमें आसक्ति भयङ्कर कर्म है। (२८)

असत्य भाषण करने पर धर्माभिलाषी यति को एकरात्रोपवास एवं सौ प्राणायाम करना चाहिए। (२९)

अतिशय आपत्काल उपस्थित होने पर भी भिक्षु को अन्य की वस्तु का अपहरण नहीं करना चाहिए। स्मृतियों के अनुसार चोरी से बढ़कर अन्य कोई अधर्म नहीं है। (चोरी) आत्मज्ञान को नष्ट करने वाली यह दूसरी हिंसा कही गयी है । (३०)

धन (मनुष्यों का) बाहरी प्राण होता है। जो किसी के धन का अपहरण करता है वह उसके प्राण को ही हरता है । (३१)

ऐसा करने वाला दुष्टात्मा आचार से भ्रष्ट एवं व्रतहीन हो जाता है। श्रुति का यह विधान है कि पुनः वैराग्ययुक्त होने पर भिक्षु को शास्त्रानुकूल विधि से एक वर्ष (चान्द्रायण व्रत) करना चाहिए। पुनः वैराग्ययुक्त होने पर भिक्षु को आलस्य रहित भाव से अपना व्रत करना चाहिए । (३२,३३)

यदि भिक्षु से अकस्मात् ही हिंसा हो जाय तो उसे कृच्छ्रातिकृच्छ्र अथवा चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । (३४)

इन्द्रिय की दुर्बलतावश यदि स्त्री को देखकर यति का वीर्य स्खलित हो जाय तो उसे सोलह प्राणायाम करना चाहिए। दिन में वीर्यस्खलन होने पर त्रिरात्रोपवास एवं सौ प्राणायाम करना चाहिए। (३५)

एक ही व्यक्ति का अन्न भक्षण करने, मधु एवं मांस खाने, नवश्राद्ध सम्बन्धी अन्न तथा प्रत्यक्ष लवण खाने पर प्राजापत्यव्रत से पाप की शुद्धि का विधान किया गया है। (३६)

निरन्तर ध्याननिष्ठ पुरुष के सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। अतः महेश्वर का ज्ञान प्राप्त कर ध्यानपरायण होना चाहिए । (३७)

जो आधार स्वरूप, अद्वितीय एवं ज्योतिस्वरूप परम ब्रह्म हैं तथा जो (सभी के) भीतर स्थित परम ब्रह्म है उसे महेश्वर जानना चाहिये । (३८)

एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः ।
तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम् ॥३९
यस्मान्महीयते देवः स्वधाम्नि ज्ञानसंज्ञिते ।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः ॥४०
नान्यद् देवान्महादेवाद् व्यतिरिक्तं प्रपश्यति ।
तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम् ॥४१
मन्यते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् ।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः ॥४२
एकमेव परं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमव्ययम् ।
स देवस्तु महादेवो नैतद् विज्ञाय बध्यते ॥४३
तस्माद् यतेत नियतं यतिः संयतमानसः ।
ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः ॥४४
एष वः कथितो विप्रा यतीनामाश्रमः शुभः ।
पितामहेन विभुना मुनीनां पूर्वमीरितम् ॥४५
नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दद्यादिदमनुत्तमम् ।
ज्ञानं स्वयंभुवा प्रोक्तं यतिधर्माश्रयं शिवम् ॥४६
इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं
पशुपतिपरितोषे यद् भवेदेकहेतुः ।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः
प्रणिहितमनसो ये नित्यमेवाचरन्ति ॥४७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

३०

व्यास उवाच ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ।
हिताय सर्वविप्राणां दोषाणामपनुत्तये ॥१
अकृत्वा विहितं कर्म कृत्वा निन्दितमेव च ।
दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥२
प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राह्मणः क्वचित् ।

ये देव केवल, परम शिव, अक्षर, अद्वितीय एवं आदित्यान्तर्वर्त्ती परम महादेव हैं। (३९)

यतः वे देव ज्ञान संज्ञक एवं आत्मयोग नामक तत्त्व-स्वरूप अपने तेज में पूजित होते हैं अतएव उन्हें महादेव कहा जाता है। (४०)

जो महादेव से भिन्न अन्य देव को नहीं जानता एवं उसी (महादेव स्वरूप) आत्मा को (अपनी) आत्मा मानता है वह परम पद प्राप्त करता है। (४१)

जो अपनी आत्मा को परमेश्वर से भिन्न मानते हैं वे उस देव को नहीं देख सकते। उनका परिश्रम व्यर्थ होता है। (४२)

अद्वितीय परम ब्रह्म ही शाश्वत ज्ञेय ब्रह्म तत्त्व है। वे देव ही महादेव हैं। इसे जान लेने पर (मनुष्य) बन्धन को नहीं प्राप्त होता। (४३)

अतः संयतचित्त ज्ञानयोगरत शान्त एवं महादेव-परायण योगी को नियमपूर्वक (उन महादेव को जानने का) यत्न करना चाहिए। (४४)

हे विप्रो! (मैंने) आपसे शुभ संन्यासाश्रम का वर्णन किया। प्राचीन काल में विभु पितामह ने मुनियों से इसे कहा था। (४५)

पुत्र, शिष्य एवं योगियों के अतिरिक्त अन्य किसी को ब्रह्मा का कहा हुआ यतिधर्म विषयक कल्याणकारी यह उत्तम ज्ञान नहीं देना चाहिए। (४६)

जो इस प्रकार कहे गये यतियो के नियमों के विधान का अव्यग्रभाव से एकाग्रतापूर्वक नित्य पालन करता है उसीके ऊपर पशुपति प्रसन्न होते हैं। ऐसा करने वालों की पुनः उत्पत्ति या विनाश नहीं होता। (४७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरि विभाग में उनतीसवाँ अध्याय समाप्त—२९.

३०

व्यास ने कहा—इसके उपरान्त मैं सभा ब्राह्मणों के हित के लिए एवं दोषों के विनाशार्थ शुभ प्रायश्चित्त-विधि का वर्णन करूँगा। (१)

विहित कर्मों के न करने तथा निन्दित कर्मों के करने पर पुरुष को दोष होता है। प्रायश्चित्त (उन दोषों से) शुद्ध करता है। (२)

यद् ब्रूयुर्ब्राह्मणाः शान्ता विद्वांसस्तत्समाचरेत् ॥३
वेदार्थवित्तमः शान्तो धर्मकामोऽग्निमान् द्विजः ।
स एव स्यात् परो धर्मो यमेकोऽपि व्यवस्यति ॥४
अनाहिताग्नयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः ।
यद् ब्रूयुर्धर्मकामास्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनम् ॥५
अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः ।
वेदाध्ययनसंपन्नाः सप्तैते परिकीर्त्तिताः ॥६
मीमांसाज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजाः ।
एकविंशतिसंख्याताः प्रायश्चित्तं वदन्ति वै ॥७
ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च ।
महापातकिनस्त्वेते यश्चैतैः सह संवसेत् ॥८
संवत्सरं तु पतितैः संसर्गं कुरुते तु यः ।
यानशय्यासनैर्नित्यं जानन् वै पतितो भवेत् ॥९
याजनं योनिसंबन्धं तथैवाध्यापनं द्विजः ।

ब्राह्मण को कभी भी विना प्रायश्चित्त किये नहीं रहना चाहिए। शान्त विद्वान् ब्राह्मण जो कहें उसे करना चाहिये। (३)

एक भी श्रेष्ठ वेदार्थवेत्ता, शान्त, धर्माभिलापी अग्निहोत्री ब्राह्मण जो कहता है वही श्रेष्ठ धर्म होता है। (४)

अनाहिताग्नि (किन्तु) वेदार्थपारगामी धर्माभिलापी तीन ब्राह्मण जो कहें उसको धर्म का साधन समझना चाहिये। (५)

अनेक धर्मशास्त्रों के ज्ञाता, ऊहापोह-विशारद—अर्थात् तर्कशास्त्र कुशल एवं वेदाध्ययनशील सात ब्राह्मणों (का कथन धर्म में प्रमाण माना जाता है)। (६)

मीमांसाज्ञान के तत्त्वज्ञ, वेदान्त कुशल इक्कीस द्विज प्रायश्चित्त का विधान कर सकते हैं। (७)

ब्रह्मघाती, मद्यप, चोर एवं गुरुपत्नीगामी ये सभी व्यक्ति एवं इनके साथ रहने वाले लोग महापापी होते हैं। (८)

जो पतितों के साथ एक वर्ष तक जानते हुए भी नित्य यान, शय्या एवं आसन द्वारा संसर्ग करता है वह पतित हो जाता है। (९)

ज्ञानपूर्वक (पतितों का) यज्ञ कराने, योनिसम्वन्ध अर्थात् विवाहादि द्वारा स्थापित सम्वन्ध करने, अध्यापन करने तथा साथ भोजन करने से द्विज शीघ्र पतित हो

कृत्वा सद्यः पतेज्ज्ञानात् सह भोजनमेव च ॥१०
अविज्ञायाथ यो मोहात् कुर्यादध्यापनं द्विजः ।
संवत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च ॥११
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटिं कृत्वा वने वसेत् ।
भैक्षमात्मविशुद्धचर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥१२
ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्जयेत् ।
विनिन्दन् स्वयमात्मानं ब्राह्मणं तं च संस्मरन् ॥१३
असंकल्पितयोग्यानि सप्तागाराणि संविशेत् ।
विधूमे शनकैर्नित्यं व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ॥१४
एककालं चरेद् भैक्षं दोषं विख्यापयन् नृणाम् ।
वन्यमूलफलैर्वापि वर्त्तयेद् धैर्यमाश्रितः ॥१५
कपालपाणिः खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायणः ।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१६
अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम् ।

जाता है। (१०)

विना जाने मोहवश अध्यापन अथवा एक साथ अध्ययन करने से द्विज एक वर्ष में पतित हो जाता है। (११)

ब्रह्मघाती को आत्मशुद्धि हेतु कुटीर बनाकर बारह वर्ष तक वन में निवास करना चाहिए एवं मृतक का शिर ध्वजा तुल्य धारण कर भिक्षा माँगनी चाहिए। (१२)

(ब्रह्मघाती पुरुष को) अपनी निन्दा तथा उस ब्राह्मण का स्मरण करते हुए ब्राह्मणों के निवास एवं सभी देवमन्दिरों को छोड़ देना चाहिए इस प्रकार समय व्यतीत करना चाहिए। (१३)

पहले से न सोचे हुए, योग्य, धूम रहित, शान्त, अग्निशून्य एवं (घर के) लोगों के भोजन कर लेने पर नित्य शनैः शनैः सात घरों में (भिक्षा के लिये, जाना चाहिए)। (१४)

मनुष्यों से अपना दोष कहते हुए एक समय भिक्षा माँगनी चाहिए। अथवा धैर्यपूर्वक वन में उपलब्ध फलमूलों द्वारा निर्वाह करना चाहिए। (१५)

हाथ में कपाल लिये हुए एवं कपाल (खोपड़ी) युक्त दण्ड लिए हुए ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिये। (इस प्रकार) बारह वर्ष पूर्ण होने पर ब्रह्महत्या दूर होती है। (१६)

अनिच्छापूर्वक किये गये पाप का यह शुभ प्रायश्चित्त

कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित् ॥१७
कुर्यादनशनं वाऽथ भृगोः पतनमेव वा ।
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलं वा प्रविशेत् स्वयम् ॥१८
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत् ।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा मृतस्य तु ॥१९
दीर्घामयान्वितं विप्रं कृत्वानामयमेव तु ।
दत्त्वा चान्नं स दुर्भिक्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥२०
अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा शुध्यते द्विजः ।
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदाय तु ॥२१
सरस्वत्यास्त्वरुणया संगमे लोकविश्रुते ।
शुध्येत् त्रिषवणस्नानात् त्रिरात्रोपोषितो द्विजः ॥२२
गत्वा रामेश्वरं पुण्यं स्नात्वा चैव महोदधौ ।
ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो दृष्ट्वा रुद्रं विमुच्यते ॥२३
कपालमोचनं नाम तीर्थं देवस्य शूलिनः ।
स्नात्वाऽभ्यर्च्य पितॄन् भक्त्या ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥२४
यत्र देवादिदेवेन भैरवेणामितौजसा ।
कपालं स्थापितं पूर्वं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥२५
समभ्यर्च्य महादेवं तत्र भैरवरूपिणम् ।
तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥२६

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

है। इच्छापूर्वक किए गये पाप की शुद्धि मरण द्वारा जाननी चाहिये। (ऐसे पाप की शुद्धि) अन्य किसी भी उपाय से नहीं होती। (१७)

(ज्ञानपूर्वक ब्रह्महत्या करने वाले को) स्वयं अनशन करने अथवा उच्च स्थान से गिरने, या प्रज्वलित अग्नि अथवा जल में प्रवेश करने का प्रायश्चित्त करना चाहिये। (१८)

अथवा (ज्ञानपूर्वक अपने द्वारा ब्राह्मण की हत्या हो जाने पर) ब्रह्महत्या को दूर करने के लिये ब्राह्मण, गौ अथवा मरने वाले के हेतु भलीभाँति अपने प्राणों का त्याग करना चाहिए। (१९)

दीर्घरोगी विप्र को रोगमुक्त करने तथा दुर्भिक्ष के समय अन्न प्रदान करने से ब्रह्महत्या दूर होती है। (२०)

(ब्रह्मघाती) द्विज अश्वमेध यज्ञ (की समाप्ति के उपरान्त होने वाले) अवभृथ स्नान में सम्मिलित होकर अथवा वेदज्ञ ब्राह्मण को अपना सर्वस्व दान देकर (ब्रह्महत्या के पाप से) शुद्ध हो जाता है। (२१)

द्विज सरस्वती एवं अरुणा के लोकप्रसिद्ध सङ्गम में तीनों सन्ध्याकाल में स्नान करने तथा तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करने से शुद्ध हो जाता है। (२२)

ब्रह्मचर्यादि से युक्त द्विज पवित्र रामेश्वर तीर्थ में जाकर समुद्र में स्नान करने के उपरान्त शङ्कर का दर्शन कर पाप से मुक्त हो जाता है। (२३)

त्रिशूलधारी महादेव का कपालमोचन नामक तीर्थ है। वहाँ स्नानोपरान्त भक्ति पूर्वक पितरों की पूजा करने से ब्रह्महत्या दूर होती है। (२४)

पूर्वकाल में अतिशय तेजस्वी देवाधिदेव भैरव ने वहाँ परमेष्ठी ब्रह्मा के कपाल को स्थापित किया था। वहाँ भैरव रूपी महादेव की आराधना, पितरों का तर्पण एवं स्नान करने से ब्रह्महत्या दूर होती है। (२५,२६)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरि विभाग में तीसवाँ अध्याय समाप्त—३०.

३१

ऋषय ऊचुः ।

कथं देवेन रुद्रेण शंकरेणामितौजसा ।
कपालं ब्रह्मणः पूर्व स्थापितं देहजं भुवि ।।१

सूत उवाच ।

शृणुध्वमृषयः पुण्यां कथां पापप्रणाशनीम् ।
माहात्म्यं देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः ।।२
पुरा पितामहं देवं मेरुशृङ्गे महर्षयः ।
प्रोचुः प्रणम्य लोकादिं किमेकं तत्त्वमव्ययम् ।।३
स मायया महेशस्य मोहितो लोकसंभवः ।
अविज्ञाय परं भावं स्वात्मानं प्राह धर्षिणम् ।।४
अहं धाता जगद्योनिः स्वयंभूरेक ईश्वरः ।
अनादिमत्परं ब्रह्म मामभ्यर्च्य विमुच्यते ।।५
अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ।
न विद्यते चाभ्यधिको मत्तो लोकेषु कश्चन ।।६
तस्यैवं मन्यमानस्य जज्ञे नारायणांशजः ।
प्रोवाच प्रहसन् वाक्यं रोषताम्रविलोचनः ।।७
किं कारणमिदं ब्रह्मन् वर्त्तते तव सांप्रतम् ।
अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतदुचितं तव ।।८
अहं धाता हि लोकानां यज्ञो नारायणः प्रभुः ।
न मामृतेऽस्य जगतो जीवनं सर्वदा क्वचित् ।।९
अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः ।
मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम् ।।१०
एवं विवदतोर्मोहात् परस्परजयैपिणोः ।
आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि ।।११
अन्वीक्ष्य देवं ब्रह्माणं यज्ञात्मानं च संस्थितम् ।
प्रोचुः संविग्नहृदया याथात्म्यं परमेष्ठिनः ।।१२

ऋग्वेद उवाच ।

यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्त्तते ।

31

ऋषियों ने कहा—अमित तेजस्वी रुद्र शङ्कर देव ने पूर्वकाल में किस प्रकार ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न कपाल को पृथ्वी पर स्थापित किया । (१)

सूत ने कहा—हे ऋषियो ! इस पापनाशिनी पवित्र कथा एवं बुद्धिमान् देवाधिदेव महादेव का माहात्म्य सुनो । (२)

प्राचीन काल में महर्षियों ने मेरुशृङ्ग पर लोकादि-देव पितामह का दर्शन करने के उपरान्त प्रणामकर यह पूछा कि अद्वितीय अव्यय तत्त्व क्या है । (३)

महेश की माया से मोहित लोकों को उत्पन्न करने वाले उन (ब्रह्माने) परम भाव को न जानकर अभिमान-पूर्वक (ऋषियों से) स्वयं को ही (वह तत्त्व) बतलाया । (४)

मैं जगत् का मूल कारण, धाता, स्वयम्भू, अद्वितीय, अनादि ईश्वर एवं परम ब्रह्म हूँ । मेरी आराधना करने से विमुक्ति होती है । (५)

मैं ही सम्पूर्ण देवों को प्रवृत्त और निवृत्त करने वाला हूँ । संसार में मुझसे अधिक उत्तम कोई नहीं है । (६)

उनके ऐसा मानने पर नारायण के अंश से उत्पन्न (विष्णु) ने क्रोध से आरक्त नेत्र होकर हँसते हुए यह वाक्य कहा— (७)

हे ब्रह्मन् ! सम्प्रति आपके ऐसे व्यवहार का क्या कारण है ? आप अज्ञान से युक्त हैं; आपको यह उचित नहीं है । (८)

मैं लोकों का कर्त्ता यज्ञस्वरूप प्रभु नारायण हूँ । मेरे विना इस संसार का जीवन कभी भी नहीं रह सकता । (९)

मैं ही परम ज्योति हूँ । मैं ही परम गति हूँ । मेरी प्रेरणा से आपने भुवनमण्डल की सृष्टि की है । (१०)

परस्पर विजय की इच्छा रखने वाले उन दोनों के मोहवश विवाद करते समय उन देवों के निकट चारो वेद आये । (११)

ब्रह्मदेव एवं यज्ञरूपी (विष्णु) को देखकर दुःखपूर्ण हृदय से उन्होंने ब्रह्मा से यथार्थ तत्त्व कहा । (१२)

ऋग्वेद ने कहा—

सभी भूत जिसके भीतर स्थित हैं, जिनसे सभी की

यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः ॥१३

यजुर्वेद उवाच ।

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते ।
यमाहुरीश्वरं देवं स देवः स्यात् पिनाकधृक् ॥१४

सामवेद उवाच ।

येनेदं भ्राम्यते चक्रं यदाकाशान्तरं शिवम् ।
योगिभिर्विद्यते तत्त्वं महादेवः स शंकरः ॥१५

अथर्ववेद उवाच ।

यं प्रपश्यन्ति योगेशं यतन्तो यतयः परम् ।
महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् भवः ॥१६

एवं स भगवान् ब्रह्मा वेदानामीरितं शुभम् ।
श्रुत्वाह प्रहसन् वाक्यं विश्वात्माऽपि विमोहितः ॥१७

कथं तत्परमं ब्रह्म सर्वसङ्गविवर्जितम् ।
रमते भार्यया सार्द्धं प्रमथैश्चातिगर्वितैः ॥१८

इतीरितेऽथ भगवान् प्रणवात्मा सनातनः ।
अमूर्त्तो मूर्तिमान् भूत्वा वचः प्राह पितामहम् ॥१९

प्रणव उवाच ।

न ह्येष भगवान् पत्न्या स्वात्मनो व्यतिरिक्तया ।
कदाचिद् रमते रुद्रस्तादृशो हि महेश्वरः ॥२०

अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ।
स्वानन्दभूता कथिता देवी नागन्तुका शिवा ॥२१

इत्येवमुक्तेऽपि तदा यज्ञमूर्त्तेरजस्य च ।
नाज्ञानमगमन्नाशमीश्वरस्यैव मायया ॥२२

तदन्तरे महाज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावनः ।
प्रापश्यदद्भुतं दिव्यं पूरयन् गगनान्तरम् ॥२३

तन्मध्यसंस्थं विमलं मण्डलं तेजसोज्ज्वलम् ।
व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः ॥२४

स दृष्ट्वा वदनं दिव्यं मूर्ध्नि लोकपितामहः ।
तेन तन्मण्डलं घोरमालोकयदनिन्दितम् ॥२५

प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ।

प्रवृत्ति होती है एवं जिसे परम तत्त्व कहा जाता है वे देव महेश्वर हैं। (१३)

यजुर्वेद ने कहा—

समस्त यज्ञों एवं योग द्वारा जिस ईश्वर की अर्चना की जाती है एवं जिसे देव ईश्वर कहा जाता है वे देव पिनाकधारी (शङ्कर) हैं। (१४)

सामवेद ने कहा—

जो आकाश के मध्य कल्याणपूर्ण विश्व का घुमाते हैं एवं जिस तत्त्व को योगी लोग जानते हैं वे ही महादेव शङ्कर हैं। (१५)

अथर्ववेद ने कहा—

प्रयत्नपूर्वक यति लोग जिन देवेश, महेश एवं परम पुरुष रुद्र का दर्शन करते हैं वे देव भगवान् भव (शङ्कर) हैं। (१६)

इस प्रकार विश्वात्मा होते हुये भी भगवान् ब्रह्मा वेदों का शुभ कथन सुनने के उपरान्त हँस पड़े एवं (उन्होंने) मोहवश कहा। (१७)

सर्वसङ्गविवर्जित वह परम ब्रह्म किस प्रकार भार्या एवं अतिगर्वित प्रमथों के साथ रमण करते हैं। (१८)

भगवान् ने मूर्त्तिमान् होकर पितामह से कहा। (१९)

प्रणव ने कहा—

महेश्वर भगवान् रुद्र ईश इस प्रकार के हैं कि वे अपनी आत्मा से भिन्न किसी पत्नी के साथ कभी रमण नहीं करते। (२०)

वे भगवान् ईश स्वयंज्योतिस्वरूप एवं सनातन हैं एवं देवी शिवा आत्मानन्द स्वरूपिणी कही गई हैं (वे देवी अन्यत्र कहीं से) आने वाली नहीं हैं। (२१)

ऐसा कहे जाने पर भी उस समय ईश्वर की ही माया से यज्ञमूर्ति (विष्णु) एवं अजन्मा ब्रह्मा का अज्ञान नष्ट नहीं हुआ। (२२)

इसी बीच विश्वभावन ब्रह्मा ने आकाश मण्डल को पूर्ण करने वाली दिव्य अद्भुत महाज्योति का दर्शन किया। (२३)

हे द्विजोत्तमो! उस (ज्योतिमण्डल के) मध्य में स्थित (एक अन्य) उज्ज्वल तेज वाला दिव्य विमलमण्डल (तेज) मध्याकाश में प्रकट हुआ। (२४)

उन लोकपितामह ब्रह्मा ने उस भयङ्कर (तेजो) मण्डल को देखने के उपरान्त मस्तक पर स्थित अपने दिव्य मुख की ओर देखा। (२५)

क्षणाददृश्यत महान् पुरुषो नीललोहितः ॥२६
त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान् ।
तं प्राह भगवान् ब्रह्मा शंकरं नीललोहितम् ॥२७
जानामि भवतः पूर्वं ललाटादेव शंकर ।
प्रादुर्भावं महेशान मामेव शरणं व्रज ॥२८
श्रुत्वा सगर्ववचनं पद्मयोनेरथेश्वरः ।
प्राहिणोत् पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम् ॥२९
स कृत्वा सुमहद् युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः ।
चकर्त्त तस्य वदनं विरिञ्चस्याथ पञ्चमम् ॥३०
निकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शंभुना ।
ममार चेशयोगेन जीवितं प्राप विश्वसृक् ॥३१
अथानुपश्यद् गिरिशं मण्डलान्तरसंस्थितम् ।
समासीनं महादेव्या महादेवं सनातनम् ॥३२
भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं जटाजूटविराजितम् ॥३३
शार्दूलचर्मवसनं दिव्यमालासमन्वितम् ।
त्रिशूलपाणिं दुष्प्रेक्ष्यं योगिनं भूतिभूषणम् ॥३४
यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम् ।
तमादिदेवं ब्रह्माणं महादेवं ददर्श ह ॥३५
यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसंस्थिता ।
सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल ॥३६
यस्याशेषजगद् बीजं विलयं याति मोहनम् ।
सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते ॥३७
योऽथ नाचारनिरतान् स्वभक्तानेव केवलम् ।
विमोचयति लोकानां नायको दृश्यते किल ॥३८
यस्य वेदविदः शान्ता निर्द्वन्द्वा ब्रह्मचारिणः ।
विदन्ति विमलं रूपं स शंभुर्दृश्यते किल ॥३९
यस्य ब्रह्मादयो देवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः ।
अर्चयन्ति सदा लिङ्गं विश्वेशः खलु दृश्यते ॥४०
यस्याशेषजगद् बीजं विलयं याति मोहनम् ।

होने लगा। क्षणमात्र में उन्होंने महान् नीललोहित, त्रिशूलधारी पिङ्गलवर्णी नागयज्ञोपवीतधारी देव (शङ्कर) को देखा। ब्रह्मा ने उन भगवान् नीललोहित शङ्कर से कहा कि आप महेशान शङ्कर को मैं पूर्वकाल में (अपने) (आत्मा) में ही प्रादुर्भूत हुआ जानता हूँ। अतः आप मेरे ही शरणागत हों। (२६-२८)

तदुपरान्त पद्मयोनि (ब्रह्मा) के गर्वयुक्त वचन को सुनकर ईश्वर ने लोकदाहक कालपुरुष भैरव को भेजा। (२९)

उन कालभैरव ने ब्रह्मा से महान् युद्ध करने के उपरान्त ब्रह्मा के पाँचवें मुख को काट दिया। (३०)

महादेव शम्भु द्वारा मस्तक काट दिये जाने पर ब्रह्मा की मृत्यु हो गयी। किन्तु, ईश के योग द्वारा विश्व-स्रष्टा (ब्रह्मा) जीवित हो गये। (३१)

तदनन्तर (ब्रह्मा ने) मण्डल के मध्य स्थित गिरिश सनातन महादेव को महादेवी के साथ बैठे हुए देखा। (३२)

(उन्होंने) भुजङ्गराज रूपी कङ्कण धारण करने वाले (द्वितीया के) चन्द्रमा के अवयव अर्थात् द्वितीया के चन्द्रमा से विभूषित, कोटि सूर्यतुल्य (प्रकाशमान), जटाजूट से सुशोभित, शार्दूल के चर्म का वस्त्र धारण करने वाले, दिव्यमाला से युक्त, त्रिशूलपाणि, दुष्प्रेक्ष्य, विभूतिभूषण योगी (शङ्कर) को देखा। (३३,३४)

योगीजन अपने हृदय के मध्य जिन ईश्वर का दर्शन करते हैं उन्हीं अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप आदिदेव महादेव का (उन्होंने) दर्शन किया। (३५)

अनन्तयोगैश्वर्य स्वरूप वे ही महेश दिखलायी पड़े जिनकी शक्ति आकाशसंज्ञक श्रेष्ठ देवी हैं। (३६)

जिन्हें एक बार प्रणाम करने से ही सम्पूर्ण मोहजनक जगद्बीज विलीन हो जाता है वे ही रुद्र (ब्रह्मा को) दिखलायी पड़ रहे थे। (३७)

(ब्रह्मा को) वे लोकात्मा (महादेव) दिखलायी पड़ रहे थे जो उन लोगों को भी (संसार बन्धन से) मुक्त कर देते हैं जो आचारयुक्त न होने पर भी केवल उनकी भक्ति करते हैं। (३८)

वेदों के ज्ञाता, शान्त एवं द्वन्द्वरहित ब्रह्मचारी लोग जिसके शुद्धरूप को जानते हैं वही शम्भु दिखलाई पड़ रहे थे। (३९)

ब्रह्मा इत्यादि देवगण एवं ब्रह्मवादी ऋषि लोग सदा जिनके लिङ्ग की आराधना करते हैं वे ही विश्वेश शिव (ब्रह्मा को) दिखलायी पड़ रहे थे। (४०)

जिनको एक बार प्रणाम करने से मोहकारक सम्पूर्ण

सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते ॥४१
विद्यासहायो भगवान् यस्यासौ मण्डलान्तरम् ।
हिरण्यगर्भपुत्रोऽसावीश्वरो दृश्यते किल ॥४२
यस्याशेषजगत्सूतिर्विज्ञानतनुरीश्वरी ।
न मुञ्चति सदा पार्श्वं शंकरोऽसावदृश्यत ॥४३
पुष्पं वा यदि वा पत्रं यत्पादयुगले जलम् ।
दत्त्वा तरति संसारं रुद्रोऽसौ दृश्यते किल ॥४४
तत्सन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः ।
कालः किल स योगात्मा कालकालो हि दृश्यते ॥४५
जीवनं सर्वलोकानां त्रिलोकस्यैव भूषणम् ।
सोमः स दृश्यते देवः सोमो यस्य विभूषणम् ॥४६
देव्या सह सदा साक्षाद् यस्य योगः स्वभावतः ।
गीयते परमा मुक्तिः स योगी दृश्यते किल ॥४७
योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखाऽनिशम् ।
योगं ध्यायन्ति देव्याऽसौ स योगी दृश्यते किल ॥४८
सोऽनुवीक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम् ।
वरासने समासीनमवाप परमां स्मृतिम् ॥४९
लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्यां संस्मृतिं भगवानजः ।
तोषयामास वरदं सोमं सोमविभूषणम् ॥५०

ब्रह्मोवाच ।

नमो देवाय महते महादेव्यै नमो नमः ।
नमः शिवाय शान्ताय शिवायै शान्तये नमः ॥५१
ओं नमो ब्रह्मणे तुभ्यं विद्यायै ते नमो नमः ।
नमो मूलप्रकृतये महेशाय नमो नमः ॥५२
नमो विज्ञानदेहाय चिन्तायै ते नमो नमः ।
नमस्ते कालकालाय ईश्वरायै नमो नमः ॥५३
नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्राण्यै ते नमो नमः ।
नमो नमस्ते कामाय मायायै च नमो नमः ॥५४

संसार का वीज विलीन हो जाता है वे रुद्र दिखलायी पड़ रहे थे। (४१)

जिनके मण्डल के मध्य सरस्वती युक्त भगवान् ब्रह्मा स्थित हैं हिरण्यगर्भ के पुत्र वे ईश्वर दिखलायी पड़ रहे थे। (४२)

सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करने वाला ईश्वरीय विज्ञान रूपी शरीर सर्वदा जिनके पार्श्व का त्याग नहीं करता वे शङ्कर दिखलाई पड़ रहे थे। (४३)

जिनके दोनों चरणों में पुष्प अथवा पत्र समर्पित कर (प्राणी) संसार से तर जाता है वे ही रुद्र (ब्रह्मा को) दिखलायी पड़ रहे थे। (४४)

उन्हीं के समीप रहते हुए सनातन काल सम्पूर्ण सृष्टि का नियन्त्रण करता है। वही योगात्मा काल काल के भी काल दिखलायी पड़ रहे थे। (४५)

(ब्रह्मा को वे ही) सोमात्मक देव दिखलायी पड़ रहे थे जो सम्पूर्ण लोकों के जीवन स्वरूप एवं तीनो ही लोकों के विभूपण हैं तथा चन्द्रमा जिनका आभूषण है। (४६)

स्वभावतः देवी (उमा) के साथ जिनका साक्षात् सम्वन्ध सदा वना रहता है। एवं जिनके (साक्षात्कार से) परम मुक्ति का होना कहा जाता है वे योगी शङ्कर दिखलाई पड़ रहे थे। (४७)

वैराग्यपरायण योगतत्त्वज्ञ योगी लोग निरन्तर देवी के साथ जिनके योग का ध्यान करते हैं वे ही योगी (शङ्कर ब्रह्मा को) दिखलायी पड़ रहे थे। (४८)

श्रेष्ठ आसन पर आसीन महादेवी सहित सनातन महादेव को देखने के उपरान्त उन (ब्रह्मदेव) को श्रेष्ठ स्मृति की प्राप्ति हुई। (४९)

महेश्वर सम्वन्धी दिव्य स्मृति की प्राप्ति होने पर अजन्मा भगवान् (ब्रह्मा) ने सोमविभूषण, सोमस्वरूप वरदाता (शङ्कर) को स्तुति द्वारा प्रसन्न किया। (५०)

ब्रह्मा ने कहा—

महादेव एवं महादेवी को वारम्वार नमस्कार है। शिव को, शान्त को एवं शान्ति तथा शिवा को नमस्कार है। (५१)

ब्रह्म स्वरूप आपको नमस्कार है। विद्या स्वरूप आपको वारम्वार नमस्कार है। मूल प्रकृति स्वरूप आप महेश को वार-वार नमस्कार है। (५२)

विज्ञानमय देह वाले चिन्तनात्मक आपको नमस्कार है। काल के भी काल को नमस्कार है। ईश्वरी को वारंवार नमस्कार है। (५३)

आप रुद्र एवं रुद्राणी को वारंवार नमस्कार है। आप काम (स्वरूप रुद्र) एवं माया (स्वरूपा रुद्राणी) को वारंवार नमस्कार है। (५४)

नियन्त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकायै नमो नमः ।
नमोऽस्तु ते प्रकृतये नमो नारायणाय च ।।५५
योगदायै नमस्तुभ्यं योगिनां गुरवे नमः ।
नमः संसारनाशाय संसारोत्पत्तये नमः ।।५६
नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्त्तये ।
नमः कार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नमः ।।५७
ओंकारमूर्त्तये तुभ्यं तदन्तःसंस्थिताय च ।
नमस्ते व्योमसंस्थाय व्योमशक्त्यै नमो नमः ।।५८
इति सोमाष्टकेनेशं प्रणनाम पितामहः ।
पपात दण्डवद् भूमौ गृणन् वै शतरुद्रियम् ।।५९
अथ देवो महादेवः प्रणतार्तिहरो हरः ।
प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्यां प्रीतोऽस्मि तव सांप्रतम् ।।६०
दत्त्वाऽसौ परमं योगमैश्वर्यमतुलं महत् ।
प्रोवाचाग्रे स्थितं देवं नीललोहितमीश्वरम् ।।६१

समस्त कार्यों के नियामक (शङ्कर) एवं उनमें क्षोभ उत्पन्न करने वाली (उमा) को वारंवार नमस्कार है। प्रकृति एवं नारायण स्वरूप आपको नमस्कार है। (५५)

योग प्रदान करने वाले (देवी) एवं योगियों के गुरु आपको नमस्कार है। संसार को नष्ट एवं उत्पन्न करने वाले (आपको) नमस्कार है। (५६)

नित्यानन्द एवं विभव स्वरूप तथा आनन्दमूर्त्ति आपको नमस्कार है। कार्यविहीन एवं विश्वप्रकृतिस्वरूप आपको नमस्कार है। (५७)

ओङ्कारमूर्त्ति एवं उसके मध्य में स्थित रहने वाले आपको नमस्कार है। आकाश में स्थित व्योमशक्ति स्वरूप आपको वारंवार नमस्कार है। (५८)

पितामह (ब्रह्मा) ने इस सोमाष्टक (नामक स्तुति) द्वारा (शङ्कर को) प्रणाम किया एवं शतरुद्रिय का पाठ करते हुए भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया। (५९)

तदुपरान्त भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले महादेव हर ने (पितामह को) हाथों से उठाकर कहा मैं अब तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। (६०)

उन्हें परम योग एवं महान् अतुलनीय ऐश्वर्य प्रदान करने के उपरान्त (महादेव ने) सम्मुख स्थित नीललोहित देव ईश्वर (रुद्र) से कहा। (६१)

एष ब्रह्माऽस्य जगतः संपूज्यः प्रथमः सुतः ।
आत्मनो रक्षणीयस्ते गुरुर्ज्येष्ठः पिता तव ।।६२
अयं पुराणपुरुषो न हन्तव्यस्त्वयाऽनघ ।
स्वयोगैश्वर्यमाहात्म्यान्मामेव शरणं गतः ।।६३
अयं च यज्ञो भगवान् सगर्वो भवताऽनघ ।
शासितव्यो विरिञ्चस्य धारणीयं शिरस्त्वया ।।६४
ब्रह्महत्यापनोदार्थं व्रतं लोकाय दर्शयन् ।
चरस्व सततं भिक्षां संस्थापय सुरद्विजान् ।।६५
इत्येतदुक्त्वा वचनं भगवान् परमेश्वरः ।
स्थानं स्वाभाविकं दिव्यं ययौ तत्परमं पदम् ।।६६
ततः स भगवानीशः कपर्दी नीललोहितः ।
ग्राहयामास वदनं ब्रह्मणः कालभैरवम् ।।६७
चर त्वं पापनाशार्थं व्रतं लोकहितावहम् ।
कपालहस्तो भगवान् भिक्षां गृह्णातु सर्वतः ।।६८

ये पूजनीय ब्रह्मा जगत के पूज्य (मेरे) प्रथम पुत्र गुरुओं में ज्येष्ठ ये (ब्रह्मा) आपके पिता हैं एवं आपको इनकी रक्षा करनी चाहिए। (६२)

हे निष्पाप ! आपको इन पुराण पुरुष की हत्या नहीं करनी चाहिए। वे अपने योगैश्वर्य के माहात्म्यवश मेरी ही शरण में आये हैं। (६३)

हे अनघ ! ये भगवान् यज्ञ हैं। आपको इस गर्व का शासन करना चाहिए। आप ब्रह्मा के (कटे हुए) शिर को धारण करें। (६४)

ब्रह्महत्या का पाप दूर करने वाले व्रत को प्रदर्शित करते हुए आप संसार में सतत भिक्षा माँगे एवं देवों तथा ब्राह्मणों को प्रतिष्ठित करें। (६५)

ऐसा वचन कहने के उपरान्त भगवान् परमेश्वर अपने दिव्य परमपद स्वरूप स्वाभाविक स्थान को चले गये। (६६)

तदनन्तर उन नीललोहित कपर्दी भगवान् ईश ने ब्रह्मा का मुख कालभैरव को ग्रहण कराया (और कहा—)। (६७)

पाप को नष्ट करने के लिये हाथ में कपाल धारण किये हुए आप भगवान् लोक में हितावह व्रत का पालन करें एवं सर्वत्र भिक्षा ग्रहण करें। (६८)

उक्त्वैवं प्राहिणोत् कन्यां ब्रह्महत्यामिति श्रुताम् ।
दंष्ट्राकरालवदनां ज्वालामालाविभूषणाम् ॥६९
यावद् वाराणसीं दिव्यां पुरीमेष गमिष्यति ।
तावत् त्वं भीषणे कालमनुगच्छ त्रिलोचनम् ॥७०
एवमाभाष्य कालाग्निं प्राह देवो महेश्वरः ।
अटस्व निखिलं लोकं भिक्षार्थी मन्नियोगतः ॥७१
यदा द्रक्ष्यसि देवेशं नारायणमनामयम् ।
तदाऽसौ वक्ष्यति स्पष्टमुपायं पापशोधनम् ॥७२
स देवदेवतावाक्यमाकर्ण्य भगवान् हरः ।
कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम् ॥७३
आस्थाय विकृतं वेषं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
श्रीमत् पवित्रमतुलं जटाजूटविराजितम् ॥७४
कोटिसूर्यप्रतीकाशैः प्रमथैश्चातिगर्वितैः ।
भाति कालाग्निनयनो महादेवः समावृतः ॥७५
पीत्वा तदमृतं दिव्यमानन्दं परमेष्ठिनः ।
लीलाविलासबहुलो लोकानागच्छतीश्वरः ॥७६
तं दृष्ट्वा कालवदनं शंकरं कालभैरवम् ।
रूपलावण्यसंपन्नं नारीकुलमगादनु ॥७७
गायन्ति विविधं गीतं नृत्यन्ति पुरतः प्रभोः ।
सस्मितं प्रेक्ष्य वदनं चक्रुर्भ्रूभङ्गमेव च ॥७८
स देवदानवादीनां देशानभ्येत्य शूलधृक् ।
जगाम विष्णोर्भवनं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥७९
निरीक्ष्य दिव्यभवनं शंकरो लोकशंकरः ।
सहैव भूतप्रवरैः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥८०
अविज्ञाय परं भावं दिव्यं तत्पारमेश्वरम् ।
न्यवारयत् त्रिशूलाङ्कं द्वारपालो महाबलः ॥८१
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा महाभुजः ।
विष्वक्सेन इति ख्यातो विष्णोरंशसमुद्भवः ॥८२
अथैनं शंकरगणो युयुधे विष्णुसंभवम् ।
भीषणो भैरवादेशात् कालवेग इति श्रुतः ॥८३

ऐसा कह कर उन्होंने भयानक दाढ़ एवं मुख वाली एवं ज्वाला के समूह का आभूषण धारण करने वाली ब्रह्महत्या नामक प्रसिद्ध कन्या को भेजा। (६९)

ये जवतक दिव्य वाराणसी पुरी में जाँय तवतक हे भीषण आकार वाली ! तुम इन त्रिशूली का अनुगमन करो। (७०)

ऐसा कहने के उपरान्त देव महेश्वर ने कालाग्नि स्वरूप (महाभैरव) से कहा "मेरे निर्देशानुसार आप भिक्षा माँगते हुए सम्पूर्ण लोक में भ्रमण करें। (७१)

(आप) जव अनामय नारायण का दर्शन करेंगे तव वे पाप को दूर करने वाला स्पष्ट उपाय वतलायेंगे। (७२)

देवाधिदेव का वाक्य सुनने के उपरान्त वे विश्वात्मा कपालपाणि भगवान् हर तीनों भुवनों में भ्रमण करने लगे। (७३)

विकृत वेप धारण करने के उपरान्त अपने तेज से प्रकाशित श्रीसम्पन्न अत्यन्त पवित्र, जटाजूट से सुशोभित-करोड़ों सूर्यतुल्य, कालाग्नि नेत्र महादेव सिद्धों एवं श्रेष्ठ प्रमथों से घिरे हुए सुशोभित होने लगे। (७४,७५)

परमेष्ठी के उस दिव्य अमृत स्वरूप आनन्द का पान कर अतिशय लीला एवं विलास-युक्त ईश्वर लोगों के पास आये। (७६)

उन कालमुख कालभैरव रूप एवं लावण्य से युक्त शङ्कर को देखकर स्त्रियों का समूह उनके पीछे चलने लगा। (७७)

प्रभु के सम्मुख वे (स्यित्राँ) अनेक प्रकार के गीत गाने, नृत्य करने तथा स्मितियुक्त उनके मुख को देखकर भौंहे नचाने लगी। (७८)

वे शूलधारी देवों एवं दानवों के देशों में जाने के उपरान्त विष्णु के लोक में गये जहाँ मधुसूदन (विष्णु) रहते हैं। (७९)

उस दिव्य भवन को देख लोक के कल्याणकारक शङ्कर श्रेष्ठ भूतों के साथ ही उसमें प्रवेश करने लगे। (८०)

उनके दिव्य श्रेष्ठ परमेश्वरीय भाव को न जानकर विष्णु के अंश से उत्पन्न हाथों में शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले, पीताम्वरधारी, महान् भुजा वाले एवं महावलवान् विष्वक्सेन नामक द्वारपाल ने त्रिशूली को रोका। (८१,८२)

तदनन्तर भैरव के आदेश से कालवेग नामक शङ्कर का भयङ्कर गण उस विष्णुसम्भूत (द्वारपाल) से युद्ध करने लगा। (८३)

विजित्य तं कालवेगं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
रुद्रायाभिमुखं रौद्रं चिक्षेप च सुदर्शनम् ।।८४
अथ देवो महादेवस्त्रिपुरारिस्त्रिशूलभृत् ।
तमापतन्तं सावज्ञमालोकयदमित्रजित् ।।८५
तदन्तरे महद्भूतं युगान्तदहनोपमम् ।
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि ।।८६
स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वं परमं बलम् ।
तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधिहता इव ।।८७
निहत्य विष्णुपुरुषं सार्धं प्रमथपुंगवैः ।
विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम् ।।८८
निरीक्ष्य जगतो हेतुमीश्वरं भगवान् हरिः ।
शिरो ललाटात् संभिद्य रक्तधारामपातयत् ।।८९
गृहाण भगवन् भिक्षां मदीयाममितद्युते ।
न विद्यतेऽनाभ्युदिता तव त्रिपुरमर्दन ।।९०
न संपूर्णं कपालं तद् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा प्रवाहिता ।।९१
अथाब्रवीत् कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः ।
संस्तूय वैदिकैर्मन्त्रैर्बहुमानपुरःसरम् ।।९२
किमर्थमेतद् वदनं ब्रह्मणो भवता धृतम् ।
प्रोवाच वृत्तमखिलं भगवान् परमेश्वरः ।।९३
समाहूय हृषीकेशो ब्रह्महत्यामथाच्युतः ।
प्रार्थयामास देवेशो विमुञ्चेति त्रिशूलिनम् ।।९४
न तत्याजाथ सा पार्श्वं व्याहृताऽपि मुरारिणा ।
चिरं ध्यात्वा जगद्योनिः शंकरं प्राह सर्ववित् ।।९५
व्रजस्व भगवन् दिव्यां पुरीं वाराणसीं शुभाम् ।
यत्राखिलजगद्दोषं क्षिप्रं नाशयतीश्वरः ।।९६
ततः सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्यायतनानि च ।
जगाम लीलया देवो लोकानां हितकाम्यया ।।९७
संस्तूयमानः प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः ।
नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः ।।९८

उस कालवेग को जीतकर क्रोध से लाल हुये नेत्रों वाला (द्वारपाल) रुद्र की ओर दौड़ा एवं सुदर्शन चक्र चलाया। (८४)

तदुपरान्त त्रिशूलधारी, शत्रुजयी त्रिपुरारि महादेव ने उस आक्रमणकारी (चक्र) को अवज्ञापूर्वक देखा। (८५)

तदुपरान्त त्रिशूल से (महादेव ने) त्रिशूल द्वारा वक्षस्थल पर प्रहार कर उस प्रलयकालीन अग्नितुल्य महान् प्राणी को पृथ्वी पर गिरा दिया। (८६)

आहत होने के उपरान्त अपने श्रेष्ठ बल का त्याग कर एवं व्याधि से हत प्राणी के तुल्य मृत्यु का दर्शन कर उस (द्वारपाल ने) अपने प्राणों का त्याग कर दिया। (८७)

विष्णु के पुरुष को मार कर (महादेव उस द्वारपाल के) शरीर को लेकर श्रेष्ठ पुरुषों सहित (विष्णु के भवन) के भीतर प्रविष्ट हुए। (८८)

जगत् के हेतु स्वरूप ईश्वर को देखने के उपरान्त भगवान् हरि ने अपने ललाट की शिरा का भेदन कर रक्त की धारा गिरायी। (८९)

हे अमितद्युति भगवन्! आप मेरी भिक्षा ग्रहण करें। हे त्रिपुरार्दन! आपके लिये (कोई) अमङ्गल जनक (भिक्षा) नहीं है। (९०)

सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त परमेष्ठी का कपाल नहीं भरा एवं (विष्णु के कपाल) की वह (रक्त धारा भी) दिव्य सहस्र वर्षों तक बहती रही। (९१)

तदुपरान्त प्रभु नारायण हरि ने वैदिक मन्त्रों द्वारा अत्यन्त आदरपूर्वक स्तुति कर कालरुद्र से कहा— (९२)

"आपने ब्रह्मा का यह शिर क्यों धारण कर रखा है?" भगवान् परमेश्वर ने सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया। (९३)

तदन्तर अच्युत भगवान् हृषीकेश ने ब्रह्महत्या को सम्बोधित कर प्रार्थना की "त्रिशूली को छोड़ दो"। (९४)

मुरारी के कहने पर भी उसने (शंकर) के पार्श्व का त्याग नहीं किया। जगत् के मूल कारण स्वरूप सर्वज्ञ ने देर तक ध्यान कर शंकर से कहा— (९५)

"हे भगवान्! आप दिव्य वाराणसी पुरी में जायँ जहाँ ईश्वर सम्पूर्ण दोषों को शीघ्र नष्ट करते हैं। (९६)

तदुपरान्त लोकहित की कामना से (भैरव) देव लीलापूर्वक सभी गुह्य तीर्थों एवं मन्दिरों में गये। (९७)

हाथ में (ब्रह्मा का) शरीर (शिर) लिये हुये नृत्य कर रहे महायोगी (भैरव के) चतुर्दिक् महायोगी प्रमथ गण स्तुति कर रहे थे। (९८)

तमभ्यधावद् भगवान् हरिर्नारायणः स्वयम् ।
अथास्थायापरं रूपं नृत्यदर्शनलालसः ॥९९
निरीक्षमाणो गोविन्दं वृषेन्द्राङ्कितशासनः ।
सस्मितोऽनन्तयोगात्मा नृत्यति स्म पुनः पुनः ॥१००
अथ सानुचरो रुद्रः सहरिर्धर्मवाहनः ।
भेजे महादेवपुरीं वाराणसीमिति श्रुताम् ॥१०१
प्रविष्टमात्रे देवेशे ब्रह्महत्या कपर्दिनि ।
हा हेत्युक्त्वा सनादं सा पातालं प्राप दुःखिता ॥१०२
प्रविश्य परमं स्थानं कपालं ब्रह्मणो हरः ।
गणानामग्रतो देवः स्थापयामास शंकरः ॥१०३
स्थापयित्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम् ।
उक्त्वा सजीवमस्त्वीशो विष्णवे स घृणानिधिः ॥१०४
ये स्मरन्ति ममाजस्रं कापालं वेषमुत्तमम् ।
तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम् ॥१०५
आगम्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः ।
तर्पयित्वा पितॄन् देवान् मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥१०६
अशाश्वतं जगज्ज्ञात्वा येऽस्मिन् स्थाने वसन्ति वै ।
देहान्ते तत् परं ज्ञानं ददामि परमं पदम् ॥१०७
इतीदमुक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्य जनार्दनम् ।
सहैव प्रमथेशानैः क्षणादन्तरधीयत ॥१०८
स लब्ध्वा भगवान् कृष्णो विष्वक्सेनं त्रिशूलिनः ।
स्वं देशमगत् तूर्णं गृहीत्वा परमं वपुः ॥१०९
एतद् वः कथितं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
कपालमोचनं तीर्थं स्थाणोः प्रियकरं शुभम् ॥११०
य इमं पठतेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः ।
वाचिकैर्मानसैः पापैः कायिकैश्च विमुच्यते ॥१११

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

(शङ्कर का) नृत्य देखने की इच्छा से दूसरा रूप धारण कर भगवान् नारायण हरि स्वयं उनके पीछे चलने लगे। (९९)

वृषभध्वज अनन्तयोगात्मा (शङ्कर) गोविन्द को देखकर हँसते हुए बारंबार नृत्य करने लगे। (१००)

तदुपरान्त अनुचरों एवं हरि के सहित वृषभवाहन रुद्र वाराणसी नामक प्रसिद्ध महादेव की पुरी में पहुँचे। (१०१)

कपर्दी विश्वेश के (वाराणसी में) प्रवेश करते ही ब्रह्महत्या तीव्र स्वर से हाहाकार करती हुई दुःखपूर्वक पाताल में चली गयी। (१०२)

श्रेष्ठ स्थान में प्रवेश कर देव हर शङ्कर ने गणों के सम्मुख ब्रह्मा के कपाल को स्थापित किया। (१०३)

(कपाल को) स्थापित कर कृपानिधि महादेव ने "जीवित हो जाय" ऐसा कहकर (विष्वक्सेन का) वह कलेवर विष्णु को दे दिया। (१०४)

जो मेरे कपालयुक्त उत्तम वेष का सतत स्मरण करेंगे उनके इहलौकिक एवं पारलौकिक पाप शीघ्र नष्ट हो जायेंगे। (१०५)

उस श्रेष्ठ तीर्थ में आने एवं विधिपूर्वक स्नान के उपरान्त पितरों तथा देवों का तर्पणकर (प्राणी) ब्रह्महत्या से छूट जायेगा। (१०६)

जगत् को अनित्य जानकर जो श्रेष्ठ (वाराणसी) पुरी में निवास करते हैं उन्हें देहान्त के समय श्रेष्ठ ज्ञान एवं परम पद प्रदान करता हूँ। (१०७)

ऐसा कहने के उपरान्त जनार्दन का आलिङ्गन कर भगवान् (शङ्कर) प्रमथेश्वरों के साथ ही क्षणमात्र में अन्तर्हित हो गये। (१०८)

त्रिशूली से विष्वक्सेन को प्राप्त करने के उपरान्त (अपना) श्रेष्ठ रूप धारण कर भगवान् कृष्ण शीघ्र अपने स्थान को चले गये। (१०९)

(मैंने) आपलोगों से स्थाणु (शङ्कर) के प्रियकर कल्याणमय एवं महापातकों को विनष्ट करने वाले कपालमोचन तीर्थ का वर्णन किया। (११०)

जो ब्राह्मणों के समीप इस अध्याय को पढ़ता है वह कायिक, मानसिक एवं वाणी पापों से मुक्त हो जाता है। (१११)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में इकतीसवाँ अध्याय समाप्त—३१.

३२

व्यास उवाच ।

सुरापस्तु सुरां तप्तामग्निवर्णां स्वयं पिबेत् ।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते तु द्विजोत्तमः ।।१
गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा ।
पयो घृतं जलं वाऽथ मुच्यते पातकात् ततः ।।२
जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वा नारायणं हरिम् ।
ब्रह्महत्याव्रतं चाथ चरेत् तत्पापशान्तये ।।३
सुवर्णस्तेयकृद् विप्रो राजानमभिगम्य तु ।
स्वकर्म ख्यापयन् ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ।।४
गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद् हन्यात् ततः स्वयम् ।
वधे तु शुद्धयते स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव वा ।।५
स्कन्धेनादाय मुसलं लकुटं वाऽपि खादिरम् ।
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ।।६
राजा तेन च गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ।
आचक्षाणेन तत्पापमेवंकर्माऽस्मि शाधि माम् ।।७
शासनाद् वा विमोक्षाद् वा स्तेनः स्तेयाद् विमुच्यते ।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ।।८
तपसाऽपनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद् ब्रह्महणो व्रतम् ।।९
स्नात्वाऽश्वमेधावभृथे पूतः स्यादथवा द्विजः ।
प्रदद्याद् वाऽथ विप्रेभ्यः स्वात्मतुल्यं हिरण्यकम् ।।१०
चरेद् वा वत्सरं कृच्छ्रं ब्रह्मचर्यपरायणः ।
ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्तये ।।११
गुरोर्भार्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः ।

३२

व्यास ने कहा—

सुरापायी द्विजोत्तम को स्वयं अग्नि के सदृश वर्ण वाली तप्त सुरा का पान करना चाहिये। उस (तप्त सुरा) से शरीर के दग्ध होने पर वह (पाप से) मुक्त हो जाता है। (१)

अग्नि के सदृश वर्ण का गोमूत्र या गोवर का रस अथवा (गौ का) दुग्ध, घृत या जल पीने पर (पाप से) मुक्ति होती है। (२)

उस पाप की शान्ति हेतु जल से भींगा वस्त्र धारण किये हुये प्रयत्नपूर्वक नारायण हरि का ध्यान कर ब्रह्महत्या सम्वन्धी व्रत का पालन करना चाहिए। (३)

सुवर्ण को चोरी करने वाला ब्राह्मण राजा के समीप जाकर अपना कर्म बतलाते हुए यह कहे कि "आप मेरा अनुशासन करें।" (४)

राजा मूसल लेकर स्वयं उसे एक बार मारे। (इससे उसका) वध हो जाने पर ब्राह्मण की चोरी के पाप से शुद्धि हो जाती है अथवा तपस्या द्वारा उसकी शुद्धि होती है। (५)

मूसल या खदिर वृक्ष की लाठी एवं दोनों ओर तीक्ष्ण धार वाली शक्ति या लोहे का दण्ड कन्धे पर लेकर उस (ब्राह्मण) को राजा के पास केश खोले दौड़ते हुए जाना एवं यह कहना चाहिए कि "मैंने यह कर्म किया है। आप मेरा शासन करें"। (६,७)

(राजा के) शासन करने अथवा छोड़ देने पर चोर चोरी से मुक्त हो जाता है। किन्तु उसका शासन न करने से राजा चोर का पाप प्राप्त करता है। (८)

सुवर्ण की चोरी से उत्पन्न पाप को तप द्वारा नष्ट करने की इच्छा वाले द्विज को चीर धारण कर वन में ब्रह्महत्या सम्वन्धी व्रत का पालन करना चाहिए। (९)

अथवा अश्वमेध यज्ञ सम्वन्धी अवभृथ स्नान करने से द्विज पवित्र हो जाता है। अथवा ब्राह्मण को अपने तुल्य स्वर्ण दान करना चाहिए। (१०)

अथवा स्वर्ण की चोरी करने वाले ब्राह्मण को वह पाप दूर करने के लिये ब्रह्मचर्य धारण कर एक वर्ष पर्यन्त कृच्छ्रव्रत का पालन करना चाहिए। (११)

काममोहित होकर गुरुभार्या से समागम करने वाले ब्राह्मण को लोहे की बनी तप्त एवं दीप्त स्त्री का

अवगूहेत् स्त्रियं तप्तां दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम् ।।१२
स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्चलौ ।
आतिष्ठेद् दक्षिणामाशामानिपातादजिह्मगः ।।१३
गुर्वर्थं वा हतः शुद्ध्येच्चरेद् वा ब्रह्महा व्रतम् ।
शाखां वा कण्टकोपेतां परिष्वज्याथ वत्सरम् ।
अधः शयीत नियतो मुच्यते गुरुतल्पगः ।।१४
कृच्छ्रं वाब्दं चरेद् विप्रश्चीरवासाः समाहितः ।
अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा शुद्ध्यते नरः ।।१५
कालेऽष्टमे वा भुञ्जानो ब्रह्मचारी सदाव्रती ।
स्थानासनाभ्यां विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ।।१६
अधःशायी त्रिभिर्वर्षैस्तद् व्यपोहति पातकम् ।
चान्द्रायणानि वा कुर्यात् पञ्च चत्वारि वा पुनः ।।१७
पतितैः संप्रयुक्तानामथ वक्ष्यामि निष्कृतिम् ।
पतितेन तु संसर्गं यो येन कुरुते द्विजः ।
स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत् ।।१८
तप्तकृच्छ्रं चरेद् वाऽथ संवत्सरमतन्द्रितः ।
षाण्मासिके तु संसर्गे प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति ।।१९
एभिर्व्रतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम् ।
पुण्यतीर्थाभिगमनात् पृथिव्यां वाऽथ निष्कृतिः ।।२०
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
कृत्वा तैश्चापि संसर्गं ब्राह्मणः कामकारतः ।।२१
कुर्यादनशनं विप्रः पुण्यतीर्थे समाहितः ।
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं ध्यात्वा देवं कपर्दिनम् ।।२२
न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिर्धर्मवादिभिः ।
तस्मात् पुण्येषु तीर्थेषु दहेद् वाऽपि स्वदेहकम् ।।२३
गत्वा दुहितरं विप्रः स्वसारं वा स्नुषामपि ।

आलिङ्गन करना चाहिए । (१२)

अथवा स्वयं लिङ्ग और अण्डकोशों को काट कर एवं अपनी अञ्जलि में रखकर निष्कपट भाव से दक्षिण दिशा में तब तक जाना चाहिए जब तक शरीरपात न हो जाय । (१३)

गुरु के लिये मारे जाने से (गुरुपत्नीगामी पुरुष) शुद्ध हो जाता है । अथवा उसे ब्रह्महत्या सम्बन्धी व्रत का पालन करना चाहिये । अथवा एक वर्ष पर्यन्त कण्टक-युक्त शाखा का आलिङ्गन करना चाहिये । गुरुपत्नी से समागम करने वाले को नियम पूर्वक नीचे (भूमि पर) सोना चाहिये । इससे वह पापमुक्त होता है । (१४)

अथवा ब्राह्मण को चीर धारण कर एकाग्रतापूर्वक एक वर्ष तक कृच्छ्रव्रत करना चाहिए । अश्वमेध यज्ञ सम्बन्धी अवभृथ स्नान करने से द्विज (गुरुपत्नीगमन के) पाप से शुद्ध हो जाता है । (१५)

सदा ब्रह्मचर्यपूर्वक व्रतधारण कर अष्टम काल में भोजन करना चाहिये । (अर्थात् तीन दिन उपवास करने के उपरान्त चतुर्थ दिन सायंकाल भोजन करना चाहिए)। तीन दिनों तक प्रयत्नपूर्वक स्थान आसन द्वारा-अर्थात् बैठे एवं खड़े रहकर जल पीते हुए (रहना चाहिये) । (१६)

तीन वर्षों तक नीचे (भूमि पर) शयन करने से (ब्राह्मण) उस (गुरुपत्नीगमन के) पाप को दूर करता है । अथवा चार या पाँच चान्द्रायण व्रत करना चाहिये । (१७)

अब पतितों के साथ सम्पर्क करने वालों का प्रायश्चित्त बतलाता हूँ । द्विज जिस पतित के साथ संसर्ग करता है उसे (संसर्ग जनित) पाप को दूर करने के लिये उसी (पतित व्यक्ति) के (हेतु विहित) व्रत का पालन करना चाहिए । (१८)

अथवा आलस्य रहित होकर एक वर्ष तक तप्त कृच्छ्र व्रत करना चाहिए । छः महीनों तक संसर्ग होने पर उपर्युक्त प्रायश्चित्त का आधा करना चाहिये । (१९)

महापातकी लोग इन व्रतों द्वारा अपने पाप को दूर करते हैं । अथवा पृथ्वी पर वर्तमान पवित्र तीर्थों में जाने पर पाप से मुक्ति होती है । (२०)

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुपत्नी गमन करने के उपरान्त अथवा स्वेच्छापूर्वक उपर्युक्त पाप करने वालों से सम्पर्क करने वाला ब्राह्मण तीर्थ में अनशन करे । अथवा एकाग्रतापूर्वक शङ्कर का ध्यान कर (ब्राह्मण को) प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रवेश करना चाहिए । (२१,२२)

धर्मवादी मुनियों ने दूसरा प्रायश्चित्त नहीं बतलाया है । अतः पुण्य तीर्थों में अपना शरीर जला देना चाहिए । (२३)

ज्ञानपूर्वक अपनी पुत्री, बहन या पुत्रवधू के साथ

प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं मतिपूर्वमिति स्थितिः ॥२४
मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम् ।
भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात् कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ ॥२५
चान्द्रायणं च कुर्वीत तस्य पापस्य शान्तये ।
ध्यायन् देवं जगद्योनिमनादिनिधनं परम् ॥२६
भ्रातृभार्यां समारुह्य कुर्यात् तत्पापशान्तये ।
चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसमाहितः ॥२७
पैतृष्वस्रेयीं गत्वा तु स्वस्रेयां मातुरेव च ।
मातुलस्य सुतां वाऽपि गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२८
सखिभार्यां समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥२९
उदक्यागमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति ।
चाण्डालीगमने चैव तप्तकृच्छ्रत्रयं विदुः ।
सह सांतपनेनास्य नान्यथा निष्कृतिः स्मृता ॥३०

समागम करने पर प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रवेश करना चाहिए। (२४)

मौसी, मामी, फूआ तथा भान्जी के साथ समागम करने पर कृच्छ्र एवं अतिकृच्छ्र व्रत का पालन करना चाहिए। (२५)

उस पाप की शान्ति के लिए जगत् के मूल कारण अनादिनिधन श्रेष्ठ हरि का ध्यान करते हुए चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। (२६)

भाई की पत्नी के साथ सहवास करने पर उस पाप की शान्ति हेतु एकाग्रतापूर्वक चार या पाँच चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। (२७)

फूआ की पुत्री, मौसी की पुत्री अथवा मामा की पुत्री के साथ सहवास करने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। (२८)

मित्र की पत्नी तथा साली के साथ समागम करने पर एक अहोरात्र उपवास करने के उपरान्त तप्तकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। (२९)

रजस्वला (स्त्री) के साथ समागम करने पर ब्राह्मण तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करने से शुद्ध होता है। चाण्डाली के साथ गमन करने पर तीन तप्तकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। अथवा सान्तपन व्रत से शुद्धि होती है। अन्य किसी प्रकार निष्कृति नहीं होती। (३०)

मातृगोत्रां समासाद्य समानप्रवरां तथा ।
चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मा समाहितः ॥३१
ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत् ।
कन्यकां दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥३२
अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥३३
बन्धकीगमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुद्धयति ।
गवि मैथुनमासेव्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥३४
अजावी मैथुनं कृत्वा प्राजापत्यं चरेद् द्विजः ।
पतितां च स्त्रियं गत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयति ॥३५
पुल्कसीगमने चैव कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ।
नटीं शैलूषकीं चैव रजकीं वेणुजीविनीम् ।
गत्वा चान्द्रायणं कुर्यात् तथा चर्मोपजीविनीम् ॥३६

माता के गोत्र की स्त्री अथवा समान प्रवर वाले कुल की स्त्री से समागम करने पर संयम धारण कर एकाग्रतापूर्वक चान्द्रायण व्रत करने से शुद्धि होती है। (३१)

ब्राह्मणी के साथ समागम करने पर ब्राह्मण को एक कृच्छ्रव्रत करना चाहिए। कन्या को दूषित करने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। (३२)

अमानुषी स्त्री, रजस्वला, अयोनि एवं जल में वीर्यपात करने पर पुरुष को कृच्छ्र एवं सान्तपन व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। (३३)

व्यभिचारिणी स्त्री के साथ समागम करने पर ब्राह्मण तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करने से शुद्ध होता है। गौ के साथ मैथुन करने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। (३४)

बकरी या भेड़ के साथ मैथुन करने वाले द्विज को प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। पतित स्त्री के साथ सहवास करने से तीन कृच्छ्रव्रत करने से शुद्धि होती है। (३५)

पुल्कसी के साथ समागम करने पर कृच्छ्र एवं चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। नटी, नर्तकी, धोबिन बाँस के द्वारा जीविका निर्वाह करने वाली एवं चर्म द्वारा जीविका निर्वाह करने वाली स्त्री के साथ प्रसङ्ग करने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। (३६)

ब्रह्मचारी स्त्रियं गच्छेत् कथञ्चित्काममोहितः ।
सप्तागारं चरेद् भैक्षं वसित्वा गर्दभाजिनम् ।।३७
उपस्पृशेत् त्रिषवणं स्वपापं परिकीर्त्तयन् ।
संवत्सरेण चैकेन तस्मात् पापात् प्रमुच्यते ।।३८
ब्रह्महत्याव्रतं वापि षण्मासानाचरेद् यमी ।
मुच्यते ह्यवकीर्णी तु ब्राह्मणानुमते स्थितः ।।३९
सप्तरात्रमकृत्वा तु भैक्षचर्याग्निपूजनम् ।
रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।।४०
ओंकारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा ।
संवत्सरं तु भुञ्जानो नक्तं भिक्षाशनः शुचिः ।।४१
सावित्रीं च जपेच्चैव नित्यं क्रोधविवर्जितः ।
नदीतीरेषु तीर्थेषु तस्मात् पापाद् विमुच्यते ।।४२
हत्वा तु क्षत्रियं विप्रः कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम् ।
अकामतो वै षण्मासान् दद्यात् पञ्चशतं गवाम् ।।४३
अब्दं चरेत नियतो वनवासी समाहितः ।
प्राजापत्यं सान्तपनं तप्तकृच्छ्रं तु वा स्वयम् ।।४४
प्रमाप्याकामतो वैश्यं कुर्यात् संवत्सरद्वयम् ।
गोसहस्रं सपादं च दद्याद् ब्रह्महणो व्रतम् ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा ।।४५
संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छूद्रं हत्वा प्रमादतः ।
गोसहस्रार्द्धपादं च दद्यात् तत्पापशान्तये ।।४६
अष्टौ वर्षाणि षट् त्रीणि कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम् ।
हत्वा तु क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं चैव यथाक्रमम् ।।४७
निहत्य ब्राह्मणीं विप्रस्त्वष्टवर्षं व्रतं चरेत् ।
राजन्यां वर्षषट्कं तु वैश्यां संवत्सरत्रयम् ।
वत्सरेण विशुद्धयेत शूद्रां हत्वा द्विजोत्तमः ।।४८
वैश्यां हत्वा प्रमादेन किञ्चिद् दद्याद् द्विजातये ।
अन्त्यजानां वधे चैव कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम् ।

कदाचित् काममोहित होकर स्त्री प्रसङ्ग करने पर ब्रह्मचारी को गदहे का चर्म धारण कर सात घरों में भिक्षा माँगनी चाहिए। (३७)

(एवं उस ब्रह्मचारी को पाप की शुद्धि हेतु) अपने पाप का प्रकट कथन करते हुये तीनों कालों में आचमन करना चाहिए। एक वर्ष पर्यन्त इस प्रकार का आचरण करने से (ब्रह्मचारी) उस पाप से मुक्त हो जाता है। (३८)

व्रतच्युत (पुरुष) ब्राह्मण के कथनानुसार छः मास पर्यन्त ब्रह्महत्या सम्बन्धी व्रत का संयम से पालन कर पापमुक्त हो जाता है। (३९)

भैक्ष्यचर्या एवं अग्निपूजा न करने तथा वीर्यपात होने पर सात रात्रि तक प्रायश्चित्त करना चाहिए। (४०)

एक वर्ष पर्यन्त ओङ्कार युक्त व्याहृतियों का उच्चारण कर रात्रि में भिक्षा में प्राप्त आहार का भोजन करने से शुद्धि होती है। (४१)

नदी के तट एवं तीर्थों में नित्य क्रोधत्यागपूर्वक गायत्री का जप करना चाहिए। इससे (मनुष्य) पाप से मुक्त हो जाता है। (४२)

क्षत्रिय की हत्या करने पर विप्र को ब्रह्महत्या सम्बन्धी व्रत करना चाहिए। अनिच्छापूर्वक (क्षत्रिय का वध हो जाने पर) छः मास पर्यन्त पाँच सौ गायों का दान करना चाहिए। (४३)

अथवा स्वयं वन में रहते हुए एक वर्ष तक एकाग्रता पूर्वक ध्यानयुक्त होकर प्राजापत्य, सान्तपन अथवा तप्तकृच्छ्रव्रत का पालन करना चाहिए। (४४)

अनिच्छापूर्वक वैश्य की हत्या करने पर दो वर्ष तक एक सहस्र दो सौ पचास गायों का दान करना चाहिए अथवा ब्रह्महत्या सम्बन्धी व्रत का पालन करना चाहिये। अथवा कृच्छ्र एवं अतिकृच्छ्र व्रत या चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। (४५)

प्रमादवश शूद्र की हत्या करने पर उस पाप की शान्ति हेतु एक वर्ष पर्यन्त व्रत एवं एक सहस्र एक सौ पचीस गायों का दान करना चाहिए। (४६)

क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र का वध करने पर (उस पाप की शान्ति के लिये) आठ, छः एवं तीन वर्ष पर्यन्त ब्रह्महत्या सम्बन्धी व्रत का पालन करना चाहिए। (४७)

ब्राह्मणी की हत्या करने पर ब्राह्मण को आठ वर्ष पर्यन्त (ब्रह्महत्या सम्बन्धी) व्रत का पालन करना चाहिए। क्षत्राणी की (हत्या) होने पर छः वर्ष तक, वैश्या की हत्या होने पर तीन वर्ष तक एवं शूद्रा की हत्या होने पर एक वर्ष तक (ब्रह्महत्या सम्बन्धी व्रत का पालन करने से) द्विजोत्तम शुद्ध हो जाता है। (४८)

प्रमादवश वैश्य-स्त्री की हत्या करने पर (वधकर्त्ता) द्विज को कुछ दान करे। अन्त्यजों का वध होने पर चान्द्रायण

पराकेणाऽथवा शुद्धिरित्याह भगवानजः ।।४९
मण्डूकं नकुलं काकं दन्दशूकं च मूषिकम् ।
श्वानं हत्वा द्विजः कुर्यात् षोडशांशं व्रतं ततः ।।५०
पयः पिबेत् त्रिरात्रं तु श्वानं हत्वा सुयन्त्रितः ।
मार्जारं वाऽथ नकुलं योजनं वाध्वनो व्रजेत् ।
कृच्छ्रं द्वादशरात्रं तु कुर्यादश्ववधे द्विजः ।।५१
अभ्रीं कार्ष्णायसीं दद्यात् सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ।
पलालभारं षण्डं च सैसकं चैकमाषकम् ।।५२
घृतकुम्भं वराहं च तिलद्रोणं च तित्तिरिम् ।
शुकं द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम् ।।५३
हत्वा हंसं बलाकां च वकं वर्हिणमेव च ।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम् ।।५४
क्रव्यादांस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात् पयस्विनीम् ।
अक्रव्यादान् वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ।।५५
किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे ।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति ।।५६
फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ।
गुल्मवल्लीलतानां तु पुष्पितानां च वीरुधाम् ।।५७
अन्येषां चैव वृक्षाणां सरसानां च सर्वशः ।
फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ।।५८
हस्तिनां च वधे दृष्टं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ।
चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः ।
मतिपूर्वं वधे चास्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते ।।५९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्वात्रिंशोऽध्यायः ।।३२।।

व्रत करना चाहिये। अथवा भगवान् अज के कथनानुसार पराक नामक व्रत करने से शुद्धि होती है। (४९)

मेढ़क, नकुल, काक, बिषैले (सर्पादि) प्राणी, चूहे एवं कुत्ते की हत्या करने पर द्विज को महाव्रत के सोलहवें अंश का पालन करना चाहिए। (५०)

कुत्ते की हत्या करने पर आलस्यरहित होकर तीन रात्रि पर्यन्त जल पीना चाहिए। बिल्ली अथवा नेवले का वध हो जाने पर एक योजन अर्थात् चार कोस मार्ग चलना चाहिए। घोड़े को मारने पर ब्राह्मण को बारह रात्रि पर्यन्त कृच्छ्रव्रत करना चाहिए। (५१)

सर्प की हत्या करने पर श्रेष्ठ द्विज को काले लोहे की (सर्प) प्रतिमा का दान करना चाहिए। नपुंसक की हत्या करने पर एक भार-अर्थात् ८००० तोला-पुआल एवं एक मासा सीसा दान करना चाहिए। (५२)

वराह की हत्या करने पर एक घड़ा घृत एवं तित्तिर की हत्या करने पर एक द्रोण अर्थात् ३२ सेर तिल का दान करना चाहिए। शुक की हत्या करने पर दो वर्ष का बछड़ा एवं क्रौञ्च पक्षी का वध करने पर तीन वर्ष का बछड़ा दान में देना चाहिए। (५३)

हंस, बलाका, वक, मोर, वानर, बाज एवं गिद्ध का वध करने पर ब्राह्मण के निमित्त गौ का दान करना चाहिए। (५४)

मांसभक्षी पशुओं की हत्या करने पर दूध देने वाली गाय का दान करना चाहिए। मांस न खाने वाले पशुओं का वध करने पर बछड़ी का दान करना चाहिए। ऊँट का वध करने पर कृष्णल—अर्थात् घुंघुची (अथवा एक रत्ती सुवर्ण) का दान करना चाहिए। (५५)

अस्थियुक्त प्राणी की हत्या करने पर ब्राह्मण के निमित्त कुछ दान करना चाहिए। अस्थि-रहित प्राणी की हिंसा करने पर प्राणायाम से शुद्धि होती है। (५६)

फल देने वाले वृक्षों को काटने पर एक सौ ऋचाओं का जप करना चाहिए। गुल्म, वल्ली, लताओं, पुष्पित वृक्षों, अन्य सभी प्रकार के रसयुक्त फल एवं पुष्प देने वाले वृक्षों को नष्ट करने पर घृत प्राशन से शुद्धि होती है। (५७, ५८)

हाथी का वध करने पर तप्तकृच्छ्र व्रत करने से शुद्धि होती है। प्रमादवश गाय की हत्या करने पर चान्द्रायण अथवा पराक व्रत करना चाहिए। ज्ञानपूर्वक (गाय की हत्या करने पर) उसका प्रायश्चित्त नहीं है। (५९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३२।।

३३

व्यास उवाच ।
मनुष्याणां तु हरणं कृत्वा स्त्रीणां गृहस्य च ।
वापीकूपजलानां च शुध्येच्चान्द्रायणेन तु ॥१
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः ।
चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥२
धान्यान्नधनचौर्यं तु कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥३
भक्षभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥४
तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ।
चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥५
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ।
अयः कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणाशनम् ॥६
कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥७
नरमांसाशनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् ।
काकं चैव तथा श्वानं जग्ध्वा हस्तिनमेव च ।
वराहं कुक्कुटं चाथ तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥८
क्रव्यादानां च मांसानि पुरीषं मूत्रमेव च ।
गोगोमायुकपीनां च तदेव व्रतमाचरेत् ।
उपोष्य द्वादशाहं तु कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम् ॥९
नकुलोलूकमार्जारं जग्ध्वा सांतपनं चरेत् ।
श्वापदोष्ट्रखराञ्जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।
व्रतवच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैव तु ॥१०

३३

व्यास ने कहा—

मनुष्य, स्त्री, गृह, वापी, कूप, एवं जलाशयों का अपहरण करने पर चान्द्रायण व्रत से शुद्धि होती है। (१)

दूसरे के गृह से तुच्छ द्रव्यों की चोरी करने पर उस पाप से अपनी शुद्धि हेतु सान्तपन एवं कृच्छ्रव्रत करना चाहिए। (२)

अपनी जाति वाले (व्यक्ति के) गृह से इच्छापूर्वक धान्य, अन्न, एवं धन की चोरी करने पर श्रेष्ठ द्विज कृच्छ्रव्रत के अर्धांश से शुद्ध होता है। (३)

भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ, यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल तथा फलों की चोरी करने पर पञ्चगव्य द्वारा शुद्धि होती है। (४)

तृण, काष्ठ, वृक्ष, शुष्क अन्न, गुड़, वस्त्र, चर्म एवं मांस की चोरी करने पर तीन रात्रि पर्यन्त भोजन नहीं करना चाहिए। (५)

मणि, मुक्ता, मूँगा, ताम्र, चाँदी एवं लोहा, तथा कांसा की चोरी करने पर बारह दिन पर्यन्त (चावल का) कण खाना चाहिए। (६)

कपास, रेशम और ऊन, दो खुर एवं एक खुर वाले पशु, पक्षी, गन्ध, औषधियों एवं रस्सी (की चोरी करने पर) तीन दिनों तक जल पीना चाहिए। (७)

मनुष्य का मांस खाने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। काक, कुत्ता, हाथी, वराह अथवा मुर्गा का मांस खाने पर तप्तकृच्छ्र व्रत से शुद्धि होती है। (८)

मांसभक्षी प्राणियों, गौ, श्रृगाल एवं वानरों का मांस, मल, अथवा मूत्र भक्षण करने पर वही (तप्तकृच्छ्र) व्रत करना चाहिए। बारह दिनों तक उपवास कर कूष्माण्ड के साथ घृत की आहुति देनी चाहिए। (९)

नकुल, उलूक एवं बिल्ली का मांस भक्षण करने पर सान्तपन व्रत करना चाहिए। श्वापद अर्थात् जंगली पशु, ऊँट एवं गदहे का भक्षण करने के उपरान्त तप्तकृच्छ्र व्रत से शुद्धि होती है। एतदर्थ पूर्व निर्दिष्ट विधान के अनुसार व्रत के तुल्य संस्कार करना चाहिए। (१०)

वकं चैव वलाकं च हंसं कारण्डवं तथा ।
चक्रवाकं प्लवं जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम् ।।११
कपोतं टिट्टिभं चैव शुकं सारसमेव च ।
उलूकं जालपादं च जग्ध्वाऽप्येतद् व्रतं चरेत् ।।१२
शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च ।
जग्ध्वा चैव कटाहारमेतदेव चरेद् व्रतम् ।।१३
कोकिलं चैव मत्स्यांश्च मण्डूकं भुजगं तथा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्धयति ।।१४
जलेचरांश्च जलजान् प्रतुदान्नखविष्किरान् ।
रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहं चैतदाचरेत् ।।१५
शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थं च तथा कृतम् ।
भुक्त्वा मासं चरेदेतत् तत्पापस्यापनुत्तये ।।१६
वार्त्ताकं भूस्तृणं शिग्रुं खुखुण्डं करकं तथा ।

वक, वलाक, हंस, कारण्डव (हंसविशेष), चक्रवाक एवं प्लव पक्षी का मांस खाने पर बारह दिनों तक उपवास करना चाहिए । (११)

कपोत, टिट्टिभ, शुक, सारस, उलूक एवं जालपाद अर्थात् कलहंस का भक्षण करने पर भी यही व्रत करना चाहिए । (१२)

शिशुमार (सुँइस), नीलकण्ठ, मछली का मांस एवं कटाहार अर्थात् गीदड़ (के मांस का) भोजन करने पर भी वही व्रत करना चाहिए । (१३)

कोयल, मत्स्य, मेढ़क एवं सर्प का मांस खाने पर एक मास पर्यन्त गोमूत्र में पका हुआ यावक अर्थात् यवान्न खाने से शुद्धि होती है । (१४)

जलचर, जलज प्रतुद-अर्थात् चोंच द्वारा ठोकर मार कर आहार करने वाले काकमयूरादि, नख विष्किर अर्थात् तित्तिरादि एवं रक्तपाद-अर्थात् लाल पैरों वाले पक्षियों का मांस खाने पर उपर्युक्त व्रत एक सप्ताह पर्यन्त करना चाहिए । (१५)

कुत्ते का मांस, शुष्क मांस तथा अपने लिये बनाया मांस भोजन करने पर उस पाप को दूर करने के लिये एक मास पर्यन्त यह व्रत करना चाहिए । (१६)

वृन्ताक (बैंगन), भूस्तृण, शिग्रु (सहिजन), खुखुण्ड,

प्राजापत्यं चरेज्जग्ध्वा शङ्खं कुम्भीकमेव च ।।१७
पलाण्डुं लशुनं चैव भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
नालिकां तण्डुलीयं च प्राजापत्येन शुद्धयति ।।१८
अश्मान्तकं तथा पोतं तप्तकृच्छ्रेण शुद्धयति ।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात् ककुभाण्डस्य भक्षणे ।।१९
अलावुं किंशुकं चैव भुक्त्वा चैतद् व्रतं चरेत् ।
उदुम्बरं च कामेन तप्तकृच्छ्रेण शुद्धयति ।।२०
वृथा कृसरसंयावं पायसापूपसंकुलम् ।
भुक्त्वा चैवं विधं त्वन्नं त्रिरात्रेण विशुद्धयति ।।२१
पीत्वा क्षीराण्यपेयानि ब्रह्मचारी समाहितः ।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्धयति ।।२२
अनिर्दशाहं गोक्षीरं माहिषं चाजमेव च ।
संधिन्याश्च विवत्सायाः पिबन् क्षीरमिदं चरेत् ।।२३

करक, शङ्ख एवं कुम्भीक का भक्षण करने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए । (१७)

प्याज एवं लहसुन खाने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । नालिका शाक एवं तण्डुलीयक-अर्थात् चौराई का साग खाने पर प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है । (१८)

अश्मान्तक तथा पोत का भक्षण करने पर तप्तकृच्छ्र से शुद्धि होती है ककुभ के अण्ड का भक्षण करने पर प्रजापत्य से शुद्धि होती है । (१९)

अलावु (लौकी) एवं किंशुक–अर्थात् पलाश का भक्षण करने पर भी यह व्रत करना चाहिये । इच्छा-पूर्वक उदुम्बर का भक्षण करने पर तप्तकृच्छ्र से शुद्धि होती है । (२०)

(श्राद्धादि प्रयोजन के विना ही) कृसर, संयाव अर्थात् हलुवा, खीर एवं मालपूआ के सदृश भक्ष्यान्न का भोजन करने पर तीन रात्रि तक (व्रत करने से) शुद्धि होती है । (२१)

पीने के अयोग्य दुग्ध पीने से सावधानी पूर्वक गोमूत्र में पके यव का आहार करने पर ब्रह्मचारी एक महीने में शुद्ध होता है । (२२)

(बच्चा उत्पन्न करने के उपरान्त) विना दस दिन व्यतीत हुये अथवा गर्भिणी एवं विना बच्चे वाली गौ,

एतेषां च विकाराणि पीत्वा मोहेन मानवः ।
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुद्धयति ।।२४
भुक्त्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा ।
चान्द्रायणेन शुद्धयेत ब्राह्मणस्तु समाहितः ।।२५
यस्याग्नौ हूयते नित्यं न यस्याग्रं न दीयते ।
चान्द्रायणं चरेत् सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः ।।२६
अभोज्यानां तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम् ।
अन्तावसायिनां चैव तप्तकृच्छ्रेण शुद्धयति ।।२७
चाण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणं चरेत् ।
बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्राब्दं पुनः संस्कारमेव च ।।२८
असुरामद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम् ।
अभोज्यान्नं तु भुक्त्वा च प्राजापत्येन शुद्धयति ।।२९
विण्मूत्रपाशनं कृत्वा रेतसश्चैतदाचरेत् ।
अनादिष्टेषु चैकाहं सर्वत्र तु यथार्थतः ।।३०
विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ।
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।।३१
अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ।।३२
क्रव्यादां पक्षिणां चैव प्राश्य मूत्रपुरीषकम् ।
महासांतपनं मोहात् तथा कुर्याद् द्विजोत्तमः ।
भासमण्डूककुररे विष्किरे कृच्छ्रमाचरेत् ।।३३
प्राजापत्येन शुद्धयेत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने ।
क्षत्रिये तप्तकृच्छ्रं स्याद् वैश्ये चैवातिकृच्छ्रकम् ।
शूद्रोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम् ।।३४
सुराभाण्डोदरे वारि पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ।
शुनोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुद्धयति ।

भैंस का एवं बकरी का दूध पीने पर यही व्रत करना चाहिये । (२३)

इनके विकार अर्थात् घृत या दधि इत्यादि का मोहवश भक्षण करने पर मनुष्य सात रात्रि पर्यन्त गोमूत्र में पके यव का भोजन कर शुद्ध हो जाता है । (२४)

नवश्राद्ध, जननाशौच एवं मरणाशौच में भोजन करने पर ब्राह्मण सावधानीपूर्वक चान्द्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है । (२५)

जो नित्य अग्नि में हवन करता है किन्तु अन्न का अग्रासन नहीं देता उसका अन्न खाने पर द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । (२६)

समस्त अभोज्य जातियों एवं अन्त्यजों का पक्वान्न खाने पर तप्तकृच्छ्र से शुद्धि होती है । चाण्डाल का अन्न खाने पर द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । (२७)

चाण्डाल का अन्न खाने पर द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिये । बुद्धिपूर्वक (ऐसा करने पर) एक वर्ष पर्यन्त कृच्छ्रव्रत का पालन एवं पुनः संस्कार करना चाहिए । (२८)

सुराभिन्न मद्य का पान करने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । अखाद्य अन्न खाने पर प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है । (२९)

मल, मूत्र एवं वीर्य का भक्षण करने पर भी यही (प्राजापत्य) व्रत करना चाहिए । समस्त अनादिष्ट पापों में यथानियम एक दिन का उपवास करना चाहिए । (३०)

ग्रामशूकर, गदहा, ऊँट शृंगाल, बन्दर एवं काक के मलमूत्र का भक्षण करने पर द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । (३१)

अज्ञानपूर्वक मलमूत्र का भक्षण करने एवं सुरा का स्पर्श करने पर तीन वर्ण वाले द्विजाति के मनुष्यों का पुनः संस्कार होना चाहिये । (३२)

मोहवश मांसभक्षी पशुओं एवं पक्षियों के मलमूत्र का भक्षण करने पर श्रेष्ठ द्विज को महासान्तपन नामक व्रत करना चाहिए । गृध्र, मेढ़क, कुरर पक्षी एवं विष्किर (नख से बिखेर कर खाने वाले पक्षी) का भक्षण करने पर (अथवा इनके विण्मूत्र का भक्षण करने पर) कृच्छ्रव्रत करना चाहिये । (३३)

ब्राह्मण का उच्छिष्ट भक्षण करने पर प्राजापत्य से शुद्धि होती है । क्षत्रिय (का उच्छिष्ट खाने पर) तप्तकृच्छ्र, वैश्य (का उच्छिष्ट भक्षण करने पर) अतिकृच्छ्र एवं शूद्र का उच्छिष्ट भक्षण करने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । (३४)

सुरा के पात्र में जल पीने पर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । कुत्ते का उच्छिष्ट भक्षण करने पर ब्राह्मण तीन रात्रि पर्यन्त (उपवास) करने से शुद्ध होता है । इच्छापूर्वक ऐसा करने वाले को गोमूत्र में सिद्ध यवान्न

गोमूत्रयावकाहारः पीतशेषं च रागवान् ।।३५
अपो मूत्रपुरीषाद्यैर्दूषिताः प्राशयेद् यदा ।
तदा सांतपनं प्रोक्तं व्रतं पापविशोधनम् ।।३६
चाण्डालकूपभाण्डेषु यदि ज्ञानात् पिबेज्जलम् ।
चरेत् सांतपनं कृच्छ्रं ब्राह्मणः पापशोधनम् ।।३७
चाण्डालेन तु संस्पृष्टं पीत्वा वारि द्विजोत्तमः ।
त्रिरात्रेण विशुद्ध्येत पञ्चगव्येन चैव हि ।।३८
महापातकिसंस्पर्शे भुङ्क्तेऽस्नात्वा द्विजो यदि ।
बुद्धिपूर्वं तु मूढात्मा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ।।३९
स्पृष्ट्वा महापातकिनं चाण्डालं वा रजस्वलाम् ।
प्रमादाद् भोजनं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ।।४०
स्नानार्हो यदि भुञ्जीत अहोरात्रेण शुद्ध्यति ।
बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः ।।४१
शुष्कपर्युषितादीनि गवादिप्रतिदूषितम् ।
भुक्त्वोपवासं कुर्वीत कृच्छ्रपादमथापि वा ।।४२
संवत्सरान्ते कृच्छ्रं तु चरेद् विप्रः पुनः पुनः ।
अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ।।४३
व्रात्यानां यजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ।।४४
ब्राह्मणादिहतानां तु कृत्वा दाहादिकाः क्रियाः ।
गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येन शुद्ध्यति ।।४५
तैलाभ्यक्तोऽथवा कुर्याद् यदि मूत्रपुरीषके ।
अहोरात्रेण शुद्ध्येत श्मश्रुकर्म च मैथुनम् ।।४६
एकाहेन विवाहाग्नि परिहार्य द्विजोत्तमः ।
त्रिरात्रेण विशुद्ध्येत त्रिरात्रात् षडहं पुनः ।।४७
दशाहं द्वादशाहं वा परिहार्य प्रमादतः ।

का आहार एवं गायों के पीने से बचे जल का पान करना चाहिए । (३५)

यदि मलमूत्रादि से दूषित जलपान कर ले तो कठिन सान्तपन व्रत करने से पाप की शुद्धि होती है । (३६)

ब्राह्मण यदि ज्ञानपूर्वक चाण्डाल के कूप या पात्र में जलपान कर ले तो उसे पाप की शुद्धि हेतु कृच्छ्र सान्तपन व्रत करना चाहिए । (३७)

चाण्डाल से स्पृष्ट जल पीने पर श्रेष्ठ द्विज तीन रात्रि पर्यन्त पञ्चगव्य ग्रहण करने से शुद्ध होता है । (३८)

महापातकी का संसर्ग होने पर, विना स्नान किये यदि द्विज जान बूझकर मोहवश भोजन करता है तो उसे तप्तकृच्छ्र करना चाहिये । (३९)

प्रमादवश महापातकी, चाण्डाल या रजस्वला का स्पर्श कर भोजन करने पर तीन रात्रि पर्यन्त उपवास से शुद्धि होती है । (४०)

भगवान् ब्रह्मा ने कहा है कि स्नान करने योग्य व्यक्ति यदि (विना स्नान किये अज्ञानवश) भोजन करता है तो वह अहोरात्र उपवास करने से शुद्ध हो जाता है। किन्तु, ज्ञानपूर्वक भोजन करने पर कृच्छ्रव्रत करने से शुद्धि होती है । (४१)

शुष्क, पर्युषित अर्थात् वासी एवं गौ इत्यादि द्वारा दूषित (पदार्थों) का भक्षण करने पर उपवास अथवा कृच्छ्रव्रत का चतुर्थांश व्रत करना चाहिए । (४२)

ब्राह्मण को अज्ञानपूर्वक किये भोजन की शुद्धि के निमित्त एवं विशेष रूप से ज्ञानपूर्वक किये भोजन की शुद्धि हेतु वर्ष के अन्त में नियमपूर्वक वारंवार कृच्छ्रव्रत करना चाहिए । (४३)

व्रात्य-अर्थात् संस्कारहीन पुरुषों का यज्ञ कराने एवं अन्यों (असगोत्रियों या अन्य वर्ण वालों का) का अन्त्येष्टि कर्म, अभिचार कर्म तथा अहीन नामक यज्ञ करने पर तीन कृच्छ्रव्रत करने से शुद्धि होती है । (४४)

ब्राह्मणादि द्वारा मारे गये पुरुषों का दाहादिक कर्म करने के उपरान्त गोमूत्र में पके यवान्न का आहार करने एवं प्राजापत्य व्रत करने से शुद्धि होती है । (४५)

तेल लगाकरके मलमूत्र का त्याग करने, श्मश्रुकर्म (दाढ़ी वनाना), एवं मैथुन करने से अहोरात्र में शुद्धि होती है । (४६)

एक दिन विवाहाग्नि अर्थात् गार्हपत्याग्नि का त्याग अर्थात् उसमें दैनिक हवन न करने से श्रेष्ठ द्विज तीन दिन (उपवास करने) से शुद्ध होता है एवं तीन दिनों तक (हवनादि का त्याग करने पर) छः दिनों के उपवास से शुद्ध होता है । (४७)

प्रमादवश दस या वारह दिनों तक (गार्हपत्याग्नि

कृच्छ्रं चान्द्रायणं कुर्यात् तत्पापस्यापनुत्तये ।।४८
पतिताद् द्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुद्धयति ।
चरेत् सांतपनं कृच्छ्रमित्याह भगवान् प्रभुः ।।४९
अनाशकनिवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा ।
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च ।।५०
पुनश्च जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृता द्विजाः ।
शुद्धयेयुस्तद् व्रतं सम्यक् चरेयुर्धर्मवर्द्धनाः ।।५१
अनुपासितसंध्यस्तु तदहर्यापको वसेत् ।
अनशनन् संयतमना रात्रौ चेद् रात्रिमेव हि ।।५२
अकृत्वा समिदाधानं शुचिः स्नात्वा समाहितः ।
गायत्र्यष्टसहस्रस्य जप्यं कुर्याद् विशुद्धये ।।५३
उपासीत न चेत् संध्यां गृहस्थोऽपि प्रमादतः ।
स्नात्वा विशुद्धयते सद्यः परिश्रान्तस्तु संयमात् ।।५४

का) त्याग करने पर उस पाप की शान्ति हेतु कृच्छ्र चान्द्रायण करना चाहिए । (४८)

भगवान् प्रभु (पितामह या मनु ?) ने कहा है कि पतित व्यक्ति से (किसी) द्रव्य (का दान) लेने पर उस वस्तु का त्याग करने से शुद्धि होती है । इसके निमित्त विधि के अनुसार कृच्छ्र सान्तपन व्रत भी करना चाहिए । (४९)

अनाशक अर्थात् प्रायोपवेशन व्रत से भ्रष्ट तथा प्रव्रज्या अर्थात् संन्यासाश्रम से च्युत व्यक्ति को तीन कृच्छ्र एवं तीन चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । (५०)

पुनः जातकर्मादि संस्कारों से संस्कृत होने पर धर्म की वृद्धि चाहने वाले द्विजों को भलीभाँति उस व्रत का पालन करना चाहिए । (५१)

(दिन में) सन्ध्योपासन न करने पर विना भोजन किये संयतचित्त से (दिन भर) विताना चाहिए एवं रात्रि में (सायं-सन्ध्या न करने पर) रात्रि वैसे विताना चाहिए । (५२)

(गार्हपत्याग्नि में) समिधा न डालने पर स्नानोपरान्त पवित्रतापूर्वक एकाग्रचित्त से (पाप की) शुद्धि हेतु आठ सहस्र गायत्री का जप करना चाहिए । (५३)

गृहस्थाश्रम में रहते हुये भी व्यक्ति यदि प्रमादवश सन्ध्योपासना नहीं करता तो स्नान करने से वह तत्काल शुद्ध हो जाता है एवं थकावट के कारण सन्ध्या न करने वाला संयम करने से शुद्ध होता है । (५४)

वेदोदितानि नित्यानि कर्माणि च विलोप्य तु ।
स्नातकव्रतलोपं तु कृत्वा चोपवसेद् दिनम् ।।५५
संवत्सरं चरेत् कृच्छ्रमग्न्युत्सादी द्विजोत्तमः ।
चान्द्रायणं चरेद् व्रात्यो गोप्रदानेन शुद्धयति ।।५६
नास्तिक्यं यदि कुर्वीत प्राजापत्यं चरेद् द्विजः ।
देवद्रोहं गुरुद्रोहं तप्तकृच्छ्रेण शुद्धयति ।।५७
उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः ।
त्रिरात्रेण विशुद्धयेत् तु नग्नो वा प्रविशेज्जलम् ।।५८
षष्ठान्नकालतामासं संहिताजप एव च ।
होमाश्च शाकला नित्यमपाङ्क्तानां विशोधनम् ।।५९
नीलं रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणो वस्त्रमेव हि ।
अहोरात्रोषितः स्नातः पञ्चगव्येन शुद्धयति ।।६०
वेदधर्मपुराणानां चण्डालस्य तु भाषणे ।

वेदविहित नित्य कर्मों एवं स्नातक के व्रत का लोप करने पर (स्नातक को) एक दिन उपवास करना चाहिए । (५५)

अग्नि का परित्याग करने वाले श्रेष्ठ द्विज को एक वर्ष पर्यन्त कृच्छ्रव्रत करना चाहिए । व्रात्य-अर्थात् संस्कारहीन व्यक्ति चान्द्रायण व्रत करने एवं गोदान करने से शुद्ध होता है । (५६)

नास्तिकता करने वाले द्विज को प्राजापत्य व्रत करना चाहिए । देवद्रोह एवं गुरुद्रोह करने पर तप्तकृच्छ्र व्रत करने से शुद्धि होती है । (५७)

इच्छापूर्वक ऊँट या गदहे की सवारी करने पर तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करने से शुद्धि होती है । अथवा नग्न होकर जल में प्रवेश करना चाहिए । (५८)

संहिता का जप करते हुए एक मास पर्यन्त दो दिनों के उपवासोपरान्त तीसरे दिन रात्रि में भोजन करने तथा नित्य शाकल मन्त्र से शाकल होम करने से अपाङ्क्त-अर्थात् पंक्तिदूषित व्यक्तियों की शुद्धि होती है । (५९)

नील या रक्त वस्त्र धारण करने पर ब्राह्मण अहोरात्र के उपवासोपरान्त स्नान कर पञ्चगव्य का पान करने से शुद्ध होता है । (६०)

चाण्डालों को वेद, धर्मशास्त्र एवं पुराणों का उपदेश करने पर चान्द्रायण व्रत करने से शुद्धि होती है । इसके

चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यान्न ह्यन्या तस्य निष्कृतिः ।।६१
उद्बन्धनादिनिहतं संस्पृश्य ब्राह्मणः क्वचित् ।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यात् प्राजापत्येन वा पुनः ।।६२
उच्छिष्टो यद्यनाचान्तश्चाण्डालादीन् स्पृशेद् द्विजः ।
प्रमादाद् वै जपेत् स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम् ।।६३
द्रुपदानां शतं वापि ब्रह्मचारी समाहितः ।
त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ।।६४
चण्डालपतितादींस्तु कामाद् यः संस्पृशेद् द्विजः ।
उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्धये ।।६५
चाण्डालसूतकशवांस्तथा नारीं रजस्वलाम् ।
स्पृष्ट्वा स्नायाद् विशुद्ध्यर्थं तत्स्पृष्टं पतितं तथा ।।६६
चाण्डालसूतकशवैः संस्पृष्टं संस्पृशेद् यदि ।
प्रमादात् तत आचम्य जपं कुर्यात् समाहितः ।।६७

अतिरिक्त उस (उपदेशकर्ता की पापमुक्ति का) अन्य कोई उपाय नहीं है। (६१)

उद्बन्धादि-जल में डूब कर अथवा फन्दा इत्यादि—द्वारा मरे व्यक्ति का स्पर्श होने पर ब्राह्मण चान्द्रायण अथवा प्राजापत्य व्रत करने से शुद्ध होता है। (६२)

प्रमादवश यदि द्विज जूठे मुँह विना आचमन किये चाण्डालादि का स्पर्श करे तो उसे स्नानोपरान्त आठ सहस्र गायत्री का जप करना चाहिए। (६३)

अथवा (उपर्युक्त दोष के प्रशमन निमित्त) ब्रह्मचारी को तीन रात्रि पर्यन्त उपवास कर एकाग्रतापूर्वक सौ बार द्रुपदा मन्त्र का जप करना चाहिए। तत्पश्चात् पञ्चगव्य ग्रहण करने पर उसकी शुद्धि होती है। (६४)

जो द्विज इच्छापूर्वक उच्छिष्टमुख चाण्डाल एवं पतित इत्यादि का स्पर्श करता है उसे शुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। (६५)

चाण्डाल, अशौचयुक्त व्यक्ति, शव, रजस्वला स्त्री, उनसे स्पृष्ट व्यक्तियों तथा पतित का स्पर्श करने पर विशुद्धि के हेतु स्नान करना चाहिए। (६६)

प्रमादवश चाण्डाल, अशौचयुक्त व्यक्ति एवं शव द्वारा स्पष्ट व्यक्ति का स्पर्श करने पर स्नानोपरान्त आचमन कर एकाग्रतापूर्वक जप करना चाहिए। (६७)

देव पितामह ने कहा है कि (चाण्डालादि का) स्पर्श

तत्स्पृष्टस्पर्शिनं स्पृष्ट्वा बुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः ।
आचमेत् तद् विशुद्ध्यर्थं प्राह देवः पितामहः ।।६८
भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित् संस्रवेद् गुदम् ।
कृत्वा शौचं ततः स्नायादुपोष्य जुहुयाद् घृतम् ।।६९
चाण्डालान्त्यशवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्याद् विशुद्धये ।
स्पृष्ट्वाऽभ्यक्तस्त्वसंस्पृश्यमहोरात्रेण शुद्ध्यति ।।७०
सुरां स्पृष्ट्वा द्विजः कुर्यात् प्राणायामत्रयं शुचिः ।
पलाण्डुं लशुनं चैव घृतं प्राश्य ततः शुचिः ।।७१
ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यहं सायं पयः पिबेत् ।
नाभेरूर्ध्वं तु दष्टस्य तदेव द्विगुणं भवेत् ।।७२
स्यादेतत् त्रिगुणं बाह्वोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम् ।
स्नात्वा जपेद् वा सावित्रीं श्वभिर्दष्टो द्विजोत्तमः ।।७३
अनिर्वर्त्य महायज्ञान् यो भुङ्क्ते तु द्विजोत्तमः ।

किये हुये व्यक्ति का स्पर्श करने वाले को ज्ञानपूर्वक छूने पर श्रेष्ठ द्विज को विशुद्धि हेतु आचमन करना चाहिये। (६८)

भोजन करते समय यदि ब्राह्मण के गुदा मार्ग से मलस्राव हो जाय तो शौचोपरान्त स्नान करना चाहिए एवं उपवासोपरान्त घृत की आहुति देनी चाहिए। (६९)

चाण्डाल एवं अन्त्यज के शव का स्पर्श करने पर शुद्धि के निमित्त कृच्छ्रव्रत करना चाहिए। अभ्यक्तअवस्था में अर्थात् तैलादि लगाकर स्पर्श न करने योग्य का (स्पर्श) करने पर अहोरात्र (के उपवास) से शुद्धि होती है। (७०)

सुरा का स्पर्श करने पर द्विज को पवित्रतापूर्वक तीन प्राणायाम करना चाहिए। प्याज एवं लहसुन का स्पर्श करने पर घृत पीने से शुद्धि होती है। (७१)

कुत्ते के काटने पर ब्राह्मण को तीन दिन सायङ्काल जल पीना चाहिए। नाभि के ऊपर कुत्ते के काटने पर उसके दुगुने अर्थात् छः दिन जल पीना चाहिए। (७२)

बाहु में कुत्ते के काटने पर उसके तिगुने अर्थात् नव दिन एवं मस्तक में काटने पर उसके चौगुने अर्थात् बारह दिन सायंकाल जल पीना चाहिए। अथवा कुत्ते के काटने पर श्रेष्ठ द्विज को स्नानोपरान्त गायत्री का जप करना चाहिये। (७३)

वन रहते अनातुर अवस्था में अर्थात् रोगादि से

अनातुरः सति धने कृच्छ्रार्द्धेन स शुद्धयति ।।७४
आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद् यस्तु पर्वणि ।
ऋतौ न गच्छेद् भार्यां वा सोऽपि कृच्छ्रार्द्धमाचरेत् ।।७५
विनाऽद्भिरप्सु नाप्यार्त्तः शरीरं सन्निवेश्य च ।
सचैलो जलमाप्लुत्य गामालभ्य विशुद्धयति ।।७६
बुद्धिपूर्वं त्वभ्युदितो जपेदन्तर्जले द्विजः ।
गायत्र्यष्टसहस्रं तु त्र्यहं चोपवसेद् व्रती ।।७७
अनुगम्येच्छया शूद्रं प्रेतीभूतं द्विजोत्तमः ।
गायत्र्यष्टसहस्रं च जप्यं कुर्यान्नदीषु च ।।७८
कृत्वा तु शपथं विप्रो विप्रस्य वधसंयुतम् ।
मृषैव यावकान्नेन कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम् ।।७९
पङ्क्त्यां विषमदानं तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुद्धयति ।
छायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा संप्राशयेद् घृतम् ।।८०

पीड़ित न होने पर जो द्विजोत्तम महायज्ञों को विना किये भोजन करता है वह कृच्छ्रव्रत के अर्द्धांश का अनुष्ठान करने से शुद्ध होता है। (७४)

यदि साग्निक ब्राह्मण पर्व अर्थात् अमावास्या एवं पूर्णिमादि तिथियों में उपस्थान अर्थात् देवाराधन न करें अथवा ऋतुकाल में भार्या के साथ सहवास न करें तो उसे भी कृच्छ्रव्रत के अर्द्धांश का अनुष्ठान करना चाहिये। (७५)

विना रोग मलमूत्र का त्याग करने के उपरान्त जलशौच न करने अथवा जल के मध्य शरीर प्रविष्ट कर (मलमूत्रादि का त्याग करने पर) वस्त्र सहित जल में स्नान कर गौ का स्पर्श करने से शुद्धि होती है। (७६)

ज्ञानपूर्वक (उक्त दोष करने पर) ब्राह्मण को सूर्योदय के समय जल में प्रविष्ट होकर आठ सहस्र गायत्री का जप एवं तीन दिन पर्यन्त उपवास करना चाहिए। (७७)

इच्छापूर्वक मृतक शूद्र का अनुगमन करने पर श्रेष्ठ द्विजको नदी के तीर पर आठ सहस्र गायत्री का जप करना चाहिए। (७८)

झूठे ही ब्राह्मण के वधयुक्त शपथ करने से अर्थात् ब्राह्मण को मारने का झूठ शपथ करने से यावकान्न द्वारा चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। (७९)

एक पंक्ति में (स्थित व्यक्तियों को) विषम अर्थात् असमानरूप से दान करने पर कृच्छ्रव्रत करने से शुद्धि होती है। चाण्डाल की छाया का स्पर्श करने पर स्नानोपरान्त घृत का पान करना चाहिए। (८०)

ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाग्निं चन्द्रमेव वा ।
मानुषं चास्थि संस्पृश्य स्नानं कृत्वा विशुद्धयति ।।८१
कृत्वा तु मिथ्याध्ययनं चरेद् भैक्षं तु वत्सरम् ।
कृतघ्नो ब्राह्मणगृहे पञ्च संवत्सरं व्रती ।।८२
हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ।
स्नात्वाऽनश्नन्नहःशेषं प्रणिपत्य प्रसादयेत् ।।८३
ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठं बद्ध्वाऽपि वाससा ।
विवादे वापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ।।८४
अवगूर्य चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ।।८५
गुरोराक्रोशमनृतं कृत्वा कुर्याद् विशोधनम् ।
एकरात्रं त्रिरात्रं वा तत्पापस्यापनुत्तये ।।८६

अपवित्र अवस्था में अग्नि या चन्द्रमा का दर्शन करने पर सूर्य का दर्शन करना चाहिए। मनुष्य की अस्थि का स्पर्श करने पर स्नान करने से शुद्धि होती है। (८१)

मिथ्याध्ययन करने पर एक वर्ष तक भिक्षा माँगनी चाहिए। कृतघ्न को (ब्रह्मचर्य) व्रत धारण कर ब्राह्मण के गृह में पाँच वर्ष तक रहना चाहिए। (८२)

ब्राह्मण को 'हुङ्कार' एवं गुरु जनों को 'त्वङ्कार' कहने पर स्नानोपरान्त शेष दिन भर उपवासपूर्वक प्रणाम कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिए। (८३)

तृण द्वारा भी (उन पर) प्रहार करने, वस्त्र द्वारा भी (उनका कण्ठ) बाँधने अथवा विवाद में (उनको) पराजित करने पर प्रणाम कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिए। (८४)

ब्राह्मण को धमकाने पर कृच्छ्रव्रत करना चाहिए। पटक देने पर अतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिये। एवं विप्र का रक्त बहाने पर कृच्छ्र एवं अतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। (८५)

गुरु का आक्रोश उत्पन्न करने वाला कर्म करने एवं असत्य कथन करने पर उस पाप की शुद्धि हेतु एक रात्र अथवा तीन रात्रि का उपवास करना चाहिए। (८६)

देवर्षीणामभिमुखं ष्ठीवनाक्रोशने कृते ।
उल्मुकेन दहेज्जिह्वां दातव्यं च हिरण्यकम् ॥८७
देवोद्याने तु यः कुर्यान्मूत्रोच्चारं सकृद् द्विजः ।
छिन्द्याच्छिश्नं तु शुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणं तु वा ॥८८
देवतायतने मूत्रं कृत्वा मोहाद् द्विजोत्तमः ।
शिश्नस्योत्कर्त्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् ॥८९
देवतानामृषीणां च देवानां चैव कुत्सनम् ।
कृत्वा सम्यक् प्रकुर्वीत प्राजापत्यं द्विजोत्तमः ॥९०
तैस्तु संभाषणं कृत्वा स्नात्वा देवान् समर्चयेत् ।
दृष्ट्वा वीक्षेत भास्वन्तं स्मृत्वा विशेश्वरं स्मरेत् ॥९१
यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशानं विनिन्दति ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्त्तुं वर्षशतैरपि ॥९२
चान्द्रायणं चरेत् पूर्वं कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम् ।
प्रपन्नः शरणं देवं तस्मात् पापाद् विमुच्यते ॥९३
सर्वस्वदानं विधिवत् सर्वपापविशोधनम् ।
चान्द्रायणं च विधिना कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम् ॥९४
पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापविनाशनम् ।
देवताभ्यर्चनं नृणामशेषाघविनाशनम् ॥९५
अमावस्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेच्छिवम् ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९६
कृष्णाष्टम्यां महादेवं तथा कृष्णचतुर्दशीम् ।
संपूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९७
त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम् ।
दृष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः ॥९८
उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः ।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥९९
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।
प्रत्येकं तिलसंयुक्तान् दद्यात् सप्तोदकाञ्जलीन् ।
स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्णे मुच्यते सर्वपातकैः ॥१००

देवता एवं ऋषियों के सम्मुख थूकने एवं आक्रोश प्रकट करने पर उल्का (अग्नि) द्वारा जिह्वा का दाह करना एवं स्वर्ण का दान करना चाहिए। (८७)

यदि द्विज एक वार भी देवोद्यान में मलमूत्र का त्याग करे तो उसे पाप की शुद्धि हेतु लिङ्गच्छेदन एवं चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। (८८)

मोहवश देवमन्दिर में मूत्र त्याग करने पर श्रेष्ठ द्विज को लिङ्गच्छेदन कर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। (८९)

देवता, ऋषि एवं देव (तुल्य व्यक्तियों) की निन्दा करने पर श्रेष्ठ द्विज को भलीभाँति प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। (९०)

उक्त प्रकार के व्यक्तियों से सम्भाषण करने पर स्नानोपरान्त देवता की पूजा करनी चाहिए। उन्हें देखने पर सूर्य का दर्शन करना चाहिए एवं उनका स्मरण करने पर विश्वेश्वर का स्मरण करना चाहिए। (९१)

जो सर्वभूताधिपति विश्वेश की निन्दा करता है सौ वर्षों में भी उसके पाप की शुद्धि नहीं हो सकती। (९२)

पहले चान्द्रायणव्रत कर कृच्छ्र एवं अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिए। तदनन्तर (विश्वेश्वर) देव के शरणागत होने से उस पाप से मुक्ति होती है। (९३)

विधिपूर्वक सर्वस्व दान, विधिपूर्वक चान्द्रायण, कृच्छ्र एवं अतिकृच्छ्रव्रत सभी पापों की शुद्धि करते हैं। (९४)

पुण्य क्षेत्रों की यात्रा सभी पापों को दूर करती है। देवता का पूजन मनुष्य के सभी पापों को नष्ट कर देता है। अमावास्या की तिथि आने पर जो शिव की अराधना कर ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (९५,९६)

कृष्णाष्टमी एवं कृष्णचतुर्दशी को महादेवी (दुर्गा) की पूजा करने के उपरान्त ब्राह्मण को भोजन कराने से (मनुष्य) समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (९७)

त्रयोदशी की रात्रि के प्रथम याम में उपहारसहित ईश त्रिलोचन का दर्शन करने से (मनुष्य) समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (९८)

कृष्णपक्ष को चतुर्दशी को एकाग्रतापूर्वक पूर्वाह्न में नदी में स्नान करने के उपरान्त उपवास कर समस्त पापों के क्षय हेतु यम धर्मराज, मृत्यु, अन्तक वैवस्वत, काल एवं सर्वभूत विनाशक इनमें प्रत्येक के निमित्त तिलयुक्त सात जलाञ्जलि प्रदान करना चाहिए। (ऐसा करने वाला मनुष्य) सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (९९,१००)

ब्रह्मचर्यमधःशय्यामुपवासं द्विजार्चनम् ।
व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्तः संयतमानसः ।।१०१
अमावस्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहम् ।
ब्राह्मणांस्त्रीन् समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः ।।१०२
षष्ठ्यामुपोषितो देवं शुक्लपक्षे समाहितः ।
सप्तम्यामर्चयेद् भानुं मुच्यते सर्वपातकैः ।।१०३
भरण्यां च चतुर्थ्यां च शनैश्चरदिने यमम् ।
पूजयेत् सप्तजन्मोत्थैर्मुच्यते पातकैर्नरः ।।१०४
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते ।।१०५
तपो जपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम् ।
ग्रहणादिषु कालेषु महापातकशोधनम् ।।१०६
यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः ।
नियमेन त्यजेत् प्राणान् स मुच्येत् सर्वपातकैः ।।१०७
ब्रह्मघ्नं वा कृतघ्नं वा महापातकदूषितम् ।
भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम् ।।१०८
एतदेव परं स्त्रीणां प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।
सर्वपापसमुद्भूतौ नात्र कार्या विचारणा ।।१०९
पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणोत्सुका ।
न तस्या विद्यते पापमिह लोके परत्र च ।।११०
पतिव्रता धर्मरता रुद्राण्येव न संशयः ।
नास्याः पराभवं कर्त्तुं शक्नोतीह जनः क्वचित् ।।१११
यथा रामस्य सुभगा सीता त्रैलोक्यविश्रुता ।
पत्नी दाशरथेर्देवी विजिग्ये राक्षसेश्वरम् ।।११२
रामस्य भार्यां विमलां रावणो राक्षसेश्वरः ।
सीतां विशालनयनां चकमे कालचोदितः ।।११३
गृहीत्वा मायया वेषं चरन्तीं विजने वने ।
समाहर्त्तुं मतिं चक्रे तापसः किल कामिनीम् ।।११४
विज्ञाय सा च तद्भावं स्मृत्वा दाशरथिं पतिम् ।
जगाम शरणं वह्निमावसथ्यं शुचिस्मिता ।।११५

इन समस्त व्रतों में शान्त एवं संयतचित्त से ब्रह्मचर्य, भूमि पर शयन, उपवास एवं ब्राह्मण-पूजन, करना चाहिए। (१०१)

अमावास्या तिथि में पितामह ब्रह्मा के उद्देश्य से तीन ब्राह्मणों की पूजा करने से (मनुष्य) समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (१०२)

शुक्लपक्ष की षष्ठी तिथि में उपवास कर सप्तमी को एकाग्रमन से सूर्य देव की पूजा करने से (मनुष्य) समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (१०३)

शनिवार को भरणी नक्षत्र एवं चतुर्थी तिथि होने पर जो मनुष्य यम की पूजा करता है वह सात जन्मों में उत्पन्न पापों से युक्त हो जाता है। (१०४)

जो शुक्लपक्ष की एकादशी को निराहार रहकर द्वादशी को जनार्दन की अर्चना करता है वह महापापों से मुक्त हो जाता है। (१०५)

ग्रहणादि के समय तप, जप, तीर्थसेवा तथा देवता एवं ब्राह्मणों का पूजन करने से महापातकों का शोधन होता है। (१०६)

समस्त पापों से युक्त होने पर भी जो मनुष्य पुण्यतीर्थों में नियमपूर्वक प्राणों का त्याग करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (१०७)

पति के साथ अग्नि में प्रवेश करने वाली स्त्री ब्रह्मघ्न, कृतघ्न अथवा महापातकी पति का उद्धार कर देती है। (१०८)

सभी प्रकार के पापों की उत्पत्ति के विषय में पण्डितों ने स्त्री के लिये यही श्रेष्ठ प्रायश्चित्त बतलाया है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। (१०९)

जो स्त्री पतिव्रता एवं पतिसेवा-परायण होती है उसे इस लोक एवं परलोक में कोई पाप नहीं लगता। (११०)

धर्मरत पतिव्रता (स्त्री) रुद्राणी होती है। इसमें सन्देह नहीं है। कोई भी मनुष्य उसका पराभव नहीं कर सकता। (१११)

जैसे दशरथ के पुत्र राम की त्रिलोक-प्रसिद्ध सुन्दरी पत्नी देवी सीता ने राक्षसेश्वर (रावण) को पराजित किया था। (११२)

कालप्रेरित राक्षसराज रावण ने राम की सुन्दरी भार्या विशालनयना सीता की अभिलाषा की। (११३)

माया का वेष धारण कर तपस्वी के रूप में उसने एकान्त वन में विचरण कर रही कामिनी (सीता) का अपहरण करने का विचार किया। (११४)

उस (रावण) का विचार जानने के उपरान्त शुचिस्मिता सीता दशरथ के पुत्र (अपने) पति राम का स्मरण कर गार्हपत्याग्नि की शरण में गयीं। (११५)

उपतस्थे महायोगं सर्वदोषविनाशनम् ।
कृताञ्जली रामपत्नी शाक्षात् पतिमिवाच्युतम् ॥११६
नमस्यामि महायोगं कृतान्तं गहनं परम् ।
दाहकं सर्वभूतानामीशानं कालरूपिणम् ॥११७
नमस्ये पावकं देवं साक्षिणं विश्वतोमुखम् ।
आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदि स्थितम् ॥११८
प्रपद्ये शरणं वह्निं ब्रह्मण्यं ब्रह्मरूपिणम् ।
भूतेशं कृत्तिवसनं शरण्यं परमं पदम् ॥११९
ॐ प्रपद्ये जगन्मूर्त्ति प्रभवं सर्वतेजसाम् ।
महायोगेश्वरं वह्निमादित्यं परमेष्ठिनम् ॥१२०
प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाग्रासं त्रिशूलिनम् ।
कालाग्नि योगिनामीशं भोगमोक्षफलप्रदम् ॥१२१
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भुर्भुवःस्वःस्वरूपिणम् ।
हिरण्यमये गृहे गुप्तं महान्तममितौजसम् ॥१२२

राम की पत्नी (सीता) हाथ जोड़कर साक्षात् पति के तुल्य सभी दोषों को नष्ट करने वाले महायोग स्वरूप अच्युत (अग्नि) की शरण में गयीं। (११६)

(सीता ने कहा)—महायोगस्वरूप, परम गहन, कृतान्त, दाहक, सभी भूतों के नियामक कालरूपी (अग्नि) को मैं नमस्कार करती हूँ। (११७)

मैं सभी ओर मुखवाले, दीप्तशरीर, सभी प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मास्वरूप साक्षी पावक (अग्नि) देव को नमस्कार करती हूँ। (११८)

मैं ब्राह्मणों के उपकारक, ब्रह्मरूपी, चर्माम्बरधारी शरणागतवत्सल, परमपदस्वरूप भूतेश वह्नि (अग्नि) की शरण ग्रहण करती हूँ। (११९)

मैं जगन्मूर्ति, समस्त तेजों के उत्पत्ति स्थान महायोगेश्वर, परमेष्ठी, आदित्य एवं ओंकार स्वरूप वह्निदेव की शरणागत होती हूँ। (१२०)

मैं महाग्रास, त्रिशूलधारी, भोग एवं मोक्ष स्वरूप फलों के दाता, योगियों के ईश एवं रुद्र स्वरूप कालाग्नि की शरण ग्रहण करती हूँ। (१२१)

मैं भूर्भुवःस्वःरूप, हिरण्मय गृह में गुप्त, अमित ओजस्वी एवं विरूपाक्ष—आप (महान्) की शरण ग्रहण करती हूँ। (१२२)

वैश्वानरं प्रपद्येऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।
हव्यकव्यवहं देवं प्रपद्ये वह्निमीश्वरम् ॥१२३
प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं वरेण्यं सवितुः स्वयम् ।
भर्गमग्निपरं ज्योती रक्ष मां हव्यवाहन ॥१२४
इति वह्न्यष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी ।
ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा ॥१२५
अथावसथ्याद् भगवान् हव्यवाहो महेश्वरः ।
आविरासीत् सुदीप्तात्मा तेजसा प्रदहन्निव ॥१२६
सृष्ट्वा मायामयीं सीतां स रावणवधेप्सया ।
सीतामादाय धर्मिष्ठां पावकोऽन्तरधीयत ॥१२७
तां दृष्ट्वा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः ।
समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तरसंस्थिताम् ॥१२८
कृत्वाऽथ रावणवधं रामो लक्ष्मणसंयुतः ।
समादायाभवत् सीतां शङ्काकुलितमानसः ॥१२९

मैं समस्त भूतों में अवस्थित, हव्यकव्यवाही, वैश्वानर देव स्वरूप ईश्वर वह्नि की शरणागत हूँ। (१२३)

सविता (सूर्य) के अग्निस्वरूप परम वरणीय साक्षात् तत्त्व स्वरूप भर्ग-अर्थात् तेज स्वरूप अग्नि की शरण ग्रहण करती हूँ। हे हव्यवाहन! आप मेरी रक्षा करें। (१२४)

इस प्रकार वह्न्यष्टक का जप करने के उपरान्त यशस्विनी उन्मीलितनयना रामपत्नी सीता मन में राम का ध्यान करते हुए खड़ी रहीं। (१२५)

तदुपरान्त आवसथ्याग्नि से तेज द्वारा जलाते हुए के सदृश सुदीप्तात्मा, भगवान् महेश्वर हव्यवाह आविर्भूत हुए। (१२६)

रावण के वध की इच्छा से मायामयी सीता की सृष्टि करने के उपरान्त वे पावक (देव) धर्मिष्ठा सीता को लेकर अन्तर्हित हो गये। (१२७)

उसी प्रकार की उस सीता को देख राक्षसराज रावण (सीता को) लेकर सागर के मध्य में स्थित लङ्का में चला गया। (१२८)

रावण का वध करने के उपरान्त सीता को प्राप्त कर लक्ष्मण-सहित राम का मन शङ्काकुल हो गया। (१२९)

सा प्रत्ययाय भूतानां सीता मायामयी पुनः ।
विवेश पावकं दीप्तं ददाह ज्वलनोऽपि ताम् ।।१३०
दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुग्रदीधितिः ।
रामायादर्शयत् सीतां पावकोऽभूत् सुरप्रियः ।।१३१
प्रगृह्य भर्त्तुश्चरणौ कराभ्यां सा सुमध्यमा ।
चकार प्रणतिं भूमौ रामाय जनकात्मजा ।।१३२
दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः ।
ननाम वह्निं सिरसा तोषयामास राघवः ।।१३३
उवाच वह्नेर्भगवान् किमेषा वरवर्णिनी ।
दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता ।।१३४
तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः ।
यथावृत्तं दाशरथिं भूतानामेव सन्निधौ ।।१३५
इयं सा मिथिलेशेन पार्वतीं रुद्रवल्लभाम् ।
आराध्य लब्धा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा ।।१३६

तदुपरान्त मायामयी वह सीता प्राणियों के विश्वास हेतु शीघ्र दीप्त अग्नि में प्रविष्ट हो गयी। अग्नि ने भी उसे दग्ध कर दिया। (१३०)

मायामयी सीता को जलाने के उपरान्त उग्रकिरण भगवान् पावक ने राम को (वास्तविक) सीता का साक्षात्कार कराया। (इससे वे पावक देव) देवों के प्रिय हो गये। (१३१)

हाथों से पति के दोनों चरणों को पकड़ कर जनकात्मजा उन सुमध्यमा ने राम के निमित्त पृथ्वी पर प्रणाम किया। (१३२)

(सीता को) देखने के उपरान्त विस्मयान्वित नेत्रों वाले रघुवंशी राम ने प्रसन्न मन से मस्तक द्वारा प्रणाम कर अग्नि को सन्तुष्ट किया। (१३३)

भगवान् (राम) ने वह्नि से कहा "मेरे समीप आयी यह सुन्दरी किस प्रकार पहले आप द्वारा दग्ध की जाती हुयी देखी गयी।" (१३४)

लोकों के दाहक अग्निदेव ने (राम से) (पूर्व में घटित) सभी लोगों के सम्मुख यथार्थ घटना को कहा। (१३५)

मिथिलानरेश ने रुद्रवल्लभा पार्वती की तप द्वारा आराधना कर देवी की अत्यन्त प्रिया जिस (सीता) को प्राप्त किया था ये वही हैं। (१३६)

भर्त्तुः शुश्रूषणोपेता सुशीलेयं पतिव्रता ।
भवानीपार्श्वमानीता मया रावणकामिता ।।१३७
या नीता राक्षसेशेन सीता भगवताहृता ।
मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधाय सा ।।१३८
तदर्थं भवता दुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ।
मयोपसंहृता चैव हतो लोकविनाशनः ।।१३९
गृहाण विमलामेनां जानकीं वचनान्मम ।
पश्य नारायणं देवं स्वात्मानं प्रभवाव्ययम् ।।१४०
इत्युक्त्वा भगवांश्चण्डो विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः ।
मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत ।।१४१
एतत् पतिव्रतानां वै माहात्म्यं कथितं मया ।
स्त्रीणां सर्वाघशमनं प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ।।१४२
अशेषपापयुक्तस्तु पुरुषोऽपि सुसंयतः ।
स्वदेहं पुण्यतीर्थेषु त्यक्त्वा मुच्येत किल्बिषात् ।।१४३

मैं रावण द्वारा अभिलषित पतिसेवा में संलग्न इस सुन्दर शीलवाली पतिव्रता को भवानी के पास ले गया था। (१३७)

राक्षसेश्वर द्वारा ले जायी गयी जिसे आपने प्राप्त किया था उस मायामयी को मैंने रावण के वधार्थ वनाया था। (१३८)

उसी के लिये आपने दुष्ट राक्षसेश्वर लोकविनाशक रावण को मारा गया। मैंने (उसी को) समाप्त कर दिया है। (१३९)

मेरे कहने से आप इस निर्दोष जानकी को ग्रहण करें। आप अव्यय विश्वोत्पादक नारायण देवात्मक अपने स्वरूप का विचार करें। (१४०)

यह कहने के उपरान्त सभी ओर शिखा एवं मुख वाले भगवान् अग्नि राघव एवं प्राणियों से आदर प्राप्त कर अन्तर्हित हो गये। (१४१)

मैंने यह पतिव्रताओं का माहात्म्य कहा हैं। इसे स्त्रियों के समस्त पापों को दूर करने वाला प्रायश्चित्त कहा गया है। (१४२)

समस्त पापों से युक्त पुरुष भी संयमपूर्वक पुण्यतीर्थों में अपना शरीर त्याग कर पाप से मुक्त हो जाता है। (१४३)

पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा पुण्येषु वा द्विजः ।
मुच्यते पातकैः सर्वैः समस्तैरपि पूरुषः ॥१४४

व्यास उवाच ।

इत्येष मानवो धर्मो युष्माकं कथितो मया ।
महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगं च शाश्वतम् ॥१४५
योऽनेन विधिना युक्तं ज्ञानयोगं समाचरेत् ।
स पश्यति महादेवं नान्यः कल्पशतैरपि ॥१४६
स्थापयेद् यः परं धर्मं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम् ।
न तस्मादधिको लोके स योगी परमो मतः ॥१४७
य संस्थापयितुं शक्तो न कुर्यान्मोहितो जनः ।
स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यर्थं भगवत्प्रियः ॥१४८
तस्मात् सदैव दातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः ।
धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै ॥१४९
यः पठेद् भवतां नित्यं संवादं मम चैव हि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमां गतिम् ॥१५०
श्राद्धे वा दैविके कार्ये ब्राह्मणानां च सन्निधौ ।
पठेत नित्यं सुमनाः श्रोतव्यं च द्विजातिभिः ॥१५१
योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद् ब्राह्मणान् शुचीन् ।
स दोषकञ्चुकं त्यक्त्वा याति देवं महेश्वरम् ॥१५२
एतावदुक्त्वा भगवान् व्यासः सत्यवतीसुतः ।
समाश्वास्य मुनीन् सूतं जगाम च यथागतम् ॥१५३

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

अथवा द्विज (वर्ण का) पुरुष पृथ्वी के समस्त पुण्य तीर्थों में स्नान कर समस्त सञ्चित पापों से मुक्त हो जाता है। (१४४)

व्यास ने कहा—मैंने आप लोगों से इस मानव धर्म एवं महेश की आराधना हेतु शाश्वत ज्ञानयोग का वर्णन किया। (१४५)

जो इस विधि से युक्त होकर ज्ञानयोग का अनुष्ठान करता है वह महादेव का दर्शन करता है। अन्य कोई व्यक्ति सैकड़ों कल्पों में भी (महादेव का दर्शन) नहीं कर पाता। (१४६)

जो श्रेष्ठ धर्म एवं परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान की स्थापना करता है संसार में उससे बढ़कर कोई नहीं है। उसे श्रेष्ठ योगी माना जाता है। (१४७)

(धर्म एवं ज्ञान की) स्थापना करने में समर्थ होने पर भी जो मनुष्य मोहवश (धर्म एवं ज्ञान की स्थापना) नहीं करता वह योगयुक्त, मुनि होने पर भी भगवान् का अत्यन्त प्रिय नहीं होता। (१४८)

अतः सदा ही विशेषकर धर्मयुक्त, शान्त एवं श्रद्धालु ब्राह्मणों के मध्य (इस धर्म एवं ज्ञान का) उपदेश करना अथवा उन्हें दान करना चाहिए। (१४९)

जो नित्य मेरे एवं आपके (मध्य हुए इस) संवाद को पढ़ेगा वह समस्त पापों से मुक्त होकर परमगति प्राप्त करेगा। (१५०)

श्राद्ध एवं देव सम्बन्धी कार्य में तथा ब्राह्मणों के समीप सुन्दर मन से नित्य (इसका) पाठ करना चाहिए एवं द्विजातियों को इसे सुनना चाहिए। (१५१)

जो युक्तात्मा अर्थ का विचार कर पवित्र ब्राह्मण को सुनाता है वह दोष के आवरण का त्याग कर महेश्वर देव को प्राप्त करता है। (१५२)

इतना कहने के उपरान्त सत्यवती के पुत्र भगवान् व्यास मुनियों एवं सूत को आश्वासन देकर जैसे आये थे वैसे ही चले गये। (१५३)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में तैंतीसवां अध्याय समाप्त—३३.

३४

ऋषय ऊचुः ।

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन् विश्रुतानि महान्ति च ।
तानि त्वं कथयास्माकं रोमहर्षण सांप्रतम् ॥१

रोमहर्षण उवाच ।

शृणुध्वं कथयिष्येऽहं तीर्थानि विविधानि च ।
कथितानि पुराणेषु मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥२
यत्र स्नानं जपो होमः श्राद्धदानादिकं कृतम् ।
एकैकशो मुनिश्रेष्ठाः पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥३
पञ्चयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रयागं प्रथितं तीर्थं तस्य माहात्म्यमीरितम् ॥४
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कुरूणां देववन्दितम् ।
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं सर्वपापविशोधनम् ॥५
तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भमात्सर्यवर्जितः ।
ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम् ॥६
गयातीर्थं परं गुह्यं पितॄणां चाति वल्लभम् ।
कृत्वा पिण्डप्रदानं तु न भूयो जायते नरः ॥७
सकृद् गयाभिगमनं कृत्वा पिण्डं ददाति यः ।
तारिताः पितरस्तेन यास्यन्ति परमां गतिम् ॥८
तत्र लोकहितार्थाय रुद्रेण परमात्मना ।
शिलातले पदं न्यस्तं तत्र पितॄन् प्रसादयेत् ॥९
गयाऽभिगमनं कर्त्तुं यः शक्तो नाभिगच्छति ।
शोचन्ति पितरस्तं वै वृथा तस्य परिश्रमः ॥१०
गायन्ति पितरो गाथाः कीर्त्तयन्ति महर्षयः ।
गयां यास्यति यः कश्चित् सोऽस्मान् संतारयिष्यति ॥११
यदि स्यात् पातकोपेतः स्वधर्मरतिवर्जितः ।
गयां यास्यति वंश्यो यः सोऽस्मान् संतारयिष्यति ॥१२

३४

ऋषियों ने कहा—हे रोमहर्षण! अव आप हमें इस संसार में जो महान् तथा प्रसिद्ध तीर्थ हैं उन्हें वतलायें। (१)

रोमहर्षण ने कहा—हे श्रेष्ठ मुनियो! सुनिये, मैं पुराणों में ब्रह्मवादी मुनियों के वतलाये अनेक प्रकार के तीर्थों का वर्णन करूँगा जिन (तीर्थों) में एकवार का भी किया हुआ स्नान, जप, होम, श्राद्ध एवं दानादि कर्म (मनुष्य की) सात पीढ़ी तक (के पुरुषों) को पवित्र कर देता है। (२, ३)

परमेष्ठी ब्रह्मा का पाँच योजन विस्तीर्ण प्रयाग नामक प्रसिद्ध तीर्थ है जिसका माहात्म्य वतलाया जा चुका है। (४)

दूसरा कुरुओं का तीर्थ है, जो देवों से वन्दित, ऋषियों के आश्रमों से पूर्ण एवं सभी पापों का नाशक है। (५)

दम्भ और मात्सर्य छोड़कर विशुद्ध मन से वहाँ स्नानोपरान्त (मनुष्य) जो भी दान करता है उससे दोनों (अर्थात् माता एवं पिता का) कुल पवित्र हो जाता है। (६)

परम गुह्य गया नामक तीर्थ पितरों का अत्यन्त प्रिय है। वहाँ पिण्डदान करने से मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता। (७)

जो एक वार भी गया जाकर पिण्डदान करता है उसके द्वारा तारे गये पितृगण परम गति प्राप्त कर लेते हैं। (८)

वहाँ लोक के कल्याणहेतु परमात्मा रुद्र ने शिलातल पर चरण (का चिह्न) स्थापित किया है। वहाँ पितरों को (पिण्डदान कर) प्रसन्न करना चाहिए। (९)

गया जाने में समर्थ होने पर जो (वहाँ) नहीं जाता उसके सम्वन्ध में पितृगण शोक करते हैं। उसका (अन्य सभी प्रकार का) परिश्रम व्यर्थ होता है। (१०)

पितृगण इस गाथा का गान एवं महर्षिगण इसका कीर्तन करते हैं कि जो कोई भी गया जायेगा वही हमें तारेगा। (११)

यदि पापयुक्त एवं अपने धर्म के प्रेम से रहित (भी) मेरे वंश में उत्पन्न कोई व्यक्ति गया जायेगा तो वह हमें मुक्त कर देगा। (१२)

एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः ।
तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।।१३
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः ।
प्रदद्याद् विधिवत् पिण्डान् गयां गत्वा समाहितः।।१४
धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयायां पिण्डदायिनः ।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्याप्नुयात् परम् ।।१५
अन्यच्च तीर्थप्रवरं सिद्धावासमुदाहृतम् ।
प्रभासमिति विख्यातं यत्रास्ते भगवान् भवः ।।१६
तत्र स्नानं तपः श्राद्धं ब्राह्मणानां च पूजनम् ।
कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्रह्मणोऽक्षय्यमुत्तमम् ।।१७
तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वदेवनमस्कृतम् ।
पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफलं लभेत् ।।१८
सुवर्णाक्षं महादेवं समभ्यर्च्य कपर्दिनम् ।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु गाणपत्यं लभेद् ध्रुवम् ।।१९

सोमेश्वरं तीर्थवरं रुद्रस्य परमेष्ठिनः ।
सर्वव्याधिहरं पुण्यं रुद्रसालोक्यकारणम् ।।२०
तीर्थानां परमं तीर्थं विजयं नाम शोभनम् ।
तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयं नाम विश्रुतम् ।।२१
षण्मासान् नियताहारो ब्रह्मचारी समाहितः ।
उषित्वा तत्र विप्रेन्द्रा यास्यन्ति परमं पदम् ।।२२
अन्यच्च तीर्थप्रवरं पूर्वदेशे सुशोभनम् ।
एकाम्रं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम् ।।२३
दत्त्वाऽत्र शिवभक्तानां किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम्।
सार्वभौमो भवेद् राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ।।२४
महानदीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम् ।
ग्रहणे समुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकैः ।।२५
अन्या च विरजा नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता ।
तस्यां स्नात्वा नरो विप्रा ब्रह्मलोके महीयते ।।२६

शील एवं गुणसम्पन्न बहुत से पुत्रों की अभिलाषा करनी चाहिये । उन सभी में (कोई) एक भी तो गया जायेगा । (१३)

अतः ब्राह्मण को विशेष रूप से सभी प्रकार का प्रयत्न कर गया जाकर एकाग्रचित्त से विधिवत् पिण्डदान करना चाहिए । (१४)

वे मनुष्य निश्चय ही धन्य हैं जो गया में पिण्डदान करते हैं । वे दोनों (अर्थात् माता एवं पिता के) कुल की सात पीढ़ियों का उद्धार कर परम (गति) प्राप्त करते हैं । (१५)

प्रभास नामक अन्य प्रसिद्ध श्रेष्ठ तीर्थ है, जिसे सिद्धों का निवास स्थान कहा गया है। वहाँ भगवान् भव (शिव) स्थित हैं । (१६)

वहाँ स्नान, तप, श्राद्ध एवं ब्राह्मणों का पूजनकर (व्यक्ति) ब्रह्मा का अक्षय तथा श्रेष्ठ लोक प्राप्त करता है । (१७)

त्रैयम्बक नाम का तीर्थ सभी देवों द्वारा नमस्कृत है । वहाँ रुद्र का पूजन करने से ज्योतिष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त होता है । (१८)

(वहाँ) जटाधारी सुवर्णाक्ष महादेव की आराधना एवं ब्राह्मणों का पूजन करने से निश्चय ही गाणपत्य (पद) की प्राप्ति होती है । (१९)

परमेष्ठी रुद्र का श्रेष्ठ सोमेश्वर नामक तीर्थ है । वह रुद्र का सालोक्य देने वाला, सभी व्याधियों को दूर करने वाला एवं पवित्र (तीर्थ) है । (२०)

तीर्थों में श्रेष्ठ विजय नामक सुन्दर तीर्थ है। वहाँ महेश का विजय नामक प्रसिद्ध लिङ्ग है । (२१)

वहाँ छः महीने तक संयत आहार करते हुए एकाग्रचित्त से एवं ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास कर श्रेष्ठ विप्र परम पद प्राप्त करते हैं । (२२)

पूर्वदेश में देवाधिदेव (शङ्कर) का गाणपत्य फल देने वाला एकाम्र नामक दूसरा भी सुन्दर श्रेष्ठ तीर्थ है।(२३)

यहाँ शिव के भक्तों को थोड़ी भी स्थिर भूमि दान करने से (विषयाभिलाषी व्यक्ति) सार्वभौम राजा होता है तथा मोक्षार्थी मोक्ष प्राप्त करता है । (२४)

महानदी का पवित्र जल समस्त पापों का नाशक है । ग्रहण के समय उसका स्पर्श करने से (मनुष्य) समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । (२५)

हे विप्रो ! तीनों लोकों में प्रसिद्ध विरजा नाम की दूसरी नदी है। उसमें स्नान करने से मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है । (२६)

तीर्थं नारायणस्यान्यन्नाम्ना तु पुरुषोत्तमम् ।
तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपूरुषः ।।२७
पूजयित्वा परं विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तमः ।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।।२८
तीर्थानां परमं तीर्थं गोकर्णं नाम विश्रुतम् ।
सर्वपापहरं शंभोर्निवासः परमेष्ठिनः ।।२९
दृष्ट्वा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णेश्वरमुत्तमम् ।
ईप्सितांल्लभते कामान् रुद्रस्य दयितो भवेत् ।।३०
उत्तरं चापि गोकर्णं लिङ्गं देवस्य शूलिनः ।
महादेवस्यार्चयित्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।।३१
तत्र देवो महादेवः स्थाणुरित्यभिविश्रुतः ।
तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते तत्क्षणान्नरः ।।३२
अन्यत् कुब्जाम्रमतुलं स्थानं विष्णोर्महात्मनः ।
संपूज्य पुरुषं विष्णुं श्वेतद्वीपे महीयते ।।३३

नारायण का पुरुषोत्तम नामक अन्य तीर्थ है। वहाँ परम पुरुष श्रीमान् नारायण रहते हैं। (२७)

वहाँ स्नानोपरान्त श्रेष्ठ विष्णु की आराधना एवं ब्राह्मणों का पूजनकर श्रेष्ठ द्विज विष्णुलोक प्राप्त करता है। (२८)

तीर्थों में श्रेष्ठ गोकर्ण नामक समस्त पापों को दूर करने वाला प्रसिद्ध तीर्थ है। वह परमेष्ठी शम्भु का निवास है। (२९)

महादेव के गोकर्णेश्वर नामक श्रेष्ठ लिङ्ग का दर्शन कर (मनुष्य) अभिलषित पदार्थ प्राप्त करता तथा रुद्रदेव का प्रिय हो जाता है। (३०)

उत्तरगोकर्ण में भी त्रिशूलधारी देव का लिङ्ग है। (वहाँ) महादेव की आराधना करने से (प्राणी) को शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। (३१)

वहाँ देवाधिदेव महादेव स्थाणु नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका दर्शन कर मनुष्य तत्काल समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (३२)

महात्मा विष्णु का कुब्जाम्र नामक अन्य पवित्र स्थान है। वहाँ विष्णु (स्वरूप परम) पुरुष का पूजन कर मनुष्य) श्वेतद्वीप में आदर प्राप्त करता है। (३३)

यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिणा ।
कृत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्य तु विसर्जितः ।।३४
समन्ताद् योजनं क्षेत्रं सिद्धर्षिगणवन्दितम् ।
पुण्यमायतनं विष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः ।।३५
अन्यत् कोकामुखं विष्णोस्तीर्थमद्भुतकर्मणः ।
मृतोऽत्र पातकैर्मुक्तो विष्णुसारूप्यमाप्नुयात् ।।३६
शालग्रामं महातीर्थं विष्णोः प्रीतिविवर्धनम् ।
प्राणांस्तत्र नरस्त्यक्त्वा हृषीकेशं प्रपश्यति ।।३७
अश्वतीर्थमिति ख्यातं सिद्धावासं सुपावनम् ।
आस्ते हयशिरा नित्यं तत्र नारायणः स्वयम् ।।३८
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
पुष्करं सर्वपापघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम् ।।३९
मनसा संस्मरेद् यस्तु पुष्करं वै द्विजोत्तमः ।
पूयते पातकैः सर्वैः शक्रेण सह मोदते ।।४०

जहाँ त्रिपुरारि रुद्र ने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर नारायण देव को छोड़ा था। (३४)

चतुर्दिक् एक योजन क्षेत्र सिद्धों एवं ऋषियों के समूह से वन्दित है। वहाँ विष्णु का पवित्र मन्दिर है जिसमें पुरुषोत्तम (विष्णु) स्थित हैं। (३५)

अद्भुतकर्मा विष्णु का एक अन्य कोकामुख नामक तीर्थ है। यहाँ मरा हुआ मनुष्य पापों से मुक्त होकर विष्णुसारूप्य प्राप्त करता है। (३६)

विष्णु की प्रीति को बढ़ाने वाला शालग्राम नामक महातीर्थ है। वहाँ प्राणों का त्याग करने पर मनुष्य को हृषीकेश का दर्शन प्राप्त होता है। (३७)

अत्यन्त पवित्र अश्वतीर्थ नाम से प्रसिद्ध तीर्थ सिद्धों का निवास स्थल है। वहाँ स्वयं नारायण हयग्रीव रूप से रहते हैं। (३८)

सभी पापों को दूर करने वाला एवं मृतकों को ब्रह्मलोक प्रदान करने वाला परमेष्ठी ब्रह्मा का तीनों लोकों में प्रसिद्ध पुष्कर तीर्थ है। (३९)

जो द्विजोत्तम मन से पुष्कर तीर्थ का स्मरण करता है वह पातकों से मुक्त होकर इन्द्र के साथ आनन्द करता है। (४०)

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
उपासते सिद्धसङ्घा ब्रह्माणं पद्मसंभवम् ॥४१
तत्र स्नात्वा भवेच्छुद्धो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
पूजयित्वा द्विजवरान् ब्रह्माणं संप्रपश्यति ॥४२
तत्राभिगम्य देवेशं पुरुहूतमनिन्दितम् ।
सुरूपो जायते मर्त्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥४३
सप्तसारस्वतं तीर्थं ब्रह्माद्यैः सेवितं परम् ॥
पूजयित्वा तत्र रुद्रमश्वमेधफलं लभेत् ॥४४
यत्र मङ्कणको रुद्रं प्रपन्नः परमेश्वरम् ।
आराधयामास हरं पञ्चाक्षरपरायणः ॥४५
नमः शिवायेति मुनिः जपन् पञ्चाक्षरं परम् ।
आराधयामास शिवं तपसा गोवृषध्वजम् ॥४६
प्रजज्वालाथ तपसा मुनिर्मङ्कणकस्तदा ।
ननर्त्त हर्षवेगेन ज्ञात्वा रुद्रं समागतम् ॥४७
तं प्राह भगवान् रुद्रः किमर्थं नर्तितं त्वया ।
दृष्ट्वाऽपि देवमीशानं नृत्यति स्म पुनः पुनः ॥४८
सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशः सगर्वं गर्वशान्तये ।
स्वकं देहं विदार्यास्मै भस्मराशिमदर्शयत् ॥४९
पश्येमं मच्छरीरोत्थं भस्मराशिं द्विजोत्तम ।
माहात्म्यमेतत् तपसस्त्वादृशोऽन्योऽपि विद्यते ॥५०
यत् सगर्वं हि भवता नर्तितं मुनिपुंगव ।
न युक्तं तापसस्यैतत् त्वत्तोप्यत्राधिको ह्यहम् ॥५१
इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रः किल विश्वदृक् ।
आस्थाय परमं भावं ननर्त्त जगतो हरः ॥५२
सहस्रशीर्षा भूत्वा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
दंष्ट्राकरालवदनो ज्वालामाली भयंकरः ॥५३
सोऽन्वपश्यदशेषस्य पार्श्वे तस्य त्रिशूलिनः ।
विशाललोचनमेकां देवीं चारुविलासिनीम् ।
सूर्यायुतसमप्रख्यां प्रसन्नवदनां शिवाम् ॥५४

वहाँ देवता, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस एवं सिद्धों के समूह पद्मयोनि ब्रह्मा की उपासना करते हैं। (४१)

वहाँ स्नानोपरान्त शुद्ध होकर परमेष्ठी ब्रह्मा एवं श्रेष्ठ द्विजों का पूजन करने से ब्रह्मा का साक्षात्कार करता है। (४२)

वहाँ जाकर अनिन्दित देवराज इन्द्र का दर्शन करने से मनुष्य सुन्दर रूप वाला हो जाता है एवं समस्त अभिलषित पदार्थों को प्राप्त करता है। (४३)

ब्रह्मादि से सेवित सप्तसारस्वत नामक श्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ रुद्र का पूजन करने से अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है। (४४)

जहाँ परमेश्वर रुद्र के शरणागत एवं (नमः शिवाय) इस पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करने वाले मङ्कणक ने शिव की आराधना की थी। (४५)

"नमः शिवाय" इस श्रेष्ठ पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करते हुए मुनि ने तपस्या द्वारा गोवृषध्वज शिव की आराधना की थी। (४६)

उस समय (मुनि) तपस्या द्वारा प्रज्वलित होने लगे। रुद्र को आया जानकर हर्ष के वेगवश मुनि मङ्कणक नाचने लगे। (४७)

भगवान् रुद्र ने उनसे पूछा "आप नाचने क्यों लगे?" ईशान देव को देखने पर भी वह बार-बार नाचता ही रहा। (४८)

उसे गर्वयुक्त हुआ देखकर उन भगवान् ईश ने (मुनि के) गर्व को शान्त करने के लिए अपने शरीर को विदीर्ण कर उसमें से निकली उसे भस्म की राशि दिखलाया (एवं कहा)—हे द्विजोत्तम! मेरे शरीर से उत्पन्न इस भस्म राशि को देखो। यह तपस्या का माहात्म्य है। तुम्हारे समान दूसरा भी है। (४९,५०)

हे मुनिपुङ्गव! आपने गर्वपूर्वक जो नृत्य किया वह तपस्वी के लिए उचित नहीं है। इस विषय में मैं तुमसे भी (तपस्वी) अधिक हूँ। (५१)

वे श्रेष्ठ मुनि से ऐसा कहने के उपरान्त अखिल विश्व के द्रष्टा एवं जगत् के संहारक रुद्र परमभाव का अवलम्बन कर नृत्य करने लगे। (५२)

वे (रुद्र देव) सहस्र शिर, सहस्र नेत्र एवं सहस्र पाद से युक्त, दाढ़ों से युक्त भयङ्कर मुखवाले तथा ज्वाला समूह से युक्त भयङ्कर स्वरूप वाले हो गये। (५३)

तदनन्तर उस (मङ्कणक) ने उन अशेष (विराट् वपु) त्रिशूलधारी के पार्श्व में सहस्रों सूर्य के समान तेज वाला, प्रसन्नमुख, विशाल नेत्रों वाली तथा सुन्दर विलासयुक्त देवी शिवा को देखा। (५४)

सस्मितं प्रेक्ष्य विश्वेशं तिष्ठन्तीममितद्युतिम् ।
दृष्ट्वा संत्रस्तहृदयो वेपमानो मुनीश्वरः ।
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायं जपन् वशी ॥५५
प्रसन्नो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः ।
पूर्ववेषं स जग्राह देवी चान्तर्हिताऽभवत् ॥५६
आलिङ्ग्य भक्तं प्रणतं देवदेवः स्वयंशिवः ।
न भेतव्यं त्वया वत्स प्राह किं ते ददाम्यहम् ॥५७
प्रणम्य मूर्ध्ना गिरिशं हरं त्रिपुरसूदनम् ।
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः ॥५८
नमोऽस्तु ते महादेव महेश्वर नमोऽस्तु ते ।
किमेतद् भगवद्रूपं सुघोरं विश्वतोमुखम् ॥५९
का च सा भगवत्पार्श्वे राजमाना व्यवस्थिता ।
अन्तर्हितेव सहसा सर्वमिच्छामि वेदितुम् ॥६०
इत्युक्ते व्याजहारेमं तथा मङ्कणकं हरः ।
महेशः स्वात्मनो योगं देवीं च त्रिपुरानलः ॥६१

स्मितयुक्त विश्वेश एवं अति तेजस्वी (शिवा) को खड़ी देखकर मुनीश्वर का हृदय भयभीत हो गया एवं वे काँपने लगे। संयमपूर्वक रुद्राध्याय का जप करते हुए (मुनि ने) रुद्र को शिर से नमस्कार किया। (५५)

भक्तवत्सल त्र्यम्बक भगवान् ईश प्रसन्न हो गए। उन्होंने पहले का वेष धारण कर लिया एवं देवी भी अन्तर्हित हो गयीं। (५६)

शिव ने स्वयं प्रणत भक्त का आलिङ्गन कर कहा—हे वत्स! तुम डरो मत। मैं तुम्हें क्या दूँ? त्रिपुरारि गिरिश हर को शिर से प्रणाम करने के उपरान्त प्रसन्न मुनिने पूछने की इच्छा से कहा। (५७, ५८)

"हे महादेव! आपको नमस्कार है। हे महेश्वर! आपको नमस्कार है। सभी ओर मुख वाला अत्यन्त घोर आपका यह कौन रूप है? (५९)

भगवान् के पार्श्व में स्थित हो कर सुशोभित होने वाली वे (देवी) कौन हैं जो सहसा अन्तर्हित हो गयीं। मैं सभी कुछ जानना चाहता हूँ।" (६०)

(मङ्कणक के) ऐसा कहने पर त्रिपुर-दाहक महेश हर ने मङ्कणक से अपने योग तथा देवी का इस प्रकार वर्णन किया। (६१)

अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः ।
दाहकः सर्वपापानां कालः कालकरो हरः ॥६२
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचेतनात्मकम् ।
सोऽन्तर्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः ॥६३
तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ।
प्रोच्यते मुनिभिशक्तिर्जगद्योनिः सनातनी ॥६४
स एष मायया विश्वं व्यामोहयति विश्ववित् ।
नारायणः परोऽव्यक्तो मायारूप इति श्रुतिः ॥६५
एवमेतज्जगत् सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम् ।
योजयामि प्रकृत्याऽहं पुरुषं पञ्चविंशकम् ॥६६
तथा वै संगतो देवः कूटस्थः सर्वगोऽमलः ।
सृजत्यशेषमेवेदं स्वमूर्त्तेः प्रकृतेरजः ॥६७
स देवो भगवान् ब्रह्मा विश्वरूपः पितामहः ।
तवैतत् कथितं सम्यक् स्रष्टृत्वं परमात्मनः ॥६८

"मैं सहस्रनयन, सर्वात्मा, सर्वतोमुख, समस्त पापों का दाहक, काल, काल को उत्पन्न करने वाला एवं हर हूँ। (६२)

मैं ही सम्पूर्ण चेतन एवं अचेतन स्वरूप (जगत्) को प्रेरित करता हूँ। मैं ही वह अन्तर्यामी एवं मैं ही वह पुरुष तथा पुरुषोत्तम हूँ। (६३)

वह परमा माया ही त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। मुनिगण उसकी सनातनी शक्ति को जगत् का मूल कारण कहते हैं। (६४)

वही यह सर्वज्ञ (पुरुष) माया द्वारा विश्व को व्यामोहित करता है। यह श्रुति का मत है कि अव्यक्त पर नारायण माया-स्वरूप हैं। (६५)

मैं इसी प्रकार सर्वदा इस जगत् की स्थापना करता हूँ। मैं प्रकृति द्वारा पुरुष को पच्चीस तत्त्वों से युक्त करता हूँ। (६६)

उसी प्रकार से संगत सर्वव्यापी, विशुद्ध एवं कूटस्थ अजन्मा देव अपनी मूर्त्तिस्वरूप प्रकृति से इस सम्पूर्ण (विश्व) की सृष्टि करते हैं। (६७)

वे ही देव विश्वरूप पितामह भगवान् ब्रह्मा हैं। (मैंने) तुम्हें भलीभांति परमात्मा के सृष्टिकर्तृत्व को बतलाया। (६८)

एकोऽहं भगवान् कालो ह्यनादिश्चान्तकृद् विभुः ।
समास्थाय परं भावं प्रोक्तो रुद्रो मनीषिभिः ।।६९
मम वै साऽपरा शक्तिर्देवी विद्येति विश्रुता ।
दृष्टा हि भवता नूनं विद्यादेहस्त्वहं ततः ।।७०
एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वराः ।
विष्णुर्ब्रह्मा च भगवान् रुद्रः काल इति श्रुतिः ।।७१
त्रयमेतदनाद्यन्तं ब्रह्मण्येव व्यवस्थितम् ।
तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः ।।७२
आत्मानन्दपरं तत्त्वं चिन्मात्रं परमं पदम् ।
आकाशं निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यन्न विद्यते ।।७३
एवं विज्ञाय भवता भक्तियोगाश्रयेण तु ।
संपूज्यो वन्दनीयोऽहं ततस्तं पश्य शाश्वतम् ।।७४
एतावदुक्त्वा भगवाञ्जगामादर्शनं हरः ।
तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनिः ।।७५
एतत् पवित्रमतुलं तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम् ।
संसेव्य ब्राह्मणो विद्वान् मुच्यते सर्वपातकैः ।।७६

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

३५

सूत उवाच ।
अन्यत् पवित्रं विपुलं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
रुद्रकोटिरिति ख्यातं रुद्रस्य परमेष्ठिनः ।।१
पुरा पुण्यतमे काले देवदर्शनतत्पराः ।
कोटिब्रह्मर्षयो दान्तास्तं देशमगमन् परम् ।।२
अहं द्रक्ष्यामि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम् ।

मैं अद्वितीय, अनादि, अन्तकर्त्ता काल, भगवान् एवं विभु हूँ। परम भाव का अवलम्बन करने पर मनीषी लोग (मुझे) रुद्र कहते हैं। (६९)

मेरी ही वह अपराशक्ति विद्या देवी के नाम से प्रसिद्ध है। तुमने निश्चय ही (मेरे) विद्यात्मिका देह को एवं मुझे देखा है। (७०)

ये सम्पूर्ण तत्त्व प्रधान, पुरुष एवं ईश्वर स्वरूप हैं। श्रुति का कथन है कि विष्णु, ब्रह्मा एवं काल स्वरूप भगवान् रुद्र ये तीनों ही अनादि एवं अनन्त ब्रह्म में ही व्यवस्थित हैं। अतः श्रुति का कथन है कि (उक्त तीनों ही देव) तत्स्वरूप, अव्यक्त, अक्षर, आत्मानन्द स्वरूप, परम तत्त्व, चिन्मात्र एवं परम पद स्वरूप हैं। (वे तीनों ही देव) आकाशस्वरूप निष्कल ब्रह्म हैं। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। (७१-७३)

ऐसा जानकर भक्तियोग द्वारा आपको मेरी पूजा एवं वन्दना करनी चाहिये। तदनन्तर उस शाश्वत (पुरुष) का दर्शन करोगे। (७४)

इतना कहकर भगवान् हर अदृश्य हो गये। मुनि ने वहीं भक्तियोग द्वारा रुद्र की आराधना की। (७५)

यह अतुलनीय पवित्र तीर्थ ब्रह्मर्षियों से सेवित है। इसका सेवन कर विद्वान् ब्राह्मण समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है। (७६)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।।३४।।

३५

सूत ने कहा—परमेष्ठी रुद्र का रुद्रकोटि नामक त्रैलोक्य-प्रसिद्ध एक अन्य अत्यन्त पवित्र तीर्थ है। (१)

प्राचीनकाल में अत्यन्त पवित्र समय में देवदर्शन के हेतु इच्छुक एक करोड़ इन्द्रियजयी ब्रह्मर्षिगण उस श्रेष्ठ स्थान पर गये। (२)

(उन) भक्तियुक्त (महर्षियों) में इस विषय पर महान्

अन्योऽन्यं भक्तियुक्तानां व्याघातो जायते किल ।।३
तेषां भक्ति तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरुः ।
कोटिरूपोऽभवद् रुद्रो रुद्रकोटिस्ततः स्मृतः ।।४
ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम् ।
पश्यन्तः पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन् ।।५
अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम् ।
दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन् ।।६
अथान्तरिक्षे विमलं पश्यन्ति स्म महत्तरम् ।
ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वेऽभिलषन्तः परं पदम् ।।७
एतत् सदेशाध्युषितं तीर्थं पुण्यतमं शुभम् ।
दृष्ट्वा रुद्रं समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ।।८
अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं स्मृतम् ।
तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।।९
अथान्यत्पुष्पनगरी देशः पुण्यतमः शुभः ।
तत्र गत्वा पितॄन् पूज्य कुलानां तारयेच्छतम् ।।१०

विवाद होने लगा कि मैं ही पहले पिनाकी गिरिश का दर्शन करूँगा । (३)

उनकी भक्ति को देख कर योगियों के गुरु गिरिश रुद्र ने उस समय कोटि रूप धारण कर लिया । तभी से वे रुद्रकोटि कहे जाने लगे । (४)

वे सभी गिरिगुहा में स्थित पार्वतीनाथ महादेव हर को देखकर हृष्टपुष्ट बुद्धि के हो गये । (५)

मैंने ही पहले आदि एवं अन्त से रहित महादेव ईश्वर का दर्शन किया (ऐसा विचार करने से) उनका मन रुद्र में लग गया । (६)

तदुपरान्त परमपद की अभिलाषा करने वाले उन सभी ने वहीं अन्तरिक्ष में अति महान् विमल ज्योति का दर्शन किया । (७)

चूँकि वे देव (रुद्र वहाँ) रहते हैं (अतः) वह शुभ तीर्थ अत्यन्त पवित्र है । (वहाँ) रुद्र का दर्शन एवं पूजन करने से रुद्र का सामीप्य प्राप्त होता है । (८)

मधुवन नामक एक अन्य श्रेष्ठ तीर्थ है । वहाँ नियमपूर्वक जाने वाले को इन्द्र के आधे आसन की प्राप्ति होती है । (९)

पुष्प नगरी नामक अन्य अत्यन्त पवित्र शुभ देश है । वहाँ जाकर पितरों का पूजन करने से (मनुष्य) अपने कुल की सौ पीढ़ियों को तार देता है । (१०)

कालञ्जरं महातीर्थं लोके रुद्रो महेश्वरः ।
कालं जरितवान् देवो यत्र भक्तप्रियो हरः ।।११
श्वेतो नाम शिवे भक्तो राजर्षिप्रवरः पुरा ।
तदाशीस्तन्नमस्कारः पूजयामास शूलिनम् ।।१२
संस्थाप्य विधिना लिङ्गं भक्तियोगपुरः सरः ।
जजाप रुद्रमनिशं तत्र संन्यस्तमानसः ।।१३
स तं कालोऽथ दीप्तात्मा शूलमादाय भीषणम् ।
नेतुमभ्यागतो देशं स राजा यत्र तिष्ठति ।।१४
वीक्ष्य राजा भयाविष्टः शूलहस्तं समागतम् ।
कालं कालकरं घोरं भीषणं चण्डदीधितिम् ।।१५
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वाऽसौ लिङ्गमैश्वरम् ।
ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम् ।।१६
जपन्तमाह राजानं नमन्तमसकृद् भवम् ।
एह्येहीति पुरः स्थित्वा कृतान्तः प्रहसन्निव ।।१७

संसार में कालञ्जर नामक महान् तीर्थ है । वहाँ भक्त-प्रिय महेश्वर रुद्र हर ने काल को जीर्ण किया था । (११)

प्राचीन काल में श्वेत नामक शिवभक्त श्रेष्ठ राजर्षि ने उन शिव की भक्ति करते हुए एवं उन (शिव) को ही नमस्कार करते हुए त्रिशूली की पूजा की । (१२)

विधिपूर्वक रुद्र की स्थापना कर भक्तियोगपूर्वक उन (शिव) में मन लगाकर वह निरन्तर रुद्र का जप करने लगा । (१३)

तदन्तर वह (श्वेत) राजा जिस स्थान पर था वहाँ भयङ्कर शूल लिये हुये प्रदीप्त शरीरवाला काल उस (राजा को) (अपने) देश में ले जाने को आया । (१४)

भयङ्कर, मृत्युजनक भीषण, उग्र किरणों वाला तथा तेजयुक्त शूलधारी काल को आया देखकर राजा भयाकुल हो गया । (१५)

दोनों हाथों से उत्तम लिङ्ग का स्पर्श कर (उसने) शिर द्वारा रुद्र को प्रणाम किया एवं शतरुद्री का जप करने लगा । (१६)

राजा के सम्मुख खड़ा होकर हँसते हुए काल निरन्तर जप एवं शिव को नमस्कार कर रहे राजा से "आओ आओ" कहने लगा । (१७)

तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः ।
एकमीशार्चनरतं विहायान्यं निषूदय ॥१८
इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद् भीतमानसम् ।
रुद्रार्चनरतो वाऽन्यो मद्वशे को न तिष्ठति ॥१९
एवमुक्त्वा स राजानं कालो लोकप्रकालनः ।
बबन्ध पाशैः राजाऽपि जजाप शतरुद्रियम् ॥२०
अथान्तरिक्षे विमलं दीप्यमानं
तेजोराशिं भूतभर्तुः पुराणम् ।
ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं
प्रादुर्भूतं संस्थितं संददर्श ॥२१
तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं
देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम् ।
तेजोरूपं पश्यति स्मातिहृष्टो
मेने चास्मन्नाथ आगच्छतीति ॥२२
आगच्छन्तं नातिदूरेऽथ दृष्ट्वा
कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम् ।
व्यपेतभीरखिलेशैकनाथं
राजर्षिस्तं नेतुमभ्याजगाम ॥२३
आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्मा
देवो रुद्रो भूतभर्त्ता पुराणः ।
एकं भक्तं मत्परं मां स्मरन्तं
देहीतीमं कालमूचे ममेति ॥२४
श्रुत्वा वाक्यं गोपतेरुग्रभावः
कालात्माऽसौ मन्यमानः स्वभावम् ।
बद्ध्वा भक्तं पुनरेवाऽथ पाशैः
क्रुद्धो रुद्रमभिदुद्राव वेगात् ॥२५
प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेशः
सोऽन्वीक्ष्यान्ते विश्वमायाविधिज्ञः ।
सावज्ञं वै वामपादेन मृत्युं
श्वेतस्यैनं पश्यतो व्याजघान ॥२६
ममार सोऽतिभीषणो महेशपादघातितः ।
रराज देवतापतिः सहोमया पिनाकधृक् ॥२७
निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम् ।

रुद्रपरायण भयाविष्ट राजा ने उससे कहा एकमात्र ईश की आराधना में रत व्यक्ति को छोड़कर अन्यों का नाश करो । (१८)

इस प्रकार कह रहे भयभीत मनवाले (राजा) से भगवान् (काल) ने कहा "रुद्र की आराधना करने वाला अथवा अन्य कौन मेरे वश में नहीं है ?" (१९)

ऐसा कहकर लोकसंहारक काल राजा को पाश द्वारा बाँधने लगा एवं राजा भी शतरुद्रिय का जप करने लगा । (२०)

तदनन्तर (राजर्षि श्वेत ने) देखा कि अन्तरिक्ष में भूतपति (महादेव) का प्रदीप्त, ज्वाला के समूह से युक्त अनादि विमल तेजसमूह विश्व को व्याप्त कर प्रादुर्भूत हुआ । (२१)

उसके मध्य उस (राजा) ने देवी से युक्त, स्वर्णवर्ण एवं चन्द्रलेखा से शोभित अङ्गवाले, तेजोमय (पुरुष) को देखा । (उसे देख कर वह) अत्यन्त प्रसन्न हो गया एवं यह विचार किया कि मेरे नाथ आ रहे हैं । (२२)

तदुपरान्त महादेवी के साथ समस्त स्वामियों के नाथ महेश्वर रुद्र को निकट आते देख राजर्षि (श्वेत) निर्भय हो गये । (किन्तु) काल उन्हें ले जाने को आया । (२३)

यह देख कर भूतपति, पुराण, उग्रकर्मा भगवान् रुद्र देव ने काल से कहा—मेरे शरणागत एवं मुझे स्मरण कर रहे इस मेरे एक भक्त को मुझे दे दो । (२४)

गोपति के वाक्य को सुनकर वह काल अपने रौद्र स्वभाव का विचार करते हुए पुनः शिवभक्त (राजर्षि श्वेत) को पाश से बाँध कर वेगपूर्वक (महादेव की ओर) दौड़ा । (२५)

तदनन्तर (काल को) आते हुए देखकर विश्वमाया की विधि के ज्ञाता शङ्कर ने शैलपुत्री (पार्वती) की ओर दृष्टिपात कर श्वेत (राजर्षि) के देखते-देखते अवज्ञा-पूर्वक वामपाद से मृत्यु को मारा । (२६)

महेश के पाद से आहत होकर अतिभीषण वह (काल) मर गया एवं पिनाकधारी महेश्वर उमा सहित सुशोभित हुए । (२७)

तब प्रसन्नचित्त उस श्रेष्ठ राजा ने देव महेश्वर को देखकर अम्बा (पार्वती) सहित उन अव्यय हर को प्रणाम

अन्योऽन्यं भक्तियुक्तानां व्याघातो जायते किल ।।३
तेषां भक्तिं तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरुः ।
कोटिरूपोऽभवद् रुद्रो रुद्रकोटिस्ततः स्मृतः ।।४
ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम् ।
पश्यन्तः पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन् ।।५
अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम् ।
दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन् ।।६
अथान्तरिक्षे विमलं पश्यन्ति स्म महत्तरम् ।
ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वेऽभिलषन्तः परं पदम् ।।७
एतत् सदेशाध्युषितं तीर्थं पुण्यतमं शुभम् ।
दृष्ट्वा रुद्रं समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ।।८
अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं स्मृतम् ।
तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।।९
अथान्यत्पुष्पनगरी देशः पुण्यतमः शुभः ।
तत्र गत्वा पितॄन् पूज्य कुलानां तारयेच्छतम् ।।१०

कालञ्जरं महातीर्थं लोके रुद्रो महेश्वरः ।
कालं जरितवान् देवो यत्र भक्तप्रियो हरः ।।११
श्वेतो नाम शिवे भक्तो राजर्षिप्रवरः पुरा ।
तदाशीस्तन्नमस्कारः पूजयामास शूलिनम् ।।१२
संस्थाप्य विधिना लिङ्गं भक्तियोगपुरः सरः ।
जजाप रुद्रमनिशं तत्र संन्यस्तमानसः ।।१३
स तं कालोऽथ दीप्तात्मा शूलमादाय भीषणम् ।
नेतुमभ्यागतो देशं स राजा यत्र तिष्ठति ।।१४
वीक्ष्य राजा भयाविष्टः शूलहस्तं समागतम् ।
कालं कालकरं घोरं भीषणं चण्डदीधितिम् ।।१५
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वाऽसौ लिङ्गमैश्वरम् ।
ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम् ।।१६
जपन्तमाह राजानं नमन्तमसकृद् भवम् ।
एह्येहीति पुरः स्थित्वा कृतान्तः प्रहसन्निव ।।१७

विवाद होने लगा कि मैं ही पहले पिनाकी गिरिश का दर्शन करूँगा । (३)

उनकी भक्ति को देख कर योगियों के गुरु गिरिश रुद्र ने उस समय कोटि रूप धारण कर लिया । तभी से वे रुद्रकोटि कहे जाने लगे । (४)

वे सभी गिरिगुहा में स्थित पार्वतीनाथ महादेव हर को देखकर हृष्टपुष्ट बुद्धि के हो गये । (५)

मैंने ही पहले आदि एवं अन्त से रहित महादेव ईश्वर का दर्शन किया (ऐसा विचार करने से) उनका मन रुद्र में लग गया । (६)

तदुपरान्त परमपद की अभिलाषा करने वाले उन सभी ने वहीं अन्तरिक्ष में अति महान् विमल ज्योति का दर्शन किया । (७)

चूँकि वे देव (रुद्र वहाँ) रहते हैं (अतः) वह शुभ तीर्थ अत्यन्त पवित्र है । (वहाँ) रुद्र का दर्शन एवं पूजन करने से रुद्र का सामीप्य प्राप्त होता है । (८)

मधुवन नामक एक अन्य श्रेष्ठ तीर्थ है । वहाँ नियमपूर्वक जाने वाले को इन्द्र के आधे आसन की प्राप्ति होती है । (९)

पुष्प नगरी नामक अन्य अत्यन्त पवित्र शुभ देश है । वहाँ जाकर पितरों का पूजन करने से (मनुष्य) अपने कुल की सौ पीढ़ियों को तार देता है । (१०)

संसार में कालञ्जर नामक महान् तीर्थ है । वहाँ भक्त-प्रिय महेश्वर रुद्र हर ने काल को जीर्ण किया था । (११)

प्राचीन काल में श्वेत नामक शिवभक्त श्रेष्ठ राजर्षि ने उन शिव की भक्ति करते हुए एवं उन (शिव) को ही नमस्कार करते हुए त्रिशूली की पूजा की । (१२)

विधिपूर्वक रुद्र की स्थापना कर भक्तियोगपूर्वक उन (शिव) में मन लगाकर वह निरन्तर रुद्र का जप करने लगा । (१३)

तदन्तर वह (श्वेत) राजा जिस स्थान पर था वहाँ भयङ्कर शूल लिये हुये प्रदीप्त शरीरवाला काल उस (राजा को) (अपने) देश में ले जाने को आया । (१४)

भयङ्कर, मृत्युजनक भीषण, उग्र किरणों वाला तथा तेजयुक्त शूलधारी काल को आया देखकर राजा भयाकुल हो गया । (१५)

दोनों हाथों से उत्तम लिङ्ग का स्पर्श कर (उसने) शिर द्वारा रुद्र को प्रणाम किया एवं शतरुद्री का जप करने लगा । (१६)

राजा के सम्मुख खड़ा होकर हँसते हुए काल निरन्तर जप एवं शिव को नमस्कार कर रहे राजा से "आओ आओ" कहने लगा । (१७)

तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः ।
एकमीशार्चनरतं विहायान्यं निषूदय ॥१८
इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद् भीतमानसम् ।
रुद्रार्चनरतो वाऽन्यो मद्वशे को न तिष्ठति ॥१९
एवमुक्त्वा स राजानं कालो लोकप्रकालनः ।
बबन्ध पाशैः राजाऽपि जजाप शतरुद्रियम् ॥२०
अथान्तरिक्षे विमलं दीप्यमानं
तेजोराशिं भूतभर्त्तुः पुराणम् ।
ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं
प्रादुर्भूतं संस्थितं संददर्श ॥२१
तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं
देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम् ।
तेजोरूपं पश्यति स्मातिहृष्टो
मेने चास्मन्नाथ आगच्छतीति ॥२२
आगच्छन्तं नातिदूरेऽथ दृष्ट्वा
कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम् ।
व्यपेतभीरखिलेशैकनाथं
राजर्षिस्तं नेतुमभ्याजगाम ॥२३
आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्मा
देवो रुद्रो भूतभर्त्ता पुराणः ।
एकं भक्तं मत्परं मां स्मरन्तं
देहीतीमं कालमूचे ममेति ॥२४
श्रुत्वा वाक्यं गोपतेरुग्रभावः
कालात्माऽसौ मन्यमानः स्वभावम् ।
बद्ध्वा भक्तं पुनरेवाऽथ पाशैः
क्रुद्धो रुद्रमभिदुद्राव वेगात् ॥२५
प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेशः
सोऽन्वीक्ष्यान्ते विश्वमायाविधिज्ञः ।
सावज्ञं वै वामपादेन मृत्युं
श्वेतस्यैनं पश्यतो व्याजघान ॥२६
ममार सोऽतिभीषणो महेशपादघातितः ।
रराज देवतापतिः सहोमया पिनाकधृक् ॥२७
निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम् ।

रुद्रपरायण भयाविष्ट राजा ने उससे कहा एकमात्र ईश की आराधना में रत व्यक्ति को छोड़कर अन्यों का नाश करो । (१८)

इस प्रकार कह रहे भयभीत मनवाले (राजा) से भगवान् (काल) ने कहा "रुद्र की आराधना करने वाला अथवा अन्य कौन मेरे वश में नहीं है ?" (१९)

ऐसा कहकर लोकसंहारक काल राजा को पाश द्वारा बाँधने लगा एवं राजा भी शतरुद्रिय का जप करने लगा । (२०)

तदनन्तर (राजर्षि श्वेत ने) देखा कि अन्तरिक्ष में भूतपति (महादेव) का प्रदीप्त, ज्वाला के समूह से युक्त अनादि विमल तेजसमूह विश्व को व्याप्त कर प्रादुर्भूत हुआ । (२१)

उसके मध्य उस (राजा) ने देवी से युक्त, स्वर्णवर्ण एवं चन्द्रलेखा से शोभित अङ्गवाले, तेजोमय (पुरुष) को देखा । (उसे देख कर वह) अत्यन्त प्रसन्न हो गया एवं यह विचार किया कि मेरे नाथ आ रहे हैं । (२२)

तदुपरान्त महादेवी के साथ समस्त स्वामियों के नाथ महेश्वर रुद्र को निकट आते देख राजर्षि (श्वेत) निर्भय हो गये । (किन्तु) काल उन्हें ले जाने को आया । (२३)

यह देख कर भूतपति, पुराण, उग्रकर्मा भगवान् रुद्र देव ने काल से कहा—मेरे शरणागत एवं मुझे स्मरण कर रहे इस मेरे एक भक्त को मुझे दे दो । (२४)

गोपति के वाक्य को सुनकर वह काल अपने रौद्र स्वभाव का विचार करते हुए पुनः शिवभक्त (राजर्षि श्वेत) को पाश से बाँध कर वेगपूर्वक (महादेव की ओर) दौड़ा । (२५)

तदनन्तर (काल को) आते हुए देखकर विश्वमाया की विधि के ज्ञाता शङ्कर ने शैलपुत्री (पार्वती) की ओर दृष्टिपात कर श्वेत (राजर्षि) के देखते-देखते अवज्ञापूर्वक वामपाद से मृत्यु को मारा । (२६)

महेश के पाद से आहत होकर अतिभीषण वह (काल) मर गया एवं पिनाकधारी महेश्वर उमा सहित सुशोभित हुए । (२७)

तब प्रसन्नचित्त उस श्रेष्ठ राजा ने देव महेश्वर को देखकर अम्बा (पार्वती) सहित उन अव्यय हर को प्रणाम

ननाम साम्बमव्ययं स राजपुंगवस्तदा ।।२८
नमो भवाय हेतवे हराय विश्वसंभवे ।
नमः शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिने ।।२९
नमो नमो नमोऽस्तु ते महाविभूतये नमः ।
विभागहीनरूपिणे नमो नराधिपाय ते ।।३०
नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपन्नदुःखनाशन ।
अनादिनित्यभूतये वराहश्रृङ्गधारिणे।।३१
नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नमः ।
नमो महानटाय ते नमो वृषध्वजाय ते ।।३२
अथानुगृह्य शंकरः प्रणामतत्परं नृपम् ।
स्वगाणपत्यमव्ययं सरूपतामथो ददौ ।।३३
सहोमया सपार्षदः सराजपुंगवो हरः ।
मुनीशसिद्धवन्दितः क्षणाददृश्यतामगात् ।।३४
काले महेशाभिहते लोकनाथः पितामहः ।
अयाचत वरं रुद्रं सजीवोऽयं भवत्विति ।।३५
नास्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज ।
कृतान्तस्यैव भवता तत्कार्ये विनियोजितः ।।३६
स देवदेववचनाद् देवदेवेश्वरो हरः ।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत्।।३७
इत्येतत् परमं तीर्थं कालंजरमिति श्रुतम् ।
गत्वाऽभ्यर्च्य महादेवं गाणपत्यं स विन्दति ।।३८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।

किया (और प्रार्थना की—) । (२८)

जगत् के कारण स्वरूप भवहेतु, एवं हर को नमस्कार है, मङ्गल करने वाले बुद्धिमान् शिव को नमस्कार है। मोक्ष प्रदाता (देव) को नमस्कार है। (२९)

महाविभूति स्वरूप आप (देव) को वारंवार नमस्कार है। विभागहीन रूपवाले आप नराधिप को नमस्कार है। (३०)

हे गणेश्वर ! हे भक्तों के दुःख को दूर करने वाले ! आपको नमस्कार है। अनादि एवं नित्य ऐश्वर्य सम्पन्न तथा वराहश्रृङ्गधारी को नमस्कार है। (३१)

हे वृषध्वज ! आपको नमस्कार है। कपालमाली को नमस्कार है। आप महानट एवं वृषध्वज को नमस्कार है। (३२)

तदनन्तर प्रणाम में तत्पर राजा पर अनुग्रह कर शङ्कर ने उसे अपना शाश्वत गाणपत्य एवं अपना स्वरूप प्रदान किया। (३३)

उमा, पार्षद एवं श्रेष्ठ राजा के सहित मुनीशों एवं सिद्धों से वन्दित हर क्षणमात्र में अदृश्य हो गए। (३४)

महेश द्वारा काल के मारे जाने पर लोकनाथ पितामह ने रुद्र से यह वर माँगा कि यह सजीव हो जाय। (३५)

हे ईशान ! हे वृषध्वज ! काल का कुछ भी दोष नहीं है। आपने ही (उसे) उस कार्य में नियोजित किया है। (३६)

देवाधिदेव (ब्रह्मा) के कहने पर विश्वात्मा देव-देवेश्वर हर ने कहा 'ऐसा ही हो'। वह (काल भी) उसी प्रकार का अर्थात् सजीव हो गया। (३७)

यह परम तीर्थ कालञ्जर नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ जाकर महादेव की पूजा करने वाले को गाणपत्य की प्राप्ति होती है। (३८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त—३५.

३६

सूत उवाच ।

इदमन्यत् परं स्थानं गुह्याद् गुह्यतमं महत् ।
महादेवस्य देवस्य महालयमिति श्रुतम् ॥१
तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा ।
शिलातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निदर्शनम् ॥२
तत्र पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः ।
उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्पराः ॥३
स्नात्वा तत्र पदं शार्वं दृष्ट्वा भक्तिपुरःसरम् ।
नमस्कृत्वाऽथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥४
अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं शंभोर्महात्मनः ।
केदारमिति विख्यातं सिद्धानामालयं शुभम् ॥५
तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम् ।
पीत्वा चैवोदकं शुद्धं गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥६
श्राद्धदानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभते फलम् ।
द्विजातिप्रवरैर्जुष्टं योगिभिर्यतमानसैः ॥७
तीर्थं प्लक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम् ।
तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवासं विष्णुलोके महीयते ॥८
अन्यं मगधराजस्य तीर्थं स्वर्गगतिप्रदम् ।
अक्षयं विन्दति स्वर्गं तत्र गत्वा द्विजोत्तमः ॥९
तीर्थं कनखलं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः ॥१०
तत्र गङ्गामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वितः ।
मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोकं लभेन्मृतः ॥११
महातीर्थमिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम् ।

३६

सूत ने कहा—देवाधिदेव महादेव का 'महालय' नाम से प्रसिद्ध एक अन्य अत्यन्त गुह्य तथा श्रेष्ठ स्थान है। (१)

वहाँ देवाधिदेव त्रिपुरारि रुद्र ने नास्तिकों के लिये प्रमाणस्वरूप शिलातल पर पैर (का चिह्न) प्रस्थापित किया है। (२)

वहाँ शरीर में भस्म रमाये हुये शान्त पशुपति के भक्तगण वेदाध्ययन करते हुए महादेव की उपासना करते हैं। (३)

वहाँ स्नानोपरान्त भक्तिपूर्वक शंकर के पद का दर्शन एवं शिर द्वारा प्रणाम करने से रुद्र के सामीप्य की प्राप्ति होती है। (४)

'केदार' नाम से प्रसिद्ध एक अन्य देवाधिदेव महात्मा शम्भु का स्थान है। वह शुभ स्थान सिद्धों की निवास-भूमि है। (५)

वहाँ स्नानोपरान्त वृषकेतन महादेव का पूजन एवं शुद्ध जलपान करने से गाणपत्य की प्राप्ति होती है। (६)

वहाँ श्राद्धदानादिक करने से अक्षयफल प्राप्त होता है। वहाँ श्रेष्ठ द्विजाति तथा मन को जीतने वाले योगी लोग रहते हैं। (७)

प्लक्षावतरण नामक तीर्थ सर्वपापविनाशक है। वहाँ श्रीनिवास की पूजा करने से विष्णुलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (८)

मगधराज का स्वर्गप्रदान करने वाला एक अन्य तीर्थ है। वहाँ की यात्रा करने से द्विजोत्तम को अक्षयस्वर्ग प्राप्त होता है। (९)

कनखल नामक पवित्र एवं महापातकों को नष्ट करने वाला तीर्थ है, जहाँ रुद्र देव ने दक्ष के यज्ञ को नष्ट किया था। (१०)

वहाँ पवित्रता एवं भक्तिपूर्वक गङ्गा में स्नान कर मनुष्य सभी पापों से मुक्त होता एवं मरने पर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। (११)

महातीर्थ नाम से प्रसिद्ध नारायण का प्रिय एक

तत्राभ्यर्च्य हृषीकेशं श्वेतद्वीपं निगच्छति ॥१२
अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना श्रीपर्वतं शुभम् ।
तत्र प्राणान् परित्यज्य रुद्रस्य दयितो भवेत् ॥१३
तत्र सन्निहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः ।
स्नानपिण्डादिकं तत्र कृतमक्षय्यमुत्तमम् ॥१४
गोदावरी नदी पुण्या सर्वपापविनाशनी ।
तत्र स्नात्वा पितॄन् देवांस्तर्पयित्वा यथाविधि ।
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफलं लभेत् ॥१५
पवित्रसलिला पुण्या कावेरी विपुला नदी ।
तस्यां स्नात्वोदकं कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ।
त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोषितेन वा ॥१६
द्विजातीनां तु कथितं तीर्थानामिह सेवनम् ।
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च संस्थितौ ।
अलोलुपो ब्रह्मचारी तीर्थानां फलमाप्नुयात् ॥१७
स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्र सन्निहितो नित्यं स्कन्दोऽमरनमस्कृतः ॥१८
स्नात्वा कुमारधारायां कृत्वा देवादितर्पणम् ।
आराध्य षण्मुखं देवं स्कन्देन सह मोदते ॥१९
नदी त्रैलोक्यविख्याता ताम्रपर्णीति नामतः ।
तत्र स्नात्वा पितॄन् भक्त्या तर्पयित्वा यथाविधि ।
पापकर्तॄनपि पितॄंस्तारयेन्नात्र संशयः ॥२०
चन्द्रतीर्थमिति ख्यातं कावेर्याः प्रभवेऽक्षयम् ।
तीर्थं तत्र भवेद् वस्तुं मृतानां स्वर्गतिर्ध्रुवा ॥२१
विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेवं सदाशिवम् ।
भक्त्या ये ते न पश्यन्ति यमस्य सदनं द्विजाः ॥२२
देविकायां वृषो नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वोदकं दत्वा योगसिद्धिं च विन्दति ॥२३
दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्वपापविनाशनम् ।

पवित्र तीर्थ है। वहाँ हृषीकेश की पूजा करने वाले को श्वेतद्वीप की प्राप्ति होती है। (१२)

श्री पर्वत नामक एक अन्य पवित्र तथा श्रेष्ठ तीर्थ है। यहाँ प्राणों का परित्याग करने वाला रुद्र का प्रिय हो जाता है। (१३)

वहाँ महेश्वर रुद्र देवी सहित स्थित हैं। वहाँ पर किया जाने वाला स्नान एवं पिण्डदानादिक उत्तम कर्म अक्षय होता है। (१४)

पवित्र गोदावरी नदी समस्त पापों का विनाश करती है। विधिपूर्वक उसमें स्नान कर पितरों एवं देवों का तर्पण करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर सहस्र गौवों के दान का फल प्राप्त करता है। (१५)

तीन रात्रि या एक रात्रि का उपवास कर शुद्ध जलवाली पवित्र तथा विपुल कावेरी नदी में स्नानोपरान्त (तर्पणादि) उदक क्रिया करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (१६)

द्विजातियों के लिये यहाँ तीर्थों के सेवन का वर्णन किया गया है। जिसका मन एवं वाणी शुद्ध हो तथा हाथ और पैर संयमित हों ऐसा लोलुपता रहित तथा ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला द्विज तीर्थों का फल प्राप्त करता है। (१७)

तीनों लोकों में प्रसिद्ध स्वामितीर्थ नामक महान् तीर्थ है। देवों से पूजित स्कन्द (कार्तिकेय) देव वहाँ नित्य निवास करते हैं। (१८)

कुमारधारा में स्नान कर देवादि का तर्पण एवं षण्मुख-अर्थात् कार्त्तिकेय की उपासना करने से मनुष्य स्कन्द के साथ आनन्दोपभोग करता है। (१९)

ताम्रपर्णी नामक नदी त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है। उसमें यथाविधि स्नान कर भक्तिपूर्वक पितरों का तर्पण करने से मनुष्य पाप करने वाले पितरों को भी मुक्त कर देता है। इसमें सन्देह नहीं। (२०)

कावेरी के उद्गम स्थान पर चन्द्रतीर्थ नामक अक्षय फलदायी तीर्थ है। उस तीर्थ में रहने और मरने पर निश्चय स्वर्ग की प्राप्ति होती है। (२१)

जो भक्त विन्ध्यपाद में देवाधिदेव सदाशिव का दर्शन करते हैं उन द्विजों को यम का घर नहीं देखना पड़ता। (२२)

देविका में सिद्धों से सेवित वृष नामक तीर्थ है। वहाँ स्नानोपरान्त (तर्पणादि) उदकक्रिया करने से योगसिद्धि प्राप्त होती है। (२३)

दशाश्वमेध नाम का सर्वपाप विनाशक तीर्थ है। वहाँ

दशानामश्वमेधानां तत्राप्नोति फलं नरः ।।२४
पुण्डरीकं महातीर्थं ब्राह्मणैरुपसेवितम् ।
तत्राभिगम्य युक्तात्मा पौण्डरीकफलं लभेत् ।।२५
तीर्थेभ्यः परमं तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम् ।
ब्रह्माणमर्चयित्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ।।२६
सरस्वत्या विनशनं प्लक्षप्रस्रवणं शुभम् ।
व्यासतीर्थं परं तीर्थं मैनाकं च नगोत्तमम् ।
यमुनाप्रभवं चैव सर्वपापविशोधनम् ।।२७
पितॄणां दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता ।
तस्यां स्नात्वा दिवं याति मृतो जातिस्मरो भवेत् ।।२८
कुबेरतुङ्गं पापघ्नं सिद्धचारणसेवितम् ।
प्राणांस्तत्र परित्यज्य कुबेरानुचरो भवेत् ।।२९
उमातुङ्गमिति ख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभा ।
तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफलं लभेत् ।।३०
भृगुतुङ्गे तपस्तप्तं श्राद्धं दानं तथा कृतम् ।
कुलान्युभयतः सप्त पुनातीति श्रुतिर्मम ।।३१
काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुतम् ।
तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यं पापक्षयेच्छया ।।३२
दशार्णायां तथा दानं श्राद्धं होमस्तथा जपः ।
अक्षयं चाव्ययं चैव कृतं भवति सर्वदा ।।३३
तीर्थं द्विजातिभिर्जुष्टं नाम्ना वै कुरुजाङ्गलम् ।
दत्त्वा तु दानं विधिवद् ब्रह्मलोके महीयते ।।३४
वैतरण्यां महातीर्थे स्वर्णवेद्यां तथैव च ।
धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणः परमे शुभे ।।३५
भरतस्याश्रमे पुण्ये पुण्ये श्राद्धवटे शुभे ।
महाह्लदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम् ।।३६
मुञ्जपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ।
हिताय सर्वभूतानां नास्तिकानां निदर्शनम् ।।३७

मनुष्य को दश अश्वमेधयज्ञ करने का फल प्राप्त होता है। (२४)

ब्राह्मणों से सुशोभित पुण्डरीक नामक तीर्थ है। वहाँ की यात्रा करने से संयतचित्त मनुष्य पुण्डरीक (यज्ञ) का फल प्राप्त करता है। (२५)

ब्रह्मतीर्थ को तीर्थों में श्रेष्ठ कहा गया है। (यहाँ) ब्रह्मा का पूजन करने से ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (२६)

सरस्वती का विनशन—अर्थात् सरस्वती के लुप्त होने का स्थान, सुन्दर प्लक्षप्रस्रवण, श्रेष्ठ व्यासतीर्थ, पर्वतों में उत्तम मैनाक एवं समस्त पापों को नष्ट करने वाला यमुना का उद्गम स्थान (ये सभी तीर्थ प्रसिद्ध हैं)। (२७)

पितरों की पुत्री स्वरूपा गन्धकाली देवी के नाम से प्रसिद्ध नदी में स्नान करने से मनुष्य मरने पर स्वर्ग में जाता है एवं (पुनर्जन्म होने पर वह) जातिस्मर अर्थात् पूर्वजन्म का स्मरण करने वाला होता है। (२८)

सिद्धों एवं चारणों से सेवित पापनाशक कुबेरतुङ्ग नामक तीर्थ है। वहाँ प्राण त्याग करने से मनुष्य कुबेर का अनुचर होता है। (२९)

उमातुङ्गनामक प्रसिद्ध तीर्थ है जहाँ रुद्रवल्लभा (पार्वती) स्थित हैं। वहाँ महादेवी (पार्वती) की पूजा करने से सहस्र गायों (के दान) का फल प्राप्त होता है। मैंने यह सुना है कि भृगुतुङ्ग तीर्थ में किया गया तप, श्राद्ध एवं दान दोनों कुलों—अर्थात् मातृकुल एवं पितृकुल के सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है। (३०, ३१)

कालसर्पि नामक काश्यप का महान् तीर्थ है। पाप के क्षय की इच्छा से वहाँ नित्य श्राद्ध एवं दान करना चाहिए। (३२)

दशार्णा में किया गया दान, श्राद्ध, होम एवं जप सर्वदा अक्षय एवं अव्यय होता है। (३३)

कुरुजाङ्गल नामक द्विजातियों से सेवित तीर्थ है। वहाँ विधिपूर्वक दान करने से ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (३४)

वैतरणी, महातीर्थ, स्वर्ण वेदी, धर्मपृष्ठ, परम शुभ ब्रह्म सरोवर, भरत के पवित्र आश्रम, पवित्र शुभ श्राद्धवट, महाह्लद एवं कौशिकी नदी में दिया गया दान अक्षय होता है। (३५, ३६)

बुद्धिमान् महादेव ने सभी प्राणियों के हितार्थ नास्तिकों के लिये प्रमाणस्वरूप मुञ्जपृष्ठ नामक तीर्थ में (अपने) पद (चिन्ह) की स्थापना की है। (३७)

अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायणः ।
पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः ।।३८
नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
उदीच्यां मुञ्जपृष्ठस्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ।।३९
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति सशरीरा द्विजातयः ।
दत्तं चापि सदा श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम् ।
ऋणैस्त्रिभिर्नरः स्नात्वा मुच्यते क्षीणकल्मषः ।।४०
मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ।।४१
तस्मान्निर्वर्त्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम् ।
कामान् स लभते दिव्यान् मोक्षोपायं च विन्दति ।।४२
पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः ।
योजनानां सहस्राणि सोऽशीतिस्त्वायतो गिरिः ।
सिद्धचारणसंकीर्णो देवर्षिगणसेवितः ।।४३
तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्ना नाम नामतः ।
तत्र गत्वा द्विजो विद्वान् ब्रह्महत्यां विमुञ्चति ।।४४
श्राद्धं भवति चाक्षय्यं तत्र दत्तं महोदयम् ।
तारयेच्च पितॄन् सम्यग् दश पूर्वान् दशापरान् ।।४५
सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गा पुण्या समन्ततः ।
नद्यः समुद्रगाः पुण्याः समुद्रश्च विशेषतः ।।४६
बदर्याश्रममासाद्य मुच्यते कलिकल्मषात् ।
तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः ।।४७
अक्षयं तत्र दानं स्यात् जप्यं वाऽपि तथाविधम् ।
महादेवप्रियं तीर्थं पावनं तद् विशेषतः ।
तारयेच्च पितॄन् सर्वान् दत्त्वा श्राद्धं समाहितः ।।४८
देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ।
महादेवेन देवेन तत्र दत्तं महद् वरं ।।४९
मोहयित्वा मुनीन् सर्वान् पुनस्तैः संप्रपूजितः ।
प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान् ।।५०

धर्म-परायण मनुष्य अल्पकाल में ही (इस प्रकार) पाप का शीघ्र त्याग करता है जैसे सर्प जीर्ण त्वचा (का त्याग करता है) । (३८)

मुञ्ज पृष्ठ के उत्तर ब्रह्मर्षिगण से सेवित त्रैलोक्य-प्रसिद्ध कनकनन्दा नामक तीर्थ है । (३९)

वहाँ स्नान करने पर द्विजातिगण सशरीर स्वर्ग जाते हैं एवं (वहाँ पर) दिया गया दान और किया गया श्राद्ध सर्वदा अक्षय कहा गया है । (वहाँ) स्नान करने पर मनुष्य पाप-रहित होकर तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है । (४०)

मानस सरोवर में स्नान करने से इन्द्र के अर्द्धासन की प्राप्ति होती है । उत्तर मानस की यात्रा करने से श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है । (४१)

अतः (वहाँ) अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार श्राद्ध करना चाहिए । ऐसा करने वाले को दिव्य भोगों एवं मोक्ष के उपाय की प्राप्ति होती है । (४२)

एक हजार अस्सी योजन अर्थात् प्रायः चार हजार तीन सौ वीस कोस के परिमाण में विस्तृत अनेक प्रकार के धातुओं से विभूषित, सिद्ध-चारणों से पूर्ण तथा देवर्षिगण से सेवित हिमवान् नामक पर्वत है । (४३)

वहाँ सुषुम्ना नामक सुन्दर सरोवर है । (वहाँ की यात्रा करने से विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है । (४४)

वहाँ पर किया हुआ श्राद्ध अक्षय तथा दिया हुआ दान महान् उत्कर्ष करने वाला होता है । (वहाँ की यात्रादि करने वाला व्यक्ति अपने) पूर्व एवं पश्चात् के दस पीढ़ी तक के पितरों को तार देता है । (४५)

हिमालय एवं गङ्गा सर्वत्र पवित्र हैं । समुद्र में जाने वाली नदियाँ एवं विशेष रूप से समुद्र पवित्र होते हैं । (४६)

वदर्याश्रम में आकर (मनुष्य) कलि के पापों से मुक्त हो जाता है । वहाँ नर सहित सनातन नारायण देव स्थित हैं । (४७)

वहाँ विधिपूर्वक किया गया दान एवं जप इत्यादि (कर्म) अक्षय होता है । वह तीर्थ महादेव को विशेष रूप से प्रिय है । वहाँ एकाग्रचित्त से दान एवं श्राद्ध कर्म करने वाले अपने समस्त पितरों को तार देता है । (४८)

पवित्र देवदारु वन सिद्धों एवं गन्धर्वों से सेवित है । देवाधिदेव महादेव ने वहाँ महान् वर प्रदान किया था । (४९)

सभी मुनियों को मोहित करने के उपरान्त (उन) समस्त मुनियों द्वारा पूजित होने पर प्रसन्न होकर

इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा ।
मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ ॥५१
येऽत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरा जनाः ।
तेषां ददामि परमं गाणपत्यं हि शाश्वतम् ॥५२
अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन च ।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म विन्दति ॥५३
संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगता जनाः ।
तेषां च सर्वपापानि नाशयामि द्विजोत्तमाः ॥५४
श्राद्धं दानं तपो होमः पिण्डनिर्वपणं तथा ।
ध्यानं जपश्च नियमः सर्वमत्राक्षयं कृतम् ॥५५
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्यं हि द्विजातिभिः ॥
देवदारुवनं पुण्यं महादेवनिषेवितम् ॥५६
यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः ।
तत्र सन्निहिता गङ्गा तीर्थान्यायतनानि च ॥५७

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

३७

ऋषय ऊचुः ।
कथं दारुवनं प्राप्तो भगवान् गोवृषध्वजः ।
मोहयामास विप्रेन्द्रान् सूत वक्तुमिहार्हसि ॥१
सूत उवाच ।
पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते ।
सपुत्रदारा मुनयस्तपश्चेरुः सहस्रशः ॥२
प्रवृत्तं विविधं कर्म प्रकुर्वाणा यथाविधि ।
यजन्ति विविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः ॥३
तेषां प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलधृक् ।
ख्यापयन् स महादोषं ययौ दारुवनं हरः ॥४

भगवान् ईश ने उन भक्तिपूर्ण मुनियों से कहा । (५०)

इस सुन्दर श्रेष्ठ आश्रम में सर्वदा मेरी भक्ति से युक्त होकर निवास करो । इससे (तुम्हें) सिद्धि प्राप्त होगी । (५१)

जो संसार में धर्मपरायण लोग यहाँ मेरी पूजा करते हैं उन्हें (मैं) श्रेष्ठ शाश्वत गाणपत्य (पद) प्रदान करता हूँ । (५२)

मैं यहाँ नारायण के साथ नित्य निवास करता हूँ । मनुष्य यहाँ प्राण त्याग कर पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता । (५३)

हे द्विजोत्तमो ! देशान्तर में गये हुए जो मनुष्य (इस) तीर्थ का स्मरण करते हैं उनके समस्त पापों को (मैं) नष्ट कर देता हूँ । (५४)

यहाँ पर किया सभी श्राद्ध, दान, तप, होम, पिण्ड-दान , ध्यान, जप एवं नियम अक्षय होता है । (५५)

अतः सभी प्रकार का प्रयत्न कर द्विजातियों को महादेव द्वारा सेवित देवदारु वन का दर्शन करना चाहिये । (५६)

जहाँ महादेव ईश्वर अथवा पुरुषोत्तम विष्णु रहते हैं वहाँ गङ्गा, तीर्थ एवं देव-स्थानों की स्थिति होती है । (५७)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त—३६.

३७

ऋषियों ने कहा—हे सूत ! भगवान् गोवृषभध्वज ने दारुवन में जाकर श्रेष्ठ विप्रों को क्यों मोहित किया । आप हमें यह बतलायें । (१)

सूत ने कहा—प्राचीन समय में पुत्र एवं स्त्री सहित सहस्रों मुनिगण, देवों एवं सिद्धों से सेवित रमणीय दारुवन में जाकर तप कर रहे थे । (२)

प्रवृत्त होने वाले अनेक प्रकार के कर्मों को विधिपूर्वक प्रारम्भ करने वाले महर्षि लोग अनेक प्रकार के यज्ञ एवं तप कर रहे थे । (३)

तदन्तर शूलधारी हर सर्वदा प्रवृत्ति-मार्ग में मन लगाने वाले उन ऋषियों के दोष का वर्णन करते हुये दारुवन में गये । (४)

कृत्वा विश्वगुरुं विष्णुं पार्श्वे देवो महेश्वरः ।
ययौ निवृत्तविज्ञानस्थापनार्थं च शंकरः ॥५
आस्थाय विपुलं वेशमूनविंशतिवत्सरः ।
लीलालसो महाबाहुः पीनाङ्गश्चारुलोचनः ॥६
चामीकरवपुः श्रीमान् पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
मत्तमातङ्गगमनो दिग्वासा जगदीश्वरः ॥७
कुशेशयमयीं मालां सर्वरत्नैरलंकृताम् ।
दधानो भगवानीशः समागच्छति सस्मितः ॥८
योऽनन्तः पुरुषो योनिर्लोकानामव्ययो हरिः ।
स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शूलिनम् ॥९
सम्पूर्णचन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम् ।
शुचिस्मितं सुप्रसन्नं रणन्नूपुरकद्वयम् ॥१०
सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलं चारुलोचनम् ।
उदारहंसचलनं विलासि सुमनोहरम् ॥११
एवं स भगवानीशो देवदारुवने हरः ।
चचार हरिणा भिक्षां मायया मोहयन् जगत् ॥१२
दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम् ।
मायया मोहिता नार्यो देवदेवं समन्वयुः ॥१३
विस्रस्तवस्त्राभरणास्त्यक्त्वा लज्जां पतिव्रताः ।
सहैव तेन कामार्त्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि ॥१४
ऋषीणां पुत्रका ये स्युर्युवानो जितमानसाः ।
अन्वगच्छन् हृषीकेशं सर्वे कामप्रपीडिताः ॥१५
गायन्ति नृत्यन्ति विलासबाह्या
नारीगणा मायिनमेकमीशम् ।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्त-
मिच्छन्त्यथालिङ्गनमाचरन्ति ॥१६
पदे निपेतुः स्मितमाचरन्ति
गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्राः ।
आलोक्य पद्मापतिमादिदेवं
भ्रूभङ्गमन्ये विचरन्ति तेन ॥१७

महेश्वर शङ्कर देव निवृत्ति-विज्ञान की स्थापना हेतु विश्वगुरु विष्णु को अपने पार्श्व में स्थित कर (दारु वन में) गये। (५)

महाबाहु, पुष्ट शरीर एवं सुन्दर नेत्र वाले उन्नीस वर्ष के लीलायुक्त पुरुष का वेष धारण कर (शङ्कर वहाँ गये)। (६)

जगदीश्वर (शङ्कर) का शरीर स्वर्ण के तुल्य वर्ण का एवं शोभायुक्त था। मुख पूर्ण चन्द्रमा के सदृश था। उनकी गति मतवाले हाथी के तुल्य थी तथा वे दिग्वसन अर्थात् वस्त्ररहित थे। (७)

समस्त रत्नों से अलंकृत कमल की माला धारण किये हँसते हुये भगवान् ईश आ रहे थे। (८)

संसार के मूल कारण, अनन्त, अव्यय पुरुष स्वरूप विष्णु हरि स्त्री का वेष धारण कर शूलधारी (शङ्कर) का अनुगमन कर रहे थे। (९)

पूर्णचन्द्र के तुल्य मुख वाले, पुष्ट एवं उन्नत स्तन-धारी, पवित्र स्मित से युक्त, सुप्रसन्न, दो नूपुरों अर्थात् पैरों में पहने दो पायजेबों की ध्वनि कर रहे, सुन्दर पीताम्बरधारी, दिव्य श्यामल सुन्दर नेत्र वाले, हंस की उदार गति से युक्त, विलास सम्पन्न एवं अत्यन्त मनोहर रूप धारण किये हरि के साथ शङ्कर माया द्वारा जगत् को मोहित करते हुये भिक्षा हेतु देवदारु वन में भ्रमण करने लगे। (१०-१२)

पिनाकी विश्वेश को स्थान-स्थान पर भ्रमण करते देख माया से मोहित स्त्रियाँ देवाधिदेव का अनुगमन करने लगीं। (१३)

अस्त व्यस्त वस्त्रों एवं आभरणों वाली सभी पतिव्रता स्त्रियों ने लज्जा का त्याग कर विलासिनी एवं कामार्त्त होकर उन्हीं के साथ भ्रमण करने लगीं। (१४)

ऋषियों के जो मन को जीतने वाले युवक पुत्र थे वे सभी काम पीड़ित होकर हृषीकेश के पीछे-पीछे चलने लगे। (१५)

पत्नी सहित अत्यन्त सुन्दर मायामय अद्वितीय ईश को देखकर (महर्षियों की) विलसिनी स्त्रियाँ गाने, नाचने, (शिव की) अभिलाषा करने एवं (उनका) आलिङ्गन करने लगीं। (१६)

लक्ष्मी के पति आदिदेव (विष्णु) को देख कर मुनियों के पुत्र (उनके) पैर पर गिरने, हँसने एवं गीत गाने लगे। दूसरे (मुनिपुत्र) कटाक्षपात करते हुए उनके साथ घूमने लगे। (१७)

आसामथैषामपि वासुदेवो
मायी मुरारिर्मनसि प्रविष्टः ।
करोति भोगान् मनसि प्रवृत्ति
मायानुभूयन्त इतीव सम्यक् ॥१८
विभाति विश्वामरभूतभर्त्ता
स माधवः स्त्रीगणमध्यविष्टः ।
अशेषशक्त्यासनसंनिविष्टो
यथैकशक्त्या सह देवदेवः ॥१९
करोति नृत्यं परमप्रभावं
तदा विरूढः पुनरेव भूयः ।
यथौ समारुह्य हरिः स्वभावं
तदीशवृत्तामृतमादिदेवः ॥२०
दृष्ट्वा नारीकुलं रुद्रं पुत्राणामपि केशवम् ।
मोहयन्तं मुनिश्रेष्ठाः कोपं संदधिरे भृशम् ॥२१
अतीव परुषं वाक्यं प्रोचुर्देवं कपर्दिनम् ।
शेपुश्च शापैर्विविधैर्मायया तस्य मोहिताः ॥२२
तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यन्त शंकरे ।
यथादित्यप्रकाशेन तारका नभसि स्थिताः ॥२३
ते भग्नतपसो विप्राः समेत्य वृषभध्वजम् ।
को भवानिति देवेशं पृच्छन्ति स्म विमोहिताः ॥२४
सोऽब्रवीद् भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागतः ।
इदानीं भार्यया देशे भवद्भिरिह सुव्रताः ॥२५
तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुंगवाः ।
ऊचुर्गृहीत्वा वसनं त्यक्त्वा भार्यां तपश्चर ॥२६
अथोवाच विहस्येशः पिनाकी नीललोहितः ।
संप्रेक्ष्य जगतो योनिं पार्श्वस्थं च जनार्दनम् ॥२७
कथं भवद्भिरुदितं स्वभार्यापोषणोत्सुकैः ।
त्यक्तव्या मम भार्येति धर्मज्ञैः शान्तमानसैः ॥२८

ऋषय ऊचुः ।

व्यभिचाररता नार्यः संत्याज्याः पतिनेरिताः ।

उन (स्त्रियों) एवं इन (पुरुषों) के मन में प्रविष्ट होकर मायी मुरारि वासुदेव ने उनके मन में भोगों के प्रति मानसिक क्षोभ उत्पन्न किया। इस प्रकार उन सभी ने भलीभाँति माया का अनुभव किया। (१८)

स्त्रियों के मध्य घिरे हुए समस्त देवों के स्वामी माधव एवं शङ्कर इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे सम्पूर्ण शक्तियों के आसन पर स्थित अद्वितीय शक्ति स्वरूपा (पार्वती) के साथ देवाधिदेव (शङ्कर) सुशोभित होते हैं। (१९)

उस समय महादेव (नारीगण को प्रकृति पर) आरूढ़ होकर अत्यन्त प्रभावकारी नृत्य करने लगे। आदि देव हरि (ऋषि कुमारों के) स्वभाव को व्याप्त कर उन ईश के चरितामृत का अनुगमन करने लगे। (२०)

स्त्रियों को मुग्ध कर रहे रुद्र और पुत्रों को मोहित कर रहे केशव को देखकर श्रेष्ठ मुनियों को अतिशय क्रोध हुआ। (२१)

उन (शङ्कर) की माया से मोहित मुनियों ने जटाधारी देव (शङ्कर) से अत्यन्त कठोर वचन कहा एवं अनेक प्रकार के शापों से उन्हें शाप दिया। (२२)

शङ्कर के ऊपर (आघात करने वाली) उन सभी (ऋषियों) की तपस्यायें इस प्रकार प्रत्याहत हो गयीं जैसे सूर्य के प्रकाश से आकाश स्थित तारिकायें (निष्प्रभ) हो जाती हैं। (२३)

तपभङ्ग हुये वे सभी विमोहित विप्र वृषभध्वज के पास गये एवं देवेश से पूछा-"आप कौन हैं ?" (२४)

उन भगवान् ईश (शङ्कर) ने कहा—"हे सुव्रतो! भार्या सहित मैं इस स्थान पर आपलोगों के साथ तप करने आया हूँ"। (२५)

उनके वाक्य को सुनकर उन भृगु इत्यादि श्रेष्ठ मुनियों ने कहा—वस्त्र धारणकर एवं भार्या को छोड़कर तप करो। (२६)

तदनन्तर हँसकर नीललोहित पिनाकी ईश ने पार्श्व में स्थित जगत् के मूलकारण जनार्दन को देखकर कहा। (२७)

अपनी भार्या के पोषणार्थ उत्सुक रहने वाले धर्मज्ञ एवं शान्तचित्त आपलोगों ने यह किस प्रकार कहा कि मुझे भार्या का त्याग करना चाहिये। (२८)

ऋषियों ने कहा—कहा गया है कि पति को व्यभि-

अस्माभिरेषा सुभगा तादृशी त्यागमर्हति ।।२९

महादेव उवाच ।

न कदाचिदियं विप्रा मनसाप्यन्यमिच्छति ।
नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामि कदाचन ।।३०

ऋषय ऊचुः ।

दृष्ट्वा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभिः पुरुषाधम ।
उक्तं ह्यसत्यं भवता गम्यतां क्षिप्रमेव हि ।।३१
एवमुक्ते महादेवः सत्यमेव मयेरितम् ।
भवतां प्रतिभात्येषेत्युक्त्वासौ विचचार ह ।।३२
सोऽगच्छद्धरिणा सार्द्धं मुनीन्द्रस्य महात्मनः ।
वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं भिक्षार्थी परमेश्वरः ।।३३
दृष्ट्वा समागतं देवं भिक्षमाणमरुन्धती ।
वसिष्ठस्य प्रिया भार्या प्रत्युद्गम्य ननाम तम् ।।३४
प्रक्षाल्य पादौ विमलं दत्त्वा चासनमुत्तमम् ।
संप्रेक्ष्य शिथिलं गात्रमभिघातहतं द्विजैः ।
संधयामास भैषज्यैर्विषण्णा वदना सती ।।३५
चकार महतीं पूजां प्रार्थयामास भार्यया ।
को भवान् कुत आयातः किमाचारो भवानिति ।
उवाच तां महादेवः सिद्धानां प्रवरोऽस्म्यहम् ।।३६
यदेतन्मण्डलं शुद्धं भाति ब्रह्ममयं सदा ।
एषैव देवता मह्यं धारयामि सदैव तत् ।।३७
इत्युक्त्वा प्रययौ श्रीमाननुगृह्य पतिव्रताम् ।
ताडयाञ्चक्रिरे दण्डैर्लोष्टिभिर्मुष्टिभिर्द्विजाः ।।३८
दृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नग्नं विकृतलक्षणम् ।
प्रोचुरेतद् भवाँल्लिङ्गमुत्पाटयतु दुर्मते ।।३९
तानब्रवीन्महायोगी करिष्यामीति शंकरः ।
युष्माकं मामके लिङ्गे यदि द्वेषोऽभिजायते ।।४०
इत्युक्त्वोत्पाटयामास भगवान् भगनेत्रहा ।
नापश्यंस्तत्क्षणेनेशं केशवं लिङ्गमेव च ।।४१

चार में रत रहने वाली कामुक पत्नियों का त्याग कर देना चाहिये। हमें भी उस प्रकार की इस सुन्दरी का—त्याग करना चाहिये। (२९)

महादेव ने कहा—हे विप्रो! यह कभी मन से भी अन्य की इच्छा नहीं करती तथा मैं भी कभी इसका त्याग नहीं करता हूँ। (३०)

ऋषियों ने कहा—हे पुरुषाधम! हम लोगों ने (इसे) यहाँ व्यभिचार करते हुए देखा है। आपने असत्य कहा (अतः तुम) शीघ्र ही चले जाओ। (३१)

(ऋषियों के) ऐसा कहने पर महादेव ने कहा "मैंने सत्य कहा है। आपको यह ऐसी प्रतीत होती है।" ऐसा कहकर (महादेव) विचरण करने लगे। (३२)

हरि के साथ वे परमेश्वर भिक्षा के लिये मुनिश्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठ के पवित्र आश्रम में गये। (३३)

भिक्षा माँगते हुए देव को आया देख वसिष्ठ की प्रिय पत्नी अरुन्धती ने निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया। (३४)

(परमेश्वर के) विमल चरणों को धोने एवं उत्तम आसन देने के उपरान्त द्विजों द्वारा आहत (परमेश्वर के) शिथिल शरीर को देखकर दुःखपूर्ण मुख वाली सती (अरुन्धती) ने (उनके व्रणों पर) औषधि लगाया। (३५)

भार्या सहित (वसिष्ठ ने परमेश्वर की) महती पूजा की (एवं पूछा) "आप यह बतलायें कि आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं एवं आपका आचार क्या है?" भगवान् महादेव ने उन (अरुन्धती) से कहा "मैं सिद्धों में श्रेष्ठ हूँ" (३६)

जो यह ब्रह्ममय मण्डल सदा प्रकाशित होता है वही मेरे देवता हैं। (मैं) सदैव ही उनको धारण करता हूँ। (३७)

ऐसा कहकर एवं पतिव्रता (अरुन्धती) को अनुगृहीत कर श्रीमान् (महादेव) चल पड़े। द्विजगण (उन्हें) दण्ड, ढेले एवं मुक्कों से मारने लगे। (३८)

नग्न एवं विकृतचिह्नों से युक्त गिरीश को भ्रमण करते देख (मुनियों ने कहा) 'हे दुर्मति! तुम अपने इस लिङ्ग को उखाड़ो" (३९)

महायोगी शङ्कर ने उनसे कहा "यदि आप लोगों को मेरे लिङ्ग के प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ है तो मैं (वैसा ही) करूँगा। (४०)

(यह) कहकर भगनेत्रहा अर्थात् भग के नेत्रों को नष्ट करने वाले भगवान् (शङ्कर) ने (अपने) लिङ्ग को उखाड़ दिया। तत्क्षण (उन मुनियों ने) ईश, केशव एवं लिङ्ग को नहीं देखा। (४१)

तदोत्पाता बभूवुर्हि लोकानां भयशंसिनः ।
न राजते सहस्रांशुश्चचाल पृथिवी पुनः ।
निष्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुक्षुभे च महोदधिः ।।४२
अपश्यच्चानुसूयात्रेः स्वप्नं भार्या पतिव्रता ।
कथयामास विप्राणां भयादाकुलितेक्षणा ।।४३
तेजसा भासयन् कृत्स्नं नारायणसहायवान् ।
भिक्षमाणः शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति ।।४४
तस्या वचनमाकर्ण्य शङ्कमाना महर्षयः ।
सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माणं विश्वसंभवम् ।।४५
उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मवित्तमैः ।
चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिः सावित्र्या सहितं प्रभुम् ।।४६
आसीनमासने रम्ये नानाश्चर्यसमन्विते ।
प्रभासहस्रकलिले ज्ञानैश्वर्यादिसंयुते ।।४७
विभ्राजमानं वपुषा सस्मितं शुभ्रलोचनम् ।
चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं परम् ।।४८
विलोक्य वेदपुरुषं प्रसन्नवदनं शुभम् ।
शिरोभिर्धरणीं गत्वा तोषयामासुरीश्वरम् ।।४९
तान् प्रसन्नमना देवश्चतुर्मूर्त्तिश्चतुर्मुखः ।
व्याजहार मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् ।।५०
तस्य ते वृत्तमखिलं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
ज्ञापयाञ्चक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम् ।।५१

ऋषय ऊचुः ।

कश्चिद् दारुवनं पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः ।
भार्यया चारुसर्वाङ्ग्या प्रविष्टो नग्न एव हि ।।५२
मोहयामास वपुषा नारीणां कुलमीश्वरः ।
कन्यकानां प्रिया चास्य दूषयामास पुत्रकान् ।।५३
अस्माभिर्विविधाः शापाः प्रदत्ताश्च पराहताः ।
ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिङ्गं तु विनिपातितम् ।।५४
अन्तर्हितश्च भगवान् सभार्यो लिङ्गमेव च ।
उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयंकराः ।।५५

तदुपरान्त संसार के लिए भयसूचक उत्पात होने लगे। सहस्रकिरण (सूर्य) का प्रकाशित होना रुक गया एवं पृथ्वी हिलने लगी। सभी ग्रह निष्प्रभ हो गये एवं महासागर क्षुब्ध हो गया। (४२)

अत्रि की पतिव्रता, पत्नी अनुसूया ने स्वप्न देखा। उनके त्र भयाकुल हो गये। उन (अनुसूया ने) विप्रों से कहा— (४३)

निश्चय ही हमलोगों के गृह में सम्पूर्ण संसार को (अपने) तेज से प्रकाशित कर रहे शिव नारायण के साथ भिक्षा माँगते हुए दिखाई पड़े थे। (४४)

उनके वचन को सुनकर शङ्कायुक्त सभी महर्षि विश्व को उत्पन्न करने वाले महायोगी ब्रह्मा के पास गये। (४५)

निर्मल, श्रेष्ठ, ब्रह्मज्ञानी योगी लोग तथा मूर्तिमान् चारों वेद, सावित्री सहित प्रभु (ब्रह्मा की) उपासना कर रहे थे। (४६)

सहस्रों प्रकार की प्रभा से सुशोभित तथा ज्ञान एवं ऐश्वर्य से युक्त नाना प्रकार के आश्चर्यों से युक्त रमणीय आसन पर आसीन, अपने शरीर से प्रकाशमान, हास्ययुक्त, उज्ज्वल नेत्रों वाले महाबाहु, छन्दोमय, अजन्मा, श्रेष्ठ, प्रसन्न वदन, शुचि चतुर्मुख वेदपुरुष को देखकर (मुनियों ने) भूमि पर मस्तक टेका एवं ईश्वर की स्तुति करने लगे। (४७-४९)

चतुर्मूर्ति एवं चतुर्मुख महादेव ने प्रसन्न होकर उनसे कहा "हे श्रेष्ठ मुनियो! (आप लोगों के) आने का क्या कारण है?" (५०)

सभी (मुनियों) ने मस्तक पर हाथ जोड़ कर परमात्मा ब्रह्मा को वह सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया। (५१)

ऋषियों ने कहा—अतीव सुन्दर कोई पुरुष सम्पूर्ण सुन्दर अङ्गों वाली भार्या के साथ पवित्र दारुवन में नग्न ही प्रविष्ट हुआ था। (५२)

उस ईश्वर ने (अपने) शरीर से (हमारी) स्त्रियों एवं कन्याओं को मोहित किया और उसकी भार्या ने (हमारे) पुत्रों को दूषित किया। (५३)

हमलोगों ने (उसे) अनेक शाप दिया किन्तु वे निष्फल हो गये। (तदुपरान्त) हमलोगों ने (उसे) बहुत मारा एवं (उसके) लिङ्ग को गिरा दिया। (५४)

भार्या के सहित भगवान् एवं लिङ्ग अन्तर्हित हो गये एवं सम्पूर्ण प्राणियों को भय देने वाले घोर उत्पात होने लगे। (५५)

क एष पुरुषो देव भीताः स्म पुरुषोत्तम ।
भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युत ॥५६
त्वं हि वेत्सि जगत्यस्मिन् यत्किञ्चिदपि चेष्टितम् ।
अनुग्रहेण विश्वेश तदस्माननुपालय ॥५७
विज्ञापितो मुनिगणैर्विश्वात्मा कमलोद्भवः ।
ध्यात्वा देवं त्रिशूलाङ्कं कृताञ्जलिरभाषत ॥५८
ब्रह्मोवाच ।
हा कष्टं भवतामद्य जातं सर्वार्थनाशनम् ।
धिग्बलं धिक् तपश्चर्या मिथ्यैव भवतामिह ॥५९
संप्राप्य पुण्यसंस्कारान्निधीनां परमं निधिम् ।
उपेक्षितं वृथाचारैर्भवद्भिरिह मोहितैः ॥६०
काङ्क्षन्ते योगिनो नित्यं यतन्तो यतयो निधिम् ।
यमेव तं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥६१
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्यत्प्राप्त्यैवेदवादिनः ।
महानिधिं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥६२

हे पुरुषोत्तम ! वह देव पुरुष कौन है ? हम लोग भयभीत हो गये हैं। हे अच्युत ! हम सभी आपकी शरण में आये हैं। (५६)

इस संसार में जो कुछ चेष्टायें होती हैं उन्हें आप जानते हैं। अतः हे विश्वेश ! अनुग्रहपूर्वक आप हमारी रक्षा करें। (५७)

मुनिगण के निवेदन करने पर कमलोत्पन्न विश्वात्मा (ब्रह्मा) ने त्रिशूलधारी देव (शङ्कर) का ध्यानकर हाथ जोड़े हुए कहा। (५८)

ब्रह्मा ने कहा—आह ! खेद है कि आज आप लोगों का सर्वस्व नष्ट हो गया। आपके बल को धिक्कार है। (आप सभी की) तपस्या मिथ्या है। (५९)

पवित्र संस्कारवश निधियों में श्रेष्ठ निधिको प्राप्त कर वृथाचारी आप लोगों ने मोहवश (उनकी) उपेक्षा कर दी। (६०)

हाय ! योगी एवं यत्न करने वाले यति लोग नित्य जिस निधि की इच्छा करते हैं उसे प्राप्तकर आप लोगों ने (उनकी) उपेक्षा कर दी। (६१)

हाय ! वैदिक लोग जिसकी प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं उन महानिधि को प्राप्त कर आप सभी ने (उनकी) उपेक्षा कर दी। (६२)

यं समासाद्य देवानामैश्वर्यमखिलं जगत् ।
तमासाद्याक्षयनिधिं हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥६३
यत्समापत्तिजनितं विश्वेशत्वमिदं मम ।
तदेवोपेक्षितं दृष्ट्वा निधानं भाग्यवर्जितैः ॥६४
यस्मिन् समाहितं दिव्यमैश्वर्यं यत् तदव्ययम् ।
तमासाद्य निधिं ब्राह्मं हा भवद्भिर्वृथाकृतम् ॥६५
एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
न तस्य परमं किञ्चित् पदं समधिगम्यते ॥६६
देवतानामृषीणां च पितॄणां चापि शाश्वतः ।
सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम् ।
संहरत्येष भगवान् कालो भूत्वा महेश्वरः ॥६७
एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा ।
एष चक्री च वज्री च श्रीवत्सकृतलक्षणः ॥६८
योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते ।
द्वापरे भगवान् कालो धर्मकेतुः कलौ युगे ॥६९

हाय ! जिसे प्राप्त कर देवताओं का सम्पूर्ण जगत् पर ऐश्वर्य हुआ है उस अक्षयनिधि को प्राप्त कर आप लोगों ने उसकी उपेक्षा कर दी। (६३)

जिनकी प्राप्ति होने से मुझे यह विश्वेशत्व प्राप्त हुआ है उन देव का दर्शन प्राप्त कर भाग्यवर्जित आप लोगों द्वारा (उनकी) उपेक्षा कर दी गयी। (६४)

हाय ! जिनके भीतर दिव्य अविनाशी ऐश्वर्य समाहित है उस ब्रह्मस्वरूप निधि को प्राप्त कर आप लोगों ने (उसे) व्यर्थ कर दिया। (६५)

इन्हीं देव को महादेव महेश्वर जानना चाहिए। उनका उत्कृष्ट स्थान कभी प्राप्त नहीं होता। (६६)

सहस्रयुग व्यापी प्रलय के समय यही शाश्वत भगवान् महेश्वर काल स्वरूप होकर देवों, ऋषियों, पितरों एवं समस्त देहधारियों के संहार करते हैं। (६७)

ये ही अपने तेज से सभी प्रजा की सृष्टि भी करते हैं। श्रीवत्स से अलंकृत ये ही चक्र एवं वज्र धारण करने वाले हैं। (६८)

(ये ही) सत्य युग में योगी, त्रेता में यज्ञदेव, द्वापर में भगवान् काल एवं कलियुग में धर्मकेतु होते हैं। (६९)

रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम् ।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुरिति प्रभुः ।।७०
मूर्त्तिरन्या स्मृता चास्य दिग्वासा वै शिवा ध्रुवा ।
यत्र तिष्ठति तद् ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् ।।७१
या चास्य पार्श्वगा भार्या भवद्भिरभिवीक्षिता ।
सा हि नारायणो देवः परमात्मा सनातनः ।।७२
तस्मात् सर्वमिदं जातं तत्रैव च लयं व्रजेत् ।
स एव मोहयेत् कृत्स्नं स एव परमा गतिः ।।७३
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
एकश्रृङ्गो महानात्मा पुराणोऽष्टाक्षरो हरिः ।।७४
चतुर्वेदश्चतुर्मूर्त्तिस्त्रिमूर्त्तिस्त्रिगुणः परः ।
एकमूर्त्तिरमेयात्मा नारायण इति श्रुतिः ।।७५
ऋतस्य गर्भो भगवानापो मायातनुः प्रभुः ।
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्धर्ममोक्षिभिः ।।७६
संहृत्य सकलं विश्वं कल्पान्ते पुरुषोत्तमः ।
शेते योगामृतं पीत्वा यत् तद् विष्णोः परं पदम् ।।७७
न जायते न म्रियते वर्द्धते न च विश्वसृक् ।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता गीयते वैदिकैरजः ।।७८
ततो निशायां वृत्तायां सिसृक्षुरखिलञ्जगत् ।
अजस्य नाभौ तद् बीजं क्षिपत्येष महेश्वरः ।।७९
तं मां वित्त महात्मानं ब्रह्माणं विश्वतो मुखम् ।
महान्तं पुरुषं विश्वमपां गर्भमनुत्तमम् ।।८०
न तं विदाथ जनकं मोहितास्तस्य मायया ।
देवदेवं महादेवं भूतानामीश्वरं हरम् ।।८१
एष देवो महादेवो ह्यनादिर्भगवान् हरः ।
विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च ।।८२
न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माद् विद्यते परम् ।
स वेदान् प्रददौ पूर्वं योगमायातनुर्मम ।।८३
स मायी मायया सर्वं करोति विकरोति च ।
तमेव मुक्तये ज्ञात्वा व्रजेत शरणं भवम् ।।८४

रुद्र की तीन मूर्तियाँ हैं जिन्होंने इस विश्व का विस्तार किया है। तमोगुण को अग्नि, रजोगुण को ब्रह्मा एवं सत्त्वगुण को प्रभु विष्णु कहा गया है। (७०)

इन्हीं की एक अन्य शिवात्मिका दिगम्बरा शाश्वत मूर्ति हैं जिनमें योग-युक्त परम ब्रह्म की स्थिति होती है। (७१)

आपने उनके पार्श्व में जिसे (उनकी) भार्या बतलाया है वे परमात्मा सनातन नारायण देव हैं। (७२)

उसीसे यह सम्पूर्ण (विश्व) उत्पन्न हुआ है एवं वहीं इसका लय होता है। वे ही सभी को मोहित करते हैं तथा वे ही परम गति हैं। (७३)

महात्मा (नारायण) हरि सहस्रशीर्ष, सहस्रनेत्र, सहस्रपाद एवं एक श्रृङ्गधारी अष्टाक्षर एवं पुराण पुरुष हैं। (७४)

श्रुति का कथन है कि नारायण चतुर्वेद स्वरूप, चतुर्मूर्ति, त्रिमूर्ति, त्रिगुण पर, एकमूर्ति एवं अमेयात्मा हैं। (७५)

माया शरीरधारी व जलस्वरूप प्रभु भगवान् ऋत के गर्भ हैं। धर्म एवं मोक्ष के इच्छुक ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार के मन्त्रों से (उनकी) स्तुति करते हैं। (७६)

कल्पान्त में सम्पूर्ण विश्व का संहार करने के उपरान्त योगामृत का पान कर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु के परम पद में शयन करते हैं। (७७)

(वे) विश्व स्रष्टा (पुरुष) जन्म, मरण एवं वृद्धि से रहित हैं। वैदिक लोग अजन्मा (भगवान्) को अव्यक्त मूलप्रकृति कहते हैं। (७८)

ये महेश्वर (प्रलयरूपी) निशा की समाप्ति होने पर सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से अज के नाभि में बीज स्थापित करते हैं। (७९)

सभी ओर मुखवाले विश्वनामधारी महान् पुरुषस्वरूप मुझ महात्मा ब्रह्मा को ही तुम वह श्रेष्ठ जलीय गर्भ समझो। (८०)

उनकी माया से मोहित होने के कारण तुम लोग उन जनकस्वरूप देवाधिपति महादेव हर को नहीं जानते। (८१)

विष्णु से संयुक्त होकर यही महादेव अनादि भगवान् देव हर सृष्टि एवं संहार करते रहते हैं। (८२

उनका कोई कार्य नहीं है। उनसे उत्कृष्ट कुछ भी नहीं है। योगमायामय शरीरधारी उन (महादेव) ने पूर्व काल में मुझे वेद प्रदान किया था। (८३)

वे मायावी माया द्वारा सभी की सृष्टि एवं संहार करते रहते हैं। उन्हें ही मुक्ति का हेतु जानकर उन भव की ही शरण में जाना चाहिये। (८४)

इतीरिता भगवता मरीचिप्रमुखा विभुम् ।
प्रणम्य देवं ब्रह्माणं पृच्छन्ति स्म सुदुःखिताः ।।८५

मुनय ऊचुः ।

कथं पश्येम तं देवं पुनरेव पिनाकिनम् ।
ब्रूहि विश्वामरेशान त्राता त्वं शरणैषिणाम् ।।८६

पितामह उवाच ।

यद् दृष्टं भवता तस्य लिङ्गं भुवि निपातितम् ।
तल्लिङ्गानुकृतीशस्य कृत्वा लिङ्गमनुत्तमम् ।।८७
पूजयध्वं सपत्नीकाः सादरं पुत्रसंयुताः ।
वैदिकैरेव नियमैर्विविधैर्ब्रह्मचारिणः ।।८८
संस्थाप्य शांकरैर्मन्त्रैर्ऋग्यजुःसामसंभवैः ।
तपः परं समास्थाय गृणन्तः शतरुद्रियम् ।।८९
समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः सह बन्धुभिः ।
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपद्यथ ।।९०
ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः ।
यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति ।।९१
ततः प्रणम्य वरदं ब्रह्माणममितौजसम् ।
जग्मुः संहृष्टमनसो देवदारुवनं पुनः ।।९२
आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा ।
अजानन्तः परं देवं वीतरागा विमत्सराः ।।९३
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहासु च ।
नदीनां च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च ।।९४
शैवालभोजनाः केचित् केचिदन्तर्जलेशयाः ।
केचिदभ्रावकाशास्तु पादाङ्गुष्ठाग्रविष्ठिताः ।।९५
दन्तोऽलूखलिनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथा परे ।
शाकपर्णाशिनः केचित् संप्रक्षाला मरीचिपाः ।।९६
वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथा परे ।
कालं नयन्ति तपसा पूजयन्तो महेश्वरम् ।।९७

भगवान् (ब्रह्मा) के ऐसा कहने पर मरीचि इत्यादि ऋषियों ने विभु ब्रह्मदेव को प्रणामकर अत्यन्त दुःखपूर्वक (उनसे) पूछा । (८५)

मुनियों ने कहा—हे समस्त देवों के देवाधिपति ! आप शरणागतों के रक्षक हैं । (आप) बतलायें कि उन देव पिनाकी को (हमलोग) पुनः कैसे देखें । (८६)

ब्रह्मा ने कहा—आपने पृथ्वी पर गिराये हुये उनके जिस लिङ्ग को देखा था उसी लिङ्ग के अनुरूप महेश्वर का श्रेष्ठ लिङ्ग बनाकर पत्नियों एवं पुत्रों सहित अनेक वैदिक मन्त्रों से ब्रह्मचर्यपूर्वक (आप लोग) सादर उनकी पूजा करें । (८७,८८)

ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के अनेक शङ्कर सम्बन्धी मन्त्रों द्वारा (लिङ्ग की) स्थापना करने के उपरान्त परम तप का अवलम्बन कर शतरुद्रिय का जप करते हुये सावधानीपूर्वक पुत्रों एवं बन्धुओं सहित (महादेव का) पूजन करो एवं सभी लोग हाथ जोड़कर शूलपाणी (शंकर) की शरण में जाओ । (८९,९०)

तब (आप लोग) अकृतात्माओं के लिये दुर्दर्श देवेश का दर्शन करेंगे जिनका दर्शन होने से सम्पूर्ण अज्ञान एवं अधर्म का नाश हो जाता है । (९१)

तदुपरान्त अत्यन्त ओजस्वी वरदाता ब्रह्मा को प्रणाम कर (सभी ऋषि) पुनः प्रसन्न मन से देवदारुवन में चले गये । (९२)

श्रेष्ठ देव को न जानने वाले उनलोगों ने राग और द्वेष से रहित होकर जैसे ब्रह्मा ने कहा था उसी प्रकार आराधना करना प्रारम्भ किया । (९३)

विचित्र यज्ञीय वेदियों, पर्वतों की गुहाओं एवं नदियों के एकान्त सुन्दर तटों (पर वे लोग आराधना करने लगे । (९४)

कुछ लोग शैवाल का भोजन करते कुछ जल के भीतर शयन करते एवं कुछ मुक्ताकाश में पैर के अँगूठे पर स्थित रहते थे । (९५)

अन्य कुछ लोग दन्तोलूखलिन-अर्थात् दाँत द्वारा अनाज को तुष रहितकर भोजन करते थे एवं दूसरे लोग पत्थर से कूटकर भोजन करते थे । कुछ लोग सागपात खाने वाले, कुछ स्नानपरायण एवं कुछ लोग (नक्षत्रों के) किरणों का पान करने वाले थे । (९६)

कुछ लोग वृक्ष के नीचे रहते थे तथा कुछ लोग शिला की शय्या पर सोते थे । इस प्रकार महेश की पूजा करते हुए वे लोग तपस्या द्वारा समय व्यतीत कर रहे थे । (९७)

ततस्तेषां प्रसादार्थं प्रपन्नार्त्तिहरो हरः।
चकार भगवान् बुद्धिं प्रबोधाय वृषध्वजः ॥९८
देवः कृतयुगे ह्यस्मिन् शृङ्गे हिमवतः शुभे।
देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः ॥९९
भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः।
उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः ॥१००
क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिद् गायति विस्मितः।
क्वचिन्नृत्यति शृङ्गारी क्वचिद् रौति मुहुर्मुहुः ॥१०१
आश्रमेऽभ्यागतो भिक्षां याचते च पुनः पुनः।
मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद् वनमागतः ॥१०२
कृत्वा गिरिसुतां गौरीं पार्श्वे देवः पिनाकधृक्।
सा च पूर्ववद् देवेशी देवदारुवनं गता ॥१०३
दृष्ट्वा समागतं देवं देव्या सह कपर्दिनम्।
प्रणेमुः शिरसा भूमौ तोषयामासुरीश्वरम् ॥१०४

तदुपरान्त उनकी प्रसन्नता हेतु भक्तों का दुःख दूर करने वाले भगवान् वृषभध्वज हर ने उन्हें प्रबोधित करने का विचार किया। (९८)

प्रसन्न परमेश्वर देव सतयुग में हिमालय के इस शुभ शृङ्ग पर स्थित देवदारुवन में आये। (९९)

(महादेव का) विकृत लक्षणों से युक्त नग्न शरीर पाण्डुर (वर्ण की) भस्म से लिप्त था। (उनके) नेत्र रक्त और पिङ्गल वर्ण के थे। (उनके) चञ्चल हाथ में जलता हुआ उल्मुक (मशाल) था। (१००)

वे कभी भयङ्कर रूप से हँसते, कभी विस्मयपूर्वक गान करते, कभी शृङ्गारपूर्वक नृत्य करते एवं कभी बार-बार रोते थे। (१०१)

(वे भिक्षुक के रूप में) आश्रम में आकर बारंबार भिक्षा की याचना करने लगे। अपना मायामय रूप धारणकर महादेव उस वन में आये। (१०२)

पिनाकधारी देव (शिव) ने गिरिसुता गौरी को अपने पार्श्व में स्थित किया था। वे देवेशी भी पूर्व के सदृश देवदारुवन में गयीं। (१०३)

देवी के साथ कपर्दी महादेव को आया देख मुनियों ने मस्तक द्वारा भूमि पर प्रणाम किया एवं (उनको स्तुति द्वारा) तुष्ट करने लगे। (१०४)

वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैः सूक्तैर्माहेश्वरैः शुभैः।
अथर्वशिरसा चान्ये रुद्राद्यैर्ब्रह्मभिर्भवम् ॥१०५
नमो देवादिदेवाय महादेवाय ते नमः।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे ॥१०६
नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने।
सर्वप्रणतदेहाय स्वयमप्रणतात्मने ॥१०७
अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च।
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय नमो भैरवरूपिणे ॥१०८
नरनारीशरीराय योगिनां गुरवे नमः।
नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च ॥१०९
विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमस्ते लेलिहानाय शितिकण्ठाय ते नमः ॥११०
अघोरघोररूपाय वामदेवाय वै नमः।
नमः कनकमालाय देव्याः प्रियकराय च ॥१११

(कुछ लोग) अनेक प्रकार के वैदिक मन्त्रों एवं सुन्दर शिव सम्बन्धी सूक्तों द्वारा स्तुति करने लगे। दूसरे लोग रुद्रादि विषयक अथर्ववेदीय ब्रह्ममन्त्रों से शङ्कर की स्तुति करने लगे। (१०५)

हे देवाधिदेव महादेव! आपको नमस्कार है। हे श्रेष्ठ त्रिशूलधारी त्र्यम्बक! आपको नमस्कार है। (१०६)

हे दिगम्बर विकृताकार पिनाकी! आपको नमस्कार है। हे सम्पूर्ण प्रणतजनों के देहस्वरूप एवं स्वयं अप्रणत रहने वाले (देव) आपको नमस्कार है। (१०७)

हे अन्तकान्तकृत एवं सभी का संहार करने वाले! आपको नमस्कार है। हे नृत्य करने वाले भैरवरूप-धारी आपको नमस्कार है। (१०८)

हे नरनारीशरीरवाले योगियों के गुरु! (आपको) नमस्कार है। हे दान्त, शान्त एवं तापस हर! आपको नमस्कार है। (१०९)

अत्यन्त भीषण चर्माम्बरधारी रुद्र को नमस्कार है। हे कण्ठ में कालकूट विष धारण करने वाले भक्षणकर्ता! (चाटने वाले) आपको नमस्कार है। (११०)

अघोर घोर रूप वामदेव को नमस्कार है। धतूरे की माला धारण करने वाले एवं देवी को प्रिय करने वाले आपको नमस्कार है। (१११)

गङ्गासलिलधाराय शम्भवे परमेष्ठिने।
नमो योगाधिपतये ब्रह्माधिपतये नमः ॥११२
प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्माङ्गरागिने।
नमस्ते घनवाहाय दंष्ट्रिणे वह्निरेतसे ॥११३
ब्रह्मणश्च शिरो हर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे।
आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च।
विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥११४
नमः प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसंपदाम्।
कपालपाणये तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय ते।
नमः कनकलिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः ॥११५
नमो वह्न्यर्कलिङ्गाय ज्ञानलिङ्गाय ते नमः।
नमो भुजंगहाराय कर्णिकारप्रियाय च।
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः ॥११६
वामदेव महेशान देवदेव त्रिलोचन।
क्षम्यतां यत्कृतं मोहात् त्वमेव शरणं हि नः ॥११७
चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च।
ब्रह्मादीनां च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोऽसि शंकर ॥११८
अज्ञानाद् यदि वा ज्ञानाद् यत्किंचित्कुरुते नरः।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया ॥११९
एवं स्तुत्वा महादेवं प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
ऊचुः प्रणम्य गिरिशं पश्यामस्त्वां यथा पुरा ॥१२०
तेषां संस्तवमाकर्ण्य सोमः सोमविभूषणः।
स्वमेव परमं रूपं दर्शयामास शंकरः ॥१२१
तं ते दृष्ट्वाऽथ गिरिशं देव्या सह पिनाकिनम्।
यथा पूर्वं स्थिता विप्राः प्रणेमुर्हृष्टमानसाः ॥१२२
ततस्ते मुनयः सर्वे संस्तूय च महेश्वरम्।
भृग्वङ्गिरोवसिष्ठास्तु विश्वामित्रस्तथैव च ॥१२३
गौतमोऽत्रिः सुकेशश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
मरीचिः कश्यपश्चापि संवर्त्तश्च महातपाः।
प्रणम्य देवदेवेशमिदं वचनमब्रुवन् ॥१२४

गङ्गाजल की धारा को धारण करने वाले परमेष्ठी शम्भु को नमस्कार है। योगाधिपति एवं ब्रह्माधिपति को नमस्कार है। (११२)

अङ्ग में भस्म धारण करने वाले प्राणस्वरूप आपको नमस्कार है। हे घनवाह! हे दंष्ट्री! हे वह्निरेता! आपको नमस्कार है। (११३)

हे ब्रह्मा के शिर को हरण करने वाले! हे कालरूपी! आपको नमस्कार है। हम आपकी आगमन एवं गमन को नहीं जानते। हे विश्वेश्वर! हे महादेव! आप जो कुछ भी हो आपको नमस्कार है। (११४)

हे प्रमथनाथ! हे शुभसम्पत्तियों के दाता! आपको नमस्कार है। हे कपालपाणि। हे श्रेष्ठ आराध्य! आपको नमस्कार है। हे कनकलिङ्ग! हे वारिलिङ्ग! आपको नमस्कार है। (११५)

हे अग्नि एवं सूर्य स्वरूप लिङ्ग वाले! हे ज्ञानलिङ्ग! आपको नमस्कार है। हे भुजङ्गहार! हे कर्णिकार प्रिय आपको नमस्कार है। हे कीरीट एवं कुण्डलधारी! हे काल के भी काल आपको नमस्कार है। (११६)

हे वामदेव! हे महेशान! हे देवाधिदेव! हे त्रिलोचन! मोहवश (हमने) जो कुछ किया था उसे क्षमा करें। आप ही हमारे शरण है। (११७)

(आप के) चरित्र गुह्य, गहन एवं विचित्र हैं। हे शङ्कर! आप ब्रह्मा इत्यादि सभी को दुर्विज्ञेय हैं। (११८)

मनुष्य ज्ञान अथवा अज्ञान से जो कुछ करता है वह सभी कुछ भगवान् ही योगमाया द्वारा करते हैं। (११९)

इस प्रकार महादेव की स्तुति करने के उपरान्त प्रसन्न मन से मुनियों ने शङ्कर को प्रणाम कर कहा "हमलोग आपको पूर्व के सदृश देखना चाहते हैं"। (१२०)

उनकी स्तुति को सुनकर सोमविभूषण सोमस्वरूप शङ्कर ने स्वयमेव अपना श्रेष्ठ रूप दिखलाया। (१२१)

तदनन्तर देवी सहित उन पिनाकी गिरीश को पूर्व के सदृश देखकर उन विप्रों ने प्रसन्न मन से (उन्हें) प्रणाम किया। (१२२)

तदुपरान्त महेश्वर की स्तुतिकर भृगु, अङ्गिरा, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, कश्यप एवं महातपस्वी संवर्त्तक आदि उन सभी मुनियों ने देवदेवेश को प्रणामकर यह वचन कहा। (१२३,१२४)

कथं त्वां देवदेवेश कर्मयोगेन वा प्रभो।
ज्ञानेन वाऽथ योगेन पूजयामः सदैव हि ॥१२५
केन वा देवमार्गेण संपूज्यो भगवानिह।
किं तत् सेव्यमसेव्यं वा सर्वमेतद् ब्रवीहि नः ॥१२६

देवदेव उवाच।

एतद् वः संप्रवक्ष्यामि गूढं गहनमुत्तमम्।
ब्रह्मणे कथितं पूर्वमादावेव महर्षयः ॥१२७
सांख्ययोगो द्विधा ज्ञेयः पुरुषाणां हि साधनम्।
योगेन सहितं सांख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम् ॥१२८
न केवलेन योगेन दृश्यते पुरुषः परः।
ज्ञानं तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम् ॥१२९
भवन्तः केवलं योगं समाश्रित्य विमुक्तये।
विहाय सांख्यं विमलमकुर्वन्त परिश्रमम् ॥१३०
एतस्मात् कारणाद् विप्रा नृणां केवलधर्मिणाम्।
आगतोऽहमिमं देशं ज्ञापयन् मोहसंभवम् ॥१३१
तस्माद् भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम्।
ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं दृश्यमेव च ॥१३२
एकः सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रकः।
आनन्दो निर्मलो नित्यं स्यादेतत् सांख्यदर्शनम् ॥१३३
एतदेव परं ज्ञानमेष मोक्षोऽत्र गीयते।
एतत् कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णितः ॥१३४
आश्रित्य चैतत् परमं तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम् ॥१३५
एतत् तत् परमं ज्ञानं केवलं सन्निरञ्जनम्।
अहं हि वेद्यो भगवान् मम मूर्त्तिरियं शिवा ॥१३६
बहूनि साधनानीह सिद्धये कथितानि तु।
तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुंगवाः ॥१३७
ज्ञानयोगरताः शान्ता मामेव शरणं गताः।
ये हि मां भस्मनिरता ध्यायन्ति सततं हृदि ॥१३८

हे देवदेवेश प्रभु! हम कर्मयोग, ज्ञान-योग अथवा योग द्वारा किस प्रकार सदा आपकी पूजा करें। (१२५)

इस संसार में किस देवमार्ग द्वारा भगवान् की पूजा करनी चाहिए। आप हमें यह बतलायें कि सेवनीय अथवा असेवनीय क्या है? (१२६)

देवाधिदेव ने कहा—हे महर्षियो! मैं आप लोगों को यह उत्तम एवं गंभीर रहस्य बतलाता हूँ। प्राचीन काल में (मैंने) इसे ब्रह्मा से कहा था। (१२७)

पुरुषों के लिये साधन स्वरूप सांख्य योग को दो प्रकार का जानना चाहिये। योग सहित सांख्य पुरुषों को विमुक्ति प्रदान करता है। (१२८)

केवल योग द्वारा परम पुरुष का दर्शन नहीं होता। शुद्धज्ञान पुरुषों को भली-भाँति केवल मोक्ष प्रदान करता है। (१२९)

विमुक्ति के लिये आप लोग केवल योग का अवलम्बन एवं विमल सांख्य का परित्याग कर परिश्रम कर रहे थे। (१३०)

हे विप्रो! इसीलिये, केवल धर्म करने वाले मनुष्यों के मोहजनित (अज्ञान) को सूचित करने हेतु मैं इस स्थान पर आया था। (१३१)

अतः आप लोगों को प्रयत्नपूर्वक मोक्ष के साधन-स्वरूप विमल ज्ञान को जानना, सुनना एवं उसका साक्षात्कार करना चाहिए। (१३२)

आत्मा सर्वव्यापी शुद्ध ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप, नित्य, निर्मल तथा अद्वितीय है, यही सांख्यदर्शन है। (१३३)

यही श्रेष्ठ ज्ञान है। इसी को यहाँ मोक्ष कहा गया है। यही निर्मल कैवल्य अर्थात् मोक्ष है और यही शुद्ध ब्रह्म-स्वरूप है। (१३४)

तन्निष्ठ एवं तत्परायण अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ एवं ब्रह्म-परायण महात्मा योगी लोग इस परम तत्त्व का अवलम्बन कर मुझ विश्वात्मक ईश्वर का दर्शन करते हैं। (१३५)

यही वह सत् (नित्य) एवं निरञ्जन अर्थात् अविद्या दोषरहित शुद्ध श्रेष्ठ ज्ञानयोग है। (इस ज्ञानयोग द्वारा) मुझ भगवान् का ज्ञान होता है। यह शिवा मेरी मूर्ति है। (१३६)

हे श्रेष्ठ द्विजो! सिद्धि के लिए बहुत से साधनों का वर्णन हुआ है। उनमें मेरे विषय का ज्ञान सर्व-श्रेष्ठ है। (१३७)

भस्म लगाने वाले, ज्ञानयोग-परायण, शान्त एवं मेरे ही शरणागत हुए जो लोग सतत हृदय में मेरा ध्यान करते हैं।

मद्भक्तिपरमा नित्यं यतयः क्षीणकल्मषाः ।
नाशयाम्यचिरात् तेषां घोरं संसारसागरम् ॥१३९
प्रशान्तः संयतमना भस्मोद्धूलितविग्रहः ।
ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रतं पाशुपतं चरेत् ॥१४०
निर्मितं हि मया पूर्वं व्रतं पाशुपतं परम् ।
गुह्याद् गुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये ॥१४१
यद् वा कौपीनवसनः स्याद् वैकवसनो मुनिः ।
वेदाभ्यासरतो विद्वान् ध्यायेत् पशुपतिं शिवम् ॥१४२
एष पाशुपतो योगः सेवनीयो मुमुक्षुभिः ।
भस्मच्छन्नैर्हि सततं निष्कामैरिति विश्रुतिः ॥१४३
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः ॥१४४
अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन् मोहनानि तु ।
वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु ॥१४५

मेरी परमभक्ति में (तत्पर), दोषरहित एवं नित्य संयम परायण उन लोगों के घोर संसाररूपी सागर को मैं शीघ्र नष्टकर देता हूँ। (१३८, १३९)

शरीर में भस्म लगाये हुए प्रशान्त एवं संयमित चित्त से ब्रह्मचर्यपूर्वक नग्न अवस्था में पाशुपत व्रत का पालन करना चाहिए। (१४०)

मैंने पूर्वकाल में विमुक्ति के लिए गुह्यातिगुह्य, सूक्ष्म एवं वेद के सार स्वरूप श्रेष्ठ पाशुपतव्रत का निर्माण किया था। (१४१)

अथवा कौपीन वस्त्र या एक वस्त्र धारण कर मुनि (मननशील) वेदाभ्यास-परायण विद्वान् को पशुपति शिव का ध्यान करना चाहिये। (१४२)

श्रुति का कथन है कि मोक्षार्थियों को भस्म लगाये हुए निष्कामभाव से इस पाशुपत योग का सेवन करना चाहिये। (१४३)

मेरे आश्रित एवं मुझमें लीन, राग, क्रोध एवं भय से रहित मेरे अनेक भक्त इस योग द्वारा पवित्र होकर मेरे भाव को प्राप्त हो चुके हैं। (१४४)

इस संसार में मैंने वेदवाद-विरोधी अन्य मोहकारक शास्त्रों का उपदेश किया है। (१४५)

वामं पाशुपतं सोमं लाकुलं चैव भैरवम् ।
असेव्यमेतत् कथितं वेदबाह्यं तथेतरम् ॥१४६
वेदमूर्त्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभिः ।
ज्ञायते मत्स्वरूपं तु मुक्त्वा वेदं सनातनम् ॥१४७
स्थापयध्वमिदं मार्गं पूजयध्वं महेश्वरम् ।
अचिरादैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति न संशयः ॥१४८
मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः ।
ध्यातमात्रो हि सान्निध्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः ॥१४९
इत्युक्त्वा भगवान् सोमस्तत्रैवान्तरधीयत ।
तेऽपि दारुवने तस्मिन् पूजयन्ति स्म शंकरम् ।
ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः ॥१५०
समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः ।
वितेनिरे बहून् वादान्नध्यात्मज्ञानसंश्रयान् ॥१५१
किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि ।

वाम, पाशुपत, सोम, लाकुल, भैरव एवं (इस प्रकार के) वेदबाह्य अन्य शास्त्रों को असेवनीय कहा गया है। (१४६)

हे विप्रो ! मैं वेदमूर्ति हूँ। (अतः) सनातन वेद का त्यागकर अन्यशास्त्रों के ज्ञाता मेरे स्वरूप को नहीं जान सकते। (१४७)

इस मार्ग की स्थापना एवं महेश्वर की पूजा करो। तदनन्तर निस्सन्देह शीघ्र श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न होगा। (१४८)

हे श्रेष्ठ सन्तो ! मुझ में आप सभी की विपुल भक्ति हो। हे श्रेष्ठ मुनियो ! ध्यानमात्र से मैं आपलोगों के समीप उपस्थित हो जाऊँगा। (१४९)

ऐसा कहकर भगवान् सोम (शिव) वहीं अन्तर्हित हो गये। ब्रह्मचर्यरत, शान्त, ज्ञानयोग-परायण वे (मुनिगण) भी उस दारुवन में शङ्कर की पूजा करने लगे। (१५०)

वे ब्रह्मवादी महात्मा मुनिगण एकत्रित होकर आत्म-ज्ञान-विषयक अनेक वादविवाद करते थे। (१५१)

इस जगत् का मूल अर्थात् कारण क्या ? (उत्तर—) हमारी आत्मा ही (इस जगत् का) मूल है। सभी भाव पदार्थों का हेतु अर्थात् निमित्तोपादाक कारण कौन

कोऽपि स्यात् सर्वभावानां हेतुरीश्वर एव च ॥१५२
इत्येवं मन्यमानानां ध्यानमार्गावलम्बिनाम् ।
आविरासीन्महादेवी देवी गिरिवरात्मजा ॥१५३
कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता ।
स्वभाभिर्विमलाभिस्तु पूरयन्ती नभस्तलम् ॥१५४
तामन्वपश्यन् गिरिजाममेयां
ज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम् ।
प्रणेमुरेकामखिलेशपत्नीं
जानन्ति ते तत् परमस्य बीजम् ॥१५५
अस्माकमेषा परमेशपत्नी
गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना ।
पश्यन्त्यथात्मानमिदं च कृत्स्नं
तस्यामथैते मुनयश्च विप्राः ॥१५६
निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या
तदन्तरे देवमशेषहेतुम् ।
पश्यन्ति शंभुं कविमीशितारं
रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥१५७

आलोक्य देवीमथ देवमीशं
प्रणेमुरानन्दमवापुरग्र्यम् ।
ज्ञानं तदैशं भगवत्प्रसादा-
दाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु ॥१५८
इयं हि सा जगतो योनिरेका
सर्वात्मिका सर्वनियामिका च ।
माहेश्वरीशक्तिरनादिसिद्धा
व्योमाभिधाना दिवि राजतीव ॥१५९
अस्या महत्परमेष्ठी परस्ता-
न्महेश्वरः शिव एकोऽथ रुद्रः ।
चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठां
मायामथारुह्य स देवदेवः ॥१६०
एको देवः सर्वभूतेषु गूढो
मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च ।
स एव देवी न च तद्विभिन्न-
मेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति ॥१६१

है? (उत्तर—) ईश्वर ही सभी पदार्थों का निमित्तोपादान कारण है। (१५२)

इस प्रकार विचार करने वाले ध्यानमार्गावलम्बियों के समक्ष गिरिवर (हिमालय) की पुत्री महादेवी (पार्वती) प्रकट हुयीं। (१५३)

करोड़ों सूर्य के तुल्य ज्वालामाला से युक्त वे (महादेवी) अपने प्रकाश से आकाश को आपूरित कर रही थीं। (१५४)

(मुनियों ने) सहस्रों ज्वालाओं में स्थित अतुलनीय गिरिजा को देखा। (उन्होंने) सर्वेश्वर (शङ्कर) की पत्नी अद्वितीय (पार्वती) को प्रणाम किया। (वे लोग) यह जानते थे कि ये (गिरिजा) परम (पुरुष का) वीज हैं। (१५५)

हे विप्रो! परम पुरुष की गगन-नामधारिणी ये पत्नी हम लोगों की गति एवं आत्मा हैं। मुनिगण को उन (गिरिजा) में अपनी और इस सम्पूर्ण (विश्व) की स्थिति का साक्षात्कार हुआ। (१५६)

परमेश्वर की पत्नी (गिरिजा) ने उन (मुनियों) को देखा और इसी वीच (मुनियों ने) सभी के मूलकारण स्वरूप नियामक, पुराण पुरुष, वृहत् एवं रुद्रात्मक कवि शम्भु देव का दर्शन किया। (१५७)

तदनन्तर देवी एवं ईश देव को देखकर (उनलोगों ने) प्रणाम किया तथा (उन्हें) उत्तम आनन्द प्राप्त हुआ। भगवान् की कृपा से (मुनियों को) जन्म (मरण) की समाप्ति के कारण स्वरूप ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान उत्पन्न हुआ। (१५८)

ये ही वह जगत् की मूल कारण स्वरूपा, सर्वभूतमयी, सर्वनियामिका, व्योमनामधारिणी एवं अनादिसिद्ध-माहेश्वरी शक्ति हैं जो आकाश में विराजमान-सी प्रतीत हो रही हैं। (१५९)

(प्रलय के अन्त में) देवाधिदेव महान् परमेष्ठी, परम अद्वितीय महेश्वर रुद्र ने इन (प्रकृति स्वरूपा) देवी में स्थित दूसरे की शक्ति पर आश्रित माया का अवलम्बन कर विश्व की सृष्टि की थी। (१६०)

अद्वितीय, मायाविपति, निष्कल, पूर्ण, अद्वितीय रुद्र देव सभी प्राणियों में गूढ़ रूप से स्थित हैं। वे ही देवी

अन्तर्हितोऽभूद् भगवानथेशो
देव्या भर्गः सह देवादिदेवः।
आराधयन्ति स्म तमेव देवं
वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम् ॥१६२

एतद् वः कथितं सर्वं देवदेवविचेष्टितम्।
देवदारुवने पूर्वं पुराणे यन्मया श्रुतम् ॥१६३
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं मुच्यते सर्वपातकैः।
श्रावयेद् वा द्विजान् शान्तान् स याति परमां गतिम्।१६४

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

३८

सूत उवाच।
एषा पुण्यतमा देवी देवगन्धर्वसेविता।
नर्मदा लोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी ॥१
तस्याः शृणुध्वं माहात्म्यं मार्कण्डेयेन भाषितम्।
युधिष्ठिराय तु शुभं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२
युधिष्ठिर उवाच।
श्रुतास्तु विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादान्महामुने।
माहात्म्यं च प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च ॥३

नर्मदा सर्वतीर्थानां मुख्या हि भवतेरिता।
तस्यास्त्विदानीं माहात्म्यं वक्तुमर्हसि सत्तम ॥४
मार्कण्डेय उवाच।
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद् विनिःसृता।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम्।
इदानीं तत्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः शुभम् ॥६
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।

(स्वरूप) हैं। (देवी) उनसे भिन्न नहीं है। ऐसा जानने वालों को अमृतत्व की प्राप्ति होती है। (१६१)

उन देवी के साथ देवाधिदेव भगवान् महेश भर्ग अन्तर्हित हो गये। वे वनवासी पुनः उन आदिदेव रुद्र की आराधना करने लगे। (१६२)

पूर्वकाल में देवदारुवन में घटित देवाधिदेव का जो चरित्र मैंने पुराण में सुना था उसे (मैंने) आपलोगों से कहा। (१६३)

जो नित्य इसका पाठ एवं श्रवण करेगा वह समस्त पातकों से मुक्त हो जायेगा। अथवा जो शान्त द्विजों को यह सुनायेगा उसे परमगति की प्राप्ति होगी। (१६४)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त—३७.

३८

सूत ने कहा—देवों और गन्धर्वों से सेवित यह अत्यन्त पवित्र देवी स्वरूपा लोक में नर्मदा नाम से प्रसिद्ध नदी तीर्थों में श्रेष्ठ है। (१)

मार्कण्डेय द्वारा युधिष्ठिर को बतलाये गये उस (नदी) के समस्त पापों के नाशक शुभ माहात्म्य को सुनो। (२)

युधिष्ठिर ने कहा—हे महामुनि! आपकी कृपा से हमने अनेक प्रकार के धर्मों, प्रयाग के माहात्म्य एवं अनेक तीर्थों का वर्णन सुना। (३)

आपने कहा है कि नर्मदा समस्त तीर्थों में प्रधान है। हे सत्तम! अब आप उसके माहात्म्य का वर्णन करें। (४)

मार्कण्डेय ने कहा—रुद्र की देह से निकली नर्मदा नदियों में श्रेष्ठ है। यह चर एवं अचर सभी प्राणियों को तारने वाली है। (५)

मैंने पुराण में नर्मदा का जो शुभ माहात्म्य सुना है अब मैं उसका वर्णन करूँगा। एकाग्रमन से उसे सुनें। (६)

गङ्गा कनखल में पवित्र है, सरस्वती कुरुक्षेत्र में पवित्र

ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ।।७
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ।।८
कलिङ्गदेशपश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके ।
पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ।।९
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र सिद्धिं तु परमां गताः ।।१०
तत्र स्नात्वा नरो राजन् नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ।।११
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ।
विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता ।।१२
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोटयस्तथैव च ।
पर्वतस्य समन्तात् तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके ।।१३
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।।१४
एवं सर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् समुत्सृजेत् ।
तस्य पुण्यफलं राजन् शृणुष्वावहितो नृप ।।१५
शतवर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति पाण्डव ।
अप्सरोगणसंकीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारितः ।।१६
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ।
क्रीडते देवलोके तु दैवतैः सह मोदते ।।१७
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः ।
गृहं तु लभतेऽसौ वै नानारत्नसमन्वितम् ।।१८
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितम् ।
आलेख्यवाहनैः शुभ्रैर्दासीदाससमन्वितम् ।।१९
राजराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः ।
जीवेद् वर्षशतं साग्रं तत्र भोगसमन्वितः ।।२०
अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवाऽनशने कृते ।
अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ।।२१

है किन्तु नर्मदा चाहे ग्राम हो या अरण्य समस्त स्थानों पर पवित्र है। (७)

सरस्वती का जल तीन दिनों में, यमुना का जल एक सप्ताह में, गङ्गा का जल तत्काल एवं नर्मदा का जल दर्शन मात्र से पवित्र करता है। (८)

कलिङ्ग देश के पश्चार्द्ध में अमरकण्टक पर्वत पर तीनों लोकों में पवित्र, रमणीय एवं मनोरम (नर्मदा नदी का उद्‌गम स्थित है)। (९)

हे राजेन्द्र! वहाँ तपस्या कर देवता, असुर, गन्धर्व ऋषि एवं तपस्वियों ने परम सिद्धि प्राप्त की है। (१०)

वहाँ स्नानोपरान्त इन्द्रियों को वशीभूत कर नियमपूर्वक एक रात्रि उपवास करने से मनुष्य सौ कुल-पुरुषों को तार देता है। (११)

सुना जाता है कि यह श्रेष्ठ नदी सौ योजन से कुछ अधिक लम्बी एवं दो योजन चौड़ी है। (१२)

अमरकण्टक पर्वत में चतुर्दिक् साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ स्थित हैं। (१३)

हे राजन्! पवित्रतापूर्वक क्रोध एवं इन्द्रियों को जीतकर सभी प्रकार की हिंसा से रहित एवं सभी प्राणियों के कल्याण में रत रहते हुए ब्रह्मचर्य धारणपूर्वक सभी (शुद्ध) आचारयुक्त जो प्राणी (अमरकण्टक या नर्मदा के तीर्थों में) प्राणों का परित्याग करता है उसके पुण्यफल का वर्णन एकाग्रतापूर्वक सुनो। (१४, १५)

हे पाण्डव! (वह पुरुष) अप्सराओं के समूह तथा दिव्य स्त्रियों से युक्त होकर सौ हजार वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द करता है। (१६)

दिव्य गन्धों का लेप किये एवं दिव्य पुष्पों से सुशोभित होते हुए (वह पुरुष) दिव्यलोक में क्रीड़ा करता एवं देवों के साथ आनन्द करता है। (१७)

तदुपरान्त स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर वह धार्मिक राजा होता है। उसे अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त गृह की प्राप्ति होती है। (१८)

(उसका भवन) दिव्य मणिमय स्तम्भों, हीरा तथा वैदूर्य मणि से भूषित होता है। (वह भवन) स्वच्छ चित्रों तथा वाहनों से अलंकृत एवं दासियों और दासों से युक्त रहता है। (१९)

वह श्रीमान् राजराजेश्वर सभी स्त्रियों को प्रिय एवं भोगों से युक्त होकर सौ वर्ष से अधिक जीवित रहता है। (२०)

(इस तीर्थ में) अग्नि या जल में प्रवेश करने अथवा

पश्चिमे पर्वततटे सर्वपापविनाशनः ।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।२२
तत्र पिण्डप्रदानेन संध्योपासनकर्मणा ।
दशवर्षाणि पितरस्तर्पिताः स्युर्न संशयः ।।२३
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्या महानदी ।
सरलार्जुनसंच्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता ।।२४
सा तु पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर ।।२५
तस्मिंस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमां गतिम् ।।२६
द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात् ।।२७
कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम ।
ईश्वरेण पुरा प्रोक्ता लोकानां हितकाम्यया ।।२८
अनाशकं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ।।२९
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ।
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते ।।३०
सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ।
समं स्नानं च दानं च यथा मे शंकरोऽब्रवीत् ।।३१
परित्यजति यः प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके ।
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ।।३२
नर्मदायां जलं पुण्यं फेनोर्मिसमलंकृतम् ।
पवित्रं शिरसा वन्द्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३३
नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ।
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।३४

अनशन (कर प्राण त्याग) करने वाले पुरुष की आकाश में वायु के सदृश अनिवर्तिका गति अर्थात् पुनरागमन न करने वाली गति होती है । (२१)

पर्वत के पश्चिम तट पर तीनों लोकों में प्रसिद्ध सभी पापों का नाश करने वाला जलेश्वर नामक ह्रद है । (२२)

वहाँ पिण्डदान एवं सन्ध्योपासन कर्म करने से पितृगण निस्सन्देह दस (सहस्र) वर्ष तक तृप्त रहते हैं। (२३)

नर्मदा तट के दक्षिण में समीप ही सरल अर्थात् साल एवं अर्जुनवृक्ष से घिरी हुई कपिला नामक महानदी स्थित है। (२४)

हे युधिष्ठिर ! महान् ऐश्वर्ययुक्त वह पवित्र नदी तीनों लोको में विख्यात है। वहाँ सौ कोटि श्रेष्ठ तीर्थ स्थित हैं। (२५)

उस तीर्थ में काल-क्रमानुसार गिरने वाले जिन वृक्षों का स्पर्श नर्मदा के जल से होता है उन्हें परमगति प्राप्त होती है। (२६)

वहाँ महान् ऐश्वर्ययुक्त कल्याणकारिणी विशल्यकरणी नामक द्वितीय नदी है। उस नदी में स्नान कर मनुष्य तत्क्षण विशल्य (अर्थात् पापादिरूप शल्य से रहित) हो जाता है। (२७)

हे राजश्रेष्ठ! यह सुना जाता है कि प्राचीनकाल में लोक के हित की कामना से ईश्वर ने कपिला एवं विशल्या नामक दो उत्तम नदियों का वर्णन किया था। (२८)

हे नराधिप! उस तीर्थ में जो अनशन व्रत (द्वारा प्राण त्याग) करता है वह समस्त पापों से शुद्ध होकर रुद्रलोक में जाता है। (२९)

हे राजन्! वहाँ स्नान करने से मनुष्य को अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है। जो लोग उत्तरी तट पर निवास करते हैं वे रुद्रलोक में निवास करते है। (३०)

हे युधिष्ठिर ! शङ्कर ने मुझे जैसा बतलाया था उसके अनुसार गङ्गा, सरस्वती एवं नर्मदा में किया गया स्नान एवं दान समान फलदायक होता है। (३१)

जो व्यक्ति अमरकण्टक पर्वत पर प्राणों का त्याग करता है वह सौ करोड़ वर्षों से कुछ अधिक समय तक रुद्रलोक में आदर प्राप्त करता है। (३२)

नर्मदा के फेन और उर्मियों से अलङ्कृत पवित्र जल को मस्तक पर धारणकर (मनुष्य) समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (३३)

नर्मदा नदी सर्वत्र पवित्र एवं ब्रह्महत्या को दूर करने वाली है। वहाँ अहोरात्र पर्यन्त उपवास करने से (मनुष्य) ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। (३४)

जालेश्वरं तीर्थवरं सर्वपापविनाशनम् ।
तत्र गत्वा नियमवान् सर्वकामांल्लभेन्नरः ॥३५
चन्द्रसूर्योपरागे तु गत्वा ह्यमरकण्टकम् ।
अश्वमेधाद् दशगुणं पुण्यमाप्नोति मानवः ॥३६
एष पुण्यो गिरिवरो देवगन्धर्वसेवितः ।
नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः ॥३७
तत्र संनिहितो राजन् देव्या सह महेश्वरः ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा चेन्द्रो विद्याधरगणैः सह ॥३८
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् पर्वतं ह्यमरकण्टकम् ।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३९
कावेरी नाम विपुला नदी कल्मषनाशिनी ।
तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयेद् वृषभध्वजम् ।
संगमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते ॥४०

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

३९

मार्कण्डेय उवाच ।
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी ।
मुनिभिः कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयंभुवा ॥१
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी ।
रुद्रगात्राद् विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया ॥२
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता ।
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च ॥३
उत्तरे चैव तत्कूले तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरं शुभम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दैवतैः सह मोदते ॥४

जालेश्वर नामक श्रेष्ठ तीर्थ समस्त पापों को नष्ट करता है। वहाँ जाकर नियम धारण करने वाला मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। (३५)

चन्द्र एवं सूर्य का ग्रहण लगने पर अमरकण्टक में जाने से मनुष्य अश्वमेध की अपेक्षा दस गुना अधिक फल प्राप्त करता है। (३६)

यह पवित्र श्रेष्ठ पर्वत देवों एवं गन्धर्वों से सेवित, अनेक प्रकार के वृक्षों एवं लताओं से परिपूर्ण तथा नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित है। (३७)

हे राजन्। वहाँ देवी के साथ महेश्वर तथा विद्याधरों के समूहों से युक्त ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्र भी स्थित हैं। (३८)

जो मनुष्य अमरकण्टक पर्वत की प्रदक्षिणा करता है उसे पौण्डरीक यज्ञ का फल प्राप्त होता है। (३९)

कावेरी नामक महानदी पापों को नष्ट करती है। उसमें स्नान कर नर्मदा के सङ्गम पर वृषभध्वज महादेव की अर्चना करने से रुद्रलोक में आदर प्राप्त होता है। (४०)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त—३८.

३९

मार्कण्डेय ने कहा—नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा नदी समस्त पापों को नष्ट करती है। पूर्वकाल में ईश्वर स्वयम्भू (ब्रह्मा) ने इसे मुनियों को बतलाया था। (१)

मुनियों के स्तुति करने पर यह श्रेष्ठ नर्मदा नदी लोकों के हित की कामना से रुद्र के शरीर से निकली थी। (२)

सभी देवों से नमस्कृत तथा देवता, गन्धर्व एवं अप्सराओं से स्तुति की जाने वाली (यह नदी) नित्य सभी पापों को दूर करती है। (३)

इसके उत्तरी तट पर तीनों लोकों में प्रसिद्ध भद्रेश्वर नामक पवित्र एवं सभी पापों को दूर करने वाला शुभ तीर्थ है। हे राजन्! उसमें स्नान कर मनुष्य देवों के साथ आनन्द करता है। (४)

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थमाम्रातकेश्वरम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ।।५
ततोऽङ्गारेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते ।।६
ततो गच्छेत राजेन्द्र केदारं नाम पुण्यदम् ।
तत्र स्नात्वोदकं कृत्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।।७
पिप्पलेशं ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम् ।
तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते ।।८
ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र प्राणान् परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् ।।९
ततः पुष्करिणीं गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।।१०
ततो गच्छेत राजेन्द्र शूलभेदमिति श्रुतम् ।
तत्र स्नात्वार्चयेद् देवं गोसहस्रफलं लभेत् ।।११
ततो गच्छेत राजेन्द्र बलितीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सिंहासनपतिर्भवेत् ।।१२
शक्रतीर्थं ततो गच्छेत् कूले चैव तु दक्षिणे ।
उपोष्य रजनीमेकां स्नानं कृत्वा यथाविधि ।।१३
आराधयेन्महायोगं देवं नारायणं हरिम् ।
गोसहस्रफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति ।।१४
ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोके महीयते ।।१५
नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ।।१६
यत्र तप्तं तपः पूर्वं नारदेन सुरर्षिणा ।
प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः ।।१७

हे राजेन्द्र ! वहाँ से आम्रातकेश्वर नामक तीर्थ में जाना चाहिये । हे राजन् ! उसमें स्नान कर मनुष्य सहस्र गायों के दान करने का फल प्राप्त करता है । (५)

तदनन्तर ब्रह्मचर्यपूर्वक नियताहार करते हुए अङ्गारकेश्वर (नामक तीर्थ) में जाना चाहिए । (ऐसा करने से मनुष्य) समस्त पापों से विशुद्ध होकर रुद्रलोक में आदर प्राप्त करता है । (६)

हे राजेन्द्र ! वहाँ से पुण्यप्रद केदार नामक (तीर्थ) में जाना चाहिए । उसमें स्नानोपरान्त (देवों एवं पितरादिकों को) जल प्रदान करने से (मनुष्य) समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है । (७)

वहाँ से समस्त पापों को विनष्ट करने वाले पिप्पलेश (नामक तीर्थ) में जाना चाहिये । हे राजेन्द्र ! उसमें स्नान करने से (मनुष्य) रुद्रलोक में पूजित होता है । (८)

हे राजेन्द्र ! वहाँ से उत्तम विमलेश्वर नामक तीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ प्राणों का परित्याग करने से (मनुष्य को) रुद्रलोक की प्राप्ति होती है । (९)

वहाँ से पुष्करिणी में जाकर उसमें स्नान करना चाहिये । हे राजेन्द्र ! वहाँ स्नान करते ही मनुष्य इन्द्र का आधा आसन प्राप्त कर लेता है । (१०)

हे राजेन्द्र ! ऐसी श्रुति है कि वहाँ से शूलभेद (नामक तीर्थ) में जाना चाहिये वहाँ स्नानोपरान्त देवार्चन करना चाहिये ऐसा करने से सहस्र गायों के दान का फल प्राप्त होता है । (११)

हे राजेन्द्र ! तदन्तर श्रेष्ठ बलि तीर्थ में जाना चाहिये । हे राजन् ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य सिंहासनपति अर्थात् राजा होता है । (१२)

तदुपरान्त दक्षिण के तट पर (स्थित) शक्रतीर्थ में जाना चाहिए । वहाँ एक रात्रि उपवास कर यथाविधि स्नानोपरान्त महायोगस्वरूप नारायण हरि की आराधना करनी चाहिये । (ऐसा करने वाला) वह (मनुष्य) सहस्र गायों (को दान करने का) फल प्राप्त कर विष्णुलोक में जाता है । (१३,१४)

वहाँ से मनुष्यों के समस्त पापों को दूर करने वाले ऋषितीर्थ में जाकर स्नानमात्र करने से मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है । (१५)

वहीं नारद का परम सुन्दर तीर्थ है । वहाँ स्नानमात्र से मनुष्य को सहस्र गायों के दान का फल प्राप्त होता है । (१६)

वहाँ देवर्षि नारद ने पूर्वकाल में तप किया था एवं देवाधिदेव महेश्वर ने प्रसन्न होकर उन्हें योग (विषयक ज्ञान) प्रदान किया था । (१७)

ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम् ।
यत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते ।।१८
ऋणतीर्थं ततो गच्छेत् स ऋणान्मुच्यते ध्रुवम् ।
महेश्वरं ततो गच्छेत् पर्याप्तं जन्मनः फलम् ।।१९
भीमेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वव्याधिविनाशनम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ।।२०
ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् ।
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात् ।।२१
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र कपिलां यः प्रयच्छति ।
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ।
तावद् वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।।२२
यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात् तत्र नराधिप ।
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।२३
नर्मदातटमाश्रित्य तिष्ठन्ते ये तु मानवाः ।
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ।।२४
ततो दीप्तेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम् ।
निवर्त्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी ।
हुंकारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता ।।२५
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे युधिष्ठिर ।
प्रीतस्तस्य भवेद् व्यासो वाञ्छितं लभते फलम् ।।२६
ततो गच्छेत राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु संगमम् ।
त्रैलोक्यविश्रुतं पुण्यं तत्र सन्निहितः शिवः ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।२७
स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ।
आजन्मनः कृतं पापं स्नातस्तीत्र व्यपोहति ।।२८
तत्र देवाः सगन्धर्वा भवात्मजमनुत्तमम् ।
उपासते महात्मानं स्कन्दं शक्तिधरं प्रभुम् ।।२९
ततो गच्छेदाङ्गिरसं स्नानं तत्र समाचरेत् ।

ब्रह्मा के द्वारा निर्मित लिङ्ग ब्रह्मेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। हे राजन् ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है। (१८)

वहाँ से मनुष्य को ऋणतीर्थ में जाना चाहिए। (ऐसा करने से वह) निश्चय ही ऋण से मुक्त हो जाता है। वहाँ से महेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए (ऐसा करने से) जन्म का फल प्राप्त होता है। (१९)

वहाँ से सभी व्याधियों को नष्ट करने वाले भीमेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये। मनुष्य वहाँ स्नान मात्र से सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है। (२०)

हे राजेन्द्र ! वहाँ से उत्तम पिङ्गलेश्वर (तीर्थ) में जाना चाहिए। (वहाँ) अहोरात्र का उपवास करने से त्रिरात्र (उपवास) का फल प्राप्त होता है। (२१)

हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में जो कपिला (गौ) का दान करता है वह उस कपिला के तथा उसके कुल में उत्पन्न सन्तानों के शरीरों पर जितने रोम होते हैं उतने ही सहस्र वर्ष पर्यन्त रुद्रलोक में आदर प्राप्त करता है। (२२)

हे नराधिप ! जो वहाँ प्राण-त्याग करता है वह सूर्य एवं चन्द्रमा के रहने के समय तक अक्षय आनन्द करता है। (२३)

जो मनुष्य नर्मदा के तट का आश्रय कर रहते हैं वे मरने पर पुण्यवान् सज्जनों के सदृश स्वर्ग जाते हैं। (२४)

तदुपरान्त व्यासतीर्थ नामक तपोवन में स्थित दीप्तेश्वर की यात्रा करनी चाहिये। प्राचीनकाल में व्यास से भयभीत महानदी वहाँ निर्वात्तित हुयी थी। व्यास के हुङ्कार करने पर वह वहाँ से दक्षिण की ओर चली गयी। (२५)

हे युधिष्ठिर ! उस तीर्थ में जो प्रदक्षिणा करता है उसके ऊपर व्यास प्रसन्न होते हैं एवं वह वाञ्छित फल प्राप्त करता है। (२६)

हे राजेन्द्र ! वहाँ से इक्षु नदी के त्रैलोक्य-प्रसिद्ध पवित्र सङ्गम पर जाना चाहिये। वहाँ शिव स्थित हैं। हे राजन् ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य को गाणपत्य (पद) की प्राप्ति होती है। (२७)

तदुपरान्त समस्त पापों को नष्ट करने वाले स्कन्द-तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करने पर जन्मकाल से किया हुआ घोर पाप दूर हो जाता है। (२८)

वहाँ गन्धर्वों सहित देवगण शक्तिधारी श्रेष्ठ शिवपुत्र महात्मा प्रभु स्कन्ददेव की उपासना करते हैं। (२९)

वहाँ से अङ्गिरस तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिये। (ऐसा करने वाला) वह पुरुष सहस्रों गायों के

गोसहस्रफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति ।।३०
अङ्गिरा यत्र देवेशं ब्रह्मपुत्रो वृषध्वजम् ।
तपसाराध्य विश्वेशं लब्धवान् योगमुत्तमम् ।।३१
कुशतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ।
स्नानं तत्र प्रकुर्वीत अश्वमेधफलं लभेत् ।।३२
कोटितीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः ।।३३
चन्द्रभागां ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ।।३४
नर्मदादक्षिणे कूले संगमेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सर्वयज्ञफलं लभेत् ।।३५
नर्मदायोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् ।
आदित्यायतनं रम्यमीश्वरेण तु भाषितम् ।।३६
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दत्त्वा दानं तु शक्तितः ।

दान करने का फल प्राप्त कर रुद्रलोक को जाता है। (३०)

वहाँ ब्रह्मा के पुत्र अङ्गिरा ने तपस्या द्वारा विश्वेश वृषध्वज की अराधना कर उत्तम योग प्राप्त किया था। (३१)

वहाँ से समस्त पापों को नष्ट करने वाले कुशतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करने से अश्वमेधयज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। (३२)

तदुपरान्त सभी पापों को नष्ट करने वाले कोटितीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नान करने से मनुष्य को निस्सन्देह राज्य प्राप्त होता है। (३३)

वहाँ से चन्द्रभागा की यात्रा कर उसमें स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नान करने मात्र से ही मनुष्य सोमलोक में आदर प्राप्त करता है। (३४)

नर्मदा के दक्षिण कूल पर उत्तम सङ्गमेश्वर तीर्थ है। हे राजन्! वहाँ स्नान करने से मनुष्य को समस्त यज्ञों के करने का फल प्राप्त होता है। (३५)

नर्मदा के उत्तरी तट पर परम सुन्दर तीर्थ है। वहाँ ईश्वर का वतलाया हुआ आदित्य का सुन्दर मन्दिर है। (३६)

हे राजन्! वहाँ स्नानोपरान्त यथाशक्ति दान करने

तस्य तीर्थप्रभावेण लभते चाक्षयं फलम् ।।३७
दरिद्रा व्याधिता ये तु ये च दुष्कृतकारिणः ।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं प्रयान्ति च ।।३८
मार्गेश्वरं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।।३९
ततः पश्चिमतो गच्छेन्मरुदालयमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः ।।४०
काञ्चनं तु द्विजो दद्याद् यथाविभवविस्तरम् ।
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति ।।४१
ततो गच्छेत राजेन्द्र अहल्यातीर्थमुत्तमम् ।
स्नानमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमक्षयम् ।।४२
चैत्रमासे तु संप्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी ।
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तु पूजयेत् ।।४३
यत्र तत्र नरोत्पन्नो वरस्तत्र प्रियो भवेत् ।

से मनुष्य उस तीर्थ के प्रभाव से अक्षय फल प्राप्त करता है। (३७)

जो लोग दरिद्र, व्याधिग्रस्त तथा पापकर्म करने वाले होते हैं वे समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक को जाते हैं। (३८)

तदुपरान्त मार्गेश्वर तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिए वहाँ स्नान करने से ही मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। (३९)

तदुपरान्त पश्चिमी तट पर स्थित उत्तम मरुदालय में जाना चाहिए। हे राजेन्द्र! वहाँ प्रयत्नपूर्वक स्नानोपरान्त पवित्र होकर अपने वैभव विस्तार के अनुकूल द्विज को स्वर्ण प्रदान करना चाहिये। (ऐसा करने से) वह (मनुष्य) पुष्पक (विमान) द्वारा वायुलोक को जाता है। (४०,४१)

हे राजेन्द्र! वहाँ से उत्तम अहल्या तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ स्नानमात्र से (मनुष्य) अक्षय कालतक अप्सराओं के साथ आनन्द करता है। (४२)

चैत्रमास आने पर शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को कामदेव के दिन जो अहल्या की पूजा करता है वह मनुष्य जहाँ कहीं उत्पन्न होने पर भी अत्यन्त प्रिय एवं वरणीय हो

स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान् कामदेव इवापरः ।।४४
अयोध्यां तु समासाद्य तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ।।४५
सोमतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।४६
सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत् ।
त्रैलोक्यविश्रुतं राजन् सोमतीर्थं महाफलम् ।।४७
यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात् तत्र तीर्थे समाहितः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति ।।४८
अग्निप्रवेशं यः कुर्यात् सोमतीर्थे नराधिप ।
जले चानशनं वापि नासौ मर्त्योऽभिजायते ।।४९
स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ।।५०
ततो गच्छेत राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ।
योधनीपुरमाख्यातं विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ।।५१
असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः ।
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुश्रीको भवेदिह ।
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।।५२
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् ।
कामतीर्थमिति ख्यातं यत्र कामोऽर्चयद् भवम् ।।५३
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः ।
कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते ।।५४
ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम् ।
उमाहकमिति ख्यातं तत्र संतर्पयेत् पितॄन् ।।५५
पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद् यथाविधि ।
गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये व्यवस्थिता ।।५६
तस्मिंस्तु दापयेत् पिण्डान् वैशाख्यां तु विशेषतः ।
स्नात्वा समाहितमना दम्भमात्सर्यवर्जितः ।

जाता है। वह (व्यक्ति) श्रीमान् एवं दूसरे कामदेव के सदृश स्त्री का प्रिय होता है। (४३,४४)

इन्द्र के प्रसिद्ध तीर्थ अयोध्या में जाकर वहाँ स्नान-मात्र करने से मनुष्य सहस्र गायों के दान का फल प्राप्त करता है। (४५)

तदुपरान्त सोमतीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिए। वहाँ स्नान-मात्र से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। (४६)

हे राजेन्द्र ! चन्द्र-ग्रहण के समय (वहाँ स्नान करना) पाप का क्षय करने वाला होता है। हे राजेन्द्र ! सोमतीर्थ त्रैलोक्य में प्रसिद्ध एवं महाफलदायक है। (४७)

जो उस तीर्थ में सावधानीपूर्वक चान्द्रायण व्रत करता है वह समस्त पापों से शुद्ध होकर सोमलोक को जाता है। (४८)

हे नराधिप ! जो सोमतीर्थ में अग्निप्रवेश, जलप्रवेश अथवा अनशन करता है, वह मनुष्य पुनः उत्पन्न नहीं होता। (४९)

तदुपरान्त स्तम्भ तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करने से मनुष्य सोमलोक में पूजित होता है। (५०)

हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त उत्तम विष्णुतीर्थ में जाना चाहिये। (वहाँ) योधनीपुर नामक विष्णु का श्रेष्ठ स्थान है। (५१)

वहाँ वासुदेव ने करोड़ों असुरों से युद्ध किया था। (अतएव) वहाँ तीर्थ की उत्पत्ति हुयी। (वहाँ स्नान करने से मनुष्य) विष्णु के तुल्य श्री-सम्पन्न हो जाता है। (वहाँ) अहोरात्र उपवास करने से (मनुष्य) ब्रह्महत्या को दूर कर देता है। (५२)

नर्मदा के दक्षिण तट पर परम सुन्दर तीर्थ है। वह स्थान कामतीर्थ नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ कामदेव ने शङ्कर की अर्चना की थी। (५३)

उस तीर्थ में स्नानोपरान्त उपवास करने वाला मनुष्य कामदेव के रूप से रुद्रलोक में आदर प्राप्त करता है। (५४)

हे राजेन्द्र ! वहाँ से श्रेष्ठ ब्रह्मतीर्थ में जाना चाहिए। वह तीर्थ उमाहक नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पितरों का तर्पण करना चाहिये। (५५)

पौर्णमासी एवं अमावस्या को यथाविधि श्राद्ध करना चाहिए। वहाँ जल के भीतर हाथी के आकार की शिला है। (५६)

उस पर वैशाख मास में (पौर्णमासी को) सावधानतापूर्वक पिण्डदान करना चाहिए। स्नानोपरान्त एकाग्रचित्त होकर तथा दम्भ एवं मात्सर्य से रहित होकर

तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावत् तिष्ठति मेदिनी ।।५७
सिद्धेश्वरं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत् ।।५८
ततो गच्छेत राजेन्द्र लिङ्गो यत्र जनार्दनः ।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र विष्णुलोके महीयते ।।५९
यत्र नारायणो देवो मुनीनां भावितात्मनाम् ।
स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्गं तत् परमं पदम् ।।६०
अङ्कोलं तु ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम् ।
स्नानं दानं च तत्रैव ब्राह्मणानां च भोजनम् ।
पिण्डप्रदानं च कृतं प्रेत्यानन्तफलप्रदम् ।।६१
त्रैयम्बकेन तोयेन यश्चरुं श्रपयेत् ततः ।
अङ्कोलमूले दद्याच्च पिण्डांश्चैव यथाविधि ।
तारिताः पितरस्तेन तृप्यन्त्याचन्द्रतारकम् ।।६२
ततो गच्छेत राजेन्द्र तापसेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र प्राप्नुयात् तपसः फलम् ।।६३

शुक्लतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापविनाशनम् ।
नास्ति तेन समं तीर्थं नर्मदायां युधिष्ठिर ।।६४
दर्शनात् स्पर्शनात् तस्य स्नानदानतपोजपात् ।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थे महत् फलम् ।।६५
योजनं तत् स्मृतं क्षेत्रं देवगन्धर्वसेवितम् ।
शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापविनाशनम् ।।६६
पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शंकरः ।।६७
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां वैशाखे मासि सुव्रत ।
कैलासाच्चाभिनिष्क्रम्य तत्र सन्निहितो हरः ।।६८
देवदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ।
गणाश्चाप्सरसां नागास्तत्र तिष्ठन्ति पुंगव ।।६९
रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा ।
आजन्मनि कृतं पापं शुक्लतीर्थे व्यपोहति ।
स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्र दृश्यते ।।७०

(पिण्डदान करने वाले मनुष्य के) पितृगण तब तक तृप्त रहते हैं जब तक पृथ्वी रहती है। (५७)

वहाँ से सिद्धेश्वर तीर्थ में जाकर स्नानमात्र करने से मनुष्य को गाणपत्य पद की प्राप्ति होती है। (५८)

हे राजेन्द्र! वहाँ से उस स्थान पर जाना चाहिये जहाँ जनार्दन लिङ्ग स्थित है। वहाँ स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक में आदर प्राप्त करता है। (५९)

वहाँ नारायण देव ने भक्तिपूर्ण मुनियों को परम पदस्वरूप उस लिङ्ग के रूप में अपने स्वरूप का दर्शन कराया था। (६०)

तदन्तर सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करने वाले अङ्कोल नामक तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ किया गया स्नान दान, ब्राह्मण (को दिया गया) भोजन एवं पिण्डदान मरणोपरान्त अनन्त फल प्रदान करता है। (६१)

जो 'त्रियम्ब' मन्त्र द्वारा जल से चरु पकाकर तथा अङ्कोल के मूल में यथाविधि पिण्डदान करता है उसके द्वारा तारे गये पितृगण चन्द्रमा और तारों के रहने तक तृप्त रहते हैं। (६२)

हे राजेन्द्र! तदुपरान्त उत्तम तापसेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये। हे राजेन्द्र! वहाँ स्नान करने से तपस्या के फल की प्राप्ति होती है। (६३)

तदनन्तर समस्त पापों को नष्ट करने वाले शुक्लतीर्थ में जाना चाहिये। हे युधिष्ठिर! नर्मदा में उसके समान कोई तीर्थ नहीं है। (६४)

उस शुक्लतीर्थ का दर्शन एवं स्पर्श करने तथा वहाँ स्नान, दान, तप, जप होम एवं उपवास करने से महान् फल प्राप्त होता है। (६५)

सर्व-पाप-विनाशक एवं देव गन्धर्व सेवित प्रसिद्ध शुक्लतीर्थ एक योजन परिमाण का कहा गया है। (६६)

(इस तीर्थ में स्थित) वृक्ष के अग्रभाग को भी देखने से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। वहाँ भर्ग शङ्कर सदा देवी के साथ रहते हैं। (६७)

हे सुव्रत! वैशाख के महीने में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को देव हर कैलास से निकल कर वहाँ स्थित होते हैं। (६८)

हे पुङ्गव! वहाँ देव, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, अप्सरायें एवं श्रेष्ठ नाग रहते हैं। (६९)

जैसे वस्त्र रजक के द्वारा जल से शुक्ल हो जाता है उसी प्रकार शुक्ल तीर्थ में आजन्म का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। शुक्लतीर्थ में किया गया स्नान, दान, तप, एवं श्राद्ध अनन्त फल-दायक होता है। (७०)

शुक्लतीर्थात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः ।
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति ॥७१
कार्त्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
घृतेन स्नापयेद् देवमुपोष्य परमेश्वरम् ।
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात् पदात् ॥७२
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञदानेन वा पुनः ।
न तां गतिमवाप्नोति शुक्लतीर्थे तु यां लभेत् ॥७३
शुक्लतीर्थं महातीर्थमृषिसिद्धनिषेवितम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् पुनर्जन्म न विन्दति ॥७४
अयने वा चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विषुवे तथा ।
स्नात्वा तु सोपवासः सन् विजितात्मा समाहितः ॥७५
दानं दद्याद् यथाशक्ति प्रीयेतां हरिशंकरौ ।
एतत् तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ॥७६
अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा ।
उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७७
यावत् तद्रोमसंख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च ।
तावद् वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥७८
ततो गच्छेत राजेन्द्र यमतीर्थमनुत्तमम् ।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां माघमासे युधिष्ठिर ।
स्नानं कृत्वा नक्तभोजी न पश्येद् योनिसङ्कटम् ॥९७
ततो गच्छेत राजेन्द्र एरण्डीतीर्थमुत्तमम् ।
संगमे तु नरः स्नायादुपवासपरायणः ।
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिताः ॥८०
एरण्डीसंगमे स्नात्वा भक्तिभावात् तु रञ्जितः ।
मृत्तिकां शिरसि स्थाप्य अवगाह्य च तज्जलम् ।
नर्मदोदकसंमिश्रं मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥८१
ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं कार्णाटिकेश्वरम् ।
गङ्गावतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः ॥८२

शुक्लतीर्थ से श्रेष्ठ तीर्थ न हुआ एवं न होगा । मनुष्य पूर्व अवस्था में पाप कर्म करने पर शुक्ल तीर्थ में अहोरात्र का उपवास कर उस पाप से मुक्त हो जाता है । (७१)

कार्त्तिक मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उपवासोरान्त घृत द्वारा परमेश्वर देव का अभिषेक करना चाहिए । (ऐसा करने वाला मनुष्य) इक्कीस पीढ़ियों के सहित ईश्वर के लोक से नहीं च्युत होता । (७२)

तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा दान से मनुष्य को वह गति नहीं प्राप्त होती जो शुक्लतीर्थ में प्राप्त होती है । (७३)

शुक्लतीर्थ नामक महातीर्थ ऋषियों से एवं सिद्धों से सेवित है । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता । (७४)

अयन, चतुर्दशी, संक्रान्ति अथवा विषुव में स्नानोपरान्त उपवास करते हुए विजितात्मा पुरुष को एकाग्रतापूर्वक यथाशक्ति दान देना चाहिये । (इस प्रकार) विष्णु एवं शङ्कर प्रसन्न होते हैं । इस तीर्थ के प्रभाव से सभी कुछ अक्षय हो जाता है । (७५,७६)

अनाथ, दुर्गत या सनाथ भी ब्राह्मण का इस तीर्थ में जो विवाह करा देता है उसका पवित्र फल सुनो । (७७)

उसके शरीर में तथा उसकी सन्तानों के शरीर में जितने रोम होते हैं उतने सहस्र वर्षों तक वह रुद्रलोक में आदर प्राप्त करता है । (७८)

हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त श्रेष्ठ यमतीर्थ में जाना चाहिए । हे युधिष्ठिर ! माघमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को स्नानोपरान्त रात्रि में भोजन करने वाले व्यक्ति को योनिसङ्कट अर्थात् गर्भ से उत्पन्न होने के सङ्कट का साक्षात्कार नहीं करना पड़ता । (७९)

हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् उत्तम एरण्डीतीर्थ में जाना चाहिए । सङ्गम में मनुष्य को उपवास करते हुए स्नान करना चाहिये वहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराये । इस प्रकार कोटि ब्राह्मण भोजन का फल प्राप्त होता है । (८०)

एरण्डीसङ्गम में स्नानोपरान्त भक्तिभाव पूर्वक मस्तक पर मिट्टी रख नर्मदा के जल से मिश्रित उसके जल में स्नान करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । (८१)

हे राजेन्द्र ! वहाँ से कार्णाटिकेश्वर तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । वहां पुण्य दिन में निस्सन्देह गङ्गा अवतरित होती हैं । (८२)

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्त्वा चैव यथाविधि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।८३
नन्दितीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
प्रीयते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते ।।८४
ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं त्वनरकं शुभम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् नरकं नैव पश्यति ।।८५
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत् ।
रूपवान् जायते लोके धनभोगसमन्वितः ।।८६
ततो गच्छेत राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत् ।।८७
ज्येष्ठमासे तु संप्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः ।
तत्रोपोष्य नरो भक्त्या दद्याद् दीपं घृतेन तु ।।८८
घृतेन स्नापयेद् रुद्रं सघृतं श्रीफलं दहेत् ।
घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां वै प्रदापयेत् ।।८९

यथाविधि वहाँ स्नान, जलपान एवं दान करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में आदर प्राप्त करता है। (८३)

तदुपरान्त नन्दितीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए। (वहाँ स्नान करने वाले व्यक्ति के ऊपर) नन्दीश प्रसन्न होते हैं एवं उसे सोमलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। (८४)

हे राजेन्द्र! वहाँ से शुभ अनरक नामक तीर्थ में जाना चाहिये। हे राजेन्द्र! उस तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य नरक का दर्शन नहीं करता। (८५)

हे राजेन्द्र! उस तीर्थ में अपनी अस्थियों का विसर्जन करना चाहिये। (ऐसा करने से मनुष्य) लोक में धन और भोग की सामग्री से सम्पन्न तथा स्वरूपवान् होता है। (८६)

हे राजेन्द्र! तदुपरान्त उत्तम कपिलातीर्थ में जाना चाहिये। हे राजेन्द्र! उसमें स्नान करने से मनुष्य को सहस्र गायों के दान करने का फल होता है। (८७)

ज्येष्ठ मास में विशेषरूप से (उस मास की) चतुर्दशी तिथि में मनुष्य को वहाँ उपवास कर भक्तिपूर्वक घृत का दीप दान करना चाहिये। (८८)

तदुपरान्त घृत द्वारा रुद्र का अभिषेक करना चाहिये। एवं घृतयुक्त श्रीफल का हवन करना चाहिये

सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः ।
शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत् क्रीडते चिरम् ।।९०
अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः ।
स्नापयित्वा शिवं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम् ।।९१
सर्वभोगसमायुक्तो विमानैः सार्वकामिकैः ।
गत्वा शक्रस्य भवनं शक्रेण सह मोदते ।।९२
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो धनवान् भोगवान् भवेत् ।
अङ्गारकनवम्यां तु अमावास्यां तथैव च ।
स्नापयेत् तत्र यत्नेन रूपवान् सुभगो भवेत् ।।९३
ततो गच्छेत राजेन्द्र गणेश्वरमनुत्तमम् ।
श्रावणे मासि संप्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।।९४
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते ।
पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यतेऽसावृणत्रयात् ।।९५
गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम् ।

और घण्टा तथा आभरण से युक्त कपिला गौ का दान करना चाहिये।

(ऐसा करने से मनुष्य) समस्त आभरणों से युक्त, समस्त देवों से नमस्कृत तथा शिवतुल्य बलवान् होकर सदा शिव के सदृश क्रीडा करता है। (८९, ९०)

मङ्गल के दिन विशेष रूप से चतुर्थी तिथि में शिव का अभिषेक कर ब्राह्मणों को भोजन देना चाहिए। (९१)

(ऐसा करने से मनुष्य) समस्त भोगों से युक्त होकर कामनाओं से पूर्ण विमानों से इन्द्र के लोक में जाकर इन्द्र के साथ आनन्दोपभोग करता है। तदुपरान्त स्वर्ग से भ्रष्ट होकर धन एवं भोग से सम्पन्न मनुष्य होता है। अङ्गारक (मंगल) नवमी एवं अमावस्या को वहाँ यत्नपूर्वक रुद्राभिषेक करने से मनुष्य रूप एवं सौभाग्य से युक्त होता है। (९२, ९३)

हे राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ गणेश्वर (तीर्थ) की यात्रा करनी चाहिये। श्रावण मास आने पर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को वहाँ स्नान मात्र करने से ही मनुष्य रुद्रलोक में आदर प्राप्त करता है। (वहाँ) पितरों का तर्पण करने वाला मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है। (९४,९५)

गङ्गेश्वर के समीप श्रेष्ठ गङ्गावदन नामक तीर्थ

अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः ।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥९६
तस्य वै पश्चिमे देशे समीपे नातिदूरतः ।
दशाश्वमेधिकं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥९७
उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे शुभे ।
अमावस्यां नरः स्नात्वा पूजयेद् वृषभध्वजम् ॥९८
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ।
गत्वा रुद्रपुरं रम्यं रुद्रेण सह मोदते ॥९९
सर्वत्र सर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् ।
पितॄणां तर्पणं कुर्यादश्वमेधफलं लभेत् ॥१००

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

४०

मार्कण्डेय उवाच ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र भृगुतीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र देवो भृगुः पूर्वं रुद्रमाराधयत् पुरा ॥१
दर्शनात् तस्य देवस्य सद्यः पापात् प्रमुच्यते ।
एतत् क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।
उपानहोस्तथा युग्मं देयमन्नं सकाञ्चनम् ।
भोजनं च यथाशक्ति तदस्याक्षयमुच्यते ॥३
क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदानं तपः क्रिया ।
अक्षयं तत् तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर ॥४
तस्यैव तपसोग्रेण तुष्टेन त्रिपुरारिणा ।
सान्निध्यं तत्र कथितं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर ॥५

है। सकाम या निष्काम भाव से वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य निस्सन्देह जन्म भर के किये गये पापों से मुक्त हो जाता है। (९६)

उसके पश्चिम ओर निकट ही तीनों लोकों में प्रसिद्ध दशाश्वमेधिक तीर्थ है। (९७)

शुभ भाद्रपदमास की अमावस्या को (वहाँ) स्नानकर एक रात्रि उपवास तथा वृषभध्वज (हर) का अभिषेक करना चाहिये। (९८)

(ऐसा करने वाला मनुष्य) किङ्किणी के समूह से अलंकृत स्वर्ण-निर्मित विमान द्वारा रमणीक रुद्रपुर में जाकर रुद्रदेव के साथ आनन्द करता है। (९९)

उस तीर्थ में सर्वत्र एवं सभी दिन स्नान करना चाहिये एवं (वहाँ) पितरों का तर्पण करना चाहिये (ऐसा करने से) अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है। (१००)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराण संहिता के उपरिविभाग में उनतालिसवाँ अध्याय समाप्त—३९.

४०

मार्कण्डेय ने कहा—हे राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ भृगु-तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। प्राचीन काल में भृगुदेव ने वहाँ रुद्र की आराधना की थी। (१)

उन देव का दर्शन करने से तत्काल पाप से मुक्ति हो जाती है। यह अत्यन्त विपुल क्षेत्र समस्त पापों को नष्ट कर देता है। (२)

वहाँ स्नान करने से स्वर्ग प्राप्त होता है एवं जो वहाँ मरते हैं उनका मोक्ष हो जाता है। वहाँ जूते का जोड़ा एवं स्वर्ण-सहित अन्न का दान करना चाहिये। (वहाँ) यथाशक्ति भोजन का भी दान करना चाहिए। उसका भी अक्षय (फल) कहा गया है। (३)

सभी प्रकार के दान, यज्ञ, तप एवं कर्म नष्ट हो जाते हैं। हे युधिष्ठिर! भृगुतीर्थ में किया गया तप अक्षय होता है। (४)

हे युधिष्ठिर! उन (भृगु) की ही उग्र तपस्या के कारण प्रसन्न त्रिपुरारि रुद्र का उस भृगुतीर्थ में स्थित होना कहा गया है। (५)

ततो गच्छेत राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम् ।
यत्राराध्य त्रिशूलाङ्कं गौतमः सिद्धिमाप्नुयात् ।।६
तत्र स्नात्वा नरो राजन् उपवासपरायणः ।
काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ।।७
वृषोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाश्वतं पदमाप्नुयात् ।
न जानन्ति नरा मूढा विष्णोर्मायाविमोहिताः ।।८
धौतपापं ततो गच्छेद् धौतं यत्र वृषेण तु ।
नर्मदायां स्थितं राजन् सर्वपातकनाशनम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।।९
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति यः ।
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च हरतुल्यबलो भवेत् ।।१०
वसेत् कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः ।
कालेन महता जातः पृथिव्यामेकराड् भवेत् ।।११

हे राजेन्द्र ! वहाँ से उत्तम गौतमेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये जहाँ त्रिशूलाङ्क (शिव) की आराधना कर गौतम ने सिद्धि प्राप्त की थी। (६)

हे राजन् ! वहाँ स्नानोपरान्त उपवास करने वाला मनुष्य स्वर्ण-निर्मित विमान द्वारा ब्रह्मलोक में जाकर वहाँ आदर प्राप्त करता है। (७)

तदनन्तर वृषोत्सर्ग तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ जाने से शाश्वत पद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। विष्णु की माया से विमोहित मूढ मनुष्य (इस तीर्थ को) नहीं जानते। (८)

वहाँ से धौतपाप नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। वृष ने वहाँ (पाप को) धोया था। हे राजन् ! नर्मदा में स्थित यह तीर्थ समस्त पापों को नष्ट करता है। उस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। (९)

हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में जो प्राणों का त्याग करता है वह चतुर्भुज, त्रिनेत्र एवं शिव के तुल्य बलवान् हो जाता है। (१०)

शिवतुल्य पराक्रमी होकर वह दस सहस्र कल्प पर्यन्त शिवलोक में निवास करता है। बहुत समय के पश्चात् वह पृथ्वी में एकमात्र सम्राट् बनकर उत्पन्न होता है। (११)

ततो गच्छेत राजेन्द्र हंसतीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते ।।१२
ततो गच्छेत राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः ।
वराहतीर्थमाख्यातं विष्णुलोकगतिप्रदम् ।।१३
ततो गच्छेत राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम् ।
पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र चन्द्रलोके महीयते ।।१४
ततो गच्छेत राजेन्द्र कन्यातीर्थमनुत्तमम् ।
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड् भवेत् ।।१५
देवतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वदेवनमस्कृतम् ।
तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र दैवतैः सह मोदते ।।१६
ततो गच्छेत राजेन्द्र शिखितीर्थमनुत्तमम् ।
यत् तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।।१७

हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त हंसतीर्थ में जाना चाहिए। हे राजन् ! वहाँ स्नान करने वाला ब्रह्मलोक में आदर प्राप्त करता है। (१२)

हे राजेन्द्र ! वहाँ से विष्णुलोक की गति प्रदान करने वाले वराहतीर्थ नामक तीर्थ में जाना चाहिये जहाँ जनार्दन ने सिद्धि प्राप्त की थी। (१३)

हे राजेन्द्र ! श्रेष्ठ चन्द्रतीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। विशेषरूप से वहाँ पूर्णमासी तिथि को स्नान करना चाहिए। वहाँ स्नान मात्र से मनुष्य चन्द्रलोक में आदर पाता है। (१४)

हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त शुक्लपक्ष की तृतीया श्रेष्ठ कन्यातीर्थ की यात्रा करनी चाहिये एवं वहाँ स्नान करना चाहिए। वहाँ स्नान करने से ही मनुष्य पृथ्वी में एकमात्र राजा हो जाता है। (१५)

तदुपरान्त सभी देवों से नमस्कृत देवतीर्थ में जाना चाहिए। हे राजेन्द्र ! वहाँ स्नान करने से (मनुष्य) देवों के साथ आनन्द करता है। (१६)

हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त श्रेष्ठ शिखितीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ जो दान दिया जाता है वह सब करोड़-गुना हो जाता है। (१७)

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं पैतामहं शुभम् ।
यत्तत्र क्रियते श्राद्धं सर्वं तदक्षयं भवेत् ।।१८
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते ।।१९
मनोहरं तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दैवतैः सह मोदते ।।२०
ततो गच्छेत राजेन्द्र मानसं तीर्थमुत्तमम् ।
स्नात्वा तत्र नरो राजन् रुद्रलोके महीयते ।।२१
स्वर्गविन्दुं ततो गच्छेत्तीर्थं देवनमस्कृतम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दुर्गतिं नैव गच्छति ।।२२
अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
क्रीडते नाकलोकस्थो ह्यप्सरोभिः स मोदते ।।२३
ततो गच्छेत राजेन्द्र भारभूतिमनुत्तमम् ।
उपोषितोऽर्चयेदीशं रुद्रलोके महीयते ।
अस्मिंस्तीर्थे मृतो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।२४
कार्त्तिके मासि देवेशमर्चयेत् पार्वतीपतिम् ।
अश्वमेधाद् दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।२५
वृषभं यः प्रयच्छेत तत्र कुन्देन्दुसप्रभम् ।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ।।२६
एतत् तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ।।२७
जलप्रवेशं यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ।
हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं स गच्छति ।।२८
एरण्ड्या नर्मदायास्तु संगमं लोकविश्रुतम् ।
तत्र तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।।२९
उपवासपरो भूत्वा नित्यं व्रतपरायणः ।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।३०
ततो गच्छेत राजेन्द्र नर्मदोदधिसंगमम् ।

हे राजेन्द्र ! वहाँ से कल्याणकारी पैतामह तीर्थ में जाना चाहिये । वहाँ जो श्राद्ध किया जाता है वह सब अक्षय हो जाता है । (१८)

जो सावित्री तीर्थ में जाकर अपने प्राणों का परित्याग करता है वह समस्त पापों को नष्ट कर ब्रह्मलोक में आदर प्राप्त करता है । (१९)

वहीं परम सुन्दर मनोहर नामक तीर्थ है । हे राजन् ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य देवताओं के साथ आनन्द करता है । (२०)

हे राजेन्द्र ! तदनन्तर श्रेष्ठ मानस तीर्थ में जाना चाहिये । हे राजन् ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य रुद्रलोक में आदर प्राप्त करता है । (२१)

तदुपरान्त देवों द्वारा नमस्कृत स्वर्गविन्दु नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए । हे राजन् ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य की दुर्गति नहीं होती । (२२)

वहाँ से अप्सरेश नामक तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये । (वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य) स्वर्ग में निवास करते हुए अप्सराओं के साथ आनन्द करता है । (२३)

हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त श्रेष्ठ भारभूति नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए । वहाँ उपवासपूर्वक ईश की आराधना करने से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है । हे राजन् ! इस तीर्थ में मरने वाले को गाणपत्य की प्राप्ति होती है । (२४)

कार्त्तिक मास में (वहाँ) पार्वतीपति देवेश की अर्चना करनी चाहिये । विद्वान् लोग उसका फल अश्वमेध की अपेक्षा दस गुना अधिक बतलाते हैं । (२५)

जो वहाँ कुन्द एवं इन्दु के समान (श्वेत) वर्ण वाला वृषभ दान करता है वह (पुरुष) वृषयुक्त यान द्वारा रुद्रलोक को जाता है । (२६)

इस तीर्थ में आकर जो प्राण त्याग करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में जाता है । (२७)

हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो जलप्रवेश अर्थात् जल में प्राणत्याग करता है वह हंसयुक्त यान द्वारा स्वर्गलोक को जाता है । (२८)

एरण्डी एवं नर्मदा का सङ्गम लोक में प्रसिद्ध है । वहाँ समस्त पापों को नष्ट करने वाला महान् पवित्र तीर्थ है । (२९)

हे राजेन्द्र ! उपवास एवं नित्य व्रतानुष्ठान करते हुये वहाँ स्नान करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है । (३०)

हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त नर्मदा एवं सागर के सङ्गम को

जमदग्निरिति ख्यातः सिद्धो यत्र जनार्दनः ।।१३
तत्र स्नात्वा नरो राजन् नर्मदोदधिसंगमे ।
त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।३२
ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते ।।३३
तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत विमलेश्वरम् ।
सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम् ।।३४
ततो गच्छेत राजेन्द्र आलिकातीर्थमुत्तमम् ।
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः ।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।३५

एतानि तव संक्षेपात् प्राधान्यात् कथितानि तु ।
न शक्या विस्तराद् वक्तुं संख्या तीर्थेषु पाण्डव ।।३६
एषा पवित्रा विमला नदी त्रैलोक्यविश्रुता ।
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा ।।३७
मनसा संस्मरेद्यस्तु नर्मदां वै युधिष्ठिर ।
चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः ।।३८
अश्रद्दधानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः ।
पतन्ति नरके घोरे इत्याह परमेश्वरः ।।३९
नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः ।
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ।।४०

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४०।।

यात्रा करनी चाहिए जहाँ जमदग्नि नाम से विख्यात जनार्दन को सिद्धि प्राप्त हुयी थी। (३१)

हे राजन्! नर्मदा एवं सागर के उस सङ्गम में स्नान करने वाला मनुष्य अश्वमेधयज्ञ का तीन गुना फल प्राप्त करता है। (३२)

हे राजेन्द्र! वहाँ से उत्तम पिङ्गलेश्वर तीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। हे राजन्! वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य रुद्रलोक में आदर प्राप्त करता है। (३३)

वहाँ उपवास कर जो विमलेश्वर का दर्शन करता है वह सात जन्मों में किये पाप का त्याग कर शिवलोक को जाता है। (३४)

हे राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ आलिकातीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। वहाँ संयमपूर्वक नियमित आहार करने तथा एक रात्रि का उपवास करने से मनुष्य इस तीर्थ के माहात्म्य से ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। (३५)

हे पाण्डव! संक्षेप एवं प्राधान्य के अनुसार मैंने तुम्हें (तीर्थों को) बतलाया। विस्तारपूर्वक तीर्थों की संख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता। (३६)

यह पवित्र तथा विपुल नदी तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा नदी महादेव को प्रिय है। (३७)

हे युधिष्ठिर! जो मन द्वारा नर्मदा का स्मरण करता है उसे निस्सन्देह सौ से भी अधिक चान्द्रायणव्रत का फल प्राप्त होता है। (३८)

परमेश्वर का यह कथन है कि श्रद्धाहीन एवं घोर नास्तिकता अङ्गीकार करने वाले (पुरुष) घोर नरक में पड़ते हैं। (३९)

स्वयं महेश्वर देव नित्य नर्मदा का सेवन करते हैं। अतएव इस पवित्र नदी को ब्रह्महत्या दूर करने वाली जानना चाहिए। (४०)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में चालीसवाँ अध्याय समाप्त—४०.

४१

सूत उवाच ।

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिशमुत्तमम् ।
महादेवप्रियकरं महापातकनाशनम् ॥१
महादेवं दिदृक्षूणामृषीणां परमेष्ठिनाम् ।
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः ॥२
मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा ।
भृगवोऽङ्गिरसः पूर्वा ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥३
समेत्य सर्ववरदं चतुर्मूर्तिं चतुर्मुखम् ।
पृच्छन्ति प्रणिपत्यैनं विश्वकर्माणमच्युतम् ॥४

षट्कुलीया ऊचुः ।

भगवन् देवमीशानं भर्गमेकं कपर्दिनम् ।
केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देवनमस्कृतम् ॥५

ब्रह्मोवाच ।

सत्रं सहस्रमासध्वं वाङ्मनोदोषवर्जिताः ।
देशं च वः प्रवक्ष्यामि यस्मिन् देशे चरिष्यथ ॥६
उक्त्वा मनोमयं चक्रं स सृष्ट्वा तानुवाच ह ।
क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत मा चिरम् ।
यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशः पुरुषर्षभाः ॥७
ततो मुमोच तच्चक्रं ते च तत्समनुव्रजन् ।
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत ।
नैमिशं तत्स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम् ॥८
सिद्धचारणसंकीर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम् ।
स्थानं भगवतः शंभोरेतन्नैमिशमुत्तमम् ॥९
अत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ।
तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरे प्रवरान् वरान् ॥१०

४१

सूत ने कहा—त्रैलोक्य-प्रसिद्ध यह नैमिश तीर्थ महादेव का प्रिय करने वाला एवं महापातक का नाशक है। (१)

हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्मा ने महादेव के दर्शन के अभिलाषी परमेष्ठी ऋषियों को तपस्या करने के लिए इस स्थान का निर्माण किया था। (२)

हे विप्रो ! प्राचीनकाल में मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, क्रतु, भृगु एवं अङ्गिरावंशीय ऋषियों ने सभी प्रकार का वर-प्रदान करने वाले, कमल से उत्पन्न चतुर्मूर्त्ति अच्युत एवं विश्वकर्मा चतुर्मुख ब्रह्मा के पास जाकर प्रणाम करने के उपरान्त उनसे पूछा। (३, ४)

षट्कुलोत्पन्न ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! यह बतलायें कि किस उपाय द्वारा हम देवों द्वारा नमस्कृत, अद्वितीय, तेजस्वी कपर्दी ईशान देव का दर्शन करें। (५)

ब्रह्मा ने कहा—आप लोग वाणी और मन के दोषों से रहित होकर सहस्र यज्ञों का सम्पादन करें। मैं आप-लोगों को वह देश बतलाता हूँ, जहाँ अनुष्ठान करना होगा। (६)

यह कहकर (उन्होंने) मनोमय चक्र की सृष्टि की एवं उसे उन (ऋषियों) से कहा—मेरे द्वारा फेंके गये इस चक्र का अनुगमन करो। विलम्ब मत करो। हे श्रेष्ठ पुरुषो ! जहाँ इसकी नेमि गिरे वही (तपस्या करने का) शुभ स्थान होगा। (७)

तदुपरान्त उन्होंने उस चक्र को मुक्त कर दिया एवं उन ऋषियों ने उस (चक्र) का अनुगमन करना प्रारम्भ किया। शीघ्रतापूर्वक जा रहे उस (चक्र) की नेमि जहाँ गिरी सर्वत्र पूजित उसी पवित्र स्थान को नैमिश कहा जाता है। (८)

सिद्धों एवं चारणों से परिपूर्ण तथा यक्षों एवं गन्धर्वों से सेवित यह उत्तम नैमिश नामक स्थान भगवान् शम्भु का स्थान है। (९)

यहाँ प्राचीन काल में देवों, गन्धर्वों, यक्षों, सर्पों एवं राक्षसों ने तप कर श्रेष्ठवर प्राप्त किया था। (१०)

इमं देशं समाश्रित्य षट्कुलीयाः समाहिताः ।
सत्रेणाराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम् ॥११
अत्र दानं तपस्तप्तं स्नानं जप्यादिकं च यत् ।
एकैकं पावयेत् पापं सप्तजन्मकृतं द्विजाः ॥१२
अत्र पूर्वं स भगवानृषीणां सत्रमासताम् ।
प्रोवाच वायुर्ब्रह्माण्डं पुराणं ब्रह्मभाषितम् ॥१३
अत्र देवो महादेवो रुद्राण्या किल विश्वकृत् ।
रमतेऽद्यापि भगवान् प्रमथैः परिवारितः ॥१४
अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः ।
ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते ॥१५
अन्यच्च तीर्थप्रवरं जाप्येश्वरमितिश्रुतम् ।
जजाप रुद्रमनिशं यत्र नन्दी महागणः ॥१६
प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सह पिनाकधृक् ।
ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव च ॥१७
अभूदृषिः स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित् ।

छः कुलों के ऋषियों ने इस देश में रहते हुए एकाग्रतापूर्वक सत्र अर्थात् यज्ञानुष्ठान द्वारा देवेश की आराधना कर महेश्वर का दर्शन किया। (११)

हे द्विजो ! यहाँ एकवार का किया दान, तप, स्नान एवं जप इत्यादि कार्य सात जन्मों के किये पापों को नष्ट कर देता है। (१२)

प्राचीन काल में यहाँ भगवान् वायु ने सत्र अर्थात् यज्ञ करने वाले ऋषियों से ब्रह्मा द्वारा कहे गये ब्रह्माण्ड-पुराण को कहा था। (१३)

आज भी यहाँ प्रमथगणों से आवृत विश्व के स्रष्टा भगवान् महादेव रुद्राणी के साथ रमण करते हैं। (१४)

नियमपूर्वक यहाँ प्राणों का परित्याग करने वाले द्विजाति लोग उस ब्रह्मलोक को जाते हैं, जहाँ जाने पर पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। (१५)

जाप्येश्वर नाम से प्रसिद्ध अन्य एक श्रेष्ठ तीर्थ है, जहाँ श्रेष्ठगण नन्दी ने निरन्तर रुद्र का जप किया था। (१६)

देवी-सहित पिनाकधारी महादेव ने प्रसन्न होकर उन्हें अपनी समानता एवं मृत्यु से सुरक्षित रहने का वर प्रदान किया था। (१७)

आराधयन्महादेवं पुत्रार्थं वृषभध्वजम् ॥१८
तस्य वर्षसहस्रान्ते तप्यमानस्य विश्वकृत् ।
शर्वः सोमो गणवृतो वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥१९
स वव्रे वरमीशानं वरेण्यं गिरिजापतिम् ।
अयोनिजं मृत्युहीनं देहि पुत्रं त्वया समम् ॥२०
तथास्त्वित्याह भगवान् देव्या सह महेश्वरः ।
पश्यतस्तस्य विप्रर्षेरन्तर्द्धानं गतो हरः ॥२१
ततो यियक्षुः स्वां भूमिं शिलादो धर्मवित्तमः ।
चकर्ष लाङ्गलेनोर्वीं भित्त्वादृश्यत शोभनः ॥२२
संवर्त्तकानलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निव ।
रूपलावण्यसंपन्नस्तेजसा भासयन् दिशः ॥२३
कुमारतुल्योऽप्रतिमो मेघगम्भीरया गिरा ।
शिलादं तात तातेति प्राह नन्दी पुनः पुनः ॥२४
तं दृष्ट्वा नन्दनं जातं शिलादः परिषस्वजे ।
मुनिभ्यो दर्शयामास ये तदाश्रमवासिनः ॥२५

शिलाद नामक एक धर्मज्ञ धर्मात्मा ऋषि थे। उन्होंने पुत्र के लिये महादेव वृषभध्वज की आराधना की। (१८)

तप करते हुए एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर गणों से आवृत विश्वकर्त्ता सोमशङ्कर ने (ऋषि से) कहा "मैं वर दूगा"। (१९)

उसने वरेण्य गिरिजापति ईशान से वर माँगा (मुझे) अपने सदृश मृत्यु-रहित अयोनिज पुत्र प्रदान करें। (२०)

देवी सहित भगवान् महेश्वर ने कहा 'ऐसा ही हो'। उन ब्रह्मर्षि के देखते ही देखते हर अन्तर्हित हो गये। (२१)

तदनन्तर धर्मज्ञ शिलाद ने यज्ञ करने की इच्छा से हल द्वारा पृथ्वी का कर्षण किया। पृथ्वी का भेदन करने पर उसने सुन्दर संवर्त्तक नामक अग्नि-सदृश, रूपलावण्य-सम्पन्न, तेज द्वारा दिशाओं को प्रकाशित करने वाले हँसते हुये सुन्दर कुमार को देखा। (२२,२३)

कार्त्तिकेय-तुल्य अनुपम नन्दी ने मेघ सदृश गंम्भीर वाणी में शिलाद को वारंवार 'हे तात, हे तात', कहा। (२४)

उत्पन्न हुए उस पुत्र को देखकर शिलाद ने उसे आलिङ्गन किया एवं उसे उस आश्रम में रहने वाले मुनियों को दिखलाया। (२५)

जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तस्य चकार ह ।
उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् सुतम् ॥२६
अधीतवेदो भगवान् नन्दी मतिमनुत्तमाम् ।
चक्रे महेश्वरं द्रष्टुं जेष्ये मृत्युमिति प्रभुम् ॥२७
स गत्वा सरितं पुण्यामेकाग्रश्रद्धयान्वितः ।
जजाप रुद्रमनिशं महेशासक्तमानसः ॥२८
तस्य कोटयां तु पूर्णायां शंकरो भक्तवत्सलः ।
आगत्य साम्बः सगणो वरदोऽस्मीत्युवाच ह ॥२९
स वव्रे पुनरेवाहं जपेयं कोटिमीश्वरम् ।
तावदायुर्महादेव देहीति वरमीश्वर ॥३०
एवमस्त्विति संप्रोच्य देवोऽप्यन्तरधीयत ।
जजाप कोटिं भगवान् भूयस्तद्गतमानसः ॥३१
द्वितीयायां च कोटयां वै संपूर्णायां वृषध्वजः ।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः ॥३२
तृतीयां जप्तुमिच्छामि कोटिं भूयोऽपि शंकर ।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देवोऽप्यन्तरधीयत ॥३३
कोटित्रयेऽथ संपूर्णे देवः प्रीतमना भृशम् ।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः ॥३४
जपेयं कोटिमन्यां वै भूयोऽपि तव तेजसा ।
इत्युक्ते भगवानाह न जप्तव्यं त्वया पुनः ॥३५
अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वगतः सदा ।
महागणपतिर्देव्याः पुत्रो भव महेश्वरः ॥३६
योगीश्वरो योगनेता गणानामीश्वरेश्वरः ।
सर्वलोकाधिपः श्रीमान् सर्वज्ञो मद्बलान्वितः ॥३७
ज्ञानं तन्मामकं दिव्यं हस्तामलकवत् तव ।
आभूतसंप्लवस्थायी ततो यास्यसि मत्पदम् ॥३८
एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहूय शंकरः ।
अभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत् ॥३९

(उन्होंने) जातकर्म इत्यादि उसकी समस्त क्रियाओं को सम्पन्न किया एवं शास्त्रानुसार उपनयन कर पुत्र को वेद पढ़ाया। (२६)

वेदाध्ययनोपरान्त भगवान् नन्दी ने यह श्रेष्ठ विचार किया कि प्रभु महेश्वर का दर्शन कर मैं मृत्यु को जीतूंगा। (२७)

पवित्र नदी के तट पर जाकर एकाग्र-श्रद्धायुक्त होकर महेश में मन लगाये हुए (नन्दी) रुद्र मन्त्र का अहर्निश जप करने लगे। (२८)

उनके जप की कोटि संख्या पूर्ण होने पर समस्त गणों एवं अम्बा (पार्वती) सहित भक्तवत्सल शङ्कर ने आकर कहा "मैं वर दूंगा"। (२९)

उसने (परमेश्वर महादेव) ईश से कहा "मैं पुनः कोटि संख्या मन्त्र का जप करूंगा। हे महादेव ईश्वर! मुझे उतनी आयु का वर प्रदान करें। (३०)

'ऐसा ही हो' यह कहकर महादेव अन्तर्हित हो गये। भगवान् नन्दी ने पुनः उन (शङ्कर) में मन लगाकर कोटि संख्यक जप किया। (३१)

द्वितीय कोटि संख्या के भी पूर्ण होने पर भूत गणों द्वारा आवृत वृषध्वज ने आकर कहा "मैं वर दूंगा।" (३२)

"हे शङ्कर! मैं पुनः तीसरी बार कोटि संख्यक मन्त्र का जप करना चाहता हूँ"। "ऐसा हो हो" यह कहकर विश्वात्मा शङ्कर देव अन्तर्हित हो गये। (३३)

तदन्तर तीसरी कोटि संख्या के पूर्ण होने पर भूत-गणों से आवृत अत्यन्त प्रसन्न महादेव ने आकर कहा "मैं वर दूंगा।" (३४)

"मैं आपके तेज से पुनः अन्य कोटि संख्यक जप करूँ"। ऐसा कहने पर भगवान् ने कहा "तुम्हें पुनः जप नहीं करना है। (३५)

"तुम जरा-रहित एवं अमर होकर सदा मेरे पार्श्व में स्थित रहोगे तथा देवी के पुत्रस्वरूप महागणपति महेश्वर बनोगे। (३६)

"तुम योगीश्वर, योगनेता, गणों के ईश्वरेश्वर, सर्व-लोकाधिपति, श्रीमान्, सर्वज्ञ एवं मेरे बल से युक्त होओगे। (३७)

"तुम्हें मुझ सम्बन्धी दिव्य ज्ञान हस्तामलकवत् रहेगा तुम महाप्रलय पर्यन्त रहोगे और तदुपरान्त तुम्हें मेरे पद की प्राप्ति होगी"। (३८)

इतना कहने के उपरान्त गणों को बुलाकर महेश्वर ने उन नन्दीश्वर को (गणों के अधिपति पद पर) अभिषेक युक्त कर दिया। (३९)

उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक् ।
मरुतां च शुभां कन्यां सुयशेति च विश्रुताम् ।।४०

एतज्जप्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः ।
यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते ।।४१

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

४२

सूत उवाच ।
अन्यच्च तीर्थप्रवरं जप्येश्वरसमीपतः ।
नाम्ना पञ्चनदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।।१
त्रिरात्रोपोषितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते ।।२
अन्यच्च तीर्थप्रवरं शंकरस्यामितौजसः ।
महाभैरवमित्युक्तं महापातकनाशनम् ।।३
तीर्थानां च परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी ।
सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेव गिरीन्द्रजा ।।४
तीर्थं पञ्चतपं नाम शंभोरमिततेजसः ।
यत्र देवादिदेवेन चक्रार्थं पूजितो भवः ।।५
पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्तफलप्रदम् ।
मृतस्तत्रापि नियमाद् ब्रह्मलोके महीयते ।।६
कायावरोहणं नाम महादेवालयं शुभम् ।
यत्र माहेश्वरा धर्मा मुनिभिः संप्रवर्त्तिताः ।।७
श्राद्धं दानं तपो होम उपवासस्तथाऽक्षयः ।
परित्यजति यः प्राणान् रुद्रलोकं स गच्छति ।।८
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमिति श्रुतम् ।

पिनाकधारी महादेव ने स्वयमेव मरुद्गणों के कल्याणमयी सुयशा नामक पुत्री के साथ उनका विवाह करा दिया । (४०)

जप्येश्वर नामक यह तीर्थ देवाधिदेव त्रिशूलधारी शङ्कर का स्थान है। यहाँ किसी भी स्थान पर मरने वाला रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है । (४१)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ४१.

४२

सूत ने कहा—जप्येश्वर के समीप पञ्चनद नामक पवित्र एवं समस्त पापों को नष्ट करने वाला एक अन्य श्रेष्ठ तीर्थ है । (१)

वहाँ तीन रात्रि पर्यन्त उपवास कर महेश्वर की पूजा करने वाला समस्त पापों से विशुद्ध होकर रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है । (२)

अमित तेजस्वी शङ्कर का महाभैरव नामक महापातकों को नष्ट करने वाला एक अन्य श्रेष्ठ तीर्थ है। (३)

वितस्ता नामक श्रेष्ठ नदी तीर्थों में उत्तम तीर्थ है । समस्त पापों को हरने वाली (यह) पवित्र नदी स्वयं गिरीन्द्रजा (पार्वती) ही हैं । (४)

अमित तेजस्वी शम्भु का पञ्चतप नामक तीर्थ है जहाँ देवादिदेव (विष्णु) ने चक्र के लिये शङ्कर की पूजा की थी । (५)

वहाँ किया हुआ पिण्डदानादिक कर्म मरणोपरान्त अनन्तफल प्रदान करता है । वहाँ नियमपूर्वक प्राण त्याग करने वाला ब्रह्मलोक में आदर प्राप्त करता है । (६)

कायावरोहण नामक शुभ महादेव का स्थान (स्वरूप एक तीर्थ) है, जहाँ मुनियों ने माहेश्वर-धर्म प्रवर्त्तित किया था । (७)

(यहाँ किया हुआ) श्राद्ध, दान, तप, होम एवं उपवास अक्षय फलदायी होता है । जो (यहाँ) प्राणों का त्याग करता है वह रुद्रलोक को जाता है । (८)

कन्यातीर्थ नामक एक अन्य उत्तम एवं श्रेष्ठ तीर्थ है ।

तत्र गत्वा त्यजेत् प्राणाँल्लोकान् प्राप्नोति शाश्वतान् ।।९
जामदग्न्यस्य तु शुभं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
तत्र स्नात्वा तीर्थवरे गोसहस्रफलं लभेत् ।।१०
महाकालमिति ख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।११
गुह्याद् गुह्यतमं तीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम् ।
तत्र सन्निहितः श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वरः ।।१२
हिमवच्छिखरे रम्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने ।
देव्या सह महादेवो नित्यं शिष्यैश्च संवृतः ।।१३
तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृषध्वजम् ।
सर्वपापैर्विमुच्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात् ।।१४
अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम् ।
भीमेश्वरमिति ख्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम् ।।१५
तथान्यच्चण्डवेगायाः संभेदः पापनाशनः ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते ब्रह्महत्यया ।।१६
सर्वेषामपि चैतेषां तीर्थानां परमा पुरी ।
नाम्ना वाराणसी दिव्या कोटिकोट्ययुताधिका ।।१७
तस्याः पुरस्तान्माहात्म्यं भाषितं वो मया त्विह ।
नान्यत्र लभ्यते मुक्तिर्योगिनाप्येकजन्मना ।।१८
एते प्राधान्यतः प्रोक्ता देशाः पापहरा नृणाम् ।
गत्वा संक्षालयेत् पापं जन्मान्तरशतैः कृतम् ।।१९
यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि ।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च ।।२०
प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथा पापचरो गृही ।
प्रकुर्यात् तीर्थसंसेवां ये चान्ये तादृशा जनाः ।।२१
सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत् तीर्थानि यत्नतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात् ।।२२

वहाँ जाकर जो प्राणों का परित्याग करता है उसे शाश्वत लोकों की प्राप्ति होती है। (९)

जमदग्नि के पुत्र अक्लिष्टकर्मा परशुराम का भी एक शुभ तीर्थ है। उस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करने से सहस्र गो के दान करने का फल प्राप्त होता है। (१०)

त्रैलोक्य में प्रसिद्ध महाकाल नामक एक तीर्थ है। वहाँ जाकर प्राणत्याग करने से गाणपत्य पद की प्राप्ति होती है। (११)

नकुलीश्वर नामक उत्तम तीर्थ गुह्य तीर्थों में अत्यन्त गुह्य है। वहाँ श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वर स्थित हैं। (१२)

हिमालय के रमणीक शिखर पर स्थित सुन्दर गङ्गाद्वार तीर्थ में शिष्यों से आवृत महादेव नित्य देवी (पार्वती) के साथ रहते हैं। (१३)

वहाँ स्नानोपरान्त महादेव वृषध्वज की पूजा करने से (मनुष्य) समस्त पापों से मुक्त हो जाता है एवं मरने पर उसे (ईश्वरीय) ज्ञान की प्राप्ति होती है। (१४)

देवाधिदेव का भीमेश्वर नाम से प्रसिद्ध एक अन्य भी अत्यन्त पवित्र शुभ स्थान है। वहाँ जाने से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। (१५)

चण्डवेगा नदी का उद्गम स्थान भी पापों का नाश करने वाला है। वहाँ स्नान करने तथा जलपान करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। (१६)

इन सभी तीर्थों में श्रेष्ठ एवं दिव्य वाराणसी नामक पुरी सहस्रों कोटि अधिक (फलप्रद) है। (१७)

पूर्व में मैंने आपलोगों से उसके माहात्म्य का वर्णन किया है। योगियों को भी अन्यत्र एक जन्म में मुक्ति नहीं प्राप्त होती। (१८)

मनुष्यों के पापों को नष्ट करने वाले ये सभी देश प्रधान रूप से कहे गये हैं। उनमें जाकर सैकड़ों जन्मों में किये गये पापों का प्रक्षालन करना चाहिये। (१९)

जो अपने धर्मों का त्याग कर तीर्थों का सेवन करता है उसके लिये तीर्थ इस लोक एवं परलोक में फलप्रद नहीं होते। (२०)

प्रायश्चित्ती, विधुर अर्थात् पत्नी से वियुक्त पुरुष, पापचारी मनुष्य, गृहस्थ एवं अन्य उसी प्रकार के पुरुषों को तीर्थों का सेवन करना चाहिये। (२१)

प्रयत्नपूर्वक अग्नि अथवा पत्नी के साथ तीर्थ में जाना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर यथोक्त गति प्राप्त करता है। (२२)

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य कुर्याद् वा तीर्थसेवनम् ।
विधाय वृत्तिं पुत्राणां भार्यां तेषु निधाय च ॥२३

प्रायश्चित्तप्रसङ्गेन तीर्थमाहात्म्यमीरितम् ।
यः पठेच्छृणुयाद् वाऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥२४

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

४३

सूत उवाच ।

एतदाकर्ण्य विज्ञानं नारायणमुखेरितम् ।
कूर्मरूपधरं देवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम् ॥१

मुनय ऊचुः ।

कथिता भवता धर्मा मोक्षज्ञानं सविस्तरम् ।
लोकानां सर्गविस्तारं वंशमन्वन्तराणि च ॥२

प्रतिसर्गमिदानीं नो वक्तुमर्हसि माधव ।
भूतानां भूतभव्येश यथा पूर्वं त्वयोदितम् ॥३

सूत उवाच ।

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान् कूर्मरूपधृक् ।
व्याजहार महायोगी भूतानां प्रतिसंचरम् ॥४

कूर्म उवाच ।

नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतात्यन्तिकौ तथा ।
चतुर्धाऽयं पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसंचरः ॥५

योऽयं संदृश्यते नित्यं लोके भूतक्षयस्त्विह ।
नित्यः संकीर्त्यते नाम्ना मुनिभिः प्रतिसंचरः ॥६

ब्राह्मो नैमित्तिको नाम कल्पान्ते यो भविष्यति ।
त्रैलोक्यस्यास्य कथितः प्रतिसर्गो मनीषिभिः ॥७

महदाद्यं विशेषान्तं यदा संयाति संक्षयम् ।
प्राकृतः प्रतिसर्गोऽयं प्रोच्यते कालचिन्तकैः ॥८

अथवा तीनों ऋणों से मुक्त होने के उपरान्त पुत्रों की जीविका का विधान कर एवं उन्हें अपनी पत्नी सौंप कर तीर्थ-सेवन करना चाहिये । (२३)

प्रायश्चित्त के प्रसङ्गवश तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन किया गया । जो इसे पढ़ेगा या सुनेगा वह समस्त पापों से मुक्त हो जायेगा । (२४)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में बयालीसवाँ अध्याय समाप्त—४२.

४३

सूत ने कहा—नारायण के मुख से कहे गये इस विज्ञान को सुनने के उपरान्त मुनियों ने कूर्मरूपधारी प्रभु देव से पूछा । (१)

मुनियों ने कहा—आपने विस्तारपूर्वक, धर्म, मोक्षज्ञान, लोकों की सृष्टि के विस्तार, वंश एवं मन्वन्तरों का वर्णन किया । (२)

हे माधव ! हे भूतभव्येश ! आपने पूर्व में जैसा कहा तदनुसार अब आप भूतों के प्रलय का वर्णन करें । (३)

सूत ने कहा—तब उनके वचन को सुनकर कूर्मरूपधारी महायोगी भगवान् ने भूतों के प्रतिसञ्चर अर्थात् प्रलय का वर्णन किया । (४)

कूर्म ने कहा—इस पुराण में नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत एवं आत्यन्तिक भेद से चार प्रकार के प्रतिसञ्चर अर्थात् प्रलय का वर्णन किया गया है । (५)

लोक में नित्य जो भूतों का क्षय दिखायी पड़ता है उसे मुनियों ने नित्य नामक प्रतिसञ्चर कहा है । (६)

कल्पान्त में ब्रह्मा (की निद्रा) के निमित्त होने वाले तीनों लोकों के प्रतिसर्ग अर्थात् प्रलय को विद्वानों ने (नैमित्तिक प्रलय) कहा है । (७)

जब महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त समस्त तत्त्वों का क्षय होता है उसे कालचिन्तकों ने प्राकृत प्रतिसर्ग कहा है । (८)

ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि ।
प्रलयः प्रतिसर्गोऽयं कालचिन्तापरैर्द्विजैः ।।९
आत्यन्तिकश्च कथितः प्रलयोऽत्र ससाधनः ।
नैमित्तिकमिदानीं वः कथयिष्ये समासतः ।।१०
चतुर्युगसहस्रान्ते संप्राप्ते प्रतिसंचरे ।
स्वात्मसंस्थाः प्रजाः कर्तु प्रतिपेदे प्रजापतिः ।।११
ततो भवत्यनावृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी ।
भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयंकरी ।।१२
ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ।
तानि चाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ।।१३
सप्तरश्मिरथो भूत्वा समुत्तिष्ठन् दिवाकरः ।
असह्यरश्मिर्भवति पिबन्नम्भो गभस्तिभिः ।।१४
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे ।
तेनाहारेण ता दीप्ताः सूर्याः सप्त भवन्त्युत ।।१५

ज्ञान द्वारा परमात्मा में होने वाले योगियों के आत्यन्तिक प्रलय को कालचिन्तक द्विजगण आत्यन्तिक प्रतिसर्ग (प्रलय) कहते हैं। (९)

यहाँ साधन-सहित आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्ष का वर्णन किया गया है। अब मैं आपलोगों से संक्षेप में नैमित्तिक प्रलय का वर्णन करता हूँ। (१०)

एक सहस्र चतुर्युग के उपरान्त प्रलयकाल उपस्थित होने पर प्रजापति समस्त प्रजा को आत्मस्थ करने की इच्छा करते हैं। (११)

तदनन्तर सौ वर्ष तक की सभी भूतों एवं सभी प्राणियों का संहार करने वाली अत्यन्त घोर अनावृष्टि होती है। (१२)

तदुपरान्त भूमि पर जो अल्पसार अर्थात् दुर्बल प्राणी होते हैं, पहले उनका प्रलय होता है। वे सभी भूमि में लीन हो जाते हैं। (१३)

सात रश्मियों वाले रथ पर आरूढ़ होकर सूर्य उदित होते हैं। उनकी किरणें असह्य हो जाती हैं। वे किरणों द्वारा जल पीने लगते हैं। (१४)

उनकी वे सातों रश्मियाँ महासमुद्र में स्थित जल को पीती हैं। उस आहार से प्रदीप्त होकर वे रश्मि सात सूर्य हो जाती हैं। (१५)

ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्या भूत्वा चतुर्दिशम् ।
चतुर्लोकमिदं सर्वं दहन्ति शिखिनस्तथा ।।१६
व्याप्नुवन्तश्च ते विप्रास्तूर्ध्वं चाधश्च रश्मिभिः ।
दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रतापिनः ।।१७
ते सूर्या वारिणा दीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः ।
खं समावृत्य तिष्ठन्ति निर्दहन्तो वसुंधराम् ।।१८
ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुंधरा ।
साद्रिनद्यर्णवद्वीपा निस्नेहा समपद्यत ।।१९
दीप्ताभिः संतताभिश्च रश्मिभिर्वै समन्ततः ।
अधश्चोर्ध्वं च लग्नाभिस्तिर्यक् चैव समावृतम् ।।२०
सूर्याग्निना प्रमृष्टानां संसृष्टानां परस्परम् ।
एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत ।।२१
सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा सुकुण्डली ।
चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्यात्मतेजसा ।।२२

तदुपरान्त वे सातों रश्मियाँ सूर्य बनकर चारों दिशाओं में सम्पूर्ण चतुर्लोक को अग्नि के सदृश दग्ध करने लगती हैं। (१६)

हे विप्रो! वे सातों सूर्य अपनी-अपनी रश्मियों द्वारा ऊर्ध्व एवं अधोभाग को व्याप्त कर एवं प्रलयकालीन अग्नि के तेज से युक्त होकर अतिशय प्रदीप्त होते हैं। (१७)

जल से प्रदीप्त अनेक सहस्र रश्मियों वाले वे सूर्य आकाश को ढँककर पृथ्वी को जलाने लगते हैं। (१८)

तदुपरान्त उनके तेज से जलती हुई पर्वत, नदी, समुद्र एवं द्वीपों सहित पृथ्वी स्नेह रहित हो जाती है। (१९)

सतत प्रदीप्त रहने वाली वे रश्मियाँ ऊपर, नीचे एवं आड़े, तिरछे सभी ओर व्याप्त हो जाती हैं। (२०)

सूर्याग्नि द्वारा दग्ध एवं परस्पर संसृष्ट संसार के समस्त पदार्थ एक ज्वाला के रूप में एकाकार हो जाते हैं। (२१)

सम्पूर्ण लोकों को नष्ट करने वाला वह अग्नि कुण्डली (मण्डल) बनकर अपने तेज द्वारा चारों लोकों को शीघ्र दग्ध करने लगता है। (२२)

ततः प्रलीने सर्वस्मिञ् जङ्गमे स्थावरे तथा ।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठा प्रकाशते ॥२३
अम्बरीषमिवाभाति सर्वमापूरितं जगत् ।
सर्वमेव तदर्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते पुनः ॥२४
पाताले यानि सत्त्वानि महोदधिगतानि च ।
ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥२५
द्वीपांश्च पर्वतांश्चैव वर्षाण्यथ महोदधीन् ।
तान् सर्वान् भस्मसात् कृत्वा सप्तात्मा पावकः प्रभुः॥२६
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वशः ।
पिबन्नपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥२७
ततः संवर्त्तकः शैलानतिक्रम्य महांस्तथा ।
लोकान् दहति दीप्तात्मा रुद्रतेजोविजृम्भितः ॥२८
स दग्ध्वा पृथिवीं देवो रसातलमशोषयत् ।
अधस्तात् पृथिवीं दग्ध्वा दिवमूर्ध्वं दहिष्यति ॥२९

तदनन्तर सम्पूर्ण स्थावर एवं जङ्गम पदार्थों के लीन हो जाने पर वृक्ष एवं तृण से शून्य भूमि कछुये की पीठ के सदृश प्रकाशित होती है। (२३)

(किरणों से) आपूर्ण समस्त जगत् आँवा (कड़ाही) के तुल्य प्रकाशित होता है। सभी कुछ पूर्णरूप से उसी ज्वाला के द्वारा प्रज्वलित होने लगता है। (२४)

तदुपरान्त पाताल में एवं महासागर में रहने वाले जीवों का प्रलय होता है एवं वे सभी भूमि के रूप में परिवर्त्तित हो जाते हैं। (२५)

सप्त (सूर्य) के रूप में प्रदीप्त हो रहे प्रभु वह्नि समस्त द्वीपों, पर्वतों, वर्षों एवं महासागरों को भस्मसात् कर देते हैं। (२६)

समुद्रों, नदियों एवं पातालों के सम्पूर्ण जल का शोषण करता हुआ प्रदीप्त अग्नि पृथ्वी पर प्रज्वलित होता है। (२७)

तदुपरान्त पर्वतों का अतिक्रमण करने वाला महान् प्रदीप्त संवर्त्तक नामक (प्रलयाग्नि) रुद्र के तेज से पुष्ट होकर लोकों को दग्ध करता है। (२८)

पृथ्वी को दग्ध करने के उपरान्त वे (अग्नि) देव रसातल को शोषित करते हैं। पृथ्वी के नीचे के भाग को जलाने के उपरान्त वे ऊपर के द्युलोक को दग्ध करते हैं। (२९)

योजनानां शतानीह सहस्राण्ययुतानि च ।
उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य वह्नेः संवर्त्तकस्य तु ॥३०
गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च सयक्षोरगराक्षसान् ।
तदा दहत्यसौ दीप्तः कालरुद्रप्रचोदितः ॥३१
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च तथा महः ।
दहेदशेषं कालाग्निः कालो विश्वतनुः स्वयम् ॥३२
व्याप्तेष्वेतेषु लोकेषु तिर्यगूर्ध्वमथाग्निना ।
तत् तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः ।
अयोगुडनिभं सर्वं तदा चैकं प्रकाशते ॥३३
ततो गजकुलोन्नादास्तडिद्भिः समलंकृताः ।
उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्त्तका घनाः॥३४
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित् कुमुदसन्निभाः ।
धूम्रवर्णास्तथा केचित् केचित् पीताः पयोधराः ॥३५
केचिद् रासभवर्णास्तु लाक्षारसनिभास्तथा ।
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभाः परे ॥३६

उस संवर्त्तक वह्नि की शिखायें सैकड़ों, सहस्रों एवं दस सहस्र योजन ऊपर उठती हैं। (३०)

तव कालरुद्र द्वारा प्रेरित यह प्रदीप्त अग्नि गन्धर्वों, पिशाचों, यक्षों, सर्पों एवं राक्षसों को दग्ध करता है। (३१)

कालाग्नि स्वरूप विश्वात्मा काल स्वयं सम्पूर्ण भूर्लोक, भुवर्लोक एवं स्वर्लोक को भस्म करता है। (३२)

इन ऊपर, नीचे एवं आड़े, तिरछे स्थित लोकों के अग्नि से व्याप्त हो जाने पर यह सम्पूर्ण जगत् उस तेज से होकर लौहपिण्ड के सदृश प्रकाशित होने लगता है। (३३)

तदुपरान्त हाथियों के सदृश नाद करने वाले विद्युत् से अलंकृत संवर्त्तक नामक (प्रलय कालीन) भयङ्कर मेघ आकाश में प्रकट होते हैं। (३४)

उन मेघों में कुछ नीलकमल तुल्य श्याम वर्ण के, कुछ कुमुद के सदृश श्वेत, कुछ धूम्रवर्ण के, कुछ पीतवर्ण के, कुछ रासभ (गर्दभ = धूसरित) वर्ण के, कुछ लाक्षारस के सदृश, कुछ शंख एवं कुन्द के रङ्ग के, कुछ जातीपुष्प के,

मनःशिलाभास्त्वन्ये च कपोतसदृशाः परे ।
इन्द्रगोपनिभाः केचिद्धरितालनिभास्तथा ।
इन्द्रचापनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि ।।३७
केचित् पर्वतसंकाशाः केचिद् गजकुलोपमाः ।
कूटाङ्गारनिभाश्चान्ये केचिन्मीनकुलोद्वहाः ।
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः ।।३८
तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभःस्थलम् ।
ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्मजाः ।
सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयन्त्युत ।।३९
ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्तीह महौघवत् ।
सुघोरमशिवं सर्वं नाशयन्ति च पावकम् ।।४०
प्रवृष्टे च तदात्यर्थमम्भसा पूर्यते जगत् ।
अद्भिस्तेजोभिभूतत्वात् तदाऽग्निः प्रविशत्यपः ।।४१
नष्टे चाग्नौ वर्षशतैः पयोदाः क्षयसंभवाः ।
प्लावयन्तोऽथ भुवनं महाजलपरिस्रवैः ।।४२
धाराभिः पूरयन्तीदं चोद्यमानाः स्वयंभुवा ।
अत्यन्तसलिलौघैश्च वेला इव महोदधिः ।।४३
साद्रिद्वीपा तथा पृथ्वी जलैः संच्छाद्यते शनैः ।
आदित्यरश्मिभिः पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति ।
पुनः पतति तद् भूमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः ।।४४
ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रान्तास्तु कृत्स्नशः ।
पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जति ।।४५
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
योगनिन्द्रां समास्थाय शेते देवः प्रजापतिः ।।४६
चतुर्युगसहस्रान्तं कल्पमाहुर्महर्षयः ।
वाराहो वर्त्तते कल्पो यस्य विस्तार ईरितः ।।४७
असंख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ।
कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः ।।४८

कुछ अञ्जन के सदृश, कुछ मनःशिला के सदृश, कुछ कपोत के समान रङ्ग वाले, कुछ इन्द्रगोप (वीरवहूटी) के तुल्य, कुछ हरिताल के सदृश एवं कुछ इन्द्रधनुष के समान वर्ण वाले मेघ आकाश में प्रकट होते हैं। (३५-३७)

कुछ मेघ पर्वत के तुल्य, कुछ हाथियों के आकार के, कुछ कूटाङ्गार के तुल्य एवं कुछ मछली के आकार के होते हैं। वे मेघ अनेक रूप धारण करने वाले, भयङ्कर एवं घोर गर्जन करने वाले होते हैं। (३८)

उस समय सभी मेघ आकाश को पूर्ण कर देते हैं। तदनन्तर सूर्य से उत्पन्न गर्जन करने वाले वे सात प्रकार के घोर जलधर एकत्रित होकर उस अग्नि को शान्त करते हैं। (३९)

तदुपरान्त वे मेघ महान् बाढ़ के सदृश जल की वर्षा करते हैं। वे (मेघ) अत्यन्त भयङ्कर एवं अकल्याणकारी सम्पूर्ण अग्नि को नष्ट कर देते हैं। (४०)

अतिशय वृष्टि होने पर जगत् जल से पूर्ण हो जाता है। जल से तेज में अभिभूत उस समय वह अग्नि जल में प्रविष्ट हो जाता है। (४१)

अग्नि के नष्ट हो जाने पर वे प्रलयकालीन मेघ महान् जलस्राव करने वाली धाराओं द्वारा सैकड़ों वर्षो में जगत् को आप्लावित कर देते हैं। (४२)

स्वयम्भू से प्रेरित (वे मेघ) जलधाराओं एवं जल के अतिशय बाढ़ से उस (जगत्) को इस प्रकार पूर्ण कर देते हैं जैसे सागर (अपने) तट को जलपूर्ण कर देता है। (४३)

तदुपरान्त धीरे-धीरे पर्वतों एवं द्वीपों से युक्त पृथ्वी जल से आच्छादित हो जाती है। सूर्य की रश्मियों द्वारा आकृष्ट जल मेघों में रहता है। (वह जल यथा समय) पुनः पृथ्वी पर गिरता है। उसके द्वारा समुद्रों की पूर्ति होती है। (४४)

तदुपरान्त सर्वत्र समुद्र अपने तट का अतिक्रमण कर जाते हैं। पर्वत विलीन हो जाते हैं एवं पृथ्वी जल में निमग्न हो जाती है। (४५)

चर और अचर के नष्ट हो जाने पर उस घोर एकार्णव में प्रजापति देव योग-निद्रा का अवलम्बन कर शयन करते हैं। (४६)

मनीषियों ने एक सहस्र चतुर्युगी को कल्प कहा है। (मैंने) जिसका विस्तार बतलाया है वह वाराह कल्प (इस समय) वर्त्तमान है। (४७)

ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवात्मक कल्प असंख्य है। कालचिन्तक मुनियों ने पुराणों में (उन कल्पों का) वर्णन किया है। (४८)

सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ।
तामसेषु हरस्योक्तं राजसेषु प्रजापतेः ॥४९
योऽयं प्रवर्त्तते कल्पो वाराहः सात्त्विको मतः ।
अन्ये च सात्त्विकाः कल्पा मम तेषु परिग्रहः ॥५०
ध्यानं तपस्तथा ज्ञानं लब्ध्वा तेष्वेव योगिनः ।
आराध्य गिरिशं मां च यान्ति तत् परमं पदम् ॥५१
सोऽहं सत्त्वं समास्थाय मायी मायामयीं स्वयम् ।
एकार्णवे जगत्यस्मिन् योगनिद्रां व्रजामि तु ॥५२
मां पश्यन्ति महात्मानः सुप्तं कालं महर्षयः ।
जनलोके वर्त्तमानास्तपसा योगचक्षुषा ॥५३
अहं पुराणपुरुषो भूर्भुवः प्रभवो विभुः ।
सहस्रचरणः श्रीमान् सहस्रांशुः सहस्रदृक् ॥५४
मन्त्रोऽग्निर्ब्राह्मणा गावः कुशाश्च समिधो ह्यहम् ।
प्रोक्षणी च श्रुवश्चैव सोमो घृतमथास्म्यहम् ॥५५
संवर्त्तको महानात्मा पवित्रं परमं यशः ।
वेदो वेद्यं प्रभुर्गोप्ता गोपतिर्ब्रह्मणो मुखम् ॥५६
अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतां वरः ।
हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्त्तिः सनातनः ॥५७
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्बीजमथामृतम् ।
माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते ॥५८
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता
नारायणः पुरुषो योगमूर्त्तिः ।
मां पश्यन्ति यतयो योगनिष्ठा
ज्ञात्वात्मानममृतत्वं व्रजन्ति ॥५९

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

सात्त्विक कल्पों में हरि का अधिक माहात्म्य होता है। तामस (कल्पों) में हर का एवं राजस में प्रजापति (ब्रह्मा) के माहात्म्य की अधिकता कही गयी है। (४९)

इस वर्तमान वाराह कल्प को सात्त्विक माना जाता है। अन्य भी सात्त्विक कल्प हैं। उनमें मेरा माहात्म्य व्याप्त रहता है। (५०)

उन (कल्पों) में योगी लोग ध्यान, तप एवं ज्ञान की प्राप्ति कर तथा उन गिरिश (शङ्कर) एवं मेरी आराधना कर परम पद प्राप्त करते हैं। (५१)

(सम्पूर्ण) जगत् के एकार्णव हो जाने पर मायायुक्त मैं स्वयं मायामय सत्त्व का आवलम्वन कर योगनिद्रा में स्थित हो जाता हूँ। (५२)

उस समय जनलोक में वर्त्तमान तपस्वी महर्षिगण योगनेत्र द्वारा निद्रालीन मेरा दर्शन करते हैं। (५३)

मैं पुराणपुरुष, भूर्भुवः का प्रभव एवं विभु हूँ। मैं सहस्रचरण, श्रीमान् सहस्रांशु एवं सहस्रनेत्र हूँ। (५४)

मैं ही मंत्र अग्नि ब्राह्मण, गाय, कुश एवं समिधा हूँ। मैं स्वयं प्रोक्षणी, स्रुवा, सोम एवं घृत स्वरूप हूँ। (५५)

मैं ही संवर्त्तक, महान्, आत्मा, पवित्र एवं परम यश हूँ। मैं ही वेद, ज्ञेय, प्रभु, रक्षक, गोपति एवं ब्रह्मा का मुख हूँ। (५६)

मैं अनन्त, तारक, योगी, गति एवं गतिमानों में श्रेष्ठ हूँ। (मैं) हंस, प्राण, कपिल, विश्वमूर्त्ति, सनातन, क्षेत्रज्ञ, प्रकृति, काल, जगद्बीज एवं अमृत स्वरूप हूँ। (मैं) माता पिता एवं महादेव हूँ। मेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। (५७, ५८)

(मैं) आदित्य के वर्ण वाला भुवन का रक्षक, नारायण एवं योगमूर्त्ति पुरुष हूँ। योगनिष्ठ यतिलोग मेरा दर्शन करते हैं तथा आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त अमृतत्व अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। (५९)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरिविभाग में तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

४४

कूर्म उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिसर्गमनुत्तमम् ।
प्राकृतं हि समासेन शृणुध्वं गदतो मम ॥१
गते परार्द्धद्वितये कालो लोकप्रकालनः ।
कालाग्निर्भस्मसात् कर्त्तुं करोति निखिलं मतिम् ॥२
स्वात्मन्यात्मानमावेश्य भूत्वा देवो महेश्वरः ।
दहेदशेषं ब्रह्माण्डं सदेवासुरमानुषम् ॥३
तमाविश्य महादेवो भगवान्नीललोहितः ।
करोति लोकसंहारं भीषणं रूपमाश्रितः ॥४
प्रविश्य मण्डलं सौरं कृत्वाऽसौ बहुधा पुनः ।
निर्दहत्यखिलं लोकं सप्तसप्तिस्वरूपधृक् ॥५
स दग्ध्वा सकलं सत्त्वमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत् ।
देवतानां शरीरेषु क्षिपत्यखिलदाहकम् ॥६
दग्धेष्वशेषदेवेषु देवी गिरिवरात्मजा ।
एका सा साक्षिणी शंभोस्तिष्ठते वैदिकी श्रुतिः ॥७
शिरःकपालैर्देवानां कृतस्त्रग्वरभूषणः ।
आदित्यचन्द्रादिगणैः पूरयन् व्योममण्डलम् ॥८
सहस्रनयनो देवः सहस्राकृतिरीश्वरः ।
सहस्रहस्तचरणः सहस्रार्चिर्महाभुजः ॥९
दंष्ट्राकरालवदनः प्रदीप्तानललोचनः ।
त्रिशूली कृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थितः ॥१०
पीत्वा तत्परमानन्दं प्रभूतममृतं स्वयम् ।
करोति ताण्डवं देवीमालोक्य परमेश्वरः ॥११
पीत्वा नृत्तामृतं देवी भर्त्तुः परममङ्गला ।
योगमास्थाय देवस्य देहमायाति शूलिनः ॥१२

४४

कूर्म ने कहा—इसके उपरान्त मैं संक्षेप में श्रेष्ठ प्राकृत प्रतिसर्ग (प्रलय) का वर्णन करूँगा। मेरे द्वारा कहे जाने वाले उसका वर्णन सुनो। (१)

द्वितीय परार्द्ध अर्थात् ब्रह्मा की परमायु के पूर्वार्द्ध एवं परार्द्ध रूप दिव्य सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर समस्त लोकों का लय करने वाला कालस्वरूप कालाग्नि सम्पूर्ण जगत् को भस्मसात् करने को प्रवृत्त होता है। (२)

महेश्वर देव अपनी आत्मा में आत्मा अर्थात् जीवात्माओं को आविष्ट कर देव, असुर एवं मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को दग्ध करते हैं। (३)

भीषण रूपधारी नीललोहित भगवान् महादेव उस (अग्नि) में प्रविष्ट होकर लोक का संहार करते हैं। (४)

सौर-मण्डल में प्रविष्ट होकर एवं पुनः उसे अनेक रूप का बनाकर सप्तसप्ति अर्थात् सूर्य रूपधारी वे (महेश्वर) समस्त लोक को दग्ध करते हैं। (५)

सम्पूर्ण सत्त्व पदार्थों को दग्ध करने के उपरान्त वे (महेश्वर) देवताओं के शरीर पर सभी को जलाने वाले ब्रह्मशिर नामक महान् अस्त्र का प्रहार करते हैं। (६)

वेद के कथनानुसार सभी देवों के दग्ध हो जाने पर गिरिवर (हिमालय) की पुत्री (पार्वती) देवी एकमात्र साक्षी स्वरूप शम्भु के समीप रहती हैं। (७)

देवों के मस्तक द्वारा निर्मित माला स्वरूप भूषण धारण करने वाले परमेश्वर महेश्वर देव सूर्य एवं चन्द्रादि के समूहों द्वारा आकाश मण्डल को पूर्ण करते हुए सहस्र-नेत्र, सहस्राकृति, सहस्रहस्त चरण, सहस्रार्चि, महाबाहु भयंकर दंष्ट्रा युक्तमुख, प्रदीप्ताग्नि तुल्य नेत्र, त्रिशूल एवं चर्माम्बरधारी रूप में ईश्वरीय योग का अवलम्बन करने एवं स्वयं परमानन्द स्वरूप प्रचुर अमृत का पान करने के उपरान्त देवी (पार्वती) की ओर दृष्टिपात कर ताण्डव नृत्य करते हैं। (८-११)

पति के नृत्यामृत का पान कर परम मङ्गल स्वरूपा (पार्वती) देवी योगावलम्बन कर त्रिशूली महादेव के शरीर में प्रविष्ट हो जाती हैं। (१२)

संत्यक्त्वा ताण्डवरसं स्वेच्छयैव पिनाकधृक् ।
ज्योतिःस्वभावं भगवान् दग्ध्वा ब्रह्माण्डमण्डलम् ।।१३
संस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मविष्णुपिनाकिषु ।
गुणैरशेषैः पृथिवीविलयं याति वारिषु ।।१४
स वारितत्त्वं सगुणं ग्रसते हव्यवाहनः ।
तेजस्तु गुणसंयुक्तं वायौ संयाति संक्षयम् ।।१५
आकाशे सगुणो वायुः प्रलयं याति विश्वभृत् ।
भूतादौ च तथाकाशं लीयते गुणसंयुतम् ।।१६
इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे यान्ति संक्षयम् ।
वैकारिके देवगणाः प्रलयं यान्ति सत्तमाः ।।१७
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चेति सत्तमाः ।
त्रिविधोऽयमहंकारो महति प्रलयं व्रजेत् ।।१८
महान्तमेभिः सहितं ब्रह्माणमतितेजसम् ।
अव्यक्तं जगतो योनिः संहरेदेकमव्ययम् ।।१९

ब्रह्माण्ड मण्डल के दाहोपरान्त ताण्डवरस को त्याग कर पिनाकधारी भगवान् अपनी इच्छा से ही ज्योतिः स्वरूप स्वभाव में स्थित होते हैं । (१३)

ब्रह्मा, विष्णु एवं पिनाकी शिव के इस प्रकार स्थित हो जाने पर सम्पूर्ण गुणों सहित पृथ्वी जल में विलीन हो जाती है । (१४)

गुणयुक्त जलतत्त्व का वह अग्नि ग्रहण कर लेता है एवं अपने गुण सहित अग्नि वायु में लीन हो जाता है । (१५)

विश्व का भरण पोषण करने वाला वायु अपने गुण सहित आकाश में लीन हो जाता है एवं आकाश अपने गुण सहित भूतादि अर्थात् तामस अहङ्कार में लीन हो जाता है । (१६)

हे सत्तमो ! सभी इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहङ्कार में लीन हो जाती हैं (इन्द्रियाधिष्ठाता) देवगण वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कार में लीन हो जाते हैं । (१७)

हे सत्तमो ! वैकारिक, तैजस एवं भूतादि नामक तीनों प्रकार का यह अहङ्कार महत्त्व में लीन हो जाता है । (१८)

जगत् के मूल कारण स्वरूप अद्वितीय अव्यय अव्यक्त अर्थात् प्रकृति इन सभी से युक्त अतिशय तेजस्वी ब्रह्म-स्वरूप महत्तत्व का संहार करती है । (१९)

एवं संहृत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वरः ।
वियोजयति चान्योन्यं प्रधानं पुरुषं परम् ।।२०
प्रधानपुंसोरजयोरेष संहार ईरितः ।
महेश्वरेच्छाजनितो न स्वयं विद्यते लयः ।।२१
गुणसाम्यं तदव्यक्तं प्रकृतिः परिगीयते ।
प्रधानं जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम् ।।२२
कूटस्थश्चिन्मयो ह्यात्मा केवलः पञ्चविंशकः ।
गीयते मुनिभिः साक्षी महानेकः पितामहः ।।२३
एवं संहारकरणी शक्तिर्माहेश्वरी ध्रुवा ।
प्रधानाद्यं विशेषान्तं दहेद् रुद्र इति श्रुतिः ।।२४
योगिनामथ सर्वेषां ज्ञानविन्यस्तचेतसाम् ।
आत्यन्तिकं चैव लयं विदधातीह शंकरः ।।२५
इत्येष भगवान् रुद्रः संहारं कुरुते वशी ।
स्थापिका मोहनी शक्तिर्नारायण इति श्रुतिः ।।२६

इस प्रकार (पञ्च) भूतों एवं तत्त्वों का संहार कर महेश्वर प्रधान अर्थात् प्रकृति एवं परम पुरुष को परस्पर वियुक्त कर देते हैं । (२०)

यही अनादि प्रकृति एवं पुरुष का संहार कहा जाता है । यह लय महेश्वर की इच्छा से होने वाला है एवं स्वयं नहीं हो सकता । (२१)

(सत्त्वादि) गुणों की साम्यावस्था स्वरूप अव्यक्त को प्रकृति कहा जाता है । जगत् का मूल कारण स्वरूप मायातत्त्वात्मक प्रधान अचेतन है । (२२)

कूटस्थ, अद्वितीय एवं पच्चीसवाँ तत्त्व स्वरूप आत्मा चेतन होता है । मुनिगण इसे साक्षी, महान् एवं पितामह कहते हैं । (२३)

इस प्रकार यह संहार शक्ति भी महेश्वर की ही शाश्वत शक्ति है । श्रुति का कहना है कि रुद्र प्रधान अर्थात् प्रकृति से विशेष अर्थात् स्थूलभूत पर्यन्त तत्त्वों को दग्ध करते हैं । (२४)

शंकर ही समस्त ज्ञान-परायण योगियों का आत्यन्तिक प्रलय करते हैं । (२५)

इस प्रकार जितेन्द्रिय भगवान् रुद्र संहार करते हैं ।

हिरण्यगर्भो भगवान् जगत् सदसदात्मकम् ।
सृजेदशेषं प्रकृतेस्तन्मयः पञ्चविंशकः ॥२७
सर्वज्ञाः सर्वगाः शान्ताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ।
शक्तयो ब्रह्मविष्ण्वीशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥२८
सर्वेश्वराः सर्ववन्द्याः शाश्वतानन्तभोगिनः ।
एकमेवाक्षरं तत्त्वं पुंप्रधानेश्वरात्मकम् ॥२९
अन्यांश्च शक्तयो दिव्याः सन्ति तत्र सहस्रशः ।
इज्यन्ते विविधैर्यज्ञैः शक्रादित्यादयोऽमराः ॥३०
एकैकस्य सहस्राणि देहानां वै शतानि च ।
कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणाः ॥३१
तां तां शक्तिं समाधाय स्वयं देवो महेश्वरः ।
करोति देहान् विविधान् ग्रसते चैव लीलया ॥३२
इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदवादिभिः ।
सर्वकामप्रदो रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥३३
सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
प्राधान्येन स्मृता देवाः शक्तयः परमात्मनः ॥३४
आद्यः परस्ताद् भगवान् परमात्मा सनातनः ।
गीयते सर्वशक्त्यात्मा शूलपाणिर्महेश्वरः ॥३५
एनमेके वदन्त्यग्निं नारायणमथापरे ।
इन्द्रमेके परे विश्वान् ब्रह्माणमपरे जगुः ॥३६
ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वे देवास्तथर्षयः ।
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्त्तिताः ॥३७
यं यं भेदं समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम् ।
तत् तद् रूपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः ॥३८
तस्मादेकतरं भेदं समाश्रित्यापि शाश्वतम् ।
आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम् ॥३९

श्रुति के वचनानुसार (रुद्र की) जगत् को स्थापित करने वाली मोहिनी शक्ति को नारायण कहते हैं। (२६)

पच्चीसवें तत्त्व अर्थात् पुरुषस्वरूप भगवान् हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) तन्मयतापूर्वक प्रकृति से सम्पूर्ण सदसदात्मक जगत् की सृष्टि करते हैं। (२७)

अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित रहने वाली ब्रह्मा, विष्णु एवं ईश नामक तीन सर्वज्ञ, सर्वव्यापी एवं शान्त शक्तियाँ भोग और मोक्ष प्रदान करती हैं। (२८)

(ये शक्तियाँ) सर्वेश्वर स्वरूप, सभी से वन्दनीय शाश्वत, तथा अनन्त भोगों से सम्पन्न हैं। अद्वितीय अक्षर तत्त्व ही पुरुष, प्रधान एवं ईश्वर स्वरूप है। (२९)

उस (परमात्मा) में अन्य भी सहस्रों दिव्य शक्तियाँ हैं। विविध यज्ञों द्वारा इन्द्र, आदित्यादि देव (स्वरूप विभिन्न शक्तियों) की आराधना की जाती है। (३०)

(महेश्वर के) महात्म्य से इन एक-एक शक्तियों से सम्पन्नों सैकड़ों एवं सहस्रों शरीरों का वर्णन किया गया है। किन्तु, शक्ति (वस्तुतः) एक ही एवं निर्गुण है। (३१)

महेश्वर देव स्वयं उस-उस शक्ति का अवलम्बन कर लीलापूर्वक विविध देहों की सृष्टि एवं संहार करते हैं। (३२)

वेदवादी ब्राह्मण समस्त यज्ञों में (उनकी) पूजा करते हैं। वेद का यह कथन है कि रुद्र सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करते हैं। (३३)

परमात्मा की सभी प्रकार की शक्तियों में प्रधानतापूर्वक ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर देव स्वरूप शक्तियों का उल्लेख हुआ है। (३४)

सनातन, आद्य, भगवान् परमात्मा (इन शक्तियों) से परे हैं। शूलपाणि महेश्वर को सर्वशक्तिस्वरूप कहा जाता है। (३५)

कुछ लोग इन्हें अग्नि एवं दूसरे लोग (इन्हें) नारायण कहते हैं। कोई (इन्हें) इन्द्र, कोई विश्वेदेव एवं कोई ब्रह्मा कहते हैं। (३६)

ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, वरुण, समस्त देवता एवं ऋषिगण एकमात्र रुद्र के ही भेद कहे जाते हैं। (३७)

(महेश्वर के) जिस-जिस भेद (अर्थात् स्वरूप) का अवलम्बन कर परमेश्वर की आराधना की जाती है वही-वही स्वरूप धारण कर शिव फल प्रदान करते हैं। (३८)

अतः एक भी स्वरूप का अवलम्बन कर शाश्वत महादेव की आराधना करने वाले को परम पद की प्राप्ति होती है। (३९)

किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातनम् ।
आराधयेद् वै गिरिशं सगुणं वाऽथ निर्गुणम् ।।४०
मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः ।
आरुरुक्षुस्तु सगुणं पूजयेत् परमेश्वरम् ।।४१
पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम् ।
पद्मासनस्थं रुक्माभं चिन्तयेद् वैदिकी श्रुतिः ।।४२
एष योगः समुद्दिष्टः सबीजो मुनिसत्तमाः ।
तस्मात् सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ।
आराधयेद् विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम् ।।४३
भक्तियोगसमायुक्तः स्वधर्मनिरतः शुचिः ।
तादृशं रूपमास्थाय समायात्यन्तिकं शिवम् ।।४४
एष योगः समुद्दिष्टः सबीजोऽत्यन्तभावने ।
यथाविधि प्रकुर्वाणः प्राप्नुयादैश्वरं पदम् ।।४५
अत्राप्यशक्तोऽथ हरं विष्णुं ब्रह्माणमर्चयेत् ।

किन्तु, सर्वशक्तिस्वरूप सनातन देव गिरिश महादेव की हीं सगुण अथवा निर्गुण रूप में आराधना करनी चाहिए। (४०)

मैंने पहले ही आपको निर्गुण योग बतलाया है। किन्तु सगुण पर आरोहण करने की अभिलाषा वाले पुरुष को परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए। (४१)

वैदिक श्रुति के कथनानुसार पिनाकधारी, त्रिनेत्र, जटायुक्त, चर्माम्बरधारी, स्वर्ण-सदृश कान्तिवाले पद्मासनस्थ (शङ्कर) का ध्यान करना चाहिये। (४२)

हे मुनिश्रेष्ठो! (इस प्रकार) यह सबीज योग का वर्णन किया गया अतएव ब्रह्मादि सभी देवों को छोड़ कर आदि, मध्य और अन्त में स्थित रहने वाले विरूपाक्ष (शङ्कर) की आराधना करनी चाहिए। (४३)

भक्तियोग में रत स्वधर्मपरायण पवित्र मनुष्य वैसा ही (शंकर का) रूप धारण कर शिव के समीप जाता है। (४४)

(इस प्रकार) मोक्ष प्रदान करने वाले इस सबीज योग का वर्णन किया गया। इसका यथाविधि अनुष्ठान करने वाला (व्यक्ति) ईश्वर का पद प्राप्त करता है। (४५)

अथ चेदसमर्थः स्यात् तत्रापि मुनिपुंगवाः ।
ततो वाय्वग्निशक्रादीन् पूजयेद् भक्तिसंयुतः ।।४६
ये चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह ।
अथापि कथितो योगो निर्बीजश्च सबीजकः ।।४७
ज्ञानं तदुक्तं निर्बीजं पूर्वं हि भवतां मया ।
विष्णुं रुद्रं विरिञ्चिं च सबीजं भावयेद् बुधः ।
अथवाऽग्न्यादिकान् देवांस्तत्परः संयतेन्द्रियः ।।४८
पूजयेत् पुरुषं विष्णुं चतुर्मूर्त्तिधरं हरिम् ।
अनादिनिधनं देवं वासुदेवं सनातनम् ।।४९
नारायणं जगद्योनिमाकाशं परमं पदम् ।
तल्लिङ्गधारी नियतं तद्भक्तस्तदपाश्रयः ।
एष एव विधिर्ब्राह्मे भावने चान्तिके मतः ।।५०
इत्येतत् कथितं ज्ञानं भावनासंश्रयं परम् ।
इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथितं यन्मया पुरा ।।५१

हे मुनिश्रेष्ठो! यदि मनुष्य इसमें भी असमर्थ हो तो हर, विष्णु एवं ब्रह्मा की आराधना करनी चाहिये। उसमें भी असमर्थ होने पर भक्तिपूर्वक वायु, अग्नि एवं इन्द्रादि की पूजा करनी चाहिये। (४६)

पूर्व में आप लोगों को दो शुद्ध भावनायें बतलायी गयी है। तदनन्तर निर्बीज और सबीज योग का वर्णन किया है। (४७)

मैंने आपलोगों को पूर्व में निर्बीज (योग) सम्बन्धी ज्ञान बतलाया था। बुद्धिमान् व्यक्ति को सबीज योग में विष्णु, रुद्र एवं ब्रह्मा की भावना करनी चाहिये। अथवा तत्परतापूर्वक जितेन्द्रिय पुरुष को अग्नि आदि देवों की आराधना करनी चाहिये। (४८)

उनका लिङ्ग अर्थात् वैष्णव चिह्न धारण कर विष्णु भक्त एवं विष्णुपरायण पुरुष को नियमपूर्वक चतुर्मूर्तिधर, अनादिनिधन, सनातन, जगद्योनि, आकाश (तुल्य व्यापक), परमपद स्वरूप, नारायण एवं परमपुरुष स्वरूप वासुदेव की पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मविषयक अन्तिम भावना में भी यही विधि मान्य है। (४९,५०)

भावना विषयक यह श्रेष्ठ ज्ञान बतलाया गया। प्राचीन काल में मैंने इस ज्ञान को इन्द्रद्युम्न मुनि से कहा था। (५१)

अव्यक्तात्मकमेवेदं चेतनाचेतनं जगत्।
तदीश्वरः परं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्ममयं जगत्॥५२

सूत उवाच।

एतावदुक्त्वा भगवान् विरराम जनार्दनः।
तुष्टुवुर्मुनयो विष्णुं शक्रेण सह माधवम्॥५३

मुनय ऊचुः।

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने।
नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नमः॥५४
नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।
माधवाय नमस्तुभ्यं नमो यज्ञेश्वराय च॥५५
सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः।
नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च॥५६
ॐ नमो ज्ञानरूपाय परमात्मस्वरूपिणे।
आनन्दाय नमस्तुभ्यं मायातीताय ते नमः॥५७
नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते।
पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे॥५८
नमः सांख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तु ते।
धर्मज्ञानाधिगम्याय निष्कलाय नमो नमः॥५९
नमोस्तु व्योमतत्त्वाय महायोगेश्वराय च।
परावराणां प्रभवे वेदवेद्याय ते नमः॥६०
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे।
नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नमः॥६१
नमोऽस्तु ते वराहाय नारसिंहाय ते नमः।
वामनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नमः॥६२
नमोऽस्तु कालरुद्राय कालरूपाय ते नमः।
स्वर्गापवर्गदात्रे च नमोऽप्रतिहतात्मने॥६३
नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने।
देवानां पतये तुभ्यं देवार्त्तिशमनाय ते॥६४
भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वसंसारनाशनम्।
अस्माभिर्विदितं ज्ञानं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते॥६५

यह चेतनाचेतनात्मक जगत् अव्यक्तस्वरूप ही है। वह परम ब्रह्म ही इसके ईश्वर हैं। अतः (यह) जगत् ब्रह्ममय है। (५२)

सूत ने कहा—इतना कहने के उपरान्त भगवान् जनार्दन चुप हो गये। इन्द्र के सहित मुनिलोग माधव विष्णु की स्तुति करने लगे। (५३)

मुनियों ने कहा—कूर्मरूपी परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। विश्व-स्वरूप नारायण वासुदेव को नमस्कार है। (५४)

गोविन्द कृष्ण को वारंवार नमस्कार है। आप यज्ञेश्वर माधव को नित्य नमस्कार है। (५५)

आप सहस्रशिर वाले एवं सहस्राक्ष को नमस्कार है। सहस्रहस्त एवं सहस्रचरण को नमस्कार है। (५६)

ओम् ज्ञानस्वरूप परमात्मा (विष्णु) को नमस्कार है। आप आनन्दस्वरुप एवं मायातीत को नमस्कार है। (५७)

निर्गुण एवं गूढ़ शरीर को नमस्कार है। सत्तामात्र स्वरूप वाले पुराण पुरुष को नमस्कार है। (५८)

सांख्य, योग एवं अद्वितीय (तत्त्व स्वरूप) को नमस्कार है। धर्म एवं ज्ञान से प्राप्य एवं निष्कल को वारंवार नमस्कार है। (५९)

आप व्योमतत्त्व स्वरूप महायोगेश्वर को नमस्कार है। पर एवं अपर पदार्थों के मूलकारण स्वरूप एवं वेद द्वारा ज्ञात होने वाले आपको नमस्कार है। (६०)

बुद्ध, शुद्ध, युक्त एवं हेतुस्वरूप को नमस्कार है। आपको वार-वार नमस्कार है। मायावी वेधा को वारंवार नमस्कार है। (६१)

वाराह एवं नरसिंह रूपधारी आपको नमस्कार है। आप वामनस्वरूप को नमस्कार है। हृषीकेश को नमस्कार है। (६२)

आप कालरुद्र एवं कालस्वरूप को नमस्कार है। स्वर्ग एवं अपवर्ग के दाता तथा अप्रतिहतात्मा (आप) को नमस्कार है। (६३)

योगाधिगम्य, योगी एवं योगदाता (आप) को नमस्कार है। देवों के स्वामी एवं देवों के दुःख को दूर करने वाले आप को नमस्कार है। (६४)

हे भगवान्! आपकी कृपा से समस्त संसार का

श्रुतास्तु विविधा धर्मा वंशा मन्वन्तराणि च ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च ब्रह्माण्डस्यास्य विस्तरः ॥६६
त्वं हि सर्वजगत्साक्षी विश्वो नारायणः परः ।
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मंस्त्वमेव शरणं गतिः ॥६७

सूत उवाच ।

एतद् वः कथितं विप्रा योगमोक्षप्रदायकम् ।
कौर्मं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः ॥६८
अस्मिन् पुराणे लक्ष्म्यास्तु संभवः कथितः पुरा ।
मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजनम् ॥६९
प्रजापतीनां सर्गस्तु वर्णधर्माश्च वृत्तयः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम् ॥७०
पितामहस्य विष्णोश्च महेशस्य च धीमतः ।
एकत्वं च पृथक्त्वं च विशेषश्चोपवर्णितः ॥७१

भक्तानां लक्षणं प्रोक्तं समाचारश्च शोभनः ।
वर्णाश्रमाणां कथितं यथावदिह लक्षणम् ॥७२
आदिसर्गस्ततः पश्चादण्डावरणसप्तकम् ।
हिरण्यगर्भसर्गश्च कीर्त्तितो मुनिपुंगवाः ॥७३
कालसंख्याप्रकथनं माहात्म्यं चेश्वरस्य च ।
ब्रह्मणः शयनं चाप्सु नामनिर्वचनं तथा ॥७४
वराहवपुषा भूयो भूमेरुद्धरणं पुनः ।
मुख्यादिसर्गकथनं मुनिसर्गस्तथापरः ॥७५
व्याख्यातो रुद्रसर्गश्च ऋषिसर्गश्च तापसः ।
धर्मस्य च प्रजासर्गस्तामसात् पूर्वमेव तु ॥७६
ब्रह्मविष्णुविवादः स्यादन्तर्देहप्रवेशनम् ।
पद्मोद्भवत्वं देवस्य मोहस्तस्य च धीमतः ॥७७
दर्शनं च महेशस्य माहात्म्यं विष्णुनेरितम् ।

नाश हो जाता है। हमने उस ज्ञान को प्राप्त किया है जिसे जानकर अमृतत्व की प्राप्ति होती है। (६५)

(हमलोगों ने) अनेक प्रकार के धर्मों, वंशों, मन्वन्तरों, सर्ग, प्रतिसर्ग एवं इस ब्रह्माण्ड के विस्तार का वर्णन सुना। (६६)

आप ही सम्पूर्ण जगत् के साक्षी, विश्वरूप एवं परम नारायण हैं। हे अनन्तात्मा ! आप हमारी रक्षा करें। हम लोगों की आप ही शरण एवं गति हैं। (६७)

सूत ने कहा—हे विप्रो ! मैंने आपलोगों से योग एवं मोक्षप्रद उस संपूर्ण कूर्मपुराण को कहा जिसे गदाधर ने कहा था। (६८)

इस पुराण में लक्ष्मी की उत्पत्ति एवं सम्पूर्ण प्राणियों को मोहित करने के लिए प्राचीनकाल में वासुदेव से उनके नियोजित होने का वर्णन किया गया है। (६९)

(तदनन्तर) प्रजापतियों की सृष्टि और वर्णों के धर्मों तथा (उनकी) वृत्तियों का वर्णन किया गया है। (इसमें) धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के शुभ लक्षणों का यथावत वर्णन हुआ है। (७०)

(इसमें) पितामह, विष्णु एवं बुद्धिमान् महेश के एकत्व, पृथक्त्व तथा वैशिष्ट्य का वर्णन हुआ है। (७१)

(इसमें) भक्तों के लक्षण सुन्दर सदाचार तथा वर्णों एवं वर्णों तथा आश्रमों के लक्षण का यथावत् वर्णन किया गया है। (७२)

तदुपरान्त आदिसर्ग और सप्तावरणयुक्त ब्रह्माण्ड का वर्णन हुआ है। हे मुनिश्रेष्ठो ! (इस पुराण में) हिरण्यगर्भ के सर्ग का भी वर्णन हुआ है। (७३)

(इस पुराण में) कालसंख्या के विवरण, ईश्वर के माहात्म्य, जल में ब्रह्मा के शयन एवं (भगवान् के) नाम की निरुक्ति का वर्णन हुआ है। (७४)

वराह शरीरधारी (विष्णु) द्वारा पुनः भूमि के उद्धार करने का भी (इसमें) वर्णन किया गया है। तदनन्तर प्रथम मुख्य सर्ग का वर्णन करने के उपरान्त मुनिसर्ग का वर्णन हुआ है। (७५)

रुद्रसर्ग, ऋषिसर्ग, तदुपरान्त तापससर्ग एवं तामस-सर्ग के पूर्व धर्म के प्रजासर्ग का वर्णन किया गया है। (७६)

(तथा इस पुराण में) ब्रह्मा एवं विष्णु के विवाद तथा (उनका एक दूसरे के) देह में प्रवेश करने, (ब्रह्मा के) पद्म से उत्पन्न होने एवं बुद्धिमान् देवाधिदेव (ब्रह्मा के) मोह का वर्णन हुआ है। (७७)

तत्पश्चात् (ब्रह्मा द्वारा) महेश का दर्शन करने, विष्णु द्वारा कहे गये (महेश्वर के) माहात्म्य एवं पर-

दिव्यदृष्टिप्रदानं च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।७८
संस्तवो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
प्रसादो गिरिशस्याथ वरदानं तथैव च ।।७९
संवादो विष्णुना सार्धं शंकरस्य महात्मनः ।
वरदानं तथापूर्वमन्तर्द्धानं पिनाकिनः ।।८०
वधश्च कथितो विप्रा मधुकैटभयोः पुरा ।
अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात् ।।८१
एकीभावश्च देवस्य विष्णुना कथितस्ततः ।
विमोहो ब्रह्मणश्चाथ संज्ञालाभो हरेस्ततः ।।८२
तपश्चरणमाख्यातं देवदेवस्य धीमतः ।
प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात् कथितस्ततः ।।८३
रुद्राणां कथिता सृष्टिर्ब्रह्मणः प्रतिषेधनम् ।
भूतिश्च देवदेवस्य वरदानोपदेशकौ ।।८४
अन्तर्द्धानं च रुद्रस्य तपश्चर्याण्डजस्य च ।
दर्शनं देवदेवस्य नरनारीशरीरता ।।८५
देव्या विभागकथनं देवदेवात् पिनाकिनः ।
देव्यास्तु पश्चात् कथितं दक्षपुत्रीत्वमेव च ।।८६
हिमवद्दुहितृत्वं च देव्या माहात्म्यमेव च ।
दर्शनं दिव्यरूपस्य वैश्वरूपस्य दर्शनम् ।।८७
नाम्नां सहस्रं कथितं पित्रा हिमवता स्वयम् ।
उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च ।।८८
भृग्वादीनां प्रजासर्गो राज्ञां वंशस्य विस्तरः ।
प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्दनम् ।।८९
दधीचस्य च दक्षस्य विवादः कथितस्तदा ।
ततश्च शापः कथितो मुनीनां मुनिपुंगवाः ।।९०
रुद्रागतिः प्रसादश्च अन्तर्द्धानं पिनाकिनः ।
पितामहस्योपदेशः कीर्त्यते रक्षणाय तु ।।९१

मेष्ठी ब्रह्मा को दिव्यदृष्टि प्रदान करने (का वर्णन हुआ है) । (७८)

परमेष्ठी द्वारा की गयी देवाधिदेव की स्तुति, महादेव के अनुग्रह करने एवं वर देने का वर्णन हुआ है । (७९)

विष्णु से महात्मा शंकर के संवाद, पिनाकी के वरदान देने एवं अन्तर्धान होने का वर्णन किया गया है । (८०)

(इसमें) हे विप्रो ! प्राचीनकाल में हुए मधुकैटभ के वध का वर्णन हुआ है । तदुपरान्त प्राचीनकाल में हुए भगवान् विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा के अवतार का वर्णन हुआ है । (८१)

तदनन्तर विष्णु से ब्रह्मा के एकीभाव का वर्णन हुआ है । तत्पश्चात् ब्रह्मा के मोह एवं हरि से सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने का वर्णन हुआ है । (८२)

तदुपरान्त बुद्धिमान् देवाधिदेव के तप का वर्णन किया गया है । तत्पश्चात् उनके ललाट से महेश के उत्पन्न होने का वर्णन हुआ है । (८३)

तदुपरान्त रुद्रों की सृष्टि तथा ब्रह्मा के प्रतिषेध का वर्णन हुआ है । तदनन्तर देवाधिदेव (शङ्कर के) ऐश्वर्य एवं (ब्रह्मा को) वरदान और उपदेश देने का वर्णन हुआ है । (८४)

तत्पश्चात् रुद्र के अन्तर्हित होने, ब्रह्मदेव की तपस्या, देवाधिदेव के दर्शन एवं उनके नरनारी शरीरत्व का वर्णन हुआ है । (८५)

तदुपरान्त देवाधिदेव पिनाकी से देवी के वियोग का वर्णन हुआ है । तत्पश्चात् देवी के दक्ष पुत्री होने का वर्णन हुआ है । (८६)

तदुपरान्त उन देवी के हिमवत् पुत्री होने एवं उनके माहात्म्य का वर्णन किया गया है । (तत्पश्चात् पितामाता द्वारा) देवी के दिव्यरूप एवं विश्वरूप के दर्शन का वर्णन हुआ है । (८७)

तत्पश्चात् स्वयं पिता हिमालय द्वारा कहे गये सहस्र नाम तथा महादेवी के उपदेश एवं वरदान देने का वर्णन हुआ है । (८८)

तत्पश्चात् भृगु इत्यादि ऋषियों के सन्तान की उत्पत्ति, राजाओं के वंशविस्तार, दक्ष के प्रचेता का पुत्र होने तथा दक्ष के यज्ञविध्वंस का वर्णन हुआ है । (८९)

तदुपरान्त दधीच और दक्ष के मध्य हुए विवाद का वर्णन हुआ है । हे मुनिश्रेष्ठो ! तत्पश्चात् मुनियों के शाप का वर्णन हुआ है । (९०)

तत्पश्चात् रुद्र के आगमन एवं अनुग्रह और पिनाकी के अन्तर्धान होने तथा रक्षण के लिये (दक्ष को दिये गये) पितामह के उपदेश का वर्णन हुआ है । (९१)

दक्षस्य च प्रजासर्गः कश्यपस्य महात्मनः ।
हिरण्यकशिपोर्नाशो हिरण्याक्षवधस्तथा ॥९२
ततश्च शापः कथितो देवदारुवनौकसाम् ।
निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम् ॥९३
प्रह्लादनिग्रहश्चाथ बलेः संयमनं ततः ।
वाणस्य निग्रहश्चाथ प्रसादस्तस्य शूलिनः ॥९४
ऋषीणां वंशविस्तारो राज्ञां वंशाः प्रकीर्त्तिताः ।
वसुदेवात् ततो विष्णोरुत्पत्तिः स्वेच्छया हरेः ॥९५
दर्शनं चोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव च ।
वरलाभो महादेवं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम् ॥९६
कैलासगमनं चाथ निवासस्तत्र शार्ङ्गिणः ।
ततश्च कथ्यते भीतिर्द्वारवत्या निवासिनाम् ॥९७
रक्षणं गरुडेनाथ जित्वा शत्रून् महाबलान् ।
नारदागमनं चैव यात्रा चैव गरुत्मतः ॥९८
ततश्च कृष्णागमनं मुनीनामागतिस्ततः ।
नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चनं तथा ॥९९
मार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम् ।
लिङ्गार्चननिमित्तं च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः ॥१००
याथात्म्यकथनं चाथ लिङ्गाविर्भाव एव च ।
ब्रह्मविष्णोस्तथा मध्ये कीर्त्तितो मुनिपुंगवाः ॥१०१
मोहस्तयोस्तु कथितो गमनं चोर्ध्वतोऽप्यधः ।
संस्तवो देवदेवस्य प्रसादः परमेष्ठिनः ॥१०२
अन्तर्धानं च लिङ्गस्य साम्बोत्पत्तिस्ततः परम् ।
कीर्तिता चानिरुद्धस्य समुत्पत्तिर्द्विजोत्तमाः ॥१०३
कृष्णस्य गमने बुद्धिर्ऋषीणामागतिस्तथा ।
अनुशासितं च कृष्णेन वरदानं महात्मनः ॥१०४

तदनन्तर दक्ष के वंश की उत्पति एवं महात्मा कश्यप के वंश की उत्पत्ति है। एवं हिरण्यकशिपु के नाश तथा हिरण्याक्ष के वध का वर्णन हुआ है। (९२)

तदनन्तर देवदारुवन में रहने वालों (मुनियों) को (गौतम द्वारा दिये गये) शाप, अन्धक के निग्रह (एवं उसे) श्रेष्ठ गाणपत्य पद प्रदान करने का वर्णन हुआ है। (९३)

तत्पश्चात् (विष्णु द्वारा किये गये) प्रह्लाद के निग्रह, वलि के संयमन तथा त्रिशूली (शङ्कर) द्वारा वाणासुर के निग्रह एवं पुनः उसके ऊपर अनुग्रह करने का वर्णन हुआ है। (९४)

(तदुपरान्त) ऋषियों के वंश-विस्तार एवं राजाओं के वंश का उल्लेख हुआ है। तदनन्तर अपनी इच्छा से हरि विष्णु का वसुदेव से उत्पन्न होने का वर्णन किया गया है। (९५)

उपमन्यु का दर्शन करने एवं (उनके) तपस्या करने का वर्णन हुआ है तदनन्तर अम्बा (पार्वती) सहित त्रिलोचन महादेव का दर्शन कर वर प्राप्त करने का वर्णन किया गया है। (९६)

तत्पश्चात् शार्ङ्गी अर्थात् कृष्ण के कैलास पर जाने एवं वहाँ निवास करने तथा द्वारवती में रहने वालों के भय का वर्णन हुआ है। (९७)

तदुपरान्त महाबलवान् शत्रुओं को जीतकर गरुड़ द्वारा (उनकी) रक्षा करने, नारद के आगमन तथा गरुड़ की यात्रा का वर्णन किया गया है। (९८)

तत्पश्चात् कृष्ण के आगमन, एवं मुनियों के आने तथा वासुदेव के नित्य शिवलिङ्गार्चन का वर्णन हुआ है। (९९)

तदुपरान्त मार्कण्डेय मुनि के प्रश्न (वासुदेव द्वारा मार्कण्डेय को) लिङ्गार्चन के निमित्त एवं शङ्कर के लिङ्ग का यथार्थस्वरूप बतलाने का वर्णन हुआ। हे मुनिश्रेष्ठो ! तदुपरान्त ब्रह्मा एवं विष्णु के मध्य लिङ्ग के प्रकट होने का वर्णन हुआ है। तत्पश्चात् उन दोनों के मोह तथा (लिङ्ग की सीमा जानने के लिये उन दोनों के) ऊपर और नीचे की ओर जाने का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त (ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा) देवाधिदेव (महादेव) की स्तुति करने तथा (उनके ऊपर) परमेष्ठी (शंकर) के प्रसन्न होने का उल्लेख हुआ है। (१००-१०२)

(तदनन्तर) लिङ्ग के अन्तर्हित होने एवं साम्ब की उत्पत्ति का वर्णन हुआ है। हे द्विजोत्तमो ! (तदुपरान्त) अनिरुद्ध की उत्पत्ति कही गयी है। (१०३)

तत्पश्चात् (अपने लोक को जाने की) कृष्ण की इच्छा एवं ऋषियों के (द्वारका में) आने का उल्लेख

गमनं चैव कृष्णस्य पार्थस्यापि च दर्शनम् ।
कृष्णद्वैपायनस्योक्ता युगधर्माः सनातनाः ॥१०५
अनुग्रहोऽथ पार्थस्य वाराणसीगतिस्ततः ।
पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥१०६
वाराणस्याश्च माहात्म्यं तीर्थानां चैव वर्णनम् ।
तीर्थयात्रा च व्यासस्य देव्याश्चैवाथ दर्शनम् ।
उद्वासनं च कथितं वरदानं तथैव च ॥१०७
प्रयागस्य च माहात्म्यं क्षेत्राणामथ कीर्त्तनम् ।
फलं च विपुलं विप्रा मार्कण्डेयस्य निर्गमः ॥१०८
भुवनानां स्वरूपं च ज्योतिषां च निवेशनम् ।
कीर्त्यन्ते चैव वर्षाणि नदीनां चैव निर्णयः ॥१०९
पर्वतानां च कथनं स्थानानि च दिवौकसाम् ।
द्वीपानां प्रविभागश्च श्वेतद्वीपोपवर्णनम् ॥११०
शयनं केशवस्याथ माहात्म्यं च महात्मनः ।
मन्वन्तराणां कथनं विष्णोर्माहात्म्यमेव च ॥१११
वेदशाखाप्रणयनं व्यासानां कथनं ततः ।
अवेदस्य च वेदानां कथनं मुनिपुंगवाः ॥११२
योगेश्वराणां च कथा शिष्याणां चाथ कीर्त्तनम् ।
गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्त्तिताः ॥११३
वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः ।
कपालित्वं च रुद्रस्य भिक्षाचरणमेव च ॥११४
पतिव्रतायाश्चाख्यानं तीर्थानां च विनिर्णयः ।
तथा मङ्कणकस्याथ निग्रहः कीर्त्यते द्विजाः ॥११५
वधश्च कथितो विप्राः कालस्य च समासतः ।
देवदारुवने शंभोः प्रवेशो माधवस्य च ॥११६
दर्शनं षट्कुलीयानां देवदेवस्य धीमतः ।

हुआ है। (तदुपरान्त) कृष्ण द्वारा (ऋषियों को दिये गये) उपदेश एवं वरदान का वर्णन हुआ है। (१०४)

(तत्पश्चात्) कृष्ण के (स्वधाम) गमन और अर्जुन द्वारा कृष्णद्वैपायन मुनि के दर्शन करने एवं सनातन युगधर्मो का वर्णन हुआ है। (१०५)

तदनन्तर अर्जुन के प्रति (उनके) अनुग्रह तथा पराशर के पुत्र अद्भुतकर्मा मुनि व्यास के वाराणसी जाने का वर्णन हुआ है। (१०६)

तदुपरान्त वाराणसी के माहात्म्य एवं तीर्थो का वर्णन किया गया है। (तत्पश्चात्) व्यास की तीर्थयात्रा (उनके द्वारा किया गया) देवी का दर्शन, (देवी द्वारा किये गये वाराणसी से व्यास के) उद्वासन एवं वरदान का उल्लेख हुआ है। (१०७)

(तदुपरान्त मार्कण्डेय द्वारा युधिष्ठिर को बतलाये गये) प्रयाग के माहात्म्य, (प्रयाग-स्थित) पुण्यक्षेत्रों के निर्देश, (उन तीर्थो के) विपुल फल और मार्कण्डेय मुनि के जाने का वर्णन किया गया है। (१०८)

(तदनन्तर) भुवनों के स्वरूप, ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति तथा वर्षो एवं नदियों के निर्णय का वर्णन हुआ है। (१०९)

(तत्पश्चात्) पर्वतों एवं देवों के स्थानों, द्वीपों के विभाग तथा श्वेतद्वीप का वर्णन किया गया है। (११०)

(तदुपरान्त) महात्मा केशव के शयन एवं माहात्म्य, मन्वन्तरों के वर्णन और विष्णु के माहात्म्य का उल्लेख हुआ है। (१११)

हे मुनिश्रेष्ठो ! (तदनन्तर) वेद की शाखाओं के प्रणयन, व्यासों (के नाम) तथा अवेद एवं वेदों का वर्णन किया गया है। (११२)

(तत्पश्चात्) योगेश्वरों की कथा, (उनके) शिष्यों (के नाम) का उल्लेख एवं ईश्वर की अनेक विध गुह्य गीताओं का वर्णन हुआ है। (११३)

(तदुपरान्त) वर्णाश्रम विषयक आचारों, प्रायश्चित्त की विधि, रुद्र के कपाली होने एवं भिक्षा माँगने का वर्णन किया गया है। (११४)

हे द्विजो ! (तदुपरान्त) पतिव्रता स्त्रियों के आख्यान, तीर्थो के विनिर्णय एवं मङ्कणक के निग्रह का वर्णन हुआ है। (११५)

हे विप्रो ! (तदनन्तर) संक्षेप में काल के वध और देवदारुवन में शंकर और माधव के प्रवेश का वर्णन किया गया है। (११६)

(तत्पश्चात् अत्र्यादि के) छः कुलों में उत्पन्न ऋषियों द्वारा धीमान् देवाधिदेव (महादेव) का दर्शन करने एवं

वरदानं च देवस्य नन्दिने तु प्रकीर्तितम् ।।११७
नैमित्तिकस्तु कथितः प्रतिसर्गस्ततः परम् ।
प्राकृतः प्रलयश्चोर्द्ध्वं सबीजो योग एव च ।।११८
एवं ज्ञात्वा पुराणस्य संक्षेपं कीर्त्तयेत् तु यः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।११९
एवमुक्त्वा श्रियं देवीमादाय पुरुषोत्तमः ।
संत्यज्य कूर्मसंस्थानं स्वस्थानं च जगाम ह ।।१२०
देवाश्च सर्वे मुनयः स्वानि स्थानानि भेजिरे ।
प्रणम्य पुरुषं विष्णुं गृहीत्वा ह्यमृतं द्विजाः ।।१२१
एतत् पुराणं परमं भाषितं कूर्मरूपिणा ।
साक्षाद् देवादिदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना ।।१२२
यः पठेत् सततं मर्त्यो नियमेन समाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।१२३
लिखित्वा चैव यो दद्याद् वैशाखे मासि सुव्रतः ।
विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत ।।१२४
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।
भुक्त्वा च विपुलान्स्वर्गे भोगान्दिव्यान्सुशोभनान् ।१२५
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो विप्राणां जायते कुले ।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात् ।।१२६
पठित्वाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
योऽर्थं विचारयेत् सम्यक् स प्राप्नोति परं पदम् ।।१२७
अध्येतव्यमिदं नित्यं विप्रैः पर्वणि पर्वणि ।
श्रोतव्यं च द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम् ।।१२८
एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानि कृत्स्नशः ।
एकत्र चेदं परममेतदेवातिरिच्यते ।।१२९
धर्मनैपुण्यकामानां ज्ञाननैपुण्यकामिनाम् ।
इदं पुराणं मुक्त्वैकं नास्त्यन्यत् साधनं परम् ।।१३०
यथावदत्र भगवान् देवो नारायणो हरिः ।

महादेव द्वारा नन्दी के वरदान देने का उल्लेख हुआ है। (११७)

तदुपरान्त नैमित्तिक प्रतिसर्ग, प्राकृत प्रलय और सबीज योग का वर्णन किया गया है। (११८)

जो इस प्रकार पुराण के संक्षेप को जानकर उसका वर्णन करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में आदर प्राप्त करता है। (११९)

ऐसा कहने के उपरान्त देवी लक्ष्मी को लेकर एवं कूर्मरूप का परित्याग कर भगवान् पुरुषोत्तम अपने स्थान को चले गये। (१२०)

हे द्विजो ! सभी देवता एवं मुनिलोग भी परम पुरुष विष्णु को नमस्कार कर एवं अमृत लेकर अपने-अपने स्थान पर चले गये। (१२१)

कूर्मरूपधारी देवादिदेव विश्वयोनि साक्षात् विष्णु ने यह श्रेष्ठ पुराण कहा है। (१२२)

हे विप्रो ! जो नियमपूर्वक एकाग्रमन से इसका निरन्तर पाठ करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में आदर प्राप्त करता है। (१२३)

जो सुन्दर व्रतधारी (पुरुष) इस (पुराण) को लिख कर वैशाख मास में वेदज्ञ ब्राह्मण को (इसका) दान करता है उसका पुण्य सुनो। (१२४)

वह व्यक्ति सभी पापों से मुक्त एवं सभी प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त होकर स्वर्ग में विपुल दिव्य सुन्दर भोगों को भोगने के उपरान्त स्वर्ग से परिभ्रष्ट होकर विप्रों के कुल में उत्पन्न होता है एवं पूर्वसंस्कार के माहात्म्य से उसे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति होती है। (१२५,१२६)

(इसके) एक अध्याय का ही पाठ करने से सभी पापों से मुक्ति होती है जो भलीभाँति (इस पुराण के) अर्थ का विचार करता है उसे परम पद प्राप्त होता है। (१२७)

हे द्विजश्रेष्ठो ! ब्राह्मणों को प्रत्येक पर्व में महापातकों को नष्ट करने वाले इस पवित्र पुराण का अध्ययन एवं श्रवण करना चाहिये। (१२८)

(यदि तुला में) एक ओर इतिहासयुक्त सम्पूर्ण पुराणों को एवं दूसरी ओर इस श्रेष्ठ पुराण को रखा जाय तो यही (कूर्मपुराण) अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। १२९)

धर्म एवं ज्ञान विषयक निपुणता की अभिलाषा करने वालों के लिये एक मात्र इस पुराण को छोड़कर

कथ्यते हि यथा विष्णुर्न तथाऽन्येषु सुव्रताः ।।१३१

ब्राह्मी पौराणिकी चेयं संहिता पापनाशनी ।
अत्र तत् परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः ।।१३२

तीर्थानां परमं तीर्थं तपसां च परं तपः ।
ज्ञानानां परमं ज्ञानं व्रतानां परमं व्रतम् ।।१३३

नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य च सन्निधौ ।
योऽधीते स तु मोहात्मा स याति नरकान् बहून् ।।१३४

श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्रावणीयं द्विजातिभिः ।
यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम् ।।१३५

मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः ।
श्रोतव्यं चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिवृंहणम् ।।१३६

ज्ञात्वा यथावद् विप्रेन्द्रान् श्रावयेद् भक्तिसंयुतान् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।।१३७

योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा ।
स प्रेत्य गत्वा निरयान् शुनां योनिं व्रजत्यधः ।।१३८

नमस्कृत्वा हरिं विष्णुं जगद्योनिं सनातनम् ।
अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा ।।१३९

इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ।
पाराशर्यस्य विप्रर्षेर्व्यासस्य च महात्मनः ।।१४०

श्रुत्वा नारायणाद् दिव्यां नारदो भगवानृषिः ।
गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माच्चैव पराशरः ।।१४१

पराशरोऽपि भगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः ।
मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम् ।।१४२

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते ।
सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् ।।१४३

अन्य कोई श्रेष्ठ साधन नहीं है। हे सुव्रतो! इसमें जिस प्रकार भगवान् हरि नारायण देव विष्णु का कीर्तन किया गया है वैसा अन्य (ग्रन्थों) में नहीं है। (१३०, १३१)

यह पौराणिकी ब्राह्मी संहिता पापों को नष्ट करती है। इसमें यथार्थ रूप से उस परम ब्रह्म का वर्णन किया गया है। (१३२)

यह तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ, तपों में श्रेष्ठ तप, ज्ञानों में श्रेष्ठ ज्ञान एवं व्रतों में श्रेष्ठ व्रत है। (१३३)

शूद्र के समीप इस शास्त्र का अध्ययन नहीं करना चाहिये। जो मोहवश (शूद्र के समीप) इसका अध्ययन करता है उसे अनेक नरकों में जाना पड़ता है। (१३४)

द्विजातियों को श्राद्ध या देवकार्य में यह पुराण (निमन्त्रित ब्राह्मणों को) सुनाना चाहिये। यज्ञ के अन्त में इस पुराण का श्रवण करना विशेष रूप से समस्त दोषों को दूर कर देता है। (१३५)

मोक्षार्थियों को विशेष रूप से वेदार्थ के परिवृंहण स्वरूप इस पुराणशास्त्र का अध्ययन, श्रवण और मनन करना चाहिये। (१३६)

यथावत् इसका ज्ञान प्राप्त कर भक्तियुक्त श्रेष्ठ विप्रों को सुनाना चाहिए। ऐसा करने वाला व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त होकर ब्रह्म-सायुज्य प्राप्त करता है। (१३७)

जो व्यक्ति, श्रद्धाहीन तथा अधार्मिक पुरुष को (इस पुराण का उपदेश) देता है उसे मरणोपरान्त नरकों का भोग भोगकर (पुनः) मृत्युलोक में कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है। (१३८)

जगत् के मूल कारण सनातन हरि विष्णु एवं कृष्ण द्वैपायन को नमस्कार कर इस शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। (१३९)

अमित तेजस्वी देवाधिदेव विष्णु एवं पराशर के पुत्र महात्मा व्यास की ऐसी आज्ञा है। (१४०)

नारायण देव से इस दिव्य (संहिता) को सुनकर भगवान् नारद ऋषि ने प्राचीन काल में गौतम को इसका उपदेश दिया था। उनसे पराशर ने (यह शास्त्र प्राप्त किया)। (१४१)

हे मुनीश्वरो! भगवान् पराशर ने भी गङ्गाद्वार पर धर्म, अर्थ एवं काम की पूर्ति करने वाले इस शास्त्र का मुनियों को उपदेश दिया था। (१४२)

पूर्वकाल में ब्रह्मा ने बुद्धिमान् सनक एवं सनत्कुमार को सभी पापों को नष्ट करने वाले इस शास्त्र का उपदेश किया था। (१४३)

सनकाद् भगवान् साक्षाद् देवलो योगवित्तमः ।
अवाप्तवान् पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम् ।।१४४
सनत्कुमाराद् भगवान् मुनिः सत्यवतीसुतः ।
लेभे पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसंचयम् ।।१४५
तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापनाशनम् ।
ऊचिवान् वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने ।।१४६
तस्मै व्यासाय गुरवे सर्वज्ञाय महर्षये ।
पाराशर्याय शान्ताय नमो नारायणात्मने ।।१४७
यस्मात् संजायते कृत्स्नं यत्र चैव प्रलीयते ।
नमस्तस्मै सुरेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे ।।१४८

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायामुपरिविभागे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४४।।

उपरिविभागः समाप्तः

।। इति श्रीकूर्मपुराणं समाप्तम् ।।

सनक से श्रेष्ठ योगज्ञ साक्षात् भगवान् देवल ने एवं देवल से पञ्चशिख ने इस उत्तम (पुराण) को प्राप्त किया। (१४४)

सत्यवती के पुत्र भगवान् व्यास मुनि ने सनत्कुमार से सभी अर्थों के संग्रह-स्वरूप इस पुराण को प्राप्त किया। (१४५)

मैंने उन व्यास से सुनकर आप लोगों से इस पाप-नाशक (पुराण) को कहा है। आप लोग भी धार्मिक जनों को यह (ज्ञान) प्रदान करें। (१४६)

उन पराशर के पुत्र उन गुरु सर्वज्ञ एवं नारायणस्वरूप शान्त महर्षि व्यास को नमस्कार है। (१४७)

सम्पूर्ण जगत् जिससे उत्पन्न होता एवं जिसमें प्रलीन होता है उन कूर्मरूपधारी देवों के अधिपति विष्णु को नमस्कार है। (१४८)

छः सहस्र श्लोकों वाली श्रीकूर्मपुराणसंहिता के उपरि विभाग में चौवालिसवाँ अध्याय समाप्त ।।४४।।

उपरिविभाग समाप्त ।

।। श्रीकूर्मपुराण समाप्त ।

APPENDIX 1-A

परिशिष्टम् (१ क)

(The lists of personal names, geographical names, tīrthās etc. contained in the Kūrma-Purāṇa)

कूर्मपुराणे समागतानां व्यक्ति-जनपद-तीर्थादिनाम्नां भौगोलिक नाम्नां च सूच्यः

देव्याः पार्वत्या अष्टोत्तरसहस्र नामानि (कू. पु. १.११.७६–२१०)

(The 1008 epithets of Goddess Pārvatī in the Pūrma Purāṇa. After an epithet the number refers to the Śloka in which the epithet occurs.)

१	अकलङ्का	१२०
२	अकला	८१
३	अकार्या	९३
४	अगोत्रा	१७५
५	अक्षरा	७९
६	अक्षुद्रा	१९८
७	अचला	७७
८	अचिन्त्यविभवा	१५२
९	अचिन्त्या	७७
१०	अचिन्त्या	१५२
११	अच्युता	८०
१२	अच्युतात्मिका	९४
१३	अजा	१०९
१४	अतिलालसा	७९
१५	अदितिः	११४
१६	अनन्तदृष्टिः	१९८
१७	अनन्तरूपा	९८
१८	अनन्तवर्णा	१७४
१९	अनन्तशयना	१६७
२०	अनन्तस्था	९८
२१	अनन्ता	७६
२२	अनन्तोरसिस्थिता	१०५
२३	अनन्त्या	७७
२४	अनन्यस्था	१७४
२५	अनन्या	१६७
२६	अनवच्छिन्ना	९१
२७	अनवद्याङ्गी	११५
२८	अनादिः	७७
२९	अनादिः	८४
३०	अनादिनिधना	८१
३१	अनादिमायासंभिन्ना	९२
३२	अनाद्यन्तविभवा	८७
३३	अनाद्या	११७
३४	अनाहता	१४०
३५	अनिद्रा	१८६
३६	अनिलाशना	१९२
३७	अनेकाकारसंस्थाना	९८
३८	अन्तरागादिः	१००
३९	अपां योनिः	१००
४०	अपूर्वा	१७०
४१	अप्रमेयाख्या	१७७
४२	अभिन्ना	१४३
४३	अमरा	८०
४४	अमरेश्वरेशाना	१६६
४५	अमला	७६
४६	अमितप्रभा	१३९
४७	अमूर्त्तिका	२१०
४८	अमृतप्रदा	८०
४९	अमृतस्य प्रथमजा नाभिः	८१
५०	अमृतस्रवा	१९९
५१	अमृता	७९
५२	अमृता	१६६
५३	अमृता	१८४
५४	अमृताश्रया	१३५
५५	अमृतोद्भवा	१५७
५६	अमृत्युः	८१
५७	अमोघा	८१
५८	अम्बिका	१०१
५९	अम्बिका	१६८
६०	अयुग्मदृष्टिः	१८९
६१	अरुन्धती	१९५
६२	अवर्णा	१७४
६३	अविद्या	९७
६४	अव्यक्तग्रहा	८४
६५	अव्यक्तलक्षणा	९१
६६	अव्यया	७७
६७	अशेषदेवतामूर्त्तिः	१७३
६८	अशोच्या	१८४
६९	अष्टादशभुजा	१७१
७०	असंख्येया	१७७
७१	असमुद्भूतिः	१८६
७२	असुरार्दिनी	१०६
७३	आकाशयोनिः	८४
७४	आत्मभाविता	१०८
७५	आत्मविद्या	१०८
७६	आत्मसंश्रया	८१
७७	आदित्यवर्णा	११३
७८	आद्या	१५४
७९	आनतिः	१२५
८०	आप्यायनी	१९३
८१	इज्या	१२८
८२	इन्द्रजा	१६२
८३	इष्टा	२०४
८४	ईश्वरप्रिया	९५
८५	ईश्वराणी	१०१
८६	ईश्वरार्धासनगता	१०३
८७	ईश्वरी	८५
८८	उत्सुका	२००
८९	उन्मीलनी	१३३
९०	उमा	७६
९१	एकानेकविभागस्था	७८
९२	ऐन्द्री	१८९
९३	ऐश्वर्यवर्त्मनिलया	१६४
९४	कंसप्राणापहारिणी	२०२
९५	ककुद्मिनी	१८६
९६	कक्ष्या	२०२
९७	कनकप्रभा	१५२
९८	कनकाभा	१४६
९९	कपिला	१४६
१००	कमला	१०५

परिशिष्टम्—१ ख

APPENDIX—2 B

कूर्मपुराणे वनस्पतिनामानि

(List of Flora mentioned in the Kūrma-Purāṇa)

(Latin names are mostly based on Monier William's *Sanskrit English Dictionary*)

अङ्कोल (**2.39**.61); हि० अंकोट, ढेरा. Alangium salviifolium (Linn. f) Wang. (Fam. Alangiaceae).

अपामार्ग (**2.18**.19) हि० चिचिड़ी. Achyranthes aspera Linn.

अम्बुज (**1.9**.19, 44; **11**.72, 215) see कमल.

अरविन्द (**1.9**.29) see कमल.

अलाबु (**2.17**.21; **20**.46; **29**.9; **33**.20) हि. लौकी bottle-gourd.

अश्मन्तक (**2.17**.19) name of a plant.

अश्मान्तक (**2.33**.19) see अश्मन्तक.

अष्टदल (**2.11**.56) see कमल.

आमलक (**2.18**.60; **41**.38); हि० आमला. emblica offcianalis

आम्र (**1.45**.2; **2.20**.38); हि० आम. mangifera indica.

इक्षु (**2.20**.38; **22**.55; **39**.27); हि० ईख, गन्ना. saccharum officinarum.

इन्दीवर (**1.15**.74; **20**.39); हि० नीलोफर, नीलकमल. nymphaea stellata cyanca (blue lotus).

उत्पल (**1.13**.26, 28; **45**.1); हि० कमल. nymphaea species..

उदुम्बर (**2.17**.21; **33**.20); हि० गूलर. Ficus glomerata.

औदुम्बर (**2.22**.21, 62); made of उदुम्बर, see उदुम्बर.

ककुभाण्ड (**2.17**.21).

कदम्ब (**1.42**.16) हि० कदम्ब, anthocephalus indicus. (in V. P.) stephegyne parviflora, korth. (in G P.)

कन्दमूल (**1.13**.49); हि० मूली.

कपित्थ (**2.14**.75; **17**.23); हि० कैथ. feronia Elephantum, Correa.

कमल (**1.1**.63; **2**.7, 44, **7**.30; **9**.90; **15**.22; **19**.9; **46**.34; **2.1**.7; **41**.3); हि० कमल. Nelumbo nucifera

करक (**2.33**.17); Punica Granatum.

करवीर (**2.18**.19); हि० कनेर. nerium indicum Mill.

कर्णिकार (**1.11**.202; **46**.36); हि० मुचकुन्द, उलटकम्बल, अमलतास, फरहद.

1. Pterospermum acerifolium Willd. (Fam. Sterculiaceae).
2. Abroma augusta Linn. f. (Fam. Sterculiaceae).
3. Cassia fistula Linn. (Fam. Leguminosae)
4. Erythrina variegata Linn. var. orientalis (Linn) Merrill. (Fam. Leguminosae)

कवक (**2.17**.20; **27**.12); हि० कुकुरमुत्ता.

कशेरु (**2.20**.39); scirpus grossus, Linn.

कार्पास (**2.12**.6, 8; **33**.7); हि० कपास. Gossypium arboreum Linn. (Fam. Malvaceae)

कालशाक (**2.20**.44);

किंशुक (**2.17**.21; **33**.20); हि० पलाश.

Butea monosperma (Lam.) Kuntze (Fam. Leguminosae)

कुन्द (1.41.28; 2.40.26; 43.36): हि० कुन्द.
Jasminum pubescens Willd. (Fam. Oleaceae)

कुमुद (2.43.35): हि० कुँई.
Nymphaea sp. (Fam Nymphaeaceae) cf कमल.

कुम्भीक (2.33.17) हि० पुन्नाग.

कुश (2.12.6, 14; 14.8; 18.13, 23, 56, 77, 104; 22.45; 28.23; 37.8; 39.32; 43.55): हि० कुश, दाभ.
Desmostachya bipannata Stapf. (Fam. Gramineae)

कुसुम्भ (2.17.19; 20.47); हि० केसर.
Carthamus tinctorius, linn.

कूष्माण्ड (2.20.46; 33 9) हि० कुम्हड़ा.
Benincasa cerifera, savi

कृष्णल (2.32.55): हि० घुँघची, गुंजा चहुटली.

कोद्रव (2.20.48); हि० कोदो.
Paspalum scrobiculatum, linn.

कोविदार (2.14.75; 20.48): हि० कचनार.

क्रमुक (2.20.46); हि० सुपारी.

खदिर (2.32.6); हि० खैर.
Acacia catechu Willd. (Fam. Leguminosea)

खुखुण्ड (2.33.17);

गृञ्जन (2.17.21): हि० गाजर, शलजम, गाँजा.

गोधूम (2.20.37; 26.13): हि० गेहूँ.
Triticum aestivum Linn. (Fam. Gramineae).

चन्दन (2.18.98): हि० चन्दन.
Santalum album Linn. (Fam. Santalaceae).

छत्राक (2.17.20): हि० कुकुरमुत्ता, खुम्भी.
Agaricus Campestris.

जम्बू (1 42 16; 45 19); हि० जामुन.
Engenia jambolana.

जाती (2.43.36): हि० चमेली, मालती.
Jasminum Officinle Linn. var. grandiflorum Bailey (Fam. Oleaceae).

तण्डुल (2.33.18); हि० चावल.
Rice

तण्डुलीयक (2.20.47);
Amaranthus Polygonoides.

ताम्बूल (2.13.29); हि० पान.
Betel, arecanut etc. [Piper betle-leaf etc.].

तिल (2.16.10; 17.24; 18.56, 86; 20.37; 22.18, 24, 56, 86, 94; 23.75; 26.20, 22, 24–26, 44, 69; 32.53; 33.100) हि० तिल, तिल्ली.
Sesamum indicum Linn. (Fam. Pedaliaceae).

दर्भ (2.15.8; 18.25, 51, 83; 22.13, 23, 24, 50–52, 95): See कुश.
Desmostachya bipannata Stapf (Fam. Gramineae)

दाडिम (2.20.38): हि० अनार.
Punica granatum Linn. (Fam. Punicaceae)

देवदारु (2.36.49, 56, 37 1, 2, 4, 12, 99, 150, 163; 44.93, 116); हि० देवदार.
Cedrus deodara (Roxb.) Loud. (Fam. Pinaceae).

धान्य (2.22.56; 23.75); हि० अन्न.
Grain.

नालिका (2.17.19; 33.18);

निर्यास (2.17.19): हि० वृक्षों का रस, गोंद.

नीप (2.17.23): हि० कदम, कदम्ब, हलदू.
This is Kadamba or one of the allied trees of the same family which are *Mytragyna Parvifolia* Korth and *Adina Cordifolia* (Roxb.) Benth. and Hook. f.

नीलोत्पल (1.11.171, 214; 2.43.35): हि० नीलकमल, नीलोफर.

Nymphaea stellata Willd. (Fam. Nymphaeaceae).

नीवार (**2.20**.37); हि॰ जंगली चावल.
Rice grown without cultivation.

न्यग्रोध (**1.34**.17; **45**.3; **48**.5); हि॰ वड़.
Ficus benghalensis Linn.
(Fam. Moraceae)

पङ्कज (**1.9**.10; **15**.150; **2.5**.5; **11**.55; **44**.81); हि॰ कमल.
Nelumbo nucifera Gaertn.
(Fam. Nymphaceae)
(see कमल).

पद्म (**1.1**.38, 39, 81; **9**.5, 29, 36; **10**.1, 7, 8, *16, 18, 83*; **11**.*15, 94, 111, 114, 136, 140*, 157, 162; **14**.68, 79; **15**.28; **16**.16; **21**.69; **25**.5; **43**.8; **44**.35; **45**.19; **46**.5, 7, 16; **2.11**.60; **29**.11; **31**.29; **33**.41; **34**.41; **44**.42, 77); हि॰ कमल का एक भेद.
Nelumbo musifera Gaertn.
(Fam. Nymphaeaceae)

पनस (**1.45**.1); हि॰ कटहल.
Artocarpus integrifolia.

पलाण्डु (**2.17**.19; **33**.18, 17); हि॰ प्याज.
an Onion (Allium Cepa).

पालकी (**2.20**.48);

पालाश (**2.12**.15; **19**.29); हि॰ ढाक, पलास.
Butea monosperma (Lam.) Kuntze (Fam.) Leguminosae.

पिण्डमूल (**2.20**.47); हि॰ गाजर.

पिप्पल (**1.42**.16; **2.39**.8); हि॰ पीपल.

पिप्पली (**2.20**.46); हि॰ पिपरामूल, पीपल.
Piper longum.

पुण्डरीक (**1.47**.62; **2.1**.52); हि॰ कमल (सफेद).

पुत्रजीव (**2.18**.78); हि॰ जियापोता.
Putranjiva roxburghii Wall.
(Fam. Euphorbiaceae)

पुष्कर (**1.9**.28); see (द्र.) कमल.
Nelumbium speciosum (blue lotus)

पेयूष (**2.17**.20); हि॰ ताजा घी, उस गाय का दूध जिसे व्याये एक सप्ताह से कम हुआ हो.

पोत (**2.33**.19); हि॰ पशुशावक, पौधे का अंकुर.

प्रियङ्गु (**2.20**.37); हि॰ कंगुनी, कांगुन.
Setaria italica Beauv.
(Fam. Gramineae)

प्लक्ष (**1.45**.7; **2.17**.23; **36**.8, 27); हि॰ पाकड़, पाखर.
Ficus infectoria Roxb
(Fam. Moraceae)

विल्व (**2.12**.15; **18**.19); हि॰ बेल.
Aegle marmelos Gorr.
(Fam. Rutaceae)

भरण्ड (**2.20**.38);

भूस्तृण (**2.20**.*46*; **27**.*12*; **33**.*17*);

मधूक (**2.14**.75); हि॰ महुआ.
Mudhuca indica J. F. Gmel.
(Fam. Saptaceae)

मरिच (**2.20**.48); हि॰ काली मिर्च.
Piper Nigrum.

मसूर (**2.20**.46); हि॰ मसूर.
Lense Esculenta or Ervum Lens or Cicer Lens.

मातुलङ्ग (**2.17**.23); हि॰ नीबू, चकोतरा.
Citrus Medica.

मालती (**2.18**.19); हि॰ चमेली (का एक भेद).
Jasminum. Grandiflorum and also other plants.

माष (**2.20**.37); हि॰ उड़द.
Phaseolus mungo Var. radiatus.
(Fam. Leguminosae)

मुञ्ज (**2.12**.12); हि॰ मूंज, एक प्रकार की घास.

मुद्ग (**2.16**.10; **20**.37); हि॰ मूंग.
Phaseolus aureus Roxb.
(Fam. Leguminosae)

मृद्वीक (**2.20**.38); हि॰ अंगूर.
Bunch of grapes.

यव (**2.16**.10; **20**.37; **22**.94; **26**.13); हि॰ जव.
Hordeum vulgare Linn. (Fam. Gramineae)

राजमाष (**2.20**.47);
Dolichos catjang.

रुद्राक्ष (**2.18**.78); हि० रुद्राक्ष.

लकुच (**1.45**.4); हि० बडहुर.
Artocarpus lacucha.

लशुन (**2.17**.19; **33**.18, 71); हि० लहशुन.
Allium Sativum

वट (**1.35**.8, 27; **42**.16; **2.36**.36); See न्यग्रोध.

वार्ताक (**2.20**.46; **33**.17); हि० बैगन.
Egg plant

विदारी (**2.20**.38);
Hedysarum Gangeticum.

विद्रुम (**1.42**.18); हि० मूँगा

विलय (**2.17**.20);

वृन्ताक (**2.17**.19); See वार्ताक.

वेणु (**2.15**.3; **29**.7; **32**.36); हि० बाँस, नरकुल.
Bambusa arundinacea

शाक (**2.20**.37); हि० शाक, शिरीष, सागौन.

शाड्वल (**2.13**.37);

शाल्मल (**2.14**.75); हि० सेमर.
Salmalia malabarica Schott and Endl. (Fam. Bombacaceae).

शिग्रु (**2.27**.12; **33**.17); हि० सहिजन.
Moringu Pterygosperma.

शुक्त (**2.17**.19); हि० कांजी, अम्ल पदार्थ विशेष.
Astringent.

शृङ्गाटक (**2.20**.39); हि० एक प्रकार का पौधा.
Trapa Bispinosa

शेलु (**2.17**.20);
Cordia Myxa.

शैवाल (**2.37**.95); हि० सेवार, मोथा.
1. *Ceratophyllum demursum* Linn. (Ceratophyllaceae).
2. Vallineria spiralis Linn. (Fam. Hydrocharitaceae .

श्यामाक (**2.20**.37); हि० साँवा.
Panicum Frumentaceum.

श्लेष्मातक (**2.14**.75; **27**.12); हि० लिसोड़ा.
Cordia Latifolia.

सरसिज (**1.16**.68); See कमल.

सुमुख (**2.17**.20);

सुरस (**2.20**.46);
Vitex trifolia

सोम (**2.13**.29; **17**.8; **21**.3, 38; **22**.47; **24**.13, 14, 15; **27**.30; **43**.55); हि० एक पौधा.

परिशिष्टम् १—ग

APPENDIX 1-C

कूर्मपुराणे जन्तुनामानि

(List of fauna mentioned in the Kūrma-Purāṇa)

अज (**2.22**.18, 76; **33**.23); हि० बकरा
—छाग (**2.20.41**).
—लोह (**2.20**.44 .

अजा (**2.22**.18; **32**.35); हि० बकरी
Genus-Capra; Class-Mammalia; Fam. Bovidae.

अनडुह् (**2.26**.46); हि० बैल
—वलीवर्द (**1.35**.2).
—वृष (**1.9**.70, 74; **11**.114, 190; **14**.19, 46; **15**.111, 127, 151; **23**.52; **24**.83; **29**.12; **31**.8, 23; **33**.16; **2.5**.42, 44; **11**.134, 138; **34**.46; **35**.32, 36; **36**.6; **37**.1; **39**.31, 98; **40**.8, 9, 26; **41**.32; **42**.14.
—वृषभ (**1.9**.10, 34; **14**.43, 80; **15**.107; **24**,36; **29**.33; **31**.11; **2.1**.45; **40**.26; **41**.18). Bas indicus.

अवि (**1.7**.52; **2.32**.35) हि० भेड़
—आविक (**2.17**.30).
—औरभ्र (**2.20**.40).
Mammalia, Order-Artiodaectyla. Genus-ovis.

अश्व (**1.7**.53; **41**.39, 40; **2.14**.14; **26**.46, 69; **30**.21; **32**.10, 15, 51; **38**.36; **39**.32; **40**.25, 32); हि० घोड़ा
—तुरग (**2.20**.15).
—वाजि (**1.41**.28, 38).
—हय (**1.39**.33; **41**.40).
—हरि (**1.39**.33).
Genus-Equnus caballus; Fam. Equidae.

अश्वतर (**1.7**.53); हि० खच्चर.

आविक See अवि

इन्द्रगोप (**2 43**.37);

उरग (**1.7**.60; **14**.1; **15**.1; **2.34**.41; **36**.38 **43**.31) हि० सर्प
—दन्दशूक (**2.32** 50)
—नाग (**1.24**.58; **25**:7; **35**.10, 18, 30; **42**.22, 24, 27. **2.39**.69) Genus-Naga.
—पन्नग (**1.9**.23)
—फणी (**1.15**.198)
—भुजग (**2.33**.14)
—भुजङ्ग (**2.31**.33)
—भोगिन् (**1.2**.3; **11**.236, 247)
—व्याल (**1 18**.15; **25**.90; **2.16**.81)
—सर्प (**1.7**.51; **11**.167; **17**.9; **18**.15; **28**.26; **40**.1, 8, 19; **2.16**.58; **32**,52). Class-Reptilia; Order-Squamata; Suborder-Ophidia.

उलूक (**2.17**.32; **33**.10, 12); हि० उल्लू ulula owl, ululare Howl.

उष्ट्र (**1.7**.53; **2.14**.14; **17**.30; **32**.55; **33**.10, 31, 58); हि० ऊँट
Camelus dromedarius.

ऋक्ष (**1.24**.6) हि० भालू
Melursus ursinus Shaw.

एण (**2.20**.41); हि० हरिण, मृग.
—मृग (**1.7**.53, 60; **11**.195; **18**.15; **24**.74 **25**.14; **29**.32; **47**.57; **2.16**.25).
—रुरु (**2.12**.9; **17**.36; **20**.41)
—पृषत (**2.20.41**).
—हरिण (**2.20**.40).

Indian Antelope, Antilope cervicapra (Linnaeus.)
औरभ्र See अवि
कपि (**1.20**.34; **2.33**.9, 31); हि० बन्दर.
—मर्कट (**2.17**.33).
—वानर (**1.20**.34, 35, 45; **2.32**.54).
(i) Macaca mulatta Zimmerman.
(ii) Macacus; Semnopithecus entethus.
कपिञ्जल (**2.17**.37); हि० पपीहा, टिटिहरी.
(i Cuculus varius Vahl.
(ii) Clamtor jacobinus.
कपिला (**2.39**.22, 87, 89); हि० गाय.
—गो (**1.14**.92; **15**.98, 101, 103, 108; **17** 5; **30**.11; **31**.22, 23; **35**.3; **36**.2; **2.5**.44, **11**.134, 135, 138; **12**.9, 12; **13**.6; **14** 14, 18, 83; **15**.24; **16**.19, 33, 69, 72, 89, 91; **17**.27, 30; **18**.14, 115; **20**.15, 43; **22**.76, **23**.75; **26**.14, 46, 49, 58, 69; **29**.6; **30**.19; **32**.2, 34, 43, 45, 46, 54, 59; **33**.9, 22, 23, 24, 35, 42, 45, 56, 76; **34**.46; **35**.25; **36**.15; **37**.1; **39**.11, 87; **42**.10; **43**.56).
—धेनु (**2.32**.55).
Genus-Bos; (Fam. Bovidae)
कपोत (**2.17**.32, 37; **33**.12; **43**.37); हि० कबूतर.
—पारावर्त (**2.17**.32).
कपोती (**2.27**.23); हि० कबूतरी.
कलविङ्क (**2.17**.31); हि० चिड़िया, गौरैया.
काक (**2.17**.28; **19**.31; **22**.33, 60; **32**.50; **33**.8, 31); हि० कौआ.
—वायस (**2.17**.32).
Corvus splendens. Vicillot.
कारण्डव (**1.47**.54; **2.33**.11); हि० वत्तख A sort of Duck.
कुक्कुट (**2.17**.28; **22**.34; **33**.8); हि० जंगली मुर्गा.
Gallus. (Genus).
कुरर (**2 17**.31; **33**.33); हि० क्रौञ्च, समुद्री उकाव.
कूर्म (**1.1**.9, 28, 29, 43, 122, 126; **4**.4; **11**.16; **2.1**.13; **11**.141; **17**.35; **20**.42; **43**.1, 4, 23; **44**.54, 122, 148); हि० कछुवा, कच्छप.
Genera : Trionyux and Testudo.
कोकिल (**2.17**.31; **33**.14); हि० कोयल.
Endynamys scolopacea Linn.
क्रौञ्च (**2.32**.53) हि० क्रौंच.
खञ्जरीट (**2.17**.32); हि० खञ्जन.
खड्ग (**2.20**.44.**22**.62) हि० गैंडा.
—वाध्रीणस (**2.17**.37).
—वार्धीणस (**2.20**.43).
खर (**2.33**.10, 31, 58); हि० गधा, गदहा.
—गर्दभ (**2.17**.33; **32**.37).
—रासभ (**1.7**.53; **2.43**.36).
(i) Equus oreger indicus Blyth.
(ii) Equus asinus.
गज (**1.24**.6; **30**.18; **43**.17; **2.7**.5; **39**.56; **43**.34, 38); हि० हाथी.
—मातङ्ग (**1.7**.53).
—हस्तिन् (**1.18**.15; **30**.16; **2.32**.59; **33**.8).
Elephas maximus; Elephas indicus.
गर्दभ See खर.
गवय (**1.7**.53); हि० नीलगाय.
गृध्र (**2.17**.32); हि० गिद्ध.
Gaps bengalensis Gmelin.
गो see कपिला.
गोधा (**2.17**.35); हि० गोह.
Gavialis gangeticus.
गोमायु (**2.33**.9, 31); शृगाल, सियार, गीदड़.
—शृगाल (**2.17**.33).
Canis aureus Linn.
ग्रामकुक्कुट (**2.17**.33); हि० मुर्गा (पालतू).
चकोर (**2.17**.31); हि० चकोर.
Genus-Alectoris.
चक्रवाक (**1.47**.54; **2.17**.32; **33**.11); हि० चकवा.
Tedorna ferruginea (Pallas).
चाप (**2.33** 13); हि० नीलकण्ठ.
छाग see अज.
जालपाद (**2.17**.31; **33**.12); हि० कलहंस.

टिट्टिभ (**2.17**.32; **33**.12); हि० टटिहरी.
तित्तिर (**2.17**.37; **32**.53); हि० तीतर.
तुरग see अश्व.
दन्दशूक see उरग.
दात्यूह (**2.17**.31). हि० चातक, जलमुर्ग.
धेनु see कपिला.
नकुल (**2.32**.50, 51; **33**.10); हि० नेवला.
नाग see उरग.
न्यङ्कु (**1.7**.53); हि० वारहसिंगा.
पन्नग see उरग
पराजिता (**2.17**.37);
पाठीन (**2.17**.38);
A sort of fish.
पारावत see कपोत
पिपीलिका (**1.29**.32); हि० चींटी.
A member of the Phylum-Arthropoda, order-Hymenoptera.
पृषत see एण
प्लव (**2.33**.11); हि० मेढक, वन्दर.
—मण्डूक (**2.32**.50; **33**.14, 33).
फणी see उरग.
वक (**2.17**.37; **32**.54; **33**.11); हि० वगुला.
वर्हिण (**2.32**.54); हि० मयूर, मोर.
—मयूर (**1.11**.13; **2.17**.37)
Pavo cristatus Linn.
वलाका (**2.17**.31; **32**.54; **33**.11); हि० वगुला, (करचिया).
Egretta gazetta Linn.
वलीवर्द see अनड्डुह.
वैडाल (**1.28**.31; **2.16**.14); हि० विल्ली.
—मार्जार (**2.17**.33; **32**.51; **33**.10).
भास (**2.17**.32; **32**.54; **33**.33); हि० मुर्गा, गिद्ध.
भुजग see उरग
भुजङ्ग see उरग
भोगिन् see उरग
मण्डूक see प्लव
मत्स्य (**1.6**.18; **30**.11; **2.17**.36; **20**.40; **33**.13, 14); हि० मछली.
—मीन (**2.17**.37; **43**.38).

Class mammalia; order-catacea.
मयूर see वर्हिण
मर्कट see कपि
मशक (**2.11**.49); हि० मच्छर.
Phylum Arthopoda: Order-Deptera.
महाशल्क (**2.20**.44);
महिष (**1.11**.82, 111; **2.20**.42, 47; **33**.23); हि० भैंसा.
Bos bubalus; Bubalus bubalis Linn.
मक्षिका (**1.27**.33, 35); हि० मक्खी.
मातङ्ग see गज
मार्जार see वैडाल
मीन see मत्स्य
मूषक (**1.28**.26); हि० मूस, चूहा.
—मूषिक (**2.32**.50).
Mus musculus.
मूषिक see मूषक
मृग see एण
मृगी (**1.31**.4, 7); हि० हरिणी.
राजहंस (**1.47**.58); हि० हंस.
—हंस (**1.11**.190; **24**.57; **35**.25; **47**.54; **2.17**.31, 37; **32**.54; **33**.11; **40**.28).
Phoenicopterus roseus Pallas.
रासभ see खर.
रुरु see एण.
रोहित (**2.17**.38); हि० रोहू.
A sort of fish.
लोह see अज.
वत्स (**2.32** 53); हि० वछड़ा.
Vetus, Vetus-tus Vtuilus.
वत्सतरी (2 **32**.55); हि० वछिया.
वराह (**16**.18, 22; **15**.78; **2.20**.42; **32**.53; **33**.8; **35**.31; **43**.47, 50; **44**.62, 75); हि० सूकर, सूअर.
—वाराह (**1.6**.8; **15**.76).
—शूकर (**1.18**.15; **2.17**.33; **18**.120; **22**.34).
—सूकर (**2.22** 7).
Sus Cristatus Wagn.
वाजिन् see अश्व.

वार्ध्रीणस see खड्ग.
वानर see कपि.
वायस see काक.
वाराह see वराह.
व़ार्ध्रीणस see खड्ग.
विड्वराह (**2.17**.20; **33**.31).
वृष see अनडुह्.
वृषभ see अनडुह्.
वैयाघ्र see व्याघ्र.
व्याघ्र (**1.31**.5; **33**.17; **40**.8; **2.13**.33; **17**.33); हि० बाघ.
—वैयाघ्र (**2.5**.9).
—शार्दूल (**1.24**.6, 52; **31**.4, 6; **35**.11; **2.31**.34).
see Telis ligris.
व्याल see उरग.
शङ्ख (**2.33**.17; **43**.36); हि. शंख.
Conch, Congius. (Conch shell)
शफर (**2.17**.38); हि. A sort of fish.
शरभ (**1.24**.6); हि. (एक अष्टपादवाला सिंहघाती पशु),
हाथी का बच्चा, टिड्डी, ऊँट.
Locusta migratoria.
शल्क (**2.17**.36);
शल्यक (**2.17**.35); हि. साही. See श्वावित्.
A Porcupine.
शश (**2.17**.35; **20**.42); हि. खरगोश, खरहा.
Lepus ruficandatus Geoff.
शार्दूल see व्याघ्र.
शिशुमार (**2.33**.13); हि. सोंस.
Platanista gangetica
शुक (**2.17**.31; **32**.53; **33**.12); हि. तोता.
(i) Psittacula eupatra Linn.
(ii) Psittacula krameri Scopoli.
(iii) Psittacula cyano cephala Linn.
शुनि (**2.25**.19; **33**.16, 35, 72; **44**.138);
हि. कुतिया.
शूकर see वराह.
शृगाल see गोमायु.
श्येन (**2.17**.32; **22**.60; **32**.54); हि. बाज.
(i) Falco, biarmicus Gray.
(ii) Falco chicquera Daudin.
(iii) Falco linnunculus Linn.
श्वन् (**2.11**.117; **17**.2, 8, 26; **33**.73, 80)
हि कुत्ता.
—श्वान् (**2.17**.33; **22**.34; **32**.50, 51; **33**.8,).
Canis demesticus.
श्वान see श्वन्.
श्वापद (**2.33**.10); हि. व्याघ्र. A sort of tiger.
श्वावित् (**2.17**.35); हि. साही.
Hystrix leucura Gray and Hardwicke.
सर्प see उरग.
सारस (**2.33**.12); हि सारस.
(i) Grus antigone Linn.
(ii) Anthropoides Virgo Linn.
सिंह (**1.11**.198; **14**.42; **15**.42; **15**.49, 70, 220, 225, 227; **16**.63; **24**.6; **2.7**.12; **17**.33); हि. सिंह, शेर.
Panthera leo persica (Meyer); Felis leo.
सिंहतुण्ड (**2.17**.38);
A sort of fish.
सूकर see वराह.
हंस see राजहंस.
हय see अश्व.
हरि see अश्व.
हरिण see एण.
हस्तिन see गज

परिशिष्टम्—१ घ

APPENDIX—1 D

कूर्मपुराणे कथितानि आख्यानानि

(The list of *ākhyānas* or legends narrated in the Kūrma-Purāṇa)

श्रियः प्रादुर्भावोपाख्यानम्	१.१.२७—४१
इन्द्रद्युम्नोपाख्यानम्	१.१.४२—११८
ब्रह्मणा वराहरूपेण पृथिव्युद्धारोपाख्यानम्	१.६.१—२५ १.१५.७२—७८
ब्रह्मणः पद्मोद्भवत्वोपाख्यानम्	१.९.५—३८
मधुकैटभवधोपाख्यानम्	१.१०.१—६
शंकरस्य ब्रह्मपुत्रत्वोपाख्यानम्	१.९.५—१०.८४
देव्युत्पत्त्याख्यानम्	१.११.१३—३३६
पृथूपाख्यानम्	१.१३.१०—२१
सूतोत्पत्त्याख्यानम्	१.१३.१२—१५
सुशीलोपाख्यानम्	१.१३.२२—४९
दक्षयज्ञविध्वंसोपाख्यानम्	१.१३.५३—१४.९७
नृसिंहावतारोपाख्यानम्	१.१५.१७—७२
प्रह्लादचरितोपाख्यानम्	१.१५.७९—८८
अन्धकवधोपाख्यानम्	१.१५.८९—२३७
गौतमोपाख्यानम्	१.१५.९१—११८
विरोचनोपाख्यानम्	१.१६.१—११
वामनावतारोपाख्यानम्	१.१६.१२—६९
बाणोपाख्यानम्	१.१७.१—७
(प्रथम) युवनाश्वोपाख्यानम्	१.१९.१२—१८
वसुमनसः उपाख्यानम्	१.१९.२९—७५
रामचरितम्	१.२०.१७—६१
जयध्वजोपाख्यानम्	१.२.१२०—७८
दुर्जयोपाख्यानम्	१.२२.४—४७
नवरथोपाख्यानम्	१.२३.१२—२८
आनकदुन्दुभेरुपाख्यानम्	१.२३.४९—५५
कृष्णचरितम्	१.२३.६९—२६.२२
उपमन्योश्चरितम्	१.२४.३—४९
कृत्तिवासेश्वरमाहात्म्ये गजासुरोपाख्यानम्	१.३०.१६—१८
शङ्कुकर्णोपाख्यानम्	१.३१.१७—५३
पिशाचमोचने शार्दूलमृग्युपाख्यानम्	१.३१.३—९
व्यासस्य वाराणसीतो निर्गमनोपाख्यानम्	१.३३.२३—३६
वेदव्यासावतारोपाख्यानम्	१.५०.१—२५
शिवावतारोपाख्यानम्	१.५०.१—२९
कपालमोचनतीर्थोपाख्यानम्	२.३१.१—१११
सीतोपाख्यानम्	२.३३.११०—१४४
मङ्कणकोपाख्यानम्	२.३४.४५—७६
श्वेतनृपोपाख्यानम्	२.३५.११—३८
दारुवने शिवलिङ्गपतनोपाख्यानम्	२.३७.१—१६४
नैमिषोत्पत्त्याख्यानम्	२.४१.१—१५
नन्दीश्वरोत्पत्त्याख्यानम्	२.४१.१—४१

परिशिष्टम्—१ ङ

APPENDIX—1 E

कूर्मपुराणे प्रोक्तानां व्रतानामुपवासानां च नामानि

(The list of *vrata-s* and *upavāsa-s* mentioned in the Kūrma-Purāṇa)

परिशिष्टम्—१ च

APPENDIX—1 F

कूर्मपुराणे समागतानि स्तोत्राणि

(List of Stotras or Eulogies in the Kūrma-Purāṇa)

विष्णुस्तोत्राणि

स्तोत्रम् (स्तुतिः)	स्तुतिदेवः	स्तुतिकर्त्ता	स्थलनिर्देशः।
विष्णुस्तोत्रम्	विष्णुः	इन्द्रद्युम्नः	१.१.६८—७६
,,	वराहः	ऋषयः	१.६.११—२२
,,	विष्णुः	ब्रह्मा	१.१५ २५—२८
,,	विष्णुः	अदितिः	१.१६.१६—२३
,,	,,	प्रह्लादः	१.१६.३२—३६
,,	कूर्म (विष्णु)	मुनयः	२.४४.५४—६७

शिवस्तोत्राणि

स्तोत्रम् (स्तुतिः)	स्तुतिदेवः	स्तुतिकर्त्ता	स्थलनिर्देशः।
शिवस्तोत्रम्	शिवः	ब्रह्मा	१.१०.४३—७०
,,	शिवः (भैरवः)	अन्तरिक्षचराः	१.१५.१८०—१८३
,,	,,	अन्धकः	१.१५.१८८—२००
,,	,,	वसुमनाः	१.१९.६३—३६
,,	,,	श्रीकृष्णः	१.२४.६१—७८
,,	,,	ब्रह्मविष्णू	१.२५.८०—८८
,,	,,	कृष्णः	१.२५.१०२—१०९
,,	,,	व्यासः	१.२८.४२—५१
,,	,,	शङ्कुकर्णः	१.३१.३६—४६
,,	,,	मुनयः	२.१.३१—३५
,,	,,	,,	२.५.२२—४१
,,	,,	वेदाः	२.३१.१३—१६
शिवपार्वत्योः स्तोत्रम्	,,	ब्रह्मा	२.३१.५१—५६
,,	,,	श्वेतः	(सोमाष्टकम्) २.३५.२९—३२
,,	,,	मुनयः	२.३७.१०६—१२०

देवीस्तोत्राणि

स्तोत्रम् (स्तुतिः)	स्तुतिदेवः	स्तुतिकर्त्ता	स्थलनिर्देशः।
देवीस्तोत्रम्	देवी (पार्वती)	हिमवान्	१.११.७६—२११ (देव्याः अष्टोत्तरसहस्रनामात्मकम्

कूर्मपुराण

देवीस्तोत्रम्	देवी (पार्वती)	हिमवान्	१.११.२१९—२५७
,,	,,	अन्धकः	१.१५.२१२—२१८

ब्रह्मस्तोत्रम्

ब्रह्मणः स्तोत्रम्	ब्रह्मा	वसुमनाः	१.१६.५१—५५

सरस्वतीस्तोत्रम्

सरस्वतीस्तोत्रम्	सरस्वती	नवरथनृपः	१.२५.१७—२२

सूर्यस्तोत्रम्

सूर्यस्तोत्रम्	सूर्यः	ब्रह्मप्रदर्शितम्	२.१८.३४—४५ (सूर्यहृदयम्)

अग्निस्तोत्रम्

अग्निस्तोत्रम्	अग्निः	सीता	२.३३.११६—१२५ (वह्न्यष्टकम्)

APPENDIX II

(परिशिष्टम् २)

SUBJECT-CONCORDANCE OF THE KŪRMA-PURĀṆA WITH THE OTHER PURĀṆAS AND THE EPICS

कूर्मपुराणस्य विषयैः सह अन्यपुराणानां रामायणमहाभारतयोश्च समानविषयाणां संवादः

Several topics of the Kūrma-Purāṇa have their parallel topics in some of the other Purāṇas and the Epics. These parallel topics have similar contents and sometimes a number of parallel ślokas too. Such similarities of the topics, contents and the ślokas also help sometimes in reconstructing the text of the Kūrma-Purāṇa. A few such cases have been noted in the critical notes on the constituted text of the Kūrma-Purāṇa.

The topics are given here in the order of the Adhyāyas of the Kūrma-Purāṇa. The other Purāṇas containing the parallel topics are referred to below that in the alphabetical order. And then the Epics and the Harivaṁśa are referred to.

[कूर्मपुराणस्य कतिचिद् विषया अन्येषु पुराणेषु महाभारतरामायणादिषु चोपलभ्यन्ते। अत एषां समानविषयाणां संवादोऽत्र प्रदीयते। कुत्रचित् स्थलेषु समानविषयेषु मध्ये समानपाठा अपि प्राप्यन्ते। कूर्मपुराणस्य पाठनिर्धारणे क्वचित् संवादोऽयं सहायकोऽभूत्। कूर्मपुराणपाठस्य समीक्षात्मकटिप्पणीषु केषुचित् स्थलेषु एतत् साहाय्यं निर्दिष्टम्।

अत्र विषयाः कूर्मपुराणस्य अध्यायक्रमेण प्रदत्ताः। तदधः पुराणानां नामनिर्देशाः स्थलनिर्देशसहिता अकारादिक्रमेण कृताः। तदधश्च रामायणमहाभारतहरिवंशानां निर्देशो वर्त्तते।]

Scheme of Reference

1. The reference figures for the main divisions, adhyāyas and the ślokas are given in Devanāgarī numerals. But in the case of the भविष्यपुराण, शिवपुराण, and the स्कन्दपुराण the reference-figures for the subdivisions (other than the adhyāyas) are given in the International forms of the numerals.

2. The number of a śloka referred to is printed in smaller type.

3. In the case of the अग्निपुराण, ब्रह्मपुराण, मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वराहपुराण and वामनपुराण there are two reference numerals, the first denotes the number of the adhyāya and the second the number of the śloka referred to.

4. In the case of the कूर्मपुराण, गरुडपुराण, नारदीयपुराण, लिङ्गपुराण and वायुपुराण (Veṅkṭ, edn.) there are three reference numerals, of which the first (1 or 2) denotes the पूर्वखण्ड, पूर्वभाग, पूर्वार्द्ध (१) or the उत्तरखण्ड, उत्तरभाग, उत्तरार्द्ध (२) as the case may be, the second and the third reference-numerals respectively denote the number of the adhyāya and of the śloka referred to.

5. In the case of the ब्रह्माण्डपुराण (Veṅkṭ. edn.) there are three reference-numerals, of which the first (1, 2, or 3) denotes its पूर्वभाग (consisting of the प्रक्रियापाद and the अनुषङ्गपाद) (१), or मध्यभाग (= उपोद्घातपाद) (२), or the उत्तरभाग (= उपसंहारपाद) (३)

as the case may be; the second and the third reference-figures denote the numbers of the adhyāya and the śloka as usual.

6. In the case of the देवीभागवतपुराण (division—12 Skandhas), भागवतपुराण (d.-12 Skandhas), विष्णुपुराण (d.-6 Aṁśas) and विष्णुधर्मोत्तरपुराण (d.-3 Khaṇḍas) there are three reference numerals, the first denotes the number of Skandha, Aṁśa or Khaṇḍa as the case may be, the second and the third numerals denote the number of the adhyāya and the śloka as usual.

7. In the case of the पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भविष्यपुराण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, हरिवंश, महाभारत and रामायण, which give their main sub-divisions by name, the first reference-figure is for the serial number of the main division (viz. Khaṇḍa, Parva, Saṁhitā or Kāṇḍa) of these works; the second and the third numerals denote the number of the adhyāya and the śloka as usual.

If a main division has also certain *sub-divisions* other than the adhyāyas, then the serial number of a sub-division is given in the International form of the numerals within the square brackets [ ] just after the Devanāgarī reference-numeral of the main division.

स्थलनिर्देशपद्धतिः

१. ग्रन्थानां मुख्यविभागाः (खण्ड-काण्डादयः), अध्यायाः, श्लोकाश्च देवनागराङ्केषु निर्दिष्टाः सन्ति। परन्तु भविष्य-शिव-स्कन्दपुराणानां मुख्यविभागानामध्यायेतरोपविभागा अन्तरराष्ट्रियाङ्केषु निर्दिष्टाः।

२. निर्दिश्यमानश्लोकसंख्या लघुतरटाइपे मुद्रिता।

३. अग्निपुराण-ब्रह्मपुराण-मत्स्यपुराण-मार्कण्डेयपुराण-वराहपुराण-वामनपुराणानां निर्देशस्थले द्वौ निर्देशाङ्कौ स्तः, प्रथमेन अध्यायो निर्दिश्यते, द्वितीयेन श्लोकः।

४. कूर्मपुराण-गरुडपुराण-नारदीयपुराण-लिङ्गपुराण-वायुपुराणानां निर्देशे त्रयो निर्देशाङ्काः सन्ति, प्रथमेन (१ अथवा २ अङ्केन) एषां पूर्वखण्डः, पूर्वभागः, पूर्वार्द्धः (१), अथवा उत्तरखण्डः, उत्तरभागः, उत्तरार्द्धो (२) निदिष्टः, द्वितीयतृतीयौ निर्देशाङ्कौ यथाक्रमम् अध्यायं श्लोकं च निर्दिशतः।

५. ब्रह्माण्डपुराण (वेङ्कटे. सं०) विषये त्रयो निर्देशाङ्काः सन्ति, येषां मध्ये प्रथमोऽङ्कः (१, २ अथवा ३) अस्य पुराणस्य क्रमशः पूर्वभागं (प्रक्रियाऽनुषङ्गपादान्वितं) (१), मध्यभागं (उपोद्घातपादान्वितं) (२), उत्तरभागं (उपसंहारपादान्वितं) (३) वा निर्दिशति। द्वितीयतृतीयाङ्कौ च क्रमशोऽध्यायं श्लोकं च निर्दिशतः।

६. देवीभागवतपुराण-भागवतपुराण-विष्णुपुराण-विष्णुधर्मोत्तरपुराणानां च विषयेऽपि त्रय एव निर्देशाङ्काः सन्ति, प्रथमो निर्देशाङ्को यथाप्रकारं स्कन्ध-अंश-खण्डानां क्रमसंख्यां निर्दिशति, द्वितीयतृतीयौ चाङ्कौ अध्यायश्लोकौ क्रमशो निर्दिशतः।

७. पद्म-ब्रह्मवैवर्त-भविष्य-शिव-स्कन्दपुराणानां हरिवंश-महाभारत-रामायणानां च विषये प्रथमो निर्देशाङ्को मुख्यविभागं (खण्डं, संहिता, पर्व, काण्डं वा)-क्रमसंख्यां निर्दिशति, द्वितीयतृतीयाङ्कौ च यथापूर्वं क्रमशः अध्यायं श्लोकं च निर्दिशतः।

परन्तु यदि मुख्यविभागस्य अध्यायेतरा उपविभागा अपि वर्त्तन्ते, यथा भविष्य-शिव-स्कन्दपुराणेषु, तदा उपविभागस्य क्रमसंख्याया निर्देशो अन्तरराष्ट्रियाङ्केन मुख्यविभागनिर्देशानन्तरमेव एतादृशे [ ] कोष्ठे क्रियते।

Abbreviations and Reference-Details

(प्रयुक्तसंकेतव्याख्या निर्देश-विवरणं च)

अग्नि. = अग्निपुराणम्; Published by (Pub.) आनन्दाश्रम, पूना 1957. [Ref. अध्याय. श्लोक].

कूर्म. = कूर्मपुराणम्; पाठसमीक्षात्मकसंस्करणम् (Critical-Edition), Pub. सर्वभारतीयकाशिराजन्यास, रामनगर, वाराणसी. 1971. [Ref. विभाग (१. पूर्वविभाग, २. उपरिविभाग). अध्याय. श्लोक].

गरु. = गरुडपुराणम्; Pub. चौखम्बासंस्कृतसीरीज आफिस, वाराणसी. 1964 [Ref. खण्ड (१. पूर्वखण्ड, २. उत्तरखण्ड Called प्रेतकल्प). अध्याय. श्लोक].

देवी-भा. = देवीभागवतपुराणम्; Pub. संस्कृतपुस्तकालय, बनारस. [Ref. स्कन्ध. अध्याय. श्लोक].

नार. = नारदीयपुराणम्; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. 1923 (सं० १९८०). [Ref. भाग (१. पूर्वभाग, २ उत्तरभाग). अध्याय. श्लोक].

पद्म. = पद्मपुराणम्; Pub. मोर, कलकत्ता (= वेङ्कटेश्वरप्रेससंस्करणम्). [Ref. खण्ड. अध्याय. श्लोक].

Khaṇḍas—

१. सृष्टिखण्ड (= आनन्दाश्रम, ५); २. भूमिखण्ड (= आनन्दाश्रम, २); ३. स्वर्गखण्ड (= आनन्दाश्रम, १. आदिखण्ड); ४. ब्रह्मखण्ड (= आनन्दाश्रम, ३); ५. पातालखण्ड (= आनन्दाश्रम, ४); ६. उत्तरखण्ड (= आनन्दाश्रम, ६).

ब्रह्म. = ब्रह्मपुराणम्; Pub. मोर, कलकत्ता. [Ref. अध्याय. श्लोक].

ब्रह्मवै. = ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्; Pub. आनन्दाश्रम, पूना. 1935 [Ref. खण्ड. अध्याय. श्लोक].

Khaṇḍas—

१. ब्रह्मखण्ड, २. प्रकृतिखण्ड, ३. गणपतिखण्ड, ४. श्रीकृष्णजन्मखण्ड.

ब्रह्माण्ड. = ब्रह्माण्डपुराणम्; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. 1935 (सं. १९९२). [Ref. भाग (१. पूर्वभाग, २. मध्यभाग, ३. उत्तरभाग). अध्याय. श्लोक].

भवि. = भविष्यपुराणम्; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई, [Ref पर्व. अध्याय. श्लोक].

Parvans—

१. ब्रह्मपर्व; २. मध्यमपर्व; [-1. प्रथमभाग; २. द्वितीयभाग; ३. तृतीयभाग]; ३. प्रतिसर्गपर्व [-1. प्रथमखण्ड; २. द्वितीयखण्ड; 3. तृतीयखण्ड; 4. चतुर्थखण्ड]; ४. उत्तरपर्व.

भाग. = भागवतपुराणम्; Pub. गीताप्रेस, गोरखपुर. 1956 (सं. २०१३). [Ref. स्कन्ध. अध्याय. श्लोक].

मत्स्य. = मत्स्यपुराणम्; Pub. मोर, कलकत्ता. 1954. [Ref. अध्याय. श्लोक].

महाभा. = महाभारतम्; Pub. चित्रशालाप्रेस, पूना. 1929-33. [Ref. पर्व. अध्याय. श्लोक]. The corresponding portions in the critical edition of the Mahābhārata may easily be identlfied for studying the variant texts.

Parvans—

१. आदि-; २. सभा-; ३. वन-; ४. विराट-; ५. उद्योग-; ६. भीष्म-; ७. द्रोण-; ८. कर्ण-; ९. शल्य-; १० सौप्तिक-; ११. स्त्री-; १२. शान्ति-; १३. अनुशासन-; १४. आश्वमेधिक-; १५. आश्रमवासिक-; १६. मौसल-; १७. महाप्रास्थानिक-; १८. स्वर्गारोहण—.

मार्क. = मार्कण्डेयपुराणम्; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. [Ref. अध्याय. श्लोक].

रामा. = रामायणम्; Printed at M. L. J. Press, मद्रास. 1950 [Ref. काण्ड. सर्ग. श्लोक].

Kāṇḍas—

१. बाल-; २. अयोध्या-; ३. अरण्य-; ४. किष्किन्धा-; ५. सुन्दर-; ६. युद्ध-; ७. उत्तर-.

लिङ्ग. =लिङ्गपुराणम्; Pub. मोर, कलकत्ता. [Ref. अर्द्ध (१. पूर्वार्ध; २. उत्तरार्ध). अध्याय. श्लोक].

वरा. =वराहपुराणम्; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. 1923 (सं० १९८०). [Ref. अध्याय. श्लोक].

वाम. =वामनपुराणम्; पाठसमीक्षात्मकसंस्करणम् (Critical Edition), Pub. सर्वभारतीय-काशिराजन्यास, रामनगर, वाराणसी, 1967 [Ref. अध्याय. श्लोक].

वायु. =वायुपुराणम्; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. 1933 [Ref. अर्ध (१. पूर्वार्ध; २. उत्तरार्ध). अध्याय. श्लोक].

विष्णु. =विष्णुपुराणम्; Pub. गीताप्रेस, गोरखपुर. [Ref. अंश. अध्याय. श्लोक].

विष्णुध. =विष्णुधर्मोत्तरपुराणम्; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. [Ref. खण्ड. अध्याय. श्लोक].

शिव. =शिवपुराणम्; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. [Ref. संहिता. अध्याय. श्लोक].

Saṃhitās—

१. विद्येश्वरसंहिता; २. रुद्रसंहिता [-1. सृष्टिखण्ड; २. सतीखण्ड; 3. पार्वतीखण्ड; 4. कुमारखण्ड; 5. युद्धखण्ड]; ३. शतरुद्र-संहिता; ४. कोटिरुद्रसंहिता; ५. उमासंहिता; ६. कैलाससंहिता; ७. वायवीयसंहिता [-1 पूर्व-भाग; २. उत्तरभाग].

स्कन्द =स्कन्दपुराणम्; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई. [Ref. खण्ड. अध्याय. श्लोक]

Khaṇḍas—

१. माहेश्वरखण्ड [-1. केदारखण्ड; २. कौमारिकाखण्ड; 3. अरुणाचलमाहात्म्य (i) पूर्वार्द्ध, (ii) उत्तरार्ध].

२. वैष्णवखण्ड [-1 वेङ्कटाचलमाहात्म्य; २. पुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्य; 3. बदरिकाश्रम-माहात्म्य; 4. कार्तिकमासमाहात्म्य; 5. मार्ग-शीर्षमाहात्म्य; 6. भागवतमाहात्म्य; 7. वैशाख-माहात्म्य; 8. अयोध्यामाहात्म्य; 9. वासुदेव-माहात्म्य].

३. ब्राह्मखण्ड [-1. सेतुमाहात्म्य; 2. धर्मारण्यखण्ड; 3. चातुर्मास्यमाहात्म्य; (अयमंशोऽस्य खण्डस्य कलिकातामुद्रितमोर-संस्करणे एव वर्त्तते एष च तत्र लखनऊ मुद्रित-पुस्तकादुद्धृतः); 4. ब्राह्मोत्तरखण्ड].

४. काशीखण्ड (पूर्वार्ध = अ. १-५०; उत्तरार्ध = ५१-१००).

५. अवन्तीखण्ड [-1. अवन्तीक्षेत्रमाहात्म्य; 2 चतुरशीतिलिङ्गमाहात्म्य; 3. रेवाखण्ड].

६. नागरखण्ड.

७. प्रभास-खण्ड [-1 प्रभासक्षेत्रमाहात्म्य; 2. वस्त्रापथ (गिरनार) क्षेत्रमाहात्म्य: 3. अर्बुद-खण्डमाहात्म्य; 4. द्वारकामाहात्म्य].

हरिवं. =हरिवंश; Pub. चित्रशालाप्रेस, पूना. [Ref. पर्व. अध्याय. श्लोक].

Parvans—

१. हरिवंशपर्व; २. विष्णुपर्व; ३. भविष्य-पर्व.

विषयसंवादः (SUBJECT-CONCORDANCE)

सूतोत्पत्तिः (Birth of Sūta)
(कूर्म. १.१.६; १.१३.१२-१७)

ब्रह्माण्ड. १.३६.१५९-१७३	विष्णु. १.१३.५०-५३
वायु. १.१.२७-३३	

पुराणलक्षणम् (Definition of 'Purāṇa')
(कूर्म. १.१.१२)

अग्नि. १.१४	ब्रह्मवै. ४.१३३.४-६
गरु. १.२१५.४	ब्रह्माण्ड १.१.३७
देवीभा. १.२.१८-२५	भवि. १.२.४-५
भाग. १२.७.७-१०; २.१०.१	वायु. १.४.१०
मत्स्य ५३.६४	विष्णु. ३.६.१५,२५; ६.८.२,१३
मार्क. १३४.१३	शिव. ७ [1].१.४१
वरा. २.४	स्कन्द. ७ [1].२.८४

पुराणनामानि (List of the Purāṇas)
(कूर्म. १.१.१३-२०)

अग्नि. २७२.१-२६	देवीभा. १.३.१-१७
गरु. १.२१५.१५-२१	नार. १.९२.२६-२८

पद्म. ६.२३६.१३-२० | लिङ्ग. १.३९.६१-६३
ब्रह्मव. ४.१३३.७-२२ | वरा. ११२.७४-८२
भवि. १.१.६१-६४ | वायु. २.४२.१-११
भाग. १२.१३.३-९; १२.७.२२-२५ | विष्णु. ३.६.२०-२४
| शिव. ७ [1]. १.४३-४५
मत्स्य. ५३.१२-६३ | स्कन्द. ७ [1]. २.१-८३; ५.४४.१२०-१४०
मार्क. १३४.८-१२

कूर्मावतारः (Kūrma-Incarnation)
(कूर्म. १.१.२७-४१)

अग्नि. ३.१-८ | मत्स्य. २४८.२७-५४
गरु. १.१४२.२-४ | विष्णु. १.९.७५-९१
देवीभा. ८.१०.१-५ | विष्णुध. १.१७९.१-११; १.३९.१०-४०.४३
पद्म. ६.२३२.१-४
भाग. ८.७.१-१६
हरिवं. ३.३०.१-३२

चातुर्वर्ण्योत्पत्तिर्वर्णाश्रमधर्माश्च (Origin of four Varṇas and duties of the four Varṇas and Āśramas)
(कूर्म. १.२.२४-३.२८)

अग्नि. १५१.१-१५४.१९; १६६.१-२८ | भवि. १.४२.१-४४.३३
गरु. १.४९.१-३९ | भाग. ७.११.१-१५
नार. १.२४.१-२७.१०६; १.४३.१०५-१२७; १.४३.५२-७०; १.५९.१-१५; १.६६.१-७८ | मार्क. २५.४-३७
| वाम. १४.४-१५.६७
| वायु. १.८.१५६-१८९
| विष्णु. ३.८.१-१३.४०
| विष्णुध. ३.२२७.१-२२८.९
पद्म. ३.५१.५-६८ | स्कन्द. २ [9].२०.११-३६
ब्रह्म. २२२.१-५६
ब्रह्मवै. ४.८३.१-८४.४१
ब्रह्माण्ड १.७.१५१-१९५; १.२९.५५-९२

महाभा. ३.१५०.३०-५२; ३.१८०.२०-३८; १२.९.१-३७; १२.२३.२-२४.३४; १२.४५.१३-४७.१७; १२.२३४.१-२३५.३२; १२.२४२.१३-२४६.२३; १३.१४१.२५-१४३.५९; १४.४६.१-४७.१७

हरिवं. ३.२४.१-१५

तिस्रो भावनाः (Three religious concepts)
(कूर्म. १.२.९१-९६)

गरु. १.४९.१८-१९ | विष्णु. ६.७.४८-५१
नार. १.४७.२४-२८

भस्मादिमाहात्म्यम् (The glorification of Ashes etc.
कूर्म. (१.२.१०४-१११)

देवीभा. ११.१०.१-१५.७६
शिव. १.२४.११६; ७ [2]. २१.३२-३७

कालमानम् (Computation of Time)
(कूर्म. १.५.१-२३)

अग्नि. १२२.१-२४ | लिङ्ग. १.४.१-४३
नार. १.५.२१-३१ | वायु. १.५७.१-३८; २.३८.२११-२२७
पद्म. १.३.२-२३
ब्रह्मवै. १.५.४-१६; २.७.७०-७३ | विष्णु. २.८.६०-८३; ६.३.६-१२; १३.५-२८
ब्रह्माण्ड. १.७.९५-११६; १.२९.१-४३; ३.२.९१-११० | विष्णुध. १.७२.१-७३.१९
| शिव. २ [1]. १०.१६-२५; ७ [1]. ८.१-३१
भाग. ३.११.६-३८
मार्क. ४३. २३-४४ | स्कन्द. १ [२]. ३९. ४७-६६; २ [1]. ३६. ३०-३४; ६. १९४. ११-३१; ७. [1]. १०५. ३३-३९; ७. १९. १-१७

महाभा. १२.२३१.१-३२; ३.१८८.१७-२९.१२.३११.१-७
हरिवं. १.८.१-४५; ३. ८.१-२९

वराहावतारः (Varāha-Incarnation)
(कूर्म. १.६.१-२१; १.१५.६९-७८)

देवीभा. ८.१.१-२.३८ | वरा. ११४.१-१०
पद्म. १.३.२५-५५ | वायु. १.६.१-२५; १.१६.७८-८४
ब्रह्माण्ड. १.५.६-२६; १.७.१-१० | विष्णु. १.४.१-५२
| विष्णुध. १.३.१-१२; १.१२६.१-३१
भाग. ३.१३.१६-१९.३८
मत्स्य. २४६.१-२४७.७६ | शिव. २ [5]. ४२.४२-४९
लिङ्ग. १.९४.१-३२ | स्कन्द २ [1]. ३६.१-२६

महाभा. ३.२७२.४९-५५; १२.३४९.७६-७७; १२.२०९.१-३६
हरिवं. ३.३३.१-३५.५०; १.४०.१-४१.३८

सृष्टिः (Account of creation)
(कूर्म. १.२.३-२३; १.७.१-१०.४०)

अग्नि. १७.१-१७;
२०.१-२३
गरु. १.४.१-३७
नार. १.३.१-४५;
१.४२.१-११३
पद्म. १.२.१-३.२०६
ब्रह्म. १.३१-५६
ब्रह्मवै. १.४.१-७.२०;
२.१.१-३.२०;
२.८.६-६५
ब्रह्माण्ड. १.३.१-७.१५३
भवि. १.२.१-११२;
२.२.२-२७
भाग. २.५.१-६.३१;
३.१०.१-१२.५६
३.२०.१-५३;

मत्स्य. ३.१-४.५५
मार्क. ४२.२०-४९.३१
लिङ्ग. १.३.१-३६;
१.३८.१-१५;
१.७०.१-३४७
वरा. २.१-५४; ९.१-३५;
१८७.१६-८७
वाम. स.मा. २२.१६-४३
वायु. १.१.४२-४५;
१.३.६-५.५०;
१.६.३२-८.१६८
विष्णु. १.२.१-८.३५
विष्णुध. १.२.१-२०;
१.१०७.१-६७
शिव. ७ [1].१०.१-१२.७७
स्कन्द. २ [9].२४.८-५७;
१ [2].१४.८-४५;

महाभा. १.६५.६-६६.७२; ६.६७.१-६५;
१०.१७.९-१८.२६; १२.१६६.११-२८;
१२.१८२.१-१८८.१६; १२.२०७.१-२०८.३६
१२.२३२.१-४३;

हरिवं. १.१.२७-४६; ३.११.१-१४.६७.

स्वायंभुवमनुवंशः (the Genealogy of Svāyambhuva Manu)
(कूर्म. १.८.१-१३; १.१३.१-११)

अग्नि. १८.१-२६.
गरु. १.५.१८-३४
देवीभा. ८.३.१-१३
पद्म. १.३.१७६-१८१
ब्रह्म. १.५१-२२०
ब्रह्मवै. १.९.१-२२
भाग. ३.१२.५३-५६
मत्स्य. ३.१-२७

मार्क. ५७.६-२०
लिङ्ग. १.७०.२६७-३००
वरा. २.५५-५६
वायु. १.१०.७-२३
विष्णु. १.७.१६-१३८
शिव ७ [1].१७.१-६;
२ [1].१६.१२-१८;
५.३० १-१५

महाभा. १.८.१-३०; १.१४.१-६५
हरिवं. १.२.१-४७

दक्षोत्पत्तिस्तस्य कन्यावंशवर्णनञ्च (Birth of Dakṣa and description of the descendants of his daughters)
(कूर्म. १.८.१४-२६; १.१२.१-२३; १.१३.५३-६४; १.१५.१-१६.६६)

अग्नि. १८.२७-१९.२१
गरु. १.५.५-६ ३०;
१.६.१२-६५
पद्म. १ ३.१८२-१९६
ब्रह्म. २.४६-५०
ब्रह्मवै. १.९.७-१५
ब्रह्माण्ड २.३.१-७.४३९;
१.३७.२२-४२
भाग. ६.६.१-४५
मत्स्य. ५.१-२३
मार्क. ४७.२०-२७

लिङ्ग. १.६३.१-६५
वायु. २.४.१२१-१५६
विष्णु. १.१५.६-१५७;
१.७.५-९.३८
विष्णुध. १.११०.१-४०
शिव. ५.३०.२५-४६;
७.[1].१७.१०-३५;
२[1].१६.१८-३४;
५.३०.४७-३१.१६
२[2].१४.१-५६
स्कन्द. १[2].१४.८-४५;
७[1].२१.३-३४

हरिवं. १.२.३१-५७; १.३.२७-६६;
३.१४.२६-६७; ३.३६.२०-६०

पृथुचरितम् (Pṛthu-Legend)
(कूर्म. १.१३.१२-५२)

पद्म. १.८.३-३५
ब्रह्माण्ड. १.३६.११०-२२७
भाग. ४.१५.१-२४.१८
मत्स्य. १०.१-३५
वाम. स.मा. २६.२१-५०
हरिवं. १.२.२०-२७

वायु. २.१.७०-२.२१
विष्णुध. १.१०८.१-१०९.५७
शिव. ५.३०.१६-२८
स्कन्द. ७[1].३३६.६८-१०१

पद्मोद्भवप्रादुर्भावः (Birth of Brahmā from Lotus)
(कूर्म १.९.१-३६)

पद्म. १.४२.१-१८
भाग. ३.८.१-२३

विष्णुध. १.७६.१-३०
स्कन्द. २ [9].२४.१७-३१

रुद्रकृता सृष्टिः (Creation by Rudra)
(कूर्म. १.१०.१७-८८)

पद्म. १.३.१९६-२०५
भाग. ३.१२.७-२०
मार्क. ४९.१-३१
वायु. १.२७.१-६०

विष्णु. १.७.१०-८.१४;
१.१५.१२२-१२५
शिव. ७ [1]. १४.१-२१
स्कन्द. २[9].२४.३६-७३

देवीमाहात्म्यम् (Glorification of the Goddess)
(कूर्म. १.११.१-३३६)

देवीमा. ७.३१.६५-४०.४४; १२.६.१-१६५
पद्म. १.४२.२७७-४४२
मत्स्य. १५३.१-५८७
मार्क. ८२.१-८४.६६
वाम. १८.३६-२१.५०; २६.१-३०.७३
वायु. १.९.७७-९०
शिव. २ [3]. ५.१-६.५४
स्कन्द. १ [2]. २२.३०-५०; ७ [2]. ९.५०-५१

दक्षयज्ञविध्वंसः (Destruction of Dakṣa's Sacrifice) (कूर्म. १.१४.१-९७)

गरु. १.५.३१-३४
नार. २.६६.५-१७
पद्म. १.५.३-९३
ब्रह्म. ३४.१-३५.६४; ३९.१-९७
ब्रह्माण्ड. १.१३.४४-८८
भाग. ४.२.१-७.६१
मत्स्य. ७०.१०-१६
लिङ्ग. १.९९.१-१००.५१
वरा. २१.१२-९०
वाम. २.७-५.६१
वायु. १.३०.३७-३१६
विष्णुध. १.१०७.६८-११६; १.२३४.१-२३५.३६
शिव. २ [2]. १.१-४६; २ [2]. २७.१-४३.४४; ७ [1]. १८.१-२३.५०
स्कन्द. १ [1]. २.१-५.४७; ४ ८७.१-८९.१३६; ७ [1]. १९९.१-५६; ७ [2]. ९.१६-१३६
महाभा. १०.१८.१-२६; १२.२८४.१-२०८; १३.१६०.११-२४
हरिवं. ३.३२.१-६३

नृसिंहावतारः (Nṛsiṁha-Incarnation)
(कूर्म. १.१५.१८-८८)

ब्रह्माण्ड. २.५.११-४५
भाग. ७.२.१-१०.३१
मत्स्य. १६.२०-६४
लिङ्ग. १.९५.१-३०
वायु. २.६.४८-६६
विष्णु. १.१६.१-२०.३९
विष्णुध. १.५३.१-५४.५२
शिव. १ [5]. ४३.१-४१
महाभा. ३.२७२.५६-६०; (१३.३३९.७८; १२.३४०.३१ गद्यम्)
हरिवं. ३.४१.१-४७.३८; १.४१.३९-७८

दारुवनस्थेभ्यो मुनिभ्यो गौतमशापकथा
(The Story of Gautama's curse on the Sages of Dāruvana)
(कूर्म. १.१५.६१-११६)

देवीमा. १२.९.१-१००
नार. २.७२.१-३५
ब्रह्म. ७४.२२-८८
वरा. ७१.१-६७
शिव. २[2]. १७.१-४३; ४.२५.१-२७.५०

अन्धकचरितम् (Andhaka-Legend)
(कूर्म. १.१५.११९-२३७)

पद्म. १.४८.१-९१; १.१३.४९-७३
मत्स्य. १७८.१-८९
लिङ्ग. १.९२.१८७-९३.२६
वरा. २८.१-४३
वाम. ९.१-१०.५७; ३ ३.१६-४४.६६
हरिवं. २.८६.१-८७.३९
विष्णुध. १.२२६.१-८३
शिव. २ [5]. ४२.८-४९.५२
स्कन्द. ५ [1]. ४७.९-४९.४१; ५ [3]. ४५.१-४८.४६; ६.१४९.१३-१५१; ७ [2]. ९.१५१-१६६

बलिवामनचरितम् (Bali-Vāmana Legend)
(कूर्म. १.१६.१-६९)

अग्नि. ४.५-११
नार. १.१०.१-११.६७
पद्म. १.३०.१-२०३
ब्रह्म. ७३.१-६६; २१३.८०-१०५
ब्रह्माण्ड. २.७३.७५-८७
भवि. ४.७६.१-२७
भाग. ८.१५.१-२३.३१
मत्स्य. २४३.१-२४५.९६
वाम. स.मा. २.१-१०.९१; ५०.१-५१.५७; ६२.१-६६.१८
वायु. ३६.७४-८६
विष्णुध. १.२१.१-३१; १.५५.१-५६; ३.३४.१-११
स्कन्द. १[1]. १७.२७६-१९.६३; ५[1]. ७४.२३५-२७०; ५[3]. १५१.११-१३; ७[1]. ११४.१-११; ७[2]. १४.८-८३; ७[4]. १८.१०-१४
महाभा. ३.२७२.६१-७६
हरिवं. ३.४८.१-७२.१०७; १.४१.७९-१०३

कश्यपवंशवर्णनम् (Description of the descendants of Kaśyapa) (कूर्म. १.१७.८-१८.७)

अग्नि. १९.१-२९
देवीमा. ७.२.१३-१५
पद्म. १.६.३३-७९; १.७.२-९७
ब्रह्मवै. १.९.१-४७
ब्रह्माण्ड. २.३.५५-७.४३९
भाग. ६.६.२५-२९
मत्स्य. ६.१-४७
विष्णु. १.२१.१-२९
विष्णुध. १.१२०.१-१२८.४०
शिव. ५.३२.१-५२
स्कन्द. ७.२१.१०-३४

वैवस्वतमनुवंशवर्णनम् (Description of the descendants of Vaivasvata Manu)
(कूर्म १.१९.१-२०.६१)

देवीभा. ७.२.१६-२८.८३ मार्क. ७४.१-७६.१३
भाग. ८.१.१-१३.२७ विष्णु. ४.१.६-२४.१३८
हरिवं. १.१०.१-१५.३८

आदित्यवंशः (Description of the Solar Dynasty)
(कूर्म. १.१९.१-३)

गरु. १.१३८.१-५८ वरा. २०.१-७
पद्म. १.८.३५-७४ वायु. २.२१.१-२६
ब्रह्म. ६.१-५४ विष्णु. ४.१.६-५.३४
भाग. ६.६.३८-४१; विष्णुध. १.१०६.६२-६१
९.६.१७-२१ शिव. ५.३५.१-४२
हरिवं. १.९.१-६६

इक्ष्वाकुवंशः (Description of the descendants of Ikṣvāku) (कूर्म. १.१९.४-२०.१७)

पद्म. १.८.१२०-१६२ विष्णु. ४.२.११-४.११३
ब्रह्म. ७.१-८.८६ विष्णुध. १.१४.१-२३.६
भाग ९.६.१-९.३१ शिव. ५.३६.४७-३८.४६
रामा. २.११०.१-३६

रामचरितम् (Story of Rāma)
(कूर्म. १.२०.१७-६१)

अग्नि. ५.१-११.१४ भवि. ३ [1].२.७
गरु. १.१४३.१-५१ भाग. ९.१०.१-११.३६
देवीभा. ३.२८.१-३०.६३ मत्स्य. १२.४६-५१
नार. १.७९.१-२६; लिङ्ग. १.६६.३४-४८
२.७५.१-७९ विष्णु. ४.४.८७-१०४
पद्म. ६.२४२.१-२४४.१०० विष्णुध. १.२२१.४७-२२९.३३
ब्रह्म. १२३.८४-२१७; स्कन्द. १ [1].८.६५-११५;
२१३.१२३-१५८ ३[२].३०.१-१०९
ब्रह्मवै. ४.६२.१-९९
ब्रह्माण्ड २.८३.१८५-१९८
महाभा. १२.२९.५१-६२; ३.२७३.१-२९२.१४
हरिवं. १.४१.१२१-१५५

सोमवंशवर्णनम् (Description of the Lunar dynasty) (कूर्म. १.२१.१-२२.४७)

गरु. १.१३९.१-१४१.१६ ब्रह्म. ९.१-१०.६८
पद्म. १.८.७५-१२०; ब्रह्माण्ड. २.६५.१-७४.१०६
१.१२.१-१४०

भाग. ९.१४.१-२२.४६ वायु. २.२८-३६ अ.
मत्स्य. ११, २३-४७ अ. विष्णु. ४.६.१-२०.५३
हरिवं. १.२५.१-३९.४२
रामा. ७.८७.१-९०.२४

यदुवंशवर्णनम् (Description of the descendants of Yadu (कूर्म. १.२३.१२-२६.२२)

पद्म. १.१३.१-६६
ब्रह्म. १३.२०५-१५.६२ लिङ्ग. १.६८.१-५१
भाग. ९.२३.१-१०.९०.५० विष्णु. ४.११.१-१६.६
महाभा. १३.१४.२६-१५.११
हरिवं. १.३०.१-३५.२२

कृष्णचरितम् (Story of Kṛṣṇa)
(कूर्म. १.२३.६९-२६.२२)

अग्नि. १२.१-५६ ब्रह्माण्ड. २.७१.१६४-२५४
गरु. १.१४४.१-११ भाग. १०.१.१-९०.५०
देवीभा. ४.२३.१-५.८३ मत्स्य. ४७.१-२७
पद्म. १.१३.१३४-१६६ विष्णु. ५.१.१-३८.९४
ब्रह्म. १८२.१-२०९.२३ शिव. ५.१.१-३.४५;
ब्रह्मवै. ४.७.१-३२.८२; ७ [2].१-२७
५२.१-१२९.१११
हरिवं. १.३५.१-२२; ३.७३.१-९०.३८

उपमन्युचरितम् (Story of Upamanyu)
(कूर्म. १.२४.१-४७)

देवीभा. ४.२५.२७-५८ शिव. ३.३२.१-७८;
लिङ्ग. १.१०७.१-६४ ७[1]. ३४.१-३५.६५;
५.१.१-७१

युगधर्मकथनम् (Description of the practices prevalent in different Yugas)
(कूर्म. १.२७.८-५७; १.२८.१-३१)

देवीभा. ६.११.११-५५; मत्स्य. १६४.१-२४
६.८.१५-६५ लिङ्ग. १.४०.१-१००
नार. १.४१.१-१२३ वरा. ६८.३-७
ब्रह्मवै. ४ [2]. ९०.१-८० विष्णु. ६.३.६-६०
ब्रह्माण्ड. १.२९.१-३२.१९; विष्णुध. १.७३.२०-४०
१.७.४३-६६ शिव. ७ [1]. ८.१-३१
भाग. १२.३.१८-५२

महाभा. १२.६६.८१-१००; ३.१४९.१-४०;
३.१८८.२६-६६; ३.१६०.१-६७;
१२.३४०.८२-८७.

हरिवं. ३.३.१-४.५३

वाराणसीमाहात्म्यम् (Glorification of Vārāṇasī)
(कूर्म. १.२९.१-३३.३६)

अग्नि. ११२.१-७
नार. १.६.३४-७०;
२.२९.१-७२;
२.४८.१-५१.४८
पद्म. ३.३३.१-३६.१३
मत्स्य. १७६.१-१८४.६८
लिङ्ग. १.१०३.७-७८
शिव. ४.२३.१-५७
स्कन्द. ४.२५.२०-७८
४.२६.१२६-१४८;
४.३०.१-२३;
४.६४.३०-७०;
४.५.६-३३;
४.२७.१-१५५;
४.२८.१-३५;
४.६८.२७-६३;
७ [1]. ३८.१-५६;
४.३३१.७०

प्रयागमाहात्म्यम् (Glorification of Prayāga)
(कूर्म. १.३४.१-३६.१५)

अग्नि. १११.१-१४
नार. २.६२.१-६३.१७४
पद्म. ३.४१.१-४३.५७;
३.४६.१-४८;
६.२४.१-२३
मत्स्य. १०२.१-१११.२२
स्कन्द. ४.२२.५६-७६;
२ [4]. १३.४५-५३

गङ्गामाहात्म्यम् (Glorification of the River Gaṅgā)
(कूर्म. १.३७.७-१७)

अग्नि. ११०.१-६
नार. २.३८.१-४३.१३६
पद्म. ३.४५.-३५
भाग. ६.६.१-१५
विष्णु. २.८.१००-१२४;
२.९.१३-१८
विष्णुध. १.१९.१-२२.३४

हरिवं. १.१५.१५-१६

रामा. १.३५.६-२३; १.४३.१-४४.२३

भुवनकोषः (Bhuvana Koṣa)
(कूर्म. १.३८.१-४४; १.४३.१-४८.२४)

अग्नि. १०७.१-१०८.३३;
११८.१-१२०.४२
गरु. १.५४.१-५७.६
देवी.भा. ८.४.१४-१४.१४;
८.१८.१४-२३.३१
नार. १.३.३७-४६
पद्म. ३.३.१-६.४२
ब्रह्म. १८.१-२४.२६
ब्रह्माण्ड. १.१४.१-२०.५८
भवि. २ [1].३.१-४.२३
भाग. ५.१६.१-२६.४०
मत्स्य. ११२.१-१२२.६४
मार्क. ५०.१५-५२.२३
लिङ्ग. १.४५.१-५३.६२
वरा. ७४.१-८९.७
वाम. ११.३१-१३.५८
वायु. १.३३.१-४९.१८६
विष्णु. २.२.१-६.५१
विष्णुध०. १.४.१-१३.१३
शिव. ५.१५.१-१८.७७
स्कन्द. १ [2].३७.१-८७;
३ [3].२९.३७-५५;
६.२६१.३६-५३;
७ [1].११.६-४४

महाभा. ६.५.-१२.५२

ज्योतिषसन्निवेशः (Jyotiṣasanniveśa)
(कूर्म. १.३९.१-४१.४२)

गरु. १.५८.१-३०
देवीभा. ८.१४.१५-१८.१४
ब्रह्म. २३.१-१२;
२४.१-२६
ब्रह्माण्ड. १.२१.१-२४.१५२
भवि. २ [1].४.२४-४४;
१.१२५.२८-६८
भाग. ५.२१.१-२४.३१
मत्स्य. १२३.१-१२७.३६
लिङ्ग. १.५४.१-६२.४२
वायु. १.५०.१-५३.१२३
विष्णु. २.७.१-१२.४७
शिव. ५.१९.१-४४
स्कन्द. १ [2].३८.१-६४

मन्वन्तरवर्णनम् (Description of the Manvantaras)
(कूर्म. १.४९.१-२६)

अग्नि. १५०.१-३१
गरु. १.८७.१-६१
देवीभा. १०.८.१-१३.१२७
नार. १.४०.१७-३७
ब्रह्म. ५.१-५७
ब्रह्माण्ड. १.३५.१६३-३८.३१;
३.१. ६-११६
भाग. ८.१. १-२६;
८.५.१-६
मत्स्य. ९.१-३६;
१४४.१-११८
मार्क. ५०.१-१०
वायु. २.३८.१-२४५
विष्णु. ३.१.१-२.६१
विष्णुध. १.८१.१-५
शिव. ५.३४.१-७८,
७ [1].११.१-५
स्कन्द. २ [1].३६.३४-४१

हरिवं. १.७ ४-८.२४

व्यासावताराः (Incarnations of Vyāsa)
(कूर्म. १.५०.१-१०)

देवीभा. १.३.२६-३३
भाग. १.४.१४-२५
वायु. १.२३.१०६-२१४
१.६०.१-७५
विष्णु. ३.३.१-६.३३
महाभा. १.६३.७०-९०
शिव. ७ [1].१.३४-३६;
७ [2].८.४१-५१;
३.४.१-५.५६;

वेदविभागः (Classification of the Vedas)
(कूर्म. १.५०.११-२०)

अग्नि. १५०.२३-३१; २७१.१-२२
पद्म. १.३.११०-११४
ब्रह्माण्ड १.३४.१-३२
भाग. १.४.१४-२५
महाभा. १.६३.८५-९०
मार्क. ४५.३१-३४
विष्णु. ३.३.२-३१; ३. ४. १-१५; ५.५.५४-५७

ईश्वरविभूतिकथनम् (Description of Vibhūtis of God) (कूर्म. २.७.१-१५)

ब्रह्माण्ड. ३.२.२१८-२२१
भाग. ११.१६.९-४१
महाभा. ३.१८९.१-५६
विष्णुध. १.५६.१-४३
स्कन्द. ७ [1]. २.५१-८६

ब्रह्मनिरूपणम् (Exposition of Brahman)
(कूर्म. २.१०.१-२७)

ब्रह्मवै. १.२८.१-७०
मार्क. ३९.१-१७
विष्णु. १.३.१-४.५२; २.१२.३७-४७; २.१३.६२-१०४

योगवर्णनम् (Description of Yoga)
(कूर्म. २.११.१-६७)

अग्नि. २१४.१-२१५.५०; ३७३.१-३७६.४४
गरु. १.९१.१-९२.१७
देवीभा. ७.३५.१-४५
नार. १.३३.१५३-१६३
ब्रह्म. २३४.१-२३५.६६; २३८.१-११२
भाग. ३.२८.१-४४
मार्क. ३६.१-३८.२६
हरिवं. ३.१७.-१२३.४६
लिङ्ग. १.८-१०; ८५-८८ अ०
वायु. १.१०-२० अ०; २.४०-४२ अ.
विष्णु. ६.७.२७-९७
विष्णुध. १.६५.१-३६; ३.२७९.१-२८८.१७
शिव. ७ [2]. ३७.१-३९.६०
स्कन्द. २ [1]. २४.५८-७४

भक्तिः (Devotion)
(कूर्म. २.११.६८-१०६)

गरु. २१९.१-२२६.५५
देवीभा. ७.३७.१-४५
नार. १.४.१-४२; १.३४.१-७७; १.१५.३९-४०.३९
भाग. ३.२९.१-४५; ११.५.१-५२
वरा. ११५.१-१२१.२८
विष्णु. १.२०.१७-१८; २.६.३७-४४; ३.७.१६-३४
विष्णुध. १.५७.१-५८.३३

कर्मयोगवर्णनम् (Description of Karmayoga)
(कूर्म. २.११.१३३-१४६)

भाग. ११.३.४१-५५
मत्स्य. ५२.१-२६

शिवनारायणयोरेकत्वम् (Oneness of Śiva and Nārāyaṇa)
(कूर्म. २.११.१०७-१२५)

नार. १.६.४४-४६
ब्रह्माण्ड. २.२.८१-१३१
वरा. ७१.१-४
वाम. ३६.२०-३२

ब्रह्मचारिधर्माः (Duties of Brahmacārins)
(कूर्म. २.१२.१-१४.८१)

अग्नि. १५३.१-१६
नार. १.२६.१-२
पद्म. १.१५.२८६-३००; ३.५४.-१४०
भाग. ७.१२.१-१६
विष्णु. ३.९.१-६
विष्णुध. २.८६.१-१५
स्कन्द. २ [9]. २१.१-१८; ३ [2]. ६.१-१०४; ४.३६.१-६६

गायत्रीमाहात्म्यम् (Glorification of Gāyatrī)
(कूर्म. २.१४.४८-५६)

गरु. १.३६.१-३७.८
देवीभा. ११.२१.१-१२.६.१६५
पद्म. १.४८.१३८-२०८
भवि. १.४.११-४७
विष्णुध. १.१६५.१-७८; २.१२४.१-१२
स्कन्द. ५ [3].१७२.७९-८३; ४.९.३६-६५

गृहस्थधर्मनिरूपणम् (Description of the Duties of a householder)
(कूर्म. २.१५.८-४२; २.१८.१-१२१)

अग्नि. १५२.१-५
नार. १.२६.३-२७
पद्म. ३.५२.१-४७; ३.५४.१-४०; ३.५५.१-६४; २.१५.१-१६.६६
हरिवं. ३.९.१-१०.६६
मार्क. २६.३-४८
विष्णु. ३.९.७-१६
विष्णुध. २.८७.१-९५.३०
स्कन्द. २ [9]. २२.१-५१; ४.४०.१४-६७

सदाचारः (Virtuous deeds and approved usage)
(कर्म. २.१६.१-९३; २.१९.१-३२)

अग्नि. २२.१-९; १५५.१-३१; १६५.१-२८;
१६८.१-४०; २५३.१-२५४.२७; ३७२.१-३६

गरु. १.४६.१-५२.२६;
१.९३.१-९६.७२;
१.२०५.१-२१३.२४
देवीभा. ११.१.४-२.४२;
११.१६.१-१७.४७;
११.२३.१-६३
नार. १.३.५०-४.४२;
१.४३.५१-४४.२०;
१.६६.१-७८
पद्म. १.१५.२८१-३९२;
१.५१.१-१३५;
२.१३.१-४५
ब्रह्म. २२१.१-१७०
ब्रह्मवै. १.२६.४-१०३;
४.७५.१-८१;
४.८३.१-८४.४०
ब्रह्माण्ड. २.१४.५०-११७
भवि. १.३.१-४,२२२;
४.२०५.१-१५३
भाग. ७.११.१-१५.८०;
११.१७.१-१८.४८
मत्स्य. ३६.६-४२.२९;
१७४.३२-४४

मार्क. २८.१-२९.४८;
३१.१-१२१;
३४.१-३५.६५
लिङ्ग. १.८५.१२७-२१७;
१.८९.१-१२२.
वरा. ११५.२३-४१;
२१०.४८-२११.९९;
११५.१-१२१.२८
वाम. १४.१-१५.६६
विष्णु. ३.८.२०-१६.४५
विष्णुध. २.७९.१-९५.३०;
२.१३०.१-१३१.६४;
३.२३३.१-२८२;
३.३३९.१-३४०.४०
शिव. १.१३.१-१४.४६;
७ [2].२१.१-२०
स्कन्द. १ [2].४१.११७-१७४;
२ [9].१०.११-२३.४३;
३ [2].५.१-७.१००;
३ [2] ४०.१-१५२;
४.३५.१४-३६.६६;
४.३८.१-११५;
६.२२३.१-३६;
७ [1].२०७.३-२०८.५२

महाभा. ३.२०७.६२-९९; १२.१८९.१-१९३.३३;
१२.१६४.१-१६५.७८; १२.२८७.१-५९;
१३.९७.१-२५; १३.१०४.१-१५७;
१३.१४१.३४-१४५.६३; १४.४५.१३-४७.१७;
१३.१२३.१-१३४.१७
हरिवं. ३.२४.१-१५

भक्ष्याभक्ष्यनिर्णयः (Description of foods prescribed and forbidden)

(कूर्म. २.१७.१-४५)

पद्म. ३.५६.१-४५;
२.१७.१-४४
ब्रह्म. २२१.१०९-११२
ब्रह्मवै. १.२७.१-४७;
४ [२].८५.१-५६

मार्क. ३२.१-३
स्कन्द. ४.४०.९-१८,१०९-१४०

महाभा. १३.१३५.१-२१;१२.३६.२१-३५; १३.१३५.१-२१

श्राद्धविधिः (Rituals of Śrāddha)

(कूर्म. २.२०.१-२२.१००)

अग्नि. ११७.१-६५;
१६३.१-४२
गरु. १.९९.१-३७
१.२१०.१-२१२.९;
२.२५.४-४७
नार. १.२८.१-९०;
१.५१.१०१-१५७
पद्म. १.९.४५-७१,७५-१९२
ब्रह्म. २१९.१-२२०.१२
ब्रह्माण्ड. २.११.१-२०.२३
भवि. १.१८४.१-१८५.२८

मत्स्य. १६.१-२२.९४;
१४०.१-८५
मार्क. २७.१-३०.१७
लिङ्ग. २.४५.१-९४
वरा. १३.१६-१४.५३;
१८७.२८-१९०.३८
वायु. २.१०.१-२२
विष्णु. ३.१३.१-१६.२०
विष्णुध. १.११३.१-१४४.२३
शिव. ५.४०.१-४१.५३

महाभा. १३.८७.१-९२.२३
हरिवं. १.१६.१-२४.३८

आशौचम् (Account of Impurities)

(कूर्म. २.२३.१-९३)

अग्नि. १५७.१-१५९.१४
गरु. २.२९.१-१६;
१.१०६.१-१०७.३८
ब्रह्म. २२१.११३-१६२

मार्क. ३२.४-९७
लिङ्ग. १.८९.७७-१२२
विष्णुध. २.७५.१-७७.१६;
३.२३२.१-१५

दाननिरूपणम् (Rules for giving gifts and charities)

(कूर्म. २.२६.१-७९)

अग्नि. २०९.१-२१३.१०;
२७२.१-२९
गरु. २.२४.१-९;
१.५१.१-३९;
१.९८.१-१९
देवीभा. ९.२९.१-३०.११७
नार. २.४२.-८४;
१.१२.-१३.६७
पद्म. १.३४.२१७-२२०;
१.५९.२-४७;
१.६१.६९-११३;
१.७९.४५-६१;

२.२६.१-७८;
२.३९.३७-४०.४६
३.५७.-७८;
मत्स्य. ८१.१-९१.३३
लिङ्ग. २.२८.१-४४.१९
वरा. २०७.४१-५५
विष्णुध. २.९५.३५-५८;
३.३४१.१-३२१
शिव. १.१५.१८-६१;
५.१४-३२
स्कन्द. ७[1].२०७.१-२०८.३
१[2].२.५५-६६;

१[2].४.१-६८; ७[4].२६.२६-३३;
५[3].५०.१-४६; १[2].२.६६-७०
६.२५२.१०-१८;

महाभा. ३.१८६.७-२०; १२.३६.३६-५०;
१२.२३४.१२-३७; १३.९.१-२८;
१३.५७.१-८२.५२; १३.१३७.१-१३८.११

वानप्रस्थधर्मकथनम् (Description of Duties of a Vānaprastha)

कूर्म. (२.२७.१२-१६)

अग्नि. १६०.१-५ भाग. ७.१२.१७-३१
गरु. १.१०२.१-६ विष्णु. ३.९ १७-२३
नार. १.२७.८३-६१ विष्णुध. २.१३०.१-३३;
पद्म. ३.५८.१-३८; ३.३३९.१-६
१.१५.३२६-३४७ स्कन्द. २[9].२३.१-१३

यतिधर्माः (Duties of a Recluse)

(कूर्म. २.२८.१-२९.४७)

अग्नि. १६१.१-३१ भाग. ७.१३.१-४६
गरु. १.१०२.१-६ विष्णु. ३.६.२४-३३;
नार. १.२७.६२-१०६ विष्णुध. २.१३१.१-५३
पद्म. १.१५.३४८-३६२; ३.३४०.१-४४
३.५९.१-६०.४३ स्कन्द. २[9].२३.१४-४३

प्रायश्चित्तम् (Rules of expiation)

(कूर्म. २.३०.१-२६; २.३२.१-३३.१०७)

अग्नि. १६९.१-१७४.२४ लिङ्ग. १.८९.४१-७६;
गरु. १.५२.१-२६; १.६०.१-२४
१.२१४.१-२१५.३७; वरा. १३२.१-१३६.१२७,
१.१०५.१-७० १७६, १७६
नार. १.१४.१-१५.३७; वायु. १.१६.१-२०.१६
१.३०.१-११४ विष्णु. २.६.३५-४३
ब्रह्माण्ड. ३.६.६३-८.६१ विष्णुध. ३.२३४.१-२६.१५;
भवि. १.१८६.१-५३ २.७३.१-७४.२४
स्कन्द. २ [9].२२.१-५१;
१ [4].६.१-३८

महाभा. १२.३३.३६-३६.५०; १२.१६५.३२-७८;
१३.१३६.१-२५.

शिवस्य कपालिकत्वम् (How Śiva became Kapālin)

(कूर्म. २.३१.१-१११)

नार. २.२६.२-६२ पद्म. १.१४.१०६-२१३
भवि. ३ [1].१३.१-२० शिव. ३.८.१-६.६६
मत्स्य. १८२.८२-१०३ स्कन्द. ३ [1].२४.१-७१;
वरा. ९७.१-२७ ५ [1].२.१-६.१२५;
वाम. २.१६-३.५१ ७ [1].८९.१-१०

पतिव्रतामाहात्म्यम् (Glorification of a Pativratā or chaste woman)

(कूर्म. २.३३.१०८-१४४)

पद्म. १.५२.५१-७५; वरा. २०८.१-२०९.२१
१.५३.१-७३ विष्णुध. २.३२१.१-३२२.२४
मत्स्य. २०७.१-२१३.२२
रामा. २.२७.१-६; २.११७.२१-२८

ज्ञानयोगवर्णनम् (Description of a Jñānayoga)

(कूर्म. २.३३.१४५-१५३)

गरु. १.२२७.१-२२९.३०; ब्रह्माण्ड. २.३.२४-११३
१.२१७.१-२१८.३६ विष्णु. २.१२.३७-४७;
देवीभा. १.१७.१-६६; २.१३.६२-१०४
१.१९.३२-४० ६.५.१-८७;
नार. १.३३.२६-१५२;
१.४४.२२-८२

तीर्थमाहात्म्यम् (Glorification of the Tīrthas)

(कूर्म. २.३४.१-४२.२४)

अग्नि. १०९.१-११४.४१ वरा. १२२.१-१२२
गरु. १.८१.१-८६.३८ वाम. स.मा. १.१-२८.४६;
देवीभा. ६.१२.१-२८ १७.१-२३;
नार. २.३८.१-५१.४८; ३६.४५-५८;
२.२९.१-७२; ५३.११-७३;
२.६२.१-६५.१३५ ५७.३४-४०
पद्म. ३.३८.१-३९.१२७; स्कन्द. ३ [3].२६.१-२७.१६६;
३.१२.१-१३.५५; ६.१.२-७२;
३.१८.१-१२२; ६.२५८.६-२६;
३.२४.१-३८; ७ [1].१८७.१५-४६;
६.१८०.३२-८७ ७ [3].३९.१-६६;
भाग. ९.९.१-१५ ५ [3].६.२१-४४;
मत्स्य. २२.१-६४; ५ [3].११.१-२६;
१०८.१-२५; ५ [3].१८.१-१३;
१८५.१-१९३.५० २ [9].२५.५-५६;
२ [7].२०.२०-५२

महाभा. १.२१३.१-२१८.२१; ३.८२.१-६०.३४;
९.३५.१३-५४.४१; १३.२५.१-२६.१०६.

गयामाहात्म्यम् (Glorification of Gayā)

(कूर्म. २.३४.८-१५)

अग्नि. ११४.१-४१ वरा. ७.२१-२६
गरु. १.८२.१-८६.३८ वाम. ५३.११-७३
नार. २.४४.१-४७.९४ वायु. २.४३.१-५०.८०
पद्म. ३.३८.१-७३; स्कन्द. ६.२०५.१-२०६.६६
६.१८०.३२-८७

सप्तसारस्वतमाहात्म्ये मङ्कणकवृत्तान्तः (Story of Maṅkaṇaka in connection with the glorification of Saptasārasvata Tīrtha)

(कूर्म. २.३४.४४-७६)

पद्म. १.१८.१३४-१५६ स्कन्द. ६.४०.२७-५२;
वाम. स.मा. १७.१-२३; ७ [1].२७०.१-४६
३६.४५-५८
महाभा. ३.८३.१६-३४; ९.३८.३३-५६

कालञ्जरतीर्थे श्वेतवृत्तान्तः (Story of Śveta in connection with the Kālañjara Tīrtha)

(कूर्म. २.३५.११-३८)

लिङ्ग. १.३०.१-३३.२४ विष्णुध. १.२३६.१-२०
वाम. ५७.१६-२४ स्कन्द. १ [1].३२.१-६६

देवदारुवने शिवलिङ्गपातः (Falling of the Phallus of Śiva in Devadāru forest)

(कूर्म. २.३६.४६-३७.१५०)

ब्रह्माण्ड. १.२७.१-१२६ शिव. ४.१२.४-५४
वाम. स. मा. २२.४४-२३.३६
स्कन्द. ३ [3].२६.१-२७.१६१; ६.२५८.६-२६;
६.१.२-७२; ७ [1].१८७.१५-४६
७ [3].३९.१-६६

नर्मदामाहात्म्यम् (Glorification of the river Narmadā)

(कूर्म. २.३८.१-४०.४०)

अग्नि. ११३.१-७ स्कन्द. ५ [3].६.२१-४५;
पद्म. ३.१३.१-५५ ५ [3].११.१-६६;
मत्स्य. १८५.१-१९३.५० ५ [3].१८.१-१३

नैमिषमाहात्म्यम् (Glorification of the Naimiṣa Tīrtha)

(कूर्म. २.४१.१-१५)

देवीभा. १.२.२८-३४ वायु. १.१.१६६-१६७
ब्रह्माण्ड. १.१.१५६-१७४ शिव. ७[1].४.५२-६३

प्रलयवर्णनम् (Account of the Dissolution)

(कूर्म. २.४३.१-४४.३०)

अग्नि. ३६८.१-२७ मत्स्य. १६५.१-२४
गरु. १.२१६.१-१२ मार्क. ४३.१-४४
देवीभा. ९.८.७२-८२ वायु. २.३८.१३२-४०.१३५
पद्म. १.४१.४८-७३ विष्णु. ६.३.१-७.१०६
ब्रह्म. २३१.१-२३३.७५ विष्णुध. १.७४.१-७९.३०
ब्रह्माण्ड. १.६.४३-७७;
३.१.११६-३.११३
भाग. १२.४. १-४३
महाभा. ३.१८८.६६-८८; १२.२३३.१-१६;
१२.३११.१-३१२.१७

कूर्मपुराणस्य श्लोकार्धसूची

ऊ

ऋ

ख

ग

ज्ञात्वा न हिंसते राजा १.२८.१८c
ज्ञात्वाऽनुतिष्ठेन्नियतं २.२६.७८c
ज्ञात्वा परतरं भावं १.१०.४२a
ज्ञात्वा मां वासुदेवाख्यं १.१.५०a
ज्ञात्वा यथावद् विप्रेन्दान् २.४४.१३७a
ज्ञात्वाऽर्कमण्डलगतां १.११.३२७c
ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुः २.६.५२c
ज्ञानं च कर्मसहितं १.३.२३c
ज्ञानं च कीदृशं दिव्यं १.१.६६c
ज्ञानं चैवात्मनो योगं १.११.३२०c
ज्ञानं तदुक्तं निर्बीजं २.४४.४८a
ज्ञानं तदैशं भगवत्प्रसादात् २.३७.१५८c
ज्ञानं तदैश्वरं दिव्यं १.२८.५६a
ज्ञानं तद् ब्रह्मविषयं २.१.११c
ज्ञानं तन्मामकं दिव्यं २.४१.३८a
ज्ञानं तु केवलं सम्यग् २.३७.१२६c
ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं [परमा°] १.१.८२c
ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं [येन] २.१.३c
ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं २.१.१३a
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं १.१०.३६a
ज्ञानं समभ्यसेद् ब्राह्मं २.२६.२१c
ज्ञानं स्वयम्भुवा प्रोक्तं २.२६.४६c
ज्ञानकर्मगुणोपेता २.१२.४६c
ज्ञानकर्मण्युपरते १.२८.२६a
ज्ञानज्ञेया जरातीता १.११.१२३c
ज्ञानतीर्थं परं गुह्यं १.३३.६a
ज्ञाननिष्ठो महायोगी २.२१.१४a
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात् १.२.६१c
ज्ञानमानन्दमद्वैतं १.३१.४७c
ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो १.११.२६५c
ज्ञानयोगरतः शान्तो २.२६.४४c
ज्ञानयोगरताः शान्ता [:] २.३७.१३८a
ज्ञानयोगरतान् दान्तान् १.२.१२a
ज्ञानयोगरतैर्नित्यं २.१.२c
ज्ञानयोगरतो भूत्वा १.३८.३६c
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु २.२.४४c
ज्ञानयोगेन मां तस्माद् २.११.७२c
ज्ञानवैराग्यनिलयं २.५.१४c
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः १.११.३६c
ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् [वेद सन्यासिनो] १.२.८२a
ज्ञानसंन्यासिनः केचिद् [वेद सन्यासिनः] २.२८.५a
ज्ञानस्वरूपमेवाहुः २.२.२६a
ज्ञानाज्ञानाभिनिष्ठानां १.२६.५७a
ज्ञानात्मकं सर्वगतं २.११.६४c
ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो २.४३.६a
ज्ञानानां परमं ज्ञानं २.४४ १३३c
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानं १.२६.२४c
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं २.१६.१८c
ज्ञानाय वर्तते भिक्षुः १.२.८०c
ज्ञानेन कर्मयोगेन [न तेषां] १.१.५६c
ज्ञानेन कर्मयोगेन [भक्ति] १.११.३१२a
ज्ञानेन भक्तियोगेन १.१.८५c
ज्ञानेन वाथ योगेन २.३७.१२५c
ज्ञानेनाराधयानन्तं १.१.६०c
ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं १.११.२६५a
ज्ञापयाञ्चक्रिरे सर्वे २.३७.५१c
ज्ञायते न हि राजेन्द्र १.११.२६६c
ज्ञायते मत्स्वरूपं तु २.३७.१४७c
ज्ञेयः स कर्मसंन्यासी २.२८.८c
ज्ञेयानि सप्त तान्येषु १.३८.२२c
ज्येष्ठं च भजमानाख्यं १.२३.३५e
ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य १.१८.११a
ज्येष्ठः पुत्रशतस्यापि १.१६.१०c
ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषा १.३८.२४c
ज्येष्ठमासे तु संप्राप्ते २.३६ ८८a
ज्येष्ठामूले भवेदिन्द्रः १.४१.१८a
ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च २.१२.३२c
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास् १.१०.६७c
ज्योतिःशास्त्रं न्यायविद्या १.११.२८१c
ज्योतिः स्वभावं भगवान् २.४४.१३c
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस् १.४.२६c
ज्योतिर्द्धर्मा पृथुः काव्यश् १.४६.१५a
ज्योतिर्मयं प्रपश्यन्ति २.५.६c
ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं १.४.२७a
ज्योतिषां चक्रमादाय १.३६.३६c
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे १.३८.१२a
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे १.३८.२१a
ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां १.३८.८a
ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वे २.३५.७c
ज्योत्स्ना सा चाभवद् विप्राः १.७.४८c
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं [जलं] २.३०.१८c
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं [व्या°] २.३२.२२c
ज्वालामालावृताङ्गाय १.२५.८२a
ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं २.३५.२१c
ज्वालामालासहस्राढ्यं १.११.६७c
ज्वालामाला सहस्राढ्या १.११.१२२a

ड

डिम्बाहवहतानां च २.२३.६६a

त

तं ते ददृशुरीशानं २.५.२a
तं ते दृष्ट्वा जगद्योनिं १.२४.१४a
तं ते दृष्ट्वाथ गिरिशं २.३७.१२२a
तं ते देवादिदेवेशं २.१.४८a
तं दृष्ट्वा कालवदनं २.३१.७७a
तं दृष्ट्वा चापरं सर्गं १.७.११a
तं दृष्ट्वा देवमीशानं १.६.५३a
तं दृष्ट्वा नन्दनं जातं २.४१.२५a
तं दृष्ट्वा नारदमृषिं १.२५.२४a
तं दृष्ट्वा वेदविदुषं १.१६.६०a
तं दृष्ट्वा वेदविद्वांसं २.१.७a
तं दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठः १.३१.२०a
तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो २.३४.३२c
तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गं १.७.५a
तं प्राह भगवान् ब्रह्मा [जन्म°] १.७.२६a
तं प्राह भगवान्ब्रह्मा [शंकरं] २.३१.२७c
तं प्राह भगवान् रुद्रः २.३४.४८a
तं बोधयामास सुतं १.७.२२a
तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां १.३१.४०c
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं १.३१.४२c
तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं १.३१.३६c
तं ब्रूताज्ञापयति यो १.१४.५१e
तं मां वित्त महात्मानं २.३७.८०a
तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः १.१३.१३c
तं सर्वसाक्षिणं देवं १.१०.६६c
तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा [:] १.२३.८५a
तच्छृणुध्वं यथान्यायं २.१.५३a
तज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं २.२.३६a
ततः कदाचित् कपिना १.२०.३४a
ततः कदाचिदसुरो १.१५.८१a
ततः कदाचिद् योगीन्द्रो १.१.१०५a

न

फ

१०

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य १.७.१a
सेतुं परमवर्मात्मा १.२०.४५c
सेतुमध्ये महादेवं १.२०.४७a
सेयं करोति सकलं १.११.२५a
सेवन्ते ब्राह्मणास्तत्र १.२८.२१c
सेवावसरमालोक्य १.२८.२०c
सेवितं तापसैः पुण्यैर् १.२४.१०a
सेवितं तापसैर्नित्यं १.२४.११e
सेवितं सूरिभिर्नित्यं १.३०.४c
सेविता सेविका सेव्या १.११.१९५a
सैव सर्वजगत्सूतिः १.४६.४५a
सैषा धात्री विधात्री च १.११.५३a
सैषा मायात्मिका शक्तिः १.११.३५a
सैषा माहेश्वरी गौरी १.१५.१५८a
सैषा माहेश्वरी देवी १.११.१३a
सैषा सर्वजगत्सूतिः १.१.३८a
सैषा सर्वेश्वरी देवी १.११.३०a
सोऽगच्छद्धरिणा सार्द्धं २.३७.३३a
सोऽजीजनत् पुष्करिण्यां १.१३.६c
सोऽतीव कामुको राजा १.२२.२२a
सोऽतीव धार्मिको राजा १.१९.२८a
सोऽतीव शंकरे भक्तो १.१७.२a
सोदकेष्वेतदेव स्यान् २.३३.४८a
सोऽधीत्य विधिवद् वेदान् १.१३.२३a
सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा २.३१.३६c
सोऽनुगृह्याथ राजानं १.१३.३६a
सोऽनुभूय चिरं कालम् १.१०.११a
सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस् १.१५.९९a
सोऽनुवीक्ष्य महादेवं २.३१.५९a
सोऽन्तकाले स्मृतिं लब्ध्वा १.११.३२९c
सोऽन्तरा सर्वमेवेदं २.३.१७a
सोऽन्तर्यामी स पुरुषः २.२.५a
सोऽन्तर्यामी न पुरुषो २.३४.६३c
सोऽन्वपश्यदशेषस्य १.३४.५४a
सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशः २.३४.४९a
सोऽपश्यत् पथि राजेन्द्रो १.२२.२०a
सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते २.१९.१९c
सोपानत्को जलस्थो वा २.१३.१०a
सोऽपि तद्वचनाद् राजा १.१३.४८a
सोऽपि तेन विधानेन १.१.१०१a
सोऽपि दृष्ट्वा ततः पुत्रीं १.११.५८a
सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान् १.१६.६६a
सोऽपि नारायणं द्रष्टुं १.१.६५a
सोऽपि योगं समास्थाय १.१०.८५a
सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्य १.१.११२a
सोऽपि लब्धवरः श्रीमान् १.१६.५८a
सोऽपि संजीवयेत् कृत्स्नं २.६.१८c
सोऽपीश्वरनियोगेन २.६.२४c
सोऽपीश्वर प्रसादेन २.११.१०१c
सोऽब्रवीद् भगवानीशस् २.३७.२५a
सोऽब्रवीद् भगवान् देवो १.१६.७a
सोऽब्रवीद् भगवान् योगी १.१६.१०a
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं १.३८.३५c
सोऽभ्यषिञ्चदतिक्रम्य १.२१.८a
सोमं दुर्वाससं चैव १.१२.८a
सोमः स दृश्यते देवः २.३१.४६c
सोमः स मन्नियोगेन २.६.२०c
सोमग्रहे तु राजेन्द्र २.३९.४७a
सोमतीर्थं ततो गच्छेत् २.३९.४६a
सोमपुत्रस्य चाष्टाभिर् १.४१.३८a
सोमलोकमवाप्नोति १.३६.७a
सोमविक्रयिणश्चान्नं २.१७.८c
सोमस्य भगवान् वर्चो १.१५.१३a
सोमाय वै पितृमते २.२२.४७a
सोमेनाराधयेद् देवं २.२४.१४c
सोमेश्वरं तीर्थवरं २.३४.२०a
सोऽयं देवो दुराधर्षः १.१५.२३३a
सोऽयं साक्षी तीव्ररोचिः १.१४.१४c
सोऽयमेकश्चतुष्पादो १.५०.२०c
सोऽर्चयामास भूतानां १.१.५१a
सोऽर्चयेद् वै विरूपाक्षं २.२६.४२c
सोऽवतीर्णो महायोगी १.१६.३५c
सोऽविकल्पेन योगेन २.४.३२c
सोऽसृजद् भगवान् विष्णुर् १.१५.१३५a
सोऽसौ मूढो न संभाष्यः २.२४.१२c
सोऽहं कालो जगत्कृत्स्नं २.६.६c
सोऽहं ग्रसामि सकलम् १.१०.८२a
सोऽहं धाता विधाता च २.४.४c
सोऽहं प्रेरयिता देवः २.४.३३a
सोऽहं सत्त्वं समास्थाय २.४३.५२a
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो २.३.६c; २.३.२०c
सोऽहं सृजामि सकलं २.३.२२a
सौदामिनी जनानन्दा १.११.२०२a
सौदासस्तस्य तनयः १.२०.१२e
सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ता— १.११.६a
सौरान् मन्त्रान् शक्तितो वै २.१८.८२c
सौरिर्द्विलक्षेण गुरोर् १.३९.११a
सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च १.३९.२१c
सौवीराः सैन्धवा हूणा[:] १.४५.४१c
स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो १.१०.२९c
स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत् २.३९.२८a
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् २.२९.३५a
स्कन्दोऽसौ वर्तते नित्यं २.६.२९c
स्कन्धेनादाय मुसलं २.३२.६a
स्तनभारविनम्रैश्च १.४७.५९a
स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत् २.३९.५०a
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर् २.३८.१९a
स्तुतिस्मरणपूजाभिर् २.११.२९a
स्तुत्वा नारायणैः स्तोत्रैः १.१५.५९a
स्तुत्वैवं शङ्कुकर्णोऽसौ १.३१.४६a
स्तुवद्भिः सततं मन्त्रैर् १.४५.१६c
स्तुवन्तमीशं बहुभिर्वचोभिः १.२४.५६c
स्तुवन्ति त्वां सततं सर्ववेदाः २.५.३०a
स्तुवन्ति देवं विविधैश् १.४०.५c
स्तुवन्ति भैरवं देवं १.१५.१८०c
स्तुवन्ति वैदिकैर्मन्त्रैः १.२४.१५a
स्तुवन्ति सततं देवं १.३०.२५a
स्तुवन्ति सिद्धा दिवि देवसंघाः १.३१.३३a
स्तुवानमीशस्य परं प्रभावं १.२४.५७c
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर् [वेद°] १.१५.१७८c
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर् [ब्रह्मा°] २.३७.७९c
स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर् १.१४.८२c
स्तेननास्तिकयोरन्नं २.१७.८a
स्तेयं तस्यानाचरणाद् २.११.१७c
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन् २.२९.३०c
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः १.१४.७१c
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभा[:] १.४५.१c
स्त्रियो म्लेच्छाश्च ये चान्ये १.२९.३१c
स्त्रियो यौवनशालिन्यः १.४५.१८c
स्त्रीणां तु भर्तृशुश्रूषा २.२३.९२c
स्त्रीणां सर्वाघशमनं २.३३.१४२c
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे २.१३.९c

ह